आधुनिक राज्य का सुरक्षातंत्र

(The Defence Mechanism of the Modern State)

सेनाध्यक्षों की समिति के विशिष्ट संदर्भ में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की
राजनीतिक-सैनिक संरचना का अध्ययन

लेखक
डॉ० नगेन्द्र सिंह

प्राक्कथन लेखक
लॉर्ड माउन्टबेटन

अनुवादक
रवि शेखर वर्मा

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर-4

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित :

प्रथम-संस्करण—१९७३

मूल्य : २०.००

प्रकाशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ
ए-२६/२, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर
जयपुर-४

मुद्रक
अणिमा प्रिंटर्स,
पुलिस मेमोरियल,
जयपुर-४

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत १९६९ में पाँच हिन्दी-भाषी प्रदेशों में ग्रंथ-अकादमियों की स्थापना की गई।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अंत तक दो सौ से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गई है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी। इस पुस्तक की परिवीक्षा के लिए अकादमी श्री हरगोविन्द पंत, रीडर, राजनीतिशास्त्र विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के प्रति आभारी है।

[illegible] सिंह
अध्यक्ष

गो० श० सत्येन्द्र
निदेशक

अनुवादक की ओर से दो शब्द

प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा करना राज्य का सर्वप्रथम और महत्वपूर्ण कार्य है। रक्षाकार्यों का सचालन करने वाली सेनाध्यक्षो की समिति को राज्य की सरचना मे विशिष्ट स्थान प्राप्त होता है। इस समिति और राज्य की राजनीतिक सत्ता के मध्य सम्बन्ध पर ही राज्य की प्रकृति निर्भर होती है। लोकतत्रीय प्रणाली मे रक्षाकार्यों पर राजनीतिक सत्ता का पूर्ण आधिपत्य होता है पर सर्वाधिकारवादी राज्यो मे सशस्त्र सेनाओं की स्थिति सर्वोपरि होती है।

रक्षा जैसे आवश्यक और महत्वपूर्ण विषय पर हिन्दी मे नाममात्र साहित्य भी उपलब्ध नही है। डा० नगेन्द्रसिंह के ग्रंथ से इस अभाव की पूर्ति होगी ऐसा मेरा विश्वास है। अग्रेजी भाषा मे भी उनके इस ग्रंथ को अत्यत सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसमे उन्होने इस विषय का अधिकारपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है।

सारा ग्रंथ छह भागो मे विभक्त है। प्रथम भाग मे राज्य के रक्षा कार्य और सेनाध्यक्षो की समिति के उद्गम और विकास पर विचार किया गया है। द्वितीय भाग मे लोकतत्रीय देशो मे इस समिति की कार्यप्रणाली का वर्णन किया गया है। इस भाग मे इगलैण्ड, फ्रास, न्यूजीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, भारत, मलाया, सयुक्त राज्य अमरीका, मिश्र और पाकिस्तान की रक्षा व्यवस्थाओ का विवरण दिया गया है। तृतीय भाग मे नात्सी जर्मनी, फासीवादी इटली और युद्ध-पूर्व जापान की रक्षा व्यवस्था और चतुर्थ भाग मे सोवियत रूस और चीनी गणतत्र मे रक्षा की स्थिति पर विचार किया गया है। इस प्रकार इन चार भागो मे ससार के सभी प्रमुख देशो की सैन्य प्रणाली पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

पंचम भाग मे सयुक्त राष्ट्र सघ के सैनिक तत्र और सामूहिक रक्षा सगठनो का वर्णन किया गया है। षष्ठ भाग मे सावैधानिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हुए सशस्त्र सेनाओ का राज्य के आर्थिक-सामाजिक कार्यों से सम्बन्ध, सेनाध्यक्षो की समिति का मतदाता मण्डल से सम्बन्ध एव तत्सम्बन्धी अन्य समस्याओ पर विचार किया गया है।

इस प्रकार इस ग्रंथ मे रक्षा के सभी पक्षो का सम्यक् विवेचन किया गया

है। इस मानक ग्रंथ के प्रकाशन से हिन्दी पाठकों को पर्याप्त लाभ होगा। साथ ही अन्य ऐशीय भाषाओं में इसके अनुवाद में भी सहायता मिलेगी। शास्त्रीय विवेचन का अत्यन्त उच्चस्तरीय ग्रंथ होने के कारण इसका हिन्दी अनुवाद भी पर्याप्त परिश्रमसाध्य कार्य रहा है। अनेक शब्दों, पदों और धारणाओं का पहली बार हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया गया है परन्तु फिर भी इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि अनुवाद की भाषा कहीं भी दुरूह और जटिल न होने पाए। इस विचार से सर्वत्र सरलतम पदों और संक्षिप्त वाक्यों का प्रयोग किया गया है।

यथास्थान नवीनतम सूचना देकर ग्रंथ को अधिक उपादेय बनाने की भी चेष्टा की गई है।

राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर ने मुझे इस ग्रंथ का अनुवाद करने का अवसर प्रदान किया एतदर्थ मैं उनके प्रति आभारी हूँ। अनुवाद कार्य पूर्ण करने में लगभग पौने तीन वर्ष लगे। इस अवधि में अकादमी तथा अन्य व्यक्तियों से जो प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहयोग निरंतर मुझे मिलता रहा उसके लिए भी कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद करके मैं सचमुच गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ।

जयपुर
२८ जनवरी, १९७३.

रवि शेखर शर्मा

विषय-सूची

ॐ

ॐ अम्बे ऽ म्बिके म्बालिके
नमा नयति कश्चन—

ससस्त्यकश्वकः सुभद्रिकां,
काम्पील वासिनो स्वाहा ।

प्रथम समुद्री लॉर्ड
नौ सेना मत्रालय
लन्दन, एस डब्लू-१

प्राक्कथन

युद्ध और शान्ति दोनो ही कालो मे युनाइटेड किंगडम के सेनाध्यक्षो की समिति का सदस्य होने के कारण मेरा इससे और जब मैं भारत का गवर्नर जनरल था तब मेरा भारतीय रक्षा समिति से सक्रिय सम्बन्ध रहा है अत यह सक्षिप्त प्राक्कथन लिखने का अवसर पाकर मुझे अति प्रसन्नता हो रही है।

विभिन्न देशो की सेनाध्यक्षो की समिति के विषय मे डा० नगेन्द्रसिंह ने एक मूल्यवान प्रबन्ध लिखा है। वर्तमान राजनीतिक सैनिक-समस्याओ के गहन अध्येताओ से मैं इस ग्रथ के अनुशीलन की सस्तुति करता हूँ।

माउन्ट बैटन ऑव बर्मा
जहाजी बेड़े का एडमिरल

भूमिका

'रक्षा' न केवल सरकार का एक आवश्यक कार्य है वरन् प्रभुसत्ता का एक असंदिग्ध लक्षण भी है। रक्षाकार्य का सम्पादन सशस्त्र सेनाओं के माध्यम से होता है और उन्हें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। जहाँ तक राज्य और इसके नागरिक कानून अथवा संविधान का सम्बन्ध है सशस्त्र सेनाएँ (जिन्हें इस ग्रंथ में रक्षा का पर्याय माना गया है) राज्य की सत्ता स्थापित करने और इसका संचालन करने की अनुमति प्रदान करके आंतरिक शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने में सहायता करती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में, वाह्य आक्रमण से राज्य की रक्षा का भार इसकी सेनाओं पर होता है और वे ही राष्ट्रों के समुदाय में इसकी स्वतंत्रता और प्रभुसत्ता सुरक्षित रखती हैं।

पुनः भौतिक शक्ति का स्रोत होने के कारण राज्य की सांविधानिक संरचना में सशस्त्र सेनाओं की स्थिति राजनीतिक सिद्धान्त और संगठन के विद्यार्थी की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण होती है। लोकतंत्रीय शासन में सशस्त्र सेनाओं की शक्ति को राज्य की सर्वोच्च वैधानिक शक्ति नहीं माना जाता अतः आंतरिक और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इस शक्ति के उपयोग को नियंत्रित एवं निर्देशित करने वाली (राजनीतिक) सत्ता के साथ इसका सम्बन्ध निश्चित करना आवश्यक हो जाता है। सैनिक क्रान्तियों की बढ़ती हुई संख्या ने आधुनिक राज्य के नागरिक अथवा राजनीतिक क्षेत्र और सैनिक संगठन के मध्य सम्बन्ध की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इस ग्रंथ का उद्देश्य उस सैन्य संगठन की उत्पत्ति और विकास पर विचार करना है जिसकी केन्द्रीय धुरी लोकतंत्रीय और सर्वाधिकारवादी देशों की सेनाध्यक्षों की समिति होती है। इसके अतिरिक्त इसका उद्देश्य उच्चतर रक्षानीति और नियंत्रण के उस संगठन का अध्ययन करना है जो देश की विदेश नीति से अविच्छिन्न रूप से संयुक्त होने के कारण इसके राजनीतिक अंग से सम्बन्धित होता है। आगामी पृष्ठों में राज्य के राजनीतिक और सैनिक चक्रों के मध्य संयोजक कड़ी का कार्य करने वाली सेनाध्यक्षों की प्रणाली का अध्ययन किया गया है।

सैन्य संगठन के क्षेत्र में सेनाध्यक्षों की समिति को एक अर्थ में वर्तमान समय की महानतम उपलब्धि और दूसरे अर्थ में महानतम आधुनिक असफलता माना जा

सकता है। अवधारणा में महान और कार्यान्वियन में निपुण यह समिति वैज्ञानिक, यान्त्रिक अभियन्ता और राजनीतिज्ञ के सहयोग से आज संसार की भाग्यविधाता बन गई है। वास्तव में सैनिक समर नीति राज्य की नीति के अधीन और इसकी अनुचर होती है। परन्तु यह अत्यावश्यक है कि राज्य की नीति देश को एक ऐसी स्थिति में न पहुँचा दे जो इसकी सामर्थ्य और समर नीति के नियन्त्रण से बाहर हो। उदाहरणार्थ, किसी देश की सरकार के लिए सशस्त्र सेनाओ के प्रयोग सम्बन्धी ऐसी नीति का नियोजन करना व्यर्थ है जिस पर वे व्यवहार ही न कर सकें क्योंकि ऐसा करने का परिणाम बहुधा विनाशकारी होता है। हिटलर अपने सैनिक सलाहकारो की बहुधा अवहेलना किया करता था अत हिटलरकालीन जर्मनी इस स्थिति का ज्वलत उदाहरण है। प्रारम्भिक युद्ध योजनाओ मे तो उसे सफलता प्राप्त हुई परन्तु बाद मे अपनी सामर्थ्य सीमा का उल्लघन करने के कारण उसे जो परिणाम भुगतना पडा वह सर्वविदित है। अत नीतिनिर्माताओ को देश की सैनिक शक्ति और इसकी परिसीमाओ का पूर्ण एव निरतर ध्यान रखना चाहिए। तीनो सेवाओ के अध्यक्ष सेनाध्यक्षो की समिति के सदस्य होते हैं, लोकतन्त्रीय अथवा सर्वाधिकारवादी सभी राज्य सरकारो को सैनिक विषयो पर सलाह देना इसी समिति का कार्य है। आजकल यह समिति राज्य के सर्वोच्च राजनीतिक अग को सलाह देने वाली सर्वोच्च निकाय मानी जाती है।

उन्नीसवी और बीसवी शताब्दियो मे ससदीय लोकतन्त्र के उदय के कारण सेनाध्यक्षों की समिति एक महान सगठनात्मक विजय के रूप मे अवतरित हुई जिसके माध्यम से सशस्त्र सेनाओ पर लोकेच्छा का शासन लागू करना सभव हो सकता है। इस समिति के जन्म से पूर्व सशस्त्र सेनाओ पर क्राउन का एकमात्र आधिपत्य होता था। यद्यपि नई सावैधानिक व्यवस्था मे भी सशस्त्र सेनाएँ कार्यकारिणी का सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न अस्त्र है फिर भी सेनाध्यक्षो की समिति और कैबिनेट के लौह अकुश द्वारा उनके विस्तार को मतदाता मण्डल की सर्वोच्च इच्छा के अनुरूप नियन्त्रित कर दिया गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सैनिक नियोजन वैज्ञानिक अनुसधान का मार्गदर्शन करता आ रहा है। इसके परिणामस्वरूप पहले से अधिक सहारक शक्ति के आयुधो का निर्माण हुआ है; इन आयुधो के विकास की चरम परिणति उद्जन बम के रूप मे हुई और इससे सारे विश्व के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। यह सुविदित है कि सहारक आयुध रक्षा के सभी साधनों से कही अधिक विकसित हो चुके हैं, और एक सर्वव्यापी युद्ध मे उनके प्रयोग से न केवल युद्धकारी दोनो पक्षो का विनाश होगा वरन् मानव सभ्यता का ही अत हो जायगा। जिन देशो के पास उद्जन बम तथा अन्य अणु आयुध हैं वे सभवतया अपने सेनाध्यक्षो की समिति की संस्तुति और सलाह पर ही युद्ध मे इनके प्रयोग का निर्णय करेंगे। इस प्रकार एक दक्ष नियोजक निकाय के रूप मे सेनाध्यक्षों की समिति ने आधुनिक राज्य के

आर्थिक और राजनीतिक कार्यों को अत्यधिक प्रभावित किया है और इसी कारण इतिहास और राजनीति के विद्यार्थी के लिए इसका (सेनाध्यक्षों की समिति का) अध्ययन बड़ा रुचिकर विषय है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह समिति राज्य के उच्चतर राजनीतिक अंग के घनिष्ठ सहकार से कार्य करती है अतः इस ग्रंथ में सैनिक समर नीति अथवा सैन्य संरचना की अपेक्षा मूलतः राजनीतिक संगठन का अध्ययन किया गया है। राजनीतिक-सैनिक अंग के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष पर साहित्य का अभाव होने के कारण ही इस ग्रंथ की रचना की गई है। पृष्ठभूमि में रहकर शुद्ध सैनिक संस्था के रूप में कार्य करने वाले इस अंग ने इस शताब्दी के महान् राजनीतिज्ञों को निरन्तर परामर्श देकर बहुधा राष्ट्रों के भाग्य का निपटारा किया है।

रक्षा संगठन का समझौतों और गठबंधनों के रूप में सदियों पुराना एक अन्तर्राष्ट्रीय पक्ष भी है परन्तु इस पक्ष के वर्तमान स्वरूप का विकास द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् ही हुआ है। राष्ट्रीय संरचना पर विचार-विमर्श करते समय इस पक्ष की उपेक्षा करना उचित नहीं है। शीघ्रगामी आयुधों, निर्देशित प्रक्षेपणास्त्रों और अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों के आविष्कार के कारण राष्ट्रीय रक्षा का स्थान अब अन्तर्राष्ट्रीय रक्षा ने ले लिया है और भौगोलिक सीमाबद्ध राज्यों के सैन्य समर नीति विशारदों के मतानुसार रक्षा का यही उपाय प्रभावी हो सकता है। यदि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और प्रशासनिक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास को जिनका प्रतिनिधित्व संयुक्त राष्ट्र संघ की विशिष्ट एजेन्सियाँ करती हैं, युद्धोत्तर युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जाय तो कानूनी तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय सामूहिक रक्षा संगठनों के विकास को भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानना पड़ेगा। उनमें से कुछ ने 'सामान्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून' की न सही 'विशिष्ट अन्तर्राष्ट्रीय कानून' की स्थापना तो की ही है। हमारे सम्मुख संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र जैसे कानूनी दस्तावेज का भी उदाहरण है जिसमें एक सैनिक समिति की कल्पना की गई है भले ही यह सफल नहीं हो पाई है। क्षेत्रीय रक्षा समझौतों और सामूहिक रक्षा संगठनों का पर्याप्त विकास हुआ है। ब्रूसेल्स संधि संगठन, उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन, दक्षिण-पूर्व एशिया संधि संगठन ऐसे ही क्षेत्रीय संगठन हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रक्षा संगठनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन पर इस ग्रंथ के पाँचवें भाग में विचार-विमर्श किया गया है।

मैं दो बातों के लिए अपने पाठकों से क्षमा याचना करना चाहता हूँ : एक तो शैली सम्बन्धी त्रुटियों के लिए क्योंकि अंग्रेजी मेरी मातृभाषा नहीं है और दूसरे, संसार की विभिन्न सरकारों के रक्षातंत्र का वर्णन करते समय प्रत्येक देश में होने वाले नवीनतम विकास की सूचना संकलित कर लेना भी संभव नहीं हो सका है। उदाहरणार्थ, चीन के रक्षा संगठन के वर्णन को किसी भी प्रकार अद्यावधि नहीं कहा

जा सकता; प्रश्न के विषय में भी यही स्थिति है। रक्षा सम्बन्धी मामले बहुधा गोपनीय रखे जाते हैं अतः हमें प्रकाशित दस्तावेजों अथवा नई दिल्ली स्थित विदेशी दूतावासों से प्राप्त सूचना पर ही निर्भर रहना पड़ा है। इस ग्रंथ के लिए तथ्यपरक आवश्यक सामग्री संग्रह करने में इन दूतावासों ने उदारतापूर्वक सहयोग दिया है। नए आयुधों के विकास के फलस्वरूप रक्षा की धारणा में तेजी से परिवर्तन होने के कारण रक्षा संगठन में भी परिवर्तन होते रहे हैं। उदाहरणार्थ, युनाइटेड किंगडम के प्रधानमंत्री द्वारा कामन सभा में २४ जनवरी १९५७ को दिए गए वक्तव्य और जुलाई १९५८ में जारी किए गए श्वेत पत्र ४७६ के कारण युनाइटेड किंगडम के केन्द्रीय रक्षा संगठन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। इसी प्रकार संयुक्त राज्य रक्षा विभाग पुनर्गठन अधिनियम १९५८ और ३१ दिसम्बर १९५८ के रक्षा निर्देश संख्या ५१००·१ और ५१५८·१ ने संयुक्त राज्य अमरीका की रक्षा व्यवस्थाओं में दूरगामी परिवर्तन कर दिए हैं। इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि १९५५ में तैयार हो गई थी पर उसमें इन और इन जैसे अन्य परिवर्तनों के साथ-साथ परिवर्तन किए गए क्योंकि इन प्रस्तावित संशोधनों के कानून के रूप में सूत्रबद्ध हो जाने अथवा कार्यकारिणी की घोषणाओं द्वारा अन्तिम स्वरूप प्राप्त हो जाने पर ही इन्हें इस ग्रंथ में शामिल किया जा सका। यद्यपि इस विषय पर नवीनतम सामग्री सम्मिलित करने के उद्देश्य से प्रकाशन में विलम्ब करना उचित समझा गया परन्तु बाद में ऐसा प्रतीत होने लगा कि यदि प्रकाशित ग्रंथ में सभी परिवर्तन आवश्यक रूप से शामिल करने का निर्णय कर लिया गया तो यह पाण्डुलिपि कभी प्रकाश में न आ सकेगी। अतः एक तिथि निर्धारित करके ३१ दिसम्बर १९५९ तक सरलता से उपलब्ध सामग्री आगामी पृष्ठों में शामिल कर ली गई। पुस्तक की पाण्डुलिपि ३० जून १९६२ को प्रकाशकों को दी गई थी अतः उस तिथि तक उपलब्ध नवीनतम सामग्री को भी इसमें शामिल करने का यथासंभव प्रयास किया गया है। निस्सन्देह इस ग्रंथ के मुद्रण काल में संसार के विभिन्न राज्यों की रक्षा संरचनाओं में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं और प्रकाशित हो जाने पर इस ग्रंथ के कुछ भागों से पुरानेपन का आभास हो सकता है। यद्यपि यथासंभव सही सूचना देने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है फिर भी यदि पाठकों को कहीं कोई त्रुटि या असंगति दिखाई पड़े तो मैं उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

रक्षा विषयों में मेरी रुचि का सारा श्रेय उस महान् संस्था—लन्दन स्थित साम्राज्यी रक्षा महाविद्यालय—को है जहाँ मुझे १९५० में प्रशिक्षण प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अतः मैं अपने पूर्व विद्यालय के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

मैं भारतीय नौ सेना के भूतपूर्व प्रधान सेनापति (अक्तूबर १९५१ से मार्च १९५५ तक) और नौ सेनाध्यक्ष (अप्रैल १९५५ से जुलाई १९५५ तक) एडमिरल सर मार्क पिज़ी जी० बी० ई०, सी० बी०, डी० एस० ओ० के प्रति भी आभारी हूँ। मुझे उनसे निरंतर उपयोगी परामर्श और प्रोत्साहन मिलता रहा है और इसके अभाव

मैं मेरे लिए यह ग्रंथ प्रस्तुत करना कठिन होता। एडमिरल सर मार्क पिज़ी के विविध राष्ट्रमण्डलीय अनुभवों से लाभान्वित होना सचमुच सौभाग्य की बात है। वे न केवल आस्ट्रेलिया में प्रतिष्ठित पद पर रहे हैं वरन् हमारे देश में भी और बाद में इंग्लैण्ड में भी ऐसे ही उच्च पदों पर कार्य कर चुके हैं।

जहाजी बेड़े के एडमिरल बर्मा के अर्ल माउन्टबैटन का भी मैं ऋणी हूँ। उन्होंने उदारतापूर्वक इस ग्रंथ का प्राक्कथन लिखने की स्वीकृति प्रदान की। यह प्राक्कथन मेरे लिए अत्यन्त मूल्यवान है।

पुनः इस ग्रंथ के प्रकाशन के लिए मैं उन अनेक देशों के दिल्ली स्थित दूता-वासों का भी आभारी हूँ जिनके रक्षा संगठनों का इस ग्रंथ में वर्णन किया गया है। उनके उदार सहयोग के अभाव में इस विषय पर उपयुक्त सामग्री संकलित करना कठिन होता और उनकी अनुमति के बिना इस प्रकार के ग्रंथ के प्रकाशन का विचार भी नहीं किया जा सकता था।

श्री एस० राजाराव, बी० कॉम०, और श्री चमनलाल कालिया ने कार्यालय संचालन में सदैव उत्साह एवं कुशलतापूर्वक कार्य किया है, अतः मैं उनके इस सहयोग के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

नई दिल्ली स्थित विश्वमामलों की भारतीय परिषद् (जिसके तत्वावधान में यह ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है) से प्राप्त प्रोत्साहन के लिए भी मैं आभार प्रकट करता हूँ।

महारानी के लेखन सामग्री कार्यालय के निदेशक ने मुझे कमान पत्रों से उद्धरण देने तथा एक कमान पत्र का पूरा पाठ उद्धृत करने की अनुमति प्रदान की एतदर्थ मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

लेखक भारत सरकार की सेवा में है और उसे इस बात का अत्यंत गर्व है अतः इस बात पर बल देना भी आवश्यक है कि इस ग्रंथ में व्यक्त किए गए विचार किसी भी दशा में भारत सरकार का दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं करते, वे लेखक के निजी विचार हैं। इन पृष्ठों में प्रकट किए गए सभी विचारों के लिए मैं पूर्ण रूप से उत्तर-दायी हूँ। भारतीय परिषद् भी राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के किसी पक्ष पर *अपना मत प्रकट नहीं करती अतः मैं पुनः इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि* इस ग्रंथ में प्रकट किए गए सभी निष्कर्ष लेखक के अपने हैं और उनका विश्व मामलों की भारतीय परिषद् अथवा भारत सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं है।

नई दिल्ली
१८ मार्च १९६३.

नगेन्द्र सिंह

१

सरकार के कार्य के रूप में 'रक्षा'

विषय—परिभाषा

क्लेमेन्सो की यह सूक्ति कि "युद्ध इतना गम्भीर विषय है कि इसे केवल सैनिकों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता" सरकार के रक्षा कार्य के कुशल संचालन में नागरिक तत्त्व की महत्ता को भली-भाँति प्रतिपादित करती है। सशस्त्र सेनाओं के द्वारा ही युद्ध किए जाते हैं और वे ही उनमें विजय प्राप्त करती हैं, राज्य की प्रादेशिक अखण्डता भी उन्हीं की शक्ति पर निर्भर रहती है, परन्तु कार्यपालिका का सर्वाधिक प्रबल अस्त्र होने पर भी उनके विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि वे राजनीतिक संरचना का आवश्यक अंगमात्र ही है। यह सत्य है कि सैनिक तानाशाही वाले सर्वाधिकारवादी राज्य में शासनतंत्र के नागरिक तत्त्वों पर सैनिक तत्त्वों की पूर्ण प्रभुता बनी रही है[1] फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से क्लेमेन्सो की सूक्ति में सत्य की पर्याप्त मात्रा है क्योंकि युद्ध-स्थल पर सैनिक तानाशाही द्वारा संविधान के उचित सन्तुलन को भंग करने के बहुधा विनाशकारी परिणाम हुए हैं। अतः संक्षेप में कह सकते हैं कि राज्य के राजनीतिक संगठन के अध्ययन में चाहे वह लोकतंत्रात्मक (democratic) हो अथवा सर्वाधिकारवादी (tatalitarian) नागरिक और सैनिक दो भिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करना होता है।

लोकतंत्र में नागरिक तत्त्व का सैनिक तत्त्व पर नियंत्रण होता है परन्तु सर्वाधिकारवादी सैनिक तानाशाही में नागरिक तत्त्व सैनिक तत्त्व के अधीन होते हैं। लोकतंत्र में सैनिक क्षेत्र यद्यपि राज्य के कार्यपालिका संगठन के अन्तर्गत आता है

---

१ रिटर द्वारा अपनी पुस्तक Staats Kumst and Kriegshandwerk, Vol. 2 में दी गई 'सैनिकवाद' की परिभाषा देखिए।

परन्तु राजनीतिक सिद्धान्त और व्यवहार में यह तत्व इतना महत्वपूर्ण होता है कि यह अपने-आपमें एक अलग क्षेत्र बन जाता है और इतिहास में राज्य के नागरिक[२] अथवा राजनीतिक अंगों द्वारा इसका उचित एवं कुशल नियंत्रण सदा एक समस्या बना रहा है। सम्राट क्लाडियस के काल में सन् ६६ ई० में जब प्रिटोरियन गार्ड (Praetorian Guard) ने रोम का राज्य सिंहासन सबसे ऊंची बोली लगाने वाले को नीलाम करने का अधिकार ग्रहण किया अथवा इससे भी पूर्व १८४ ई० पू० जब शक्तिशाली मौर्य साम्राज्य के सेनापति पुष्यमित्र ने सम्राट बृहद्रथ को मारकर सिंहासन पर अधिकार कर लिया तब से राजनीतिक सिद्धान्तवेत्ता और साम्राज्यनिर्माता इस जटिल समस्या का समाधान खोजने का प्रयत्न करते रहे हैं। ऑटोमन साम्राज्य के जानिसारियों (Janissaries of the Ottoman Empire) हिटलर और मुसोलिनी को छोड़ भी दें, तो भी हाल ही में संसार में न केवल लातिन अमरीका में वरन् मिस्र, मध्य पूर्व, श्याम तथा पाकिस्तान, लाओस और बर्मा में कई सैनिक क्रान्तियां हुई हैं। अतः रक्षा की केन्द्रीय समस्या मूलतः एक ओर तो राज्य के नागरिक अध्यक्ष, भले ही वह संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति हो अथवा संसदीय लोकतंत्र का प्रधानमंत्री, और दूसरी ओर पेशेवर सैनिकों, जिनमें उच्च सैनिक अधिकारी भी सम्मिलित हैं, के आपसी सम्बन्धों पर आधारित है। यहां हम केवल नागरिक और सैनिक क्षेत्रों के सम्बन्धों तथा राज्य के उन अंगों का, जिन पर रक्षा कार्य के कुशल संचालन के लिए ये सम्बन्ध आधारित हैं, अध्ययन करेंगे। इस सम्बन्ध निर्धारण में सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और राजनीतिक संरचना में इसकी स्थिति और कार्य राज्य की प्रकृति और स्वभाव पर इतना प्रभाव डालते हैं कि वे ही इसे सच्चे अर्थों में लोकतंत्र अथवा तानाशाही का रूप देते हैं, अतः इस समिति विषयक लेख (Monograph) के रूप में ही इस अध्ययन का आरम्भ हुआ। अत: सैनिक संगठन के उस भाग को जो इस सम्बन्ध को प्रभावित नहीं करते तथा राज्य के उन राजनीतिक अंगों को भी, जो सैनिक प्रणाली के सम्पर्क में नहीं आते इस अध्ययन क्षेत्र के बाहर रखा गया है। इस विषय में अध्ययन का विस्तृत क्षेत्र जिसका सम्बन्ध राजनीतिक और सैनिक क्षेत्रों के बीच सम्बन्ध से है पृष्ठ ५ पर दिए गए रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

इस रेखाचित्र में वृत 'प' और वृत 'म' क्रमशः राजनीतिक और सैनिक संगठनों के अलग-अलग क्षेत्र प्रकट करते हैं। 'ड' पर प्रदर्शित संवैधानिक सम्पर्क जो सैनिक संगठन को निर्दिष्ट करने तथा इसे लोकेच्छा के अधीन रखने के प्रभावी यंत्र

२ इस पुस्तक में 'नागरिक' शब्द के प्रयोग की व्याख्या करने की आवश्यकता है। इसका प्रयोग 'नौकरशाही' अथवा नागरिक सेवाओं के लिए नहीं हुआ है। 'सैनिक' क्षेत्र के संदर्भ में नागरिक 'राजनीतिक' का ही समानार्थक है।

य
राज्याध्यक्ष के रूप मे राजा या राष्ट्रपति
इ
म
सर्वोच्च प्रधान सेनापति के रूप मे राजा या राष्ट्रपति
प्रधान मंत्री या अध्यक्ष
विधान मण्डल
उच्च सदन
निम्न सदन
नागरिक निकाय
केबिनेट अथवा मंत्री परिषद्
प्र म
कै.र.स
रक्षामंत्री
रक्षा मंत्रालय
सेनाध्यक्ष
मुख्यालय
स्थल सेना
नौ सेना
वायु सेना

व्याख्या

१. कै० र० स०   भारत और युनाइटेड किंगडम में इसे कैबिनेट रक्षा समिति कहते हैं, परन्तु अन्य देशों में इसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। फ्रांस में इसे 'राष्ट्रीय रक्षा समिति', आस्ट्रेलिया में 'रक्षा परिषद्' और संयुक्त राज्य अमरीका में 'राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद्' कहा जाता है।

२. रक्षा मंत्री   लगभग सभी देशों में इसी पद नाम का प्रयोग किया जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में 'रक्षा सचिव' इसका समानार्थी है।

३. सेनाध्यक्ष   यह सेनाध्यक्षों की समिति का प्रतिनिधित्व करता है।

४. प्रधान मंत्री   फ्रांस और सोवियत रूस आदि में प्रधान मंत्री को मंत्री परिषद् का अध्यक्ष भी कहते हैं।

के रूप मे कार्य करता है और लोकतन्त्र मे उच्चतर रक्षातन्त्र का प्रतिनिधित्व करता है 'म' का न होकर आवश्यक रूप से 'प' का ही एक भाग है। यूनाइटेड किंगडम (United Kingdom) मे सेनाध्यक्षों की समिति (Chief of Staff Committee) और इससे सम्बन्धित सचिवालय रक्षा-मन्त्रालय का ही भाग होते हैं। लिखित अथवा अलिखित सविधान के मौलिक नियम वाले सभी लोकतन्त्रात्मक राज्यो मे सशस्त्र सेनाओं पर नियन्त्रण रखने के लिए गठित रक्षातन्त्र का अध्यक्ष राजनीतिक व्यक्ति होता है। वह चाहे सयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति हो अथवा ससदीय लोकतन्त्र का प्रधानमंत्री और रक्षामन्त्री, किसी न किसी रूप मे निर्वाचक वर्ग (Electorate) के प्रति उत्तरदायी होता है। उसकी सहायता के लिए नागरिक कर्मचारी होते हैं और वह सैनिक सगठन की उच्चतम कमान से निरतर परामर्श करता है।

इस प्रकार राजनीतिक और सैनिक क्षेत्र 'ड' पर मिलते हैं और वही इस अध्ययन का विस्तृत क्षेत्र है। चूंकि राज्य के सवैधानिक अगो यथा प्रधानमत्री, मन्त्रि-मण्डल और मन्त्रिमडलीय रक्षा समिति एव सैनिक गठन, उनकी व्यूह रचना और रणकौशल पर प्रकाशित ग्रंथ उपलब्ध है अत: इस ग्रंथ का उद्देश्य उस सस्था पर प्रकाश डालना है जो सैनिक तोरण की केन्द्रस्थली होने के साथ ही शक्ति सम्पन्न सशस्त्र सेनाओं को निर्वाचक वर्ग की इच्छा से बाधने वाली सवैधानिक शृखला के रूप मे ससदीय सरकार को शान्ति और युद्धकाल मे प्रभावशाली ढग से कार्य करने मे सहायता देती है।

सर्वाधिकारवादी (Totalitarian) अथवा सैनिक राज्य सघटक अग 'म' क्षेत्र के (Military State) मे सामान्यत 'प' क्षेत्र के गणवेशधारी व्यक्तियों के नियन्त्रण मे होते हैं। अत. जब उच्चतर राजनीतिक कमान सर्वोच्च सैनिक अधिकारियो के हाथ में आ जाती है तो 'प' और 'ड' दोनो ही 'म' के आवश्यक अग बन जाते हैं। सर्वाधिकारवादी राज्य मे होने वाला यह परिवर्तन इस अध्ययन का उतना ही अग है जितना लोकतन्त्र मे इस यत्र का सामान्य कार्यकलाप। दूसरे भाग मे उत्तरोक्त पर विचार-विमर्श किया गया है और तीसरे भाग में पूर्वोक्त पर। उत्तरी अतलातिक सधि संगठन (NATO) जैसे सामूहिक रक्षा संगठनो मे भी सेनाध्यक्षो की समिति (Chief of Staff Committee) का महत्व द्रष्टव्य है और इसका परीक्षण पाचवे भाग मे किया गया है।

इस प्रकार सक्षेप मे विषय का क्षेत्र और विस्तार रेखाचित्र मे चिह्नित 'ड' भाग तक सीमित है और दोनो क्षेत्रो 'प' और 'म' को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी सेनाध्यक्षो की समिति *(Chiefs of Staff Committee) एक बहुत रुचिकर विषय* है और इस पर विस्तार पूर्वक विचार-विमर्श किया गया है क्योकि जब यह 'प' का भाग होती है, तब ऐसे राज्य को जन्म देती है जो उस राज्य से सर्वथा भिन्न होता है जिसमें 'ड' 'म' का भाग होता है। उत्तरोक्त परिस्थिति मे सैनिक तानाशाही का

जन्म होता है। इस प्रकार सशस्त्र सेनाओं को किस सीमा तक लोकेन्द्रा के अधीन लाया जा सकता है अथवा लोकेन्द्रा को सशस्त्र सेनाओं के लोह अंकुश के नीचे रहना पड़ता है, सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) के उचित एवं प्रभावी कार्य तथा 'ड' के तंत्र पर निर्भर करता है। 'अधीन' शब्द का प्रयोग किसी अपमानजनक अर्थ में नहीं हुआ है। निश्चयपूर्वक तथ्य तो यह है कि राज्य के कार्य के लिए राजनीतिक और सैनिक क्षेत्र उसी प्रकार आवश्यक हैं जिस प्रकार चलने के लिए दाया और वायां पैर। अतः एक का दूसरे पर नियन्त्रण अथवा उनकी अधीनता की अपेक्षा आवश्यक रूप से यह प्रश्न दोनों क्षेत्रों के मध्य सहयोग एवं सामंजस्य का प्रश्न है। फिर भी किसी राज्य अथवा संगठन में दो अंग एक ही समय सर्वोच्च अथवा प्रभुता-सम्पन्न नहीं हो सकते। शक्ति-पार्थक्य के सिद्धान्त और नियंत्रण एवं सन्तुलन के बावजूद राजनीतिक शक्ति के त्रिकोण का केवल एक ही शीर्ष बिन्दु हो सकता है। 'प' अथवा 'म' में से एक ही क्षेत्र सर्वोच्च हो सकता है और राज्य की प्रकृति और स्वभाव निर्धारण में यही विशिष्ट महत्त्व की बात है।

इस संस्था के उदय और विकास का ऐतिहासिक अध्ययन करने से पूर्व राजनीतिक सिद्धान्त और संगठन में रक्षा कार्य की सामान्य महत्ता का विवेचन करना आवश्यक है क्योंकि राज्य के रक्षा उत्तरदायित्व के कुशल संचालन की आवश्यकता ही सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) के अस्तित्व का कारण है।

'रक्षा' राज्य के कार्य के रूप में

रक्षा सरकार का सम्मानित समय राजनीतिक राज्य (Political State) के उदय से ही प्रभुता का आवश्यक लक्षण रहा है। इसके कार्य सम्बन्धी मापदण्ड देश और काल के अनुसार बदलते रहे हैं पर वास्तविक तथ्य तो यह है लिखित इतिहास के प्रारम्भिक काल से ही प्रत्येक राज्य ने अपनी रक्षा हेतु सशस्त्र सेनाएं रखी हैं। अहिंसा के बौद्ध दर्शन पर आधारित अशोक के साम्राज्य (ई० पू० २३२) का प्रारम्भ भी कुशल सेना के साथ ही हुआ था। पुरोहितों के धर्मराज्य तिब्बत में भी १९५९ से पूर्व एक सेना और रक्षा के लिए उत्तरदायी मन्त्री होता था। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय समाज में प्रवेश पाने वाले नवराष्ट्रों के पास भी अपनी-अपनी सशस्त्र सेनाएं और रक्षा मन्त्रालय हैं। संसार की सबसे छोटी राजनीतिक इकाई इसरायल (Israel) के पास भी आधुनिक रक्षातंत्र का लघु संस्करण-एक रक्षा मन्त्री, सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) और एक सशस्त्र सेना है। १९६०-१९६१ में लेवन (Lavon) के मामले में श्री बेन-गुरियों (Mr. Ben. Gurion) और उनके मन्त्रि-मण्डल के बीच मतभेद के समय नागरिक सैनिक विवाद की सभी समस्याएं उपस्थित हो गई थीं। अन्तर्राष्ट्रीय कानून में स्थायी रूप से तटस्थ माने जाने वाले देश स्विटजरलैण्ड के पास भी पर्वतीय सुरक्षा

का विस्तृत पद्धति है जिसके सचालन के लिए एक छोटी नियमित सेना और पूर्णत प्रशिक्षित एक बड़ी नागरिक सेना (Militia) है।

अनेक बातो मे एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होने पर भी सभी राजनीतिक सगठनों का सामान्य लक्षण सशस्त्र सेनाओ की आवश्यकता है। जहा तक जन-जातियों, नगरो, असभ्य समुदायो, सामती समाजो और आधुनिक राज्यो न अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का दावा किया है उन्होंने स्थायी पेशेवर सेना, वेतनभोगी सेना (mercenary force) अथवा सभी नागरिको की अनिवार्य सैनिक भर्ती द्वारा अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध किया है।

राजनीतिक सिद्धान्त मे रक्षा का महत्त्व

पूर्व के प्राचीन धर्मशास्त्रों और यूनान के महान विचारको के अनुसार युद्ध करके भू-प्रदेश की रक्षा करने का तन्त्र राज्य का अभिन्न अग होता है। जिससे राज्य का अस्तित्व बना रहे और वह अपना कार्य सम्पन्न कर सके। प्रशासनिक कार्य की सेना पर निर्भरता सिद्ध करने के लिए कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे भी (महाभारत का) उद्धरण दिया है क्योंकि "सेना के अभाव मे राजकोष निश्चय ही समाप्त हो जायगा...... .... सेना की सहायता से धन वसूल किया जा सकता है ....सेना यदि तत्पर रहे तो वह मन्त्री के कार्य पूरे करवा सकती है।[3]

प्लेटो (Plato) ने अपने ग्रंथ 'रिपब्लिक' (Republic) मे सरक्षक श्रेणी के द्वारा राज्य की रक्षा करने[4] की आवश्यकता को पूर्णतः स्वीकार किया है। प्लेटो सैनिक को राज्य का अभिन्न और आवश्यक अग मानता था और जेनोफोन (Xenophon) के इस विचार से सहमत हो सकता था कि मनुष्यो के बीच सदा ही युद्ध होता रहता है। योद्धा श्रेणी को राज्य का आवश्यक अग स्वीकार करके अरस्तू (Aristotle) ने अपने ग्रंथ 'पोलिटिक्स' (Politics) मे भी इन्हीं विचारो पर बल दिया है।[5] अरस्तू के अनुसार खाद्य-पदार्थ उत्पादक वर्ग, यान्त्रिक वर्ग, व्यापारिक वर्ग, कृषि-दासो, योद्धा वर्ग, न्यायाधीशो, अधिकारी वर्ग और विचारक मण्डल द्वारा ही राज्य का निर्माण होता है।

'योद्धा वर्ग' का विश्लेषण करते हुए अरस्तू ने स्थायी राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्त्व के विचार प्रकट किए हैं। उसका कथन है यदि देश को प्रत्येक आक्रमणकारी का दास बनना स्वीकार नहीं है तो वे (योद्धा वर्ग) भी अन्य वर्गों की भाँति ही आवश्यक है क्योंकि राज्य नामधारी कोई भी सस्था-कैसे दास मनोवृत्ति की हो सकती है? राज्य स्वतन्त्र और आत्म-निर्भर होता है और दास 'स्वतन्त्र' का विपरीतार्थक है। प्लेटो की आलोचना करते हुए अरस्तू ने यहा तक कहा है कि

---

३ अर्थशास्त्र VII (1)

४ देखो, प्लेटो, रिपब्लिक, II ३६६

५ अरस्तू, पोलिटिक्स (B. Jowett द्वारा अनूदित) IV. ४

जिस प्रकार "शरीर की अपेक्षा आत्मा को अधिक सत्यतापूर्वक प्राणी का अंग माना जाता है, उसी प्रकार जीवन की आवश्यकताएं पूरी करने वाले अंगों की अपेक्षा राजनीतिक व्यवहार के विशेष कार्य करने वाले राज्य के उच्चतर अवयव अर्थात् योद्धा वर्ग, न्यायाधीश और विचारक वर्ग राज्य के लिए अधिकावश्यक हैं।"[6]

प्राचीन राजनीतिक विचारकों ने ही नहीं वरन् काल्पनिक राष्ट्रमण्डलों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संविधानों के निर्माताओं ने भी अपनी आदर्शवादी अवकल्पनाओं (Conceptions) में सशस्त्र सेनाओं को उपयुक्त स्थान देना आवश्यक समझा है। अपने यूटोपिया (Utopia) में मोर (More) ने युद्ध को गणतन्त्र के जीवन का सामान्य अंग माना है और इसीलिए वह राज्य की अपनी संकल्पना में सशस्त्र सेनाओं को विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। इसी प्रकार बेकन (Bacon) भी अपने न्यू अटलांटिस (New Atlantis) में सम्मानपूर्वक "बारूद और शस्त्रों के आविष्कारक भिक्षु" की मूर्ति स्थापित करने वाले एक सैनिक राज्य का चित्र प्रस्तुत करता है। बेकन युद्ध को राष्ट्रीय गौरव का आवश्यक अंग मानता था और इसी कारण राज्य की अपनी संकल्पना में उसने राज्य की सशस्त्र सेनाओं को प्रमुख स्थान प्रदान किया। इतालवी राजनीतिक विचारकों में प्रमुख मैकियावेली (Machiavelli) ने घोषणा की 'युद्ध, इसके नियम और अनुशासन के अतिरिक्त किसी राजकुमार का कोई अन्य उद्देश्य अथवा विचार नहीं होना चाहिए, और न ही अपने अध्ययन के लिए उसे इसके अतिरिक्त कोई अन्य विषय चुनना चाहिए।' द प्रिंस (The Prince) पुस्तक में वह स्पष्ट करता है कि "नए, पुराने अथवा मिश्रित सभी राज्यों का मुख्य आधार अच्छे नियम और अच्छे शस्त्र हैं। और क्योंकि उत्तरोक्त के बिना पूर्वोक्त को प्राप्त नहीं किया जा सकता, और जहां उत्तरोक्त होते हैं वहां पूर्वोक्त स्वयं ही आ जाते हैं। मैं नियमों की बात छोड़कर केवल शस्त्रों की विवेचना करूंगा।"[7] हो सकता है कि मैकियावेली ने सशस्त्र सेनाओं, उनके स्थान, स्थिति और कार्यों को अनावश्यक महत्त्व दे दिया हो परन्तु उसके युग की राजनीतिक स्थिति और उसके इस विचार को-संसार में सभी सशस्त्र भविष्य वक्ता विजयी होते हैं और शस्त्रहीन भविष्य-वक्ता नष्ट हो जाते हैं ध्यान में रखते हुए उसका राज्य के भीतर और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शक्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन करना उचित ही था। हॉब्स (Hobbes) ने भी अपनी लेवियाथन (Leviathan) में वस्तु जगत् की अपनी संकल्पना में यह कहकर कि 'तलवार के बिना प्रसंविदाएं (Covenants) कोरे शब्दमात्र हैं और मनुष्य को बांधने में अशक्त हैं,' शक्ति की आवश्यकता पर बल

६ अरस्तू पोलिटिक्स (B. Jowett द्वारा अनूदित IV ४, पृ० १२३-१२४।
७ मैकियावेली The Prince (N. H. Thompson द्वारा अनूदित) अ० १२ पृ० ८४।

दिया है।[8] इस प्रकार हॉब्स (Hobbes) के अनुसार कोई भी सामाजिक प्रसंविदा नहीं हो सकती जबतक कि उससे भिन्न ऐसी किसी शक्ति की, जिसके विरुद्ध प्रयोग करने की अनुमति प्रसंविदा न दे, स्थापना न की जाय। अतः आगे चलकर हॉब्स कहता है "एक ऐसी सामान्य शक्ति (Common Power) के निर्माण का जो विदेशी आक्रमण और एक-दूसरे के प्रति आघात से रक्षा करते हुए उन्हें कुछ इस प्रकार एकत्र कर सके कि वे अपने परिश्रम और धरती के फल से अपना पोषण कर सकें और सन्तोषपूर्वक रह सकें, केवल एक ही उपाय है कि वे अपनी सारी शक्ति और बल एक व्यक्ति या व्यक्तियों की समिति (Assembly of Men) को सौंप दें जो आवाजों की बहुलता के माध्यम से उन सब की इच्छाओं को एक ही इच्छा में परिणत कर सके............। ऐसा होने पर .... समुदाय के एक व्यक्ति में गठित हो जाने को राष्ट्रमण्डल (Common Wealth) अथवा लैटिन में नगर (Civitas) कहते हैं।[9] इस प्रकार प्लेटो से लेकर आज तक राजनीतिक सिद्धान्त ने सशस्त्र सेनाओं को निस्सन्देह राज्यतन्त्र का आवश्यक अंग स्वीकार किया है।

राजनीतिक संगठन में रक्षा का महत्त्व

स्वतन्त्र इकाई के रूप में राज्य का अस्तित्व अपनी सीमा के भीतर व्यवस्था बनाए रखने और बाह्य आक्रमण से अपने नागरिकों की रक्षा करने की क्षमता पर निर्भर करता है। सिजविक (Sidgvick) के अनुसार जहाँ तक उनका विदेशियों से सम्बन्ध है, कार्यपालिका के रूप में सरकार के कार्यों में समुदाय और इसके सदस्यों के हितों की रक्षा के साधन और विशेष रूप से राज्य की सैनिक शक्तियों का संगठन और निर्देशन सम्मिलित है।[10] अतः सर जान मैरिअट (Sir John Marriott) ने ठीक ही कहा है कि बाह्य और आंतरिक शत्रुओं से राज्य की रक्षा करना, कानून और व्यवस्था बनाए रखना एवं विधानमण्डल राज्य के लिए और भी जिन कार्यों की मांग करे उनका संचालन करना कार्यपालिका का उत्तरदायित्व है।[11] "गणतन्त्रात्मक सरकार की भावना उत्साही कार्यपालिका से मेल नहीं खाती, इस 'भद्दी भूल' को अनावृत करते हुए अलेग्जैंडर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) ने 'कार्य पालिका में शक्ति' की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है और इसे बाह्य आक्रमणों से समुदाय की [12]सुरक्षा के लिए आवश्यक बताया है। अतः संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के चौथे अनुच्छेद के चौथे अनुभाग में इस बात का प्रावधान है कि संघीय सरकार प्रत्येक राज्य की (संघ की सदस्य इकाइयों की) बाह्य आक्रमण से तथा विधानमंडल अथवा कार्यपालिका की याचना पर आन्तरिक

---

८. Hobbes, Leviathan (Everyman edition), Ch 17 p 87।

९. वही पृ० ८९।

१०. H Sidgvick, 'Elements of Politics,' p 385.

११. देखिए मैरियट, सरजॉन ......The Mechanism of the Modern State

१२ देखिए......Federalist, LXX

प्रशान्ति से उनकी रक्षा करेगी।" सघीय सरकार के इस महत्त्वपूर्ण कार्य को राष्ट्रपति देश की सशस्त्र सेनाओं की सहायता से सम्पन्न करता है। इस प्रकार राष्ट्रपति के एक कार्यकारी आदेश के अनुसार सशस्त्र सेनाओं का कार्य संयुक्त राज्य (अमेरिका) की सभी बाह्य एव आतरिक शत्रुओं से रक्षा करना 'ही नही है वरन्' 'सयुक्त राज्य की आतरिक सुरक्षा' को भी सुनिश्चित करना है। राज्य के कार्य के इस पहलू पर इससे अधिक बल नहीं दिया जा सकता।

कई लिखित सविधानों मे तो इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है, उदाहरणार्थ भारत के सविधान के अनुभाग ३५५ के अनुसार वाह्य आक्रमण और आतरिक अव्यवस्था से प्रत्येक राज्य की रक्षा करना संघ का कर्तव्य' माना गया है। संविधान के अनुच्छेद ५३ (२) के अनुसार राष्ट्रपति, जो अनुच्छेद ७४ के अनुसार मन्त्री परिषद् के परामर्श द्वारा निर्देशित होता है, इस आवश्यक कार्य को सम्पन्न करता है।

यह सिद्ध करने के लिए कि 'रक्षा कार्य' किसी स्वतन्त्र प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य का अभिन्न अग होता है। जनरल मैक आर्थर (General Mac Arthur) की जापान सम्बन्धी नीति वक्तव्य का उल्लेख किया जा सकता है। अभिग्रहण द्वारा आरोपित (Occupation–dictated) जापानी संविधान, जिसके अनुसार १९५१ में सशस्त्र सेनाओं की स्थापना पर रोक लगादी थी।[13] जनरल मैक आर्थर (General Mac Arthur) की 'आत्म–संरक्षण' (Self Preservation) की संकल्पना से मेल नहीं खाता था। जापान के नाम अपने नव वर्ष (१९५१) सन्देश में जनरल मैक आर्थर (General Mac Arthur) ने कहा था "यदि अतर्राष्ट्रीय अव्यवस्था शान्ति के लिए खतरा बनी रहती है और मनुष्य के जीवन पर आधिपत्य जमाए रखती है तो आत्म सरक्षण के नियमानुसार तुम्हें (जापानियों को) सहज रूप से शस्त्र ग्रहण करने चाहिएं।" इसका तात्पर्य यह था कि इस प्रकार जनरल मैक आर्थर (General Mac Arthur) ने जापान के संविधान में समाहित 'युद्ध का सदा के लिए परित्याग, वाले विचार को चुनौती दी। ध्यान देने की बात है कि इस सविधान को उसने स्वयं स्वीकार किया था और छह वर्ष पूर्व उसने इसके कुछ अंश का प्रारूप स्वयं तैयार किया था। इस प्रकार जब किसी राजनैतिक इकाई को राज्य के स्तर तक उन्नत किया जाय तो उसे अपनी रक्षा हेतु आवश्यक रूप से 'सुरक्षा सेनाए' रखनी चाहिए। इस प्रकार रक्षा का अधिकार न केवल सरकार का एक कार्य ही है वरन् प्रभुसत्ता का एक आवश्यक गुण भी है।[14]

---

१३. देखिए एल० सी० ग्रीन 'Law and Administration in Present Day Japan," I Current Legal Problems, 1948, p. 188, at page 203. Chamber's Encyclopaedia में 'Japanese Law' पर लेख भी देखिए।

१४. देखिए Wheeler Bannett की Documents of International Affairs, 1928, पृ० 1–14 पर केलाग ब्रायड समझौते (Kellagg Briand Pact)

प्रभुसत्ता के लक्षण के रूप में रक्षा

रक्षा करने की क्षमता राज्य के अस्तित्व से सम्बन्धित है अत: यह इसकी स्वतन्त्रता के लिए अनिवार्य शर्त है। ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है। राज्य स्तर तक उठने वाले अथवा किसी देश से अलग होकर भारत और इण्डोनेशिया की भांति स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाले प्रत्येक देश ने अपनी सीमाओं की रक्षा के अधिकार को अपनी प्रभुसत्ता का आवश्यक अंग माना है। १९४२ ई० में भारत ने प्रसिद्ध क्रिप्स–प्रस्ताव (Cripps Offer) इसीलिए ठुकरा दिये थे *क्योंकि इनके अनुसार 'रक्षा' वायसराय और गवर्नर जनरल के लिए सुरक्षित* विषय बना रहता और इस सम्बन्ध में भारतीयों को शक्ति हस्तांतरित नहीं की जानी थी। सन् १९४२ ई० में सर स्टैफर्ड क्रिप्स (Sir Stafford Cripps) की भारत यात्रा के समय भारतीय राजनीतिज्ञों द्वारा रक्षा को दिए जाने वाले महत्त्व का वर्णन डा० पट्टाभि सीतारमैया ने अपने ग्रंथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास में किया है। १५ वे कहते हैं 'यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स की दिल्ली यात्रा के समय रक्षा का विषय मूल प्रश्न और जनता के सारे आकर्षण का केन्द्र *बिन्दु बना रहा।" जनता द्वारा अध्ययन किये जाने के लिए इस समस्या के और भी* कई पहलू थे क्योंकि अभी तक ऐतद् विषयक साहित्य "उनके लिए बन्द पुस्तक के समान था।" आगे चलकर डा० पट्टाभि कहते हैं देश की पार्टियों द्वारा अनुमोदन के लिए भेजे गए ब्रिटिश मन्त्री-मण्डल के प्रस्तावों में 'रक्षा' का विषय सम्मिलित नहीं था। केवल इतना ही नहीं, दिल्ली में होने वाली पहली ही प्रेस कान्फ्रेंस में *सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने कह दिया कि यदि सभी पार्टियाँ मिलकर भी रक्षा के लिए* संयुक्त माँग पेश करें तो भी यह विषय हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। यह बड़ा ही कष्टकर था। कांग्रेस कार्यकारिणी द्वारा कैबिनेट प्रस्तावों (Cabinet's proposals) को अस्वीकार कर देने में इसने बड़ा योगदान किया। "इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश सरकार (His Majesty's Government) और अवस्था भारत के स्वतन्त्रता प्रेमी राजनीतिज्ञ रक्षा व्यवस्था पर नियन्त्रण को कितना महत्त्व देते थे। रक्षा व्यवस्था पर नियन्त्रण के बिना स्वतन्त्र और प्रभुसत्ता सम्पन्न भारत का जन्म नहीं हो सकता था।

सम्बन्धी धारणा, Tovnble की Survey of International Affairs 1928, पृ० (10 26, 36-47 तथा Browett की Self Defence in International Law, 1958, L C Green का Auned Conflict, Self Defence and war 6 Archiv I eo Volkerrechts 1957, पृ० 387 G Schwarzenberzer की Fundamental Pri ciples of International Law"87 Hague Recueil, 1955 ch 6 Page 327

१५ पं० सीतारमैया : History of the Indian National Congress Vol 2, P. 316.

और इससे स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि रक्षा व्यवस्था पर नियन्त्रण का अधिकार प्रभुसत्ता का आवश्यक लक्षण है। [16]रक्षा का अधिकार देश की सीमा के बाहर स्थित रहने पर ऐसे देश को 'अधीन राज्य'(dependency) या 'सुरक्षित-राज्य' (protectorate) 'अधिगृहित राज्य' (possession) या 'उपनिवेश' (colony) अथवा 'अधिदेशाधीन राज्य' (mandate) की संज्ञा दी जाती है।[17] अब यह तथ्य सुनिश्चित हो गया है कि जब किसी राज्य की 'रक्षा' का उत्तर-दायित्व किसी अन्य राज्य के हाथ में होता है तो उपर्युक्त राज्य प्रभुता सम्पन्न तथा पूर्वोक्त प्रभुतारहित अधराज्य (Vassal) माना जाता है। इस अर्थ में भूतपूर्व भारतीय रियासतें ग्रेट ब्रिटेन की अधराज्य (Vassals) थी; क्योंकि अनुबन्धों और सन्धियों द्वारा उन्होंने 'रक्षा' का अधिकार क्राउन (Crown) को समर्पित कर दिया था और वही उनकी विदेश नीति को नियन्त्रित करता था।

(French Indo China) में बटता हुआ फ्रांसिसी हिन्द चीन अबतक इसमें रक्षा' और राष्ट्रवाद फ्रांस की शक्ति हस्तान्तरण के वायदे से 'विदेश विभाग' पर नियन्त्रण सम्मिलित नहीं कर लिया गया सन्तुष्ट नहीं हुआ था। जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण की समस्या ने सुरक्षा और विदेश नीति के देश की प्रभुता से घनिष्ठ सम्बन्ध होने का एक और महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किया है। जर्मनी का यह दृष्टिकोण कि यदि संघीय गणतन्त्र (Federal Republic) को अस्त्र–सज्जित करना है तो सशस्त्र सेनाओं के युद्ध के उद्देश्य की घोषणा की जाए और इसके लिए उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन (North Atlantic Treaty Organisation) में जर्मनी को बराबर के साझीदार का दर्जा प्रदान किया जाए, निःसंदेह सिद्ध करता है कि रक्षा करने का अधिकार प्रभु सम्पन्नता का मूल आधार और विदेश-नीति की गतिशीलता का उद्गम है।

इस प्रकार 'रक्षा' को राज्य के भीतर और बाहर मुख्य भूमिका निभानी पड़ती है और यह प्रभुता सम्पन्न अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति (International Person) का आवश्यक लक्षण हैं। अतः ओपेनहेम (Oppenheim) ने ठीक ही कहा है कि राज्य द्वारा रखी जाने वाली सशस्त्र सेनाएँ राज्य का अंग है; क्योंकि उनका गठन राज्य की स्वतन्त्रता, प्रभुता और रक्षा के उद्देश्य से किया जाता है। और इस संदर्भ में यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि सशस्त्र सेनाऐं देश में रखी जाती है अथवा विदेश में, क्योंकि विदेशी भूमि पर रहकर भी वे स्वदेश का ही अंग रहती है।'[18]

---

१६. देखिये The Sirgapore (Constitution) Order in Council, 1958, (1958.No 1956) का भाग VIII अनुच्छेद 72 जिसके अनुसार सिंगापुर राज्य के रक्षा और विदेश विभाग ब्रिटेन के अधिकार में है।

१७. परन्तु सिंगापुर को सिंगापुर राज्य (State of Singapore) ही कहा जाता है।

१८. Oppenheim's International Law Vol I, Peace, 7th Edition, P. 738.

रक्षा और विदेश नीति

पूर्ण प्रभुता सम्पन्न राज्य का एक और आवश्यक लक्षण है विदेशी मामलों पर नियंत्रण, परन्तु विदेशी नीति और रक्षा का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि रक्षा क्षमता के अनुरूप ही विदेश-नीति दुर्बल अथवा सशक्त होती है।

वास्तव में रणनीति की कहावत है कि राजनीतिक रूप से जो कुछ भी अभीप्सित है वह रणकौशल (रक्षा) द्वारा सम्भव भी होना चाहिए। विदेश-नीति के आधारभूत रणकौशल से विलग होने के परिणाम बहुधा हानिकारक होते हैं। कोरिया में संयुक्तराष्ट्र संघ की कार्यवाही (United Nations Operations) के समय की घटनाओं से यह और भी स्पष्ट हो जाता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से आक्रमण का निराकरण करना और आक्रमणकारी को दण्ड देना अपेक्षित और आवश्यक था, परन्तु 38वीं समानान्तर रेखा को पार करके जब एक बार चीन की शक्ति इस संघर्ष में प्रविष्ट हो गई तो रणकौशल अथवा सुरक्षा के दृष्टिकोण से यह सम्भव नहीं रहा। यदि रक्षा क्षमता का सही आंकलन कर लिया जाता तो राजनीतिक पग उठाया ही न जाता। रक्षा और विदेश-नीति कुछ इस प्रकार अन्योन्याश्रित है कि उनमें से किसी एक को प्रथम या द्वितीय कहना कठिन है।

रणकौशल और रक्षा की आवश्यकताओं के अनुरूप विदेशनीति को मोड़ना संभव है, साथ ही विदेश-नीति के दृष्टिकोण से किसी राज्य के रक्षा तंत्र का विस्तार अथवा संकोचन करना भी संभव है। हाल ही के उस अमरीकी इतिहास से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है। जिसमें पृथकतावाद और मनरो सिद्धान्त (Manroe Doctorine) से मार्शल सहायता (Marshal Aid), उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन (North Atlantic Treaty Organization), दक्षिण पूर्व एशिया सुरक्षा संगठन (South East Asia Defence Organization) तथा कोरिया की रक्षा की दिशा में परिवर्तन हुआ है। पृथक्तावाद के सिद्धान्त से अन्तर महाद्वीपीय विदेश नीति की ओर यह एक बड़ा कदम है, उचित हो अथवा अनुचित इस आधारभूत रक्षा की संकल्पनाओं और रणकौशल सम्बन्धी आकलन ने प्रोत्साहित किया है।[19]

इस प्रकार रक्षा का विचार राज्य के अस्तित्व, इसकी प्रभुता और इसकी स्वतन्त्रता के मूल में है, तथा इसे आन्तरिक शान्ति, कानून और व्यवस्था बनाए रखने में सहायता देता है, परन्तु चूंकि सशस्त्र सेनाएं सरकार की सत्ता के लिए आवश्यक अधिकार-आधार प्रस्तुत करती है, अतः उन अनेक सैनिक और राजनीतिक अंगों का जो राजनीतिक निकाय को सरकार के इस आवश्यक कार्य (रक्षा) के सम्पन्न करने में सहायता देते हैं, परीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। चूंकि सैनिक पदक्रम के शीर्ष पर स्थित सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) कार्य-

---

19. देखिये U. S. Dept. of the Army, Office of the Chief of Military History का *Command decisions*, 1960.

पालिका का मुख्य साधन बनती है, अतः भाग दो और भाग तीन के विचार विमर्श के लिए संक्षिप्त भूमिका के रूप में हम इसकी संवैधानिक स्थिति का परीक्षण करते हैं।

संवैधानिक स्थिति

सैनिक कार्यवाही के किसी भी क्षेत्र में तीनों सेनाओं की कमान और संरचना (Commands and Formations) को निदेशक हिदायतें देने के लिए उत्तरदायी सेनाध्यक्षों की समिति (Chief of Staff Committee) योजना बनाने और समन्वय स्थापित करने वाला सर्वोच्च निकाय है और इसके तीन सदस्य होते हैं जो थल, जल और वायु सेना से उच्चतम स्तर के अधिकारी होते हैं। समिति का आधारभूत गठन साधारणतः इसी प्रकार होता है। इसके सदस्य तीनों सेनाओं के योग्यतम अधिकारियों में से जिन्हें स्टाफ (Staff) और कमान (Command) दोनों ही कार्यों का विविध प्रकार का अनुभव होता है, अपने विशिष्ट सेवा कार्य के आधार पर तत्कालीन सरकार के दक्ष व्यावसायिक सलाहकार के रूप में चुने जाते हैं। इस संक्षिप्त प्रस्तावना में समिति के गठन के सिद्धान्तों अथवा विभिन्न देशों में पाए जाने वाले इसके विविध स्वरूपों पर विचार नहीं किया जा सकता। विभिन्न स्टाफ प्रणालियों यथा प्रूसी अथवा हिटलरी प्रारूप (Prussian or Hitler Model) अथवा ब्रितानी प्रारूप (British Model) के स्वभाव और कार्यों के परीक्षण करने का भी यह स्थान नहीं है। आगे चलकर भाग दो और भाग तीन में इन पर विस्तारपूर्वक विचार किया जायगा।

जो शान्ति काल में नीति सम्बन्धी सभी महत्त्वपूर्ण निर्णयों के उद्गम और त्रिविमपद्धति (Three dimensional) के आधुनिक युद्धों में सक्रिय सेनाओं को आदेश देने के लिए उत्तरदायी है, इस स्थान पर इस समिति के उच्चाधिकार प्राप्त स्वरूप की ओर संकेत भर कर देना पर्याप्त है। एक बार गोली चल जाने पर सैनिक गणवेशधारी व्यक्ति पद में अपने से उच्च दूसरे गणवेशधारी व्यक्ति के आदेश का ही पालन करेगा। इस कल्याणकारी सैनिक सिद्धान्त के कारण लोकतंत्र में इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि उस समय यह समस्या उठ खड़ी हो जाती है कि नागरिक शक्ति सैनिक क्षेत्र में अपनी आज्ञा का पालन किस प्रकार कराये।[20] सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) इस समस्या का पूर्ण रूप से समाधान कर देती है और इस अर्थ में इसे बीसवीं शताब्दी की महानतम संवैधानिक विजय माना जा सकता है, क्योंकि राजनैतिक शक्ति के नागरिक वाहक को इस संस्था के माध्यम से अपने आदेशों का पालन कराने में सक्षम बना कर इसने लोकतंत्र (Democracy) को सम्भव बनाया है।

---

20 इसका यह तात्पर्य नहीं कि सशस्त्र सेनाओं के सदस्य देश के कानून के अन्तर्गत नहीं आते। इस पर भी विचार किया जाना चाहिए कि 'उच्चतम आदेश' (Superior Orders) की धारणा का अपराध के दोषारोपण के विरुद्ध बचाव के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता।

(अ) लोकतन्त्र मे इसकी स्थिति

चूँकि सशस्त्र सेनाए कार्यपालिका का सर्वाधिक शक्तिशाली अग होती है अतः इनका नियन्त्रण भी राज्य के सबसे महत्वपूर्ण अग को ही सौंपा जा सकता है। रक्षा पर नियन्त्रण करने वाले अग का विश्लेषण करके हम राज्य मे शक्ति के वास्तविक केन्द्र को निर्धारित कर सकें। उदाहरणार्थ हम शासन की ससदीय प्रणाली के जन्मदाता देश (इंग्लैण्ड) के इतिहास पर विचार करें। जबतक क्राउन (*Crown*) के हाथ मे कार्यपालिका शक्ति का निर्बाध सचालन रहा तबतक सशस्त्र सेनाओ पर नियन्त्रण, राजाधिराज (King's Most Excellant Majesty) का अनन्य अधिकार बना रहा। परन्तु जनेच्छा के विजयी होने पर जब शक्ति क्राउन (Crown) के हाथ से निकलकर इसकी 'परामर्शदात्री पथप्रदर्शिका' (Consultative Oracle) के हाथ मे आ गई तो सशस्त्र सेनाओं पर नियन्त्रण भी इसी मे सन्निहित हो गया। इस प्रकार स्थायी सेना भग करके वार्षिक सेना अधिनियमों (Army Acts) के अनुसार थल-सेना बनाई जाने लगी। इन सेना अधिनियमों का स्थान 1955 मे पाँच वर्ष के लिए मान्य एक नए अधिनियम ने लिया। दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् 1946 मे इंग्लैण्ड मे नए रक्षा-मन्त्रालय के गठन के सम्बन्ध मे एक श्वेत पत्र (White Paper)[21] प्रकाशित किया गया। इसके पूर्व कभी स्थिति की इतने स्पष्ट रूप से *व्याख्या नहीं की गई थी।* इसके अनुच्छेद 20 के अनुसार 'रक्षा का सर्वोच्च उत्तरदायित्व प्रधान मन्त्री के पास रहेगा।' इंग्लैण्ड ने कैबिनेट रूपी तोरण (Cabinet Arch) के केन्द्रस्थल (प्रधान मन्त्री) को कार्यपालिका के सर्वाधिक शक्तिशाली अग पर नियन्त्रण अधिकार सौंप दिया है, इस पर कोई विवाद नहीं हो सकता। यद्यपि रक्षा विभाग का तात्कालिक कार्य-भार रक्षा मन्त्री पर होता है पर अन्तिम उत्तरदायित्व प्रधान मन्त्री का ही होता है। सेनाध्यक्षो की समिति (Chiefs of Staff Committee) के कार्यों का वर्णन इस आदेश-पत्र (Command Paper) तथा 1958 के आदेशपत्र सख्या 476 मे किया गया है जिसके अनुसार इंग्लैण्ड के वर्तमान केन्द्रीय रक्षा सगठन का निर्माण हुआ।[22] इस दक्ष व्यावसायिक परामर्शदाता निकाय को कैबिनेट और प्रधानमन्त्री से अधिमिलन का अधिकार प्राप्त है। चर्चिल के *द्वितीय विश्व युद्ध (Second World War)* नामक ग्रंथ से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह सेनाध्यक्षो (Chiefs of Staff) से सतत् परामर्श करता रहता था और उनके साथ अपने सम्पर्क को इतना आवश्यक मानता था कि रक्षा मन्त्री के लिए उसने *मुख्य सैनिक अधिकारी (Chief Staff* Officer) के पद का निर्माण किया, जो इंग्लैण्ड के सेनाध्यक्ष तन्त्र (Chief of Staff mechanism) के प्रभावी चौथे पहिये का कार्य करता था।

---

21. *Cmd 6743*
22. देखिए (M. Howard, "Central Defence Organization in Great Britain, 1959," 31, The Political Quartely, *1960*, p. 66.

इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका में सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और वही सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च नियन्त्रक होता है। राज्य के लिए 'संयुक्त रक्षा' (Common Defence) प्रदान करने की उसकी शक्ति वास्तव में महान है; क्योंकि कांग्रेस (Congress) द्वारा युद्ध की घोषणा किए बिना भी वह 'युद्ध में शामिल' हो सकता है। यद्यपि संविधान निर्माताओं ने रोक और प्रतिरोक (Checks and Counterchecks) की प्रणाली की योजना करके 'युद्ध की घोषणा करने का अधिकार' कांग्रेस (Congress) में निहित किया, परन्तु 1861 में अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) से लेकर 1950 में ट्रूमन (Truman) (कोरिया में) तक वास्तविक व्यवहार में सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति (Supreme commander-in-chief) होने के कारण राष्ट्रपति ने 'युद्ध में शामिल होने' के अपने अधिकार का प्रयोग किया है।[23] संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति भी उसकी सहायता करती है। (Joint Chiefs of Staff) जो अत्यन्त शक्तिशाली संगठन है और रणकौशल सम्बन्धी जाँच-पड़ताल के कार्यों में राष्ट्रपति जिससे निरन्तर परामर्श लेता है।

भारत में केन्द्रीय मन्त्री-मण्डल (Central Cabinet) अपनी रक्षा समिति (Defence Committee) के माध्यम से रक्षा पर नियन्त्रण करता है। जिसका अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता है। इस प्रकार यहां भी सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता और सशस्त्र सेनाओं के नियन्त्रण में कोई अलगाव नहीं है। यह सत्य है कि भारत का राष्ट्रपति सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति (Supreme Commander-in-Chief) होता है, परन्तु चूंकि उसे मन्त्री-परिषद् के परामर्श पर कार्य करना पड़ता है, अतः अन्तिम उत्तरदायित्व प्रधान मन्त्री का ही होता है जो परिषद् की सुरक्षा समिति (Defence Committee of the Cabinet) का अध्यक्ष होने के नाते सशस्त्र सेनाओं पर प्रभावी नियन्त्रण रखता है। मन्त्री-परिषद् उसके इस उत्तरदायित्व की साझीदार होती है, परन्तु प्रधानमन्त्री के रूप में वह केवल मन्त्री परिषद् का नहीं वरन् राष्ट्र का भी नेता होता है, अतः अन्तिम उत्तरदायित्व उसी का होता है। मन्त्री-परिषद् की रक्षा-समिति (Defence Committee of the Cabinet) के विचार विमर्श के समय सेनाध्यक्ष (Chiefs of Staff) आवश्यक रूप से उपस्थित रहते हैं, अतः नीतिसम्बन्धी निर्णयों में युद्ध कौशल सम्बन्धी विचारों को उचित महत्त्व दिया जाता है और समिति को तीनों सेवाओं (Services) के अध्यक्षों से सर्वोत्तम सैनिक परामर्श भी उपलब्ध हो जाता है।

इसी प्रकार कनाडा (Canada) आस्ट्रेलिया (Australia) तथा भूतपूर्व दक्षिण अफ्रीका संघ (Union of South Africa) आदि राष्ट्रमण्डलीय देशों में भी राज्य की रक्षा का उत्तरदायित्व प्रधान मन्त्री पर ही होता है और उसकी सहायता

---

23. उदाहरण के लिए देखिए The Prize Cases (1862) 2, Black 635 में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय

सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) करती है जिसे इन देशों के रक्षामन्त्रालय के अंतर्गत अंगीभूत किया जा सकता है। मलाया संघ (The Federation of Malaya) में संघ का सर्वोच्च अध्यक्ष (जिसे यांग डि-पर्टुआन अगोंग अथवा राजा भी कहते हैं) सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति होता है, पर उसे प्रधानमन्त्री की सलाह के अनुसार कार्य करना पड़ता है।

1946 के संविधान के अनुसार फ्रांस में मन्त्री-परिषद् के अध्यक्ष (The President of the Council of Ministers) को, जो प्रधान मन्त्री के समकक्ष होता है, सैनिक सेवाओं का कार्य सौंपा गया था। चौथे गणतन्त्र (Fourth Republic) के अन्तर्गत फ्रांस के प्रधानमन्त्री की सहायता के लिए कई परिषदों का गठन किया गया है यथा राष्ट्रीय रक्षा के लिए वैज्ञानिक कार्यों की समिति (Committee of Scientific Activities for National Defence) तथा गुप्तचर सेवा समिति (Committee for Intelligence Services) परन्तु इनमें सबसे महत्वपूर्ण समिति सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) है। सेनाध्यक्षों की समिति के माध्यम से मन्त्री–परिषद् का अध्यक्ष और राष्ट्रीय रक्षा मन्त्री (Minister for National Defence) सशस्त्र सेनाओं को निर्देश भेज सकता था जिसका वे शान्ति और युद्ध काल में पूर्णतः पालन करती थीं। 1958 में दे गाल (De Gaulle) के अध्यक्ष (President) बनने पर स्थिति में परिवर्तन हो गया। नए संविधान द्वारा प्रधानमन्त्री के अधिकार बहुत ही सीमित कर दिए गए और अध्यक्ष को राष्ट्र की स्वतन्त्रता अथवा इसके भू-भाग की एकता के लिए सभी आपातकालीन कदम उठाने का अधिकार दे दिया गया।

यह बात महत्वपूर्ण है कि सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) का कोई भी सदस्य परिषद् (Cabinet) का अंग नहीं हो सकता। परिषद् की जिन महत्वपूर्ण गोष्ठियों में रक्षा समस्याओं पर विचार-विमर्श होता है उनमें वे उपस्थित तो रह सकते हैं पर केवल सरकार के व्यावसायिक सलाहकार के रूप में न कि सदस्य के रूप में। परिषद् की गोष्ठियों में उनकी उपस्थिति को 'सेवा में' (in attendance) कह कर इसका उचित वर्णन किया गया है। आवश्यक रूप से सभी लोकतन्त्रात्मक राज्यों में उनकी यही स्थिति होनी चाहिए। सैनिक क्रान्ति द्वारा जनरल अयूब के सैनिक तानाशाह के रूप में आरूढ़ होने से पूर्व के पाकिस्तान का उदाहरण भी दिया जा सकता है जहां प्रधान सेनापति (Commander-in-Chief) और सेनाध्यक्ष (Chief of the Army Staff) को रक्षा मन्त्री नियुक्त किया गया था। सैनिक गणवेशधारण करने पर भी वह परिषद् की गोष्ठियों में नियमित सदस्य की भांति सम्मिलित होता था, साथ ही वह सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) का भी सदस्य बना रहा। सेनाध्यक्षों की समिति के किसी सदस्य को मन्त्री-परिषद् के स्तर तक पदोन्नत करने से निर्वाचक मण्डल के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व के आधारभूत सिद्धान्त का उल्लंघन होता है। आगे चलकर इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। राज्य के

सैनिक तत्वों का राजनैतिक शक्ति की ओर अग्रसर होने का यह प्रथम चरण था। भले ही सेनाध्यक्षों (Chiefs of Staff) की इस रूप में कोई संवैधानिक स्थिति नहीं है, क्योंकि किसी भी लिखित संविधान में उसका उल्लेख नहीं किया गया है, परन्तु वे एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं; क्योंकि राज्य में उन्हें मिलने वाले स्थान के आधार पर ही राज्य के स्वभाव और प्रकृति का निर्धारण होता है।

(1) लिखित संघीय संविधान में रक्षा—

संसार के लिखित अथवा अलिखित संविधानों के चाहे वे संघीय हों अथवा एकात्मक परीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि रक्षा पर राजनीतिक शक्ति के केन्द्र का नियंत्रण होता है। भारत की भांति संयुक्त राज्य में भी जहां नागरिक पर दो सरकारों-एक केन्द्रीय और दूसरी राज्य का अधिकार होता है। "राज्य की संयुक्त रक्षा व्यवस्था करना" केन्द्र का मौलिक कार्य है। वास्तव में संयुक्त रक्षा व्यवस्था का विचार ही संयुक्त राज्य अमरीका की पृथक संघीय इकाइयों को एक सूत्र में बांधने वाला सिद्ध हुआ है। युद्ध की घोषणा करने, सेनाओं को भरती करने और उन्हें बनाऐ रखने, जल सेना की व्यवस्था करने और उसकी देखभाल करने का पूर्ण अधिकार केन्द्र के पास है,[24] चाहे संयुक्त राज्य अमरीका आस्ट्रेलिया[25] और मलाया[26] की भांति संघ की इकाइयों को अवशिष्ट अधिकार क्षेत्र प्रदान कर केन्द्र को जानबूझकर निर्बल रखा जाय अथवा भारत[27] और कनाडा[28] की भांति अवशिष्ट अधिकार क्षेत्र केन्द्र को प्रदान कर इसे सशक्त बनाया जाय स्थिति यही रहती है।

संघीय केन्द्र का निर्माण बिना रक्षा के नहीं किया जा सकता यह बात भारत के सांविधानिक विकास हेतु 1946 की कैबिनेट मिशन योजना से स्पष्ट हो जाती है। जिसके अनुसार केन्द्र को दिए जाने वाले केवल तीन विषयों 30 में 'रक्षा' भी एक विषय था।

अतः सर्वाधिक महत्व का प्रश्न यह है कि राज्यतंत्र के इस शक्तिशाली अस्त्र का कौन और किस प्रकार नियंत्रण करता है।

(ii) प्रजातंत्र में रक्षा का नियंत्रण—

अपनी रचना और निर्वाह के लिए सेना राज्य पर निर्भर करती है। इसके आकार और स्वभाव का निर्णय करने वाले और इस के उपयोग के लिए उत्तरदायी

---

24. संयुक्त राज्य संविधान के आठवें अनुभाग का प्रथम अनुच्छेद।
25. आस्ट्रेलिया राष्ट्र मंडल संविधान कानून १९०० का अनुभाग ५१ (६)
26. मलय संघ के संविधान का अनुच्छेद ७४, यद्यपि संघीय और समवर्ती सूचियों में आने वाले विषयों की संख्या पर्याप्त है।
27. भारतीय संविधान का २४६ वां अनुच्छेद और सातवीं अनुसूची।
28. ब्रिटिश उत्तरी अमेरीका कानून १८६७ का अनुभाग ९१ (७)
29. संघीय केन्द्र के लिए तीन विषय थे (i) रक्षा (ii) विदेशी मामले और (iii) वित्त।

राज्य के अंग का हम निर्धारण कर चुके हैं। फिर भी पितृ हत्या का भय बना ही रहता है; जबतक इसके नियंत्रण का प्रावधान न कर लिया जाय राज्य द्वारा पालित गोद का बालक (सेना) अपने जन्मदाता के विरुद्ध जाकर उसे नष्ट कर सकता है। राज्य की एक सशक्त सेना यथा थलसेना ही, बलप्रयोग द्वारा समाज पर अपनी मनपसन्द नागरिक सरकार थोपने की शक्ति रखती है। इंग्लैंड को भी क्रामवेल (Cromwell) की सेना के शासन का अनुभव करना पड़ा था। सेना द्वारा राजनीतिक प्रणाली को अपने अधीन करने एवं नियंत्रित करने की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं में यह भी एक है। राज्य के रक्षातन्त्र के अत्यधिक विस्तार से ही तथाकथित तानाशाही का जन्म होता है। अतः प्रजातंत्र को इस बात का निश्चय कर लेना पड़ता है कि सशस्त्र सेनाओं को इस लोकेच्छा की प्रतीक राज्य की संसद के उचित नियंत्रण और नियमन में रखने के सभी उपाय कर लिए गए हैं। अथवा नहीं।

सर्वप्रथम, कैबिनेट सरकार प्रणाली में सबसे प्रभावी उपाय तो स्वनिहित ही है क्योंकि इसमें लोकेच्छा की पहली लाडली सन्तान प्रधानमंत्री को 'रक्षा' पर सर्वोच्च नियंत्रण प्राप्त होता है। चूँकि देश का जागरूक निर्वाचक मण्डल उसे शीर्ष स्थान पर पहुँचाता है, अतः सर्वोच्च शक्ति सर्वाधिक सुरक्षित हाथों में रहती है। यद्यपि उसका राजनीतिक जन्म स्पष्टतः लोकप्रियता पर आधारित होता है, फिर भी उसे स्वेच्छाचारी बनने से रोकने के लिए उसका और उसकी परिषद् का कार्यकाल और स्थिति पूर्णतः सार्वभौम संसद की इच्छा पर निर्भर होते हैं। प्रत्येक प्रजातंत्र के विषय में जहाँ विधान-मण्डल कार्यपालिका का जनक होता है, यह बात सत्य है; परन्तु संयुक्त राज्य अमेरीका पर जहाँ राष्ट्रपति का सीधा चुनाव होता है, यह बात लागू नहीं होती। वहाँ राष्ट्रपति को असंवैधानिक सत्ता अधिग्रहण करने के कारण पद मुक्त करने के लिए राज्याभियोग (impeachment) जैसे अन्य उपायों की व्यवस्था की गई है।

साथ ही संसद केवल प्रधानमंत्री पर ही नहीं वरन् अत्यन्त प्रभावी वित्तीय नियन्त्रण द्वारा शासनतंत्र के कार्य पर भी नियंत्रण रखती है। १६८९ में अधिकार बिल (Bill of Rights) और तत्पश्चात् वार्षिक सेना अधिनियम (Army Act) द्वारा इंग्लैण्ड की संसद ने वहाँ के राजाओं को सशस्त्र सेनाओं पर प्रभुता से वंचित कर दिया। उस समय से धन की स्वीकृति के द्वारा केवल संसद ही सशस्त्र सेनाओं का अस्तित्व बनाए रख सकती है। इस प्रकार संसद द्वारा वित्तीय नियन्त्रण लोकतंत्र का सर्वाधिक प्रभावी संरक्षण है। यद्यपि सशस्त्र सेनाएं राज्य का स्थायी अंग होती हैं, प्रत्येक वर्ष उनके लिए धन की स्वीकृति देकर संसद उस काल के लिए उनके निर्वाह की स्वीकृति देती है। संसद द्वारा यह वित्तीय नियंत्रण लोकतन्त्र का सामान्य लक्षण है और संयुक्त राज्य, कनाडा, आस्ट्रेलिया, फ्रान्स (१९४६ के संविधान के अंतर्गत) भारत और दक्षिण अफ्रीका आदि संसार के अनेक प्रमुख देशों के लिखित संविधानों में इसका उल्लेख हुआ है।

इसके अतिरिक्त सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) की उपस्थिति भी महत्त्वपूर्ण है। जो शान्ति और युद्ध काल में नागरिक प्रशासन के आदेशों का पालन करती है, प्रधानमंत्री अथवा राष्ट्रपति ही अपने विश्वस्त विशेषज्ञ सलाहकारों को सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्यों के रूप में चुनती है और अपनी इच्छानुसार उन्हें पदमुक्त भी कर सकता है, इस प्रकार सेनाध्यक्षों के विश्वस्त तंत्र के माध्यम से सर्वोच्च नागरिक सत्ता-लोकेच्छा को सैनिक क्षेत्र पर भी लागू कर सकती हैं। इस बात पर बल देना भी आवश्यक है कि इस अन्तिम कड़ी के बिना सभी कार्यकारी अंगों पर संसद की प्रभुतापूर्ण नहीं होती। लोकतंत्र की विजय को प्रदर्शित करने वाली यह अन्तिम कड़ी कोई साधारण उपलब्धि नहीं थी, क्योंकि इग्लैंड में चार्ल्स प्रथम और फ्रांस में १६वें लुई के हत्याकाण्ड के पश्चात् ही समस्त सेनाओं को नियंत्रित करने की शक्ति क्राउन के हाथ से निकल कर जनसाधारण के हाथ में आई थी। इस परिवर्तन को लागू करने में सेनाध्यक्षों की समिति ने आवश्यक साधन प्रस्तुत किया है, क्योंकि इसके माध्यम से सैनिक प्रशासन के निषिद्ध क्षेत्र संसद की सार्वभौम प्रभुता के अन्तर्गत कार्यपालिका के प्रभावी नियन्त्रण में आ गए हैं।

(ब) सर्वाधिकारी राज्य और सैनिक तानाशाही

सर्वाधिकारी देशों में समस्त सेनाओं पर तानाशाह का व्यक्तिगत नियंत्रण होता है और साधारणतः वही उच्चतम सैनिक पद ग्रहण करता है। उदाहरणार्थ, सोवियत यूनियन में सैनिक मामलों में निर्णय लेने की सर्वोच्च शक्ति मंत्री परिषद् (Connell of Ministers) के अध्यक्ष स्तालिन में निहित थी भले ही इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने में उसकी सहायता करने के लिए एक रक्षामंत्री भी था। इसी सिद्धान्त का पालन चीन में भी किया गया, क्योंकि जब गणतंत्र के अध्यक्ष के रूप में सभी शक्ति माओत्से तुंग (Mao Tse–tung) में केन्द्रित थी तब दिसम्बर १९५८ [21] तक राज्य की समस्त सेनाओं को नियन्त्रित करने का सर्वोच्च उत्तरदायित्व उसी का था। जर्मनी और इटली में भी क्रमशः हिटलर और मुसोलिनी ने अपने-अपने देश की समस्त सेनाओं को अपने व्यक्तिगत अधिकार में ही रखा। स्पेन के जनरल फ्रांको और संयुक्त अरब गणराज्य के कर्नल नासिर के विषय में भी यही सत्य है। फिर भी सैनिकतंत्र के नागरिक प्रशासन पर प्रभुत्व होने और गणवेशधारी व्यक्ति के राज्याध्यक्ष बन जाने पर भी सेनाध्यक्षों (Chiefs of Staff) का महत्त्व पूर्ववत् रहता है। अन्तर केवल यही होता है कि किसी के प्रति उत्तरदायी न होने के कारण तानाशाह अपनी इच्छानुसार सेनाध्यक्षों की विशेषज्ञ सलाह की उपेक्षा कर सकता है। उदाहरणार्थ, द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अपने सेनाध्यक्षों की

२१. दिसम्बर १९५८ में माओ त्से तुंग ने गणतंत्र के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया पर चीनी साम्यवादी पार्टी के अध्यक्ष के सर्वोच्च पद पर बना रहा। अप्रैल १९५९ में माओ के उत्तराधिकारी के रूप में लिओ शाओ ची (Liu Shao Chi) को गणतंत्र का अध्यक्ष चुना गया था।

विशेषज्ञ सलाह ठुकराकर हिटलर ने ऐसा ही किया था और अन्तत: इसका दुखद परिणाम उसे भोगना पड़ा। ध्यान देने की विशेष बात यह है कि सेनाध्यक्षों की सस्था सर्वाधिकारी राज्यो मे भी होती है चाहे वह राज्य माओ का चीन, हिटलर का जर्मनी अथवा मुसोलिनी का इटली हो।

राज्याध्यक्ष सशस्त्र सेनाओं के अध्यक्ष के रूप में—

आधुनिक राज्य के 'रक्षा कार्य' के महत्त्व की व्याख्या करते समय इस बात पर भी बल दिया जाना चाहिए कि राज्याध्यक्ष सशस्त्र सेनाओं का भी अध्यक्ष होता है। यद्यपि इस संवैधानिक सिद्धान्त का सदैव सम्मान किया जाता है, पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कार्यपालिका का सर्वाधिक शक्तिशाली भाग होने के कारण सशस्त्र सेनाओ पर राज्य के इसी महत्त्वपूर्ण अग (कार्यपालिका) का नियत्रण होना चाहिए। अत. सशस्त्र सेनाओ पर राज्याध्यक्ष का वस्तुत नियन्त्रण नही होता।

प्रो॰ क्राउस[१२] ने उचित ही कहा है कि पाच प्रकार के राज्याध्यक्ष सभव हो सकते हैं जिन्हे उनकी महत्ता के अनुसार निम्नक्रम से रख सकते हैं—

(१) प्रतिनिधि राज्याध्यक्ष,

(२) राज्य के अधिकारीतंत्र और सशस्त्र सेनाओ का अध्यक्ष,

(३) सविधान का सरक्षक,

(४) राज्यतत्र रूपी तुला को सतुलित रखने वाला सर्वोच्च प्रत्यय; और

(५) जन नेता।

इस वर्गीकरण द्वारा राज्याध्यक्ष की रचना के विभिन्न उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि सविधान द्वारा उनके कार्यों पर विशेष बल देने के अनुरूप विभिन्न राज्याध्यक्ष ऊपर वर्णित एक या अधिक प्रारूपो के अन्तर्गत आते हैं।

यद्यपि सिद्धान्तत: राज्याध्यक्ष सशस्त्र सेनाओ का सर्वोच्च सेनापति होता है फिर भी ससार के विभिन्न सविधानो के अध्ययन से पता चलता है कि जहा राज्याध्यक्ष बिना किसी प्रभावशाली शक्ति के केवल अपने कानूनन अधिकार का प्रयोग करता है वहा सशस्त्र सेनाओ पर वास्तविक नियत्रण राज्याध्यक्ष का नही वरन् राजनीतिक शक्ति के शीर्ष पर स्थित व्यक्ति का होता है। यूनाइटेड किंगडम (United Kingdom) मे रानी तीनों सेवाओं (Services) की अध्यक्षा और सिद्धान्तत. सर्वोच्च सेनापति है। वह राज्याध्यक्षा भी है। फिर भी वास्तविक राजनीतिक शक्ति प्रधान मत्री में निहित है, क्योकि एक अलिखित समझौते के अनुसार रानी अपने मत्रियो की सलाह और सहमति पर ही कार्य करती है।

---

१२. H. Kraus की Crisis of Democracy, 1932, p. 171

संयुक्त राज्य (United States) के संविधान के अनुच्छेद २ के द्वितीय अनुभाग के अनुसार राष्ट्रपति राज्याध्यक्ष होने के नाते ही संयुक्त राज्य की स्थल और जल सेना तथा संयुक्त राज्य की वास्तविक सेवा के लिए बुलाई गई अन्य राज्यों की मिलिशिया का प्रधान सेनापति होता है। संयुक्त राज्य में राज्याध्यक्ष को वास्तविक राजनीतिक शक्ति से वंचित नहीं किया गया है अतः समस्त सेनाओं का सर्वोच्च नियंत्रण भी उसी के हाथ में है।

कनाडा में ब्रिटिश उत्तरी अमेरीका अधिनियम (British North America Act) १८६७ के अनुभाग १५ के अनुसार इस बात की घोषणा की गई है कि 'स्थल और जल मिलिशिया तथा कनाडा की और कनाडा में स्थित सभी जल और स्थल सेनाओं की मुख्य कमान महारानी में ही निहित रहेगी।" वेस्ट-मिनिस्टर की संविधि (Statute of West Minister) के पश्चात् कनाडा की महारानी संसद के प्रति उत्तरदायी कनाडा के मंत्रियों की सलाह और सहमति से ही कार्य करती है अतः समस्त सेनाओं का वास्तविक नियंत्रण कनाडा के प्रधान मंत्री के हाथ में है। जिसकी सहायता राष्ट्रीय रक्षामंत्री करता है परन्तु सिद्धान्ततः राज्याध्यक्षा अर्थात् महारानी ही समस्त सेनाओं की अध्यक्षा है।

आस्ट्रेलिया में भी कनाडा जैसी ही स्थिति है। समस्त सेनाओं पर वास्तविक नियंत्रण प्रधानमंत्री का ही होता है परन्तु सिद्धान्त रूप में इंग्लैंड की महारानी ही समस्त सेनाओं की अध्यक्षा है।[33] दक्षिण अफ्रीका संघ (Union of South Africa)[34] के सम्बन्ध में भी पहले यही सत्य था पर उस देश के गणतन्त्र बन जाने से अब स्थिति बदल गई है।

फ्रांस में चौथे गणतन्त्र के संविधान के ३३वें अनुच्छेद के अनुसार राज्याध्यक्ष राष्ट्रपति ही समस्त सेनाओं का अध्यक्ष होता था। परन्तु उसी संविधान के ४७वें अनुच्छेद के अनुसार मंत्रिपरिषद् का अध्यक्ष जो इंग्लैंड के प्रधानमंत्री के समकक्ष होता है, राष्ट्रीय रक्षा के लिए फ्रांस की संसद के प्रति उत्तरदायी होता था। इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरीका के राष्ट्रपति के समान फ्रांसीसी गणतन्त्र के राष्ट्रपति का राष्ट्रीय रक्षा पर सर्वोच्च नियंत्रण नहीं होता, पर भारत के राष्ट्रपति की अपेक्षा उसे कुछ अधिक अधिकार प्राप्त थे। इसका कारण यह है कि फ्रांस का राष्ट्रपति न केवल राष्ट्रीय रक्षा बोर्ड (Board of National Defence) का ही अध्यक्ष था वरन् इंग्लैंड और भारत में कैबिनेट की रक्षा समिति के समकक्ष राष्ट्रीय रक्षा

---

३३ आस्ट्रेलिया राष्ट्र मण्डल कॉन्स्टिट्यूशन ऐक्ट १९०० के अनुच्छेद ६८ के अनुसार "राष्ट्र मण्डल की जल और थल सेनाओं की मुख्य कमान महारानी के प्रतिनिधि गवर्नर जनरल में निहित है।"

३४ दक्षिण अफ्रीका ऐक्ट १९०९ के अनुच्छेद १७ के अनुसार "संघ की जल और थल सेनाओं की मुख्य कमान राजा या उसके प्रतिनिधि गवर्नर जनरल में निहित है" गणतन्त्र बन जाने के बाद यह शक्ति राष्ट्रपति में निहित हो गई है।

समिति (Committee dela Defense National) का भी वह अध्यक्ष होता था। मंत्रिपरिषद् का अध्यक्ष (प्रधानमंत्री) इस समिति का उपाध्यक्ष होता है जबकि भारत में प्रधानमंत्री कैबिनेट की रक्षा समिति का अध्यक्ष होता है। तीसरे, चौथे और पाँचवें गणतंत्रों के संविधानों के अनुसार फ्रांस का राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की रक्षा समिति की अध्यक्षता करता है पर भारत का राष्ट्रपति ऐसा नहीं करता। दगाल (De Gaulle) के राष्ट्रपति काल में स्थिति बदल गई है, क्योंकि देश में शांति और एकता बनाए रखने के लिए राष्ट्रपति को पूर्णत उत्तरदायी बनाकर उसके पद को अधिक सशक्त कर दिया गया है। अप्रैल १९६१ में अल्जीयर्स में हुए जनरलों के सशस्त्र विद्रोह को जनरल दं गाल ने जिस प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया उससे वास्तविक व्यवहार में राष्ट्रपति की सार्वभौम सैनिक सत्ता स्पष्ट हो जाती है। आज न केवल नागरिक प्रशासन और इसका संचालन करने वाले तंत्र का ही अध्यक्ष है वरन् राज्य की सशस्त्र सेनाओं का भी सक्षम अध्यक्ष है। मई १९५८ में अल्जीरिया में दक्षिण पंथियों द्वारा प्रेरित विप्लव को कुचलने के लिए जब से उसने असाधारण शक्ति ग्रहण की तब से ही वह इस स्थिति का उपभोग कर रहा है।

चीन के १९४६ के लिखित संविधान में जिसे जनवादी गणतंत्र ने ठुकरा दिया था, अनुच्छेद ३५ के अनुसार राष्ट्रपति राज्याध्यक्ष होता था और अनुच्छेद ३६ के अनुसार सारे देश की 'थल, जल और वायु सेनाओं' की कमान उसके हाथ में थी।

आधुनिक चीन में १९५८ तक माओ जे तुंग राज्याध्यक्ष होने के साथ-साथ जनता की क्रांतिकारी सैनिक परिषद् का भी अध्यक्ष था, अर्थात् वह सैनिक अध्यक्ष भी था। राज्य के कानूनन अध्यक्ष को राज्य के वास्तविक नियंत्रण से वंचित नहीं किया गया था क्योंकि १९५८[35] में गणतंत्र के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने से पूर्व माओ जे तुंग देश के राजनैतिक मामलों में तानाशाही शक्ति का उपभोग करता था और साथ ही राष्ट्र की सशस्त्र सेनाओं पर भी उसी का सर्वोच्च नियंत्रण था।

१८३१ के बेल्जियम के संविधान के अनुच्छेद ६८ के अनुसार 'राजा थल और जल सेना का कमाण्डर है, वही युद्ध की घोषणा करता है, शांति और सहयोग के लिए संधियां करता है ...... ।' अनुच्छेद ६४ के अनुसार 'राजा' का कोई भी आदेश जबतक कोई मंत्री उस पर हस्ताक्षर करके अपने को उसके लिए उत्तरदायी न बना ले प्रभावी नहीं माना जायगा।' इस प्रकार बेल्जियम की सशस्त्र सेनाओं पर भले ही कानूनन नियंत्रण राजा का है पर वास्तविक अधिकार सम्बन्धित मंत्री को ही प्रदान किया गया है क्योंकि व्यक्तिगत रूप से राजा परमपावन है और उसके मंत्रीगण ही उत्तरदायी माने गए हैं।

---

३५ माओ जे तुंग के राज्य के कानूनन अध्यक्ष न रहने के पश्चात् की सही स्थिति का स्पष्ट पता नहीं है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सशस्त्र सेनाओं को दोहरा सम्मान प्राप्त है। राज्याध्यक्ष ही उनका भी अध्यक्ष होता है पर जब वह केवल नाममात्र का अध्यक्ष हो तो उन पर राज्य के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग (प्रधान मंत्री) का नियंत्रण होता है।

संविधान चाहे किसी प्रकार का हो : संसदीय, अध्यक्षीय अथवा दोनों का मिश्रण अथवा तानाशाही : सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) राजनीतिक शक्ति के सर्वोच्च वाहक से सम्बन्धित रहती है। लोकतंत्र में इसका कार्य नागरिक रक्षा मंत्रालय इसके अध्यक्ष रक्षामंत्री और उसके द्वारा प्रधान मंत्री को परामर्श देना है, कुछ स्थितियों में इसे प्रधानमंत्री और मंत्री परिषद् से सीधे अभिमिलन का अधिकार भी प्राप्त है।

रक्षा के बढ़ते हुए महत्व का परिणाम

किसी भी राज्य के राजनीतिक कार्यक्रम में रक्षा को दिया जाने वाला महत्व विवाद का विषय है।

विरोधी सिद्धान्तों को 'कल्याणकारी' (Welfare) बनाम 'सुरक्षा' (Security) के नाम से पुकारा जा सकता है। युद्धोत्तर काल का आधुनिक राज्य "कल्याणकारी राज्य" की धारणा पर आधारित है। यह पूर्ण रोजगार देने का वायदा करता है और करदाताओं के स्वास्थ्य और कल्याण का ध्यान रखता है और शान्तिकाल में इन्हें ही यह अपना सर्वप्रथम और आवश्यक कार्य मानता है। इस प्रकार के कल्याणकारी राज्य में रक्षा एक गौण कार्य है और कल्याणकारी कार्यों को सम्पन्न करने के पश्चात् बचने वाले धन की मात्रा पर निर्भर करती है। यह तर्क दिया जाता है कि शान्तिकाल में रक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं को प्राथमिकता देना अनुचित होगा। जब राज्य की शान्ति को खतरा उत्पन्न होता है तभी वह अनचाहे मन से कल्याणकार्य की अपेक्षा रक्षाकार्य को प्राथमिकता देने को विवश होना पड़ता है। हाल ही में अणु आयुधों के आविष्कार तथा वायुशक्ति के विकास ने रण-कौशल सम्बन्धी धारणाओं को पर्याप्त बदल दिया है। मुख्य सैनिक परिवर्तन तो यान्त्रिक युद्ध की तेजी से बढ़ती हुई गति है। कोई भी नवीन युद्ध कम से कम योरोप में-अनपेक्षितरूप से अत्यल्प समय में समाप्त हो जायगा, यह बात १९३९ की अपेक्षा आज कहीं अधिक सत्य है। लोकतन्त्रात्मक देशों के संदर्भ में इस का सबसे महत्वपूर्ण तात्पर्य यह है कि प्राथमिक सैन्यीकरण का समय न के बराबर गिना जाना चाहिए। संसार के लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रों के लिए पहले की अपेक्षा अब यह अधिक आवश्यक हो गया है कि शान्तिकाल में रक्षा के लिए कहीं अधिक मात्रा में सेनाएं अपने स्थानों पर तैयार खड़ी रहें। इस कारण लोकतंत्रों की रक्षा करने की कठिनाई पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है और शान्तिकाल में कल्याण कार्यों की अपेक्षा रक्षा प्रबन्ध करना अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। कल्याण (Well-being) से पूर्व यह 'अस्तित्व (being) का और जीवनस्तर से पूर्व जीवित रहने का प्रश्न बन गया

है।[36] यूनाइटेड किंगडम (United Kingdom) में पिछले पचास वर्षों में सामाजिक कार्यों पर होने वाले व्यय की युद्ध कार्यों पर होने वाले व्यय से तुलना करना बडा ही रुचिकर विषय है। निम्नलिखित तालिका से ज्ञात होता है कि अन्तत १९४६ में सामाजिक सेवाओं ने रक्षा सेवाओं पर विजय प्राप्त की।

राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप मे सामाजिक और युद्ध सम्बन्धी व्यय

पहली अप्रेल से प्रारम्भ होने वाला वर्ष	सामाजिक	रक्षा, युद्ध, पेंशन और ऋण पर ब्याज
१९००	२१	८ ३
१९१०	३ १	४ ४
१९२०	४ ४	१२ ८
१९२०–२४ का औसत	५ ७	१२·८
१९२५–२९ ,,	७ ५	१२ ०
१९३०–३४ ,,	१० ६	११·०
१९३५–३९ ,,	९·६	११ १ *
१९४०–४४ ,,	८ १	६४ ८
१९४५	१० ६	५९ १
१९४६	१२ ६	२७ ६
१९४१ ९	१७·५	१२·८

* १९३५ से ३८ तक का औसत

परन्तु सामाजिक सेवाओं की यह विजय क्षणिक ही सिद्ध हुई। इस बात पर कि आधुनिक लोकतन्त्र अपनी आय का १७·५% भाग कल्याणकारी सेवाओं पर व्यय किए बिना जीवित रह सकता है या नहीं तीव्र मतभेद है, परन्तु संसार की आज की स्थिति में अपनी रक्षा के लिए पर्याप्त व्यय के किए बिना निश्चयपूर्वक यह जीवित नही रह सकता। १९५१ के आम चुनावो के पश्चात् यूनाइटेड किंगडम ने कल्याणकारी पहलू को गौण स्थान देकर एक सुरक्षित राज्य के निर्माण की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया।

अमरीकी सिद्धान्त यह है कि शान्तिप्रिय राष्ट्र की रक्षा नीति पर दो भागों मे विचार किया जाना चाहिए। पहली बात तो नीति-निर्धारण शान्तिकाल के लिए होना चाहिए, अर्थात् सम्भावित आक्रमणकारी को रोक रखने की शक्ति का अर्जन कर इसका उद्देश्य युद्ध छिड़ने को रोकना होना चाहिए। दूसरे यदि युद्ध छिड ही जाय तो इसका निर्धारण उसे जीतने की दृष्टि से होना चाहिए। नीति के

[36] इस अन्तर सम्बन्ध की रुचिकर व्याख्या के लिए देखिए संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति केनेडी का जनवरी १९६१ का राष्ट्र की स्थिति संबंधी (State of the Nation) पहला सन्देश।

इन दोनों पहलुओं का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है क्योंकि खुले शक्ति परीक्षण में आक्रमणकारी को परास्त करने की क्षमता ही उसे रोक सकने में समर्थ होती है। इसके लिए शान्तिकाल में भी युद्ध के लिए पर्याप्त तैयारी करने की आवश्यकता होती है और हमारे सम्मुख संयुक्त राज्य अमरीका जैसे शक्तिशाली राष्ट्र का अपूर्व उदाहरण है जिसने अपने राज्यतन्त्र को लगभग युद्धतन्त्र में ढाल लिया है।

फिर भी, सामान्य शान्तिकाल में, जब देश की रक्षा को कोई खतरा न हो रक्षा का अधिक सन्तुलित कार्य करना होता है। सरकार द्वारा विभिन्न कार्यों पर व्यय की जाने वाली धनराशि उनकी कार्यवाही के आपेक्षिक महत्त्व के आकलन का सर्वोत्तम उपाय है। अतः हम संसार के विभिन्न राज्यों द्वारा अपनी राष्ट्रीय आय और कुल सरकारी व्यय की तुलना में किए गए सैनिक व्यय की सीमा का परीक्षण करते हैं। क्योंकि १९४८-४९ वर्ष युद्ध के खतरे से अपेक्षाकृत मुक्त था अतः नीचे दिए गए आंकड़े राज्य के राजनीतिक संगठन में रक्षा के महत्त्व पर उचित प्रकाश डालते हैं :—

यूरोप का रक्षा प्रावधान १९४८-४९

देश का नाम	जन संख्या	सैनिक व्यय	राष्ट्रीय आय की तुलना में सैनिक व्यय	सरकारी व्यय की तुलना में सैनिक व्यय
	दस लाख में	दस लाख डालर में	प्रतिशत	प्रतिशत
संयुक्त राज्य	१४६.६	१४,२६८	६.४	३४
कनाडा	१२.९	२६२	२.०	११
यूनाइटेड किंगडम	५०.०	३,०६३	७.६	२०
फ्रांस	४१.८	१,२०३	४.९	१७
बेल्जियम	८.५	१९२	३.२	१२
नीदर लैंड्स	९.९	३७७	७.७	२३
इटली	४६.४	५८६	६.३	२५
पुर्तगाल	८.४	४८	४.८	२१
नारवें	३.२	८३	४.५	१७
डेनमार्क	५.२	६३	२.०	१४

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि यदि कुल व्यय के आधार पर सुरक्षा के गणित का अनुमान लगाया जाय तो हम देखेंगे कि किसी भी राज्य में रक्षा पर शान्तिकालीन व्यय कुल व्यय के एक चौथाई से लेकर एक तिहाई तक होता है।

: : सन्तुलित व्यय :

नीचे दिए गए आँकड़े सिद्ध करते हैं कि भारत में रक्षा कार्यों पर व्यय और सामाजिक सेवाओं पर व्यय के प्रतिशत में उचित सन्तुलन है। भारत जैसे विस्तृत संघीय राज्य में जिसकी लम्बी सीमा रेखा की रक्षा करनी है, रक्षा कार्यों के लिए आय का २०% भाग व्यय करना सामाजिक सेवाओं की आवश्यकता की तुलना में अधिक नहीं है। जिसके लिए आय के ३०% भाग की व्यवस्था की जाती है, देश में घोर निर्धनता व्याप्त होने के कारण उपर्युक्त सेवाओं पर और अधिक धन व्यय करने की निर्विवाद आवश्यकता है, परन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, अतः रक्षा व्यय में कटौती करने का कोई औचित्य नहीं है।

केन्द्रीय और राज्यीय बजटों का विश्लेषण जिसमें रक्षा बजट का (अ) केन्द्रीय बजट से तथा (ब) सामाजिक और विकास सेवाओं के बजट से अनुपात प्रदर्शित किया गया है।

//१९४८–४९//

	केन्द्रीय*	भाग 'अ' के राज्य	भाग 'ब'× के राज्य	योग
	(करोड़ रुपयों में पूर्णाङ्क)			
(१) कुल राजस्व आय	४९८	३१५	९७	९१०
(२) सामाजिक और विकास सेवाओं पर कुल व्यय	४३	१७८	४९	२७०
(३) 'रक्षा' के अन्तर्गत शुद्ध व्यय	१८१	–	–	१८१
मद २ मद १ का प्रतिशत	८.६	५६.५	५०.१५	२९.७ (लगभग ३०%)
मद ३ मद १ का प्रतिशत	३६.३	–	–	१९.९ (लगभग २०%)

* इसी में भाग 'स' के राज्य सम्मिलित हैं।

× १ नवम्बर १९५६ से भाग 'ब' के राज्य समाप्त हो गए हैं।

संघीय सरकार के बजट का विश्लेषण करने से पता चलता है कि १९५५-५६ से १९५९-६० तक संघीय सरकार के राजस्व के अनुपात में रक्षा व्यय निम्न प्रकार बढ़ता-घटता रहा है :—

	१९५५-५६ करोड रुपयों में	१९५७-५८ करोड रुपयों में	१९५८-५९ करोड रुपयों में	१९५९-६० करोड़ रुपयों में
राजस्व	४८३·७६	६८५·५८	६५५·२१	७०८·४६
रक्षा व्यय	१७२·२३	२५६·७२	२६६·८१	२४२·६८

इन आंकड़ों में संघ में सम्मिलित राज्यों का राजस्व सम्मिलित नहीं किया गया है, यदि उसे भी सम्मिलित करलें तो रक्षा व्यय का केन्द्र और राज्य के राजस्व से अनुपात और भी कम हो जायगा।

सामूहिक रक्षा

एक बात और, राज्य ने बहुधा यह पाया है कि राष्ट्रों के परिवार में वह अकेला खड़ा नहीं रह सकता, इसलिए उसने पड़ोसी राज्यों से किसी न किसी रूप में संधियां और समझौते करके अपनी सुरक्षा को और भी सुदृढ बनाने का प्रयास किया है। आधुनिक काल में राष्ट्र-संघ (The League of Nations) और संयुक्त-राष्ट्र संघ (United Nations) इस क्षेत्र में दो महान प्रयोग हैं।

रक्षा के विशिष्ट क्षेत्र में उत्तर अतलांतिक संधि संगठन (North Atlantic Treaty Organisation) सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संयुक्त समझौते का प्रतिनिधित्व करता है। अभी हाल ही में यूरोपीय संघ द्वारा यूरोप की रक्षा के लिए संघीय व्यवस्था स्थापित करने के प्रयत्न सामूहिक प्रयत्न का दूसरा उदाहरण है। दो विश्व-युद्धों के पश्चात् रक्षा निर्माण हेतु इतने बड़े पैमाने पर धन और जन शक्ति की आवश्यकता होने लगी है और युद्ध छिड़ जाने पर इतने ही भयकर रूप में इनका विनाश होता है कि कोई भी राष्ट्र बिना दूसरों की सहायता के अकेले इस काम को पूरा करने में अपने को सक्षम नहीं पाता। सामूहिक रक्षा के संगठन की तीव्र इच्छा इसका अवश्यम्भावी परिणाम है परन्तु राष्ट्र की प्रभुसत्ता का आवश्यक उल्लंघन होने के कारण उसने अधिक प्रगति नहीं की है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है नॉर्वे (Norway) जिसको नैपोलियन के युद्धों के तुरन्त बाद से तटस्थता की परम्परा निभाई है। अब वह (नॉर्वे) उत्तर अतलांतिक संधि संगठन का सदस्य बन गया है पर इस संगठन के अन्य अनेक सदस्य राष्ट्रों के विपरीत नॉर्वे उत्तर अतलांतिक संधि संगठन की विदेशी सेनाओं को अपनी भूमि पर अड्डे बनाने की आज्ञा नहीं देता। नॉर्वे का कथन है कि उस देश में विदेशी सेनाएं रखने के लिए उसे अपने संविधान २५ में संशोधन करना पड़ेगा। रक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रभुता को तनिक भी प्रभावित करने वाली किसी भी बात के प्रति नॉर्वे में दृढ़ अविश्वास है। संकीर्ण राष्ट्रीय भावनाएं उत्तर अतलांतिक संधि संगठन के प्रभावी कार्य संचालन और यूरोपीय रक्षा समुदाय के निर्माण में किस प्रकार बाधक हुई हैं, यह सर्वविदित है।

यूरोपीय रक्षा समुदाय के प्रति फ्रांस की आपत्ति और इस सैंबंध में यूनाइटेड किंगडम का रुख राष्ट्रों द्वारा अपनी प्रभुसत्ता के सारभूत अंग के एकीकरण के समान अपनी रक्षा क्षमता के एकीकरण के भय के उदाहरण हैं। इससे निस्संदेह यह सिद्ध होता है कि 'रक्षा' सरकार का इतना प्रिय विषय और प्रभुसत्ता का इतना आवश्यक लक्षण रहा है कि कोई भी राष्ट्र संधियों और/या समझौतों द्वारा इसके एक भी अंश को खोने का इच्छुक नहीं है।

सेनाध्यक्षों की समिति के कार्यों का विस्तार

इस प्रकार रक्षा की योजना चाहे व्यक्तिगत रूप से की जाए अथवा सामूहिक, आर्थिक दृष्टि से इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नित्यप्रति बढ़ती जा रही है, और इस कारण सेनाध्यक्षों की समिति द्वारा सुलझाने के लिए जटिल से जटिलतर समस्याएं उठती रही हैं।

संसार के शक्ति सम्पन्न देशों द्वारा रक्षा व्यवस्था पर बढ़ते हुए व्यय और इस बात के ज्ञान के कारण कि भविष्य में होने वाले युद्ध त्रिविम पद्धति[३८] के होंगे जिसमें थल, जल और वायु से कार्यवाही करनी होगी, सम्बन्धित राज्य की रक्षा में अपने-अपने भाग के अनुपात में अधिकतम परिणाम प्राप्त करने की दृष्टि से तीनों सेवाओं की पारस्परिक प्रतियोगी प्राथमिकताओं का निश्चय करते हुए सेनाध्यक्षों की समिति को व्यय के बँटवारे के सम्बन्ध में सरकार से सिफारिश करने का महत्त्वपूर्ण कार्य दिया गया है। यह एक ऐसा कार्य है जिसमें राज्य के नागरिक-तंत्र को सेनाध्यक्षों के दक्ष परामर्श पर निर्भर करना पड़ता है। साथ ही बीसवीं शताब्दी में विदेश-नीति अधिकाधिक मात्रा में रक्षा व्यवस्था के विचार पर निर्भर करती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सेनाध्यक्षों की समिति को सरकार को इसकी सामरिक स्थिति के सम्बन्ध में तथा राजनीतिक शतरंज पर राष्ट्रों की जटिल चालों का मूल्यांकन करके सूचना देने का महत्त्वपूर्ण कार्य संभालना पड़ा है। आधुनिक राज्य की रक्षा संभावनाएं समय-समय पर होने वाली संधियों और समझौतों के अनुसार बदलती रहती हैं, ये न केवल शक्ति का सन्तुलन ही बदलते हैं वरन् रक्षा समस्याओं और संभावनाओं को भी बदलते रहते हैं और इनकी सतत समीक्षा करने

---

३७. उत्तर अटलांटिक संधि संगठन की सेनाओं को यदि नॉर्वे में रखना ही पड़ा तो क्या उसके संविधान में संशोधन करना आवश्यक होगा इस पर संविधान वेत्ताओं में मतवैभिन्न है। इस सम्बन्ध में संविधान की धारा कहती है "शत्रुतापूर्ण आक्रमण के विरुद्ध सहायक सेनाओं के अतिरिक्त विदेशी शक्तियों की सेवा में विदेशी सैन्य समूह (Storthing) की अनुमति के बिना राज्य में नहीं लाई जानी चाहिए"। (अनुच्छेद २५)

३८. देखिए Schwarzenberger का 'The Law of Air Warfare and the trend towards Total war', I Univ. of Malaya L. R. १९५९ p. १३० :
"वैज्ञानिक प्रगति ने द्विविम पद्धति के युद्ध को त्रिविम पद्धति के युद्ध में और इस विभाजन को एक अन्तरहित पूर्ण युद्ध में बदल दिया है।"

की आवश्यकता रहती है। संयुक्त-राज्य अमरीका जैसे राष्ट्रों की विदेश-नीति के निर्धारण में संयुक्त सेनाध्यक्षों (Joint Chiefs of Staff) को महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहनी पड़ती है।

एक बात और, क्योंकि शान्तिकाल में भी राज्य को युद्ध के लिए तत्पर रहना पड़ता है, देश के औद्योगिक विकास का नियोजन रक्षा उद्योगों के विकास को ध्यान में रखकर ही करना पड़ता है। अतः आधुनिक युद्ध में प्रत्येक उद्योग की भूमिका प्रत्येक सेवा की आवश्यकता के संदर्भ में निश्चित करनी पड़ती है। सेनाध्यक्षों के दल परामर्श द्वारा ही इसका प्रभावी ढंग से समन्वयन किया जा सकता है। साथ ही सामूहिक रक्षा के सभी संगठनों में तीनों सेवाओं के विरोधी न सही पर प्रतियोगी दावों में समन्वय स्थापित करने के लिए तथा विभिन्न राष्ट्रों की विभिन्न अनेक भाषा-भाषी और विभिन्न संस्थाओं में प्रशिक्षित विजातीय सेनाओं के मेल से एक सुसंगठित सेना का निर्माण करने के लिए भी एक उच्चाधिकार प्राप्त अभिकरण की आवश्यकता होती है। उत्तर अतलांतिक संधि संगठन की बात छोड़िए, विश्वशान्ति के लिए प्रयत्नशील संयुक्त-राष्ट्र संगठन को भी एक सैनिक समिति के निर्माण पर विचार करना पड़ा है। (घोषणा पत्र का अनुच्छेद ४७) जो सेनाध्यक्षों की समिति की आधारभूत धारणा का ही मूर्त रूप है।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय रक्षा योजना के सम्मुख नित्य प्रति बढ़ती हुई उन जटिल समस्याओं के ये कुछ उदाहरण हैं जिनके समाधान हेतु सेनाध्यक्षों की समिति से बार-बार परामर्श करना पड़ता है।

२

सेनाध्यक्षों की समिति की भावना का विकास

धारणा का मूल उद्गम

अपने उद्देश्य की सफलतापूर्वक प्राप्ति के लिए किसी भी मानवीय संस्था को चाहे वह राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक अथवा सामाजिक हो प्रभावी त्रिपक्षीय तंत्र की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। सर्वप्रथम संस्था का निर्देशन और मार्गदर्शन करने के लिए योजना और नीति-निर्माण करने वाले कक्ष की आवश्यकता होती है। द्वितीय, इसके संचालन के लिए आवश्यक व्यक्ति अथवा मानव-शक्ति होनी चाहिए और तृतीय, अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करने के लिए इसके पास आवश्यक धन-कोष और साज-सामान होना चाहिए। सैनिक संस्थाओं में इस तिहरे आधार का वर्गीकरण इस प्रकार होता है। नियोजक कक्ष को जनरल स्टाफ कहते हैं, मानवशक्ति और अनुशासन संबंधी पक्ष एडजुटांट जनरल (adjutant general) के कार्यों के अन्तर्गत आते हैं और अन्त में आवश्यक साज-सामान की उपलब्धि से संबंधित सैन्य संचालन की समस्या क्वार्टर मास्टर जनरल (Quarter master general) के कार्यों के अन्तर्गत आती है। यह तिहरा वर्गीकरण केवल थल-सेना की ही विशेषता नहीं है, अन्य दो सेनाओं, जल और वायु सेना, पर भी यह समान रूप से लागू होती है। जनरल स्टाफ जिसके पास कार्यवाही संबंधी सारे उत्तरदायित्व की कुंजी होती है जल और वायु सेनाओं में भी इसी नाम से जाना जाता है। अन्तर केवल इतना होता है कि थल-सेना स्टाफ के स्थान पर इसे जल-सेनाध्यक्ष (Chief of Naval Staff) तथा वायु-सेनाध्यक्ष (Chief of Air Staff) कहते हैं। अंग्रेजी भाषी संसार में सर्वत्र यही प्रथा है। मानव-शक्ति और साज-सामान का नियमन करने वाले अन्य दो कर्मचारियों को विभिन्न देशों में विभिन्न पद-नामों से जाना जाता है, परन्तु यूनाइटेड किंगडम के तंत्र को आदर्श मानते हुए कार्मिक अध्यक्ष (जल सेना) (Chief of Personnel) (Navy) अथवा

कार्मिक परिषद् के वायु सदस्य (वायु सेना) (Air Member of Council for Personnel) (Air force) के कार्यों के मूल में यही भावना है। इसी प्रकार साज-सामान अध्यक्ष (Chief of Material) तथा आपूर्ति और संगठन के वायु सदस्य (Air Member for Supply Organisation) क्वार्टर मास्टर-जनरल (Quarter Master General) के ही समकक्ष हैं।

प्राचीन भारत के इतिहास में भी ऐसा ही त्रिस्तर वर्गीकरण दृष्टिगत होता है। उदाहरणार्थ, गुप्त साम्राज्य में महासेनापति अथवा कमाण्डर-इन चीफ की अध्यक्षता में कार्य करने वाले सैनिक संगठन के तीन महत्त्वपूर्ण अंग थे। पहले विभाग का अध्यक्ष महा व्यूहपति आधुनिक सैन्य संगठन के जनरल-स्टाफ के अध्यक्ष के समकक्ष होता था। दूसरे विभाग का अध्यक्ष रणभाण्डागाराधिकरण सैन्य संचालन संबंधी समस्याओं पर नियंत्रण करता था। शायद मानव-शक्ति संबंधी पक्ष का संचालन प्रधान सेनापति करता था और उसके अधीन पदाति सेनाध्यक्ष (भटाध्यक्ष), अश्वारोही सेनाध्यक्ष (महा अश्वपति) और हस्ति-सेनाध्यक्ष (हस्त्याध्यक्ष) होते थे।

नियोजन कक्ष के पास शेष सभी विभागों की कुंजी होती है, अतः इसका संचालन संगठन के मस्तिष्क न्यास (brain trust) का कार्य करने वाले चुने हुए व्यक्तियों द्वारा ही होता है। संगठन के नागरिक अथवा सैनिक होने से कोई अंतर नहीं पड़ता। उदाहरणार्थ व्यापारिक प्रतिष्ठान में व्यापार संचालन संबंधी नीति निर्धारण का कार्य निदेशक-मण्डल (Board of Directors) ही करता है। इसी प्रकार राजनीतिक संगठन में प्रधान मंत्री की कैबिनेट, राष्ट्रपति अथवा तानाशाह नीतिनिर्धारण करते हैं और राज्यतंत्र का संचालन करते हैं। इसी के अनुरूप सैनिक क्षेत्र में सेनाध्यक्षों का संगठन ही नियोजन और नीतिनिर्माण करने वाला निकाय होता है। सेनाध्यक्षों द्वारा निर्मित नीति के लिए राजनीतिक अंग की स्वीकृति लेना आवश्यक हो सकता है, क्योंकि उपर्युक्त ही देश के सर्वोच्च नीतिनिर्माता संगठन का प्रतिनिधित्व करता है। अतः सेनाध्यक्षों की धारणा का उद्गम मानवता के जन्म जितना ही प्राचीन है। वास्तव में चातुर्वर्ण्य पर आधारित समाज के जन्म की वैदिक धारणा के अनुसार सामाजिक सोपान का शीर्ष ब्राह्मण होते थे और मानव-शक्ति पक्ष की पूर्ति क्षत्रिय करते थे। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के अनुसार वैदिक समाज में ब्राह्मण श्रेणी ही सेनाध्यक्षों के कार्य का संचालन करती थी। इस प्रकार नीति-निर्माता अंग प्रत्येक मानव संस्थान के लिए अनिवार्य ही नहीं वरन् इसकी सफलता भी इसी की कार्य कुशलता पर निर्भर करती है।

राज्य जैसी संस्था और इसके अंगों की शक्ति का अनुमान लगाने के संदर्भ में कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के बल का उल्लेख किया है: मन्त्रशक्ति। (अधि. ६, अ. २) इनमें सर्वोच्च एवं सर्वप्रथम शक्ति है ज्ञान बल मंत्र

शक्ति : (अधि ६, अ २) अथवा ज्ञान से प्राप्त शक्ति अर्थात् बुद्धिबल जिसे राज्य कार्य पद्धति की शब्दावली में राज्य मंत्री यान का संचालन करने हेतु नीति का उचित नियोजन कह सकते हैं। शक्ति का दूसरा स्रोत प्रभुशक्ति है जो कोष तथा दण्ड अथवा पूर्णतः सुसज्जित सशस्त्र सेनाओं द्वारा प्राप्त होता है : कोष दण्ड बल प्रभुशक्ति : (अधि ६, अ. २, अर्थशास्त्र)। इस प्रकार कौटिल्य का विश्लेषण प्रारंभ में उल्लिखित त्रिविध धारणा से मेल खाता है, क्योंकि उसके अनुसार शक्ति का तीसरा स्रोत विक्रम अथवा मानव-शक्ति है। पुनः शुक्र ने अपने नीतिशास्त्र में छह[1] प्रकार की शक्तियों का वर्णन किया है। शारीरिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति सैन्य शक्ति, बौद्धिक शक्ति अथवा बुद्धिबल। अन्तिम शक्ति ही अन्य शक्तियों को नियन्त्रित एवं निर्देशित करती है और इस प्रकार किसी भी संस्था के सफल संचालन के लिए आवश्यक है। सेनाध्यक्षों की धारणा इसी बुद्धिबल का प्रतीक स्वरूप है। यदि किसी कार्यवाही के समय इसके उपयोग का समुचित नियोजन न हो सके अथवा उसमें किसी प्रकार की कमी रह जाय तो कुशल सेनापतियों द्वारा संचालित पूर्णतः सुसज्जित एवं प्रशिक्षित सेना का क्या लाभ ? इसके विपरीत ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब अपेक्षाकृत कम सुसज्जित और छोटी सेना ने अपने नियोजकों के बुद्धिबल के कारण अपने से कहीं बड़ी और अधिक सुसज्जित सेना को पराजित कर दिया। इस प्रकार सेनाध्यक्षों की धारणा सशस्त्र सेनाओं के संगठन की वास्तविक ज्ञान बल सम शक्ति ही है।

यदि उपर्युक्त विवरण इस संस्था के शास्त्रीय उद्गम के आधारभूत सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है तो यूनान के नगर राज्यों और पूर्व में आर्यावर्त के वैदिक राजतन्त्र में राज्य के अंग के रूप में इसके प्राचीनतम अस्तित्व का पता लगाया जा सकता है।

यूनानी नगर राज्य और रोमन साम्राज्य—

यूनानी नगर राज्य में शासन के अंग थे मजिस्ट्रेट, पांच सौ नागरिकों की सभा और सभा के रूप में शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम जनता। जनता द्वारा निर्वाचित सेनापति (Generals) एथेन्स के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मजिस्ट्रेट होते थे। मराथान के युद्ध के समय तक एथेन्सवासी कबीलों के रूप में युद्ध में सम्मिलित होते थे जिनका अपना निर्वाचित सेनापति होता था। रक्षा सम्बन्धी सभी प्रश्नों पर नियन्त्रण शक्ति से अभिहित समान-पद के दस जनरल होते थे जिन्हें बाजार में सरकारी आवास मिले होते थे और सामरिक मामलों में जनरल स्टाफ की भांति

1.–शरीरं हि बलं शौर्यं बलं सैन्य बलं तथा।
चतुर्थं मास्त्रिक बलं पंचमं धीबलं स्मृतम्॥

—शुक्रनीति अध्याय ४ श्लोक ८९८

कार्य करते थे। यह जनरल स्टाफ बोर्ड स्पष्ट रूप से सेनाध्यक्षों की समिति का ही आरम्भिक एवं अपरिष्कृत रूप था।

रोमन साम्राज्य के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि कोई भी आक्रमण करने से पूर्व सम्राट अपने सेनापतियों से परामर्श किया करते थे। यह परामर्श सर्वोच्च स्तर पर नियोजन के समान ही था। इस प्रकार के परामर्श को आधुनिक लोकतन्त्र में कैबिनेट की रक्षा समिति के विचार विमर्श के समान कहा जा सकता है। परन्तु प्राचीन साम्राज्यवादी व्यवस्था में राज्याध्यक्ष सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में बहुधा सर्वोच्च सेनापति हुआ करता था, अतः इस प्रकार सेनापतियों से उसके घनिष्ट सहयोग को 'सैनिक क्षेत्र' में नियोजन ही समझा जा सकता है, परन्तु यह आधुनिक लोकतन्त्रात्मक व्यवहार से बिल्कुल भिन्न था। जिसमें सैनिक अध्यक्षों को योजना के लिए नागरिक अधिकारियों की स्वीकृति लेना आवश्यक होता है। सैनिक नियोजन के उद्देश्य से सेनापतियों के साथ परामर्श करने की सर्वमान्य प्रथा जूलियस सीज़र के काल से ही चली आ रही है।

फिर भी आरम्भ में ही इस बात पर बल देना आवश्यक है कि सैनिक अध्यक्षों द्वारा नियोजन की प्राचीन पद्धति कार्यवाही के समय सेनाध्यक्षों की समिति द्वारा तीनों सेवाओं में समन्वय स्थापित करने की आधुनिक प्रथा का प्रतिनिधित्व नहीं करती। ऐसा होना स्वाभाविक ही है' क्योंकि उस युग में वायु युद्ध की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। फिर भी प्राचीनकाल में सैनिक नियोजन आधुनिककाल की भाँति समन्वयन पर आधारित था, भले ही यह समन्वयन पदाति सेना, अश्वारोही-सेना और हस्ति-सेना तथा कभी-कभी नौ-सेना के अंगों वाली सशस्त्र सेनाओं तक ही सीमित था।

नियोजन की तीन आधारी अवस्थाएं—

थल और जल पर संयुक्त कार्यवाही किसी भी प्रकार आधुनिक नहीं कही जा सकती। छठी शताब्दी में भी एक समुद्री अभियान हुआ था, जब ग्रेगियन सैनिक प्रतिभा बेलिसेरिअस (Belisarius) को जल और थल दोनों का ही प्रधान सेनापति नियुक्त करके 'अपनी इच्छानुसार इस प्रकार कार्य करने की, मानो कि सम्राट् स्वयं *उपस्थित हों, असीम शक्ति दी गई थी।*" *कुस्तुन्तुनिया से सम्राट् जस्टिनियन* (Emperor Justinion) इस अभियान का निर्देशन कर रहे थे, उनके अनुसार बेलिसेरिअस के अभियान का उद्देश्य उत्तरी अफ्रीका के प्राचीन रोमन प्रांत जिस पर उन दिनों कला विध्वसकों (Vandals) का आधिपत्य था, विजय प्राप्त करना था। बेलिसेरिअस ने अपनी कार्यवाही की योजना इस प्रकार बनाई कि नौ सैनिकों का सामना न करना पड़े। युद्ध समिति ने कार्थेज (Carthage) पर सीधे आक्रमण की योजना बनाई थी, पर उसने दक्षिण दिशा का मार्ग अपनाकर और कार्थेज से १५० मील दूर काप्युट वाडा (Caput Vada) नामक स्थान पर डेरा डालकर ऐसा किया। इस घटना की यदि निकट से व्याख्या की जाय तो पता चलेगा कि सैनिक

नियोजन की कुछ मुख्य अवस्थाएं इतनी मौलिक होती हैं कि आधुनिक काल की भांति प्राचीन काल की युद्ध कार्यवाहियों में भी वे आवश्यक रूप में मिलते हैं।

"युद्ध-परिषद्" की उपस्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि किसी भी सैनिक अभियान के लिए उच्चतम स्तर पर नियोजन की परम आवश्यकता होती है। अत: सम्राट जस्टिनियन द्वारा कार्थेज की विजय के लिए कुस्तुन्तुनिया में नियोजन की दो अवस्थाएं पूरी की गई होंगी, क्योंकि इससे पूर्व कि सम्राट अपने सेनाध्यक्षों और जनरलों से परामर्श करता यह आवश्यक था कि व सम्राट की स्वीकृति के लिए आगामी मन्त्रणा द्वारा दक्ष योजनाएं तैयार कर सकें। अतः जब एक सुनिश्चित कार्य के लिए बलिसरियस को एक बार प्रधान सेनापति नियुक्त कर दिया गया, तो अपने विवेकानुसार कार्य करने की पूरी छूट होने के कारण दैनिक सैनिक कार्यवाही का नियोजन उसके लिए आवश्यक हो गया। इस प्रकार किसी भी कार्यवाही के लिए सैनिक नियोजन की तीन सुनिश्चित अवस्थाएं होती हैं। प्रथम अवस्था तो उच्चतम स्तर पर होती है जब राज्य की राजनीतिक शक्ति, चाहे इसका वाहक कोई नागरिक हो अथवा सैनिक तानाशाह अथवा प्राचीन एवं मध्यकालीन कोई प्रभावी सम्राट, राज्य के विश्वस्त सेनाध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत योजना पर विचार-विमर्श करके उसमें परिवर्तन करता है अथवा उसे स्वीकार कर लेता है। यह आवश्यक नहीं कि उच्चतम स्तर पर यह नीतिनियोजन अनुक्रम की दृष्टि से भी प्रथम ही हो, क्योंकि इसके लिए आवश्यक है कि इससे पूर्व योजनाओं की तैयारी हो चुकी हो, जिसमें विश्वस्त सेनाध्यक्ष ने कार्यवाही के लिए विस्तृत योजना तथा इसके क्रियान्वयन के लिए उठाए जाने वाले कदमों की सामरिक उपयुक्तता पर विचार कर लिया हो। सैन्यवादियों द्वारा किये जाने वाले दक्ष नियोजन के लिए यह आवश्यक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है और राज्य की अन्तिम सत्ता की स्वीकृति प्राप्त करते समय उच्चतम स्तर पर विचार विमर्श का आधार बनता है। युद्ध क्षेत्र में दैनिक कार्यवाही के निर्देशन के लिए नियोजन की तीसरी अवस्था आवश्यक रूप से कमान स्तर पर होती है, और इसके लिए उपयुक्त नियोजन सगठन सेनाध्यक्ष की सहायता करता है। यहां पर आगामी अवस्थाओं की कुंजी मुख्यतः आधारी दक्ष योजना से सबधित है, जिसे राज्य की सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता की स्वीकृति प्राप्त करने तथा कमाण्डरों को निर्देश देकर स्वीकृत योजना पर रणक्षेत्र में व्यवहार कराने के लिए विश्वस्त सेनाध्यक्ष ही तैयार करते हैं।

आधुनिक काल में सैनिक विशेषज्ञों ने इस मूल नियोजन को जिस विशिष्ट कला के स्तर तक पहुँचा दिया है, राजनीतिक तत्र के विकास की आरम्भिक अवस्थाओं में निश्चय ही ऐसा दिखाई नहीं पड़ता, फिर भी लिखित इतिहास के प्रारम्भिक काल से ही दक्ष सैनिक अधिकारियों की सहायता से विचार-विमर्श और नियोजन किसी साम्राज्यवादी अभियान अथवा युद्ध प्रयास का सुनिश्चित लक्षण

था। इस प्रकार अपने मूल रूप में सेनाध्यक्षों की समिति किसी भी प्रकार आधुनिक काल की उपज नहीं है, क्योंकि लिखित इतिहास का प्रारंभिक उदाहरण वैदिक राजतंत्रों में मिलता है। वैदिक राज्य के आंशिक स्वरूप में जो प्राचीन इतिहास के उत्तर वैदिक काल में धीरे-धीरे प्रदेशवासी स्वरूप में विकसित हुआ, हम सैनिक नियोजन की स्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं।

आर्यावर्त के वैदिक राजतंत्रों में सैनिक नियोजन :

वैदिक राजा सर्वप्रथम और मुख्यतः राज्य की सशस्त्र सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। अभिषेकोत्सव के आवश्यक अंग वाजपेय यज्ञ में उसे प्रतीकात्मक रथ दौड़ में सम्मिलित होकर विजयी होना पड़ता था। इससे इस बात का पता मिलता है कि नेतृत्व के लिए सैनिक क्षमता राजत्व के लिए आवश्यक गुण थी, जिसकी रथ दौड़ में परीक्षा होती थी, यह अत्यावश्यक था क्योंकि ऋग्वेद के अनुसार राजा "युद्ध रूप से अपनी प्रजा का रक्षक (गोपाजनस्य) होता था।"[2] फिर भी राज्य के रक्षा कार्यों का संचालन करने के लिए वैदिक राजा की सहायता के लिए एक रत्न सभा होती थी, जिसमें राजा के संबंधी यथा रानी और युवराज तथा राज पुरोहित के अतिरिक्त निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सैनिक अधिकारी होते थे (i) सेनानी अथवा प्रमुख सेनापति (ii) सूत अथवा रथ सेना का सेनापति और (iii) रथकार अथवा रथ निर्माता। इसके अतिरिक्त इसमें ग्रामणी अथवा ग्राम प्रमुख और संग्रहिता अथवा कोषाध्यक्ष भी शामिल होते थे परन्तु प्रारंभिक अवस्था में आधारभूत नियोजन के लिए उत्तरदायी सैनिक अधिकारियों के निकाय में सेनानी, सूत और रथकार ही होते थे। निस्सन्देह वैदिक राजा सदा प्रभावी प्रधान सेनापति होने के साथ-साथ अपने द्वारा आरम्भ किए गए युद्ध का व्यक्तिगत रूप से संचालन करता था इसलिए सेनानी और सूत उसके बिना कोई नियोजन नहीं कर सकते थे। अतः यह सम्भव है कि राजा भी नियोजन की प्रारंभिक अवस्थाओं में शामिल होता हो। परन्तु फिर भी इस बात की अधिक सम्भावना है कि सम्राट से मिल-कर उसके सम्मुख अपना सुनिश्चित परामर्श उपस्थित करने से पूर्व सैनिक अधिकारी आपस में विचार-विमर्श करते हों, इस व्यक्तियों द्वारा यह विचार-विमर्श नियोजन की प्रथम अवस्था का प्रतीक था। बाद में सम्राट पुरोहित और अन्य रत्नों की सहायता से कार्य संचालन हेतु अन्तिम दिशा निर्देश देता था। रत्न-सभा द्वारा विचार-विमर्श सर्वोच्च स्तर पर नियोजन का प्रतीक था। यदि वैदिककालीन राजा स्वयं ही सर्वोच्च सैनिक विशेषज्ञ होता था तो सेनानी और सूत द्वारा नियोजन का महत्त्व घट जाता था। कमान-स्तर पर योजना की तीसरी अवस्था राजा के व्यक्तिगत रूप से युद्ध-स्थल पर उपस्थित रहने के कारण इसी प्रकार

२—ऋग्वेद III ४३-५

किसी सेनापति को सौंप दी जानी होगी। इस प्रकार राज्य के जातीय स्वरूप में जब राज्य तोरण का मुख्य स्थल स्वयं राजा होता था नियोजन की तीनों अवस्थाओं को वह एक ही व्यक्ति में समाहित कर सकता था। फिर भी सशस्त्र सेनाओं के विस्तृत सगठन पर आधारित साम्राज्य के आकार और प्राचीन सभ्यता के विकास के साथ सैनिक नियोजन की तीनों अवस्थाओं का भी विकास हुआ और वे जटिल बनती गई।

मौर्य और गुप्त साम्राज्यों में सैनिक नियोजन और रक्षानीति-निर्माण

मौर्य साम्राज्य (३२२–२०० ई० पू०)

मौर्य और गुप्त साम्राज्य साम्राज्य गठन के प्रमुख उदाहरण हैं जिनका राजनीतिक और सैनिकतंत्र के उचित केन्द्रीकरण के आधार पर और तत्कालीन विश्व इतिहास के किसी भी साम्राज्य के लिए उपयुक्त सभ्यता के साथ विकास हुआ, अतः भारतीय इतिहास के इस युग का हम सैनिक नियोजन के दृष्टिकोण से अध्ययन करेंगे। मौर्य साम्राज्य सगठन में राजतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति सशस्त्र सेनाएं थीं। सैनिक नियोजन की तीन अवस्थाओं-नीति, दक्ष और कमान जो वैदिक राजतंत्र में अविकसित रूप में विद्यमान थीं-, का इतना विकास हुआ कि वे राज्य के राजनीतिक तंत्र का पृथक् और सुनिश्चित क्षेत्र बन गई। उदाहरणार्थ, रक्षानीति निर्माण कार्य युद्ध सभा को सौंप दिया गया था जिसके लिए राज्य की सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता की स्वीकृति की आवश्यकता थी, फिर भी आधारी योजनाएं सेनापति के अधीन सैनिक अधिकारियों द्वारा बनाई जाती थी। मोटेतौर पर इसे वही कार्य कहा जा सकता है जो आधुनिक युग में सेनाध्यक्ष की समिति को सौंपा गया है।

इस विषय पर उपलब्ध अत्यल्प साहित्य में यद्यपि सेनापति के अधीन योजना सगठन का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता फिर भी यह सगठन युद्ध-सभा के विचार-विमर्श के लिए आधार प्रस्तुत करता होगा। निस्सन्देह मौर्य और गुप्त साम्राज्यों में उपलब्ध विस्तृत सैनिक सगठन युद्ध सभा द्वारा नीति सबंधी निर्णय लिए जाने से पूर्व "प्राथमिक सैनिक नियोजन का आवश्यक कार्य सम्पन्न करता रहा होगा।" यहाँ हम सेनापति के नियोजन सगठन तथा आवश्यक राजनीतिक अंगों की स्वीकृति से राज्य के रक्षा नीति निर्माण में उसकी सहायता की सीमा से सबंधित हैं, अतः इस विषय का उचित मूल्यांकन करने के लिए साम्राज्य के राजनीतिक और सैनिक क्षेत्रों का सक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक जान पड़ता है।

युद्ध-सभा और नीति नियोजन :

युद्धतंत्र का सर्वोच्च अंग युद्ध-सभा थी। युद्ध और शान्ति से सबंधित मौलिक महत्व के सभी निर्णय युद्ध-सभा के मन्त्रियों की सलाह से लिए जाते थे। महाभारत के अनुसार सभा का यह कार्य था कि आक्रमण अथवा रक्षा सबंधी किसी भी

नीतिनिर्धारण से पूर्व वह राज्य और इसके सहयोगियों के साधनों की शत्रु के साधनों से तुलना एवं समीक्षा करें। मौर्य और गुप्त साम्राज्य इस परामर्श का अक्षरशः पालन करते थे। इस विशिष्ट विषय से संबंधित विचार-विमर्श को नय विवेक कहते थे, नीति पर आधारित नीति का पालन किया जाता था। भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि सफलता के लिए परमावश्यक इस महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श पर ही विजय निर्भर करती है।[3]

अकस्मात प्रक्रिया नृणामक स्मात्चार वर्पणम्।

शुभाशु मे महत्व च प्रक्तुं बुद्धिलाघवात्॥

पुनः कामदक[4] के अनुसार युद्ध-सभा द्वारा विचार-विमर्श की शक्ति निश्चय रूप से पाशविक बल से उच्चतर की थी। मौर्यकाल में युद्धसभा में मंत्री, युवराज और सेनापति होते थे और इसका अध्यक्ष राजा होता था। इस बात का प्रमाण उपलब्ध है कि युद्धकाल में युद्ध-स्थल पर भी इस प्रकार की युद्ध-सभाओं का आयोजन होता था। गुप्तकालीन शिलालेखों से पता चलता है कि युद्ध-सभा किन्हीं अर्थों में साम्राज्य के प्रशासन तंत्र की स्थायी संस्था बन गई थी और इसे महत्त्वपूर्ण युद्धों का संचालन करना पड़ता था। गुप्त काल के बाद मध्यकालीन राजपूत युग में भी युद्ध सभा रक्षा की संयुक्त व्यवस्था का आवश्यक अंग थी।

युद्ध-सभा की संरचना समय-समय पर बदलती रही होगी। उदाहरणार्थ, मौर्य प्रशासन में युवराज की महत्ता आगामी काल की अपेक्षा अधिक जान पड़ती है। साथ ही बहुत कुछ व्यक्ति विशेष के गुणों पर भी निर्भर करता होगा। उदाहरणार्थ, वैदिक राज्यों में पुरोहितों का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण था, परन्तु गुप्त कालीन राजनीतिक संगठन के अध्ययन से पता चलता है कि अब वह अंतरंग सभा का सदस्य नहीं रह गया था। युद्ध-सभा की संरचना किसी भी प्रकार की क्यों न रही हो, इसमें सन्देह नहीं कि राजा के सर्वाधिक विश्वस्त और महत्त्वपूर्ण सैनिक एवं नागरिक अधिकारी राज्य की अन्तिम रक्षा-नीति का निर्माण करने तथा पदाति, अश्वारोही, हस्ति तथा रथ सेना के अध्यक्षों के साथ विचार-विमर्श के पश्चात् सेनापति द्वारा समय-समय पर प्रस्तुत किए जाने वाले सैनिक नियोजन के संशोधन अथवा स्वीकृति के लिए इस छोटे से सघननिकाय में सम्मिलित होते थे।

प्राचीन भारत के राजनीतिक सिद्धान्त में उच्चस्तरीय विचार-विमर्श के महत्त्व पर बार-बार बल दिया गया है। मंत्रियों से परामर्श की आवश्यकता का उल्लेख महाभारत में भी आया है क्योंकि सभा पर्व में नारदजी युधिष्ठिर को समझाते

३-महाभारत, शान्तिपर्व, ११२, ८४

४-कामन्दक, नीतिसार (संस्कृत सिरीज में गणपति शास्त्री द्वारा संपादित)

हैं कि राज्य की सफलता मंत्रीसभा के विचार-विमर्श का ही परिणाम है : विजयो मन्त्र मूलो हि राज्ञा भवति भारत । [5] इसी प्रकार शान्ति पर्व में भीष्म युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं कि मन्त्रियों के विचार-विमर्श के आधार पर ही राज्य की प्रगति निर्भर करती है : मन्त्रियो मन्त्र मूलं हि राज्ञो राष्ट्रं विवर्धते । [6] यह कह कर कि जिस प्रकार 'एक पहिए से गाड़ी नहीं चलती ।' उसी प्रकार राजा भी सभासदों के बिना राजतन्त्र नहीं चला सकता कौटिल्य भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करता है सहाय साध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते । [7] इसी प्रकार शुक्र भी अपनी नीति में इसी पर बल देता है कि राजा सर्वज्ञ नहीं हो सकता अतः उसे कुशल मन्त्रियों की सहायता प्राप्त करनी चाहिए ।

दक्ष सैनिक नियोजन और परिषदों की संख्या

सेनाध्यक्ष होने के साथ-साथ युद्ध मन्त्री का भी पद सम्भालने वाले सेनापति का स्थान मौर्य काल के प्राथमिक सोपान में युवराज के पश्चात् आता था और परिषदों के सिद्धान्त पर आधारित एक नियमित सैनिक संगठन उसकी सहायता करता था । इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य की सशस्त्र सेनाओं के शीर्ष पर एक नियमित युद्ध कार्यालय था जिसमें सैनिक संगठन के कुशल संचालन के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी पाँच-पाँच सदस्यों की छह परिषदें होती थीं । इस प्रकार तीस सदस्यों का एक आयोग होता था जिसमें निम्नलिखित छह परिषदें होती थी :

(१) नौ सेनाध्यक्ष (Admiral) के सहयोग में नौ सेना ।
(२) यातायात, भोजन और सैनिक सेवा जिसमें ढोल बजाने वाले, साईस, यान्त्रिक और घास काटने वाले होते थे ।
(३) पदाति सेना
(४) अश्वारोही सेना
(५) युद्ध के रथ
(६) हस्ति

इन परिषदों के संगठन का पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं है, परन्तु ऐसा लगता है कि प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष परिषद् का भी अध्यक्ष होता था । उदाहरणार्थ यदि थल सेना पर विचार करें तो इसमें निम्नलिखित चार सचालक होते थे जो सेनापति की अध्यक्षता में अपनी-अपनी परिषद् के अध्यक्ष होते थे :

५—सभापर्व, अध्याय ५, श्लोक १७
६—शान्तिपर्व, अध्याय ८४, श्लोक ४५
७—अर्थशास्त्र, अधि० १, अध्याय ७

पत्त्याध्यक्ष–पदाति सेनाध्यक्ष

महाश्वपति–अश्वारोही सेना का अध्यक्ष

हस्त्याध्यक्ष–हस्तिसेना का अध्यक्ष (गुप्त काल में उसका नाम महापीलुपति हो गया था)

रथाधिपति–रथ सेना का अध्यक्ष

यद्यपि इस बात का कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि मौर्य काल में आधुनिक काल के सेनाध्यक्षों की समिति जैसी कोई संस्था थी, फिर भी इस बात की कल्पना की जा सकती है कि उपरलिखित चार सेनाध्यक्षों के साथ सेनापति समय-समय पर गोष्ठियां करता होगा और उनके परामर्श से ही सैनिक योजनाओं को अन्तिम रूप देता होगा। इस प्रकार दक्षनियोजन जो आधुनिक सेनाध्यक्षों की समिति का कार्य है, उस युग में उचित ढंग से विकसित हुआ होगा क्योंकि सेनापति की अध्यक्षता में अपनी-अपनी परिषद् के अध्यक्ष के रूप में चार सेनाध्यक्ष यातायात योजन और सैनिक सेवा परिषद् के अध्यक्ष के साथ मिलकर युद्ध-सभा के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए योजनाएं बनाया करते थे।

कमान नियोजन

कमानस्तर पर आवश्यक सैनिक नियोजन की तीसरी अवस्था अपने वर्तमान अर्थ में नहीं रही होगी क्योंकि मौर्य और गुप्त राजाओं के अधिकतर अभियानों के समय सम्राट स्वयं युद्ध-स्थल पर उपस्थित रहता था। युद्ध की बदलती हुई परिस्थितियों के कारण युद्ध-सभा द्वारा स्वीकृत योजना में यदि संशोधन की आवश्यकता पड़ती तो सारी कार्यवाही का प्रभावी नियंत्रण राजा के हाथ में होने के कारण, इसमें कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती थी, यद्यपि इन संशोधनों को सैद्धान्तिक रूप से कमानस्तर पर नियोजन माना जा सकता है।

गुप्त साम्राज्य (ई० ३२०–६०६)

राजनीतिक अंग और नीति-नियोजन

गुप्त साम्राज्य के राजनीतिक संगठन की सहायता के लिए एक मंत्री परिषद् थी; शुक्रनीति के एक महत्त्वपूर्ण श्लोक के अनुसार इसके निम्नलिखित सदस्य होते थे[8]—

प्रधान अर्थात् प्रधानमंत्री	अमात्य अर्थात् राजस्वमंत्री
सचिव अर्थात् युद्धमंत्री	सुमंत्र अर्थात् वित्तमंत्री
मंत्री अर्थात् विदेशमंत्री	दूत अर्थात् कूटनीतिमंत्री
पंडित अर्थात् धर्म और नैतिकतामंत्री	प्रतिनिधि अर्थात् युवराज
प्राड् विवाक अर्थात् न्यायमंत्री	पुरोहित अर्थात् राज्य पंडित[8a]

८- शुक्रनीति II, ८३–८४

८a- देखिए The Cambridge History of India Vol. I. P. 95
"पुरोहित राजा के साथ युद्ध में जाया करता था।"

सर्वदर्शी प्रधानस्तु सेना वित्ता चिवस्त था ।। मंत्री तु नीति कुशल पंडितो धर्म तत्त्व वित् । लोकशास्त्र नय ज्ञस्तु प्राड्विवाकः स्मृतः सदा ।। देशकाल प्रविज्ञा वाह्य मात्य इति कथ्यते । आयव्यय प्रविज्ञाता सुमन्त्र सच कीर्तितः ।। इंगिताकार चेष्टज्ञः स्मृतियान्देशवा सवित् । षाड् गुण्य मन्त्र विद्वाग्मी वीत भी दूंत इष्यते ।। भहितँचापि यत्कार्यं सद्यः कर्तुं य दौचितम् । अकर्तुंया द्वितमपि राज्ञः प्रतिनिधि : सदा ।। बोध येत्का रयेत्तुर्यान्न कुर्यान्न प्रवोधयेत् । सत्यं वायदिवा सत्यकार्य जातचय किल ।। सर्वेषांराज कृत्येषु प्रधान स्त न्दिचितयेत् ।।

शुक्रनीति II

ऊपर वर्णित प्रथम तीन मंत्री राज्य की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी थे। राज्य की उच्चतर रक्षा नीति का नियोजन करने के लिए उत्तरदायी युद्ध-सभा का ये अधिकारी ही निर्माण करते थे। ऐसा लगता है कि गुप्त काल में विदेशमंत्री के महत्त्व पर पर्याप्त बल दिया जाता था, क्योंकि वह न केवल महासंधि विग्रहक के रूप में आता था वरन् उसकी सहायता के लिए दूत अर्थात् कूटनीतिमंत्री सहित एक नियमित संगठन था। महासंधि विग्रहक अर्थात् विदेशमंत्री का कर्त्तव्य था कि युद्ध संबंधी नियोजन हेतु वह साम, दाम, दण्ड और भेद चारो उपायों का पूर्ण प्रयोग करें। इसी पृष्ठ पर दी गई तालिका में गुप्तकालीन युद्ध-सभा के संगठन का स्पष्ट वर्णन किया गया है।

इस सभा के अस्तित्व की आवश्यकता को शुक्र ने एक श्लोक में इस प्रकार वर्णित किया है :

राज्यं प्रजाबल कोशः सुनृ पत्वं न वर्धितम ।
यन्मंत्र तो रिनाश स्तैर्मत्रिभिः किं प्रयोजनम् ।।९

९ शुक्रनीति II, ८९
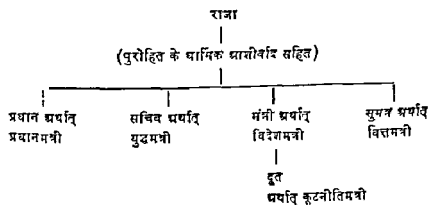
(मन्त्रियों की नीति द्वारा यदि राज्य, जनता, सेना, कोष और अन्ततः उचित राजतन्त्र (सुरक्षतंत्र) की वृद्धि अथवा शत्रु का नाश नहीं होता तो मन्त्रियों के अस्तित्व का क्या प्रयोजन है?) इस प्रकार यदि गुप्तकालीन उन्नततर रक्षा संगठन मौर्य-कालीन रक्षा संगठन से परिष्कृत था तो सेनापति अर्थात् मुख्य सेनाध्यक्ष के अधीन आधारी सैनिक नियोजन में जो गुप्तकालीन सैनिक संगठन में समुचित विकास के चिह्न प्रकट हुए।

गुप्तकालीन दक्ष सैनिक नियोजन

सैनिक संगठन के चारों अंगों की देखभाल करने के कई उपविभाग और निदेशालय सेनापति अर्थात् मुख्य सेनाध्यक्ष की सहायता करते थे। मौर्य प्रतिमान के अनुरूप ही निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए एक विभाग था:

पत्ताध्यक्ष—के अधीन पदाति सेना

महाअश्वपति—के अधीन अश्वारोही सेना

हस्त्याध्यक्ष (जिसे गुप्तकाल में महापीलुपति कहते थे) के अधीन हस्तिसेना

रथाधिपति—के अधीन रथ सेना

इन चार सेनाध्यक्षों के साथ-साथ अश्वपतियों और हस्तिपतियों के अधीन 'सहनीय' अर्थात् अस्तबलाधिपति (Master of Stables) होते थे। यह घोड़ों और हाथियों दोनों पर ही जिनके लिए अस्तबल चलाए जाते थे, लागू होता था।

फिर भी सैनिकतन्त्र के विकास में गुप्त साम्राज्य का मुख्य योगदान समस्त सेनाओं के मुख्यालय (headquarters) संगठन का है, जिसका नियोजन आधुनिक पद्धति पर हुआ था। इसमें महाव्यूहपति नामक नीतिनिर्धारक सेनाध्यक्ष (Chief of Staff), रण भाण्डागाराधिकरण नामक सेना के गमनागमन का अधिकारी और आयुधागाराध्यक्ष नामक हथियारों और साज-सामान का अधिकारी होता था; क्योंकि रक्षा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पंक्ति दुर्ग होते थे अतः एक दुर्ग महानिरीक्षक भी होता था। मुख्यालय के इस प्राचीन सैनिक संगठन का जिसे इस अध्याय के परिशिष्ट 'घ' में संक्षेप में वर्णित किया गया है (देखिये पृष्ठ १२३) का इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है—

(1) महाव्यूहपति सेनाध्यक्ष का सैनिक सलाहकार होता था, उसका प्रति-रूप आधुनिक जनरल स्टाफ के चीफ (C. G. S.) में पाया जा सकता है। यह सम्भव है कि कार्यवाही सम्बन्धी योजना-निर्माण में उसकी सहायता करने के लिए उसके अधीन निदेशालयों का क्रम था। दण्डनायक जिनका गुप्तकालीन शिलालेखों और विशेष रूप से गुप्त की मुहरों में प्रमुखता से वर्णन आता है, शायद कर्नल या ब्रिगेडियर के पद के थे और निदेशकों की भाँति कार्य करते थे।

(2) रण भाण्डागाराधिकरण क्वार्टर मास्टर जनरल था जो भोजन विभाग की देखभाल करता था और समस्त सेना के गमनागमन के लिए उत्तरदायी

था । इस पद का विकास गुप्तकाल का लक्षण है क्योंकि गुप्त साम्राज्य मे ही सेना की आपूर्ति और गमनागमन की समस्याओं के लिए उत्तरदायी अधिकारी को यह विशेष पद नाम प्रदान किया गया था ।

(3) अस्त्र-शस्त्र और साज-सज्जा के अधिकारी को आयुधागाराध्यक्ष कहते थे । डा० अल्तेकर[9a] का कथन है कि शायद यह अधिकारी रणभाण्डागाराधिकरण के अधीन कार्य करता होगा, क्योंकि अस्त्र–शस्त्र युद्ध के आवश्यक अंग थे; पर यह भी सभव है कि आयुधागाराध्यक्ष का विभाग स्वतन्त्र रूप से सेनाध्यक्ष के अधीन सगठित होता होगा ।

(4) क्योंकि दुर्ग रक्षा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थिर सरचना थे, मुख्यालय पर दुर्गों का एक महानिरीक्षक होता था जो दुर्ग अध्यक्ष या कोटपाल के अधीन कई दुर्गों का अधिपित होता था ।

गुप्तकालीन प्रान्तीय प्रशासन को भी कुछ सैनिक कार्य करने पडते थे । सारा साम्राज्य कई प्रान्तो मे बंटा हुआ था, इन्हें देश कहते थे । देश जिलो या प्रदेशों मे बटे थे । देशो पर गोपत्रि अर्थात् सैनिक पडाव प्रतिपालक नामक अधिकारी शासन करते थे; इनके नाम से ही सिद्ध होता है कि प्रान्त के नागरिक प्रशासन की व्यवस्था के साथ–साथ उन्हें रक्षा उत्तरदायित्व का भी निर्वाह करना पडता था । इसके अतिरिक्त साम्राज्य मे अधीन राज्य भी थे । बिहार मे तिरामुक्ति या तिरहुत इनमे से एक था, जिसका प्रशासक राजकुमार गोविन्दगुप्त के अधीन केन्द्रीयतत्र का प्रारूप था । रक्षा कार्य के लिए नियुक्त निम्नलिखित अधिकारियो के साथ गुप्त राजकुमार की सहायता के लिए अनेक नागरिक अधिकारी भी होते थें, :—

(1) दण्डनायक अर्थात् कमान्डेण्ट

(2) भटाश्वपति अर्थात् अश्वारोही सेना का प्रमुख

(3) रणभाण्डागाराधिकरण अर्थात युद्ध विभाग का प्रमुख

(4) बलाधिकरण अर्थात् युद्ध कार्यालय का प्रमुख ।

इससे पता चलता है कि अधीनस्थ राज्य जिसका प्रशासन सम्राट का कोई सम्बन्धी करता था; राज्य के नियमित रक्षातत्र को अपनी निजी सामग्री से पूर्णत सुसज्जित था । यह महत्त्वपूर्ण है कि सेनाओ की सभी गतिविधियो पर केन्द्रीय सैनिक मुख्यालय का नियत्रण होता था, जो सैनिक आवश्यकताओ के अनुरूप पदाति और अश्वारोही सेना को साम्राज्य के एक कोने मे स्थापित करने का निर्देश देता था ।

ऊपर वर्णित गुप्तकालीन सैनिक सगठन के विवरण मे प्राचीन ससार में सैनिक नियोजन की चरमसीमा प्रदर्शित करने वाले तीन महत्त्वपूर्ण लक्षण हैं । प्रथम और सर्वप्रमुख तो महाव्यूहपति के पद की स्थापना है जो युद्ध सम्बन्धी योजनाएं

9a अल्तेकर State and Government in Ancient India, 1949

तैयार करने में सेनापति की दक्षिण भुजा का कार्य करता था। दूसरे, क्वार्टरमास्टर जनरल और आयुधाध्यक्ष जैसे मुख्य स्टाफ अधिकारियों के साथ मुख्यालय के संगठन की स्थापना द्वारा योजना निर्माण में सैन्य संचालन के महत्व पर उचित बल देकर सेनापति के अधीन सैनिक नियोजन कक्ष के कुशल कार्य संचालन को और अधिक विकसित किया। तीसरे, प्रान्तों और सहायक राज्यों में रक्षा संगठन ने सारे राज्य में सैनिकों के आवागमन को नियंत्रित एवं निदेशित करने वाले साम्राज्य के मुख्यालय संगठन को विकसित एवं सुदृढ़ किया। उस काल में त्रिविम पद्धति के युद्ध नहीं होते थे क्योंकि विभिन्न प्रकार की स्थल सेनाएं ही युद्ध के भाग्य का निर्णय करती थीं, फिर भी यह बात निर्विवाद है कि साम्राज्य के मुख्यालय पर महाव्यूहपति और उनके सहयोगियों की उपस्थिति सेना के विभिन्न अंगों यथा पदाति, अश्वारोही और हस्तिसेना में प्रभावी समन्वय तथा इससे भी अधिक महत्वपूर्ण नियोजन में एकरूपता बनाए रखती होगी। इस प्रकार गुप्तकाल में सेनापति के अधीन सैनिक नियोजन के संगठन को आधुनिक सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) के निकटतम माना जा सकता है।

गुप्त साम्राज्य में सेनापति की संवैधानिक स्थिति :-

गणवेशधारी सेनापति किस सीमा तक परिषद् का नियमित मंत्री था यह विवादास्पद विषय है। डा० जायसवाल[10] का मत है कि युद्ध मन्त्री और मुख्य सेनापति दो भिन्न-भिन्न पद होते थे, पूर्वोक्त पर एक नागरिक आसीन होता था और उत्तरोक्त पर एक सैन्य अधिकारी। परन्तु डा० अल्तेकर ने संकेत किया है कि सैनिक विभाग के अध्यक्ष को विभिन्न नामों से यथा सचिव (शुक्रनीति के अनुसार), सेनापति, महाबलाधिकृत और महाप्रचण्ड दण्डनायक से पुकारा जाता था, जिससे पता चलता है कि युद्ध मंत्री मुख्य सेनापति से भिन्न नहीं होता था।[11] फिर भी इस सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है यद्यपि सशस्त्र सेनाओं पर नागरिक नियंत्रण के सिद्धान्त की उपस्थिति का निश्चय करने के उद्देश्य से यह बात विशिष्ट महत्व की है। फिर यह महत्वपूर्ण है कि सचिव शब्द से एक नागरिक मंत्री का और महाबलाधिकृत से गणवेशधारी अधिकारी का बोध होता है। ऐसा कहा जाता है कि गुप्तकाल में ये दोनों ही पद नाम प्रयुक्त होते। अतः यह संभव है कि यदि सचिव युद्ध मंत्री था तो महाबलाधिकृत मुख्य सेनापति था। यह भी संभव है कि उस दशा में प्राचीन भारत के सारे राजनीतिक इतिहास में न सही, किसी काल में युद्ध मंत्री गणवेश में नहीं होता होगा। नीतिवाक्यमृत के एक परिच्छेद से भी इसे स्पष्ट समर्थन मिलता है, जिसमें प्रधान सेनापति को मंत्री मण्डल में सम्मिलित

10 जायसवाल, Hindu Polity, p. 297
11 अल्तेकर, State and Government in Ancient India (1949) p.122

करने का विरोध किया गया है।[12] इससे पता चलता है कि युद्धमंत्री मन्त्रिपरिषद् मे सम्मिलित होता होगा पर प्रधान सेनापति नहीं। इस प्रकार यदि दोनो पद अलग अलग थे और युद्धमन्त्री नागरिक एवं प्रधान-सेनापति गणवेशधारी अधिकारी होते थे तो रक्षा सेनाओ पर नागरिक नियंत्रण का सिद्धान्त किसी न किसी रूप मे विद्यमान रहा होगा।

फिर भी इस सम्बन्ध मे स्थिति बिल्कुल स्पष्ट नही है। उदाहरणार्थ प्रो० रायचौधरी का मत है कि महादण्डनायक 'सेना का महान संचालक (कमान्डेन्ट)' रहा होगा और मन्त्री (विदेशीमंत्री) महाबलाधिकृत अर्थात् सेनाओ का मुख्य सेनापति बन सकता था।[13] *यदि कोई नागरिक मुख्य सेनापति बन सकता था तो* यह भी संभव है कि आवश्यकतानुसार मुख्य सेनापति मन्त्रिपरिषद् का कोई विभाग भी ले सकता था। शुक्र के राजनीतिक सिद्धान्त से भी यही स्पष्ट होता है, जिसके अनुसार मंत्रियो के विभागो मे परिवर्तन आवश्यक है। शुक्र प्रति तीन, पाँच, सात या दस वर्ष पश्चात् *स्थानान्तरण की बात कहता है,* क्योंकि "किसी के भी हाथ मे सत्ता अधिक दिन तक नहीं रहने देनी चाहिए। योग्य मंत्री को किसी अन्य कार्य (विभाग) का अधीक्षक बनाया जाना चाहिए और उसके स्थान पर नया, सक्षम व्यक्ति आना चाहिए।" मौर्यकाल में भी मंत्रियों के इस स्थानान्तरण पर व्यवहार होता था। अशोक ने अपने एक शिलालेख मे पंचवर्षीय स्थानान्तरण को धर्म अथवा आवश्यक *नियम कहा है। स्थानान्तरण की इस प्रक्रिया को अनुसंयान कहते थे* और संभव है कि नागरिक मंत्री प्रधान सेनापति का स्थान लेकर प्रधान सेनापति बन जाता हो। उपरोक्त *स्थिति कठिन अवश्य होती होगी,* परन्तु *यदि यह सत्य है तो,* इससे सिद्ध होता है कि सचिव युद्धमंत्री ही होता होगा आवश्यक रूप से प्रधान सेनापति भी नहीं। युद्धमंत्री के लिए आवश्यक नहीं कि वह सैनिक भी हो, परन्तु *प्रधान सेनापति आवश्यक रूप से सशस्त्र सेनाओ से सम्बन्धित होना चाहिए।* फिर भी उपलब्ध विवरणो से प्रधान सेनापति और युद्धमंत्री की स्थिति पूर्णत. स्पष्ट नहीं है, और यह कहना कठिन है कि वे दो भिन्न अधिकारी होते थे अथवा एक ही। इस विषय मे सारे प्राचीन भारत के इतिहास मे *स्थिति अस्पष्ट ही* प्रतीत होती है।

स्थिति चाहे कुछ भी रही हो, इसमे सन्देह नही कि प्राचीन राज्य धर्म के सिद्धान्त पर आधारित था और लोक-कल्याण की भावना सर्वोपरि थी क्योंकि अर्थ और *काम धर्मराज्य के सर्वोच्च उद्देश्य थे।* यदि गणवेशधारी सेनापति मंत्रिमण्डल मे नियमित मंत्री होता था तो भी आधुनिक लोकतन्त्रीय अर्थ मे सरकार के मंत्रिमण्डल के प्रति सीधे उत्तरदायी न होने के कारण इस सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं होता था। प्राचीन राज्य मे सिद्धान्त और व्यवहार दोनो मे दण्ड अथवा शक्ति का

---

12 सोमदेव, नीतिवाक्यामृत (सं. नाथूराम प्रेमी) (1923) अ० 10, पृ० 101
13 H. R. Chaudhuri, Political History of Ancient India (1953) p. 560.

प्रयोग धर्म के नियमानुसार होता था और जैसाकि महाभारत में कहा गया है राज्य के नीतिशास्त्र में स्वर्ग की उपस्थिति मानी जाती थी।

सैनिक नियोजन का आगामी विकास

प्राचीन युग के समाप्त होने और मध्य युग के प्रारम्भ होने पर, सशस्त्र सेनाओं की शक्ति पर आधारित साम्राज्यवादी ढाँचे का केन्द्रीयकृत तन्त्र उचित नियोजन संगठन सहित, टूट कर बिखर गया और इसके स्थान पर ढीली-ढाली सामन्तवादी प्रणालियों का उदय हुआ जो विश्व इतिहास के मध्यकालीन युग में राज्य की सामान्य संस्थाएँ बन गईं। इस प्रकार जब तक सामन्तवाद अपने विकेन्द्रित रक्षा तन्त्र सहित तत्कालीन सामान्य राज्य प्रणाली बना रहा, विभिन्न परिस्थितियों के वैज्ञानिक परीक्षण पर आधारित आधुनिक सैनिक नियोजन, जिसने ललित कला का रूप धारण कर लिया है। उचित दिशा में प्रगति नहीं कर सका। परन्तु बारूद और सामन्ती उदग्रहण सेनाओं (levies) के विपरीत स्थायी सेनाओं की संख्या के अन्वेषण के कारण, धीरे-धीरे रक्षातन्त्र का केन्द्रीयकरण प्रारम्भ हुआ। शक्ति के इस नाभिक के निकट प्रशासन का केन्द्रीयकरण और राजसत्ता की अभिवृद्धि के साथ आधुनिक युग का प्रारम्भ हुआ। प्रशिया और ग्रेट ब्रिटेन ने सेनाध्यक्षों के संगठन की उचित धारणा और विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

648 ई० में हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भारतीय इतिहास ने सैनिक नियोजन के विकास के क्षेत्र में कोई योगदान नहीं दिया। इसमें सन्देह नहीं कि मुगल साम्राज्य के चरमोत्कर्ष काल में भी जबकि प्रशासन तन्त्र का पर्याप्त मात्रा में केन्द्रीयकरण और समकालीन इतिहास की साम्राज्यवादी संरचना के उपयुक्त सभ्यता का जन्म हुआ, रक्षातन्त्र के मूलतः सामन्तवादी सिद्धान्त को बदलने की दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया, क्योंकि मुगलों की मनसबदारी प्रथा आवश्यकरूप से उदग्रहण की धारणा पर आधारित थी। ब्रिटिश सेना और बीसवीं सदी के मध्य तक चलने वाले इसके सैनिक अधिग्रहण के साथ सेनाध्यक्षों की आधुनिक धारणा भारत में आई। फिर भी सेनाध्यक्षों की समिति का यथाविधि प्रारम्भ स्वतन्त्रता के पश्चात् ही हो पाया। नौ सेना और वायु सेनाध्यक्षों की इन सेनाओं के प्रधान के पद पर नियुक्ति हो जाने से ये स्थल सेनाध्यक्ष जो 1947 के पश्चात् युद्धमंत्री नहीं रहा—के अधीन नहीं रहे। साथ ही इस नए संगठन को गणतन्त्रीय भारत के संवैधानिक ढाँचे में ठीक से बैठाना था क्योंकि 1947 से पूर्व प्रधान सेनापति (सर्वोच्च सैनिक अधिकारी) (Supremo) के रूप में वायसराय के माध्यम से भारत मंत्री और इंग्लैंड की संसद के प्रति उत्तरदायी था।

अतः इस अध्ययन के उद्देश्य से मध्य युग के भाग के रूप में राजपूत काल को तथा इसके साथ-साथ भारत में मुस्लिम राज्य काल के घटनाक्रम का परीक्षण किया जा सकता है।

(ब) मध्य युग—

मध्य-युग में राजनीतिक संगठन का मुख्य स्वर सामंतवाद का था अतः सशस्त्र

सेनाओं की संरचना और शक्ति भी सामंती सरदारों पर आधारित थी। इससे प्रशासनिक प्रबल विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों को प्रश्रय मिला और मध्ययुगीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अथवा सैनिक किसी भी कार्य की सफलता असफलता पर मुख्यतः राजा की केन्द्रीय शक्ति और हठी सरदारों के संघर्ष की छाया पड़े बिना न रहती थी। इस कारण किसी भी प्रकार का केन्द्रीय नियोजन असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता था और सैनिक नियोजन विशेषरूप से प्रभावित होता था क्योंकि शासकीय संस्था के रूप में सामन्तवाद शान्तिकाल में अपने निजी क्षेत्र की और बाह्य आक्रमण के समय आश्रित राजाओं (Vessals) द्वारा संगठित सामन्ती सेना की धारणा पर आधारित था। इस कारण विशेषज्ञ और उच्चतर नीति दोनों ही स्तरों पर सैनिक नियोजन पश्चिम में सामन्ती परिषदों के माध्यम से सामन्ती सरदारों और भारत में मध्यकालीन राजपूत राजाओं की सामन्ती परिषद् एवं महासामन्त के हाथ में आगया। राजा अधिकतर समकक्षेषु प्रथमः हुआ करता था और जब तक राज्य की रक्षा को खतरा पैदा नहीं हो जाता था, सामन्ती परिषद् की बैठक नहीं हुआ करती थी; इसकी बैठक होने पर भी शक्ति और उद्देश्य का केन्द्रीकरण इतना क्षणिक होता था कि विशेषज्ञों द्वारा युद्धों का नियोजन कठिनाई से ही हो पाता था। परिणामस्वरूप युद्धों के भाग्य निर्धारण में अवसर निर्णायक भूमिका अदा करता था।

नॉर्मन राजाओं के अधीन इंग्लैंड के सामन्तवाद जिसने युद्ध के अधिकार का दमन कर दिया था अथवा विशिष्ट गुणसम्पन्न यूरोपीय सामन्तवाद अथवा इन दोनों से भिन्न उत्तरी भारत के राजपूत सामन्तवाद के विस्तृत वर्णन करने का यह स्थान नहीं है। इतना कहना ही पर्याप्त है कि सामन्ती उद्ग्रहण की प्रथा जिसके अधीन अश्वारोही और पदाति सैनिक देने पड़ते थे, सामन्तवाद की सभी प्रणालियों में समान रूप से उपलब्ध थी। सेवाकाल न तो नियमित था और न अनिश्चित। नॉर्मन और यूरोपीय सामन्तवाद के अन्तर्गत यह सीमित था और किसी भी अभियान के मध्य ही राजा की अपनी सेना जिसमें दूसरों से आदेश प्राप्त करने की अपेक्षा स्वयं आदेश देने में आनन्द लेने वाले सरदार सम्मिलित होते थे, बिखरने लगती थी।

सामन्तवाद का यह लक्षण गजनी के सुल्तान महमूद और गोर के मुइज्जुद्दीन मुहम्मद बिन साम के सतत इस्लामी आक्रमणों का प्रतिरोध करने के लिए अनेक बार गठित राजपूत राज्य मण्डलों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इस प्रकार विभिन्न हितों वाले व्यक्तियों को नियोजन कार्य सौंप दिए जाने पर सैनिक नियोजन और इसके संगठन की कला की प्रगति और विकास भी बाधित होती, एक संगठित योजना का निर्माण भी निश्चित नहीं रहता था और उस पर उचित व्यवहार करते समय सदा विघटनकारी प्रवृत्तियों का भय बना रहता था। इन परिस्थितियों में सामन्तवाद के इतिहास के अध्ययन से इस विषय की कोई लाभदायक उपलब्धि नहीं हो सकती। केवल इसी बात पर बल दिया जा सकता है कि प्रभावी केन्द्रीय

संरचना के प्रभाव और इस विकृत राजनीतिक संगठन के बावजूद भी सैनिक नियोजन की तीन आवश्यक अवस्थाएँ उपस्थित रहती थीं, भले ही वे कितनी ही अपरिष्कृत एवं अनियमित क्यों न रही हों। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में राजपूत राज्य के राजनीतिक संगठन के संक्षिप्त अध्ययन से इसका सरलता से पता लग सकता है। सल्तनत काल में स्थिति में थोड़ा सा और मुग़ल काल में कुछ अधिक सुधार हुआ।

राजपूत राज्यों (800-1200 ई०) में सैनिक नियोजन

सामंतों की एक परिषद् राजपूत राजा की सहायता किया करती थी। इसमें वे सामंती सरदार होते थे, जिन्हें स्थानीय प्रशासन के उद्देश्य से राज्य का भू-भाग बाँट दिया जाता था। राजा के साथ संयोजक कड़ी यह थी कि वे सहयोग की प्रतिज्ञा, राजभक्ति और सामंती त्रिकोण के शीर्ष के रूप में राजा की सेवा करते थे। महासामंत अर्थात् जागीरदारों पर नियन्त्रण करने वाले प्रमुख सामंती सरदार का राजपूत राजा की परिषद् में प्रमुख स्थान होता था। इसमें राजपूत राज्य की पदाति, अश्वारोही और हस्तिसेना का नियन्त्रक सेनापति (जिसे बहुधा महासेनापति कहते थे) भी होता था। इसके अतिरिक्त महासंधिविग्रहक अर्थात् युद्ध और शान्ति के मंत्री के पद का भी वर्णन मिलता है, परन्तु उत्तरी भारत के ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के सभी राज्यों में इसका पद आवश्यक नहीं था, फिर भी अन्तरंग परिषद् में महासामंत, सेनापति और महासंधिविग्रहक अवश्य होते थे। प्रधान को—जो बहुधा महासामंत होता था, को नागरिक प्रशासन में सहायता करने के लिए अमात्य होते थे और इस बात के उदाहरण मिलते हैं कि राजा को परामर्श देने के लिए नागरिक अधिकारियों को मंत्री स्तर तक पदोन्नत कर दिया जाता था। अतः राजपूत राज्य की उच्चतर रणनीति राजा के उपर्युक्त अधिकारियों के विचार विमर्श पर निर्भर करती थी। यदि इसे सैनिक नियोजन की उच्चतम अवस्था का प्रतिनिधि मान लें तो यह सम्भव है कि विशेषज्ञ नियोजन मूलतः सैनिक अधिकारियों-महासेनापति और महासामंत-द्वारा किया जाता था। किन्हीं परिस्थितियों में महासामंत सेनापति के उच्च पद पर भी आसीन होता था।

राजपूत राज्य में सैनिक अभियान यदि संघट्ट (Coalition) पर आश्रित न होता तो इस युग की सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए विशेषज्ञ नियोजन सम्भव एवं सन्तोषजनक हो सकता था। फिर भी जब संघट्ट बनते थे तो सैनिक नियोजन कई सामंतों और सम्मिलित राजपूत राज्यों के सेनापतियों को सौंपे जाने के परिणामस्वरूप परस्पर विरोधी हितों के कारण एक सुसंगठित योजना का निर्माण कठिन हो जाता था। उदाहरणार्थ गजनी के सुल्तान महमूद के आक्रमण के विरुद्ध 1001 ई० में गठित राजपूत संघट्ट को ही—जिसमें कन्नौज, साभर और जिझौती (आधुनिक बुंदेलखण्ड) के साथ-साथ ग्वालियर के कछवाहा राजा और नरवर और धार अथवा मालवा के पवार राजा सम्मिलित थे—सामंतों ने सेनापति के साथ विचार-विमर्श

किया और इसे ही दक्ष सैनिक नियोजना कहा जा सकता है। फिर जब अपनी योजना को अन्तिम रूप देने के लिए उन्होंने अपने-अपने राजाओं के साथ अपने निर्णयों पर विचार-विमर्श किया तो इसे सम्मिलित राज्यों का उच्चतर रक्षा नियोजन माना जा सकता है। कमान स्तर पर नियोजन की तीसरी अवस्था का भी अस्तित्व माना जा सकता है, क्योंकि जब सांभर के राजा विशाल देव को सम्मिलित सेना का नेतृत्व करने के लिए कहा गया तो सिद्धान्त रूप से यदि युद्ध अधिक समय तक चलता और सुदूर रणक्षेत्रों में लड़ा जाता तो उसके लिए संघर्ष की दैनिक योजना बनाना सम्भव था। भारतीय इतिहास के राजपूत काल में बहुधा कुछ घण्टों के वास्तविक संघर्ष से युद्धों का निर्णय हो जाता था अतः कमान स्तर पर नियोजन का सदा परीक्षण नहीं हो पाता था, और जब कभी इसका परीक्षण होता था तो इसका अभाव ही मिलता था, क्योंकि सामन्ती उदग्रहण की प्रणाली पर आधारित होने के कारण सब में सम्मिलित किसी भी राज्य की सेना भली-भाँति संघटित नहीं होती थी, अतः संयुक्त सेनाओं का प्रधान सेनापति अपना आदेश पालन कराने में बहुधा अशक्त होता था। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों में राजपूत राज्यों की संगठनात्मक प्रणाली से इस बात को बल मिलता है कि रक्षा की सर्वाधिक विकेन्द्रित संरचना में भी त्रिस्तरे नियोजन की मौलिक धारणा कभी दृष्टि से ओझल नहीं हुई[14] जिसमें दक्षनियो-जन की मुख्य स्थिति होती थी, और जो राजा की राजनीतिक स्वीकृति और सेना-ध्यक्षों द्वारा व्यवहार के लिए आधार प्रस्तुत करती था.

सैनिक नियोजन की इस तिहरी धारणा का महत्त्व राजपूत सामन्तवाद में इसकी उपस्थिति पर ही निर्भर नहीं करता। इतिहास की मुख्य बात तो यह है कि कि राजपूत सेनाओं द्वारा बाह्य आक्रमण का प्रतिरोध करने की सफलता का श्रेय इसी नियोजन की सफलता को है। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों के इस्लामी आक्रमण की अद्भुत सफलता जिसके फलस्वरूप देश में 600 वर्ष से अधिक तक मुस्लिम शासन बना रहा; भारतीय इतिहास के विद्यार्थी से व्याख्या की अपेक्षा रखती है। यह तो सर्वविदित है कि सुल्तान महमूद अपने मुख्याधार गज़नी से सैकड़ों मील दूर सैनिक कार्यवाही कर रहा था, कुमक प्राप्ति से पूर्णतः कटा हुआ होने पर भी वह शत्रु देश में सफलता पूर्वक कार्यवाही करता हुआ, अपने शत्रुओं को एक-एक करके हराता हुआ भारत के भीतरी भाग में सोमनाथ तक बढ़ता चला आया। इसका समाधान राजपूतों के शिथिल सैनिक संगठन और विशेष रूप से सभी अवस्थाओं में गम्भीर अपूर्णता से पीड़ित उनके नियोजन तंत्र में पाया जा सकता है। यह निश्चित सत्य है कि सफलता अधिकतर सैनिक नियोजन की कुशलता पर निर्भर करती है, साथ ही राजपूत सम्मिलित राज्यों का इतिहास भारतीय इतिहास के इस प्रमुख तथ्य के प्रति, जिसने देश को सैकड़ों वर्षों तक पराधीन बनाए रखा, सही दृष्टिकोण की

---

14 व्याख्यात्मक तालिका के लिए इस अध्याय का परिशिष्ट [आ] देखिए।

कुछ जो प्रस्तुत करता है। अतः राजपूतों के संगठनात्मक नियोजन का विस्तृत परीक्षण अनावश्यक नहीं होगा।

राजपूत राज्य मण्डलों का संगठन और नियोजन

राज्य मण्डल के नियोजन और उसकी व्याख्या में प्रारम्भ से ही जो अगणित कठिनाइयां थी, उन पर व्यवहार करते समय वे अजेय बन जाती थीं। विघटनकारी प्रवृत्तियों से उत्पन्न ये सहज कठिनाइयां राज्य मण्डल के शीघ्र विलय के लिए भी उत्तरदायी थीं, चाहे इसके उद्देश्य की प्राप्ति हो अथवा न हो और इसके पश्चात स्थायी तन्त्र का कोई चिह्न भी नहीं बचता था।

1014 ई० में महमूद के थानेश्वर पर आक्रमण करने की घटना से इस बात का पता चलता है कि किसी राज्य मण्डल का निर्माण होने में कितना अधिक समय लगता था। पंजाब का राजा जयपाल थानेश्वर को लूटने की महमूद की इच्छा जानता था; क्योंकि सुल्तान ने उसके राज्य में से होकर जाने के लिए मार्ग की माँग की थी। अतः हिन्दू राजा ने शीघ्रातिशीघ्र एक राजपूत राज्य मण्डल गठित करने में कोई कसर न उठा रखी। उसने दिल्ली के तोमर राजा विजयपाल को सावधान कर दिया और अन्य राजाओं को अपनी सहायता के लिए आमन्त्रित किया। महमूद को इस खतरे का पता चल गया और वह राजपूत राज्य मण्डल के सम्भाव्य निर्माण को ध्वस्त करने को आतुर हो उठा। वह तेजी से पंजाब की ओर बढ़ चला और उसने विजयपाल और उन सभी राजपूत राजाओं की तैयारियों को, जो थानेश्वर के मन्दिर की रक्षा के लिए संगठित प्रतिरोध की योजना बना रहे थे, रोक दिया। एक प्रारम्भिक अधिकारी विद्वान् उतबी के अनुसार राजपूतों ने थोड़ा बहुत प्रतिरोध तो अवश्य किया, पर इसमें सन्देह नहीं कि मन्दिर बहुधा असुरक्षित ही रहा और सरलता से मूर्तिभंजक का शिकार हो गया।[15]

युद्ध क्षेत्र में राज्य मण्डलीय योजना पर व्यवहार करने में कितनी गम्भीर कठिनाइयाँ आती थीं, इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। राजा आनंदपाल के हाथी के डरकर युद्धस्थल से भाग जाने के कारण 1008 ई० में उसके द्वारा गठित सर्वाधिक महत्वपूर्ण राज्यमण्डल की असफलता राजपूतों के सैनिक इतिहास में एक मानी हुई घटना है। इससे सिद्ध होता है कि राजा आनन्दपाल के अतिरिक्त न कोई दूसरा सेनापति (Second in Command) था और न ही कमान स्तर पर कोई योजना बनाई गई थी। निस्सन्देह राजपूतों की पूर्व निर्धारित योजना में तनिक सा भी फेर-बदल करने की आवश्यकता घातक सिद्ध होती थी, क्योंकि इसके कारण संयुक्त कार्य की समोचित योजना असम्भव हो जाती थी और प्रत्येक कमान को अपनी मनमानी करने की छूट के फलस्वरूप अव्यवस्था फैल जाती थी। उदाहरणार्थ 1019 ई० में (कुछ इतिहासकारों के अनुसार 1021 ई० में) जब महमूद ने

15. देखिए Cambridge History of India Vol. III p. 18

कालिंजर के चन्देल राजा पर आक्रमण किया तो राज्यमण्डल की सहज बुराइयों के दो महत्वपूर्ण उदाहरण प्रकाश में आए।

'निर्भय' की उपाधि से विभूषित पंजाब का राजा भीमपाल राज्य मण्डल में सम्मिलित हो गया और महमूद के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए जमुना के तट पर उसने एक सर्वाधिक उपयुक्त स्थान चुन लिया। नदी में बाढ़ आई हुई थी और दूसरी ओर राजपूतों की विशाल सेना का सामना करने से डरकर महमूद को नदी पार करने में संकोच हो रहा था। जब उसे इस प्रकार प्रतीक्षा करने को विवश होना पड़ा तो ऐसा लगता है कि आठ मुस्लिम अधिकारियों ने सुल्तान की आज्ञा के बिना अथवा उसके अनजाने ही, अपनी सैनिक टुकड़ियों के साथ नदी पार करके राजपूत सेना को आश्चर्यचकित कर दिया। युद्धक्षेत्र में सुल्तान का प्रतिरोध करने की राजपूतों की निर्धारित योजना में इस संभावित घटना पर विचार तक नहीं किया गया था। अतः सारे राजपूत शिविर में खलबली मच गई और अपने अपने सामंतों की कमान में एकत्र बहुत सी सामंती सेनाएँ भाग खड़ी हुईं। आठ मुस्लिम अधिकारी अपनी सेनाओं के साथ आगे बढ़ते रहे और उन्होंने धोलपुर के निकट एक नगर बारी पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सुरक्षित रूप से जमुना और गंगा पार करके महमूद कालिंजर के चन्देल राजा गड[1] द्वारा एकत्र विशाल राज्यमण्डलीय सेना के सम्मुख आ खड़ा हुआ। ऐसा लगता है राजा गड कन्नौज और बारी के राजाओं को साथ ले आया था। फरिश्ता के अनुसार राजपूत सेना में ३६००० अश्व, १०५००० पैदल सिपाही और ६४० हाथी थे। यह स्पष्ट है कि उस युग में जबकि स्थायी सेनाएँ अपवाद स्वरूप थीं और सेना एकत्र करने का एकमात्र उपाय सामंती उद्ग्रहण था, राजा गड की अनियंत्रित सेना राज्यमण्डल के सदस्य प्रत्येक राजपूत राजकुमार अथवा शासक के सर्वोच्च नियंत्रण में कार्यरत सामंती उद्ग्रहण के सहयोग से ही बनी होगी। राज्यमण्डल के अनेक सदस्य थे और उनमें से प्रत्येक राजा एक दूसरे के साथ अपनी समानता की डींग मारता था, अतः रक्षा के इस सामंती त्रिकोण का कोई शीर्ष न होने के कारण विशेषज्ञ अथवा नीति स्तर पर नियोजन न तो सम्भव ही था और न कभी इसके लिए प्रयत्न ही किया गया। यद्यपि ऐसा कहा जाता है कि १००१ ई० के राज्यमण्डल में अजमेर अथवा साभर के चौहान नरेश विशाल देव ने मुख्य कमान सभाली थी, परन्तु इस बात का संकेत नहीं मिलता कि 1021 ई० में कालिंजर के राजा गंड द्वारा गठित राज्यमण्डल में मुख्य कमान किसके हाथ में थी। भले ही चन्देल राजा ने राज्यमण्डल का गठन किया हो पर छोटे राजपूत कुल का होने के कारण उसके द्वारा संगठित राजाओं ने उसकी सर्वोच्च कमान मानने से इन्कार कर दिया होगा। राजपूत इतिहास के इस युग के विद्यार्थी के लिए आगामी घटनाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार जब

---

1 मुस्लिम इतिहासकार कालिंजर के राजा का नाम गंड के स्थान पर नंद बताते हैं।

सुल्तान महमूद ने देखा कि शत्रु सेना उसकी अपेक्षा कहीं अधिक है, तो छोटी-सी सेना लेकर उत्तावली में गजनी छोड़ने पर उसे पश्चाताप हुआ। मुल्तान द्वारा लूटे जाने के लिए सम्पूर्ण युद्ध-सामग्री और अपनी सारी सम्पत्ति छोड़ कर राजा गंड रात को चुपचाप भाग खड़ा हुआ, इस पर सुल्तान को बड़ा आश्चर्य हुआ और आज तक इतिहासकार भी इसका कोई समाधान नहीं खोज सके हैं। गंड के भाग जाने का पता लगने पर राजपूत शिविर में जो अव्यवस्था फैली उसने सुल्तान ने समझा कि उसे आक्रमण करने के लिए उकसाने के लिए छल किया जा रहा है। पर महमूद को शीघ्र ही पता चल गया कि अव्यवस्था वास्तविक है और उसने अपनी सेना को शिविर लूटने की आज्ञा दे दी।

गंड के भय का अभी तक कोई उचित स्पष्टीकरण सामने नहीं आया है। "मध्यकालीन हिन्दू भारत का इतिहास" नामक ग्रंथ में वैद्य ने इस आधार पर कि जब गंड के पास इतनी विशाल सेना थी तो उसे भय का कोई कारण नहीं था, उसके रात्रि पलायन पर सन्देह व्यक्त किया है।[1] यदि इसके लिए कोई कारण ढूँढना ही है तो सर्वाधिक स्वीकार्य कारण यही हो सकता है कि सभी सम्बन्धित व्यक्तियों की सहमति से राजपूत राज्य मण्डल कार्यवाही के लिए कोई भी सैनिक योजना विकसित करने में असफल रहा। सुबह को जमकर लड़ाई होती थी पर जब रात को आंतरिक झगड़ों और युद्ध की योजना एवं कमान की शृंखला पर विरोधी सम्मतियों के कारण कोई सर्वसम्मत योजना न बन सकी तो राज्य मण्डल के नेता के लिए निराश होना और अत्यधिक विशाल सेना होने पर भी अपने को असहाय अनुभव करना उचित ही था। यदि उतबी के लेख को स्वीकार किया जाता है[2] तो निस्सन्देह गंड मैदान छोड़कर भाग गया था। इसके बाद जो अव्यवस्था फैली उससे सिद्ध होता है कि उसका स्थान लेने के लिए कोई दूसरा सेनापति नहीं था। यदि कमान की स्वीकृत शृंखला के साथ एक संगठित योजना बनाई जाती और १००८ ई० के दुर्भाग्य से शिक्षा ग्रहण कर किसी राजपूत राजा को दूसरा सेनापति नियुक्त किया जाता तो राजपूतों को बिना लड़े हारना न पड़ता। सुल्तान की सेना संख्या में छोटी होने के कारण उनकी निर्णायक विजय भी हो सकती थी। नियोजन की एकता के अभाव में गंड सारा प्रयत्न छोड़ कर रात को भाग गया।

अनिवार्य परिणाम यही निकलता है कि सामंती उद्ग्रहण के आधार पर जितनी ही बड़ी सेना का गठन किया जाना उचित योजनाओं का निर्माण उतना ही कठिन था, और परिणामस्वरूप इस विषम भीड़ को एक सहज कमान में ढालना

---

१ C. V. Vaidya : History of Medieval Hindu India, Vol. III, p. 86

२ Elliot and Dowson, The History of India, as Told by Its Own Historions, Vol. II p. 47

असम्भव ही लगता था। इस प्रकार विभिन्न स्तरों पर उचित नियोजन के अभाव में यदि राज्यमण्डल का उद्भव और विकास कठिन था तो इसका संचालन असम्भव और विघटन सर्वाधिक सरल था।

एक बार किसी आक्रमण का सामना करने के लिए एक राज्यमण्डल के गठित होने से यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतिरोध का एक स्थायी तंत्र सगठित हो गया था। इसके विपरीत आपातकालीन स्थिति समाप्त होते ही राज्यमण्डल की पराजय और द्वार पर शत्रु की गर्जना के बावजूद राज्यमण्डल के सदस्य आपसी युद्धों में उलझ जाते। इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण १०१८ ई० में मिलता है जब राजा गंड के पुत्र चन्देल राजा विद्याधर ने १००८ ई० के राज्यमण्डल में भागीदार पजाब के राजा राज्यपाल पर आक्रमण करके उसका वध कर दिया। इस घटना से गज़नी के सुल्तान महमूद का रोष भडक उठा और उसने १०२१ ई० में कालिंजर के विरुद्ध आक्रमण संगठित किया। राज्यमण्डलीय नियोजन अथवा सामूहिक रक्षा के नियमित संगठित तन्त्र के पूर्णत: अभाव के कारण सुल्तान महमूद बार-बार अपने आक्रमण दोहराता रहा और शत्रु-देश में स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करता हुआ सीधे आर्यावर्त के हृदय तक प्रविष्ट हो गया।

यदि राज्यमण्डल इस्लामी आक्रमण का प्रतिरोध करने के स्थायी समझौते अथवा संधि का रूप ले लेता और योजना-कोष्ठों के साथ एक नियमित संगठन बन जाता तो उन अवसरों का जब सुल्तान महमूद को पराभव का मुँह देखना पड़ा था, निश्चयपूर्वक लाभ उठाया जा सकता था। इस प्रकार १०१५ ई० में जब महमूद काश्मीर के आक्रमण में असफल हो गया और लोहार-कोट का घेरा छोड़कर उसे अपनी राजधानी लौटना पड़ा उस समय राजपूत इसका पूरा लाभ उठाकर सुल्तान की सेना को नष्ट कर सकते थे, जो अनजाने पहाड़ी प्रदेशों में भटक गई थी और बाढ़मरी घाटियों ने जिसका प्रत्यावर्तन अवरुद्ध कर दिया था, परन्तु किसी भी राज्य मण्डलीय तन्त्र के अभाव में महमूद का कोई विरोध नहीं हुआ और वह सुरक्षित रूप से गज़नी लौट गया। इसी प्रकार १०२५ ई० में सोमनाथ की ओर बढ़ते हुए जब वह राजस्थान के मरुस्थल में कठिन परिस्थितियों में फँस गया तो किसी ने उसकी स्थिति का लाभ नहीं उठाया। प्रत्येक अश्वारोही को अपने साथ कई दिन के लिए भोजन, पानी और चारा ले जाने का आदेश दिया गया और इस मरु यात्रा में रसद और पानी ढोने के लिए महमूद को भारत में लगभग ३०,००० ऊँट किराये पर लेने पड़े। बिना किसी दुर्घटना के सुल्तान मरुस्थल पार कर गया और अन्हिलवाड़ा की ओर बढ़ते हुए उसने राजा भीमदेव की सेना को खदेड़ कर एक किले पर भी अधिकार कर लिया। इससे सिद्ध होता है कि राज्यमण्डल का नियोजन इतने गलत ढंग से हुआ था कि हारे जाने के लिए लड़े जा रहे युद्ध के अतिरिक्त उसका कोई अस्तित्व नहीं था।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के आक्रमणकारियों के सम्मुख हिन्दुस्तान के पतन का कारण इसके रक्षकों के पास उचित नियोजन का अभाव और सात सौ वर्ष तक चलने वाले मुसलमानों के सैनिक शासन की स्थापना का श्रेय मध्य एशिया के सम्राटों द्वारा संगठित विभिन्न स्तरों पर उचित नियोजन-तन्त्र को था। उपर्युक्त पहलू का वर्णन आगे किया गया है।

मुस्लिम काल (१२००-१७०७ ई०)

यद्यपि सल्तनत के वैभव काल में और इसके पश्चात् आने वाले मुगल साम्राज्य में निश्चयपूर्वक कुछ मात्रा में केन्द्रीयकरण दृष्टिगत होता है, पर विभिन्न स्तर पर सैनिक नियोजन रक्षा-प्रणाली के सामन्ती आधार के मूलभूत दोषों से पीड़ित था। लोदी सल्तनत काल में अफगान सरदार अवज्ञा के लिए बदनाम थे, क्योंकि राज्य के हित-साधन की अपेक्षा वे अपने और अपने वंशजों के हित-साधन को अधिक महत्त्व देते थे। उन्हें सन्तुष्ट रखने के लिए लोदी सल्तनत भिन्न-भिन्न उपाय अपनाया करती थी। बहलोल लोदी ने उनके अविचारपूर्ण निर्णयों से समझौता करके उन पर नियन्त्रण किया पर सिकन्दर लोदी ने कठोर नीति अपनाई और आवश्यकता पड़ने पर ही समझौते का सहारा लिया। लोदी सल्तनत की रक्षा-व्यवस्था इन सरदारों पर निर्भर थी अतः यह बड़ी दिलचस्प बात है कि इब्राहीम लोदी ने इन सामन्ती सरदारों से बिगाड़ करके तब अपना सिंहासन खो दिया जब इनमें से एक ने सल्तनत का अन्त करने के लिए बाबर को आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी तक कुछ अवसरों पर सल्तनत उन्हीं दोषों से पीड़ित थी जो ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के राजपूत राज्यों में स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे। फिर भी बलबन, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद बिन तुगलक के केन्द्रीय स्वेच्छाचारी सैनिक शासन के समय नीति और विवेचन दोनों स्तरों पर सैनिक नियोजन के आधार में सुधार हुआ।[1]

सल्तनत काल में रक्षा नियोजन

नाइबे-मामलिके-मुमालिक (उपमंत्री) जिसका पदाति, अश्वारोही और हस्ति-सेना के सेनाध्यक्षों से सीधा सम्पर्क होता था सुल्तान की सहायता करता था। तब भी केन्द्रीय धुरी सुल्तान से इन सेनाध्यक्षों का सीधा सम्पर्क था और उसी से वे सभी आज्ञाएँ और आदेश प्राप्त करते थे। राज्य की उच्चतर रक्षा-नीति के निर्माण में निम्नलिखित व्यक्ति सुल्तान की सहायता करते थे :—

(१) वज़ीर—जिसका मुख्यमंत्री की भाँति नागरिक प्रशासन में प्रमुख स्थान था। वित्त पर उसका नियन्त्रण होने के कारण उसके बिना कोई भी नियोजन सम्भव नहीं था। रक्षा के लिए वही पूर्ण रूप से उत्तरदायी था।

---

[1] सल्तनत के राजनैतिक संगठन और सैनिक तंत्र के विवेचन के लिए इस अध्याय का परिशिष्ट 'इ' देखिए पृ० १२५

(२) आरिद-ए-मुमालिक—जो सेना की भर्ती, उसके वेतन वितरण और निरीक्षण के लिए नागरिक मंत्री था; और

(३) नाइबे-नाजिमे-मुमालिक अर्थात् युद्धमंत्री।

रक्षा के सभी मामलों में यही तीन अधिकारी अंतरंग परिषद् के सदस्य होते थे।

नाइबे-नाजिमे-मुमालिक के परामर्श से अथवा उसके बिना सेनापतियों द्वारा किस सीमा तक दक्ष नियोजन किया जाता था, इसे ठीक-ठीक बताना कठिन है। केन्द्रीयकरण के मतवाले अलाउद्दीन खिलजी जैसे स्वेच्छाचारी सैनिक शासक सैनिक अधिकारियों से निकटतम सम्पर्क बनाए रखते होंगे अतः यह संभव है कि दक्ष नियोजन स्वयं सुल्तान के परामर्श से किया जाता होगा। किसी भी सैनिक अभियान के लिए योजना को अन्तिम स्वरूप दिए जाने से पूर्व वजीर और युद्धमंत्री के साथ विचार-विमर्श होता होगा। प्राचीन भारत की विशेषताओं—विचार विमर्श और परामर्श का महत्त्व—को सल्तनत के राष्ट्रीय संगठन में भी देखा जा सकता है। कुरान भी मुसलमानों को "अपने कार्यों में एक दूसरे से विचार-विमर्श और परामर्श करने का" निर्देश देती है। (XLII38) आधुनिक तुर्की और ईरान में ससद जैसी लोकतान्त्रिक संस्थाओं का प्रारंभ इसी पद के आधार पर हुआ। साथ ही 'निहायत-उल-अरब'[1] ग्रंथ एक अत्युपयुक्त अरब सूक्ति उद्धृत करता है। 'वीर से वीर मनुष्य को शस्त्र की और चतुर से चतुर राजा को मंत्रियों की आवश्यकता होती है', इस सूक्ति की कौटिल्य के इस वचन से कि राज्य का रथ बिना विचार-विमर्श के आवश्यक पहियों के आगे नहीं बढ़ सकता, भली-भाँति तुलना की जा सकती है। इस प्रकार सुल्तान के चार प्रमुख मंत्री होते थे। वजीर और उसका विभाग दीवान-विजारत, सदर-उस्सुदूर और धार्मिक मामलों से संबंधित उसका विभाग दीवान-रसालत तथा आरिदे मुमालिक और उसका विभाग दीवाने-अरद, इसे सैनिक विभाग का महानियंत्रक नियामक कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष बरीदे-मुमालिक होता था। गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष राज्यमंत्री तो नहीं होता था, पर महत्त्वपूर्ण कार्य के कारण उसे ऊपर वर्णित मंत्रियों के समकक्ष ही माना जाता था। बरीदे-मुमालिक सुल्तान की आँख और कान समझा जाता था, अतः सल्तनत के रक्षातंत्र में उसका महत्त्वपूर्ण भाग होता था। नई विजयों के लिए अभियान सहित रक्षानीति के निर्धारण और स्वीकृति के लिए मंत्रिपरिषद् में राजनैतिक विचार विमर्श के अस्तित्व पर सन्देह नहीं किया जा सकता। सैनिक कार्यवाहियों के लिए दक्ष नियोजक किस ढंग से योजना-निर्धारण करते थे और उच्चतर नीति नियोजन किस सीमा तक इन योजनाओं पर आधारित था इस विशिष्ट विषय पर अत्यल्प साहित्य उपलब्ध होने के कारण इस संबंध में कोई निश्चित मत व्यक्त करना कठिन है।

---

[1] पृष्ठ ६२

मुग़ल साम्राज्य

मुगल साम्राज्य का एक सर्वव्यापी सैनिक आधार था, अतः यह कहना कठिन है कि सैनिक तंत्र समाप्त होकर नागरिक तंत्र कहाँ से प्रारम्भ होता था। मुग़ल राज्य के आवश्यक लक्षणों का सार यदुनाथ सरकार ने इस प्रकार वर्णन किया है : 'स्वभावतः सैनिक प्रशासन होने के कारण यह आवश्यक रूप से केन्द्रीय एवं स्वेच्छाचार था।[1] आगे चलकर उन्होंने यहां तक कहा है कि सरकार "प्रारम्भ से ही सैनिक थी, कालान्तर में भले ही इसने देश की धरती में जड़े जमाली थीं, फिर भी इसका सैनिक स्वरूप अन्त तक बना रहा।" मुगल प्रशासन में नागरिक कार्य करने वाले प्रत्येक अधिकारी को उसका वेतन और सामाजिक स्थिति निश्चित करने के लिए अश्वारोहियों के नाम मात्र के नायक के रूप में सैनिक पद और मनसब दिया जाता था। शरीयत के ज्ञाता न्यायाधीश, मुंशी, मुनीम और उच्च श्रम वाले रसोइये तक भी मनसबदार कहलाते थे और इस प्रकार मुगल सेना के ही भाग थे। आइने अकबरी से पता चलता है कि रसोई विभाग भी सैनिक प्रणाली का एक अंग माना जाता था क्योंकि "इस विभाग में सरदार, प्रहरी और दूसरे पदाधिकारी भरती किए" जाते थे और इस विभाग का अध्यक्ष ६०० का नायक माना जाता था।[2] अकबर ने फ़ारसी आधार पर जिस राज्य का गठन किया था उसका राजनीतिक संगठन आवश्यक रूप से सैनिक था और नागरिक क्षेत्र में कार्यरत लगभग सभी महत्त्वपूर्ण अधिकारी मूलतः सैनिक नायक ही थे।[3] इस अर्थ में नागरिक अधिकार सैनिक पद से संयुक्त और इसी पर निर्भर थे।

इसके अतिरिक्त नागरिक और सैनिक कार्य करने वाले सभी अधिकारियों को बख्शी अर्थात् सैनिक वेतन अधिकारी द्वारा वेतन मिलता था और सभी पदोन्नतियाँ कमान में नाम मात्र की वृद्धि करके ही पंजीकृत की जाती थीं। नागरिक और सैनिक कोष में कोई भेद नहीं था और सैनिक अथवा नागरिक क्षेत्र में लगे सभी कर्मचारियों को सैनिक वेतनाधिकारी के अधीन सरकारी कोष से वेतन मिलता था। इन परिस्थितियों में यही निष्कर्ष निकलता है कि मुगल राज्य आवश्यक रूप से सैनिक राज्य था जो निरंकुश शक्ति के अधिष्ठाता सम्राट की शक्ति पर निर्भर था; विजय, संगठन और अपने राज्य की निरंतरता के लिए सम्राट समस्त सेनाओं पर निर्भर था। जिनका वह सर्वोच्च सेनापति होता था।

---

१ J. N. Sarkar, Mughal Administration, p. 48 सर यदुनाथ सरकार ने मुगल राज्य के आवश्यक स्वरूप की व्याख्या नहीं है जो पहले सैनिक और बाद में धार्मिक था, जैसाकि डॉ॰ ईश्वरी प्रसाद ने किया है।

२ आइने अकबरी, Vol. I. Page 62 and 474

३ V. Smith, Akbar the Great Moghul, p. 357.

रक्षा नियोजन :

किसी भी शासक की निरंकुशता के लिए उत्तरदायी सैनिक क्षेत्र की प्रमुखता के बावजूद "मंत्रियों की एक नियमित परिषद्" थी।[1] वज़ीर सम्राट का प्रमुख परामर्शदाता बन गया था और सचिव अथवा विभागाध्यक्ष के स्तर के अनेक उच्च अधिकारी उसको सहायता करते थे। अकबर के राज्यकाल में प्रधानमंत्री वकील कहलाता था। ऐसा लगता है कि बाद में उसे वज़ीर अथवा वित्तमंत्री कहने लगे। निस्सन्देह 'उच्च दीवान' के रूप में राज्य के रक्षा सम्बन्धी प्रत्येक मामले में उससे परामर्श किया जाता था। खान-ए-समन, काज़ी-उल-कुज़ात, और सदर-ए-सुदूर के रूप के रूप में अनेक अन्य अधिकारी भी होते थे, जिन्हें आवश्यक रूप से नागरिक कार्य करने पड़ते थे और राज्य के नागरिक प्रशासन में उनसे परामर्श किया जाता था। उन्हें अपनी महत्ता के अनुरूप ही पद मिलता था और कठोर अर्थों में उन्हें शस्त्रवेशधारी (सैनिक) ही माना जा सकता है। यदि हम विभिन्न अधिकारियों के कार्यों की अलग-अलग व्याख्या करें तो आधारी रूप से सैनिक कार्य करने वाले अधिकारियों का पता लगाना कठिन नहीं है। निम्नलिखित सैनिक अधिकारी सैनिक नियोजन की किसी न किसी अवस्था से सम्बन्धित थे :—

(१) मीरआतिश अथवा दारोगा-तोपखाना-तोपखाने का अधिकारी।
(२) दारोगा-ए-डाकचौकी-डाक और गुप्तचर अधिकारी।
(३) नाज़िर-ए-बुयुतात-शाही कारखाने का अधीक्षक।
(४) मीरबहरी-मुख्य नौसेना अधिकारी और बन्दरगाहों का अधिकारी।

नीति नियोजन एवं वज़ीर और बख्शी :

यह संभव है कि मुग़ल साम्राज्य के उदयकाल में विस्तारपूर्वक विचार करने की क्षमता के कारण बाबर और बाद में अकबर आरम्भिक अवस्था से ही सैनिक नियोजन का निर्देशन और इसकी स्वीकृति स्वयं करते रहे होंगे। फिर भी, वज़ीर अथवा मुख्यमंत्री से परामर्श की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही शाही बख्शी का संगठन भी था जो सेना के कुशल संचालन के लिए नागरिक सहायता का आवश्यक तंत्र प्रस्तुत करता था। प्रशासन के सैनिक और नागरिक विभागों में कोई स्पष्ट विभाजन न होने के कारण राज्य के अन्तर्गत सभी कर्मचारियों का पूरा विवरण बख्शी ही रखता था और इस प्रकार वही रक्षा के आधुनिक नागरिक मंत्रालय का कार्य करता था। इसके साथ ही वह सेना में भरती करने और अभियान को सफलतापूर्वक चलाने के लिए सभी प्रकार की पूर्ति का प्रबन्ध करने के लिए भी उत्तरदायी था। मनसबदार होने के कारण प्रत्येक नागरिक अधिकारी को शाही सेना में पद मिला होता था, अतः बख्शी को इस बात का ध्यान रखना पड़ता था कि प्रत्येक मनसबदार आवश्यक संख्या में घोड़े उचित दशा में रखे। इस

---

1 Sarkar Op. Cit. P. 37

प्रकार प्रशासन के सैनिक और नागरिक दोनों ही कार्यों की केन्द्रीय धुरी बरती था। अतः इस बात की बहुत अधिक सम्भावना है कि किसी सैनिक अभियान की योजना बनाते समय बरतों में भी विचार विमर्श होता होगा। जब उनसे सम्बन्धित समस्याएँ सैनिक नियोजकों के सम्मुख आती तो तोपखाने के मुख्य नियन्त्रक और शाही कारखानों के अधीक्षक जैसे अन्य अधिकारियों से विचार विमर्श किया जाता था।

दक्ष सैनिक नियोजन :

गुप्तकाल में विभिन्न मुख्यालय संगठन जिसमें महाव्यूहपति (सेनाध्यक्ष) और रणभाण्डागाराधिकरण (क्वार्टर मास्टर जनरल) तथा आयुधागाराध्यक्ष (अस्त्र-शस्त्र अधीक्षक) सहित एक दक्ष नियोजन संगठन होता था, वैसा अब न था। मुगल साम्राज्य में सारा तन्त्र ही आवश्यक रूप से सैन्यवादी था और राजस्व प्रशासन में दक्ष राजा टोडरमल जैसे अधिकारी को सैनिक अभियान का नेतृत्व करने के लिए नियुक्त किया जा सकता था अतः नियोजन कार्य करने के लिए कोई दक्ष कर्मचारी-गण नहीं थे।

ऐसा लगता है कि सम्राट किसी ऊँचे मनसबदार को अभियान का कार्यभार सौंप देता था; फिर अपने अधीन जनरलों की सहायता से दक्ष योजनाएँ बनाने के लिए वह स्वतन्त्र था। सैनिक कार्यवाही के असफल होने पर बहुधा सम्राट स्वयं हस्तक्षेप करता था और यह सर्वविदित है कि स्थिति सुधारने के लिए अकबर ने स्वयं राजधानी से साम्राज्य के सुदूरस्थ भागों तक मार्च किया। अतः यह उचित ही है कि मुगल साम्राज्य के अति केन्द्रीयकृत तंत्र में सम्राट स्वयं योजना की प्रत्येक अवस्था का संचालक था। वज़ीर सहित अनेक अधिकारियों को सोपान उसकी सहायता करना होगा, परन्तु प्राचीन भारत अथवा आधुनिक राज्य में उपलब्ध सैनिक नियोजन-कक्षों जैसा कोई वैज्ञानिक संगठन उस समय नहीं था। आवश्यक रूप से मानसी उद्ग्रहण पर आधारित मनसबदारी का वर्णन करने का यह उपयुक्त स्थल नहीं है। यह कहना पर्याप्त है कि मुगल साम्राज्य के आधारस्तम्भ उच्चस्तरीय मनसबदार और सामंती राजाशाही संगठन इसके नियोजन की शिथिलता के लिए उत्तरदायी थे।

मध्यकालीन योरोप में सैनिक नियोजन के विकास का वर्णन करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है, क्योंकि आधारी सिद्धान्तों के वर्णन करने का उद्देश्य उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करने वाले भारतीय इतिहास के परीक्षण से ही पर्याप्त रूप में पूरा हो जाता है। यूरोपीय सामंतवाद की मूलतः वही समस्याएँ थीं जो राजपूत सामंतवाद की थी, अतः इस ग्रन्थ में जिसके लिखने का उद्देश्य आधुनिक संसार के विभिन्न देशों में सेनाध्यक्षों की समिति के गठन का वर्णन करना है उत्तरोक्त का वर्णन कर देने पर पूर्वोक्त का विस्तृत वर्णन करने की आवश्यकता नहीं रहती। इस संस्था का विकास कम रुचिकर नहीं है, परन्तु इसे इसके बाह्य स्वरूप तक ही सीमित रखना है। प्रशिया और ग्रेट ब्रिटेन ने इस संस्था को आधुनिक स्वरूप देने में स्थायी योगदान दिया है अतः इन दो सीमा-चिह्नों पर आगे विचार-विमर्श किया गया है।

(ओ) प्रशिया :

सेनाध्यक्ष : इसका ऐतिहासिक विकास :

प्रशिया की वेतन सूची मे क्वार्टर मास्टर जनरल और कुछ अन्य अधिकारियों को "सेना का जनरल स्टॉफ" कहा गया है, अतः जनरल स्टॉफ की धारणा का पहली जुलाई १६५७ तक पता लगाना संभव है। यह स्पष्ट नही है कि यह प्रणाली स्वीडन के सगठन से उधार ली गई थी अथवा पहली बार ब्राडेनबुर्ग (Brandenburg) की सेना मे ही आरभ की गई थी, पर एक बात तो स्पष्ट है कि यह आवश्यकता की उपज थी। बारूद के आविष्कार और राष्ट्र-राज्य की रक्षा के लिए स्थायी सेना के उदय से पूर्व मध्यकालीन युद्ध बहुत छोटे पैमाने पर होते थे। अतः दीर्घकाल तक चलने वाले युद्ध मे एक विशाल सेना का नेतृत्व करने वाले जनरल को ब्यौरे से बचाने और अनेक प्रकार से उसकी सहायता करने के लिए निश्चित रूप से अनेक सहायको की आवश्यकता होती थी जो सामूहिक रूप से उसके स्टॉफ का निर्माण करते थे। एक व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक शक्तियो के लिए युद्ध-सचालन के सगठन और निर्देशन का पूरा कार्य करना असभव था। ये सहायक कमान स्तर पर उसके 'स्टॉफ' थे। मध्यकाल से आधुनिक काल तक युद्ध की बढती हुई जटिलता के कारण सैनिक सगठन के मुख्यालय पर कर्मचारियो के एक निश्चित अश को युद्धक्षेत्र मे सेनाओ का नियोजन और उनकी गतिविधियों के समन्वय का कार्य सौंपना आवश्यक हो गया और इस विशिष्ट कार्य को सामान्यतः एक विशेष नाम से जाना जाने लगा। किसी राज्य की सशस्त्र सेनाओ के मुख्यालय अथवा युद्ध-स्थल पर जनरल के साथ कर्मचारियो की यह शाखा 'जनरल स्टाफ' (Generalstab) कही जाने लगी और इन स्तरो पर दक्ष नियोजन का नाभिक बन गई। आधुनिक समय मे सेना की सख्या बढने तथा सैनिक प्रशिक्षण एव हथियारो के विकास के साथ आवश्यक रूप से इसका महत्त्व और शक्ति भी बढने लगी। इस प्रकार १०० वर्ष बाद १७६७ में प्रशिया की सेना की सूची मे हम केवल एक क्वार्टर मास्टर जनरल ही नही वरन् उसकी सहायता के लिए एक क्वार्टर मास्टर के अधीन १५ लेफ्टीनेंट क्वार्टर मास्टर भी पाते हैं। वेतन सूची मे इनका वर्णन 'जनरल स्टॉफ' के अन्तर्गत किया गया था। यूरोप की अन्य सेनाओं के सगठन से प्रशिया की स्टॉफ प्रणाली की तुलना करने पर इसका यह विशिष्ट लक्षण प्रकट होता है कि इसमे नियोजन कार्य के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित अधिकारियों का दल अलग से था। फिर भी १७८५ से पूर्व जनरल स्टॉफ के अधिकारियो का इस प्रकार स्पष्ट वर्गीकरण नही किया गया था। फ्रेडरिक विलियम द्वितीय के अधीन जनरल स्टॉफ के अधिकारियो को एक विशेष गणवेश[26] दिया

२६-हल्का नीला अथवा सफेद कोट जिसमें कालर और सामने का भाग लाल रंग का, रुपहले फीते और सफेद बटन होते थे।

गया और उनका एक अलग दल (कोर) बन गया। इस संबंध में १७८६ की मुद्रित सेना सूची के आवश्यक उद्धरण देना महत्त्वपूर्ण होगा :

"राजा का व्यक्तिगत स्टॉफ" :

(१) २ अडजुटान्ट जनरल (Adjutant Generals)
(२) ४ फ्लूजेल अडजुटाट (Flugel Adjutants)
(३) जनरल स्टॉफ जिसमें २ कर्नल, १ लेफ्टीनेंट कर्नल, ६ मेजर, ४ कप्तान और १ लेफ्टीनेंट होते थे।[27]
(४) सेना से संबंधित १० अधिकारी।

जनरल स्टॉफ सर्वोच्च सेनापति अर्थात् राजा की सहायता के लिए था अतः उपरिवर्णित अधिकारियों को ठीक ही राजा के व्यक्तिगत स्टॉफ के रूप में प्रदर्शित किया गया है। युद्धकाल में इनकी संख्या तेजी से बढ़ जाती और शान्तिकाल में घट जाती थी, परन्तु नाभिक सदा बना रहा और राजा को रणनीति संबंधी परामर्श देने के महत्त्वपूर्ण कार्य के कारण धीरे-धीरे इसका महत्त्व भी बढ़ता गया।

पुनः अलग गए देश और निश्चित कर्त्तव्यों सहित अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण धीरे-धीरे 'जनरल स्टाब' (Generalstab) के अधिकारियों के चुनाव की कठोर प्रक्रिया और उनके लिए असाधारण रूप से कठिन प्रशिक्षण का विकास होता चला गया। इनके लिए अनुदेशों की सारणी निश्चित करदी गई और १८०१ ई० में कर्नल वान मासेनवाख (Von Massenbach) ने विशेष अनुदेशों का एक संग्रह तैयार किया जिसमें उसने निरीक्षण तथा भू और स्थल अभियान्त्रिकी संबंधी सूचना देने की महत्ता पर विशेष बल दिया। उसने स्टॉफ अधिकारियों के लिए वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित, स्पष्ट रूप से परिभाषित कर्त्तव्यों का चार्टर बनाया जिसमें जनरल स्टॉफ के लिए चुने गए अथवा उससे संबंधित प्रत्येक अधिकारी से "महान और गम्भीर परिश्रम की अपेक्षा की गई थी।"[28] इन अनुदेशों में 'नैतिक पदों' का एक वर्गीकृत विवरण भी था। योजना कार्यवाही (Plan Operations) नामक एक पत्र-समूह भी था जो उस समय अत्यंत मूल्यवान समझा जाता था, क्योंकि इसका उद्देश्य अल्पप्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों की कठिनाइयाँ दूर करना था। इसके साथ ही कर्नल वान मासेनवाख ने 'आधारभूत ग्रंथ' (Fundamental Treatises) भी लिखे और शान्तिकाल में जनरल स्टॉफ के कार्य को नियमित करने के लिए १८०२ में उसने राजा को एक स्मरणपत्र भेंट किया। इन रचनाओं के परिणामस्वरूप १८०३ ई० में सर्वेक्षण, किलेबंदी, रणनीति, सैन्यकला और इतिहास विषयों में एक प्रवेश परीक्षा होने लगी। जनरल स्टॉफ में नियुक्त होने वाले नवयुवक अधिकारियों के लिए यह परीक्षा आवश्यक बनादी गई। १८७०

२७—पोट्स्डाम में मार्शल की मेज पर इन सभी अधिकारियों को स्थान दिया गया था।
२८-V. Schell endroff—The Duties of the General Staff

ई० में सैनिक प्रशिक्षण जनरल स्टॉफ के अधीन आ गया और शार्नहॉर्स्ट (Scharnhorst) द्वारा स्थापित सैनिक अकादमी पूर्णतः सैन्य संस्था बन गई। कठिन परीक्षा के पश्चात् चुनाव की इस कठोर प्रक्रिया ने इस संगठन को विशिष्ट महत्त्व और इसके सदस्यों को विशेष सम्मान का पात्र बना दिया और वे उचित ही अपने को दूसरों से ऊँचा समझने लगे।

महान जनरल स्टॉफ की संरचना :

प्रशिया की स्टॉफ प्रणाली के विकास की द्वितीय अवस्था १८१३-१५ के नेपोलियन के युद्धों के साथ आरंभ हुई। इन युद्धों के कारण जनरल स्टॉफ की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई और सेना के मुख्यालयों के साथ-साथ सैनिक दलों और ब्रिगेडों के लिए भी स्टॉफ अधिकारियों की नियुक्ति हुई। प्रत्येक संगठन के साथ एक या दो जनरल स्टॉफ अधिकारी संयुक्त कर दिए गए फिर एक महत्त्वपूर्ण कदम तब उठाया गया जब इन अधिकारियों को ब्रिगेड के कमाण्डर के बदले ब्रिगेड से ही संयुक्त कर दिया गया, इसके परिणामस्वरूप ये ब्रिगेडियरों के परिवर्तन के प्रभाव से मुक्त हो गए। कहा जाता है कि जब पेरिस की दूसरी संधि (Second Peace of Paris) के बाद युद्ध रुक गया तो जनरल स्टॉफ को और सुदृढ किया गया। एक स्पष्ट विभाजन के फलस्वरूप एक भाग को अपने विशिष्ट अध्यक्ष के अधीन 'महान जनरल स्टॉफ' के नाम से बर्लिन में रखा गया और दूसरे भाग को सेना के जनरल स्टॉफ के रूप में सैनिक दलों और क्षेत्रीय कमानों को बाँट दिया गया अतः यह सेना से घनिष्ट रूप से संबंधित हो गया। इस प्रकार राज्य की राजनीतिक शक्ति की सहायता और निर्देशन के लिए न केवल मुख्यालय पर वरन् क्रियान्वयन की अवस्था में कमान स्तर पर भी दक्ष नियोजन कोष्ठ बनाए गए, जहाँ योजनाओं के उचित क्रियान्वयन के लिए नियोजकों का प्रावधान किया गया।

साथ ही, राज्याध्यक्ष द्वारा अपने सेनाध्यक्षों की दक्ष योजनाओं के आधार पर उच्चस्तरीय सैनिक नीति का निर्माण भी विद्यमान था, क्योंकि प्रशिया का युद्ध मंत्रालय राजा की सहायता के लिए ही था। उच्चतर योजना के संगठन को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है :

राजा

(अ) सेनाध्यक्ष	(ब) सैनिक मन्त्री-परिषद् (व्यक्तिगत मामलों के लिए राजा की निजी-परिषद्)	(स) युद्ध मंत्री	(द) चांसलर

पहले तो जनरल स्टॉफ युद्ध मंत्रालय के अधीन था और इसकी स्थिति अधीनस्थ थी, परन्तु सन् १८२१ में जब जनरल वॉन मफ्लिंग (General Von

Muffling) को सेना के जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष नियुक्त किया गया तो इस अधीनस्थ स्थिति का अंत हो गया। २५ जनवरी १८२१ को शाही फरमान द्वारा जनरल स्टॉफ को सीधे राजा के अधीन एक स्वतंत्र स्थिति प्रदान की गई। तब से जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष की स्थिति अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गई। इस बात की माँग की गई कि युद्ध के उद्देश्य के लिए यह अत्यावश्यक था कि शान्तिकाल में आवश्यक तैयारी के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को ही युद्ध-काल में कार्यवाही के संचालन का कार्य सौंपा जाना चाहिए। इस अर्थ में तत्कालीन योरोप की अन्य महान सेनाओं के संगठन की अपेक्षा प्रशिया के सैनिक संगठन की यह विशिष्टता थी। १८२५ से १८६७ तक योरोप में होने वाले युद्ध के खतरे और शान्ति की संभावना के अनुरूप ही इस संगठन का विस्तार अथवा संकोचन होता रहा।

विलियम और मोल्तके का योगदान :

प्रधान सेनापति विलियम प्रथम (William I) और उसके रणनीति संबंधी परामर्शदाता वॉन मोल्तके (Von Moltke) के मध्य विकसित संबंध के परिणाम-स्वरूप इस संगठन ने अपना अंतिम स्वरूप और आकार धारण किया। १८६४ में जनरल स्टॉफ की शान्तिकालीन स्थापना का विस्तार करके इसे स्थायी बना दिया गया और विशुद्ध वैज्ञानिक उद्देश्य के लिए १८६७ में जनरल स्टॉफ का एक अलग विशिष्ट विभाजन कर दिया गया। निरंतरता बनाए रखने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित अधिकारियों को सामान्य रेजीमेन्टल कार्य से मुक्त रखा जाता था। इस प्रकार स्थायी नियोजकों का दल रखने की प्रणाली की आधारी भावना का जन्म हुआ, उन्हें समय-समय पर क्षेत्र प्रशिक्षण प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी। इस के बाद प्रशिया के स्टॉफ का अपना ही एक दल (corps) बन गया इसके अधिकारी न केवल विशेष गणवेश धारण करते थे, वरन् उनके नाम भी किसी रेजीमेन्टल सूची में नहीं आते थे। उनकी पदोन्नति स्थलसेनाध्यक्ष (Chief of staff of the Army) के हाथ में थी और सामान्यतः सेना की अपेक्षा जनरल स्टॉफ में प्रगति करना अधिक सरल था। १८६७ में ३१ जनवरी के शाही आदेश के अनुसार इसका औपचारिक उद्घाटन हो गया और जिस रूप में उस समय यह संगठन बना था, थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ, हिटलर की हार के समय तक उसी रूप में चलता रहा।

ऑस्ट्रिया के युद्ध में, राजा वॉन मोल्तके के सम्मुख यह स्पष्ट हो गया कि किसी सैनिक अभियान में नियोजन कार्यवाही और तत्संबंधी अन्य विवरण पर पूर्णकालिक विशेषज्ञ के पूर्ण ध्यान देने की आवश्यकता होती है। देश के नागरिक प्रशासन की समस्याओं में व्यस्त राजा के लिए यह संभव नहीं था कि रणनीति के नियोजन के साथ-साथ प्रधान सेनापति के कठिन कर्त्तव्य का भार भी वह अपने कंधों पर ले। इसके साथ ही प्रधान सेनापति के लिए आवश्यक विशिष्ट

सैनिक गुणों का सम्राट में बहुधा अभाव होता था। इन कारणों से राजा को रणनीति सबंधी परामर्श दाता के रूप में एक सेनाध्यक्ष (Chief of staff) रखना आवश्यक हो गया। यह सेनाध्यक्ष ही वस्तुत प्रधान सेनापति होता था। इस प्रकार प्रशिया की प्रणाली का जन्म दो महान सैनिक व्यक्तियों—मोल्तके और बिस्मार्क-तथा उनके गुणों के प्रशासक एव उन पर पूर्ण विश्वास रखने वाले प्रशिया के सम्राट (विलियम प्रथम) के योरोपीय रगमच पर छा जाने के फलस्वरूप हुआ।

ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि सेनाध्यक्ष की महत्ता व्यावसायिक प्रधान सेनापति के सैनिक सहायक से कहीं अधिक थी। सम्राट विलियम प्रथम के पास फील्डमार्शल काउन्ट मोल्तके के रूप मे एक ऐसा ही दक्ष सहायक था, १८६६ और १८७० की प्रशिया की विजयों का श्रेय इन दोनो के मध्य लाभकर सामंजस्य को दिया जाता है। सेनाध्यक्ष के रूप मे मोल्तके रणनीति सबधी सभी निर्णयो का उत्तरदायित्व सम्राट पर छोड देता था और सम्राट भी उचित रूप मे मोल्तके को ही उनका उद्गम स्वीकार करता था। फिर भी राजनीतिक और सैनिक दोनों ही क्षेत्रों मे कानूनन सर्वोच्च शक्ति विलियम प्रथम के पास थी। सम्राट विलियम की सैनिक सफलता का रहस्य उसके द्वारा एक ही परामर्शदाता का चुनाव और दृढतापूर्वक उसके प्रस्तावों पर अमल करना था।

राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रशिया के सम्राट के पास बिस्मार्क के रूप मे मोल्तके का समानपदी एक विश्वसनीय परामर्शदाता था। इस प्रकार केन्द्रीय स्थान पर आसीन सम्राट के पास परिस्थिति के अनुसार परामर्श देने के लिए एक सैनिक और एक राजनीतिक परामर्शदाता था। इस प्रकार युद्ध मे सफलता के लिए आवश्यक राजनीतिक और सैनिक क्षेत्रो मे समन्वय स्थापित किया गया।

१८६६ और १८७० के बाद इस बात मे बडी दिलचस्पी पैदा हुई कि दोनो विजयों के लिए उत्तरदायी महान रणनीतिविशारद वॉन मोल्तके प्रशिया की सेना का सेनापति न होकर शाही प्रधान सेनापति के जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष मात्र था। इंग्लैंड मे राष्ट्रीय रक्षा प्रशासन की जॉच-पडताल करने के लिए १८६० मे लार्ड हार्टिंगटन (Lord Hartington) की अध्यक्षता मे एक आयोग नियुक्त किया गया। उस समय सर्वमान्य प्रशिया की प्रणाली को ब्रितानी प्रणाली मे समाहित करने के औचित्य की बहुधा चर्चा होती थी। प्रसी प्रणाली की सफलता व्यक्तियों के सफल सयोग का परिणाम थी अत यह एक ऐसी प्राणाली नही थी जिसे अन्यत्र अनुकरण के लिए यथातथ्यत: उचित समझा जाता।

प्रसी स्टॉफ प्रणाली की सफलता अथवा असफलता सेनापति और उसके सेनाध्यक्ष के मध्य सम्बन्ध पर निर्भर करती थी, अतः इस बात का परीक्षण करना आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न सम्राटों के अधीन इस तंत्र ने किस प्रकार कार्य किया और इसके क्या परिणाम हुए। इस प्रणाली के दो प्रमुख प्रतिनिधियों हिन्डनबुर्ग

(Hindenburg) और सोएक्ट (Soeckt) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सेनापति और उसके सेनाध्यक्ष के मध्य सम्बन्धों को न तो परिभाषित किया जा सकता है और न ही उनका पूर्व निर्धारण किया जा सकता है। वास्तव में इस नाजुक सम्बन्ध को परिभाषित न करना ही श्रेयस्कर है। प्रत्येक ठोस उदाहरण में इन दो पदों पर कार्य करने वालों के विशिष्ट व्यक्तित्वों के अनुरूप इसे स्वयं व्यवस्था करने के लिए मुक्त रखना ही उचित है। आधिकारिक पद के रूप में सेनाध्यक्ष का मुख्य कर्त्तव्य सम्राट को परामर्श देने के अतिरिक्त कुछ नहीं था। अपने निर्णयों के परिणाम के लिए केवल शाही सेनापति ही आधिकारिक रूप से उत्तरदायी था अतः वह सेनाध्यक्ष की सलाह मानने से इन्कार कर सकता था। फिर भी अपने विशिष्ट विश्वसनीय पद के कारण सेनापति की शक्तियों में सेनाध्यक्ष का निश्चित भाग होता था। सेनापति की अनुपस्थिति में वह उसकी ओर से आदेश देने का अधिकारी था। इस प्रकार जर्मन सेना में सेनाध्यक्ष अद्वितीय और असाधारण पद का उपभोग करता था। शाही प्रधान सेनापति के साथ केवल वही सामान्य नियंत्रण का भागीदार था और उसे सेनापति का द्वितीय रूप कहा जा सकता है। तथ्यतः दोनों घनिष्ठ सहयोग से कार्य करते थे और यही संगठन की सफलता का रहस्य था।

हिन्डनबुर्ग ने लूडनडोर्फ (Ludendorff) से अपनी भागीदारी का इस प्रकार वर्णन किया है "मैंने लूडनडोर्फ से अपने सम्बन्धों की तुलना बहुधा सुखी वैवाहिक सम्बन्धों से की है। विचारों और कार्य में दोनों (पति-पत्नी) एक दूसरे से समझौता कर लेते हैं और एक के शब्द बहुधा दूसरे के विचारों और भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं।" इसी प्रकार सोएक्ट ने अपनी पुस्तक (Gedanken ines Soldaten) में उसी सम्बन्ध को बड़े ही उचित ढंग से निम्न शब्दों में व्यक्त किया है: "...........कमाण्डर केवल अपने उत्तरदायित्व पर निर्देश देता है, और उसे अपने समीपस्थ केवल एक ही व्यक्ति, अपने चीफ (ऑफ स्टॉफ) के परामर्श पर ध्यान देना होता है। चार आँखों के सामने निर्णय लिया जाता है और जब दो व्यक्ति सहमत होते हैं तो निर्णय एक ही होता है। उन्होंने साथ-साथ ही निर्णय लिया है अतः दोनों एक ही हैं। यदि विचार-विमर्श के समय उनके मत में भिन्नता हुई तो भी 'सुखी सैनिक विवाह' के इस दिन की संध्या पर किसी को अधिक समय तक यह पता नहीं रहता कि किस ने किस की बात मानी। बाह्य संसार और सैनिक इतिहास को विचारों के इस वैवाहिक संघर्ष का कोई पता नहीं चलता। दो व्यक्तियों के इस सम्मिलन में कमान की सुरक्षा निहित है। किसी आदेश पर सेनापति के नाम के हस्ताक्षर होते हैं अथवा जर्मन रीति के अनुसार सेनापति की ओर से चीफ इस पर हस्ताक्षर करता है, यह कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है?"

इस प्रणाली का मूल दोष मानव प्रभाज्य में है, क्योंकि स्वाभावों में भिन्नता और विचारों में असहमति होने के परिणामस्वरूप समझौते को भंग करना पड़ सकता है। प्रूसी प्रणाली को उत्तराधिकार के सिद्धान्त के कारण भी भय था क्योंकि

इसके अनुसार एक स्थायी भागीदार (राजा) को एक अस्थायी भागीदार (चीफ ऑफ स्टॉफ) से सम्बन्धित होना पड़ता था। यदि सेनापति अशक्त अथवा अयोग्य होता तो आवश्यक रूप से सेनाध्यक्ष प्रमुखता पा लेता। इस प्रकार यदि उपयुक्त सेनाध्यक्ष का चुनाव न हो पाता अथवा उसके चुनाव में कोई भूल रह जाती तो एक भागीदार (सम्राट) द्वारा कर्त्तव्य के अपने अंश को पूरा करने में अयोग्य होने के कारण इस भूल का सुधार करना कठिन हो जाता।

कमाण्डर और उसके चीफ ऑफ स्टॉफ के मध्य सम्बन्धों की समस्याओं ने आर्मी कोर के स्तर पर भी कठिनाइयाँ उपस्थित कर दी जहाँ सलग्न चीफ ऑफ स्टॉफ बहुधा कमाण्डर को निर्देशित करके सर्वोच्च उत्तरदायित्व स्वयं सम्भाल लेता था। प्रथम विश्वयुद्ध काल में अनेक जर्मन चीफ ऑफ स्टाफ की भावना अपने कमाण्डरों पर रोब डालने की रही और इस प्रकार मौलिक सम्बन्ध चीफ के पक्ष में विकृत हो गया और उसी को सारा उत्तरदायित्व सौंप दिया गया। कहा जाता है कि पश्चिमी मोर्चे पर यह प्रथा बन गई कि जब पराभव का सामना करना पड़ता तो कमाण्डर को उसके स्थान पर छोड़ कर उसके चीफ ऑफ स्टॉफ को बदल दिया जाता, इससे पता चलता है कि चीफ ऑफ स्टॉफ अधिकारी अपने द्वारा दी गई गलत सलाह के लिए मूलतः उत्तरदायी था। अतः इस अर्थ में आर्मी कोर का चीफ ऑफ स्टॉफ अद्वितीय था, क्योंकि वह दो अधिकार-क्षेत्रों में आता था—एक तो अपने निकटतम कमाण्डर के और दूसरे सैनिक मुख्यालय पर चीफ ऑफ जनरल स्टॉफ के स्टॉफ प्रणाली के विकास में यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि प्रथम विश्वयुद्ध काल में स्थानीय कमाण्डर को अप्रमुख स्थान देकर चीफ ऑफ स्टॉफ रणनीति और कार्यवाही का सचालन करता था।

इन धारणाओं में जर्मन जनरल स्टॉफ-तन्त्र अन्य यूरोपीय सेनाओं की सुनिश्चित प्रथाओं से मेल नहीं खाता था। उदाहरणार्थ फ्रांस में चीफ ऑफ स्टॉफ की भूमिका अत्यन्त सीमित थी, क्योंकि वहाँ जर्मन प्रणाली के सारभूत तत्त्व घनिष्ठ सहयोग की अपेक्षा बुनियादी कार्यों के विभाजन पर दिया गया था।

प्रूसी सेना में जनरल स्टाफ

महान जनरल स्टॉफ को सारे जर्मन सैनिक सगठन की कुंजी और जर्मन सेना की महान कुशलता के लिए उत्तरदायी कहा गया है। यह सैनिक सगठन के शक्तिशाली मस्तिष्क का कार्य करता था और इसकी योजना के अनुसार सारे निकाय को कार्य करना पड़ता था। हिटलर से पूर्वकाल में केन्द्रीय विचार का यह महान निकाय जर्मन सेना की मितव्ययिता और कार्यकुशलता का आधार था।

अपने विशिष्ट अग महान जनरल स्टॉफ की सहायता से सेना के जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष शान्तिकाल में युद्ध के समय सेना के सचालन की तैयारियों में लगा रहता था। शान्तिकाल में वह आवश्यक रूप से युद्धकाल की सभाव्य उलझनों, कार्यवाही के सभाव्य क्षेत्रों, पड़ोसी देशों के विशिष्ट लक्षणों तथा अन्य राष्ट्रों के

युद्ध सम्बन्धी साधनों की सांख्यिकी के क्रमबद्ध एवं विस्तृत अध्ययन में रत रहता था। शान्तिकाल में इन विषयों पर इस सीमा तक सतत रूप से सामग्री एकत्र और आत्मसात का जाती कि एक बार युद्ध और आवागमन प्रारम्भ होने पर केवल आदेश निकालने मात्र से योजनाओं पर पूर्णरूपेण वास्तविक कार्य सम्भव हो सकता था और निश्चित काल में सारी कार्यवाही घड़ी के समान चलती रहती। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महान जनरल स्टॉफ को तीन विभागों में संगठित किया गया, इनमें से प्रत्येक को सम्बन्धित देशों के विषय में पूरी सूचना एकत्र करने और उसकी परीक्षा करने के लिए योरोप का एक-एक भाग सौंप दिया गया। इस प्रकार एकत्र सैनिक गुप्त सूचनाएँ युद्ध-काल में बड़ी ही मूल्यवान सिद्ध होती थीं।

जिस गहनता और विस्तार पर महान जनरल स्टॉफ आधारित था कार्यवाही की योजना बनाते समय वही इसके अध्यक्ष के ज्ञान और उसकी पूर्णता के लिए उत्तरदायी था। इससे १८६६ और १८७० के अभियानों में प्रशिया की सफलता का सरलता से पता चलता है।

सभी सैनिक कार्यवाहियों में चीफ ऑफ जनरल स्टॉफ राजा का अविकृत परामर्शदाता था। १८१५ से पूर्व जनरल स्टाफ का संगठन युद्ध मन्त्रालय की एक अधीनस्थ शाखा था। १८२१ में निश्चित किया गया कि चीफ ऑफ जनरल स्टॉफ युद्ध मन्त्री के अधीन न रहकर सीधे राजा के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। इस प्रकार जनरल स्टॉफ के चीफ के युद्धमन्त्री के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो जाने पर उसे युद्धकाल में सेना को निर्देश देने का और शान्तिकाल में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक तैयारियाँ करने का कार्य सौंपा गया। युद्धमन्त्रालय का कार्य मुख्यतः सेना भरती करने, उसकी देखभाल करने और उसके प्रशासन तक सीमित हो गया। यूनाइटेड किंगडम जैसी प्रजातान्त्रिक प्रणाली में जनरल स्टॉफ के चीफ को इतना उच्च पद देना सम्भव नहीं था। आतंरिक और बाह्यशक्ति के लिए अपनी सशस्त्र सेनाओं की उत्कृष्टता पर निर्भर साम्राज्यवादी संरचना में सर्वोच्च नियोजन कक्ष और इसके अध्यक्ष को दिए गए महत्त्व को समझा जा सकता था।

कमान स्तर पर नियोजन :

सेना को सुविधानुसार प्रभागों में बाँटा गया था तथा प्रत्येक का एक कमाण्डर और उसका चीफ ऑफ स्टॉफ होता था, जिससे चीफ ऑफ जनरल स्टाफ को अभियानों की केवल बड़ी-बड़ी समस्याओं पर ही ध्यान देना पड़ता था। प्रत्येक प्रभागाध्यक्ष इस बात को जानता था और अपनी सेना को सौंपे गए कार्य को ही पूरा करता था। अपने स्थान पर वह अपनी सेना, कोर अथवा प्रभाग को इतनी ही इकाइयाँ मानकर अभीष्ट उद्देश्य के वर्णन के साथ केवल उतने ही निर्देश देता था जितने कि कोर अथवा प्रभाग कमाण्डर स्वयं व्यवस्था नहीं कर सकते थे। संचालन सम्बन्धी सभी विस्तृत बातें कोर अथवा प्रभाग कमाण्डरों और उनके विशेष स्टॉफ

पर छोड़ दी जाती थी। प्रत्येक सैनिक कोर के साथ एक चीफ ऑफ स्टॉफ अधिकारी संयुक्त रहता था और जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी स्टाफ अफसर जर्मनी के रक्षातन्त्र में छाए पडे थे, जैसाकि पृष्ठ ८३ पर दी गई तालिका से स्पष्ट हो जाता है।

जर्मन सेना का मस्तिष्क महान जनरल स्टॉफ चीफ आफ जनरल स्टॉफ के अधीन था और उसके निम्नलिखित कर्त्तव्य थे :

(१) जर्मन सेना और किलों को युद्ध के लिए तैयार रखना, सैन्य संचालन और केन्द्रीयकरण के समय सेनाओं के परिवहन की व्यवस्था करना।
(२) विदेशों में सैनिक कार्यवाही के अनुरूप उनकी स्थल तथा नौ सेनाओं और उनके क्रमिक विकास सम्बन्धी सूचना एकत्र करना।
(३) सेनाओं के साथ कार्यरत तथा जी० एस० कार्य के लिए महान जनरल स्टॉफ के साथ संयुक्त जनरल स्टॉफ के अफसरों का प्रशिक्षण।
(४) किलेबन्दी, रायफलों और बन्दूकों के लिए नवीनतम उद्धरणों का अध्ययन करना।
(५) साम्राज्यवादी रणनीति की व्यवस्था करना।
(६) सैनिक इतिहास।

प्रधान सेनापति के स्टाफ के सदस्य के रूप युद्धमंत्री सैनिक घटनाओं के विकास का निकट से निरीक्षण करता था। नियमानुसार वह सेना के चीफ आफ जनरल स्टॉफ की राजा से मुलाकातों के समय उपस्थित रहता था और इस प्रकार प्रधान सेनापति की योजनाओं और निर्णयों को जानकर वह तुरन्त युद्ध मन्त्रालय को आदेश दे सकता था।
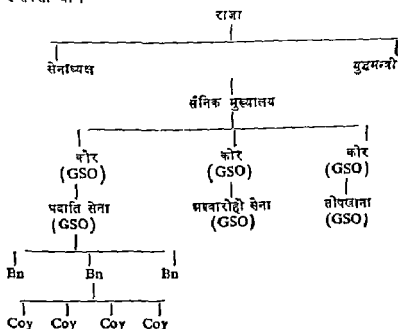
GSO= जनरल स्टॉफ ऑफिसर (General Staff Officer)
Bn= बटालियन
Coy= कम्पनी

जर्मन स्टॉफ प्रणाली के विशिष्ट लक्षण :

जर्मनी ने अपने 'जनरल स्टॉफ' की एक ऐसे विशिष्ट संगठन के रूप में कल्पना की थी जिसमें संचालन के लिए असाधारण दल-भावना से ओतप्रोत अधिकारी रखे जाते थे, अतः उन्होंने चुनाव की कठोर तत्पश्चात् उनके सघन प्रशिक्षण की विधि अपनाई।

चुनाव और प्रशिक्षण :

सब प्रकार से योग्यतम व्यक्तियों के चुनाव के उद्देश्य से सैनिक अकादमी में प्रवेश प्राप्त करने के लिए एक प्रवेश परीक्षा की योजना की गई। इस परीक्षा में दूसरे देशों की भाँति सामान्य सांस्कृतिक विषयों से भिन्न शुद्ध सैनिक विषय सम्मिलित किए गए। परीक्षा कठोर समझी जाती थी और चुनाव में न केवल लिखित कार्य वरन् प्रत्येक उम्मीदवार की बुद्धि, लगन, और दृढ़ता की कठोर परीक्षा होती थी। पक्षपात को पूर्ण समाप्त कर दिया गया था, स्वयं राजा भी इस मामले में असक्त था; केवल गुण को ही प्रवेश के लिए आवश्यक योग्यता माना जाता था। परीक्षा के लिए निर्धारित सैनिक विषय थे, सैद्धान्तिक और व्यवहारिक समरतंत्र, आग्नेय अस्त्रों के गुण और निर्माण, किलेबन्दी और सर्वेक्षण। इतिहास, भूगोल, गणित और फ्रेंच सामान्य विषय थे। ऐसा कहा जाता है कि १८७० से आगे सैनिक अकादमी जनरल स्टॉफ में प्रवेश का एकमात्र साधन बन गई। सैद्धान्तिक रूप से यह सम्भव रहा होगा कि अकादमी से पास किये बिना भी किसी को जनरल स्टॉफ में भेज दिया जाय, परन्तु वास्तविक व्यवहार में इसे निरुत्साहित ही किया जाता था और उन्नीसवीं सदी के अत तक तो इसे बिल्कुल ही बन्द कर दिया गया। १८८२ में यह संस्था सैनिक शिक्षा के निरीक्षक (Inspector of Military Education) के नियन्त्रण से निकलकर चीफ ऑफ जनरल स्टॉफ के नियन्त्रण में आ गई। १९१४ में जनरल स्टाफ में प्रवेश का एक मात्र साधन अकादमी के माध्यम से ही रह गया, और प्रत्येक वर्ष रिक्त होने वाले थोड़े से स्थानों के लिए सैकड़ों व्यक्ति प्रतियोगिता में शामिल होने लगे।

फ्रांस और आस्ट्रिया, जहाँ कोर्स केवल दो वर्ष का और रूस जहाँ यह डाई वर्ष का था, से भिन्न सैनिक अकादमी तीन वर्ष तक प्रशिक्षण देती थी। शिक्षण कार्य महान जनरल स्टाफ के अधिकारियों द्वारा किया जाता था और वे इस कार्य को अपने सामान्य कर्त्तव्यों के अतिरिक्त करते थे। तीसरे वर्ष के अन्त में एक और प्रतियोगी परीक्षा होती थी, जिसमें शुद्ध सैनिक गुणों के लिए मिलने वाले अंकों को अतिरिक्त चरित्र, सामान्य शिक्षा, चाल-ढाल और व्यक्तित्व का भी मूल्यांकन किया जाता था। ऐसा कहा जाता है कि अकादमी में प्रवेश पाने वालों में से केवल २०%

द्वितीय परीक्षा में उत्तीर्ण होते थे और दो वर्ष के लिए जनरल स्टॉफ के सेकेन्डमेन्ट की अगली स्थिति में पहुँच जाते थे। अनुत्तीर्ण होने वालों को अधिकारियों के स्कूलों में शिक्षकों सहित कुछ निम्न स्तर के पद दिए जाते थे। महान् जनरल स्टॉफ में नियुक्त चुने हुए व्यक्तियों को विभिन्न अनुभागों में बाँट दिया जाता था, और उन्हें, सघन व्यवहारिक प्रशिक्षण दिया जाता था। 'कमान की अवधि' (period of command) के अंत में जनरल स्टॉफ के चुनाव के लिए तीसरी और अन्तिम परीक्षा होती थी। चुनाव सघन प्रशिक्षण के इस उपाय द्वारा चारित्रिक शक्ति, त्वरित निर्णय की क्षमता, दीर्घ काल तक दृढ़तापूर्वक कार्य करने और अनेक प्रकार की सामग्री के समूह जिस पर जनरल स्टाफ की विशिष्ट कार्य कुशलता निर्भर रहती थी, को शीघ्रतापूर्वक सम्भालने की योग्यता की जाँच कर ली जाती थी। इस लम्बे प्रशिक्षण के फलस्वरूप जब युवा अफसर कैप्टेन के पद तक पहुँच जाता था, तो उसे जनरल स्टॉफ में सम्मिलित कर लिया जाता था।

यह प्रशिक्षण अफसर के पूरे सेवाकाल का लक्षण था और अकादमी में व्यतीत किए गए अथवा कमान में परिवीक्षा काल के साथ ही समाप्त नहीं होता था। जनरल स्टॉफ के अफसर के भाग्य में सतत प्रशिक्षण लिखा था, क्योंकि सोएक्ट (Soeckt) के अनुसार "उसके अध्ययन की अवधि कभी समाप्त नहीं होती।

असाधारण रणनीति और कार्यवाही नियोजन. जर्मन स्टाफ
प्रणाली के अस्तित्वकारण के रूप में :

जर्मन स्टॉफ प्रणाली का एक विशेष लक्षण स्टॉफ कार्य में दक्ष व्यावसायिक बने इसके अफसरों की विशेष योग्यता थी। तत्कालीन योरोपीय देशों की सेनाओं में प्रचलित मत और व्यवहार से यह महत्वपूर्ण विलगाव था और बोनल (Bonnal) जैसे प्रमुख फ्रांसीसी सैनिक नेताओं ने अपनी पुस्तक "Conditions de la gurre moderne" में उसे मान्यता प्रदान की। उसने लिखा है कि "जर्मनी में जनरल स्टॉफ के अफसरों को कप्तान के पद से लेकर कर्नल के पद तक बिना किसी अवरोध के उच्चकोटि का व्यवहारिक सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता है, जबकि फ्रांस में यह भविष्य के जनरल स्टॉफ अफसरों को Ecole supreieure de la guerre में उनके सैद्धान्तिक और व्यवहारिक पाठ्यक्रम के दो वर्षों में ही दिया जाता है।" इसी प्रकार फॉश (Foch) ने De la condtute de la guerre की भूमिका में बड़े ही प्रभावी ढंग से कहा है कि Ecole superieure का प्रशिक्षण अपने आप में अपर्याप्त था : "जो द्वन्द्ववादी अपने पुष्ट शरीर के साथ मैदान में उतरना चाहता है वह अपने सम्पूर्ण जीवन काल में सैनिक स्कूल के केवल दो वर्ष के पाठ्य क्रम से सन्तुष्ट नहीं होता, उसे बराबर अभ्यास करते रहना पड़ेगा।" फिर भी जर्मन स्टॉफ प्रणाली में यह बाद में विकसित हुई थी, क्योंकि इसके अफसरों का कोर आरम्भ में एक संगठित व्यास नहीं था। इस प्रणाली के विकास की आरंभिक अवस्थाओं में एक नियम था

कि रेजीमेन्टल सेवा जनरल स्टॉफ में कार्य के साथ अदलती-बदलती रहनी चाहिए। इस प्रकार सेना और स्टॉफ में सम्बन्ध बनाए रखा जाता था, और स्टॉफ के अफसरों की व्यवहारिक क्षमता सुनिश्चित रहती थी। स्टॉफ में पहली नियुक्ति और बाद में उसमें पुनः वापसी केवल गुण पर आधारित थी। स्टॉफ के कैप्टिन को चार-पाँच वर्ष के सेवाकाल के बाद साधारणतया रेजीमेन्ट में स्थानान्तरित कर दिया जाता था। यह सम्भव था कि एक या दो वर्ष पश्चात् उसे मेजर के रूप में स्टॉफ कार्य के लिए चुन लिया जाए। इस प्रथा में पर्याप्त गुण था क्योंकि स्टॉफ कार्य के लिए यह रेजीमेन्ट के नवीनतम अनुभव अथवा रणक्षेत्र के सीधे ज्ञान को उपलब्ध कराती थी।

यूनाइटेड किंगडम में चीफ ऑफ स्टॉफ संगठन के भी अफसरों की अदली-बदली बराबर चलती रहती है और केवल नियोजन कार्य के लिए कोई अलग विभाग नहीं है।

प्रशियन प्रणाली में सैनिक कार्यों को दो भागों में विभाजित करने की कल्पना की गई थी। प्रशासन और अनुशासन से सम्बन्धित सभी मामले विभाजक रेखा के एक ओर थे और दूसरी ओर वह सब कुछ था जो युद्ध की योजना को सीधे प्रभावित करता था और रणनीति और समरतन्त्र के अन्तर्गत आता था। जब विलियम प्रथम ने वॉन मोल्टके को अपना सैनिक सहायक चुनकर उसे राष्ट्रीय युद्ध लड़ने का कार्य सौंप दिया तो कमान से अलग जनरल स्टॉफ की इस धारणा का एक दूसरे से सुन्दर संयोग स्थापित हो गया। सर्वोच्च सैनिक अधिकारी होने के नाते राजा ने जिसे नियोजन की शक्ति (चीफ ऑफ स्टॉफ के कार्य) और युद्ध में कमान का नियन्त्रण करने की शक्ति (सेनापति का कार्य) प्राप्त थी, अपने दूसरे कार्य को अपने सहायक एवं रणनीति सम्बन्धी परामर्शदाता को सौंप दिया था। यह इस कारण कि योजना निर्माण के लिए उत्तरदायी व्यक्ति उनके क्रियान्वयन के लिए भी उत्तरदायी था जिससे संगठन की सफलता सुनिश्चित हो जाती थी। इस प्रकार विलियम प्रथम और वॉन मोल्टके संयोग द्वारा नियोजन एवं कार्यान्वयन शक्ति के विलगाव के सिद्धान्त को पूर्णतः नकार दिया गया।

इंग्लैंड में नियोजन और कार्यान्वयन के दो कार्य अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं परन्तु अधिकारी स्थायी रूप से अलग-अलग नहीं होते। चीफ आफ स्टॉफ समिति के सहायक योजना निर्माता युद्ध क्षेत्र का अनुभव रखने वाले व्यक्ति होते हैं, जो चीफ आफ स्टाफ संगठन में योजना निर्माता के रूप में अपनी कार्यावधि समाप्त कर अपने ज्ञान को रणक्षेत्र के अनुभव द्वारा और अधिक नवीनीकृत करने के लिए अपनी अपनी सेवाओं (services) में लौट जाते हैं। जिन योजनाओं के निर्माण के लिए जर्मन चीफ ऑफ स्टॉफ प्रारम्भिक अवस्थाओं में उत्तरदायी था वह उनके कार्यान्वित करने वाले संगठन से अलग नहीं था। हिटलर ने बाद की अवस्थाओं में एक स्थायी चीफ आफ स्टॉफ संगठन बनाकर इसका अलग विभाग बना दिया, जिसका एकमात्र कार्य कार्यवाही की योजना बनाना था। हिटलर के

चीफ ऑफ स्टॉफ संगठन के सदस्यों को कभी भी रणक्षेत्र में कमान सम्भालने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

१७६१ के लेख मे लार्ड रॉबर्ट्स (Lord Roberts) ने यह कहकर एक भविष्यवाणी की कि जर्मन प्रणाली कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। उसने कहा कि "यदि आदेश समान रूप से व्यायसगत न होते, किसी अवरोध अथवा प्रतिकार का सामना करना पड़ता और यदि अधीनस्थ अधिकारियों मे से कुछ मे चीफ ऑफ स्टॉफ की अपेक्षा अधिक क्षमता और दृढ़ता होती तो परिणाम बिल्कुल भिन्न होते।"[29] लार्ड रॉबर्ट्स ने आगे चलकर कहा है, "सैनिक राष्ट्रों मे जर्मनी जैसा चीफ आफ स्टॉफ आवश्यक हो सकता है विशेष रूप से तब, जब जर्मनी की भाँति सम्राट सेना का अध्यक्ष और इसका नाममात्र का सेनापति हो।"

प्रूसी स्टॉफ प्रणाली का दूसरा विशिष्ट लक्षण कार्य को कम से कम व्यक्तियों के हाथों मे सीमित करने की प्रवृत्ति थी। १९१४ मे जर्मनी मे जनरल स्टाफ के अफसरों की संख्या केवल २५० थी जो फ्रांस द्वारा नियुक्त ६५०, ऑस्ट्रिया द्वारा नियुक्त ५०० और रूस द्वारा नियुक्त १००० अधिकारियों की तुलना मे बहुत ही कम थी। इससे सिद्ध होता है कि शुद्ध रूप मे स्टॉफ कार्य उन्हीं को सौंपे जाते थे, जिन्होंने चुनाव और प्रशिक्षण की कठोरता को सफलतापूर्वक सहन किया था। इस चरम केन्द्रीयकरण के कारण जनरल स्टॉफ के अफसर दृढ़तापूर्वक अपने ही कार्य मे लगे रहते थे और प्रत्येक अवस्था में अपनी महत्ता और उत्तरदायित्व का अनुभव करते रहते थे।

अतः यह समझना बहुत कठिन नहीं है कि उपर्युक्त पृष्ठभूमि के साथ जर्मन स्टॉफ प्रणाली को देश के भीतर बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से और देश के बाहर भय और आतंक की दृष्टि से देखा जाता था। अतः इसमे कोई आश्चर्य नहीं कि १९१९ में जब शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर हो रहे थे तो जर्मन स्टॉफ प्रणाली को 'युद्ध अपराध' का मुख्य उत्तरदायी अपराधी समझा गया था। इसलिए वर्साई की सन्धि मे विशेष रूप से महान जनरल स्टॉफ और इसी प्रकार के संगठनों को भंग करने पर बल दिया।[30]

इसी प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् न्यूरमबर्ग ट्रिब्यूनल के समक्ष जर्मन जनरल स्टॉफ और हाई कमान को 'अपराधी संगठन' घोषित किया गया था। ट्रिब्यूनल की राय थी कि प्रथम तो यह समूह इतना छोटा था कि इसके अलग अलग सदस्यों पर मुकदमा चलाना उचित ही था, और दूसरे ट्रिब्यूनल के संविधान के अर्थों मे यह 'समूह' या 'संगठन' नहीं था। साक्षी के अनुसार, स्टॉफ स्तर पर उनका नियोजन, युद्धस्थल मे कमाण्डरों और स्टॉफ अफसरों के बीच बारबार होने वाली

29. Spencer Wilkinson, The Brain of the Army, 1895

३०. अनुच्छेद १६० (३) : महान जर्मन जनरल स्टाफ और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं को भंग कर दिया जायगा और किसी भी रूप में इसका पुनर्गठन नहीं हो सकता।

गोष्ठियाँ तथा युद्ध-स्थल और मुख्यालय में उनकी कार्यविधि अन्य देशों की स्थल सेनाओं, नौ सेनाओं और वायुसेनाओं के समान ही थी। कुल मिलाकर OKW (हाई कमान) का समन्वयन और निर्देशन की दिशा में प्रयत्न पूर्णतः न सही सैनिक शक्तियों के इसी प्रकार के अन्य संगठन यथा आंग्ल-अमरीकी संयुक्त चीफ्स ऑफ स्टॉफ जैसा ही था।[31]

प्रशिया के युद्ध तन्त्र में दक्ष सैनिक नियोजन के संगठन की व्याख्या करने के साथ-साथ राज्याध्यक्ष द्वारा उच्चतम नीति सम्बन्धी निर्णय लिए जाने में परामर्श दाता संगठन का कार्य करने वाले राजनीतिक संरचना के तीन अन्य स्तम्भों का संक्षिप्त वर्णन करना भी आवश्यक है।

(अ) सैन्य परिषद (Militar Kabinett) होहेनज़ोलर्न के सदन (House of Hohenzollern) का सेना पर वास्तविक नियन्त्रण, अधिकारी कोर के साथ इसके विशिष्ट सम्बन्ध पर निर्भर करता था। किसी भी अधिकारी के लिए राजा महान भक्ति की वस्तु तथा आकांक्षित प्रगति एवं प्रसिद्धि का स्रोत था। १८४६ में फ्रेडरिक विलियम द्वितीय ने अपने मन्त्रियों को स्मरण कराया कि प्रत्येक अधिकारी राजा को "अपने रक्षक, चिन्तक और पदवृद्धि करने वाले अधिपति के रूप" में देखे। इसलिए राजा ने प्रशासनिक आदेश और नियम प्रचारित करने के अधिकार सहित कमान अपने हाथ में ही बनाए रखी, और युद्ध मंत्री को केवल स्टॉफ प्रशासन ही सौंपा। इस प्रकार जब प्रविष्टियां, नियुक्तियां, पदवृद्धियां, पेंशनें और पुरस्कार राजा के हाथ में स्थिर हो गए तो इस अत्यधिक विस्तृत प्रशासनिक कार्य को निबटाने के लिए एक अडज्युटाट (Abjutant General) का पर्याप्त बड़ा कार्यालय बनाना आवश्यक हो गया। १८१२ में अडज्युटाट जनरल के कार्यालय को सैनिक कार्यों के लिए राजा की व्यक्तिगत परिषद् अथवा मिलिटार कैबिनेट के रूप में बदल दिया गया और इसका अध्यक्ष युद्ध मन्त्रालय में जनरल विभाग के प्रथम मण्डल का भी अध्यक्ष होता था। इस प्रकार सेना के आंतरिक प्रशासन के नियोजन में राज्य के सर्वोच्च राजनीतिक अंग के साथ वर्दीधारी एक दक्ष सैनिक अधिकारी सयुक्त हो गया। ऐसा लगता है कि आने वाले वर्षों में मार्च १८३३ में पारित एक शाही आदेश के अनुसार शाही कमान के कार्यपालिका अंग के रूप में सैन्य-परिषद् ने अपने को युद्ध मन्त्रालय के नियन्त्रण से मुक्त कर लिया। सैन्य-परिषद् का अध्यक्ष युद्धमंत्री के समकक्ष हो गया और उसे पूर्ण और सर्वांगीण क्षमता प्राप्त हो गई।

(आ) युद्धमंत्री जब फ्रेडरिक विलियम द्वितीय ने संविधान स्वीकार करके भी शक्ति का वास्तविक स्रोत अपने ही हाथ में रखना चाहा तो युद्धमंत्री की स्थिति सन्देहास्पद हो गई। बिस्मार्क ने १८६३ में लिखा कि "अन्य सभी संस्थाएं संसद की कृपा पर निर्भर दिखाई पड़ सकती है, परन्तु सेना के सम्बन्ध में, मेरी राय में इस

---

३१ न्यूरमबर्ग निर्णय 1946—cm 6964 p. 82

बात के मादृश्य तक बता जाना चाहिए कि सेना के प्रतिनिधि अधीन अथवा बनावटी साधनों द्वारा समद की कृपा प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं, युद्धमत्री राजा का व्यक्तिगत सेवक और विश्वसनीय सैनिक परामर्शदाता था; इसके साथ ही वह सेना के बजट के लिए राज्य-परिषद् (डाएट) की स्वीकृति लेने के लिए सवैधानिक मत्री भी था। इस अर्थ मे वह रीशटाग (Reichstag) पर निर्भर था और उसे ताउन का स्वतत्र प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता। अतः १८६० के बाद वह केवल संसदीय आवरण और नाममात्र का प्रशासनिक अध्यक्ष ही रह गया जिसके पीछे सम्राट और उसके परामर्शदाताओं ने ससद के प्रभाव से मुक्त कमान की शाही शक्ति को सुरक्षित रखा। १८६१ मे एक स्पष्ट विभाजन हो गया जिसके अनुसार शाही कमान के अन्तर्गत आने वाले विषय ससदीय बजट के अन्तर्गत आने वाले विषयों से पृथक् कर दिए गए। उपर्युक्त को "मत्री के संवैधानिक प्रतिहस्ताक्षर" से पूर्णतः मुक्त कर दिया गया।

जनरल स्टॉफ के सदस्यों और युद्ध मत्रालय के अधिकारियों के बीच व्यक्तिगत झगड़ों के कारण उलझनें उठ खड़ी हुई। अपने विशेष प्रशिक्षण और योग्यता के कारण जनरल स्टॉफ के अधिकारी युद्ध मत्रालय को नीची नजर से देखते थे और मत्रालय के अधिकारियों और उनके उपायों के धीमेपन की आलोचना करते थे। इस प्रकार युद्धमत्री की सत्ता का हरण न केवल राजा द्वारा हुआ वरन् जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष द्वारा युद्धमत्री के समान स्तर तक ही नहीं बल्कि युद्धकाल मे उसके ऊपर स्पष्ट सत्ता के स्तर तक प्रगति कर जाने के कारण भी, ऐसा हुआ। १८६४-७१ मे मोल्तके की विजयों ने उसकी अद्वितीय स्थिति कायम कर दी और कभी-कभी तो युद्ध के सफलतापूर्वक सचालन हेतु तुरन्त निर्णय लेने के लिए सम्राट के साथ होने वाली मोल्तके की गोष्ठियों मे युद्धमत्री और चासलर कोई भी भाग नहीं लेता था। युद्ध के उपरान्त मत्री ने अपनी स्थिति का पुन स्थिर करने पर बल दिया और यद्यपि सैनिक सोपान मे चीफ ऑफ स्टॉफ का स्थान सम्राट के पश्चात् आता था, वह मत्री की उपस्थिति मे ही राजा से मिल सकता था।

सरलता से कार्य करने मे असमर्थ होने के कारण तीन कार्यकारी अध्यक्षों की प्रणाली कुशल नियोजन के लिए उपयुक्त न थी। उत्तरदायित्वों और कार्यों की उलझन बनी रहती थी। सैद्धान्तिक रूप से चीफ ऑफ स्टॉफ और युद्ध परिषद् युद्धमत्री के अधीन होने चाहिए थे, क्योंकि रीशटाग के समक्ष युद्धमन्त्री ही इन दोनो सगठनों का प्रतिनिधित्व करता था। वस्तुत उसका उन दोनो पर कोई नियन्त्रण नहीं था, अत. कम से कम इतना तो कह सकते हैं कि उसकी स्थिति अत्यन्त अनियमित थी क्योंकि सवैधानिक रूप से उसे उन कार्यों के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जाता था जिनके सम्बन्ध मे निर्णय लेते समय उसकी बात तक नहीं पूछी जाती थी। इस प्रकार प्रूसी राजनीतिक प्रणाली को किसी प्रकार भी सवैधानिक राजतत्र (जिस अर्थ मे आज यह इग्लैण्ड में प्रचलित है) नहीं कहा जा सकता। यह कहना अधिक

उपयुक्त होगा कि देश में साम्राज्यवादी संगठन था जिसका झुकाव सैनिक की ओर था।

(३) चांसलर–विलियम प्रथम का बड़ा सौभाग्य था कि राजनीतिक-परामर्श-दाता के रूप में उसे बिस्मार्क जैसा एक महान व्यक्ति मिला। परन्तु मोल्टके की प्रतिभा के कारण १८६४ और १८७०–७१ के युद्धों में सैनिक मामलों में उसने कोई प्रमुख भूमिका नहीं अदा की। उसने राजनीति और कूटनीति से युद्ध का संचालन किया, परन्तु उसे सामयिक कार्यवाही की सूचना इसके सम्पन्न होने से पूर्व नहीं मिलती थी। फिर भी दो असाधारण प्रतिमाएँ आपस में टकरा गईं और कहा जाता है कि राजा ने चांसलर का पक्ष लिया। परन्तु दोनों महान जर्मनवासियों की देश-भक्ति ने त्रिविध पद्धति को जीवित और कार्यरत रखा और राजा की सर्वोच्च सत्ता के अधीन चांसलर और चीफ आफ स्टाफ कुशलतापूर्वक कार्य करते रहे। युद्ध के राजनीतिक और सैनिक पक्षों को एक दूसरे से अछूता रखा जाता था अतः मध्यस्थ राजा को इस बात के लिए महान श्रेय दिया जाना चाहिए कि इस पद्धति की कार्यकुशलता का सारे योरोप में सम्मान होता था। इस सम्बन्ध में यह बता देना आवश्यक है कि सैनिक विशेषज्ञों की योजनाएँ सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति के रूप में राजा द्वारा स्वीकृत की जाती थी, यद्यपि राज्य के विचारक राजनीतिक अंग यथा युद्धमन्त्री, चांसलर और संसद को बहुधा इनका पता भी नहीं होता था। इस प्रकार इस प्रणाली में चीफ आफ स्टाफ की विशेषज्ञ सैनिक योजनाओं को राजनीतिक स्वीकृति देने की बात आधारभूत सिद्धान्त रूप में मान ली गई थी।

नीति की प्रणाली, दक्ष और कमान-नियोजन जिसका १८८३ में एकीकरण किया और जो १९१८ में पतन होने तक चलती रही निम्न शब्दों में संक्षेप में वर्णित की जा सकती है :

सैनिक-परिषद् का अध्यक्ष अधिकारी कोर से सम्बन्धित सभी मामलों का मुखिया था; उसे नियुक्तियों के सभी मामलों में हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार था। जिनमें बहुधा डायट आक्रमण किया करती थी, युद्धमंत्री संगठन, सार-सामान, प्रशिक्षण और सेना के सन्नाह के लिए उत्तरदायी था। जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष रणनीति सम्बन्धी गतिविधियों और युद्ध की योजनाओं के लिए उत्तरदायी था। इसके साथ ही सम्राट के प्रभाव और सैनिक मामलों में उनके अकल्पनीय हस्तक्षेप की अनिश्चितता थी। तीनों कार्यकारियों के उत्तरदायित्व आपस में एक दूसरे को आच्छादित करते थे और जब प्रथम विश्वयुद्ध का संचालन करने के लिए कैसर विलियम द्वितीय शिखर पर आया तो जर्मन सैनिकतंत्र के सर्वोच्च समन्वयन और निर्देशन के विरोध के फलस्वरूप स्पष्ट दोष प्रकट हुए।

विलियम प्रथम बिस्मार्क और मोल्टके के मध्य व्यक्तियों के संघर्ष को सुलझाने में सफल रहा था, परन्तु कैसर विलियम द्वितीय ने परिस्थितियों को बड़ा जटिल और अपने को गौण स्थान पर पाया। संघर्ष चलता रहा और चूंकि वह

अपनी कानूनी शक्ति को वास्तविक शक्ति नहीं बना पाया था अतः केवल सैद्धान्तिक रूप से ही प्रत्येक निर्णय उसका अपना था। ऑवेंसट होफेस्लेटुग (Oberste Heeresleitung) (OHL) के रूप में सिद्धान्ततः उससे युद्ध निर्देशन का सारा कार्यभार स्वयं सम्भालने की अपेक्षा की गई थी। अतः स्थल और जल कार्यवाही के लिए उत्तरदायी सलाहकार के रूप मे क्रमशः जनरल और नौ सैनिक स्टॉफ के दो अध्यक्ष उसके अधीन थे। युद्ध के कूटनीतिक सचालन सहित सारे नागरिक प्रशासन का अध्यक्ष चासलर था। अधिकाधिक दिन प्रतिदिन अराजक होती जा रही इस स्थिति मे उत्तरादित्व का सर्वोच्च भार जनरल स्टाफ के अध्यक्ष पर आ पड़ा। प्रथम विश्वयुद्ध काल मे इस पद की महत्ता इस पर कार्य करने वाले अधिकारी की योग्यता और युद्ध में सफलता के अनुरूप घटती बढती रही। उदाहरणार्थ सघर्ष छिड़ने के छह सप्ताह पश्चात् ही मारने (Marne) के युद्ध मे अपनी योजनाओं के असफल हो जाने के पश्चात नवयुवक मोल्तके बिल्कुल ही टूट गया और उसका उत्तराधिकारी फाल्कनहायन (Falkenhayn) अधिक योग्य और लोकप्रिय जनरलों हिन्डनवुर्ग (Hindenburg) और लुडेन डॉर्फ (Luden dorff) के समक्ष अपना योग्यता के बावजूद अपनी सर्वोच्च सत्ता बनाए नहीं रख सका। १९१६ मे हिन्डन बुर्ग OHL का वस्तुतः अध्यक्ष बन गया और अपनी आयु और प्रतिष्ठा के कारण तुरन्त ही प्रसिद्ध हो गया। वह इतना लोकप्रिय हो गया कि सम्राट की सत्ता भी उसके सम्मुख फीकी पड़ने लगी। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि कैसर ने जिस सरलता से मोलतके और फाल्कनहायन को पद मुक्त कर दिया था उतनी सरलता से वह हिन्डनवुर्ग को पद मुक्त नहीं कर सकता था। इस प्रकार लुडन डॉर्फ के सहयोग से नियन्त्रित एक वास्तविक सैनिक तानाशाही १९१८ तक चलती रही। यद्यपि हिन्डनवुर्ग अपने पद पर बना रहा पर कई कारणों से, जिनमें निविम पद्धति का स्वेच्छाचारी और अराजकतत्र एक महत्त्वपूर्ण कारण था देश का भाग्य अवरुद्ध हो गया था। रणनीति और सम्पूर्ति में कोई समन्वय नहीं था और युद्ध मन्त्रालय का नौकरशाही तन्त्र सयुक्त घेराबन्दी द्वारा प्रोत्साहित जर्मनी के औद्योगिक युद्ध के साथ सहयोग करने को तैयार नहीं था। इस प्रकार सामन्जस्य और एकरूपता हीन प्रणाली का अंत हो गया। जिसने उत्तरदायित्वों को गम्भीर जटिलता पैदा कर दी थी और जिसका परिणाम केवल विनाश ही हो सकता था।

चाहे सैनिक नियोजन की जर्मन प्रणाली जिसकी केन्द्रीय धुरी जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष था व्यवहार मे कितनी ही दुर्भाग्यपूर्ण क्यों न सिद्ध हुई हो, इसने विशेषज्ञ नियोजन के आधुनिक सिद्धान्त की आधारशिला रखी जिसे युद्ध क्षेत्र मे बडी सफलता के साथ इग्लैण्ड ने पूर्णता को पहुँचाया, जबकि हिटलर ने विशेषज्ञ पहलू पर अधिक बल देकर और इसे अलग-अलग कक्षों मे बाट कर भी इसकी सलाह को ठुकरा कर अपने देश की विनाशकारी बर्बादी की।

(इ) ग्रेट ब्रिटेन : १९१८ से पूर्व रक्षातन्त्र :

दल-सैनिक नियोजन और रणनीति निर्माण राज्य के रक्षातन्त्र के क्षेत्र में आता था। अतः प्रथम विश्वयुद्ध तक राष्ट्रमण्डल रक्षा की धारणा के साथ-साथ ग्रेट ब्रिटेन के रक्षा संगठन के विकास का परीक्षण करना उचित ही होगा। ग्रेट ब्रिटेन ने बहुधा योरोप के शक्तिशाली सम्बन्ध या सन्तुलन कर्ता की भूमिका निबाही, अतः इस महान शक्ति के नियोजन तन्त्र का विकास गहन अध्ययन के लिए सर्वोत्तम उदाहरण है। इस विषय पर सरलता से उपलब्ध साहित्य के अतिरिक्त चूँकि ग्रेट ब्रिटेन राष्ट्रमण्डलीय रक्षा की केन्द्रीय धुरी है और एक के बाद एक असीमित महत्त्वाकांक्षाओं वाले दो जर्मनों कैसर और हिटलर को पराजित करने की विश्व रणनीति को गति देने वाला मुख्य प्रेरक शक्ति था; अतः तानाशाही राज्यों में जर्मनी की भाँति, लोकतन्त्रीय देशों में हम इंग्लैण्ड को विस्तृत अध्ययन के लिए चुन सकते हैं।

राजनीतिक अंग और रक्षा नीति :

नेपोलियन के युद्धों के पश्चात् इंग्लैण्ड में रक्षा के मामले में बड़ी अव्यवस्था फैल रही थी। शान्तिकाल में सेना को आवश्यक संरक्षण की अपेक्षा कष्ट कर आवश्यकता माना जाता था और इसके परिणामस्वरूप सुधार भावना का अभाव था। सेना के नियन्त्रण के लिए सत्ता की विषमता को सामन्त नागरिक सत्ता के क्षेत्र पर सेना द्वारा बलपूर्वक अधिकार किए जाने के विरुद्ध उपयोगी संरक्षण मानती थी। शासन के विचार इस बात से प्रभावित थे कि सेना का पुनर्गठन करने से शाही अधिकारों पर अंकुश लग सकता है। अतः क्रीमिया के युद्ध के बाद तक युद्ध कार्यालय में सत्ताओं की बहुलता चलती रही।

युद्ध सामग्री का प्रमुख अधिकारी (Master General of Ordnance) सबसे पुराने विभाग का अध्यक्ष था, और उस समय की याद दिलाता था जब किलों और उनकी रक्षा करने वाले सेनाओं की देखभाल करना शासन का विवाद रहित अधिकार था। यह विभाग सैनिकों के लिए तोपें, बारूद और गोला-बारूद का प्रबन्ध करता था। १८वीं शताब्दी में इस विभाग की इतनी महत्ता थी कि मास्टर जनरल युद्ध काल तक कैबिनेट स्तर का मंत्री रहा। तोपखाने और इंजीनियरों के सेनापति के रूप में वह युद्ध सामग्री (Board of Ordnance) की अध्यक्षता करता था। उत्तरदायी सरकार के उदय के साथ, मास्टर जनरल ने अपना उच्च पद खो दिया, यद्यपि अभी भी वह युद्ध कार्यालय से स्वतन्त्र एक अलग विभाग का अध्यक्ष बना रहा। १८५५ में स्वतन्त्र सत्ता के रूप में परिषद समाप्त कर दी गई और नियम बनाकर इसके अधिकार युद्ध मन्त्री (Secretary of State for War) को हस्तांतरित कर दिए गए।

युद्ध कालीन मन्त्री (Secretary of State at War) :

सैनिक प्रशासन के मामलों में युद्ध कालीन मन्त्री संसद के समक्ष राजा की इच्छा व्यक्त करता था। १७८३ तक जब उसे संसद के लिए सैनिक प्राकलन तैयार करने को कहा गया ताकि सेना के लिए पारित धन को व्यय के वार्षिक हिसाब के भुगतान के लिए पेमास्टर जनरल को भिजवा सकें संसद के प्रति उसका उत्तरदायित्व अस्पष्ट और अपरिभाषित था। १७९३ में जब राजा ने प्रधान सेनापति का पद त्याग कर दिया तो पे मास्टर जनरल ने युद्ध कालीन मन्त्री का स्थान ले लिया तथा प्रान्तरिक विनियमन और अनुशासन सम्बन्धी सभी मामलों में संचार का माध्यम बन गया।

युद्ध मंत्री (Secretary of State for War) :

१७९४ में युद्ध मंत्री की नियुक्ति से युद्ध कालीन मंत्री (Secretary of State at War) के अधिकारों पर और भी प्रभाव पड़ा। युद्ध मंत्री ने उपर्युक्त को अनुमान सम्बन्धी कार्य, राजद्रोह बिल, सैनिक कानून का नियमन और पालन तथा सेना के विरुद्ध नागरिक जनसख्या के अधिकारों के संरक्षण जो युद्धकालीन मंत्री के जिम्मे छोड़ दिए गए थे, के अतिरिक्त सारे राजनीतिक कार्य से मुक्त कर दिया।

क्रीमिया के युद्ध के पश्चात् युद्धकालीन मंत्री और प्रधान सेनापति के पद उनके कार्यों का परिसीमन करने के लम्बे संघर्ष के पश्चात् एक ही व्यक्ति में संयुक्त कर दिए गए। १८६३ तक जबकि युद्ध कालीन मंत्री का पद औपचारिक रूप से समाप्त कर दिया गया यही स्थिति चलती रही।

प्रारम्भ से ही नियुक्ति के सिद्धान्तों, तथा सेना के आकार और प्रबन्ध सम्बन्धी सभी मामलों को युद्ध मन्त्री ने अपने हाथ में ले लिया। कैबिनेट के सदस्य के रूप में वह सेना के संचालन के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी मन्त्री था। 1801 से उसे उपनिवेशों के मामले भी सौंप दिए गए जिससे युद्ध कार्यालय के उसके कार्य गौण बन गए। गृहमंत्री को राष्ट्र की आन्तरिक रक्षा के लिए उत्तरदायी बना देने से उसका उत्तरदायित्व और भी विभाजित हो गया, क्योंकि 1854 में ही ये कार्य युद्ध मन्त्री के अधीन किए गए। इसी समय उपनिवेश मन्त्री के पद का निर्माण करके उसे रक्षा समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करने को स्वतन्त्र छोड़ दिया गया।

संयुक्त नियन्त्रण में मुख्य बाधा सेनापति द्वारा व्यवहारतः स्वतन्त्र पद का उपभोग था भले ही आवश्यकता पड़ने पर युद्ध L.S. मन्त्री को उसके कार्यों का संसद में बचाव करना पड़ता था। जिस पूरक अधिकार पत्र द्वारा युद्ध मन्त्री की औपचारिक सहमति से सैनिक कमान और अनुशासन अधिकारियों की नियुक्ति और पदोन्नति सम्बन्धी उत्तरदायित्व प्रधान सेनापति के पास सुरक्षित रखा गया था वह 1861 के बाद समाप्त हो गया। १८७० में ऑर्डर इन कौंसिल द्वारा इस बात की स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी गई कि प्रधान सेनापति पूर्णतः युद्ध मन्त्री के अधीन रहेगा।

विशेषज्ञ सैनिक नियोजन

सेना कॉन्सिल :

1895 में सेनापति का स्थान चीफ ऑफ स्टॉफ ने ले लिया जिसका कार्य युद्ध मन्त्री को रक्षा और आवश्यक सम्बन्धी योजनाओं, सैनिक सूचना, नियुक्तियों और पदोन्नतियों सहित तकनीकी सैनिक समस्याओं पर सलाह देना था। अडजुटांट जनरल को अनुशासन, शिक्षा, प्रशिक्षण और सैनिक भर्ती का कार्य सौंपा गया, क्वार्टर मास्टर जनरल सपूर्ति, भोजन, ईंधन, आवागमन और सेना के असैनिक कर्मचारियों सम्बन्धी मामलों के प्रशासन की देखभाल करता था और इंस्पेक्टर जनरल ऑफ फॉर्टिफिकेशन्स ने किलों, बारकों, सैनिक रेलों और युद्ध कार्यालय की भूमि का उत्तरदायित्व सभाला। युद्ध कार्यालय की परिषद् के रूप में सेना सम्बन्धी सभी मामलों पर विचार करने के लिए ये अधिकारी गोष्ठियां करते थे और ये ही विशेषज्ञ नियोजन कक्ष के सदस्य थे।

1904 में सैनिक परिषद् का निर्माण भी हुआ जिसे युद्ध मन्त्री और चीफ ऑफ स्टॉफ की सारी सत्ता हस्तांतरित कर दी गई। इस परिषद् में युद्ध मन्त्री, उसका संसदीय अवर सचिव, वित्त सचिव, ऊपरवर्णित चार सैनिक सदस्य और परिषद् के मन्त्री के रूप में युद्ध मंत्री का स्थायी अवर सचिव होता था। सैनिक मामलों में अंतिम सत्ता युद्ध मंत्री की होती थी। अतः यह परिषद् उसके निर्णयों के विरुद्ध कोई निर्णय नहीं ले सकती थी। संसद के नियन्त्रण के अधीन वह सर्वोच्च सत्ता था जो सभी तकनीकी मामलों में शाही सेनाध्यक्ष (चीफ ऑफ स्टॉफ को बाद में इसी नाम से पुकारा जाता था) को सलाह देता था। इस प्रकार उच्चतर रक्षा नियोजक की नींव ठीक और सही तरीके से पड रही थी।

नौ सेना :

उन्नीसवीं शताब्दी में नौ सेना का भी इसी प्रकार पुनर्गठन हुआ। नौ सेना सम्बन्धी मामलों पर 1628 से नौ सेना परिषद् का सामान्य नियंत्रण रहा था परन्तु नैपोलियन के युद्धों की समाप्ति तक अर्धस्वतन्त्र आधार पर नौ सेना सम्बन्धी प्रशासन के विभिन्न पहलुओं पर व्यवहार करने वाले कम से कम तेरह बिखरे हुए नागरिक विभाग थे। विशेष रूप से नौ सेना के लॉर्ड्स कमिश्नर्स (Lords Commissioners of the Admiralty) केवल अफसरों की नियुक्ति और पदोन्नति, जहाजों का सचालन एवं साधारण सैनिक नीतियों का नियंत्रण करते थे। नेवी बोर्ड (Navy Board) वेतन और भंडार का प्रबन्ध करता था, भोजन बोर्ड (Victualling Board) गोश्त, बिस्कुट और बीयर की सम्पूर्ति के लिए उत्तरदायी था और नेवी का कोषाध्यक्ष नेवी बोर्ड के निर्देश में कोष द्वारा प्रदत्त धन का उपयोग करता था। 1832 में ये दो बोर्ड समाप्त कर दिए गए और 1838 में पे मास्टर जनरल ने कोषाध्यक्ष का कार्यभार सम्भाल लिया। साथ ही नौ सेना के लॉर्ड्स (Lords of

the Admiralty) के मुख्य सम्बन्ध भी असन्तोषजनक थे। फर्स्ट लार्ड (First Lord) कैबिनेट का सदस्य होने के नाते बोर्ड के अन्य सदस्यों से भिन्न स्थिति में होता था। यदि वे उसमें असहमत होते तो वह झगड़े को कैबिनेट में ले जाकर एक नया बोर्ड नियुक्त करा सकता था और इस प्रकार अपने विरोधियों को बाहर रख सकता था। १८६९ में कौंसिल के आदेशानुसार यह स्पष्ट हो गया कि नौ सेना का प्रथम लॉर्ड सभी नौ सैनिक मामलों में क्राउन के प्रति उत्तरदायी होगा तथा अन्य दूसरे 'स्तर' के व्यक्ति उन्हें सौंपे गए कार्यों के लिए उसके प्रति उत्तरदायी होंगे।

१९०४ में कौंसिल के आदेश द्वारा प्रथम, द्वितीय और चौथे समुद्री लॉर्डों को प्रथम लॉर्ड द्वारा उन्हें सौंपे गए नौ सेना के साधारण कार्यों के लिए उसके प्रति उत्तरदायी कर दिया गया; तीसरा समुद्री लॉर्ड और कम्पट्रोलर सभी भौतिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी हो गए, संसदीय सचिव ने वित्तीय विभाग सम्भाल लिया, परन्तु सिविल लॉर्ड और स्थायी सचिव के कार्यों की व्याख्या नहीं की गई। अधिक महत्त्वपूर्ण मामलों में अन्य समुद्री लॉर्डों को प्रथम समुद्री लॉर्ड से परामर्श करना होता था। अन्य समुद्री लॉर्डों को प्रथम समुद्री लॉर्ड से मिलने का अधिकार था और वही सारे झगड़े सुलझाता तथा नौ सेना सम्बन्धी सभी मामलों में संसद और कैबिनेट के प्रति उत्तरदायी राजनीतिक अध्यक्ष होता था। इन उपायों से, सशस्त्र सेनाओं पर नागरिक नियन्त्रण का सिद्धान्त स्थापित हो गया, और कोई भी सैनिक परियोजना तबतक अन्तिम नहीं मानी जाती थी जबतक कि राज्य का उपर्युक्त राजनीतिक अधिकारी इसे स्वीकृति न दे दे।

इसलिए बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में दोनों सेवाओं को ठोस संगठनात्मक आधार पर रखने के लिए काफी कार्य किया गया। साथ ही कैबिनेट के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को भलीभाँति समझ लिया गया। रक्षा सम्बन्धी सभी मामलों में नीति सम्बन्धी अन्तिम निर्णय संसद के समक्ष प्रस्तुत किए जाते थे और संसद द्वारा निर्धारित नीतियों के अनुरूप कार्यकारिणी उनके लागू करने पर सर्वोच्च नियन्त्रण रखती थी। कैबिनेट सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी थी और उसने राज्य के विभिन्न विभागों के कार्यों में समन्वय और परिसीमन का कार्य भी किया। इसके निर्णय राज्य के लिए परामर्श स्वरूप होते हैं परन्तु अधिकार सम्बन्धी सभी कार्य मंत्रीमण्डल के रूप में सामूहिक कार्य करने वाले उत्तरदायी मंत्रियों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

शाही रक्षा :

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, सवैधानिक उत्तरदायित्व स्पष्ट रहने पर भी समन्वय तन्त्र कमजोर हो गया था। लगभग २० सदस्यों की कैबिनेट की रक्षानीति निर्माण करने में सलाह देने वाले कोई विशेषज्ञ न थे। कोई ऐसा कोई अंग न था जो सेवा विभागों एवं रक्षा कार्य करने वाले अन्य विभागों में यथा विदेश कार्यालय, कोष,

भारत कार्यालय तथा उपनिवेश कार्यालय के कार्यों में प्रभावी समन्वय स्थापित कर सके। सिद्धान्त रूप से इन विभागों के मन्त्री कैबिनेट की सामान्य नीति में अपने विचारों को प्रभावी बना सकते थे परन्तु व्यवहार में इन सब बिखरे हुए अंगों को रक्षा के मामले में एक स्थान पर केन्द्रित करने के साधन कैबिनेट के पास न थे।

लार्ड रैन्डल्फ चर्चिल (Lord Randolf Churchill) ने हैरिंगटन कमीशन की रिपोर्ट में १८६० में ही सुझाव दिया था कि नौ सेना और युद्ध कार्यालय को एक ही सुरक्षा मन्त्रालय के रूप में संयुक्त कर दिया जाना चाहिए। सरकार ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और १८६५ में रक्षा समस्याओं का अध्ययन करने के लिए "कैबिनेट की एक रक्षा समिति" नियुक्त की।[32] दिसम्बर १९०२ में इस समिति का अल्पकालीन 'शाही रक्षा समिति' के रूप में पुनर्गठन किया गया। प्रधानमन्त्री नियमित रूप से इस समिति में उपस्थित होते और १९०३ नवम्बर से इसकी बैठक की अध्यक्षता करने लगे। इस समिति को इंग्लैंड और साम्राज्य की उच्चतर रक्षा नीति निश्चय करने वाले विकासशील अंग के रूप में वर्णित किया जा सकता है।

ईशर (Esher) समिति की सिफारिशें :

जनवरी १९०४ में लॉर्ड ईशर की युद्ध कार्यालय पुनर्गठन समिति ने मुख्यतः शाही रक्षा सम्बन्धी अपनी पहली रिपोर्ट जारी की। रिपोर्ट में कहा गया कि "ब्रिटिश साम्राज्य मुख्य रूप से एक महान नौ सैनिक और उपनिवेशवादी शक्ति है। फिर भी रक्षा समस्याओं के समन्वयन, सम्पूर्ण रूप से उनका प्रबन्ध करने, विभिन्न तत्वों के उचित कार्यों की परिभाषा करने और इस बात का निश्चय करने के लिए कि एक ओर तो रक्षा तैयारियाँ सुदृढ़ योजना के आधार पर चलती रहें और दूसरी ओर आपातकालीन स्थिति में ठोस आँकड़ों पर आधारित एक निश्चित युद्ध नीति का निर्माण होता रहे, के कोई साधन नहीं हैं।" रिपोर्ट में यह भी सिफारिश की गई कि वर्तमान कैबिनेट समिति को शाही रक्षा समिति के रूप में पुनर्गठित किया जाए जिससे उसे राज्य की सर्वोच्च रक्षा नीति सौंपी जा सके।

४ मई १९०४ को एक कोष सूचना के अन्तर्गत जन्मी इस नई समिति के निर्माताओं ने इसका गठन बड़ी सावधानी से किया, जिससे यह कैबिनेट सरकार की तत्कालीन धारणाओं के विपरीत आचरण न कर सके, और संसद के प्रति मंत्रियों के व्यक्तिगत और सामूहिक उत्तरदायित्व में हस्तक्षेप न कर सके।

समिति की स्थापना केवल परामर्शदात्री संस्था के रूप में हुई थी; इसका अध्यक्ष और एकमात्र स्थायी सदस्य प्रधानमंत्री होता था जिससे इसकी सिफारिशों को पूर्ण बल मिल सके। यह एक अत्यन्त लचीला संस्थान था क्योंकि प्रधानमंत्री को इसकी बैठक में जिसे वह जब चाहे आमंत्रित करने का पूर्ण अधिकार था। इस लचीलेपन के कारण वह रक्षानीति के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ दक्ष व्यक्तियों की

३२. देखिए F. A. Johnson : Defence by Committee : The British Committee of Imperial Defence, 1895-1959, 1960.

उपस्थिति निश्चित कर सकता था। व्यवहार में यह एक अर्द्धस्थायी समिति बन गया था जिसका अध्यक्ष प्रधानमन्त्री और जिसमें युद्ध मंत्री नौ सेना का प्रथम लार्ड, विदेश विभाग, भारत और उपनिवेश विभागों के सचिव, राजकोष का चांसलर, समिति अध्यक्ष तथा लार्ड प्रेजीडेण्ट (शाही जनरल स्टाफ का अध्यक्ष और प्रथम समुद्री लार्ड) सदस्य के रूप में होते थे। समिति के समक्ष उपस्थित विशेष कार्य व्यापार के अनुसार अन्य मन्त्रियों और विशेषज्ञों को भी आमन्त्रित किया जा सकता था।

एक स्थायी सचिवालय भी बनाया गया जो रक्षा के सभी पहलुओं पर सूचना एकत्र और समन्वित करने, सारे सूत्रों के रिकार्ड सुरक्षित रखने तथा समिति के लिए कागजात और आदेश-पत्र तैयार करने में बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

रक्षा के अनेक विस्तृत पहलुओं का अध्ययन करने के लिए उप-समितियाँ गठित की गईं। १९०९ से लेकर १९१४ तक तीस उपसमितियाँ बनीं, जिनमें प्रत्येक क्षेत्र के विशेषज्ञ सदस्यों की संख्या १२० थी। सचिवालय इन समितियों की रिपोर्टों को एकत्र और समन्वित करके प्रसिद्ध "युद्ध पुस्तक" (War Book) में प्रकाशित करता जिसमें युद्ध छिड़ने की स्थिति में प्रत्येक सरकारी विभाग द्वारा उठाए जाने वाले कदमों पर अधिक विस्तार से प्रकाश डाला जाता था।

कार्यकारिणी के अध्यक्ष के रूप में कैबिनेट को मुख्य रक्षा नीति के सभी प्रश्नों का निर्णय करना पड़ता था। फिर भी यह बात कि समिति केवल सलाह देने और विचार-विमर्श करने वाली संस्था ही थी, इसकी शक्ति का स्रोत बन गई। समिति केवल सिफारिश ही करती थी, अतः इसे अपने अनुसन्धान का क्षेत्र और महत्ता बढ़ाने का प्रोत्साहन मिला और यह अनुसंधान इतने पूर्ण होने लगे कि इसके द्वारा दी गई सलाह को ठुकराना कठिन था। संघर्ष होने पर कैबिनेट को निर्णायक निर्णय देने को कहा जाता था। उच्चतर स्तर पर इस सशक्त शक्ति की उपस्थिति से यह निश्चित हो गया था कि निम्नस्तरों पर अधिकतर मामले प्रेमपूर्वक सुलझ जायेंगे।

साम्राज्य के लिए नीति नियोजन :

साम्राज्य रक्षा समिति को यह अधिकार नहीं था कि वह उपनिवेशों पर किसी प्रकार की बाध्यता लागू करे। अतः यदि वे अपने प्रतिनिधि भेजना चाहें तो उनके लिए यह एक आवश्यक संरक्षण था। इसकी सलाह पर लिए गए निर्णय लागू करना सम्बन्धित उपनिवेशों की सरकारों पर निर्भर करता था, इस बात ने उन्हें इसके लिए अपने प्रतिनिधि भेजने को प्रोत्साहित किया। इससे उन्हें साम्राज्य की रक्षा की महान् समस्याओं में बराबर के भागीदार होने का अनुभव हुआ।

१८६२ से कम से कम, यह बात तो मान ली गई कि प्रत्येक उपनिवेश को अपनी स्थानीय सुरक्षा का प्रबन्ध स्वयं करना चाहिए; बाह्य रक्षा का भार ब्रिटिश नौ सेना पर था। आंतरिक मामलों में स्वशासन मिल जाने से प्रत्येक उपनिवेश का

यह आवश्यक कर्तव्य हो गया कि आन्तरिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए वह स्वय उपाय करें। इसलिए नौ सैनिक अड्डों की रक्षा हेतु थोड़ी-सी सेना छोड़कर उपनिवेशो से सभी शाही सेनाए हटाली गई, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कनाडा मे १६०५ तक और दक्षिण अफ्रीका सघ मे १६१४ तक शाही सेना बनी रहीं। विशिष्ट समझौतों के अधीन आज भी मलाया की भाँति वे कहीं भी रह सकती हैं।

साम्राज्य भर मे विभिन्न सेनाओ का अध्यक्ष सवैधानिक रूप से क्राउन बना रहा, परन्तु प्रत्येक उपनिवेश के गवर्नर जनरल की स्थानीय सेनाओं के प्रधान सेनापति की पदवी देने की प्रथा लोकप्रिय बन गई। उपनिवेशों की सेनाएं पूर्णतः स्थानीय सरकारों और विधान सभाओं के अधीन थी। साम्राज्य-सरकार ने इन सेनाओं पर नियन्त्रण प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

इसी प्रकार १८६५ के उस उपनिवेशीय नौ सेना रक्षा कानून के पारित हो जाने पर जिसके अनुसार उपनिवेशों को बन्दरगाहों और तट की रक्षा के लिए स्थानीय बेड़े रखने का अधिकार मिल गया, उपनिवेशों मे नौ सेना के विकास को अवरुद्ध करने वाली संवैधानिक अथवा कानूनी किसी भी प्रकार की कठिनाइया नहीं रह गई। फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ऐसा सोचा जाता था कि उपनिवेशों के पास अतिरिक्त देशीय शक्ति का अभाव उन्हें अपने प्रदेशीय सागरों से बाहर जहाजों पर अनुशासन संहिता लागू करने से रोक सकता था। तो भी जर्मनी की बढ़ती हुई नौ सैनिक शक्ति के कारण उत्पन्न आशका के परिणामस्वरूप होने वाली १६०६ की शाही नौ सेना और सेना कान्फ्रेन्स मे उपनिवेशों के नौ सेना बेड़ों के गठन की बात सिद्धान्तरूप से स्वीकार कर ली गई। सीधे शाही नियंत्रण मे न आने वाली इकाइयों के शान्तिकाल मे उपनिवेशो द्वारा रख रखाव के मार्ग मे आने वाली कानूनी और अतर्राष्ट्रीय कठिनाइया १६११ मे ससद द्वारा पास किए गए नौ सैनिक अनुशासन (उपनिवेशीय नौ सेना) कानून द्वारा दूर कर दी गई। इस कानून ने उपनिवेशों को इन सेनाओं के विषय मे नियम बनाने का स्पष्ट अधिकार दे दिया, और इन सविधियों का अवैध घोषित होने का भय नहीं रह गया।

१६३१ की वेस्टमिनिस्टर सविधि (Statute of West Minister) द्वारा प्रत्येक उपनिवेश को तत्सम्बन्धी कानून को निरमन करने का अधिकार मिल गया था पर इससे पूर्व भी यदि कोई उपनिवेश अपनी सेनाओं को समुद्र पार भेजने की इच्छा रखता तो उसे उनके नियंत्रण सम्बन्धी आवश्यक प्रावधान करने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त थी।[23]

---

२३ फिर भी Sydney Morning Herald Nov.14-15, 1950, April 7, 1951 में Burns का मामला देखिए जिस पर L. C. Green की The Nature of "War" in Korea(4 International Law Quarterly, 1951, p 462) में विचार-विमर्श किया गया है।

युद्धकाल में प्रत्येक उपनिवेश अपनी सेनाओं पर निकटतम और स्वतन्त्र नियंत्रण रख सकता था, अथवा रणक्षेत्र में उन्हें ब्रिटिश कमाण्डर के अधीन रखकर पूर्णरूप से अधिक सहयोग कर सकता था और साम्राज्य के लिए गठित किसी प्रकार की युद्ध कैबिनेट के माध्यम से इन सेनाओं के प्रयोग सम्बन्धी सर्वोच्च नियंत्रण में ब्रिटिश सरकार का भागीदार था। उपर्युक्त प्रणाली दो विश्वयुद्धों में अपनाई गई और यह तथ्य साम्राज्य की और उपनिवेशों की सरकारों के मध्य आपसी विश्वास का महान प्रमाण है।

साम्राज्यी जनरल स्टॉफ और विशेषज्ञ सैनिक नियोजन

१९०७ की उपनिवेश कॉन्फ्रेन्स और १९०९ की सहायक नौ-सैनिक और सेना कॉन्फ्रेन्स के बाद इस बात पर सहमति हो गई कि सैनिक नीति सम्बन्धी मामलों पर विचार करने और सैनिक समाचार एकत्र करने एवं वितरित करने के लिए साम्राज्य के जनरल स्टॉफ का गठन होना चाहिए। इस साम्राज्यी जनरल स्टॉफ को उपनिवेशों के जनरल स्टॉफों के सहयोग से कार्य करना था। उपनिवेशों के चीफ ऑफ स्टॉफ यद्यपि अपनी-अपनी सरकारों के नियंत्रण में थे फिर भी उन्हें साम्राज्यी जनरल स्टॉफ के सहयोग से साम्राज्यी आधार पर उपनिवेशों की सेनाओं के लिए युद्ध संगठन की योजना तैयार करनी थी। युद्ध काल में सेनाएँ भेजने का उत्तरदायित्व उपनिवेशों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। युद्ध पूर्व कार्य करने की योजना बनाने के लिए हथियारों और पुस्तकों और स्टॉफ अफसरों की अदला-बदली के अतिरिक्त अत्यल्प कार्य किया गया।

साम्राज्य रक्षा योजनाओं और समस्याओं का विस्तृत परीक्षण व्यवहारतः सलाहकार साम्राज्य जनरल स्टॉफ के रूप में कार्य करने वाला साम्राज्य रक्षा समिति द्वारा किया जाता था। १९०७ की उपनिवेश कॉन्फ्रेन्स ने औपचारिक रूप से यह स्वीकार कर लिया था कि किसी सम्बन्धित उपनिवेश की सरकार द्वारा आमन्त्रित करने पर यह समिति स्थानीय रक्षा के प्रश्नों पर भी सलाह देगी। इसकी सभाओं में स्थानीय प्रश्नों पर विचार करने के लिए उपनिवेशों की सरकार की इच्छानुसार वहाँ से प्रतिनिधि बुलाये जाते थे। इसकी सिफारिशें किसी भी उपनिवेश के लिए बाध्य नहीं थीं। वास्तव में, उपनिवेशों ने जिनके पास किसी भी रक्षा मामले की उपनिवेश सरकार की पहुँच से बाहर के स्तर पर जाँच पड़ताल करने के महान साधन थे इस समिति का भरपूर प्रयोग किया।

विशेषज्ञ नियोजन और उच्चतर रक्षा नीति की धारणाएँ आपस में मिली-जुली थीं, इंगलैण्ड के लोकतन्त्र चलाने के एक महान संवैधानिक प्रयोग के मध्य होने के कारण, राज्य के राजनीतिक अंगों को उचित महत्त्व मिला और इसके परिणाम स्वरूप वरदी धारियों द्वारा विशेषज्ञ नियोजन, साम्राज्य रक्षा समिति अथवा इस के बाद बनने वाली युद्ध सभा के नीति निर्धारक तन्त्र के साथ संयुक्त कर दिया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध काल के विकास

नीति और विशेषज्ञ नियोजन :

युद्ध कार्यालय और नौसेना के पुनर्गठन के फलस्वरूप, और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण, साम्राज्य रक्षा समिति द्वारा किए गए महान कार्य के परिणामस्वरूप नियोजन की दृष्टि से पूर्णतया तैयार होकर इंग्लैंड ने १९१४ के युद्ध में प्रवेश किया। जैसाकि सर जूलियन कॉरबेट (Sir Julian Corbett) ने अपने "नौ सैनिक कार्यवाही के सरकारी इतिहास" में लिखा है, "जिस स्तर पर हमने तैयारी की थी क्या वह समय की मांग के अनुरूप ही सब था? अथवा एक छोटी स्थल और विस्तृत जल सेना रखने की अपनी दीर्घ परीक्षित प्रणाली पर जमे रहकर हमने ठीक ही किया? ऐसे प्रश्न हैं जिन पर दीर्घकाल तक वादविवाद चलता रहेगा, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारे द्वारा जानबूझकर चुने गए स्तर पर सेनाओं को संचालित करने वाले तंत्र ने एक सविस्तार व्यवस्थित पूर्णता प्राप्त करली थी जिसका हमारे इतिहास में कोई सानी नहीं है।"

इन तैयारियों के बावजूद, युद्धकाल में नियंत्रण हेतु सरकार के पुनर्गठन के लिए युद्ध से पूर्व किसी भी योजना का पूर्णतः अभाव था। इस समस्या को सुलझाने के लिए १९१४ से १९१८ तक किए गए विभिन्न प्रयत्न यही सिद्ध करते हैं कि अंततः की रक्षा सेनाओं पर नागरिक नियंत्रण के सिद्धान्त पर आधारित लोकतंत्रात्मक तंत्र द्वारा युद्ध का संचालन करने के लिए कोई प्रणाली खोज निकालना कितना कठिन है।

युद्ध छिड़ने के कुछ सप्ताह बाद तक साम्राज्य रक्षा समिति मुख्यतः अपनी उपसमितियों के माध्यम से जिनमें से एक समुद्रपारीय कार्यवाही से सम्बन्धित थी, कार्य करते हुए पूर्ववत चलती रही। फिर १९१४ नवम्बर में इसे युद्ध सभा में समाहित कर लिया गया और उसने इसके सचिवालय और इसके ढंग का पूर्ण उपयोग किया।

कैबिनेट की युद्ध सभा :

युद्ध छिड़ने के बाद भी, इसका सर्वोच्च नियंत्रण, लगभग २० सदस्यों वाली स्थूल कैबिनेट के हाथ में ही रहा, जिसकी सभाएँ पुराने बेतरतीब तरीके से होतीं, जिनका न कोई एजेण्डा होता न पूर्व कार्यवाही की रिपोर्ट अथवा सभाओं में लिए गए निर्णयों का ठीक-ठीक लेखा-जोखा रखा जाता था। युद्ध छिड़ने के तुरन्त बाद प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में युद्ध सभा की दो बार बैठक हुई। इस सभा में विदेश मंत्री, युद्धमंत्री, प्रथम लॉर्ड, प्रथम समुद्री लॉर्ड और साम्राज्य के जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष शामिल हुए और उन्होंने फ्रांस में कौन-सी सेनाएँ भेजी जाएं इस समस्या पर विचार किया और निर्णय लिया। फिर भी युद्ध के दैनिक संचालन के लिए स्थायी सभा नहीं बनाई गई। यह कार्य पहली तरह स्थूल कैबिनेट के हाथ में ही बना रहा।

इसलिए १९१४ नवम्बर मे, प्रधानमंत्री ने एक युद्ध सभा (War Council) गठित की जो तत्त्व रूप मे साम्राज्य रक्षा समिति ही थी, जिसे युद्ध की स्थिति के अनुरूप बना लिया गया था। इस युद्ध सभा मे आठ सदस्य थे। प्रधानमंत्री, कोषाध्यक्ष, युद्धमंत्री, प्रथम लार्ड, विदेशमंत्री, प्रथम समुद्री लार्ड और साम्राज्य के जनरल स्टॉफ का चीफ तथा बिना विभाग के मंत्री श्री बलफोर (Mr Balfour) राजनीतिक और सेवारत व्यक्तियों की यह संख्या सैनिक विशेषज्ञों की सहायता से कार्यवाही सम्बन्धी उचित योजना तैयार करने मे एक प्रयोग थी। फिर भी जब तक दल नियोजकों का संगठन उचित तरीके से व्यवस्थित और सेनाध्यक्षों की समिति (Chiefs of Staff Committee) के सिद्धान्त पर विकसित न किया जाय कोई पूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती थी। अपने आधुनिक रूप म ऐसे संगठन का जन्म युद्ध के बाद ही हुआ।

युद्ध पर सरकारी नियंत्रण के दैनिक कार्य व्यापार की देखभाल करने के लिए सभा की गोष्ठी रोज नहीं होती थी, परन्तु जब कोई ऐसी गम्भीर समस्या उठ खड़ी होती जिसके कारण संयुक्त रण सम्बन्धी कार्यवाही अथवा नीति मे परिवर्तन आवश्यक हो जाता तो इसकी सभा बुलाई जाती थी। युद्ध के सामान्य उद्देश्यों, सैनिक भरती करने के काय, गोला बारूद निर्माण और वित्त सम्बन्धी मामलों मे पूरी कैबिनेट का नियंत्रण बना रहा। पूर्ण कैबिनेट के सामूहिक उत्तरदायित्व और शीघ्र कार्यवाही मे तालमेल बैठाने की समस्या का समाधान खोजने म असमर्थ होने के कारण बाद मे बनने वाली दर्रा दानियाल समिति (Dardanelles Committee) और युद्ध समिति की भाँति यह सभा भी असफल हो गई। किसी भी महत्त्वपूर्ण मामले मे दो बार विचार होता था। पहले तो युद्ध सभा द्वारा जिसे साम्राज्यी रक्षा समिति तंत्र के माध्यम स ताजो सूचना मिलती थी और दूसरी बार सूचना के अपर्याप्त स्रोतों वाली पूरी कैबिनेट द्वारा जिसके पास निर्णय की पूर्ण शक्ति थी। इस प्रकार अध्ययन और कार्य मे यह विभेद आधारभूत दोष सिद्ध हुआ।

सरकारी नियंत्रण तंत्र के अन्य दोष भी शीघ्र ही सामने आ गए। नौ-सेना और युद्ध कार्यालय के मध्य नित्यप्रति सम्पर्क न होने के कारण स्टॉफ प्रणाली असन्तोषजनक थी। संयुक्त नियोजन तंत्र का अभाव भी एक गम्भीर अभाव था और किसी भी संयुक्त अभियान की सफलता के विरुद्ध पड़ता था। दर्रा दानियाल अभियान का नियोजन अत्यन्त छोटे-छोटे विभागों मे बाट दिया गया था और युद्ध सभा ने दोनों स्टॉफों द्वारा संयुक्त कार्यवाही पर बल नहीं दिया। इन कठिनाइयों का सही उत्तर सेनाध्यक्षों की समिति जैसा एक अन्तर-सेवा संगठन था, परन्तु उस सर्वोच्च समन्वय तंत्र का अभी जन्म होना बाकी था, साथ ही युद्ध सभा युद्ध की स्थिति पर उचित निरीक्षण रखने मे भी असफल रही।

युद्ध छिड़ने के कुछ महीनों तक संसदीय अवरोध के परम्परागत उपाय स्थगित रहे। १९१५ के प्रारंभ मे संसद मे और उसके बाहर भी सरकार की नीति

के प्रति कुछ असन्तोष अनुभव किया गया। यद्यपि अभी तक कैबिनेट को साधारण सहयोग मिलता रहा फिर भी इसकी नीतियों में स्थायित्व और निश्चितता का अभाव अनुभव किया जाता था। दर्रा दानियाल में आरम्भिक असफलताओं के बाद मई १९१५ में प्रथम समुद्री लॉर्ड द्वारा इस्तीफा देने के कारण यह असन्तोष खुलकर सामने आया। यद्यपि संसद में कोई औपचारिक कार्यवाही नहीं की गई फिर भी विरोधी नेताओं ने व्यक्तिगत बातचीत में प्रधानमंत्री को चेतावनी दे दी कि यदि महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किए गए तो भविष्य में वे युद्ध संचालन की आलोचना करेंगे। परिणामस्वरूप विरोध (Opposition) के कई सदस्य संयुक्त कैबिनेट (Coalition Cabinet) में शामिल कर लिए गए।

यद्यपि कैबिनेट के हाथ में पूर्ण नियंत्रण था तो भी दर्रा दानियाल की कार्यवाही के निरीक्षण का भार कैबिनेट की एक समिति—दर्रा दानियाल समिति को सौंप दिया गया। शीघ्र ही यह अव्यवहारिक सिद्ध हो गया क्योंकि युद्ध का संचालन एक-दूसरे से असम्बद्ध विभागों द्वारा नहीं किया जा सकता था। इस कारण इस समिति ने युद्ध सम्बन्धी सभी समस्याएँ अपने हाथ में लेनी आरम्भ कर दीं। परन्तु युद्ध सभा (जिसकी सदस्य संख्या आठ से बढ़कर तेरह हो गई थी) की भाँति चौदह सदस्यों की यह समिति बहुत बड़ी बन गई थी और इस के सभी सदस्य विभागीय और संसदीय कार्य के भार से दबे हुए थे। परन्तु युद्ध सभा की अपेक्षा इसकी गोष्ठियाँ अधिक नियमित और अधिक बार होने लगी तथा सेनाध्यक्ष अधिक अच्छी तरह मिल-जुलकर कार्य करने लगे।

सल्वाखाड़ी (Sulva Bay) की असफलता से दर्रा दानियाल समिति बदनाम हो गई और १९१५ में प्रधानमंत्री ने सरकारी नियंत्रण के पुनर्गठन का निश्चय किया। दर्रा दानियाल समिति का स्थान एक युद्ध सभा ने ले लिया, इसमें केवल छह सदस्य थे बाद में इनकी संख्या बढ़ाकर ग्यारह और आवश्यक रूप से उपस्थित प्रथम समुद्री लॉर्ड और साम्राज्यी जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष को मिलाकर तेरह तक कर दी गई। नौ सेना और युद्ध कार्यालय में सहयोग की भावना में काफी सुधार हुआ और समय-समय पर दोनों स्टॉफों द्वारा संयुक्त स्मरण-पत्र और सम्मतियां प्रस्तुत की जाने लगीं। इससे पता चलता है कि राजनीतिज्ञों द्वारा नीति नियोजन दोनों सेवाओं के अध्यक्षों की दक्ष सलाह पर आधारित था। फिर भी सदस्यों की संख्या अत्यधिक थी और कैबिनेट द्वारा इसके निर्णयों की पुष्टि करानी पड़ती थी।

कैबिनेट के सदस्य के रूप में लॉयड जॉर्ज ने अपनी अध्यक्षता और प्रधानमंत्री एस्क्विथ (Asquith) के पूर्ण नियंत्रण में एक छोटी युद्ध समिति बनाने का सुझाव दिया। परन्तु प्रधानमंत्री द्वारा इस बात पर बल देने के कारण कि युद्ध में सर्वोच्च नियंत्रण और उत्तरदायित्व उसी का होना चाहिए यह योजना असफल हो गई।

इस सन्दर्भ में सम्बन्धित संवैधानिक पहलू अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इससे निस्सन्देह रूप से यह स्थापित हो जाता है कि राष्ट्र की रक्षा का सर्वोच्च उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री के कंधों पर पड़ता है और इस मामले में उसे गौण स्थान नहीं दिया जा सकता। श्री एस्क्विथ ने इस बात पर बल दिया कि "युद्ध समिति के संगठन और कार्यों में चाहे कुछ भी परिवर्तन किए जाय इसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री ही रहना चाहिए। उसे पृष्ठभूमि में एक विवेचक (Arbiter) अथवा कैबिनेट के निर्णायक की स्थिति में नहीं रखा जा सकता।"[34] अतः लॉर्ड हैंकी (Lord Hankey) ने उचित ही संकेत किया है कि "युद्ध काल में सरकारी नियंत्रण का अध्यक्ष प्रधानमंत्री और केवल प्रधानमंत्री ही होना चाहिए।"[35]

दिसम्बर १९१६ में नए प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज ने अपनी युद्ध कैबिनेट का गठन बिलकुल नए ढंग से किया। युद्ध कैबिनेट में केवल पाँच सदस्य होते थे। प्रधानमंत्री (अध्यक्ष), कौंसिल का लार्ड प्रेजीडेन्ट, बिना विभाग के दो मंत्री, तथा कोषाध्यक्ष जो हाउस ऑफ कॉमन्स के नेता के रूप में युद्ध कैबिनेट को संसद के और संसद को युद्ध कैबिनेट के विचारों से अवगत कराता था। यद्यपि समय-समय पर परिवर्तन और परिवर्द्धन होते रहे पर यह संख्या कभी भी सात से अधिक नहीं हुई। चान्सलर के अतिरिक्त युद्ध कैबिनेट के सभी सदस्य विभागीय उत्तरदायित्व और इसके साथ जुड़े भारी प्रशासनिक और संसदीय कार्यभार से मुक्त थे। यह युद्ध कैबिनेट अब सर्वोच्च नियन्त्रक थी और पहली युद्ध समिति की भाँति इसे अपने निर्णय विचार हेतु पूरी कैबिनेट के पास नहीं भेजने पड़ते थे।

एक बार फिर साम्राज्यी रक्षा समिति के संगठन और तकनीक को अपनाने की आवश्यकता पड़ी। कार्य प्रणाली लचीली थी। सेनाध्यक्षों के मध्य निकट सहयोग था। परामर्श देने के लिए अनेक समितियों और उपसमितियों का गठन किया गया। प्रथम समुद्री लॉर्ड, साम्राज्यी जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष और विदेशमंत्री सदा उपस्थित रहते थे। अपने सुगठित आकार के कारण युद्ध कैबिनेट की गोष्ठियाँ प्रतिदिन हो सकती थीं।

यद्यपि यह सुनिश्चित करने के लिए प्रयत्न किए गए कि युद्ध कैबिनेट से बाहर के मंत्रियों को इसकी कार्यवाही से अवगत रखा जाय, पर इसमें यह भय था कि विभागीय प्रशासन कैबिनेट की नीति के अनुरूप नहीं चल पाएगा। इस कठिनाई के समाधान हेतु मंत्रियों को साप्ताहिक रिपोर्ट भेजी जातीं और उन्हें उनके अपने विभागों से सम्बन्धित मदों पर विचार-विमर्श करने वाली तदर्थ गोष्ठियों में भाग लेने को आमंत्रित किया जाता।

34—J. A. Spender और Cyril Asquith की Life of Lord Oxford and Asquith, Vol II Ch. I. pp 252-63

35—Lord Hankey, Government Control in War.

इस प्रणाली मे भी कुछ दोष थे। शायद युद्ध कैबिनेट अपने कुछ अनुपयुक्त सदस्यों के कार्यभार से बुरी तरह ग्रसित थी। सैनिक भरती करने के इसके तरीके बडे जटिल और अव्यवस्थित थे और युद्ध सामग्री की पूर्ति मे काफी बरबादी होती थी, विशेषकर रणनीति और व्यूहरचना क्षेत्रों में प्रधानमंत्री द्वारा बार-बार हस्तक्षेप करना भी भला नहीं लगता था। १९१७-१८ मे अपने जनरलों की सलाह के विपरीत उसने प्रयत्न का मुख्य भार फ्लाण्डर्स (Flanders) की अपेक्षा बालकन्स (Balkans) पर हस्तातरित करना चाहा, ऐसा करना उचित हो या अनुचित इससे जनरलो और युद्ध कैबिनेट के माध्य मतभेद उत्पन्न हो गया। परन्तु ये व्यक्तियों के संघर्ष थे और इस प्रणाली को आधारभूत रूप से गलत सिद्ध नहीं करते, फिर भी इसकी संगठनात्मक संरचना मे कुछ दोष अवश्य थे। उदाहरणार्थ: युद्ध मन्त्रालय और नौसेना की तकनीकी शाखाओं का युद्ध कैबिनेट से सीधा सम्पर्क था, जबकि सर्विस विभागो के व्यवसायिक अध्यक्ष इसके सदस्य नहीं थे। ऐसा करना उन मामलो मे जहाँ सैनिक और नागरिक साथ-साथ कार्य करते हैं, कार्य प्रणाली के स्वीकृत नियमों से भिन्न दिखाई पडता है। इस युद्ध कैबिनेट मे भले ही कुछ दोष क्यों न रहे हों। १९३९-४५ के विश्वयुद्ध काल मे इसके आधार पर ही इसी प्रकार की संस्था का गठन किया गया था।

राष्ट्रमण्डल और प्रथम विश्वयुद्ध :

युद्ध के प्रथम दो वर्षों मे केवल और पत्रों द्वारा सूचनाओं के आदान-प्रदान तथा समस्याओ पर विचार-विमर्श के अतिरिक्त बहुत कम कार्य हो पाया। साथ ही लदन मे युद्ध समिति की गोष्ठियों में भाग लेने और अपने उपनिवेशों पर प्रभाव डालने वाले मामलो में अपनी राय प्रकट करने के लिए उपनिवेशों के प्रधान मन्त्री भी समय-समय पर लन्दन यात्रा करते रहे।

यूनाइटेड किंगडम मे दिसम्बर १९१६ में बनने वाली नई सरकार ने युद्ध के और प्रभावी ढग से सचालन हेतु जो प्रस्ताव रखे उनमे से एक यह भी था कि उपनिवेशो से भी कुछ सहायता प्राप्त की जाय। यह भी अनुभव किया गया कि साम्राज्य के कार्य सचालन मे उपनिवेशों को और अधिक भाग दिए बिना इस प्रकार की प्रार्थना नहीं की जानी चाहिए। अत: यह प्रस्ताव किया गया कि साम्राज्य की युद्ध कॉन्फ्रेन्स के लिए सभी उपनिवेशों को अपने प्रधानमन्त्री अथवा अन्य प्रतिनिधि भेजने को आमन्त्रित किया जाय। इस कॉन्फ्रेन्स काल में युद्ध संचालन सम्बन्धी सभी आवश्यक प्रश्नों और उन शर्तों पर जिन पर साम्राज्य इसे समाप्त करने को तैयार हो सके अपने सहयोगियों के साथ विचार-विमर्श करने के लिए युद्ध कैबिनेट की विशेष और लगातार गोष्ठियों की शृंखला चलनी चाहिए। इन गोष्ठियों के लिए उपनिवेशों के प्रतिनिधियों को युद्ध कैबिनेट का सदस्य समझा जाना था और इन्हीं शर्तों पर भारत से भी एक प्रतिनिधि आमन्त्रित किया गया।

सभी उपनिवेशों ने इस आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया और साम्राज्यिक युद्ध कैबिनेट का सम्मेलन हुआ जिसने २० मार्च से १२ मई, १९१७ तक चौदह गोष्ठियाँ आयोजित कीं। इन गोष्ठियों में युद्ध के सचालन और तत्सम्बन्धी साम्राज्यिक नीति पर विचार-विमर्श करने के लिए पूरी ब्रिटिश युद्ध कैबिनेट और उपनिवेशों के प्रतिनिधि शामिल होते थे और इनकी अध्यक्षता प्रधानमन्त्री करता था।

साम्राज्यिक युद्ध कैबिनेट का एक दूसरा अधिवेशन जून से अगस्त, १९१८ तक हुआ जिसमें प्रधानमन्त्री, शेष युद्ध कैबिनेट विदेशमन्त्री, उपनिवेशमन्त्री, युद्ध और वायुसेना के मन्त्री और प्रथम लॉर्ड के साथ ही भारत सहित सभी उपनिवेशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। इस अधिवेशन में सवैधानिक व्यवहार के क्षेत्र में दो महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए। प्रधानमन्त्री ने सभी उपनिवेशों के प्रधानमन्त्रियों को साम्राज्यिक युद्ध कैबिनेट में अपने समकक्ष और सहयोगी माना और उन्हें साम्राज्यिक नीति के मुख्य मामलों में अपने से सीधे सम्पर्क स्थापित करने का अधिकार प्रदान किया, साथ ही समान हित के मामलों में निरन्तरता बनाए रखने के लिए उपनिवेशों के प्रधानमन्त्रियों को साम्राज्यिक युद्ध कैबिनेट के पूर्ण अधिवेशन से पूर्व होने वाली गोष्ठियों में अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए लंदन में रेजीडेन्ट अथवा विजिटर के रूप में अपना एक मन्त्री नामांकित करने का भी अधिकार दिया। परिणामस्वरूप ब्रिटिश युद्ध कैबिनेट की गोष्ठियों में भाग लेने के लिए उपनिवेशों के अनेक प्रतिनिधि लन्दन में ही रुक गए। परन्तु उसी वर्ष के अन्त में जर्मनी का पतन हो जाने के कारण इस प्रणाली का पूर्ण विकास अवरुद्ध हो गया।

वास्तव में साम्राज्यिक युद्ध कैबिनेट में कोई प्रधानमन्त्री नहीं होता था। इसका अध्यक्ष ब्रिटिश प्रधानमंत्री केवल समकक्षानु प्रथमः का कार्य करता था। सामूहिक उत्तरदायित्व का प्रश्न ही नहीं उठता था क्योंकि प्रत्येक प्रधानमन्त्री अपनी ससद के प्रति उत्तरदायी था और इस बात की सम्भावना नहीं थी कि बहुमत से लिए गए निर्णय बाध्य होंगे। उपनिवेशों की सारी सेनाएँ ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में थी, अतः जहाँ तक साम्राज्यिक सेनाओं के सचालन और रसद रसाव सम्बन्धी साम्राज्यिक युद्ध कैबिनेट के निर्णयों का प्रश्न था उन्हें ब्रिटिश कैबिनेट का सम्बन्धित मन्त्री ही आदेश निकालकर प्रभावी बना सकता था। फिर भी इस कैबिनेट में विचार-विमर्श द्वारा उपनिवेशों को अपनी सेनाओं के सचालन की गतिनिर्देश के बारे में कुछ कहने का अवसर मिल गया। यद्यपि अन्तिम उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार पर ही था, तो भी जिन उपनिवेशों की सेनाएँ सन्नद्ध स्त थीं उनकी सम्मति बड़ी मूल्यवान और वजनदार थी। इसी प्रकार उपनिवेशों में अधिशासी कार्य भी सम्बन्धित सरकार के प्राधिकार से ही की जा सकती थी। इसके लिए उपनिवेशों के प्रधानमन्त्रियों को अपने देश में अपने सहयोगियों की स्वीकृति और सहायता पर निर्भर रहना पड़ता था।

प्रथम विश्व युद्ध काल मे मित्र राष्ट्रों का सहयोग :

युद्ध के प्रथम कुछ महीनों तक रणक्षेत्र में मित्र राष्ट्रों के मध्य सहयोग ब्रिटिश और फ्रेंच सेनापतियों के सम्पर्क तक सीमित रहा, पूरक रूप मे कभी-कभी कोई मन्त्री पेरिस या लन्दन आता जाता रहता था। तो भी १९१५ के मध्य से, मित्र राष्ट्रों के बीच बार-बार सम्मेलनों की प्रणाली विकसित होती गई। आरम्भ में तो इनमें केवल ब्रिटिश और फ्रेन्च सरकार के प्रतिनिधि ही उपस्थित रहते थे, पर बाद मे इतालवी और रूसी प्रतिनिधि भी शामिल हो गए। फिर भी लॉयड जॉर्ज इस शिथिल व्यवस्था से पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं हुए क्योंकि वे अनुभव करते थे कि इन गोष्ठियों में मित्र राष्ट्रों के नेताओं को परामर्श देने वाले प्रधान सेनापति और सेनाध्यक्ष समस्याओं पर विजय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे सहयोग नहीं कर रहे थे। सेनाध्यक्षों के आधुनिक संगठन जैसे एक संगठन की आवश्यकता बड़े जोर से अनुभव की जा रही थी, पर सारे युद्ध काल में न तो राजनीतिज्ञ और न ही रणविद्या विशारद ऐसे संगठन को जन्म दे सके। फिर भी लायड जॉर्ज रणक्षेत्र मे सर्वोच्च संयुक्त कमान की नियुक्ति के साथ ही नियोजन और नियंत्रण की ओर अधिक समन्वित प्रणाली स्थापित करने की आशा करते थे।

१९१७ के आरंभ में संयुक्त कमान स्थापित करने का प्रथम प्रयास असफल रहा। फ्रांस स्थित ब्रिटिश कमाण्डर और साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ के चीफ दोनों ही इस व्यवस्था के प्रतिकूल थे तथा फ्रेन्च कमाण्डर और उसके स्टॉफ के पास उनकी आपत्तियों का उत्तर देने की समझदारी न थी। फिर भी नवम्बर मे कैपोरेटो (Caporetto) मे इटली के पतन के पश्चात् सर्वोच्च युद्ध सभा की स्थापना हो ही गई।

सर्वोच्च युद्ध सभा में प्रत्येक सरकार के प्रधानमंत्री, अन्य मंत्री तथा उनके सैनिक सलाहकार थे। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रान्स और इटली इसमें भागीदार थे और संयुक्त राज्य सीमित सहयोग दे रहा था। ब्रिटिश प्रणाली पर एक सचिवालय का गठन किया गया तथा मित्र राष्ट्रों की अनेक स्थायी सैनिक प्रतिनिधि संस्थाओं एवं एक पूर्ण नियोजन स्टॉफ की स्थापना की गई।

सर्वोच्च युद्ध सभा शीघ्र ही विस्तृत अन्तर मित्र राष्ट्रीय संगठन की नाभिक बन गई।[२६] समुद्री यातायात, अवरोध और टैंक सम्बन्धी मामलों की देखभाल करने के लिए समितियां बनीं और धीरे-धीरे इस प्रणाली को बढ़ाकर अन्तर मित्र राष्ट्रीय

---

२६ इस सभा के अधीन तुरन्त ही एक संयुक्त स्टॉफ की स्थापना की गई और इस प्रकार दो समन्वय अधिकरण बन गए। युद्ध सभा का एक सदस्य स्थायी ब्रिटिश प्रतिनिधि के रूप में संयुक्त स्टॉफ का सदस्य था, परन्तु साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष उसके अधीन नहीं किया गया। महायुद्ध काल में साम्राज्यिक।

जहाज रानी[37] गोलाबारूद, आपूर्ति और युद्ध यातायात को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया। स्थायी सैनिक प्रतिनिधियों की एक समिति सचिव स्टॉफ की नियोजन संस्था के रूप में बनाई गई जो मार्शल फॉश (Foch) के जनरलिसिमो नियुक्त होने से पूर्व मित्र राष्ट्रों की योजनाओं के समन्वय का मुख्य साधन बन गई। मित्र राष्ट्रों की नौ-सैनिक सभा में प्रत्येक राष्ट्र के मंत्री और उनके नौ-सेनाध्यक्ष थे और वे अन्तर-मित्रराष्ट्रीय नौ-सैनिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करते थे।

निस्सन्देह इनमें से किसी भी संस्था के पास कार्यकारी शक्ति नहीं थी। फिर भी प्रत्येक राज्य की सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति और राष्ट्र के महानतम सैनिक विशेषज्ञों के इन नीतियों के विचार विमर्श में भाग लेने के कारण इनमें सरकारी निर्णयों जैसा व्यावहारिक प्रभाव था। इसके साथ ही सर्वोच्च युद्ध सभा ने संयुक्त कमान के लिए मार्ग प्रशस्त किया जो विश्वयुद्ध के अन्तिम महीनों में अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुआ।[38]

३६—साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष के पद ने अनेक उतार चढ़ाव देखे। प्रारंभिक अवस्थाओं में युद्ध मंत्रालय पर तत्कालीन युद्धमंत्री किचनर (Kitchener) का इतना आधिपत्य था कि साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ का व स्तव में लोप ही हो गया। सितम्बर १६१५ में मन्त्रिमण्डल ने इसका पुनर्गठन किया और सभा के आदेश द्वारा इस बात पर बल दिया गया कि भविष्य में सैनिक कार्यवाही के सभी आदेशों पर सेना सभा की सत्ता के अधीन नहीं वरन् युद्धमन्त्री की सत्ता के अधीन साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षर किए जायेंगे और वही उन्हें जारी करेगा। इससे यह निश्चित हो गया कि युद्ध समिति युद्धमन्त्री और सेना सभा के माध्यम से आदेश जारी न कर सकेगी, जबतक कि इन आदेशों पर साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ की समालोचनात्मक टिप्पणी प्राप्त न करली जाय। इस प्रकार साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष को युद्ध समिति में सीधा प्रवेश प्राप्त हो जाने से युद्ध समिति को पूर्ण सैन्य दृष्टिकोण प्राप्त हो गया। महान सत्ता की यह स्थिति बाद में सेना सभा के एक सदस्य को सर्वोच्च युद्ध सभा का सदस्य नियुक्त कर दिए जाने पर निर्बल पड़ गई क्योंकि यह सदस्य साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष के अधिकार से मुक्त था। १६१८ में जब युद्ध सभा के सदस्य को मित्र राष्ट्रों द्वारा गठित सामरिक भारक्षण के उपयोग के सम्बन्ध में आदेश जारी करने का अधिकार दे दिया गया तो साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष १६१५ के पूर्व ही स्थिति में आ गया। १६१८ में सर्वोच्च मित्र राष्ट्र कमाण्डर की नियुक्ति से

---

३७ उदाहरणार्थ देखिए *Sir Arthur Salter* की Allied Shipping Control, १९२१

३८ संयुक्त कमान के सम्बन्ध में देखिए Lloyd George के War Memoirs Vol. II

साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष के पूर्व क्षेत्र का और अधिक अतिक्रमण हो गया।

१९३९ मे जब द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा तो उस समय स्थापित होने वाले अन्तरमित्रराष्ट्रीय सहयोग के संगठनों के लिए सर्वोच्च युद्ध सभा को मार्ग-दर्शक के रूप मे लिया गया।

१९१९ के पश्चात् साम्राज्यिक रक्षा समिति :

नवम्बर १९१९ में युद्ध कैबिनेट और साम्राज्यिक रक्षा समिति भग कर दी गई। युद्ध कैबिनेट का स्थान एक सामान्य आधार और सगठन को कैबिनेट ने ले लिया तथा साम्राज्यिक रक्षा समिति अपने पहले ही नाम से जाँच पडताल और परामर्श के वही कार्य करने के लिए जो युद्ध पूर्व के वर्षों में इतने अधिक मूल्यवान सिद्ध हुए थे, पुराने शान्ति कालीन आधार पर स्थापित कर दी गई। अपनी प्रथम स्थापना के समय प्राप्त सर्वधानिक शक्तियों के साथ समिति अध्ययन के सतत विकास-शील क्षेत्र में नियोजन और परामर्श का अपना कार्य करती रही। इसकी उप-समितियों की सदस्य संख्या लगातार बढते हुए १९३८ में ९०० तक पहुँच गई। प्रत्येक उपसमिति मे सैनिक और नागरिक दोनों का ही अपवादरहित प्रतिनिधित्व था। समिति के सगठनात्मक चार्ट से इन निकायों के कार्य क्षेत्र का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है :
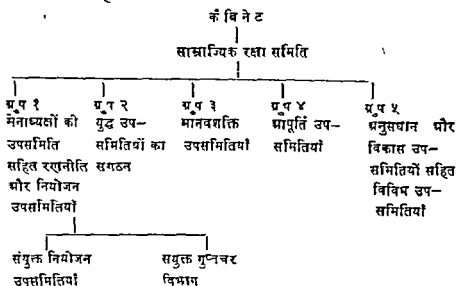
इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विशेषज्ञ नियोजन कोष्ठों को उच्चतर रक्षा नीति नियोजन के संगठन के रूप में किस प्रकार विकसित किया गया। फिर भी विशेषज्ञ सैनिक योजनाओं के निर्माण का पूर्ण उत्तरदायित्व लेने तथा समग्र सशस्त्र सेनाओं के दृष्टिकोण से उनका समन्वय करने के लिए गठित सेनाध्यक्षों की समिति

के जन्म से पूर्व विशेषज्ञ सैनिक नियोजकों के कार्य पर शीघ्र स्थान ग्रहण करने के लिए कोई सगठन न था।

प्रधानमन्त्री साम्राज्यिक रक्षा समिति का अध्यक्ष बना रहा। इसकी गोष्ठियों में मन्त्री और सेनाध्यक्ष आवश्यक रूप से आमन्त्रित होते थे। इसमें उपनिवेश मन्त्री, युद्धमन्त्री, वायुमन्त्री, और भारतमन्त्री, नौ सेना का प्रथम लार्ड, कोषाध्यक्ष, काउन्सिल का लार्ड प्रेजीडेन्ट, तीनों सेनाओं के सेनाध्यक्ष और नागरिक सेवा के अध्यक्ष के रूप में कोष का स्थायी सचिव शामिल होते थे। राजस्वमन्त्री कैबिनेट का सचिव भी होता था, और उसकी सहायता चार सहायक सचिव तीनों सेवाओं से एक एक और एक भारत से, करते थे। जब कभी उनके विशिष्ट हितों का मामला होता था तो क्राउन के अन्य मन्त्री, डोमिनियनों (Dominions), भारत और उपनिवेशों के प्रतिनिधि सदस्य के रूप में इसमें शामिल होते थे। एक बार फिर समिति अपना कार्य भली प्रकार करने लगी और इसके द्वारा की गई प्रशासनिक तैयारियाँ जब लाई गई तो खरी उतरी।

वायु बोर्ड .

दो विश्व युद्धों के मध्य सेनाओं का प्रशासन स्वतन्त्र बोर्डों अथवा परिषदों के हाथ में बना रहा। तीसरी नई सेवा के प्रशासन के लिए महायुद्ध काल में वायु मन्त्रालय का गठन किया गया। १९१९ में सेना परिषद् के अनुरूप ही एक वायु बोर्ड स्थापित किया गया जिसमें वायुमन्त्री, वायु सेनाध्यक्ष, चार वायु सदस्य, एक ससदीय अवर सचिव और इस बोर्ड के सचिव के रूप में कार्य करने वाला एक स्थायी अवर सचिव होते थे। बोर्ड के सदस्यों के प्रति वायुमन्त्री का वही उत्तरदायित्व था जो युद्धमन्त्री का सेनापरिषद् के सदस्यों के प्रति था। सेनाध्यक्ष को राजा तथा उसके अतिरिक्त अन्य सदस्यों को मन्त्री नियुक्त करता था। नौ-सेना बोर्ड और सेनापरिषद् दूसरी सेवाओं का प्रशासन महायुद्ध के पहले की भाँति ही चलाते रहे।

सेनाध्यक्षों की समिति की वर्तमान धारणा ·

महायुद्ध से पूर्व, राजनीतिक स्तर पर नियोजन कार्य अनेक मन्त्री समितियों द्वारा किया जाता था, जिनका अध्यक्ष बहुधा प्रधानमन्त्री स्वयं होता था। अनेक मन्त्रियों एवं सेनाध्यक्षों वाली ये समितियाँ साम्राज्यिक रक्षा समिति को सुरक्षा के अनेक पहलुओं यथा घरेलू रक्षा अथवा भारत की रक्षा पर रपट दिया करती थीं। साम्राज्यिक रक्षा समिति द्वारा स्वीकृत नीति जिसका अन्तिम उत्तरदायित्व कैबिनेट पर होता था सभी योजनाओं और तैयारियों का आधार बनती थी, फिर नौ-सेना और युद्ध मन्त्रालय के जनरल स्टॉफ स्वतन्त्र रूप से इन योजनाओं पर विस्तारपूर्वक कार्य करते थे। दोनों सेवाओं की योजनाओं में समन्वय स्थापित करने तथा साम्राज्यिक रक्षा समिति को सयुक्त सलाह प्रस्तुत करने के किसी सगठन के अभाव के कारण होने वाली कठिनाइयाँ महायुद्ध काल में एक तीसरे रक्षा विभाग और तीसरी सेवा के रूप में वायु मन्त्रालय और शाही वायु सेना के निर्माण से और भी

बट गई। प्रारम्भिक काल में नए मंत्रालय को पुराने मंत्रालयों के विरोध का सामना करना पड़ा। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि इसके दावे बहुधा प्रति-स्पर्धी होते थे जबकि शाही वायु सेना की शक्ति के सम्बन्ध में दूसरी सेवाओं का दृष्टिकोण अधिकतर निराशावादी था। इसका फल यह हुआ कि रणकौशल और नीति सम्बन्धी अनेक मामलों में साम्राज्यिक रक्षा समिति को सेवाओं के तीनों अंगों के कार्य और शक्ति के सम्बन्ध में एक-दूसरे से भिन्न विचारों पर आधारित विरोधी सलाहों का सामना करना पड़ता था। राजनीतिज्ञ के लिए इन तीनों दावों में तालमेल बैठाना अथवा तीनों सेवाओं में समन्वय स्थापित करना कठिन हो जाता था। राजनीतिक नीति नियोजन और विशेषज्ञ सैनिक नियोजकों के उत्तरदायित्व को मुलझाकर उत्तरदायित्वों को स्पष्ट विभाजन सहित एक उचित संगठनात्मक आधार पर रखने की आवश्यकता थी। यह अत्यावश्यक था और इसी आवश्यकता के फल-स्वरूप एक उचित संगठन सूत्र में आबद्ध तीनों सेवाओं के दस प्रतिनिधियों को लेकर सेनाध्यक्षों की समिति का जन्म हुआ। इस प्रकार इंग्लैंड में संगठन और कार्यों के अपने वर्तमान रूप में सेनाध्यक्षों की समिति का जन्म हाल ही में हुआ। १६२२ में चनक संकट (Chanak Crisis) को सुलझाते समय लॉयड जॉर्ज ने अस्थायी रूप में गठित करके पहले-पहल इस संस्था की कल्पना की थी। यह और और इसके बाद होने वाले विकास इतने हाल के हैं कि प्रमुख राज्यों में इस संस्था के गठन के वर्तमान स्वरूप का वर्णन करते समय उनके विषय में विस्तारपूर्वक विचार किया जा सकता है।

(ट) संयुक्त राज्य में सेनाध्यक्ष प्रणाली :

संयुक्त राज्य में वर्तमान संयुक्त सेनाध्यक्षों (Joint Chiefs of Staff) की संस्था का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। इसके पूर्व युद्ध और रणकौशल के सिद्धान्तों का व्यवहारतः किसी को ज्ञान न था और सैनिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में रणनीति को अत्यल्प समय दिया जाता था। सेना के तत्कालीन स्टॉफ में सैनिक संगठन के विभिन्न विभागों और ब्यूरों के अनेक अध्यक्ष उदाहरणार्थ एडजुटेंट जनरल, क्वार्टर मास्टर जनरल, शस्त्र विभाग का अध्यक्ष आदि होते थे। कोई भी स्टॉफ अध्यक्ष न तो युद्ध की योजना तैयार करता था और न ही विशाल सेनाओं की आवश्यकता पूर्ति के दृष्टिकोण से विचार करने का आदी था। सही सैनिक नक्शों के अभाव जैसे अन्य सहायक कारक भी थे, जिन के कारण नियोजन कार्य कठिन हो गया था। स्टॉफ संगठन के किसी भी विभाग में ऐसा कोई व्यक्ति अथवा संभाग नहीं था जिसे कम से कम सैद्धान्तिक युद्ध के लिए ही सही रणनीति का अध्ययन अथवा योजना निर्माण करने का कार्य सौंपा गया हो। अमेरिकी सैनिकतन्त्र का अध्यक्ष राष्ट्रपति होता था और वही राष्ट्र की सारी सशस्त्र सेनाओं का प्रधान सेनापति होता था।

अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) प्रथम राष्ट्रपति था जिसने अपने हाथ में सशस्त्र सेनाओं के प्रधान सेनापति द्वारा किए जाने वाले सभी कार्यों के अतिरिक्त वे कार्य भी, जो आधुनिक प्रणाली में जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष अथवा संयुक्त सेनाध्यक्ष द्वारा किए जाते हैं वे रखे थे। नीति निर्माण करने और रण क्षेत्र की योजना बनाने के साथ ही वह युद्ध की गतिविधि भी निर्धारित और निर्देशित करता था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य का नागरिक अध्यक्ष सैनिक कार्यवाही में बड़े पैमाने पर हस्तक्षेप करता था, परन्तु अमेरीकी कमान प्रणाली की यही परम्परा थी कि नागरिक अध्यक्ष रणनीति और उसकी गतिविधि का भी निर्देशन करें। यदि लिंकन के जनरल सच्चे अर्थों में सैनिक रणनीति विशारद होते तो शायद राष्ट्रपति सैनिक मामलों में कम हस्तक्षेप करता। वास्तव में उचित रणनीति सम्बन्धी अपने निर्णय को त्याग कर लिंकन किसी भी योग्य जनरल की जिस ने रण सम्बन्धी योजना के निर्माण और निर्देशन में अपनी योग्यता सिद्ध कर दी हो सलाह मानने को तैयार रहता था। शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि सशस्त्र सेनाओं के प्रशासन में नागरिक और सैनिक क्षेत्रों के बीच कहीं न कहीं विभाजक रेखा खींचनी पड़ेगी। इसके फलस्वरूप १८६४ में कमान प्रणाली का विकास करके लिंकन ने अमरीकी सैनिक संगठन को एक महत्वपूर्ण और स्थायी योगदान दिया।

१८६३-६४ में संयुक्त राज्य में कमान प्रणाली का निर्धारण कोई क्षणिक उपलब्धि नहीं थी। इस समय से पूर्व युद्ध के वर्षों ने आवश्यक अनुभव और पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी जिस पर इस प्रणाली को आधारित किया गया। इस कार्य में लिंकन और कांग्रेस (संसद) प्रमुख निर्माता थे, क्योंकि कांग्रेस ने कमान प्रणाली के संस्थागत स्वरूप को स्वीकृति प्रदान की और लिंकन ने उसे कार्यरूप में परिणत किया। कमान प्रणाली के साथ-साथ केन्द्र में अमरीकी सैनिक व्यूह रचना के व्यवहारिक नियोजन के लिए उत्तरदायी एक सैनिक अधिकारी-एक वर्दीधारी जनरल-की नियुक्ति की गई। केन्द्र में नियुक्त नए सैनिक अधिकारी ने सरकार को रणक्षेत्र में युद्ध संचालन सम्बन्धी सलाह देना आरम्भ कर दिया; योजना विशेषज्ञ इस सैनिक अधिकारी को मुख्य सेनापति (General in Chief) का नाम दिया गया। इस पद पर पहली बार जनरल ग्रांट (Grant) की नियुक्ति हुई। सशस्त्र सेनाओं के प्रधान सेनापति पद पर लिंकन स्वयं बने रहे और इस प्रकार रणनीति के नवनियुक्त प्रमुख जनरल इन चीफ पर उनका सर्वोच्च नियन्त्रण और अधिकार बना रहा।

यहाँ इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि यद्यपि जनरल ग्रांट जनरल इन चीफ था, सेना की वास्तविक कमान सैनिक कमाण्डरों के ही हाथ में थी। जनरल इन चीफ का मुख्यालय वाशिंगटन से दूर स्थित होने के कारण उसका राष्ट्रपति से रोज व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं हो पाता था। फिर भी जनरल ग्रांट और

राष्ट्रपति लिंकन संचार के तात्कालिक साधनों द्वारा एक-दूसरे से सम्पर्क बनाए रखते थे। लिंकन और ग्रांट के मध्य सूचना के आदान-प्रदान हेतु एक नए कमान पद चीफ आफ स्टॉफ का निर्माण किया गया। इस पद का सुझाव किसने दिया यह तो पता नहीं परन्तु इस प्रकार के पद की आवश्यकता स्पष्ट रूप से अनुभव की जा रही थी। लिंकन ने हेलेक (Halleck) को चीफ ऑफ स्टॉफ नियुक्त किया। फिर भी हेलेक आधुनिक अर्थों में चीफ आफ स्टॉफ न था। वह मुख्य रूप से लिंकन और ग्रांट तथा ग्रांट और विभागीय कमाण्डरों के मध्य सम्पर्क स्थापित करने वाली कड़ी मात्र था। चीफ ऑफ स्टॉफ के पद पर कार्य करने हेतु आदर्श सलाहकार के रूप में लिंकन द्वारा हेलेक का चुनाव उसकी इस योग्यता के कारण किया गया कि वह नागरिक विचारों को सेना के समक्ष और सैनिक विचारों को नागरिकों के समक्ष सुस्पष्ट ढंग से रख सकता था। वह लिंकन की रणनीति संबंधी धारणाओं को ग्रांट के समक्ष और ग्रांट की सैनिक भाषा को राष्ट्रपति के समक्ष स्पष्ट कर सकता था। इस प्रकार राष्ट्रपति और जनरल इन चीफ के मध्य घनिष्ठता बढ़ती गई। वास्तव में जनरल इन चीफ राष्ट्रपति से बहुत कम पत्र व्यवहार करता था। वह सभी सूचनाएँ चीफ ऑफ स्टॉफ के पास भेज दिया करता था, जो उन्हें आवश्यक विश्लेषण अथवा टिप्पणी के साथ राष्ट्रपति के पास पहुँचा देता था। चीफ ऑफ स्टॉफ, जनरल इन चीफ और विभागों का संचालन करने वाले जनरलों के मध्य भी सम्पर्क स्थापित करने वाली कड़ी था। इस प्रकार मध्यस्थ के रूप में चीफ ऑफ स्टॉफ की नियुक्ति हो जाने से जनरल इन चीफ विभागों के लिए रणनीति संबंधी निर्देश तैयार करने पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर सकता था। यदि जनरल इन चीफ को अपने अधीनस्थ कमाण्डरों की रिपोर्ट पढ़कर उन पर निर्देश लिख कर देने पड़ते तो कार्यकुशल रणनीति संबंधी नियोजन कठिन हो जाता। विभागीय जनरलों की सूचनाएँ चीफ ऑफ स्टॉफ के पास भेजी जाती थी जो या तो उन्हें सीधे ग्रांट के पास अथवा जनरल इन चीफ के लिए उनकी टिप्पणियों को संक्षिप्त करके भेज देता था। अपने अधीनस्थ अधिकारियों को अधिकतर आदेश ग्रांट चीफ ऑफ स्टॉफ के माध्यम से भिजवाता। बहुधा जनरल इन चीफ मोटे तौर पर अपनी इच्छा चीफ ऑफ स्टॉफ को बता देता फिर संबंधित अधिकारियों को लिखित आदेश भिजवाने का काम चीफ ऑफ स्टॉफ का रह जाता। कभी-कभी जनरल इन चीफ गोलन्दाजों के काम को निपटाने के लिए पूर्ण सत्ता चीफ ऑफ स्टॉफ को ही सौंप देता।

ऐसा लगता है कि चीफ ऑफ स्टॉफ का कार्य केवल सूचनाओं का संकलन करना था तथा परामर्श और प्रशासन के अतिरिक्त उसका कोई उत्तरदायित्व न था। कुछ अर्थों में चीफ ऑफ स्टॉफ का कार्य सीमित और प्रभावहीन था, फिर भी राज्य के उच्चतर सैनिक संगठन में वह अत्यावश्यक कड़ी था। इस प्रकार राज्य के राज-

नौसैनिक मामलों के प्रधान सेनापति होंगे, रणनीति सम्बन्धी नियोजन के लिए उत्तरदायी एक जनरल इन चीफ़ और सैनिक विचारों को नागरिकों तक और नागरिक विचारों को सेना तक पहुँचाने वाले एक चीफ़ ऑफ़ स्टॉफ़ की व्यवस्था ने संयुक्त राज्य को आधुनिक युद्ध के लिये कमान की आधुनिक प्रणाली प्रदान की। उन्नीसवीं शताब्दी में राज्य के संवैधानिक विकास के सन्दर्भ में यह व्यवस्था अच्छी प्रकार चली, पर बीसवीं शताब्दी में और भी अधिक अनुभव प्राप्त किये जाने थे। फिर भी १८६६ और १८७० में वॉन मोल्के द्वारा प्रूसी स्टाफ़ तंत्र के निर्माण से पूर्व यह योरोप की किसी भी उपलब्धि से उत्कृष्ट थी।[११]

---

११ - देखिए पृष्ठ ८२

परिशिष्ट 'घ'

गुप्त साम्राज्य में युद्धतंत्र (सन्दर्भ पृष्ठ ४१–४५)

- राजा
  - प्रधान और मन्त्रिपरिषद्
    - युद्धमंत्री और मुख्य सेनापति
      - महा व्यूहपति (Chief of Staff)
      - रणभाण्डागाराधिकरण (Quarter Master General)
      - आयुधागाराध्यक्ष व दुर्ग महानिरीक्षक (Master General of Ordinance)
        - दुर्गाध्यक्ष अथवा कोटपाल
        - द्वारपाल
      - पत्त्यध्यक्ष (Infantry Commander)
      - महाश्वपति (Cavalry Commander)
        - भटाश्वपति (पट्टीश)
      - हस्त्यध्यक्ष (Elephant Corps Commander)
      - रथाधिपति (Chariot Corps Commander)
      - आनुषंगिक सेनाएँ
        - रोगियों की परिचर्या का कोर (Ambulance Corps)
        - भूमि और मार्ग खोदने वाले

* डॉ० अल्तेकर का विचार है कि आयुधागाराध्यक्ष रण-भाण्डागाराधिकरण के अधीन कार्य करता होगा परन्तु चूंकि (१) शस्त्र (आयुध) युद्ध के आवश्यक और महत्त्वपूर्ण उपकरण होते थे और (२) पूर्वोक्त का पद नाम अध्यक्ष था अतः इस बात पर भी विश्वास किया जा सकता है कि वह आधुनिक संगठन की भांति सीधे प्रधान सेनापति के अधीन होता था। इस बारे मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता पर इसे एक सभावना के रूप मे लिया जा सकता है।

परिशिष्ट 'आ'

ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों में राजपूत राज्य का राजनीतिक संगठन (सन्दर्भ पृष्ठ ४७–५३)

राजपूत राजा

- सामंतों की परिषद्
- महासामंत (प्रमुख सामंत सरदार)
  - राजराजनिक और जागीरों का प्रशासन
    - प्रथम श्रेणी के सरदार
    - द्वितीय श्रेणी के सरदार
    - तृतीय श्रेणी के सरदार
- सैन्य संरचना (महा सेनाधिपति) प्रधान सेनापति
  - पदाति संचालक
  - अश्वसेना संचालक
  - हस्तिसेना संचालक
  - दुर्ग नियामक (राजस्थान में)
    - कोटपाल अथवा जिला मुख्यालयों पर दुर्ग निरीक्षक
  - नौका (नौसेना) संचालक (बंगाल में)
- महा संधिविग्रहक (युद्ध और शान्ति मन्त्री)

परिशिष्ट 'आ' अनुवृत

नागरिक प्रशासन

राजपूत राजा

- महा दौराध्वसाधनिक (सैनिक साधनो का प्रमुख अधिकारी)
- राजपुत्र और महाकाम अमात्य
- पुरोहित (इस काल मे उसके कर्तव्य पूर्ण-तया धार्मिक थे पर आवश्यक मामलो में उससे परामर्श किया जाता था)
- प्रधान जो बहुधा महा सामंत भी होता था
- राजअमात्य अथवा मंत्रीगण
- महाक्षपाटलिक (मुख्य राजस्व अधिकारी)
- महाप्रतिहार राजगृह का अधिकारी
- महा दण्डनायक अथवा मुख्य न्यायाधीश

परिशिष्ट 'छ'

सल्तनत का राजनीतिक संगठन और सैनिकतंत्र (सन्दर्भ पृष्ठ ५३-५५)

- सुल्तान
  - नायब-उल-मुल्क अथवा राज्य का (Lord Lieutenant) प्रतिशासक जो सुल्तान का प्रथम सहायक होने के कारण सैनिक तंत्र का आवश्यक अंग था और प्रतिशासक के रूप में कार्य करता था।
    - नागरिक प्रशासन
      - वजीर और उसका दीवान-ए-विजारत विभाग
      - सदर-उस-सुदूर और उसका दीवान-ए-रिसालत विभाग
        - काज़ी-ए-मुमालिक अथवा मुख्य न्यायाधीश और उसका विभाग दीवान-ए-कज़ा
      - दबीर-ए-खास और उसका दीवान-ए-इंशा विभाग (शाही पत्राचार से सम्बन्धित)
        - अनेक दबीर अथवा पत्र लेखक
      - दीवान-ए-रियासत अथवा बाजार विभाग

- नायब वजीर
- मुशरिफ-ए-मुमालिक (महा लेखापाल मुल्तान से मिल सकता था)
  - मुशरिफ (भाय का लेखाधिकारी)
    - नाजिर
      राजस्व संग्रह का निरीक्षण करता था। उसके अधीन साम्राज्य भर में अनेक कर्मचारी होते थे।
  - मुस्तौफी (व्यय का अधिकारी)
    - वकफ (व्यय नियन्त्रक)
- मुस्तौफी-ए-मुमालिक (महा लेखा परीक्षक सुल्तान से मिल सकता था)
- अमीर-ए-दाद (न्यायधीशों के निर्णयों को लागू करता था। ये मन्त्री तो नहीं थे पर सुल्तान से मिल सकते थे
- कोतवाल अथवा पुलिस विभाग का अध्यक्ष
- मुहतसिब अथवा जन-नैतिकता निरीक्षक

परिशिष्ट 'इ'

सल्तनत का राजनीतिक संगठन और सैनिक तन्त्र-अनुवृत
सुल्तान—अनुवृत
सैनिक तन्त्र
आरिद-ए-मुमालिक और उसका विभाग दीवान-ए-अरद (सेना की भरती, उसके वेतन वितरण और निरीक्षण के लिए उत्तरदायी नागरिक मन्त्री)
नायब-ए-नाजिम-ए-मुमालिक अथवा युद्धमन्त्री
गुप्तचर विभाग और बरीद-ए-मुमालिक (राज्य के सूचना एवं गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष)
अश्वारोही
हाथी
पदाति
दुर्ग
अमीर-ए-बहर (नौकाओं का अध्यक्ष)
मुरतब
सवार दो अस्पह
शाहनाह-ए-फील (दक्षिण भुजा)
शहनाह-ए-फील (वाम भुजा)
वभी
घर वभी

भाग २

लोकतंत्रीय देशों में रक्षा - संगठन तथा सेनाध्यक्षों की समिति के कार्य और इसकी सांविधानिक स्थिति

सैनिक नियोजन की तिहरी धारणा के विकास के अध्ययन से निस्सन्देह यह स्पष्ट हो जाता है कि विशेषज्ञों द्वारा किया जाने वाला नियोजन आने वाली अवस्थाओं की कुंजी प्रस्तुत करता है, क्योंकि सम्बन्धित राजनीतिक शक्ति की स्वीकृति से यही उच्चतर रक्षा-नीति के निर्माण का आधार बनता है। एक बार इसे प्राप्त कर लेने पर विशेषज्ञ नियोजकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपने अधीन कार्य करने वाली कमानों को निर्देश देकर अपने द्वारा स्वीकृत योजना पर व्यवहार कराएँ। किसी भी आधुनिक राज्य में सेनाध्यक्षों की समिति के कार्य इस विशेषज्ञ रक्षानियोजन के दोहरे पहलू हैं। राजनीतिक सत्ता की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु समिति राज्य के उच्चतम राजनीतिक अंगों के सीधे सम्पर्क में आती है। फिर जब स्वीकृत योजना को इसे व्यवहार में लागू कराना होता है, तब समिति कमानों और निम्नतर संरचनाओं को आदेश देकर पूर्णतः सैनिक अंग की भाँति कार्य करती है भले ही वे संघीय हों अथवा एकात्मक, उनका संविधान लिखित हो अथवा अलिखित, लोकतंत्रीय देशों में एवं आधुनिक तानाशाही राज्यों में उपलब्ध सेनाध्यक्षों की समिति के इस दुहरे पक्ष—एक तो राजनीतिक संगठन के अंग के रूप में और दूसरे राज्य के सैनिकतंत्र के रूप में—का यहाँ अध्ययन किया गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ के दूसरे भाग में लोकतंत्रीय देशों में सेनाध्यक्षों की समिति के संगठन, कार्यों और स्थिति पर ध्यान केन्द्रित किया गया है, तीसरे अध्याय में एकात्मक राज्यों तथा चौथे और पाँचवें अध्यायों में संघीय राज्यों पर विचार-विमर्श किया गया है।

एकात्मक और संघीय राज्यों में भेद करना आवश्यक है क्योंकि संघीय विषय होने के कारण रक्षा एवं तत्सम्बन्धी नियोजन का उत्तरदायित्व संघ में

सम्मिलित राज्य सरकारों का न होकर पूर्ण रूप से केन्द्रीय सरकार का होता है। साथ ही क्योंकि संघीय संविधान आवश्यक रूप से लिखित होता है सेनाध्यक्षों की समिति का अस्तित्व भी बहुधा संवैधानिक होता है। एकात्मक राज्यों, विशेषकर इंगलैण्ड के समान अलिखित संविधान वाले राज्यों में सेनाध्यक्षों की समिति का राज्य की सर्वोच्च कार्यकारी का अंग होने के कारण संवैधानिकतंत्र में कोई स्थानाधिकार नहीं होता। पहले एकात्मक राज्यों में सेनाध्यक्षों की समिति के संगठन के अध्ययन द्वारा इन तथा अन्य सूक्ष्म भेदों का परीक्षण किया जा सकता है।

३

एकात्मक राज्य

(१) यूनाइटेड किंगडम* (ब्रिटेन)

तीनों सशस्त्र सेनाओं के प्रारम्भिक अलग-अलग नियोजन के उपाय पर लॉयड जार्ज की महत्त्वपूर्ण टिप्पणी कि "जोड़-तोड़ करना रणनीति नहीं है" सेनाध्यक्षों की उस समिति के 'कार्यकारी उद्गम और आवश्यकता का संक्षेप में उचित ढंग से निरूपण करती है जिसके बिना ब्रिटिश प्रधानमन्त्री साम्राज्य की रक्षा *सम्बन्धी समस्याओं का उचित सामरिक विश्लेषण नहीं प्राप्त कर सकता था,* यद्यपि लॉयड जार्ज ने एक अस्थायी समस्या १९२२ के चनक संकट–का समाधान करने के लिए इस समिति की स्थापना की थी सॉल्जबरी समिति के प्रतिवेदन द्वारा इसे स्थायी आधार पर स्थापित किया गया।

साल्जबरी प्रतिवेदन (The Salisbury Report)

१९२३ में लॉर्ड साल्जबरी की अध्यक्षता में साम्राज्यिक रक्षासमिति की एक उपसमिति ने साम्राज्यिक रक्षा संगठन की समीक्षा की। सेनाध्यक्षों की समिति को *स्थायी आधार पर विकसित करने के सम्बन्ध* में इस प्रतिवेदन ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिफारिश की। प्रतिवेदन ने सेनाध्यक्षों की समिति को एकीकृत करने तथा इसकी प्रतिष्ठा और अधिकार-क्षेत्र का विस्तार करने का प्रयत्न किया और कहा कि "क्रमशः सागर, स्थल और वायुनीति सम्बन्धी प्रश्नों पर अपनी-अपनी परिषद अथवा बोर्ड के परामर्शदाता के रूप में कार्य करने के अतिरिक्त तीनों सेनाध्यक्ष युद्ध कर्मचारियों के सर्वोच्च अध्यक्ष के रूप में रक्षा-नीति के समग्ररूप पर परामर्श देने के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से प्रयोग में उत्तरदायी होंगे। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए वे अपने सामूहिक उत्तरदायित्व को प्रभावित करने वाले प्रश्नों पर विचार-विमर्श करने के लिए गोष्ठियां करेंगे।"X

इसलिए सेनाध्यक्षों की इस नई समिति का उद्देश्य था साम्राज्यिक रक्षा समिति (जिसकी यह स्थायी उपसमिति बन गई थी) द्वारा राजनीतिक विचार-

---

* जुलाई १९६१ के कमाण्ड पेपर २०९७ में प्रस्तावित विकास जिन पर अभी संसद को अधिनियम बनाना है और पारित हो जाने पर जिन पर अप्रेल १९६४ से अमल किया जाएगा, पृ० ४४० पर एक परिशिष्ट में दिए गए हैं।

X १९२४ का cmd, २०२९

विमर्श के लिए तीनों सेनाओं की एक सामूहिक सैनिक सलाह प्रस्तुत करना, सभी सैनिक मामलों में परामर्श देना और युद्ध के लिए संयुक्त योजना-निर्माण करना। प्रधानमंत्री के अधिकारपत्र द्वारा नियुक्त किए जाने वाले सदस्यों से बनी सेनाध्यक्षों की समिति की संयुक्त सम्मति और उत्तरदायित्व के कारण सेवाओं के प्रतियोगी दावों से उत्पन्न कठिनाइयां अब काफी कम हो गई थी। "प्रयोग में युद्ध कर्मचारियों का सर्वोच्च अध्यक्ष" वाक्यांश की उस समय आलोचना की गई परन्तु इस वाक्यांश में अधिनायकवादी तत्त्व नहीं हैं क्योंकि सभी अंग्रेजी संस्थाओं की भांति यह भी पूर्णत: लोकतंत्रीय है क्योंकि यह तीनों अध्यक्षों की सभा है जो क्रमश: तीन सेवा-परिषदों नौसेना परिषद, स्थल-सेना परिषद और वायुसेना परिषद का प्रतिनिधित्व करते हैं, 'परिषदों' और उनके द्वारा शासन के लोकतंत्रीय सिद्धान्त को इस प्रकार अन्तर-सेवा सहयोग के क्षेत्र तक विस्तृत कर दिया गया है।

साम्राज्यिक रक्षा समिति का अध्यक्ष सेनाध्यक्षों की समिति का पदेन अध्यक्ष था। सॉल्जबरी प्रतिवेदन ने इस बात की भी सिफारिश की कि साम्राज्यिक रक्षा समिति और सेनाध्यक्षों की समिति सम्बन्धी मामलों में सहायता देने के लिए प्रधान मंत्री को अपना एक सहचारी (deputy) नियुक्त करना चाहिए। १९३६ तक जब-तक कि रक्षा समन्वयन मंत्री दोनों निकायों का स्थायी उपाध्यक्ष नहीं बन गया, प्रधानमंत्री ही दोनों की अध्यक्षता करता था यद्यपि कभी-कभी वह किसी सहकारी को भी नियुक्त कर देता था। जबतक कि प्रधानमंत्री, उसका सहकारी अथवा सेनाध्यक्ष स्वयं किसी विशेष गोष्ठी में किसी राजनीतिक अध्यक्ष की उपस्थिति आवश्यक न समझें। सेनाध्यक्ष अपनी समस्याओं पर विचारविमर्श करने के लिए जो बहुधा कार्यवाही-नियोजन सम्बन्धी होती थी व्यवहारत: स्वतंत्र थे।

रक्षा-विषयों में एकीकरण के क्षेत्र में सेनाध्यक्षों की समिति बड़ी प्रगति का प्रतिनिधित्व करती थी और शीघ्र ही मिल-जुल कर कार्य करने की परम्परा पड़ गई। यह राजनीतिक अध्यक्ष के सुझावों की परीक्षा करने वाला एक निष्क्रिय निकाय नहीं रहा वरन् जांच-पड़ताल के योग्य रक्षा के किसी भी पहलू पर यह स्वयं सरकार का ध्यान आकर्षित करता था। प्रधानमंत्री की प्रार्थना पर यह न केवल उसके लिए प्रतिवेदन तैयार करता वरन् आवश्यक समझे जाने वाले प्रतिवेदनों को अपने आप ही आरम्भ भी करता। इसकी सिफारिशों पर रक्षा तैयारियों के अन्य क्षेत्रों में भी जांच-पड़ताल होती थी। उदाहरणार्थ, यदि सेनाध्यक्ष किसी विशिष्ट कार्य हेतु सेना के आकार के सम्बन्ध में राय प्रकट करते तो यह राय आगे सैनिक भरती और औद्योगिक कामगारों से सम्बन्धित मानवशक्ति उप समिति एवं सामग्री आपूर्ति तथा औद्योगिक क्षमता सम्बन्धी मुख्य अधिकारियों की उपसमिति के अध्ययन का आधार बनती।

इसलिए १९३९ के युद्ध से पूर्व वर्षों में सेनाध्यक्ष नियोजन के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते रहे, और मंत्री प्रतिनिधित्व वाली सुदृढ़ साम्राज्यिक रक्षा समिति

के निर्देशन में ब्यौरे तैयार करने वाले संयुक्त सेवा संगठन उनकी सहायता करते थे। विदेश मंत्रालय द्वारा दी गई सामान्य अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति सम्बन्धी सलाह के प्रकाश में समग्र रूप से सैनिक स्थिति की वार्षिक विस्तृत समीक्षा तैयार करने के लिए भी सेनाध्यक्ष उत्तरदायी थे। मंत्रीपरिषद, साम्राज्यिक रक्षा समिति और विदेश मंत्रालय का रक्षा तैयारियों के सम्बन्ध में आधुनिक रुख जानना सुनिश्चित हो गया और अब सेनाध्यक्ष वर्तमान कूटनीतिक समस्याओं के परिचय के साथ विश्व आधार पर नियोजन कर सकते थे। १९३९ में युद्ध छिड़ने पर इस संगठन को सरलता से युद्ध कैबिनेट, जिसे अपनी अलग सेवा योजना और सूचना संगठनों के साथ सेनाध्यक्षों की समिति परामर्श देती थी, पर आधारित युद्ध में सरकारी नियंत्रण की प्रणाली में बदला जा सकता था।

अनुभव ने यह दिखा दिया कि संयुक्त उत्तरदायित्व के उचित उपयोग के लिए साम्राज्यिक रक्षा समिति के सचिवालय के साथ ही सेनाध्यक्षों को अतिरिक्त कर्मचारियों की आवश्यकता थी। अतः १९२७ में साम्राज्यिक रक्षा समिति के कार्यालय में सेनाध्यक्षों की समिति की उपसमिति के रूप में एक संयुक्त नियोजन समिति स्थापित की गई। प्रभाव रूप में, इस समिति ने जर्मन प्रतिमान की भाँति, पर ब्रिटेन की आवश्यकतानुसार पूर्णतः लचीले स्वरूप में सभी सेवाओं के लिए एक सामान्य स्टॉफ प्रस्तुत किया। इसमें तीनों सेवाओं के चुने हुए अधिकारी (सामान्यतः साम्राज्यिक रक्षा महाविद्यालय के स्नातक) होते थे, जो साथ रहते और कार्य करते हुए अलग-अलग सेवा की आवश्यकताओं के रूप में नहीं वरन् एक ही कार्य के रूप में विचार करने की शिक्षा ग्रहण करते थे। नौसेना, युद्ध मंत्रालय और वायु मंत्रालय में योजनाओं के तीन निदेशक इस समिति के संयुक्त नियोजन स्टॉफ में होते थे, वे अपना समय अपने मंत्रालयों और संयुक्त नियोजन कार्यालयों में बाँट लेते थे। सेनाध्यक्षों और योजना निदेशकों के निर्देशन में सामरिक नियोजन अनुभाग सामान्य सैनिक स्थिति की बराबर समीक्षा करता रहता और समय समय पर कार्यवाही सम्बन्धी परामर्श के साथ मूल्यांकन तैयार करता था। कार्यकारी नियोजन अनुभाग स्वीकृत योजनाओं को व्यवहार में परिणत करने के लिए आवश्यक साधनों का परीक्षण करता था। भविष्य कार्यवाही नियोजन अनुभाग भविष्य की कार्यवाही पर, भले ही यह तत्कालीन व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र से बाहर हो, ध्यान केन्द्रित करता था। इस प्रकार वे सैनिकों, साज-सामान, परिवहन और तुरन्त प्राप्य अन्य साधनों की सीमितता से बँधे नहीं थे वरन् अभियानों का पूर्णतः सैद्धान्तिक आधार पर आयोजन कर सकते थे।

१९३८ में सेनाध्यक्षों की समिति की एक और उपसमिति, संयुक्त गुप्त सूचना उपसमिति स्थापित की गई। प्रारम्भिक अवस्थाओं में तीनों सेवाओं के गुप्त सूचना विभागों के तीन उप निदेशक इसमें होते थे, परन्तु १९३९ में यह विदेश

विभाग के एक प्रतिनिधि की अध्यक्षता में आ गई, और युद्धकाल में आर्थिक युद्ध मंत्रालय का उप महानिदेशक भी इसमें शामिल हो गया। इस उपसमिति का संगठन और कार्य संयुक्त नियोजन स्टॉफ के ढंग पर ही था। शत्रु के बारे में सारी सूचना एकत्र करना और भविष्य में सम्भाव्य शत्रु कार्यवाही का मूल्यांकन करना इसका उत्तरदायित्व था। संयुक्त नियोजन समिति और संयुक्त गुप्त सूचना उपसमिति मिल-जुल कर कार्य करती थी और सेनाध्यक्षों के साथ समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए दोनों को नियमित रूप से आमंत्रित किया जाता था। युद्ध-काल (१९४२) में संयुक्त नियोजन सम्बन्धी स्थिति निम्नलिखित चार्ट में स्पष्ट हो जाती है :—

सेनाध्यक्षों की समिति[2]

- संयुक्त नियोजन स्टॉफ (योजनाओं के तीन निदेशक)
  - सामरिक नियोजन अनुभाग
  - कार्यकारी नियोजन अनुभाग
  - भविष्य कार्यवाही नियोजन अनुभाग
- संयुक्त गुप्त सूचना उपसमिति (विदेश मंत्रालय का सलाहकार गुप्त सूचना के तीन निदेशक)
  - संयुक्त गुप्त सूचना स्टॉफ
  - अन्तर सेवा सुरक्षा बोर्ड
  - गुप्त सूचना अनुभाग (कार्यवाही)
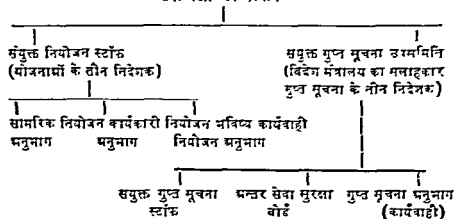
आवश्यकता होने पर युद्ध परिवहन, आर्थिक युद्ध और गृह मंत्रालय के सम्पर्क अधिकारियों के साथ-साथ राजनीतिक युद्ध अधिशासी भी समिति की गोष्ठियों में उपस्थित होते थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध-काल में उच्चतर रक्षा नियोजन का विकास

युद्ध छिड़ने पर १९३९ में एक युद्ध कैबिनेट की स्थापना की गई। इस की गोष्ठियाँ रोज होती थीं और पहले साम्राज्यिक रक्षा समिति द्वारा प्रस्तावों पर विचार-विमर्श करने और बाद में कैबिनेट द्वारा निर्णय लेने के बदले यह सारे निर्णय स्वयं लेती थी। रक्षा-समन्वय मंत्री का पद युद्ध की तैयारी के लिए साम्राज्यिक रक्षा समिति की प्रणाली पर आधारित था और वह सेवाओं की आपेक्षिक शक्ति, रक्षा व्यय और युद्ध योजनाओं का समन्वयन जैसी समस्याओं पर व्यवहार करता था। मंत्री को साम्राज्यिक रक्षा समिति और सेनाध्यक्षों की समिति के अध्यक्ष के

२ १९४० में प्रधान मन्त्री बनने पर चर्चिल ने सेनाध्यक्षों की कमेटी के निरीक्षण और निदेशन का कार्य संभाल लिया। (The Second World war : Their Finest Hour, 1949 p. 15)

रूप में सेना समस्याओं और युद्ध के लिए तैयारी सम्बन्धी अन्य मामलों में सेना मन्त्रियों के कार्यों में समन्वय करने और अध्यक्षता करने का अधिकार होने के कारण यह पद उपयोगी था। परन्तु जब साम्राज्यिक रक्षा समिति का स्थान युद्ध कैबिनेट ने ले लिया जिसका समन्वयकर्ता और अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता था तथा सेना मन्त्री जिसके सदस्य होते थे, तब १९३९ में निर्मित रक्षा समन्वयन मन्त्री का पद अनावश्यक हो गया और अन्ततः अप्रैल १९४० में समाप्त कर दिया गया। न तो उस समय और न युद्धकाल में फिर कभी रक्षामन्त्री[3] के कर्तव्यों और शक्तियों को परिभाषित करने का कोई प्रयत्न किया गया तथा किसी भी सफल युद्ध कार्य-वाही का उचित संचालन करने के लिए आवश्यक संगठित प्रशासन प्रस्तुत करने हेतु कार्यप्रणाली विकसित करने का कार्य प्रधानमन्त्री पर छोड़ दिया गया, शेष युद्धकाल में युद्ध कैबिनेट छोटी ही रही और इसकी सदस्य संख्या पाँच और आठ के बीच बनी रही।

१९३९ में युद्ध छिड़ने से पूर्व, साम्राज्यिक रक्षा समिति ने युद्धकाल में सरकारी नियन्त्रण के प्रश्न का अध्ययन कर लिया था। इसने युद्धकाल में सर्वोच्च नियन्त्रण की चार सम्भावनाएँ सूचीबद्ध की थीं, प्रथम सामान्य शान्तिकालीन कैबिनेट शासन प्रणाली, द्वितीय सीमित शक्तियों वाली युद्ध समिति सहित कैबिनेट शासन, तृतीय हद पर सीमित शक्तियों वाली युद्ध समिति सहित कैबिनेट शासन और चतुर्थ पूर्ण और यथार्थ अधिशासी शक्ति सम्पन्न युद्ध कैबिनेट। प्रथम विश्वयुद्ध के अनुभवों पर अपने विचार आधारित करते हुए समिति ने सिफारिश की थी कि व्यापक युद्ध छिड़ने की स्थिति में सर्वोच्च युद्ध कैबिनेट ही एक मात्र सम्भव प्रणाली थी।

इस प्रकार के युद्धकाल में भी ब्रिटिश सरकार नियम विरुद्ध कार्य नहीं कर सकती थी, यह सामान्य नियम, क्राउन के विशेषाधिकार अथवा संविधि द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अनुरूप ही कार्य कर सकती थी। ऐसी शक्तियाँ संसद के अधि-नियमों और उनके अन्तर्गत बने नियमों और आदेशों से प्राप्त की जाती हैं। यह सच है कि १९३९ के आपातकालीन शक्ति सुरक्षा अधिनियम के अनुसार सपरिषद सम्राट His Majesty in Council) साम्राज्यिक सुरक्षा, साम्राज्य की रक्षा और युद्ध के कुशल संचालन के लिए सामाजिक व्यवस्था और आवश्यक आपूर्ति और सेवाएँ बनाए रखने के लिए आवश्यक सभी आदेश जारी कर सकता था। इतना होने पर भी संसद अपने द्वारा प्रदत्त शक्तियों को कभी भी वापस ले सकती थी। कार्य-पालिका पर अभी भी अन्तिम नियन्त्रण इसी का था यह इस बात से सिद्ध होता है कि मई १९४० में उस सरकार को जिसमें इसका विश्वास नहीं रह गया था इसने जबरदस्ती पदमुक्त कर दिया था। यह तर्क कि कैबिनेट तानाशाही की तरह पर कार्य कर रही थी संसद द्वारा अस्वीकार कर दिया गया और चैम्बरलेन (Chambe-

3 हेरॉल्ड वर्टिन, op. cit., Vol II p. 15.

rlain) को युद्ध के प्रेरणाहीन संचालन का सारा उत्तरदायित्व स्वीकार करना पड़ा।

पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार युद्ध छिड़ने पर साम्राज्यिक रक्षा समिति भङ्ग हो गई और इसका स्थान युद्ध कैबिनेट ने ले लिया, और एक सचिवालय जिसमें भूतपूर्व कैबिनेट कार्यालय और साम्राज्यिक रक्षा समिति के कर्मचारी सम्मिलित थे इसकी सेवा करने लगा। सरकार के छिड़ते हुए कार्यों के सम्पादन का सारा उत्तरदायित्व अब इस युद्ध कैबिनेट के हाथ में चला गया। लगभग २३ सदस्यों वाली शान्तिकालीन कैबिनेट का स्थान ग्रहण करने वाली यह नई कैबिनेट आठ सदस्यों का छोटा-सा निकाय थी, जिसमें प्रधानमन्त्री, कोषाध्यक्ष, विदेशमन्त्री, प्रिवी सील का लॉर्ड, तीनों सेवाओं के मंत्री और एक बिना विभाग का मन्त्री होते थे। यह १९१७–१८ की युद्ध कैबिनेट पर आधारित थी और इसे बड़ी शक्तियाँ प्राप्त थीं। कैबिनेट से परामर्श किए बिना कार्य करने का इसे पूर्ण अधिकार था तथा संसद के अतिरिक्त इस पर और किसी का नियन्त्रण नहीं था।

श्री चर्चिल की रक्षा समिति

१९४० में जब चैम्बरलेन की सरकार का पतन हो गया तब नए प्रधानमंत्री ने शीघ्र ही एक रक्षा समिति गठित की जो दो अनुभागों में कार्य करती थी। प्रथम थी, रक्षा समिति (कार्यवाही) जिसमें प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, विदेश सचिव, वायुयान उत्पादन मंत्री, सेवाओं के मंत्री और सेनाध्यक्ष होते थे,[४] और यह सामरिक मामलों की देखभाल करती थी। इस समिति का उद्देश्य किसी भी वर्तमान सैनिक समस्या पर विचार करने, सैनिक स्थिति और भविष्य की समीक्षा करने तथा इस प्रकार के विचार-विमर्श के परिणाम की सूचना युद्ध कैबिनेट को देने में अपने आवश्यक सलाहकारों सहित प्रधानमंत्री की सहायता करना था। ज्यों-ज्यों युद्ध बढ़ता गया, इस समिति की कम से कम और सेनाध्यक्षों की समिति की अधिकाधिक गोष्ठियाँ करने की प्रवृत्ति बढ़ती गई। दूसरी थी, रक्षा समिति (आपूर्ति) जो सेनाओं के साज-सामान की आपूर्ति की सभी समस्याओं पर विचार करती थी। युद्धकाल में एक उत्पादन मंत्री और एक संयुक्त युद्ध उत्पादन स्टॉफ की स्थापना हो जाने पर आगे चलकर इसकी गोष्ठियाँ भी कम होती गईं।

द्वितीय विश्वयुद्ध में सेनाध्यक्ष

युद्धकाल में सेवा विभागों की स्थिति पर प्रभाव डालने वाले अनेक परिवर्तन हुए। रक्षा समिति के सदस्य होने के कारण सेवामंत्री युद्ध के संचालन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहे। परन्तु सेनाध्यक्षों का एक निगम बन गया और वहीं युद्धक्षेत्र में कमाण्डरों की कार्यवाही एवं युद्ध-संचालन के लिए एकीकृत सामरिक

---

४ Churchill, op. cit. Vol II, pp. 219—221.

निर्देश भेजने लगा। सेवाओं के दिन प्रतिदिन के प्रशासन का उत्तरदायित्व सेवा विभागों पर ही रहा जो अपने-अपने कमाण्डरों की संरचना, साज सज्जा और अपने अधीन सेवाओं के गमनागमन तथा कुमक और आपूर्ति बनाए रखने के लिए विस्तृत आदेश देकर सेनाध्यक्षों द्वारा जारी किए गए केन्द्रीय निर्देशों का पालन करते रहे।

युद्धकाल में सेनाध्यक्षों के संगठन के उत्तरदायित्व और कर्त्तव्यों में महान परिवर्तन हुए। एक तो युद्ध कैबिनेट के व्यावसायिक सलाहकार होने के नाते सेनाध्यक्षों पर सामरिक युद्ध योजनाओं और सामरिक स्थिति का मूल्यांकन करने का भारी भार था। यद्यपि यह कार्य सेनाध्यक्षों के शान्तिकालीन कर्त्तव्यों के अन्तर्गत आता था पर अब इसका महत्व अत्यधिक बढ़ गया साथ ही तीनों सेवाओं से ली हुई सेनाएं संसार भर में बड़े पैमाने पर संयुक्त कार्यवाही में लगी हुई थीं। अतः यह आवश्यक था कि ऐसी सेनाओं के कमाण्डरों को दिए जाने वाले आदेश एक ही निकाय द्वारा निर्मित सामरिक योजना पर आधारित हों। यह उत्तरदायित्व सेनाध्यक्षों ने वहन किया। आगे चल कर युद्ध में कार्यवाही के प्रत्येक क्षेत्र में सारी सेनाओं का एक सर्वोच्च कमाण्डर नियुक्त करने की सामान्य प्रथा बन जाने पर एक केन्द्रीय प्राधिकारी की आवश्यकता पर बल दिया गया। अतः यह प्रथा बन गई कि रणक्षेत्र में कमाण्डरों को कार्यकारी आदेश प्रधानमन्त्री अथवा कैबिनेट की रक्षा समिति के प्राधिकार के अधीन सेनाध्यक्षों द्वारा जारी किए जाने लगे।

सेनाध्यक्षों की समिति की संरचना जिसकी गोष्ठियों में कभी-कभी प्रधानमन्त्री अध्यक्षता करता था, अपरिवर्तित ही रही, केवल १६४० में रक्षामन्त्री का मुख्य स्टॉफ अधिकारी जो युद्ध कैबिनेट के सचिवालय का सैनिक अध्यक्ष भी था, इसके साथ संयुक्त हो गया।

सेनाध्यक्षों की समिति की गोष्ठी प्रतिदिन होती थी और दैनिक कार्यवाही के लिए सेवा विभाग अपने-अपने सदस्यों को पहले से ही निर्देश दे देते थे। इस प्रकार प्रत्येक सेवा के सेनाध्यक्ष का दुहरा उत्तरदायित्व था, प्रथम तो अपनी सेवा के अध्यक्ष के रूप में अपने मन्त्री के प्रति और दूसरे समिति के सदस्य के रूप में कैबिनेट के प्रति। युद्ध के वास्तविक दैनिक संचालन और सैनिक कार्यवाहियों के निर्देशन एवं इन कार्यवाहियों को प्रभावित करने वाले सभी मामलों में संयुक्त राय व्यक्त करने के लिए सेनाध्यक्षों की समिति कैबिनेट के प्रति उत्तरदायी थी।

युद्धकाल में किसी रक्षा मन्त्रालय का गठन नहीं हुआ अतः प्रधानमन्त्री ही रक्षामन्त्री का भी कार्य करता था। वह युद्ध कैबिनेट के सैनिक सचिवालय का जो पहले साम्राज्यिक रक्षा समिति की सेवा में था अपने स्टॉफ के रूप में प्रयोग करता था। इस सचिवालय का कर्त्तव्य विभिन्न विभागों के कार्यों में समन्वय और अप्रतिहतता बनाए रखना तथा अन्तर सेवा तन्त्र की कार्य प्रणाली को सरल बनाना था। यह रक्षामन्त्री को परामर्श नहीं देता था, पर इस बात का निश्चय करता था

कि भविष्य में की जाने वाली किसी भी कार्यवाही के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों की सलाह उनके समक्ष आती रहे।

सर्वोच्च सहबद्ध युद्ध परिषद

युद्ध छिड़ने पर १९१८ की भांति ब्रितानी और अमरीकी सरकारों ने एक सर्वोच्च युद्ध सभा स्थापित की। युद्ध के प्रारम्भिक महीनों में दोनों सरकारों के प्रधानमन्त्री तथा अन्य प्रतिनिधि बार-बार मिल सकते थे। महायुद्ध काल में वर्साई में स्थापित संगठन जैसा कोई संगठन बनाना अब आवश्यक नहीं समझा गया; क्योंकि वायु यात्रा के कारण सहसा गोष्ठियां आयोजित करना अब सम्भव हो गया था।

युद्ध में संयुक्त राज्य के प्रवेश करने पर एक व्यवहारिक निकाय की आवश्यकता अनुभव की गई जो संयुक्त राज्य के सैनिक मुखियाओं के साथ तीनों सेवाओं की ओर से अधिकारपूर्वक वार्तालाप कर सके और यह उत्तरदायित्व सेनाध्यक्षों पर पड़ा। युद्ध का सामरिक निर्देशन बहुत यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य के सेनाध्यक्षों के मध्य होने वाली सभाओं की शृंखला द्वारा तय होता था। ये सेनाध्यक्ष संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति और ब्रितानी प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए राजनीतिक निर्देशों के आधार पर अपनी संयुक्त योजनाएं बनाते थे। अधिक आवश्यक सामरिक सभाओं में सेनाध्यक्ष व्यक्तिशः उपस्थित रहते थे।

संयुक्त सेनाध्यक्ष :

इन बड़ी-बड़ी कान्फ्रेंसों के मध्य, संयुक्त स्टाफ की प्रणाली को (ब्रितानी और अमरीकी स्टाफों की उपस्थिति को इसी नाम से पुकारा जाता था) वाशिंगटन में एक ब्रितानी संयुक्त स्टाफ मिशन रख कर बनाए रखा गया। यह अति महत्त्वपूर्ण था क्योंकि, यद्यपि ब्रितानी और अमरीकी सेनाध्यक्ष अपने भार को अपने कार्य क्षेत्रों और उत्तरदायित्वों तक सीमित रखते थे फिर भी कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य क्षेत्र थे जहां दोनों राष्ट्रों की सभी सेनाओं की कमान एक सर्वोच्च प्रधान सेनापति के हाथ में होती थी और उसे संयुक्त सेनाध्यक्षों द्वारा निर्देश दिए जाते थे।

सभी क्षेत्रों में युद्ध नीतियों पर सम्मिलित सरकारों को परामर्श देने का अविभाजित उत्तरदायित्व संयुक्त सेनाध्यक्षों को प्राप्त था। निस्सन्देह, राष्ट्रीय स्टाफ संगठनों का विलयन नहीं किया गया था। ब्रितानी या अमरीकी योजनाएं तैयार करता और बाद में संयुक्त स्टाफ वाशिंगटन में एक संयुक्त सत्र में इनका परीक्षण करता, परन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मामले सेनाध्यक्षों की समय समय पर होने वाली व्यक्तिगत गोष्ठियों के लिए सुरक्षित रखे जाते थे। वाशिंगटन स्थित संयुक्त स्टाफ दोनों देशों के एक संयुक्त सचिवालय तथा संयुक्त कार्यालयों और योजना स्टाफों के साथ कार्य करता था।

इसी देख-रेख में अनेक संयुक्त एजेन्सियां स्थापित की गईं। उदाहरणार्थ, युद्ध सामग्री नियोजन परिषद् लन्दन और वाशिंगटन में उप समितियों के माध्यम से दोनों राष्ट्रों के युद्ध सामग्री स्रोतों को एकत्र करने का कार्य करती थी। प्रत्येक

उप समिति अपने अधीनस्थ समूह की आवश्यकताओं का निर्धारण करती थी (ब्रितानी साम्राज्य और यूरोपीय देश लन्दन स्थित समिति के अधीन तथा चीन और दक्षिण अमरीका वाशिंगटन स्थित समिति के अधीन थे)। यदि प्रस्तुत भण्डार से ये आवश्यकताएँ पूरी नहीं की जा सकती थी तो दूसरी उपसमिति से उन्हें पूरी करने में सहायता करने को कहा जाता था। सारे युद्धकाल में ब्रितानी साम्राज्य और संयुक्त राज्य में आपूर्ति और परिवहन के अनेक क्षेत्रों में इसी प्रकार की व्यवस्थाओं द्वारा तथा संयुक्त सेनाध्यक्षों के माध्यम से घनिष्ठ सहयोग बनाए रखा गया।

विश्वयुद्धों में सरकारी नियंत्रण के विशिष्ट लक्षण इस अध्याय के परिशिष्ट 'ख' में दर्शाए गए हैं (देखिए पृष्ठ १४०)।

वर्तमान सैनिक नियोजन :

युद्धकाल में ऊपर वर्णित प्रणाली बड़ी कार्यकुशलता और सरलता से चलती रही। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त, ऐसा समझा जाने लगा कि यह कठोर संवैधानिक अधिकार की सीमाओं से आगे बढ़ गई थी। यह अनुभव किया गया कि युद्धकाल में रणनीति संबंधी मामलों में विकसित दिशा की पूर्ण एकता बनाए रखी जानी चाहिए, परन्तु जो परिवर्तन हो चुके थे उन्हें संवैधानिक मान्यता प्रदान किए बिना ऐसा होना संभव नहीं था। तीनों सेवाओं के लिए एकीकृत रक्षानीति का निर्माण करने तथा उसे लागू करने के लिए समर्थ और अधिकार सम्पन्न एक मंत्रालय स्थापित करना आवश्यक समझा गया।[4]

वर्तमान स्थिति :

ब्रिटेन की रक्षा व्यवस्था का निम्नलिखित विस्तृत शीर्षकों के अन्तर्गत परीक्षण किया जा सकता है :-

(अ) रक्षा विषयों में मंत्रालय स्तर पर नीति-निर्माता तंत्र और

(आ) विशेष सैनिक नियोजन और सामरिक मूल्यांकन में कुंजी संगठन (सेनाध्यक्षों का संगठन) से इसका संबंध।

उच्चतर रक्षानीति का निर्माण :

प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री की स्थिति

नए संगठन के अधीन रक्षा का सर्वोच्च उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री के पास रहता है जबकि कैबिनेट की रक्षा समिति द्वारा निर्धारित समरनीति के अनुसार उपलब्ध साधनों को तीनों सेवाओं में मोटे तौर पर बांटने का पूर्ण उत्तरदायित्व विशेष रूप से रक्षामंत्री का होता है। दूसरे शब्दों में रक्षा-मामलों में मंत्री प्रधान

---

४ - देखिए Cmd ६९२३, १९४६ और Cmd ४७६, १९५८

मंत्री का सहकारी होता है। जुलाई १९५८ के "कमाड पेपर्स" ४७६ में स्थिति की समीक्षा इस प्रकार की गई है।+

राष्ट्रीय रक्षा का सर्वोच्च उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री और कैबिनेट का है। इसके अधीन उन सभी रक्षा समस्याओं का जिनमें सारी सरकार का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है– विशेषकर वे जो राष्ट्रमंडल तथा विदेश और उपनिवेश नीति से सबंधित होती हैं– सामान्यतः कैबिनेट की ओर से रक्षा समिति, जिसकी बैठक प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में होती है, निपटारा करती है।

अनुसंधान और विकास को नियन्त्रित करने तथा रक्षा उत्पादन कार्यों का समन्वयन करने सबंधी सामान्य नीति का निर्धारण रक्षा कार्यों के अन्तर्गत आता है। सामान्य प्रशासन के उन सभी प्रश्नों को सुलझाने के लिए जिन पर तीनों सेवाओं के लिए एक ही नीति अपेक्षित होती है तथा अन्तर सेवा सगठनों यथा संयुक्त कार्यवाही मुख्यालय और सयुक्त सूचना ब्यूरो के प्रशासन के लिए, रक्षामंत्री उत्तरदायी होता है। इन अन्तर सेवा-समितियों के प्रस्तावों को वही स्वीकार करता है अथवा उनमें संशोधन करता है जिनके लिए उसका मत्रालय सुविधाएँ और सचिवालय प्रस्तुत करता है। नीति निर्धारण और तत्पश्चात् इसे लागू करने वाले स्टॉफ के लिए मंत्री को सेवाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। उसके सभी निर्णय कैबिनेट की रक्षा समिति के अधीन होते हैं। साधनों के बँटवारे के लिए रक्षामंत्री अपने प्रस्ताव रक्षा समिति और कैबिनेट के समक्ष रखता है और फिर कैबिनेट के निर्णय संसद के सम्मुख प्रस्तुत करता है जहाँ वह तीनों सेवाओं अथवा आपूर्ति मंत्रालय संबंधी मामलों पर सभी प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उत्तरदायी होता है।

कैबिनेट की रक्षा समिति :

मन्त्रियों द्वारा रक्षानीति पर विचार-विमर्श का मुख्य स्थल कैबिनेट की रक्षा समिति है जो मोटे तौर पर वही कार्य करती है जिन्हें युद्ध से पूर्व साम्राज्यिक रक्षा समिति किया करती थी। ऐसी समस्याओं पर सम्पूर्ण कैबिनेट का सामूहिक उत्तरदायित्व होने के कारण स्वयं कैबिनेट के सर्वोच्च प्राधिकरण के अन्तर्गत कार्य करते हुए यह 'देश के शान्ति से युद्ध की ओर संक्रमण के लिए सारी योजनाएँ तैयार करने' और 'तत्कालीन रणनीति की समीक्षा करने' का कार्य करती है।[6]

रक्षा समिति की संरचना लचीली होती है और इसके नियमित सदस्य अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री की सहायता करते हैं। १९५८ से पूर्व ठीक-ठीक सरचना परिभाषित नहीं की गई थी। साधारणतः रक्षामंत्री, कौंसिल का लार्ड प्रेजीडेन्ट, विदेश सचिव, कोषाध्यक्ष, तीनों सेवामंत्री, श्रममंत्री और आपूर्तिमंत्री समिति के सदस्य हुआ करते थे। जिन अन्य मन्त्रियों अथवा अधिकारियों की आवश्यकता

\+ परन्तु पृ० ८४० और आगे भी देखिए।

६ १९४६ का Cmd ६९२३

होती थी उन्हें विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत विषयों के अनुरूप समिति की गोष्ठियों में भाग लेने के लिए आमंत्रित कर लिया जाता था। सेनाध्यक्ष सदैव उपस्थित रहा करते थे। सेनाध्यक्षों के सभापति का प्रमुख स्टॉफ अधिकारी रक्षा समिति के एक सचिव के रूप में कार्य किया करता था।

१९५८ में "रक्षा स्टॉफ के अध्यक्ष" के पद का निर्माण होने और सेनाध्यक्षों की समिति के सभापति और रक्षामंत्री के स्टॉफ के अध्यक्ष के संयुक्त पद के समाप्त होने पर रक्षा के केन्द्रीय संगठन [7] को जुलाई १९५८ के 'कमांड पेपर्स' ४७६ में पुनः पारिभाषित किया गया। रक्षा के लिए कैबिनेट संगठन के अंग के रूप में रक्षा समिति की संरचना विशेष रूप से निर्धारित की गई।

अनुभव ने यह दर्शाया है कि विस्तृत क्षेत्र और विविधता के कारण ये समस्याएं निश्चित सदस्यता वाली समिति द्वारा सरलतापूर्वक नहीं सुलझाई जा सकती। अतः अधिक लचीलापन प्राप्त करने के लिए समिति का गठन अब इस प्रकार किया जा रहा है कि विचार-विमर्श के लिए उठने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर उनसे सीधे संबंधी मंत्री विचार कर सकें। निम्नलिखित मंत्री समिति के सदस्य होंगे :—

प्रधानमंत्री (अध्यक्ष)
गृह सचिव
विदेश सचिव
कोषाध्यक्ष
राष्ट्रमंडल सचिव
उपनिवेश सचिव
रक्षामंत्री
श्रम और राष्ट्रीय सेवामंत्री
नौसेना का प्रथम लॉर्ड
युद्धमंत्री
वायुमंत्री
आपूर्ति मंत्री

विचार-विमर्श हेतु प्रस्तुत विषयों के अनुरूप एवं मंत्रियों के पूर्ण उत्तरदायित्व का ध्यान रखते हुए प्रधानमंत्री यह निश्चय करेगा कि समिति की किन्हीं विशिष्ट गोष्ठियों में इनमें से कौन-कौन से सदस्य उपस्थित हों। साथ ही समय-समय पर उन गोष्ठियों में अन्य मंत्रियों को भी भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाएगा। जिनके विभाग के विशेष हितों को प्रभावित करने वाले विषयों पर विचार होगा अतः

---

७ देखिए The Political Quarterly, १९६० में M. Howard का लेख "ग्रेट ब्रिटेन में केन्द्रीय रक्षा संगठन, १९५९" पृष्ठ ९९

यह स्पष्ट है कि किसी भी मंत्री को गोष्ठियों में भाग लेने का परंपरासिद्ध अधिकार नहीं है। क्योंकि इनमें भाग लेने के लिए किसी को भी आमंत्रित करने का असीमित अधिकार प्रधानमंत्री को प्राप्त है।

सेनाध्यक्ष उसमें उपस्थित रहेंगे। गोष्ठियों के पत्र और कार्यवाही समिति के सभी सदस्यों के पास भेजे जाएंगे।

रक्षा समिति की गोष्ठियों में अपनी उपस्थिति के अतिरिक्त सेनाध्यक्षों को पूरी कैबिनेट की गोष्ठियों में भाग लेने को भी आमन्त्रित किया जा सकता है। इस प्रकार सेनाध्यक्ष सरकार को व्यावसायिक सैनिक सलाह देने के अपने परम्परागत कर्तव्य का पालन करने की स्थिति में हैं, तथा कार्यवाही सम्बन्धी एवं अन्य सैनिक मामलों में उन्हें प्रधानमंत्री से मिलने का भी अधिकार है।×

अपने सामान्य अधिकार और निरीक्षण में कार्यरत उपसमितियों की प्रणाली द्वारा रक्षा समिति युद्धकाल में राष्ट्र के साधनों को गति प्रदान करने की योजनाएं बनाने का कार्य करती है। साम्राज्यिक रक्षा समिति की उपसमितियों की भांति इन उपसमितियों का गठन भी मुख्यतः अधिकारी स्तर पर होता है। इनमें सेवाओं और नागरिक विभागों के प्रतिनिधि और आवश्यकता होने पर सरकारी सेवा से बाहर के विशेषज्ञ शामिल होते हैं।

फिर भी एक महत्त्वपूर्ण दृष्टि से रक्षा समिति साम्राज्यिक रक्षा समिति से भिन्न है। उपर्युक्त पूर्णतः सलाहकार निकाय था, जिसे कैबिनेट अथवा विभागों से संस्तुति करने के अतिरिक्त कोई अन्य अधिकार प्राप्त न था। यद्यपि आवश्यक मामलों पर रक्षासमिति कैबिनेट को अपनी संस्तुतियां ही प्रस्तुत करती है, परन्तु कैबिनेट द्वारा प्रदत्त शक्ति के आधार पर स्वयं भी कार्यकारी निर्णय लेने में सक्षम है और इस प्रकार कैबिनेट पर भार डाले बिना ही बड़ी मात्रा में सामयिक कार्यव्यापार निपटाया जा सकता है।

रक्षामंत्री और तीन सेवामंत्री :

जिस प्रकार दस सैनिक नियोजन की धुरी सेनाध्यक्ष होते हैं उसी प्रकार उच्चतर रक्षा नियोजन की धुरी रक्षामंत्री होता है। समय-समय पर 'कमाण्डपत्र' जारी करके इन कार्यों को पारिभाषित किया गया है। उदाहरणार्थ रक्षा समिति का उपाध्यक्ष होने के साथ-साथ रक्षामंत्री निम्नलिखित बातों के लिए भी उत्तरदायी होता है—

(अ) रक्षा समिति द्वारा निर्धारित समरनीति के अनुरूप उपलब्ध साधनों को मोटे तौर पर तीनों सेवाओं में बांटने के लिए। अनुसंधान और विकास तथा

× वाद्य पृ० ४४० भी देखिए।

उत्पादन कार्यक्रमों के समन्वयन के लिए बनाई जाने वाली सामान्य नीतियाँ भी इसी मे शामिल हैं।

(ख) सामान्य प्रशासन के उन प्रश्नों के निपटारे के लिए जिन पर तीनों सेवाओं के लिए सामान्य नीति अभीष्ट होनी है।

(ग) अन्तर सेवा संगठनों यथा संयुक्त कार्यवाही मुख्यालय, संयुक्त सूचना ब्यूरो तथा साम्राज्यिक रक्षा कॉलिज के प्रशासन के लिए।[8]

रक्षामंत्री कैबिनेट मे सेवाओं के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है, यद्यपि रक्षा के मामलों पर विचार-विमर्श करते समय सेवा मंत्रियों को भी सामान्यतः उपस्थित होने के लिए आमंत्रित कर लिया जाता है। रक्षामंत्री, जिस का स्थान प्रधानमंत्री के तुरन्त बाद होता है, संसद मे रक्षा सम्बन्धी सभी मामलों मे सरकार का प्रवक्ता होता है और सभी सेवाओं के सम्मिलित विषयों पर प्रश्नों के उत्तर देता है। कैबिनेट और रक्षा समिति द्वारा निर्धारित नीति को अपने-अपने विभागों के माध्यम से क्रियान्वित करने के लिए सेवामंत्री उत्तरदायी होते हैं। रक्षा समिति तथा अन्य अन्तर सेवा समितियों के सदस्य होने के कारण रक्षा नीतियों के निर्माण के उत्तरदायित्व मे वे भी भागीदार होते हैं। अपनी सेवाओं के रख-रखाव और प्रशासन तथा प्रशासनिक विभागों के लिए वे संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। वित्तीय दृष्टि से प्रत्येक विभाग अलग-अलग होता है और वित्तीय मामलों मे वे रक्षामंत्री के बदले संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

जुलाई १९५८[9] के 'कमाण्डपत्र' में सेवा मंत्रियों तथा आपूर्ति मंत्री के साथ रक्षामंत्री के प्रशासनिक सम्बन्धों को प्रमुख स्थान देते हुए ऐसा कहा गया है कि—

(६) रक्षा मंत्रालय अधिनियम, १९४६ के अनुभाग I के अनुसार रक्षामंत्री "क्राउन की समग्र सशस्त्र सेनाओं एवं उनकी आवश्यकताओं मे सम्बन्धित एक एकीकृत नीति के निर्माण और उस पर सामान्य व्यवहार के लिए उत्तरदायी है।"

(७) इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए रक्षामंत्री को सशस्त्र सेनाओं के आकार, स्वरूप, संगठन एवं स्वभाव और उनके अस्त्र-शस्त्रों तथा युद्ध सम्बन्धी साज-सज्जा और आपूर्ति (रक्षा अनुसंधान और विकास सहित) पर प्रभाव डालने वाले रक्षा नीति के मुख्य मामलों मे निर्णय लेने का (कैबिनेट और रक्षा समिति के उत्तरदायित्वों के अधीन) अधिकार हैं।

(८) उपर्युक्त अनुच्छेद ७ के अनुरूप तथा इसका अनुसरण करते हुए रक्षा मंत्री द्वारा निर्धारित रक्षा नीति की सीमाओं के भीतर नौसेना, स्थल सेना और वायु सेना परिषदों के माध्यम से कार्यशील सेवामंत्री तीनों सेवाओं के प्रशासन और कार्य कुशलता के लिए उत्तरदायी हैं। इसी प्रकार आपूर्ति मंत्री रक्षा अनुसंधान

---

८ रक्षा के केन्द्रीय संगठन पर १९४६ का Cmd ६९२३, अनुच्छेद २१

९ जुलाई १९५८ का Cmd ४७६, जुलाई १९६३ के कमाण्डपत्र २०९७ द्वारा तीनों सेवामंत्रियों के प्रस्तावित बहिष्कार के लिए पृ० ४४० और उससे आगे देखिए।

के विकास और उत्पादन सम्बन्धी स्वीकृत कार्यक्रमों के कुशल कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी हैं।

(९) उपर्युक्त अनुच्छेद ७ का अनुसरण करते हुए नीति सम्बन्धी मुख्य विषयों पर निर्णय करते समय रक्षामंत्री सेवा मंत्रियों और आपूर्ति मंत्री से सलाह मशवरा करता है। इस परामर्श और अन्तर सेवाओं पर विचार-विमर्श के लिए एक रक्षा परिषद् गठित की गई है जिसमें निम्नलिखित सदस्य होंगे :—

रक्षा मंत्री (अध्यक्ष)
नौसेना का प्रथम लॉर्ड
युद्धमंत्री
वायुमंत्री
आपूर्ति मंत्री
रक्षा स्टॉफ का अध्यक्ष
नौसेना स्टॉफ का अध्यक्ष
साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष
वायु स्टॉफ का अध्यक्ष
रक्षा मन्त्रालय में स्थायी सचिव
रक्षा मंत्रालय में मुख्य वैज्ञानिक

आवश्यकता होने पर अन्य अधिकारी और सम्बन्धित विभागों के पदाधिकारी परिषद की गोष्ठी में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किए जाएँगे।

(१०) कैबिनेट अथवा रक्षा समिति द्वारा स्वीकृत सैनिक कार्यवाहियों के क्रियान्वयन के लिए मंत्री के रूप में रक्षामंत्री प्रधानमंत्री के प्रति उत्तरदायी है।

(११) जैसाकि ऊपर अनुच्छेद ७ में परिभाषित किया गया है जब सेवा मंत्री अथवा आपूर्ति मंत्री रक्षा नीति को प्रभावित करने वाले किसी मामले में प्रस्ताव रखना चाहेंगे तो वे सामान्यतः उन्हें रक्षामंत्री के समक्ष प्रस्तुत करेंगे। फिर भी यह व्यवस्था कैबिनेट और इसकी समितियों के सम्मुख प्रतिवेदन करने के उनके संवैधानिक अधिकार पर विपरीत प्रभाव नहीं डालती।

(१२) अधिक आवश्यक सेवा-नियुक्तियों के लिए सेवामन्त्रियों और आपूर्ति मंत्री द्वारा अनुशंसाएँ रक्षामंत्री को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत की जाती हैं और उचित मामलों में वह प्रधानमंत्री की प्रावरण स्वीकृति प्राप्त करता है।

(१३) सम्बन्धित सेवा मंत्रियों से परामर्श के उपरान्त रक्षामन्त्री का कर्त्तव्य है कि दो या अधिक सेवाओं के उभयनिष्ठ मामलों में सर्वाधिक कुशलता और मितव्ययितापूर्वक कार्य सम्पन्न करने के लिए व्यावहारिक पग उठाए यथा

"सर्वाधिक कुशल उपभोक्ता" के सिद्धान्त पर एक सेवा को दूसरी सेवा की ओर से कार्य करने की व्यवस्था कर दे अथवा रक्षामंत्री को उत्तरदायित्व हस्तान्तरित कर दे।

ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि रक्षामंत्री उस समग्र नीति को निश्चित करता है जिसके लिए वह प्रधानमन्त्री के प्रति उत्तरदायी है परन्तु रक्षा-मामलों में उसे किसी भी प्रकार की स्वेच्छाचारिता प्राप्त नहीं है। निस्सन्देह कार्यकारी मन्त्री आदेश मन्त्री द्वारा निर्धारित समग्र नीति के सुनिश्चित सूत्रों के अनुरूप सेनाध्यक्षों द्वारा जारी किए जाते हैं। प्रधानमन्त्री से मिलने का व्यक्तिगत अधिकार होने के कारण सेनाध्यक्ष उसके समक्ष सीधा प्रतिनिधित्व कर सकते हैं और वह रक्षामंत्री अथवा कैबिनेट को किसी ऐसे प्रतिनिधित्व की सूचना देने के लिए बाध्य नहीं है।

सेवामंत्रियों में समन्वयन :

जहाँ तक रक्षामंत्री का सम्बन्ध है, तीनों सेवामंत्री अन्तर सेवा समन्वयन की एक समस्या उत्पन्न कर देते हैं और केन्द्र में एक रक्षा मंत्री और तीन सेवा मंत्रियों वाली रक्षा की संघीय संरचना के लिए इसे सुलझाना कठिन होता है, शायद रक्षा परिषद् इसका समाधान प्रस्तुत कर सकती है।

फिर भी, युद्ध काल में जब तीनों सेवा मंत्रियों को उच्चतम स्तर पर लिए गए निर्णयों से निरन्तर अवगत रखना होता है, विशेषकर सेनाध्यक्षों की समिति द्वारा रक्षामंत्री के माध्यम से तुरन्त निर्णय लिए जाने की संस्तुति किए जाने पर, तो एक समस्या उठ खड़ी होती है। सेनाध्यक्षों की समिति के प्रत्येक सदस्य की दुहरी निष्ठा होती है, क्योंकि प्रत्येक सेना का सेनाध्यक्ष नौसेना, स्थलसेना अथवा वायुसेना परिषद का सदस्य होता है और सेवामंत्री इसका अध्यक्ष। पुनः सेनाध्यक्षों की समिति का सदस्य होने के नाते उसकी निष्ठा रक्षामंत्री के प्रति भी होती है। शान्तिकाल में यह प्रणाली सरलतापूर्वक चलती रहती है, परन्तु युद्धकाल में तुरन्त निर्णय लेने की आवश्यकता के कारण सेनाध्यक्षों के लिए सेवामंत्रियों को जिस गति से महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए जाते हैं उस गति से तुरन्त अवगत कराना कठिन हो जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध काल में, बहुधा ऐसा होता था कि जबतक सेवामंत्रियों को किसी निर्णय की सूचना दी जाती थी तबतक अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए जा चुके होते थे। सेवामंत्री पीछे रह जाते थे। रक्षा परिषद् की स्थापना और रक्षा समिति की बढ़ी हुई संरचना से इस अभाव की पूर्ति होती दिखाई पड़ती थी। फिर भी इन दोनों की संरचना इतनी विस्तृत होती है कि युद्धकाल में शीघ्र निर्णय लेने के लिए उन्हें छोड़ देना आवश्यक हो सकता है। जिस प्रणाली में प्रत्येक अवस्थान में संसद के प्रतिनिधियों को रखना पड़ता है, उसका यह जन्मजात दोष है भले ही प्रजातंत्र बनाए रखने के लिए यह कितना भी आवश्यक क्यों न हो। इस विस्तृत संगठन में भी यह दोष जन्मजात माना जा सकता है जिसे शिखर पर स्थित एक

व्यक्ति द्वारा नियन्त्रित करना कठिन हो गया हो। तानाशाही संरचना के अन्तर्गत तो यह संभव हो सकता है, परन्तु संसदीय लोकतंत्र में जहां निर्णय लेने के लिए वर्दी-धारियों के साथ संसद के नागरिक सदस्यों को भी सम्मिलित करना होता है यह न तो वांछित है और न ही संभव।

सेनाध्यक्षों की समिति का सेवापरिषदों और सेवामन्त्रियों से अन्तर-सम्बन्ध एक ऐसा लक्षण है जो केवल संघीय रक्षा संगठनों में ही पाया जाता है। ऐसे संगठनों में प्रत्येक सेवा का अपने आप में पूर्ण एक अलग मंत्रालय होता है जिसकी अध्यक्षता संसद का सदस्य, एक राजनीतिज्ञ, करता है। इसके साथ ही रक्षा मन्त्रालय एक सर्वीय केन्द्र प्रस्तुत करता है। इसका एक अलग रक्षामंत्री होता है जो तीनों सेवाओं के कार्यों का समन्वयन करता है और सेवामन्त्रियों से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखता है। आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य में यही प्रणाली प्रचलित है। उपरोक्त में सेवा सचिव कांग्रेस के सदस्य नहीं होते। फिर भी भारत और कनाडा जैसे एकात्मक रक्षा संगठन में अलग-अलग सेवामंत्री नहीं वरन् एक ही मंत्रालय होता है। रक्षा के सभी संगठनों में सेनाध्यक्षों की समिति समान रूप से उपस्थित रहती है, क्योंकि वह आधुनिक रक्षा व्यवस्था का आवश्यक लक्षण है और इसके सदस्य प्रत्येक सेवा के दक्ष नियोजक होते हैं।

स्थायी सचिव, मुख्य स्टॉफ अधिकारी और रक्षा अनुसंधान नीति समिति का अध्यक्ष :+

१९५८ से पूर्व यूनाइटेड किंगडम में सेनाध्यक्षों का प्रमुख, जो मंत्री के लिए स्टॉफ अध्यक्ष के रूप में भी कार्य करता था, स्थायी सचिव तथा रक्षा अनुसंधान नीति समिति का अध्यक्ष रक्षामंत्री के मुख्य सलाहकार होते थे।

सेनाध्यक्षों के प्रमुख की नियुक्ति से पूर्व मंत्री का मुख्य स्टॉफ अधिकारी रक्षा मंत्री और सेनाध्यक्षों के मध्य संयोजक कड़ी था। द्वितीय विश्वयुद्ध काल में और एक जनवरी १९५६ तक इस अधिकारी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, वह :

(अ) सेनाध्यक्षों की समिति का अतिरिक्त सदस्य था और सेनाध्यक्षों की सभी गोष्ठियों में उपस्थित रहता था। जब सेनाध्यक्षों की समिति अपनी संस्तुतियों के लिए रक्षा मंत्री की स्वीकृति प्राप्त करना चाहती थी तब वह इन्हें रक्षा मंत्री के सम्मुख प्रस्तुत करता था और रक्षामंत्री महत्वपूर्ण निर्णयों की सूचना प्रधानमंत्री को देता था।

(आ) सेनाध्यक्षों की समिति और देश की उच्चतर रक्षा समस्याओं से सम्बन्धित अन्य समितियों के कुशल संचालन के लिए उत्तरदायी थी।

(इ) कैबिनेट की रक्षा समिति का सचिव था।

(ई) कैबिनेट का उपसचिव होता था और कैबिनेट द्वारा सम्पन्न सारे रक्षा

+ परन्तु पृष्ठ ४१० भी देखिए।

विषयक मामलों की देखभाल करता था। तथा

(ङ) सेनाध्यक्षों की समिति के सचिवालय के स्टॉफ और संयुक्त नियोजन और सूचना स्टॉफ के लिए उत्तरदायी था। तीनों सेवाएँ इसके लिए अपने सर्वश्रेष्ठ अधिकारी भेजती थीं क्योंकि ऐसा करना उनके अपने हित में था। फिर भी १९५८ में रक्षा स्टॉफ के प्रधान के पद का निर्माण हो जाने के कारण रक्षामंत्री के स्टॉफ अध्यक्ष का वह पद जिसे १९५६ में सेनाध्यक्षों की समिति के प्रमुख से संयुक्त कर दिया गया था, समाप्त कर दिया गया।

सेनाध्यक्षों की समिति का सदस्य न होते हुए भी रक्षा मंत्रालय का स्थायी सचिव रक्षा संरचना का नागरिक स्तम्भ है। उत्पादन, आपूर्ति आदि मामलों में और विशेषकर उन मामलों में जिनमें अन्य नागरिक मंत्रालयों से समन्वयन की आवश्यकता होती है सेनाध्यक्ष बहुधा उससे परामर्श करते हैं। राजकोष के समक्ष वित्तीय नियन्त्रण के अतिरिक्त संसद के प्रति उत्तरदायी मुख्य लेखाधिकारी होने के नाते स्थायी सचिव मंत्रालय के भीतर वित्तीय नियंत्रण बनाए रखता है विभिन्न सेवा मंत्रालयों में तीन स्थायी सचिव होते हैं, परन्तु समग्र समन्वयन के लिए उत्तरदायी रक्षा के स्थायी सचिव की रक्षातन्त्र में महत्त्वपूर्ण स्थिति होती है।

रक्षा अनुसंधान नीति समिति का अध्यक्ष एक विख्यात वैज्ञानिक होता है और यह रक्षामंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार का कार्य करता है। वह सेनाध्यक्षों की समिति का पदेन सदस्य नहीं होता परन्तु आधुनिक युद्ध में विज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण बहुधा वह उनकी गोष्ठियों में शामिल होता है। (देखिए अगले पृष्ठ पर चार्ट)।

मंत्रालय के हिस्से का नियोजन और नीति-समन्वयन का अधिकतर कार्य इसकी अनेक समितियों द्वारा किया जाता है। रक्षाक्षेत्र में अपनी केन्द्रीय स्थिति और रक्षा साधनों के बँटवारे और समन्वयन के प्रति उत्तरदायित्व के कारण इन समितियों के अध्यक्ष और सचिव सामान्यतः मंत्रालय द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

(आ) सेनाध्यक्षों की समिति :

तीनों सेवाओं के सर्वोच्च समन्वयकारक अंग के रूप में सेनाध्यक्षों की प्रणाली लगभग उसी प्रकार कार्य करती है जैसीकि यह युद्धकाल में विकसित हुई थी। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि संयुक्त योजनाओं के निर्माण में, उनके क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी अधिकारियों को निर्माण के लिए उत्तरदायी अधिकारियों से पूर्णतः अलग नहीं रखा जाना चाहिए। इससे सर्वोच्च जनरल स्टॉफ जिसका कार्यकारी विभागों से सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है, एक बड़ी असुविधा से बच जाता है। अतः विभिन्न समितियों और सेनाध्यक्षों के अधीन कार्यरत स्टॉफ के वास्तविक सदस्य अपने-अपने विभागों के अधीन बने रहते हैं।

सेनाध्यक्षों की समिति के स्थायी सचिवालय के रूप में केवल एक छोटा-सा निकाय रक्षा मंत्रालय के साथ जोड़ दिया जाता है।

तीनों सेवाओं के सेनाध्यक्ष सामूहिक रूप से सरकार के व्यावसायिक सैनिक सलाहकार होते हैं। सामूहिक रूप से ही वे सेनाध्यक्षों की समिति का निर्माण करते हैं और वही इस ग्रन्थ के अध्ययन का विषय है।
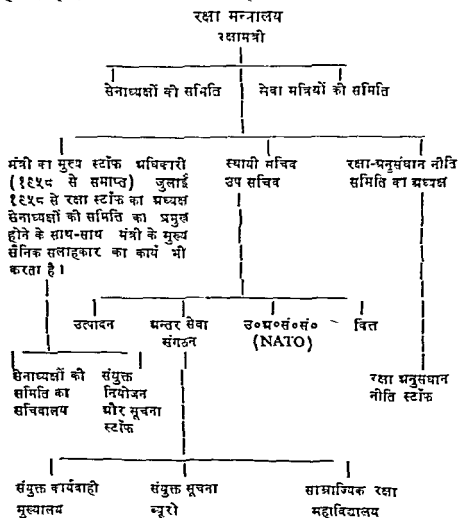
(१) संरचना :

मूलतः तीनों सेवाओं के अध्यक्ष इस समिति के सदस्य होते थे पर १९४० में प्रधानमंत्री (जो रक्षामंत्री भी था) और सेनाध्यक्षों के मध्य अधिक समन्वय स्थापित करने के लिए श्री चर्चिल ने अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए एक और चौथा सदस्य बढ़ा दिया। यह चौथा सदस्य रक्षामंत्री का मुख्य स्टॉफ अधिकारी

जनरल इ० (General Ismay) था। सन् १९५६ तक समिति में यही चार सदस्य बने रहे, पर इसके पश्चात् मुख्य स्टॉफ अधिकारी का पद सेनाध्यक्षों की समिति के प्रमुख से संयुक्त कर दिया गया। १९५८ में इस सरचना को अधिक परिभाषित किया गया :

नौ-सैनिक स्टॉफ के अध्यक्ष, साम्राज्यिक जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष, और वायु स्टॉफ के अध्यक्ष को मिलाकर रक्षा स्टॉफ का अध्यक्ष सेनाध्यक्षों की समिति का निर्माण करता है। रक्षा स्टाफ का अध्यक्ष इस समिति की अध्यक्षता करता है।[10]

रक्षा अनुसंधान नीति समिति का अध्यक्ष और रक्षा मंत्रालय का स्थायी सचिव। ऐसे दो अधिकारी हैं जिनसे बहुधा परामर्श किया जाता है और सेनाध्यक्षों की समिति की गोष्ठियों मे उपस्थित रहने का आग्रह किया जाता है यद्यपि इनमें, से कोई भी पदेन सदस्य नहीं होता परन्तु सेनाध्यक्षों की सभी महत्त्वपूर्ण गोष्ठियों में रक्षा अनुसंधान नीति समिति का अध्यक्ष सामान्यतः भाग लेता है क्योंकि रक्षा नियोजन के दृष्टिकोण से वैज्ञानिक ससार मे क्या कुछ उपलब्धि सभव है, इस विषय मे केवल वही सैनिक विशेषज्ञों का मार्गदर्शन कर सकता है। इस कारण ब्रिटिश सेनाध्यक्षों की समिति के आधुनिकतन्त्र में वैज्ञानिक सलाहकार को महत्व-पूर्ण चक्र माना जा सकता है।

समिति की अध्यक्षता और रक्षामन्त्री:

इतिहास मे पहली बार केवल १९५६ में ही ग्रेट ब्रिटेन मे सेनाध्यक्षों की समिति का एक सेवाप्रमुख बनाया गया। प्रमुख की यह सस्था विकास प्रक्रिया का परिणाम है। नौसेनाध्यक्ष लॉर्ड चैटफील्ड (Lord Chatfield) के अनुसार सेवाध्यक्षों में से एक प्रमुख के रूप में कार्य करता था, और "वरिष्ठता का विचार किए बिना बारी-बारी से सेवाओं द्वारा यह कर्तव्य किया जाता था।" यद्यपि प्रारम मे प्रमुखता बदलती रहती थी पर यह परम्परा-सी बन गई कि समिति में सेवा की वरिष्ठता के आधार पर ही प्रमुखता के अधिकार का निर्णय किया जाय। १९४६ और १९५८ के श्वेत पत्रों[11] के *अनुसार "उनकी इच्छानुसार सेनाध्यक्षों की गोष्ठी* रक्षामन्त्री की अध्यक्षता मे होती है।" फिर भी रक्षामन्त्री कभी-कभी ही अध्यक्षता करता है और पिछले विश्व युद्ध काल में चर्चिल ने रक्षा मन्त्री और सेनाध्यक्षों के मध्य सम्बन्ध को निम्नलिखित शब्दों मे पारिभाषित किया है:—

"मेरा नियम है कि मैं अपने सामान्य नियन्त्रण, सुझाव और निर्देशन के अधीन सेनाध्यक्षों को अपना कार्य करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देता हूँ। उदाहरणार्थ १९४१

१०- Cmd ४०१

११- Cmd ६९२३ और Cmd ४७६

मे सेनाध्यक्षों की ४६२ गोष्ठियों में से मैंने स्वयं केवल ४४ गोष्ठियों की अध्यक्षता की।"[12]

इस प्रकार शान्तिकाल में रक्षा मन्त्री कभी कभार ही अध्यक्षता करता था और सेनाध्यक्षों की समिति की अध्यक्षता इसके ही एक सदस्य पर छोड़ दी जाती थी जो समकक्षेषु प्रथम का कार्य करता था। इस निकाय का सदा एक सामूहिक अस्तित्व रहा है और १९५६ से पूर्व "प्रतिष्ठा में समान और किसी भी प्रकार एक दूसरे के अधीन न होने" के कारण तीनों अध्यक्ष निकाय के रूप में सामूहिक निर्णय लेते थे और अध्यक्ष को कोई विशेष मताधिकार या निषेधाधिकार प्राप्त नहीं था। फिर भी सिद्धान्त यह था कि सेनाध्यक्ष कभी भी एक दूसरे से असहमत नहीं होते थे। एक निश्चित और सर्वसम्मत समाधान अच्छी उपलब्धि हो सकता है, पर सदैव ऐसा होता नहीं। यदि वे कभी एक दूसरे से असहमत नहीं होते तो इसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि उनकी संस्तुतियां बहुधा ऐसे समझौते पर आधारित होती थी जो विभिन्न विचारों के मध्य न्यूनतम उभयनिष्ठ अंश होता था अतः यह तर्क दिया जा सकता है कि इस उपाय से युद्ध नहीं जीते जा सकते। अतः विशेषज्ञों द्वारा यह सुझाव दिया गया कि सेनाध्यक्षों की समिति का अपना एक स्थायी प्रमुख होना चाहिए। विशेषज्ञ स्तर पर वह नीति निर्धारक स्तर का शीर्ष होगा। तीनों सेनाध्यक्षों के मध्य 'मुखियों' की यह धारणा १९३९ से पूर्व जापान, इटली और जर्मनी जैसे देशों के रक्षातंत्रों में भी स्थान पा चुकी थी। कनाडा, संयुक्त-राज्य और फ्रांस में संयुक्त सेनाध्यक्षों की संस्था के तीनों सेवाध्यक्षों पर अध्यक्षता करने के लिए भी एक प्रमुख होता है। फिर भी यूनाइटेड किंगडम ने बिना किसी 'सुप्रीमों' के ही कई विश्वयुद्ध सफलतापूर्वक लड़े हैं। स्पष्ट कठिनाई यह रही है कि स्थायी प्रमुख का पद कौन संभाले। वह सेनाध्यक्ष नहीं हो सकता था क्योंकि सेवा सहायक का तो पहले ही तीनों सेवाओं का समान स्तर से एक सेवा एक सदस्य के सिद्धान्त पर समानुपातिक प्रतिनिधित्व हुआ है। एक असैनिक अध्यक्ष चुना जा सकता था पर एक विशेषज्ञ निकाय का अ-विशेषज्ञ निदेशक होने के कारण ऐसा संयोग वांछित नहीं होता। समिति की अध्यक्षता करने का एक राजनीतिज्ञ (मन्त्री) को सदैव अधिकार है। इसे सशस्त्र सेनाओं पर नागरिक नियन्त्रण के सिद्धान्त से उद्भूत संगठनात्मक आवश्यकता मान कर स्वीकार किया जाता है परन्तु कोई भी राजनीतिज्ञ एक ऐसे कार्यरत विशेषज्ञ निकाय का दैनन्दिन अध्यक्ष कठिनाई से ही हो सकता है जैसाकि यूनाइटेड किंगडम में क्रियाशील है। फिर भी प्रत्येक सेवा के पर्याप्त विस्तार और आधुनिक रक्षा समस्याओं के जटिल स्वभाव के कारण, यूनाइटेड किंगडम ने भी

१२. देखिए Churchill, War Minister. vol VI p. ३६४ और vol. VI page ६००.

सेनाध्यक्षों की समिति के स्थायी प्रमुख की आवश्यकता को अन्ततः स्वीकार कर लिया है।

सेनाध्यक्षों की समिति का प्रमुख

२५ अक्तूबर १९५५ को प्रधानमंत्री ने संसद में घोषणा की कि हिज़ मैजेस्टी की सरकार ने सेनाध्यक्षों की समिति के अध्यक्ष के नए पद के निर्माण का निर्णय किया है। यह १ जनवरी, १९५६ से लागू हुआ जब भूतपूर्व वायुसेनाध्यक्ष, शाही वायुसेना के मार्शल सर विलियम डिक्सन (Sir William Dickson) अध्यक्ष बनाए गए। ब्रिटेन के उच्चतर रक्षा संगठन के विकास में उसकी नियुक्ति एक नया और महत्त्वपूर्ण पग था क्योंकि वहाँ सदा से यह एक आधारभूत सिद्धान्त रहा है कि सरकार को सैनिक मामलों में सलाह देने वाले उनकी सैनिक नीति के क्रियान्वयन के लिए भी उत्तरदायी रहने चाहिए। फिर भी प्रमुख की नियुक्ति की शर्तों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सेनाध्यक्षों की समिति का सामूहिक उत्तरदायित्व सुरक्षित रखा गया है तथा प्रमुख और सेनाध्यक्ष संयुक्त रूप से सरकार के व्यावसायिक सैनिक सलाहकार हैं। मतभेद उत्पन्न होने पर प्रमुख को अपनी निजी सलाह देने की स्वतन्त्रता है, पर उसे अपने किसी भी सहकर्मी के विरोधी दृष्टिकोण का भी उल्लेख करना पड़ता है। इसी प्रकार रक्षामंत्री अथवा प्रधानमंत्री के साथ विचार विमर्श के समय, अथवा रक्षा समिति की गोष्ठी में किसी भी सेनाध्यक्ष को अपनी राय प्रकट करने की स्वतन्त्रता है।

कार्यकारी उत्तरदायित्वहीन बड़ा स्टॉफ न बनाने के सिद्धान्त के अनुरूप सेनाध्यक्षों की समिति का प्रमुख एक छोटे व्यक्तिगत स्टॉफ पर निर्भर करता है, परन्तु संयुक्त सूचना और नियोजन स्टॉफों और सेनाध्यक्षों के सचिवालय के साथ निस्सन्देह उनके निकट के सम्पर्क होते हैं। उसके व्यक्तिगत स्टॉफ में एक मेजर जनरल (मुख्य स्टॉफ अधिकारी) जो निम्नस्तर की गोष्ठियों में प्रमुख का प्रतिनिधित्व और रक्षा समिति के एक (सहायक) सचिव के रूप में कार्य करता है, नौसेना का एक कप्तान अथवा उसका समकक्ष, और एक असैनिक कर्मचारी सचिवों के रूप में तथा नौसेना का एक कप्तान और स्थल सेना का एक कर्नल, और एक ग्रुप कैप्टेन, (प्रमुख के व्यक्तिगत स्टॉफ के रूप में) होते हैं। किसी एक विशिष्ट सेवा से ही प्रमुख नहीं चुने जाते और साथ ही यह भी आवश्यक नहीं कि वे सभी सेवाओं से चुने ही जाएं।

रक्षा स्टॉफ का प्रमुख

एक दूसरा महत्त्वपूर्ण पग १९५८ में उठाया गया जब सेनाध्यक्षों के प्रमुख का पद समाप्त कर रक्षा स्टॉफ के प्रमुख के नए पद का निर्माण किया गया।[११]

११- जुलाई १९५८ का Cmd ४७६

यद्यपि इंग्लैंड अपनी संवैधानिक परम्पराओं के लिए जिन पर महत्त्वपूर्ण संस्थाएं आधारित हैं प्रसिद्ध हैं फिर भी सेनाध्यक्षों की समिति पूर्णतः परम्पराओं पर आधारित नहीं है। इसकी प्रतिष्ठा सर्वमान्य है, क्योंकि समिति के प्रत्येक सदस्य के लिए अलग-अलग एक अधिपत्र पर प्रधानमन्त्री स्वयं हस्ताक्षर करता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नियुक्ति करने वाला अधिकारी होने के साथ ही प्रधानमन्त्री देश की रक्षा का उत्तरदायित्व भी असंदिग्ध रूप से सम्भालता है और युद्ध संचालन के लिए केवल वही संसद के प्रति उत्तरदायी है।

(२) कार्य और संवैधानिक स्थिति :

१६२३ में साम्राज्यिक रक्षा समिति जिन दो मुख्य उद्देश्यों के लिए सेनाध्यक्षों की समिति का गठन करने को सहमत हो गई थी वे ये थे, प्रथम तो "सभी सैनिक मामलों में साम्राज्यिक रक्षा समिति को सलाह देना और युद्ध के लिए योजनाएं तैयार करना" और दूसरे "राजनीतिक विचार-विमर्श हेतु तीनों सेनाओं से एक संयुक्त सैनिक राय प्राप्त करना।" रक्षा के सभी पहलुओं पर निगरानी रखना, समस्या के किसी भी पहलू की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करना, प्रधानमन्त्री की आवश्यकतानुसार रक्षा सम्बन्धी प्रतिवेदन तैयार करना और आवश्यकता होने पर स्वयं प्रतिवेदन तैयार करने में पहल करना—इस समिति के कर्त्तव्य थे। १६३६ से पूर्व इस समिति के कार्यों की यही सामान्य रूपरेखा थी।

युद्धकाल में चर्चिल ने समरनीति सम्बन्धी उच्च समस्याओं में सेनाध्यक्षों की समिति का इस प्रकार उपयोग किया कि इसने एक निश्चित आकार-प्रकार ग्रहण कर लिया। इस प्रकार संसद में १६४६ में एक श्वेत पत्र[15] में सेनाध्यक्षों की समिति की स्थिति स्पष्ट की गई थी। इस श्वेतपत्र के अनुसार सेनाध्यक्ष "सामरिक मूल्यांकन और सैनिक योजनाएं तैयार करने और उन्हें कैबिनेट की रक्षा समिति के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी" होंगे। सरकार के इस व्यावसायिक सैनिक सलाहकार होने के कारण वे तत्कालीन सरकार से सीधे मिल सकते हैं। यह श्वेतपत्र रक्षामन्त्री और कैबिनेट की रक्षा समिति से सेनाध्यक्षों के सम्बन्धों को इस प्रकार स्पष्ट करता है।

समरनीति और योजनाओं सम्बन्धी सभी तकनीकी प्रश्नों पर यह आवश्यक है कि कैबिनेट और रक्षा समिति को सरकार के व्यावसायिक सैनिक सलाहकारों के रूप में सेनाध्यक्षों की सलाह सीधे और व्यक्तिगत रूप से उपलब्ध हो। अतः रक्षा समिति अथवा कैबिनेट को उनकी सलाह केवल रक्षामन्त्री के माध्यम से ही उपलब्ध नहीं की जाएगी फिर भी रक्षा समिति के सम्मुख किसी भी प्रमुख सामरिक योजना को प्रस्तुत करने से पूर्व वह (मन्त्री) साधारणतः सेनाध्यक्षों के साथ इस पर विचार-विमर्श कर लेगा भले ही रक्षा समिति में वह उनका प्रवक्ता न बने।

१५- Cmd ६६२३

रक्षा स्टॉफ के प्रमुख कार्य :

रक्षा स्टॉफ के प्रमुख कार्यों का वर्णन १९५८ के श्वेतपत्र [15] मे इस प्रकार किया गया है।

सेनाध्यक्षों की समिति की सर्वसम्मत सयुक्त सलाह को रक्षा स्टॉफ का प्रमुख रक्षामन्त्री के सम्मुख प्रस्तुत करेगा। यदि सर्वसम्मति से सयुक्त सलाह प्रस्तुत करना सम्भव न हो तो वह सेनाध्यक्षों की समिति के अन्य सदस्यो के विचारो की सूचना मन्त्री को देगा और मन्त्री का प्रमुख सैनिक सलाहकार होने के नाते उन विचारो के प्रकाश मे अपनी निजी सम्मति भी प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी होगा। यदि रक्षामन्त्री अथवा सेनाध्यक्ष चाहे तो सेनाध्यक्षो की गोष्ठी रक्षामत्री की अध्यक्षता मे होनी है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है। रक्षा समिति की गोष्ठियों के समय सेनाध्यक्ष उपस्थित मे रहते हैं और आवश्यकता पडने पर उन्हे पूरी कैबिनेट की बैठकों मे भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जा सकता है।

सैनिक कार्यवाही के सचालन हेतु सेनाध्यक्ष रक्षामन्त्री के रक्षा स्टॉफ के प्रमुख के माध्यम से रक्षामन्त्री के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अबतक कार्यवाही सम्बन्धी जो आदेश सयुक्त रूप से सेनाध्यक्षो की समिति के नाम से जारी किए जाते थे अब सेनाध्यक्षो की समिति के प्रमुख के नाते रक्षा स्टॉफ के प्रमुख द्वारा जारी किए जाएँगे।

कार्यवाही सम्बन्धी अथवा अन्य सैनिक मामलो पर तीनों सेवाओ के सेनाध्यक्षो को किसी भी समय रक्षामत्री से और आवश्यकता होने पर प्रधानमन्त्री से मिलने का अधिकार प्राप्त है।

ऊपर वर्णित उत्तरदायित्वो के साथ ही रक्षा स्टॉफ का प्रमुख–

(अ) इस बात का निश्चय करने के लिए कि सेनाध्यक्षो के उत्तरदायित्वो को प्रभावित करने वाले सैनिक मामले उनके विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं।

(आ) रक्षामन्त्री के विचारो से सेनाध्यक्षो और सेनाध्यक्षो के विचारो से मन्त्री को अवगत रखने के लिए।

(इ) मन्त्री से आवश्यक निर्णय प्राप्त करने के लिए।

(ई) जहाँ उचित हो साम्राज्ञी की सरकार के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो में प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने के लिए भी उत्तरदायी है।

इसके साथ ही उसी श्वेतपत्र मे सेनाध्यक्षो के सयुक्त उत्तरदायित्व का भी जिक्र किया गया है, और कहा गया है कि इस अर्थ मे "समरनीति एव सैनिक कार्यवाही और सामान्यतः रक्षा नीति के सैनिक निहितार्थ पर व्यवसायिक सलाह देने के लिए" वे सरकार के प्रति उत्तरदायी हैं।

१५– Cmd ४७६

सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्यों को दुहरी भूमिका होती है। कार्यवाही और समरनीति सम्बन्धी मामलों में वे रक्षामन्त्री और कैबिनेट के प्रति उत्तरदायी होते हैं। परन्तु अपने सेवाओं सम्बन्धी प्रशासनिक मामलों में वे अपने सेवा मन्त्रियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। शान्तिकाल में वे सामरिक सैनिक योजनाओं के मूल्यांकन और आवश्यक सेनाओं के रख-रखाव के विषय में सरकार को सलाह देने के लिए उत्तरदायी हैं। युद्ध-काल में वे कैबिनेट के सर्वोपरि अधिकरण के अन्तर्गत सैनिक कार्यवाही के निर्देशन के लिए उत्तरदायी हैं। प्रत्येक सेनाध्यक्ष अपनी सेवा का व्यावसायिक अध्यक्ष और अपने सेवा मंत्री का मुख्य सैनिक सलाहकार होता है। इसके विपरीत सामूहिक रूप में वह उस निकाय का सदस्य होता है जो अपने कुशल कार्य-संचालन में तीनों सेवाओं के पूर्ण एकीकरण का प्रतीक है। वास्तव में आधुनिक युद्ध में इस समिति का महत्त्वपूर्ण कार्य सर्वोच्च स्तर पर तीनों सेवाओं का नियोजित समन्वय स्थापित करना है, जो आवश्यक रूप से त्रिविध-पद्धति का किसी भी कार्यवाही की सफलता के लिए आवश्यक है। इस सामूहिक क्षमता में रक्षा नीति पर समग्ररूप से सलाह देते समय उन्हें अपना क्षेत्रीय सेवा दृष्टिकोण पूर्णतः त्यागना होता है। एक ही संयुक्त योजना पर सारे साधनों को केन्द्रित करने की अपेक्षा यदि अनजाने भी वे प्रत्येक युद्धकारी सेवा की योजनाओं में जोड़-तोड़ करेंगे तो निश्चय ही यह घातक सिद्ध होगा।

फिर भी संवैधानिक दृष्टिकोण से यह महत्त्वपूर्ण है कि प्रधानमन्त्री अथवा कैबिनेट की रक्षा समिति युद्ध का दैनन्दिन संचालन सेनाध्यक्षों के माध्यम से ही करते हैं। यह एक सर्वविदित अनुशासनात्मक सिद्धान्त है कि पहली गोली के चल जाने के बाद वर्दीधारी अधिकारी केवल अपने से उच्चपदाधिकारी की ही आज्ञा पालन करता है।[16] अब उस माध्यम के सम्बन्ध में प्रश्न उठता है जिसके द्वारा तत्कालीन सरकार या असैनिक अध्यक्ष युद्ध का संचालन कर सकता है। तीनों सेवाओं के अध्यक्षों के रूप में सेनाध्यक्षों को रणक्षेत्र में कमाण्डरों को आदेश जारी करने का न्यायसम्मत अधिकार है और इसी कारण कैबिनेट की रक्षा समिति और प्रधानमन्त्री युद्ध क्षेत्र की कार्यवाही का सेनाध्यक्षों के माध्यम से निरीक्षण करते हैं। युद्ध में उत्तरदायित्व की शृंखला को अगले पृष्ठ पर प्रदत्त चार्ट द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

---

१६ निस्सन्देह सर्वोच्च आदेश की शपथ के अधीन। सैनिक कानून की ब्रिटिश पुस्तक के अनुसार केवल "न्यायसंगत आदेशों" का ही पालन किया जाना चाहिए। न्यायसंगत आदेश अंग्रेजी अथवा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरुद्ध नहीं होते और सैनिक कानून भी इसे उचित मानता है।
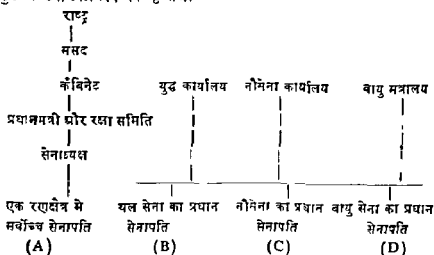
थल सेना का प्रधान सेनापति नौसेना का प्रधान सेनापति वायुसेना का प्रधान सेनापति (A) (B) (C) और (D), किसी रणक्षेत्र में सर्वोच्च कमाण्डर अथवा किसी विशिष्ट रणक्षेत्र में एक सेना का प्रधान सेनापति सेनाध्यक्षों से आदेश ग्रहण करेंगे; अन्तिम रूप से उसी निकाय के प्रति उत्तरदायी रहेंगे, और कमान के प्रत्येक ब्यौरे के लिए सेनाध्यक्षों के प्रति उत्तरदायी रहेंगे।

सेनाध्यक्ष प्रधानमन्त्री और कैबिनेट की रक्षा समिति से आदेश ग्रहण करते हैं और उन्हीं के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अन्ततः संसद के प्रति उत्तरदायी होने के कारण प्रधानमंत्री सेनाध्यक्षों की समिति के सहयोग से सशस्त्र सेनाओं पर संसदीय नियंत्रण के उचित क्रियान्वयन के लिए प्रभावी माध्यम प्रस्तुत करता है। यह सत्य है कि चर्चिल जैसा कोई विशिष्ट प्रधानमन्त्री किन्हीं अवसरों पर युद्धक्षेत्र के जनरलों से सीधा पत्रव्यवहार करले, पर ऐसा कभी-कभार ही होता है और जिन्हें देर-सबेर से ठीक-ठीक स्थिति के सम्बन्ध में सूचना देनी ही पड़ती है, उन सेनाध्यक्षों की उपेक्षा करने अथवा उन्हें अनभिज्ञ रखने का विचार भी नहीं किया जा सकता।

यद्यपि सेनाध्यक्ष 'सर्वोच्चों' को और विभिन्न युद्धक्षेत्रों के प्रमुख सेनापतियों को निर्देशित करते हैं तथापि यह महत्त्वपूर्ण है कि समिति के किसी भी सदस्य को प्रधान सेनापति का पदनाम नहीं प्राप्त होता। यूनाइटेड किंगडम की सच्ची लोकतान्त्रिक परम्पराओं के अनुरूप सर्वोच्च नियंत्रण किसी एक व्यक्ति के हाथों न सौंप कर एक परिषद् को सौंपा जाता है। प्रत्येक सेवा की परिषद् होती है जिसमें नागरिक और राजनीतिक प्रतिनिधि होते हैं और शुद्ध सेवा मामलों में यही निर्णय लेती है। साथ ही कैबिनेट की रक्षा समिति सेनाध्यक्षों की समिति की योजनाओं का अनुमोदन करती है और फिर कार्यवाही के विभिन्न क्षेत्रों में इन योजनाओं पर

व्यवहार करने के लिए प्रधान सेनापतियों को आदेश जारी किए जाते हैं। परिषदीय तंत्र में प्रधान सेनापति का पदनाम अभिशाप होता है अतः प्रधान सेनापति को आदेश देकर अपनी योजनाएं लागू कराने के लिए कैबिनेट द्वारा बाध्य होने पर भी नियोजकों को केवल सेनाध्यक्षों का पदनाम ही दिया जाता है।[17] इस परम्परा के अनुरूप ही भारत ने भी तीनों प्रधान सेनापतियों का पदनाम सेनाध्यक्ष कर दिया है।

पिछले युद्धकाल में जब १९४० में चेम्बरलेन की सरकार ने इस्तीफा दिया था तब उसमें निहित संवैधानिक सिद्धान्त का जिक्र किए बिना यह वर्णन अधूरा ही रहेगा। हाउस ऑफ कामन्स (कामन सभा) में ७–८ मई को हुई बहस में चर्चिल ने सरकार की नॉर्वे सम्बन्धी कार्यवाही का पक्ष लेते हुए घोषणा की कि उन्होंने अपने उत्तरदायी सेवा विशेषज्ञों की सलाह पर ही ऐसा किया। साथ ही उसने यह भी जोड़ दिया 'कि अपने विशेषज्ञों की सलाह स्वीकार करने से मंत्रियों का बचाव नहीं होता। इसके विपरीत यदि वे उनकी सलाह ठुकरा दें तो उन पर आक्षेप आ सकता है।"[18] संसद के एक सदस्य ने यहाँ तक कहा कि "सेनाध्यक्ष इस युद्ध को हार जाएँगे, सारा उत्तरदायित्व हम राजनीतिज्ञों पर है और सारी शक्ति सेनाध्यक्षों के पास।" प्रधानमन्त्री ने हाउस ऑफ कामन्स को अनेक समिति गोष्ठियों सहित युद्धतंत्र के कार्य के विषय में बताते हुए कहा कि "भविष्य के दृष्टिकोण से युद्ध का दिन-प्रतिदिन संचालन करने वाली" सेनाध्यक्षों की समिति जल–थल पर की जाने वाली कार्यवाही की सिफारिश नहीं करती। तो भी प्रधानमंत्री ने सारा उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए यह कहा कि "जो कुछ भी किया जाता है अथवा नहीं किया जाता है उस सब का संवैधानिक उत्तरदायित्व मैं लेता हूँ और गलती हो जाने पर जैसाकि बहुधा हो जाता है और भविष्य में भी हो सकता है, मैं सारा दोष स्वयं ग्रहण करने को प्रस्तुत हूँ।" "ऐसे विशेषज्ञों की समिति-जो सभी युद्ध परिषदों की भांति किसी भय अथवा असफलता की आशंका होने पर उत्तरदायित्व से बचने को उद्यत रहे"—पर संवैधानिक "निर्भरता अत्यन्त कष्टकारक प्रतिबन्ध है।" नौसैनिक बेड़े के एडमिरल सर रोजर कीज (Sir Roger Keys) ने सेनाध्यक्षों की समिति के इस पहलू की आलोचना करते हुए कहा है कि अत्यन्त उत्तरदायी प्रधानमंत्री और लोकमत का ध्यान रखने वाली कैबिनेट को सलाह देने वाला यह एक अनुत्तरदायी और पूर्णतः अचल निकाय है। निस्सन्देह यह कथन पूर्णतः सत्य नहीं है क्योंकि सेनाध्यक्षों (की समिति) के सदस्य सैद्धान्तिक रूप से

१७ देखिए M. Horvard "ग्रेट ब्रिटेन में केन्द्रीय रक्षा संगठन १९११" 31, The Political Quarterly, 1960, p. 66.

१८ W. Churchill, The second World War Vol I. The Gathering Storm.

अस्थायी हैं और प्रधानमन्त्री द्वारा कभी भी पदमुक्त किए जा सकते हैं। देश की रक्षा सम्बन्धी सभी मामलों में दी जाने वाली व्यावसायिक सलाह के लिए वे वर्तमान सरकार के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(३) संगठन :

अनेक उप समितियां, सेनाध्यक्षों की समिति की सहायता करती हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं, संयुक्त नियोजन स्टॉफ, संयुक्त सूचना समिति जिस की सहायता संयुक्त सूचना ब्यूरो करता है, तथा तीनों सेवाओं का संगठन जिसके अध्यक्षों की समिति होती है। ये समितियां सीधे सेनाध्यक्षों के अधीन कार्य करती हैं। प्रशासन, नियोजन, उत्पादन और वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित और भी अनेक समितियाँ सैनाध्यक्षों की सतत सहायता करती हैं। उदाहरणार्थ, रक्षा अनुसंधान नीति समिति सेनाध्यक्षों के कार्यवाही के प्रश्नों पर सलाह देती है। इसी प्रकार सेनाध्यक्षों की समिति संयुक्त प्रशासनिक नियोजकों की सेवाओं का बराबर प्रयोग करती है। अतः नियोजन, सूचना और प्रशासनिक नियोजन के लिए संयुक्त स्टॉफ मिल कर केन्द्रीय तन्त्र के सचिवालय का निर्माण करते हैं।

युद्ध के अनुभव के प्रकाश में संयुक्त स्टॉफ का निरन्तर पुनर्गठन और विस्तार किया गया है। इसमें तीनों सेवाओं के विशेष रूप से चुने हुए अधिकारी होते हैं जो साथ रहते हैं और एक ही कार्यालय में कार्य करते हैं। इस प्रकार वे एक संयुक्त उद्देश्य के लिए एक-दूसरे की सहायता करने वाली तीन अलग-अलग इकाइयों के रूप में नहीं वरन् एक ही भावना और एक ही कार्य की धारणा से अनुप्राणित युद्धकारी इकाई के रूप में कार्य और विचार करना सीखते हैं। सूचना और सलाह के लिए उनकी सेवा में नौसेना, स्थल सेना और वायु सेना के विभागीय स्टॉफ होते हैं जिनकी संरचना अगले पृष्ठ पर दिखाई गई है।

"संयुक्त स्टॉफ"
सेनाध्यक्षों की समिति

- संयुक्त नियोजन स्टॉफ (योजनाओं के तीन निदेशक, शाही नौसेना का कैप्टिन, ब्रिगेडियर और वायु कोमोडोर)
  - सामरिक नियोजन अनुभाग
    - शाही नौसेना: १ कैप्टिन, २ कमाण्डर
    - स्थल सेना: १ लेफ्टीनेंट कर्नल, २ मेजर
    - शाहीवायुसेना: १ ग्रुपकैप्टिन, २ विंगकमाण्डर
  - कार्यकारी नियोजन अनुभाग
    - शाहीनौसेना: १ कैप्टिन, २ कमाण्डर
    - स्थल सेना: १ लेफ्टीनेंट कर्नल, २ मेजर
    - शाही वायु सेना: १ विंगकमाण्डर, २ स्क्वैड्रनलीडर
  - भविष्य के कार्यवाही नियोजन अनुभाग
    - निदेशक-कर्नल
    - शाही नौसेना: १ कैप्टिन, २ कमाण्डर
    - स्थल सेना: १ लेफ्टीनेंट कर्नल, २ कमाण्डर
    - शाही वायु सेना: १ ग्रुपकैप्टिन, २ विंगकमाण्डर
  - विशेष विभाग सलाहकार
    - युद्ध यातायात मंत्रालय, आर्थिक युद्ध मन्त्रालय, राजनीतिक युद्ध कार्यकारी गृह रक्षा मन्त्रालय और आवश्यकतानुसार अन्य सरकारी विभागों के सम्पर्क अधिकारी।
- संयुक्त सूचना उपसमिति, विदेश विभाग-सलाहकार (अध्यक्ष) (सूचना के तीन निदेशक-रियर एडमिरल, मेजर जनरल, एयरवाइस मार्शल) आर्थिक युद्ध मंत्रालय उप महानिदेशक
  - संयुक्त सूचना स्टॉफ (शत्रु के विचार)
    - शाही नौसेना: (१) कैप्टिन (२) कमाण्डर
    - स्थल सेना: १ ले० कर्नल, १ मेजर
    - शाही वायु सेना: १ विंगकमाण्डर, १ स्क्वैड्रन लीडर
    - विदेश विभाग: १ प्रथम सचिव
    - आर्थिक युद्ध मंत्रालय: १ उप सचिव, १ प्रमुख
  - अन्तर सेना सुरक्षा परिषद् प्रत्येक सेना से ले० कर्नल के स्तर का एक-एक प्रतिनिधि।
  - सूचना अनुभाग (कार्यवाही) (कमाण्डर और निदेशकों को उन दोनों के विषय में जहाँ कार्यवाही आरंभ हो सकती है सूचना देने का प्रावधान) प्रत्येक सेना से मेजर के स्तर का और आर्थिक युद्ध मन्त्रालय से एक-एक प्रतिनिधि।

संयुक्त नियोजक स्टॉफ सेना, युद्ध मंत्रालय, और वायु मंत्रालय के तीन निदेशकों के निर्देशन मे कार्य करता है। ये अधिकारी अपना समय अपने-अपने मंत्रालयों और संयुक्त नियोजन केन्द्र के बीच बाँट लेते हैं। चार्ट मे प्रदर्शित प्रत्येक नियोजन अनुभाग मे चुने हुए अधिकारी होते हैं, जो शब्द के पूर्ण अर्थ मे एक टीम की भाँति कार्य करते हैं। वे एक ही कार्य मे नहीं वरन् एक ही कार्यालय मे भी साझीदार होते हैं। वे एक स्थान पर केवल भोजन ही नहीं करते वरन् एक ही भवन मे सोते भी हैं रात और दिन किसी भी समय वे परामर्श के लिए उपलब्ध होते हैं।

१९४७ के कमाण्ड पेपर मे विभिन्न अनुभागों के कर्त्तव्यों की व्याख्या इस प्रकार की गई है :

(अ) *सेनाध्यक्षों के निदेशक के अधीन सामरिक नियोजन अनुभाग सामान्य* स्थिति पर निरन्तर दृष्टि रखता है, समय-समय पर स्थिति का मूल्यांकन तैयार करता है और आवश्यक कार्यवाही के सम्बन्ध मे सिफारिश करता है।

(आ) कार्यकारी नियोजन अनुभाग का कार्य स्वीकृत योजना पर व्यवहार करने के लिए उपाय और साधनो मे तालमेल बैठाना है।

(इ) भविष्य में कार्यवाही नियोजन अनुभाग का वर्त्तमान कार्य से कोई संबंध नहीं है वह तो भविष्य की योजनाओं की तैयारी पर ध्यान केन्द्रित करता है भले ही ये व्यवहारिक राजनीति के क्षेत्र से बाहर हो। इस प्रकार वे सेवाओं, यातायात और तुरन्त उपलब्ध अन्य साधनों की परिमितता से कठोरतापूर्वक बंधे नहीं हैं।

निसन्देह संयुक्त नियोजन स्टॉफ, मुख्यरूप से सैनिक योजनाओं से संबंधित है, परन्तु "पूर्ण युद्ध" मे अन्य राजनीतिक, आर्थिक इत्यादि विचारों पर भी ध्यान देना पड़ता है। फलस्वरूप विदेश मन्त्रालय का एक स्थायी प्रतिनिधि संयुक्त नियोजन स्टॉफ मे रहता है तथा राजनीतिक युद्ध कार्यकारी एवं युद्ध यातायात, आर्थिक युद्ध और गृह सुरक्षा मंत्रालयो के सम्पर्क अधिकारी ही इसमे होते हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार विचार-विमर्श के लिए बुला लिया जाता है।

संयुक्त सूचना उपसमिति मे विदेश मंत्रालय का एक प्रतिनिधि (अध्यक्ष), तीनों सेवा विभागो के सूचना निदेशक और आर्थिक युद्ध मंत्रालय का उपमहानिदेशक होता है। ये अधिकारी ऊपर वर्णित योजनाओं के निदेशकों की भाँति ही कार्य करते हैं अर्थात् कुछ काल के लिए अपने-अपने मंत्रालयो मे और कुछ काल के लिए संयुक्त टीम के रूप मे। उनकी देखरेख में तीनों सेवाओं, विदेश मंत्रालय और आर्थिक युद्ध मंत्रालय के संयुक्त स्टॉफ होते हैं। संयुक्त नियोजन स्टॉफ के विभिन्न अनुभागो की भाँति ही ये भी कार्य करते हैं। मोटे तौर पर संयुक्त सूचना उपसमिति का उत्तरदायित्व शत्रु के सम्बन्ध मे सारी सूचना का तुलनात्मक अनुमान लगाना एवं विशेष रूपसे समय-समय पर शत्रु द्वारा संभाव्य कार्यवाही का मूल्यांकन तैयार करना है।

संयुक्त नियोजन स्टॉफ और संयुक्त सूचना उप समिति मिलजुलकर कार्य करते हैं और सेनाध्यक्षों के साथ समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए दोनों को नियमित रूप से आमंत्रित किया जाता है।

इस संगठन का सर्वाधिक प्रमुख लक्षण यह है कि जर्मन प्रणाली की भाँति नियोजकों की स्थायी रूप से भर्ती नहीं की जाती वरन् वे स्वीकृत नीति पर व्यवहार करने के लिए उत्तरदायी सेवा विभागों के योजनाओं के वास्तविक निदेशक होते हैं। वास्तव में कुशल और प्रभावी नियोजन का यह एक आधारभूत सिद्धान्त है कि नियोजकों को योजना पर व्यवहार के लिए उत्तरदायी तंत्र से अलग नहीं किया जाना चाहिए। जब नियोजन किसी स्थायी निकाय द्वारा किया जाता है जिसका योजनाओं के क्रियान्वयन से कोई संबंध नहीं होता, तो व्यावहारिक विचार से इसका संबंध विच्छिन्न हो जाता है और कार्यान्वयन में यह अव्यावहारिक बन जाता है। जर्मन सैनिक मुख्यालय (Ober Kommando der Wehrmacht) का नियोजन स्टॉफ तीनों सेवाओं के मुख्यालयों से नहीं लिया जाता था और यही जर्मन प्रणाली असफलता का कारण था। कहा जाता है कि नियोजन और कार्यान्वयन के अलगाव ने भयंकर विरोध उत्पन्न करके जर्मन प्रणाली के किसी भी सैद्धान्तिक लाभ को निरस्त कर दिया।

ऐसा समझा जाता है कि संयुक्त स्टॉफ की संरचना में कुछ परिवर्तन हो चुके हैं पर उनका विस्तृत ब्योरा अभी उपलब्ध नहीं है यद्यपि १९५८ के श्वेतपत्र में कुछ सूचना दी गई है।

अपनी संयुक्त क्षमता में संयुक्त नियोजन स्टॉफ सेनाध्यक्षों की समिति के प्रधान रक्षा स्टॉफ के प्रमुख के प्रति उत्तरदायी होता है। अपना कार्य सम्पन्न करने में सहायता करने के लिए वह किसी भी संबंधित सेनाध्यक्ष से नौसैनिक, जनरल और वायु स्टॉफ-जिनके संयोग से संयुक्त रक्षा स्टॉफ बनता है—की सेवाएँ उपलब्ध कराने को कह सकता है। अन्तर-सेवा समस्याओं का अध्ययन करने के लिए अपनी-अपनी सेवा के सेनाध्यक्ष के माध्यम से ये स्टॉफ सेनाध्यक्षों की समिति और इसके प्रमुख के माध्यम से रक्षामंत्री के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

साथ ही समिति की संरचना से सम्बन्धित एक अन्य महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि तीनों सेवाओं के अध्यक्ष सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्य होने के साथ-साथ नौसेना परिषद्, युद्ध कार्यालय, और वायु परिषद् के भी अलग-अलग सदस्य होते हैं और इस प्रकार प्रत्येक सेवा के नीति और नियोजन अनुभाग के लिए भी उत्तरदायी होते हैं।

सेवा मंत्रालयों का संगठन :*

तीनों सेवाओं के लिए प्रशासनिक तंत्र बोर्ड संगठन परिषदों की प्रणाली पर आधारित होने के कारण ब्रिटिश प्रजातंत्रीय परम्पराओं के अनुकूल है। नौसेना

---

*परन्तु पृष्ठ १४० को देखिए।

परिषद्, स्थल सेना परिषद और वायु परिषद ऐसी ही परिषदें होती हैं। (इसी पृष्ठ पर चार्ट देखिए)।

मसदीय नियन्त्रण

प्रथम लॉर्ड जो नौसेना का प्रभारी मन्त्री और ससद सदस्य होता है ससदीय नियत्रण का विस्तृत आधार प्रस्तुत करता है। रक्षा मन्त्रालय के गठन से पूर्व वह कैबिनेट का भी एक महत्त्वपूर्ण सदस्य होता था। प्रथम लॉर्ड की नियुक्ति नौसेना परिषद् के एकाधिकार पत्र द्वारा की जाती है। "नौसेना के सारे कार्य के लिए" वह क्राउन और ससद के प्रति उत्तरदायी होता है तथा नौसेना सम्बन्धी प्रश्नों का ससद मे उत्तर देता है। दूसरा सासदिक जो परिषद का सदस्य होता है वह है "ससदीय और वित्तीय सचिव" जो प्रथम लॉर्ड के सहकारी के रूप मे कार्य करता है। यदि प्रथम लॉर्ड, लॉर्ड सभा का सदस्य होता है तो ससदीय और वित्तीय सचिव आवश्यक रूप से कामन सभा का सदस्य होता है। सिविल लॉर्ड परिषद् मे ससद का तीसरा प्रतिनिधि होता है और अभियान्त्रिक कार्यों यथा बारको के निर्माण का प्रभारी होता है। स्थायी सचिव परिषद् का सदस्य और इसका सचिव होता है। मुख्य लेखाधिकारी होने के कारण वह ससद और जनलेखा समिति के प्रति उत्तरदायी होता है। इस प्रकार ससदीय नियंत्रण न केवल ससद के सदस्यो द्वारा जो परिषद् के सदस्य होते है वरन् राजकोष, जनलेखा समिति और राजकोष द्वारा नियुक्त लेखाधिकारी के रूप मे सचिव द्वारा भी किया जाता है।

नौसेना परिषद्[१९]

प्रथम लॉर्ड (संसद सदस्य)

प्रथम समुद्री लॉर्ड और नौ सेनाध्यक्ष (नीति)
द्वितीय समुद्री लॉर्ड (कार्मिक)
तृतीय समुद्री लॉर्ड (वस्तु)
चतुर्थ समुद्री लॉर्ड (आपूर्ति)
पचम समुद्री लॉर्ड (नौसैनिक उड्डयन)
ससदीय और वित्तीय सचिव (ससद सदस्य)
नागरिक लॉर्ड (निर्माण) (ससद सदस्य)

निदेशालय

(अ) ससदीय (प्रतिनिधित्व)

नौसैनिक स्टॉफ का उपाध्यक्ष
सहकारी अध्यक्ष
सहायक अध्यक्ष

(आ) सचिव

उप
और
सहायक
सचिव

(इ) व्यावसायिक सलाहकार और विशेषज्ञ
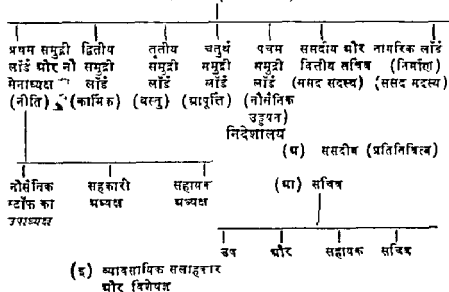
१९ नौसेना के विषय में यहाँ जो कुछ विस्तारपूर्वक बताया गया है वही मोटे तौर पर अन्य दो सेनाओं के लिए भी सत्य है।

व्यावसायिक सलाहकार और विशेषज्ञ तन्त्र

नौसेना परिषद में नीति, कार्मिक, वस्तु, आपूर्ति और परिवहन तथा नौसैनिक वायुसेना से सम्बन्धित क्रमशः पाँच समुद्री लॉर्ड होते हैं।

नीति सम्बन्धी मामलों में सावधानीपूर्वक परीक्षण करने की आवश्यकता और ब्रिटिश अधिकार-क्षेत्र के सारे विश्व में फैले होने के कारण नौसैनिक योजना निर्माण करते समय बड़े पैमाने पर सामरिक विचारों पर ध्यान रखना पड़ता है। अतः प्रथम समुद्री लॉर्ड के तीन सहायक होते हैं जिनमें से नौसेना स्टॉफ का उपाध्यक्ष और नौसेना स्टॉफ का सहकारी अध्यक्ष तो परिषद् के सदस्य होते हैं, परन्तु नौसेना स्टॉफ का सहायक अध्यक्ष उसका सदस्य नहीं होता। नौसैनिक स्टॉफ का सहकारी अध्यक्ष आयुधों और अनुसंधान और विकास पर ध्यान केन्द्रित करता है। नौसैनिक स्टॉफ का सहायक अध्यक्ष नौसैनिक स्टॉफ के उपाध्यक्ष का सहायक होता है।

प्रथम समुद्री लॉर्ड राष्ट्र का प्रमुख सामरिक होता है और सामरिक नियोजन, नौसेना सुरक्षा, नौसेना के आकार और स्वरूप और नौसैनिक कार्यवाही इत्यादि के लिए उत्तरदायी होता है। नौसैनिक परिषद का वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यावसायिक सदस्य होता है। यद्यपि प्रथम समुद्री लॉर्ड राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ परिषद् का अध्यक्ष भी होता है, पर उसकी स्थिति समकक्षेषु प्रथम जैसी होती है क्योंकि अन्य समुद्री लॉर्ड भी समान रूप से महत्वपूर्ण होते हैं। प्रथम लॉर्ड और प्रथम समुद्री लॉर्ड के मध्य होने वाला पत्रव्यवहार समानता के विचार का बोध कराता है। अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'द सेकेन्ड वर्ल्ड वार' (The Second World War) में चर्चिल ने इन दो महत्वपूर्ण अधिकारियों के सम्बन्धों पर विचार किया है। उसने कहा है, "प्रथम लॉर्ड सभी टिप्पणियाँ अपने नौसैनिक सहकर्मियों के सम्मुख विचार-विमर्श, समालोचना और सुधार के लिए प्रस्तुत करता है।"[20] पुनः नौसेना के प्रथम लॉर्ड के रूप में चर्चिल ने प्रथम समुद्री लॉर्ड एडमिरल डडली पौन्ड (Admiral Dudley Pound) का इन शब्दों में जिक्र किया है, "अब हम उन सहकर्मियों की भाँति मिलते थे जिनके घनिष्ट सम्बन्धों और मौलिक सहानुभूति पर विस्तृत नौसैनिक तन्त्र की कार्यवाही का सुचारु सञ्चालन निर्भर करता था।[21]

उच्चतर अंगों के साथ संयोजक कड़ी :

नौसैनिक परिषद में नियोजन संगठन का अध्यक्ष होने के कारण प्रथम समुद्री लॉर्ड सेनाध्यक्षों की समिति में नौसेना का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना जाता है। सेनाध्यक्षों की समिति के समन्वयक अंग के साथ उसकी सेवा के दस नियोजक का यह सीधा सम्पर्क होता है। इसी प्रकार प्रथम समुद्री लॉर्ड जो एक

---

२० The Second World War Vol. I

२१ वही, पृ० २३१

राजनीतिक व्यक्ति होता है राज्य के उच्चतर राजनीतिक ग्रग ग्रर्थात् कैबिनेट की रक्षा समिति से इसका सदस्य होने के नाते सम्बन्धित होता है। फिर भी सेवा मन्त्रियो मे से कोई भी कैबिनेट का सदस्य नहीं होता। यह पूर्णत सगत है क्योकि उनके विशिष्ट विभाग एक विशिष्ट सेवा से सम्बन्धित होते हैं ग्रौर रक्षामत्री तीनो सेवाग्रो मे समन्वयकारक रक्षा समिति ग्रौर कैबिनेट का सदस्य होता ही है। फिर भी सेवा के दक्ष नियोजक ग्रौर राजनीतिज्ञ राज्य के उच्चतर सैनिक एव राजनीतिक ग्रगों से सीधे सयुक्त होते हैं।

स्थल सेना परिषद् :

सेना परिषद् का ग्रध्यक्ष युद्धमत्री ससद सदस्य होता है। रक्षा मन्त्रालय के गठन से पूर्व वह कैबिनेट का भी एक महत्वपूर्ण सदस्य होता था। सेना परिषद् के उपाध्यक्ष के रूप मे कार्यरत राज्य का एक ससदीय ग्रवर सचिव उसकी सहायता करता है। ये दो ससद सदस्य सेना पर ससद के नियन्त्रण के सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करते हैं।

स्थल सेना परिषद् के निम्नलिखित सदस्य होते हैं :—

(१) दो सहकारियो सहित साम्राज्यिक जनरल स्टाफ का ग्रध्यक्ष,
(२) ग्रडजुटाट जनरल,
(३) क्वार्टर मास्टर जनरल, ग्रौर
(४) युद्ध मन्त्रालय का ग्रवर सचिव।

निम्नलिखित चित्र में उपर्युक्त सगठन की मोटी रूपरेखा प्रस्तुत की गई है:—

स्थल सेना परिषद्

युद्धमन्त्री (ससद सदस्य)

युद्ध मत्रालय का ससदीय ग्रवर सचिव (ससद सदस्य)

साम्राज्यिक जनरल स्टाफ का ग्रध्यक्ष	ग्रडजुटाट जनरल	क्वार्टर मास्टर जनरल	स्थायी ग्रवर सचिव	सेना परिषद् का सचिवालय

साम्राज्यिक जनरल स्टाफ का ग्रध्यक्ष के अधीन: उपाध्यक्ष | सहकारी ग्रध्यक्ष

स्थल सेना के नियोजन सगठन के ग्रध्यक्ष के रूप मे साम्राज्यिक जनरल स्टाफ का ग्रध्यक्ष सेनाध्यक्षो की समिति मे उस सेवा का प्रतिनिधित्व करता है। सेवा मत्री कैबिनेट का नियमित सदस्य तो नहीं होता पर वह कैबिनेट की रक्षा समिति का सदस्य होता है।

वायु परिषद् :

तीनो परिषदों मे वायु परिषद् सर्वाधिक नवीन है। इसकी स्थापना १६१७

के वायु सेना अधिनियम के अनुसार १९१८ में हुई थी। इसी अधिनियम के अनुसार "वायु सेना सम्बन्धी मामलों के प्रशासन तथा वायु आक्रमण से राज्य की रक्षा करने" के उद्देश्य से वायु परिषद् का भी गठन किया गया। इस पृष्ठ पर दिया हुआ चार्ट वायु परिषद् के संगठन को स्पष्ट करता है।

वायु परिषद्

वायु मन्त्री (सदर सदस्य)

वायु मन्त्रालय में संसदीय अवर सचिव (सदर सदस्य)

वायु सेना अध्यक्ष	कार्मिक वायु सदस्य	आपूर्ति और संगठन के लिए वायु सदस्य	तकनीकी सेवाओं के लिए वायु सदस्य	स्थायी अवर सचिव (वायु)	आपूर्ति मन्त्रालय

उपाध्यक्ष — सहकारी अध्यक्ष
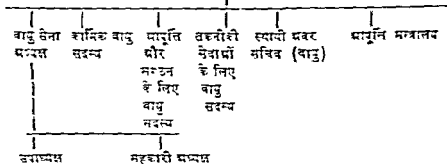
वायु मन्त्रालय को सौंपे गए संवैधानिक कार्य को सम्पन्न करने के लिए वायु परिषद् उत्तरदायी है और स्थायी अवर सचिव का असैनिक विभाग संवैधानिक उत्तरदायित्वों पर बल देता रहता है जिससे परिषद् का कार्य सुचारु रूप से चलता रहे। राष्ट्रीय रक्षा में शाही वायु सेना की भूमिका महारानी की सरकार निश्चित करती है और शाही वायु सेना के प्रशासन एवं कार्यकुशलता के लिए वायु मन्त्रालय के सचिव का संवैधानिक उत्तरदायित्व संसद के प्रति होता है। वायु सेना संविधान अधिनियम के अधीन वायु परिषद् का सांविधिक उत्तरदायित्व भी होता है। वायु मन्त्रालय के कार्य को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है: कार्यवाही, रख-रखाव, प्रशासन और वायु सेना का इसके कार्मिकों एवं सहायकों सहित विकास करना, तथा संसद द्वारा स्वीकृत और कैबिनेट द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार एक कार्य कुशल युद्धकारी सेना का निर्माण करना। समय-समय पर बदलने वाले वायु सदस्यों और राजनीतिक अध्यक्ष के सम्मुख यह संवैधानिक स्थिति स्पष्ट करने का उत्तरदायित्व स्थायी अवर सचिव का है।

अन्य दो सेवाओं के अनुरूप ही वायु सेनाध्यक्ष, वायु सेना के नियोजन संगठन की अध्यक्षता और सेनाध्यक्षों की समिति में इस सेवा का प्रतिनिधित्व करता है। अन्य दो सेवाओं के मन्त्रियों की भांति ही वायु मन्त्री भी रक्षा समिति का सदस्य होता है और इस प्रकार इस सेवा की नीति और योजनाओं के लिए उत्तरदायी अधिकारियों की राज्य के उच्चतर रक्षा अंगों यथा सेनाध्यक्षों की समिति और कैबिनेट की रक्षा-समिति के साथ स्पष्ट शृंखला स्थापित हो जाती है।

अतः यह स्पष्ट है कि तीनों सेवाओं के दश नियोजक सशस्त्र सेनाओं के सर्वोच्च नियोजक निकाय के सदस्य होते हैं।

तीनों सेवाओं के मध्य समन्वय पर नवीनतम बल .

जैसाकि पहले कहा जा चुका है भविष्य के युद्ध की आवश्यकता पूर्ति हेतु जो बहुधा संयुक्त कार्यवाही का रूप धारण कर लेगा, तीनों सशस्त्र सेनाओं के एकीकरण की आधुनिक प्रवृत्ति यूनाइटेड किंगडम के नियोजकों का ध्यान आकर्षित कर रही है। रक्षामंत्री द्वारा फरवरी १९६२ में संसद के *समक्ष प्रस्तुत रक्षा सम्बन्धी* वक्तव्य में यूनाइटेड किंगडम में उपलब्ध संघीय संगठन के प्रकाश में अन्तर-सेवा सहकार की आवश्यकता पर बल दिया गया है। उस वक्तव्य के आवश्यक अनुच्छेद नीचे उद्धृत किए गए हैं, जो अन्तर-सेवा सहकार की दिशा में किए जाने वाले नवीनतम प्रयत्नों की ओर संकेत करते हैं।

सेवाओं का संगठन :[22]

कार्यों की अन्तर-परिवर्तनशीलता और तीनों सेवाओं में आपसी सहयोग और सहायता पर अधिकाधिक बल दिया जाएगा ताकि हम अपनी सेवान्तर्गत जनशक्ति से समग्र रूप से पूरा-पूरा लाभ उठा सकें। जुलाई १९५८ के रक्षा के केन्द्रीय *संगठन पर श्वेतपत्र (Cmd ४७६) में वर्णित धारणा* की पूर्ति हेतु विकास की नियमित प्रक्रिया को प्राप्त करने के लिए अगले कुछ वर्षों में यथावश्यक परिवर्तन किए जाएँगे। इसका उद्देश्य सेवाओं के संगठन में क्रान्ति करना नहीं वरन् अधिकाधिक सहकार और मितव्ययिता प्राप्त करना है। तीनों सेवाओं के बाह्य तत्वों में विभेद उत्पन्न करने वाले अलग-अलग कार्य, आयुध और संगठन उनकी सहायक सेवाओं को अलग करने का भी कार्य करते हैं। तो भी सेवाओं के अनेक प्रशासनिक और सहायक कार्यों में भिन्नताओं से कहीं अधिक समानताएँ हैं तथा धन और जनशक्ति *की कुशलता और मितव्ययिता के उद्देश्य से इन्हें तर्कसंगत बनाने की ओर भी* गुंजाइश हो सकती है। इन समान कार्यों में और अधिक घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने का कोई एक ही उपाय सभी दशाओं में उपयुक्त नहीं होगा। एजेन्सी व्यवस्था जिसके अधीन एक सेवा अन्य दो सेवाओं के लिए कार्य करे सर्वाधिक उपयुक्त उपाय हो सकता है। इस उपाय द्वारा काफी कुछ उपलब्धि हो चुकी है। उदाहरणार्थ यूनाइटेड किंगडम और विदेशों के अनेक क्षेत्रों में भोजन, पेट्रोल, तेल और चिकनाहट वाले पदार्थों की आपूर्ति इन्हीं सूत्रों पर संगठित की जाती है। स्वास्थ्य सेवाएँ भी बड़े पैमाने पर एजेन्सी *व्यवस्था के अनुसार कार्य करती हैं। इस प्रकार जर्मनी, जिब्राल्टर, पूर्वी अफ्रीका, उत्तरी अफ्रीका, हांगकांग और मलाया में स्थल सेना अन्य* दो सेवाओं की आवश्यकता की सभी व्यावहारिक औषधालय सेवाएँ प्रस्तुत करती है। विशेष दशाओं में उदाहरणार्थ यूनाइटेड किंगडम में सेवा औषधालयों के प्रशासन के

---

२२ रक्षा सम्बन्धी वक्तव्य, १९६२, Cmd १६३९

सूत्रों पर किसी प्रकार का समन्वयन वांछित हो सकता है। ये अलग-अलग सेवाओं के अधीन रहते हैं, पर बिस्तरों की कुल संख्या, कुल सैन्य संख्या से सम्बन्धित होती है। उसकी विशिष्ट सेवा का विचार किए बिना किसी भी सैनिक को किसी भी निकटतम औषधालय में भरती किया जा सकता है। औषध तथा अन्य स्वास्थ्य आपूर्तियाँ केन्द्रीय रूप में प्राप्त की जाती हैं। तीनों सेवाओं की दीर्घकालिक संचार प्रणाली के एकीकरण का भी इरादा है। इस दिशा में पहले आवश्यक पग के रूप में एक सम्मिलित सिगनल प्रक्रिया का विकास किया जा रहा है जिसमें तीनों सेवाओं के सिगनल संगठन आपसी आदान-प्रदान के आधार पर अधिक तत्परता से कार्य करने में सक्षम होंगे।

चूंकि प्रत्येक सेवा की आवश्यकताएं और कार्य इतने भिन्न हैं कि उनमें से प्रत्येक का अलग-अलग परीक्षण करना आवश्यक होगा, अतः परिवर्तन की आवश्यकता होने पर प्रत्येक दशा का सामना करने के लिए संगठन के एक विशेष स्वरूप की खोज करनी पड़ेगी। इस उद्देश्य के लिए रक्षा मंत्रालय के अधीन एक अन्तर-सेवा समिति गठित की गई है और उसकी प्रगति हो रही है।

एक पूर्ण परीक्षण के परिणामस्वरूप यह निश्चित किया गया है कि अधिकारियों को पहले की अपेक्षा अधिक शीघ्र न केवल अलग-अलग स्टाफ कालिजों में वरन् संयुक्त सेवा अभ्यासों, भाषणों और विचार-विमर्श पर अधिक बल द्वारा संयुक्त सेवा की प्रशिक्षण अवधि बढ़ा कर संयुक्त सेवा समस्याओं से परिचित कराया जाए।

"रक्षा मन्त्रालय :

सरकार का इरादा है कि नीति-निर्माण, कार्यवाही संचालन और रक्षा व्यय के निर्धारण का कार्य रक्षा मंत्रालय से सम्बन्धित बना रहे। सेनाध्यक्षों, रक्षा अनुसंधान नीति तथा अन्य समितियों के माध्यम से आयुधों और आयुध प्रणालियों के विकास का समन्वय भी यही करेगा। अलग-अलग समस्त सेनाओं का प्रशासन और दिन-प्रतिदिन का प्रबन्ध सेवा मन्त्रालयों द्वारा ही चलाया जाना चाहिए। जब समुद्रपार स्थित कमान्डरों को कार्यवाही सम्बन्धी निर्णयों की आवश्यकता होती है तब सेनाध्यक्षों की सलाह से रक्षामन्त्री उनके लिए ऐसा 'निर्णय' देता है। प्राप्त अनुभव के परिणामस्वरूप एक ऐसे छोटे कार्यवाही स्टाफ की स्थापना करने की व्यवस्था की गई है जो संयुक्त सेवा आधार पर रक्षा मन्त्रालय में युद्ध-कक्ष के लिए आदमी भेजने को सदैव तत्पर रहता है।

"कमान व्यवस्था :

यूरोप के बाहर के देशों में अपने वायदे पूरे करने के लिए अपनी सेनाओं को आवश्यक गतिशीलता, साज-सामान और आधार सुविधाएं प्रदान करना ही काफी नहीं है। संयुक्त सेवा कार्यवाही पर एकीकृत नियंत्रण बनाए रखने के लिए कमान व्यवस्था भी सरल होनी चाहिए। इन विचारों को ध्यान में रख कर मध्यपूर्व में

एकीकृत कमान (जिसका मुख्यालय अदन मे था) की स्थापना की गई थी। हाल ही के कार्यवाही सचालन मे कमान की परीक्षा हो गई और यह पूरी तरह सिद्ध हो गया कि एकीकृत कमान प्रणाली से मूल्यवान लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। इन कारणों से सरकार ने अब यह निश्चय किया है कि जितनी जल्दी व्यावहारिक हो सुदूरपूर्व मे भी एकीकृत कमान स्थापित की जाए। निकटपूर्व मे हमारी सेनाओ की कमान के लिए भविष्य की व्यवस्था का अनुच्छेद १६ मे वर्णित उन सेवाओ की व्यवस्था के प्रकाश मे पुनरावलोकन किया गया है।[22a] यह भी निश्चय किया गया है कि साइप्रस मे वर्तमान सयुक्त कमान मुख्यालय अपने वर्तमान रूप मे आवश्यक नहीं होगा अतः सैनिक मुख्यालय को आकार मे छोटा किया जा सकता है। मुख्य वायु कमान अधिकारी सारी ब्रिटिश सेनाओं के लिए उत्तरदायी होगा।

अनुसधान और विकास :

आगामी काल के लिए सामान्य समरनीति निश्चित हो जाने पर हम आवश्यक आयुध और साज-सामान का और उनका उत्पादन करने के लिए आवश्यक अनुसधान और विकास कार्यक्रमों का अधिक स्पष्ट अनुमान लगा सकेंगे। साथ ही एक उस समिति की मुख्य सिफारिशों को कार्यान्वित कर दिया गया है जिसने हाल ही मे रक्षा अनुसधान और विकास के नियत्रण सम्बन्धी अनुसधान और विकास की व्यवस्था और नियन्त्रण पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है। यद्यपि सरकारी अधिष्ठानो के सदस्यों को और उद्योगो के अनुसधानकर्ताओ को कार्यवाही सम्बन्धी आवश्यताओ को कियान्वित करने और नए आयुध खोज निकालने की आरम्भिक अवस्थाओ मे सभी प्रोत्साहन दिया जाता है, परन्तु पूर्णत मूल्यांकित परियोजना का अध्ययन पूर्ण किए बिना कोई बडी विकास सविदा तय नहीं की जाएगी, इस बात का निश्चय करने के लिए हमने विकास की प्रक्रिया मे नियत्रण-बिन्दु स्थापित कर दिए हैं। समाधान के लिए प्रस्तुत वैज्ञानिक और तकनीकी समस्याओ का विस्तृत परीक्षण और तकनीकी जनशक्ति, कीमत और समय के सम्बन्ध मे एक विस्तृत विकास कार्यक्रम की तैयारी परियोजना अध्ययन मे सम्मिलित है।"[23]

(II) फ्रान्स

चौथे गणतंत्र मे फ्रान्स

जनरल द गॉल के अधीन नवीनतम राजनीतिक और सैनिक सस्थाओ के सम्बन्ध मे विस्तृत सूचना के अभाव मे आगामी पृष्ठो मे उस स्थिति का पहले वर्णन करने का विचार किया गया है, जो १९५८ से पूर्व तब थी जब फ्रान्स का शासन चौथे गणतत्र के सविधान के अधीन होता था। तत्पश्चात् पचम गणतत्र के अधीन राजनीतिक-सैनिक व्यवस्था का सक्षेप मे वर्णन करने का प्रयास किया गया है यद्यपि इस विषय मे अत्यल्प सूचना उपलब्ध है, फिर भी चौथे गणतत्र और तत्प-

२२a १९६२ का Cmd १६१६ देखिए

२३ १९६२ का Cmd १६३१

पश्चात् पंचम गणतन्त्र के सम्बन्ध में उपलब्ध सूचना के वर्णन से फ्रान्स में राज्य की राजनीतिक और सैनिक संरचना के विषय में अनेक वर्षों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

चौथे गणतंत्र में फ्रान्स का एक लिखित संविधान था जिसमें निर्वाचित राष्ट्रपति और रक्षा सम्बन्धी सभी मामलों में नियम बनाने की शक्ति से सम्पन्न दो सदनों—राष्ट्रीय असेम्बली (निम्न सदन) और गणतन्त्र परिषद (उच्च सदन)। वाली विधायिका की व्यवस्था थी (देखिए परिशिष्ट 'क' पृष्ठ १८१)

राजनीतिक अंग और रक्षा नियोजन

चतुर्थ गणतंत्र का राष्ट्रपति

संविधान की धारा ५३ के अनुसार फ्रांसीसी गणतन्त्र का राष्ट्रपति सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च कार्यकारी अधिकारी था। राष्ट्रपति को "सशस्त्र सेनाओं के अध्यक्ष" (Chef des armees) की उपाधि प्राप्त थी और वह राष्ट्रीय रक्षा की सर्वोच्च परिषद और राष्ट्रीय रक्षा समिति की अध्यक्षता करता था अतः उसका कर्त्तव्य था कि वह इस बात का ध्यान रखे कि राष्ट्रीय रक्षा का कार्य उचित रीति से चल रहा है। राष्ट्रपति सशस्त्र सेनाओं का केवल नाममात्र का ही अध्यक्ष नहीं था क्योंकि उस राष्ट्रीय रक्षा समिति के कार्य को सम्पन्न करने में जिसमें प्रधान मन्त्री एक सदस्य होता था, उसकी सहायता के लिए एक सैनिक सचिवालय भी होता था।

सर्वोच्च कार्यकारी अधिकरण (गणतन्त्र के राष्ट्रपति) को अपना कर्त्तव्य पालन करने में सहायता करने के लिए दो समितियां होती थीं।

राष्ट्रीय रक्षा की सर्वोच्च परिषद :—एक सलाहकार निकाय था जिसमें नामांकित व्यक्ति हुआ करते थे, वे संसद के सदस्य हों अथवा न हों, रक्षा सम्बन्धी मामलों में सरकार को सलाह देने की योग्यता के आधार पर उनकी नियुक्ति हुआ करती थी। यह परिषद् अनेक मामलों में सलाह दिया करती थी, क्योंकि रक्षा के सामान्य संगठन सम्बन्धी सभी बिलों, औद्योगिक साज-सामान सम्बन्धी योजनाओं और वैज्ञानिक अनुसंधान और प्रायुधीकरण के कार्यक्रमों की समस्याओं पर यह विचार-विमर्श करती थी। इसमें मन्त्री, प्रमुख नागरिक और जनता के विश्वसनीय व्यक्ति हुआ करते थे। परन्तु निर्णय लेने का अधिकार न होने के कारण यह रक्षा संरचना का महत्त्वपूर्ण अंग नहीं थी।

राष्ट्रीय रक्षा समिति :—में रक्षा परियोजनाओं और योजनाओं से सम्बन्धित कैबिनेट के सदस्य होते थे। इसका उपाध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता था परन्तु राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में वही इसकी अध्यक्षता करता था। यूनाइटेड किंगडम अथवा भारत में कैबिनेट की रक्षा समिति के समकक्ष इस समिति का अध्यक्ष राष्ट्रपति होता था। फ्रान्स में इसे "विशिष्ट अन्तर-मन्त्रीय समिति" के नाम से पुकारा जाता था। फ्रेंच संघ की रक्षा

सम्बन्धी जिन मामलों में समन्वयन की आवश्यकता होती थी वे सभी राष्ट्रीय रक्षा समिति के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते थे। समुद्रपार फ्रांसीसी भू-भागों का मन्त्री तथा सहयोगी राज्यों का मन्त्री दोनों इस समिति के सदस्य होते थे।

मन्त्री परिषद का अध्यक्ष :

संविधान की धारा ४७ के अधीन "सैनिक सेवाओं" सम्बन्धी कुछ कार्य मन्त्री परिषद के अध्यक्ष जो ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के समकक्ष होता था, को भी सौंपे गए थे। कानूनों का कार्यान्वयन, नागरिक और सैनिक सेवा में नियुक्ति किए जाने वाले व्यक्तियों का नामांकन, सशस्त्र सेनाओं का उचित निर्देशन और राष्ट्रीय रक्षा कार्यों के समन्वयन का उत्तरदायित्व कैबिनेट के अध्यक्ष पर था।

अनेक समितियाँ और संगठन, परिषद के उस अध्यक्ष की सहायता किया करते थे। जिसे प्रधानमन्त्री भी कहा जा सकता है।[24]

आधुनिक युद्ध में रक्षा विज्ञान अनुसंधान को प्राप्त महत्त्व के कारण उस स्तर पर स्थापित एक सलाहकार निकाय—"राष्ट्रीय रक्षा हेतु वैज्ञानिक कार्यों की समिति"-प्रधानमन्त्री की सहायता किया करता था। इस समिति में प्रमुख वैज्ञानिक होते थे जो जीवाणु युद्ध से लेकर साज-सामान और आयुधों में नए डिजाइनों तक के विषयों को सुलझाया करते थे।

एस डी. ई सी. ई (S D E.C.E) नामक एक गुप्त-सूचना सेवा भी उस की सहायता करती थी। इसमें प्रतिसूचना भी शामिल होती है। प्रधानमन्त्री को आंतरिक और बाह्य नवीनतम स्थिति से पूर्णतः अवगत रखा जाना आवश्यक था इस कारण गुप्त-सूचना सेवा सीधे उसी के प्रति उत्तरदायी थी।

उत्तरी अफ्रीका का और सशस्त्र सेनाओं के प्रतिष्ठानों का निरीक्षण करने वाला संगठन भी सीधा प्रधानमन्त्री के अधीन था। फ्रांसीसी प्रणाली का यह एक अपूर्व लक्षण था। कार्यकुशलता और अनुशासन बनाए रखने तथा भ्रष्टाचार की रोक-थाम के लिए सशस्त्र सेनाओं के नियमित निरीक्षण की आवश्यकता से कोई इन्कार नहीं कर सकता, परन्तु ऐसा बहुत कम देखा जाता है कि प्रधानमन्त्री स्वयं इस प्रकार के संगठन से सीधा सम्बन्धित हो। फ्रांसीसी प्रणाली में ऐसा होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि फ्रांस में निरीक्षणों को कितना महत्त्व दिया जाता था।

ऊपर वर्णित कार्यों को सम्पन्न करने में प्रधानमन्त्री अथवा मन्त्रिपरिषद् के अध्यक्ष की सहायता करने के लिए सीधे उसके अधीन एक राष्ट्रीय रक्षा महासचिवालय गठित किया गया था। भारत में कैबिनेट सचिवालय का सैनिक स्कन्ध इस सचिवालय के समकक्ष है।

संविधान के अनुच्छेद ५४ के अनुसार मन्त्रिपरिषद के प्रधान को अपनी शक्ति राष्ट्रीय रक्षामन्त्री को प्रत्यायुक्त करने का अधिकार था। मन्त्री, फ्रैंच संसद के दो

---

२४ पृष्ठ १५६ पर इस अध्याय का परिशिष्ट 'अ' देखिए

सदनों में से किसी एक का सदस्य होता था और रक्षा मामलों सम्बन्धी मन्त्रि परिषद की उपसमिति में सम्मिलित हो सकता था। उसके अधीन एक विस्तृत संगठन था[२१] और राष्ट्रीय रक्षा सचिवालय उसकी सहायता करता था जिसमें स्थल, जल और वायु सेना सम्बन्धी तीन बड़े-बड़े अनुभाग होते थे।

राष्ट्रीय रक्षा का स्थायी महासचिवालय :

कैबिनेट के अध्यक्ष से सयुक्त यह एक महत्त्वपूर्ण सचिवालय-संगठन था और इसका वास्तविक कार्य राष्ट्रीय रक्षा के क्षेत्र में अन्तर-मन्त्रीय और अन्तर-सहबद्ध समन्वय स्थापित करना था। राष्ट्रीय रक्षा की अनेक समितियों और परिषदों के लिए यह न केवल सचिवालय-तन्त्र प्रस्तुत करता था वरन् जो निर्णय लिए जाते थे सम्बन्धित सेवाओं को उनसे सूचित रखता था, साथ ही यह राष्ट्रीय रक्षा के लिए आवश्यक समझे जाने वाले अनेक कार्यों यथा सम्राह का नियोजन, युद्ध की वित्तीय और आर्थिक समस्याएँ, मनोवैज्ञानिक युद्ध, वैज्ञानिक अनुसंधान और राष्ट्रीय रक्षा के लिए उच्चतर अध्ययन संस्थान को निर्देश देना आदि में अन्तर-मन्त्रीय समन्वयन के कार्य में भी परिषद के अध्यक्ष की सहायता करता था। जिन अनेक समितियों में कैबिनेट का अध्यक्ष भाग लेता था, उनके निर्णयों को लागू कराने का उत्तरदायित्व सचिवालय का था।

जब राष्ट्रीय रक्षा समिति निर्णय ले चुकती थी तब सेनाध्यक्षों द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार सशस्त्र सेनाओं को दिए जाने वाले सामान्य निर्देश भी सचिवालय तैयार करता था। यही विदेशों में सैनिक मिशन भेजता था और गुप्त सूचना-अनुसंधान योजनाएँ तैयार करता था।

अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में इसका कार्य राष्ट्रीय रक्षा सम्बन्धी बातचीत आरम्भ करना और अन्तराष्ट्रीय तथा अन्तर-सहबद्ध संगठनों को प्रस्तुत की गई योजनाओं का अध्ययन करना था। अनेक अन्तर-सहबद्ध सैनिक समितियों को जाने वाले फ्रांसीसी मन्त्रीमण्डलों के कार्य पर यह सजग निगरानी रखता था।

रक्षा सम्बन्धी मामलों में अपने कर्त्तव्य का पालन करने में परिषद के अध्यक्ष की सहायता करने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संगठन सेनाध्यक्षों की समिति थी। यह समिति राष्ट्रीय रक्षामन्त्री से भी सीधी सम्बन्धित थी और सदा की भाँति इसमें अपनी-अपनी सेवाओं के अध्यक्ष तीन सेनाध्यक्ष होते थे और एक स्थायी प्रमुख होता था जो जनरल होता था। इसी समिति के माध्यम से कार्यवाही के क्षेत्रों में कमाण्डरों को आदेश भेजे जाते थे। यही समिति दल सैनिक नियोजन के लिए भी उत्तरदायी थी।

सेनाध्यक्षों की समिति :

सेनाध्यक्षों की समिति एक महत्त्वपूर्ण समन्वयकारक निकाय थी जो नियम

---

२१ वही,

लेकर उन्हें राष्ट्रीय रक्षामन्त्री अथवा परिषद के अध्यक्ष को पेश किया करती थी। इसकी अध्यक्षता एक स्थायी प्रमुख करता था, और सशस्त्र सेनाओं का सयुक्त जनरल स्टाफ नामक सचिवालय उसकी सहायता करता था। सेनाध्यक्षों की समिति के स्थायी प्रमुख को "सशस्त्र सेनाओं का मेजर जनरल" कहते थे। स्थल, जल और वायु सेना के अध्यक्ष उसके अधीन होते थे। सेनाध्यक्षों की समिति के कार्यों मे निम्नलिखित बातें शामिल थी :—

(१) उच्चतर अन्तर-सेवा सैनिक आदेश के क्षेत्र मे नीति सम्बन्धी निर्देश जारी करना

(२) अन्तर-सेवा क्षेत्र (सग्राह, परिवहन, सचार इत्यादि) में समन्वयन करना,

(३) तकनीकी अध्ययन और अनुसधान का निर्देशन,

(४) सैनिक गुप्त सूचना सम्बन्धी मामलों मे नीति निर्देश जारी करना और

(५) अन्तर-सेवा और कार्यवाही के क्षेत्रो के कमाण्डरों को आदेश जारी करना।

सेनाध्यक्षों की समिति और इसके सभापति के अधीन कार्यरत सयुक्त जनरल स्टाफ मे अनेक समितियाँ यथा सयुक्त नियोजन समिति, सयुक्त गुप्त सूचना समिति आदि होती थीं। वास्तव मे यूनाइटेड किंगडम अथवा किसी अन्य लोकतन्त्रीय देश में उपलब्ध सगठन या फ्रांस मे सयुक्त जनरल स्टॉफ के नाम से पुनर्निर्माण किया गया था।

सेनाध्यक्षो की समिति राष्ट्रीय रक्षामत्री से सीधी सम्बन्धित थी और मंत्री परिषद के अध्यक्ष से सीधी मिल सकती थी।

सेनाध्यक्षों की समिति और कार्यवाही कमाण्डर :

इसी प्रकार आजकल जनरल दे गाल के अधीन हैं। पुरानी संरचना के अन्तर्गत कार्यवाही के विभिन्न क्षेत्रो मे जिस प्रकार मुख्य सेनापति होते थे। इसी प्रकार सिद्धान्त रूप से वे सीधे गणतन्त्र के राष्ट्रपति के अधीन थे जो सशस्त्र सेनाओं का अध्यक्ष भी होता था।[26] यह प्रथा अपरिवर्तित चली आ रही है। परिषद् का अध्यक्ष सेनाध्यक्षो की समिति के माध्यम से समय-समय पर आदेश और निर्देश जारी करता था और पुराने सविधान के अन्तर्गत प्रभावी नियन्त्रण उसी का होता था। अपनी-अपनी सेवा के सेनाध्यक्षो के अधीन ये कमाण्डर आज भी तीनों सेवाओं के मुख्यालयो से सीधे सम्बन्धित हैं। पुराने सविधान के अधीन राष्ट्रीय रक्षामत्री अथवा कैबिनेट का प्रधान सम्बन्धित प्रधान सेनापति पर सेनाध्यक्षो की समिति के माध्यम से पूर्ण नियंत्रण रखते थे। विभिन्न क्षेत्रों में अवस्थित सशस्त्र सेनाओं की कमान करने वाले कमाण्डर पांच प्रकार के थे :

---

२६ राष्ट्रपति द गाल के अधीन सिद्धांत और व्यवहार में एकरूपता आ गई।

(१) समुद्रपारीय प्रदेशों में सहबद्ध स्थल सेनाओं के कमाण्डर होते थे और सम्बन्धित उपनिवेश का गवर्नर स्थानीय अध्यक्ष होता था। इस श्रेणी के अधीन (क) मेडागास्कर, (ख) फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका, (ग) फ्रांसीसी पूर्वी अफ्रीका और (घ) न्यू कैलिडोनिया की स्थल सेनाओं के कमाण्डर आते थे।

(२) कार्यवाही क्षेत्रों का प्रधान सेनापति; यह नियुक्ति केवल युद्धकाल में की जाती है।

(३) फ्रांस के ५ वायु क्षेत्रों के कमाडिंग अधिकारी भी होते थे।

(४) फ्रांसीसी उत्तरी अफ्रीका का एक प्रधान सेनापति होता था।

(५) तीन नौसैनिक क्षेत्रों यथा (क) भूमध्यसागरीय, (ख) अतलान्तिक और (ग) इंगलिश चैनल के तीन कमाडिंग अधिकारी होते थे।

रक्षा सेनाओं का यह क्षेत्रीय संगठन था और यद्यपि कैबिनेट के प्रधान को समग्र नियन्त्रण प्राप्त था फिर भी जब फ्रांस के समुद्रपार के अधिकार क्षेत्रों की समस्त सेनाओं के विकास के सम्बन्ध में निर्देश दिए जाते और निर्णय लिए जाते थे तो अन्य मन्त्री यथा समुद्रपार के फ्रांसीसी उपनिवेशों का मन्त्री भी सम्बद्ध होते थे।

पांचवें गणतन्त्र में फ्रांस की राजनीतिक-सैनिक व्यवस्था की झलक :

१९५८ की क्रान्ति जिसके फलस्वरूप चतुर्थ गणतन्त्र का पतन हुआ पेरिस में प्रारम्भ न होकर अल्जीयर्स में प्रारम्भ हुई थी। फ्रांस को प्रत्यक्ष खतरा मुख्यतः सेना के कुछ अनुभागों और विशेषकर उनसे था जो या तो अल्जीरिया में छाताधारी रेजीमेन्टों में कार्य कर चुके थे अथवा कर रहे थे। अल्जीरिया के भविष्य पर फ्रांस की घटनाओं का प्रभाव एक प्रत्यक्ष कारण था और चतुर्थ गणतन्त्र के अधीन शासन का अंत बिना किसी रक्तपात के तकनीकी दृष्टि से विधिसम्मत और सांविधिक प्रक्रियाओं द्वारा हो गया। क्रान्ति हुई थी पर इसे क्रान्तिकारियों की विजय नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि नई सरकार में पहली सरकार के भी अनेक मन्त्री थे और कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर अधिकतर अन्य पार्टियां उनका समर्थन कर रही थीं। पंचम गणतन्त्र का नया संविधान जनरल द गॉल की सरकार और तीन जून १९५८ के संवैधानिक नियम द्वारा निर्धारित अधिकार-सीमा के अधीन कार्यरत उपाध्यक्षों, सीनेटरों और न्यायशास्त्रियों की संवैधानिक सलाहकार समिति द्वारा तैयार किया गया था। उस अधिनियम के अनुसार सरकार को वयस्क मताधिकार, विधायिका और कार्यकारी शक्तियों का पृथक्करण, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता, और संसद के प्रति उत्तरदायित्व के पांच सिद्धान्तों पर आधारित एक नया संविधान तैयार करने का अधिकार मिल गया। संविधान-निर्माण के क्षेत्र में फ्रांसीसियों का विश्व-रिकार्ड है। १७८९ से लेकर आज तक औसतन बारह वर्षों में फ्रांस ने अपना संविधान बदला है। पंचम गणतन्त्र का मुख्य लक्षण राष्ट्रपति की स्थिति को सुदृढ़ करना है अतः यह बात ध्यान देने योग्य है कि अल्जीयर्स के प्रदर्शन का एक आन्दोलन में

परिवर्तन होने के कारण जिसमे अल्जीरिया स्थित सैनिक नेताओं ने जन सुरक्षा की सरकार की मांग की, जनरल द गॉल प्रशासन के शिखर पर आ गया था। जिस राज्य क्रान्ति द्वारा जनरल द गॉल ने सत्ता प्राप्त की थी उसकी सफलता का आधार सशस्त्र सेनाओं का पूर्ण समर्थन था। हिन्द चीन मोरक्को और ट्यूनीशिया में अत्यधिक अपमान सह चुकने पर अब सैन्य नेता विजय प्राप्त करने के इच्छुक थे। उनके अपकारी आर्थिक और सामाजिक सुधार का एक विस्तृत कार्यक्रम और अल्जीरिया के लिए सर्वोत्तम समाधान के रूप मे एक प्रभावी सैन्य शासन आवश्यक समझते थे अतः चतुर्थ गणतन्त्र की नीतियों के विरोधी थे। इस प्रकार २८ सितम्बर १६५८ को एक विशाल बहुमत द्वारा समर्थित पंचम गणतन्त्रके संविधान का विशिष्ट लक्षण राष्ट्रपति के पद और कार्यों का इस प्रकार नियोजन करना था कि एक सुदृढ़ एवं अधिकार सम्पन्न कार्यकारिणी का निर्माण हो सके। इस क्रान्ति मे सेना की भूमिका का पंचम गणतन्त्र पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि एक नियमित सैनिक अधिकारी जनरल द गॉल इसका प्रथम राष्ट्रपति बना। साथ ही वह पहला गैर-संसद सदस्य राष्ट्रपति था और १८७३ मे राष्ट्रपति मार्शल मैकमोहन (Marshal Mac Mahon) के पश्चात् राष्ट्रपति पद पर पहला सैनिक अधिकारी था। साथ ही १६५८ के संविधान का उद्देश्य फ्रांस के राजनीतिक जीवन मे सरकार का निर्माण और निर्माण करने वाली जनता द्वारा चुनी हुई विधायिका पर से ध्यान हटाकर नए फ्रांसीसी प्रशासन के राजनीतिक और सैनिक दोनों अंगों पर प्रभावी नियन्त्रण करने वाले राज्याध्यक्ष, गणतन्त्र के राष्ट्रपति को महत्त्व देना था। इस ग्रन्थ मे मूलतः हम राज्य के उन्हीं राजनीतिक अंगों का अध्ययन कर रहे हैं जिनका सैन्य संगठन से सम्बन्ध होता है अतः पंचम गणतन्त्र की इस राष्ट्रीय असेम्बली और सीनेट के दो सदनों वाले संसद की शक्ति और कार्यों, आर्थिक और सामाजिक परिषद् और न्याय की सर्वोच्च परिषद् का विस्तृत वर्णन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है, जिन पर १६५८ के संविधान मे विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। हमे सर्वाधिक ध्यान राष्ट्रपति पद पर देना है जिसके साथ आपातकालीन शक्ति का संचालन और राज्य की सशस्त्र सेनाओं पर नियन्त्रण करने वाले निर्णायक की नई धारणा जुड़ी है। फिर भी राष्ट्रपति पर किसी प्रकार का नियन्त्रक प्रभाव डालने वाली राजनीतिक संस्थाओं का संक्षेप मे जिक्र किया जा सकता है।

पंचम गणतन्त्र का राष्ट्रपति पद और राज्य की सशस्त्र सेनाएं :

पंचम गणतन्त्र के राष्ट्रपति का निर्वाचन सात वर्ष के लिए होता है और उसकी नई शक्तियाँ दो श्रेणियों मे आती हैं। प्रथम, बिना प्रतिहस्ताक्षर के राष्ट्रपति कई नियुक्तियाँ कर सकता है। वह इस अधिकार का प्रयोग करता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद ५ के अनुसार "जन-प्राधिकरणों मे उचित कार्य और राज्य की निरंतरता बनाए रखने के उद्देश्य से" जब और जहाँ भी आवश्यक हो वह हस्तक्षेप कर सकता है। सशस्त्र सेनाओं के संगठन और असैनिक कार्यकारी क्षेत्र मे सभी

महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति करने का उसे पूर्ण अधिकार है। इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद ८ के अधीन राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की नियुक्ति करके उसे गणतंत्र की कार्यकारी शक्ति में साझीदार बनाता है। प्रधानमन्त्री की सलाह पर वह अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है अथवा उन्हें पदमुक्त करता है। राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री को पदमुक्त नहीं कर सकता। संविधान के अनुच्छेद ६ के अनुसार राष्ट्रपति मंत्री परिषद् की अध्यक्षता करता है। निर्णायक के रूप में राष्ट्रपति जो कार्य कर सकता है वे दूसरी श्रेणी में आते हैं। अनुच्छेद ५ के अनुसार "वह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और प्रादेशिक अखण्डता का संरक्षक अथवा अभिभावक है।" निर्णायक की यह नई भूमिका राष्ट्र से मतीन करने अथवा मतीन करने से इन्कार करने के अधिकार के रूप में अवलम्बित रहती है। पंचम गणतन्त्र के संविधान में व्यक्तिगत नेतृत्व का यह सिद्धान्त निरवपूर्वक एक नवीन उद्भावना है और इस गणतन्त्रीय परम्परा के विपरीत है, जिसे सदा यह भय रहता है कि राष्ट्रपति संविधान का दुरुपयोग करके सैनिक तानाशाही स्थापित कर सकता है। भले ही राष्ट्रपति की भूमिका निर्णायक है, वह शासन करने के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ करता है। प्रधानमंत्री का पद ऐसा है जिसे राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार हटा नहीं सकता। इसके साथ ही संविधान में एक संसदीय सरकार की व्यवस्था करके प्रधानमंत्री को पर्याप्त शक्ति प्रदान की गई है। तो भी इस बात का जिक्र किया जा सकता है कि जनरल दे गाल का व्यक्तित्व ऐसा है कि जब तक वह इस पद पर बना रहेगा, बिना किसी प्रतिरोध के अपनी इच्छानुसार सवैधानिक शक्तियों की व्याख्या करता रहेगा और इस प्रकार राज्य के आधुनिक तंत्र की कार्यशीलता संविधान द्वारा निर्धारित सीमा से कहीं अधिक राष्ट्रपति के हाथ में बनी रहेगी।

जहाँ तक सैनिक संगठन का सम्बन्ध है, नए संविधान के अनुच्छेद १५ के अनुसार गणतन्त्र का राष्ट्रपति सशस्त्र सेनाओं का प्रधान होगा और राष्ट्रीय रक्षा की उच्चतर समितियों एवं परिषदों की अध्यक्षता करेगा। जहाँ तक राज्य के रक्षा कार्य के कुशल संचालन का सम्बन्ध है संविधान की यह धारा राष्ट्रपति पर विशिष्ट उत्तरदायित्व डाल देती है। पुनः उसे राज्य के उच्चतर सैनिक अंगों यथा राष्ट्रीय रक्षा समिति का अध्यक्ष बना कर संविधान उसे राज्य की प्रादेशिक अखण्डता और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का संरक्षक (अथवा Le Garant) का महत्त्वपूर्ण कर्तव्यपालन करने में समर्थ बना देता है। अनुच्छेद १६ से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि "यदि गणतन्त्र की संस्थाओं, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, इसकी प्रादेशिक अखण्डता अथवा इसके अन्तर्राष्ट्रीय वचनों के पालन में गंभीर और आसन्न खतरा हो, तथा राज्य का सांविधानिक तंत्र असफल हो जाए तो गणतन्त्र का राष्ट्रपति सरकारी रूप से प्रधानमंत्री और सवैधानिक परिषद के सदनों के अध्यक्षों से परामर्श करके स्थिति के अनुकूल कदम उठा सकता है।" सरकार के सवैधानिक तन्त्र के असफल हो जाने की स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा किए जाने वाले आपातकालीन उपायों के लिए प्रावधान करने वाली संविधान की शायद यह सर्वाधिक विशिष्ट धारा है। फिर भी गणतन्त्र

की परम्पराओं के अनुरूप अनुच्छेद १६ में राष्ट्रपति की शक्ति सीमित करने का प्रयास किया गया है जिससे आपातकालीन शक्तियों के प्रयोगकाल में राष्ट्रीय परिषद भग न की जा सके और ससद की साधिकार बैठकें होती रहे। इसके अतिरिक्त आपातकालीन शक्तियाँ ग्रहण करते समय राष्ट्रपति को सवैधानिक परिषद से परामर्श करना और राष्ट्र को सन्देश द्वारा सूचित करना पड़ता है। सवैधानिक परिषद् एक विशिष्ट फ्रासीसी राजनीतिक सस्था है, जो इसके सम्मुख पेश किए जाने वाले सुगठित कानूनों और ससद के स्थायी आदेशों की सवैधानिकता का निर्णय करती है। सरकार और संसद के मध्य कुछ विवादों में अनुच्छेद ४१ के अनुसार यही मध्यस्थता करती है। पुन यह राष्ट्रपति के निर्वाचन और जनमतसग्रह का निरीक्षण करती है (अनु०५८) अपना कर्तव्य पालन करने में राष्ट्रपति की सामर्थ्य का (अनु० ७) और विवादग्रस्त ससदीय चुनावों का निर्णय करती है(अनु० ५६)। इसके अतिरिक्त सवैधानिक परिषद को सर्वोच्च सवैधानिक अदालत का अधिकार प्रदान करने वाले एक विशिष्ट परिवर्तन के द्वारा इसके निर्णय सभी लोक अधिकरणों पर बाध्य घोषित कर दिए गए हैं। उनके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती (अनु० ६२)। इस प्रकार जब अनुच्छेद १६ के अधीन राष्ट्रपति द्वारा आपातकालीन शक्ति ग्रहण की जाती है, उस समय सवैधानिक परिषद की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इस बात का जिक्र किया जा सकता है कि जनरल द गॉल के मस्तिष्क में अनु० १६ का उद्देश्य १६४० की पराजय अथवा आणविक युद्ध के फलस्वरूप प्रशासनिक अगों का विघटन जैसे राष्ट्रीय सकटों तक सीमित था। इस अनुच्छेद के आलोचकों की मान्यता है कि राष्ट्रपति जान-बूझकर अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर सकता है और सैनिक क्रान्ति को भी न्यायसगत आवरण दे सकता है। आपातकालीन स्थिति और उसके सुधार के लिए आवश्यक उपायों का निर्णय करने वाला राष्ट्रपति ही होता है अत: यह बात कुछ सीमा तक सत्य हो सकती है। दोनों सदनों और सवैधानिक परिषद् के अध्यक्षों से केवल परामर्श करने और राष्ट्र को सूचित भर करने के लिए वह बाध्य है। किसी भी स्थिति में वह उनका परामर्श मानने के लिए बाध्य नहीं है। इसके अतिरिक्त अनु० ३६ के अधीन मत्रीपरिषद् जिसकी अध्यक्षता राष्ट्रपति करता है, घेरे की स्थिति की घोषणा कर सकती है पर ससद से अधिकार प्राप्त किए बिना ऐसी स्थिति बारह दिन से अधिक नहीं चल सकती। युद्ध की घोषणा के लिए भी ससद की स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती है (अनु० ३५)। इस प्रकार नए सविधान में अनेक नियत्रण और प्रतिनियन्त्रण हैं पर इस समय इस पर राष्ट्रपति द गॉल का व्यक्तित्व छाया हुआ है।

जनरल द गॉल स्वय मे एक सस्था है, जिसने १६५८ में हुई रिक्तता को भरने के लिए शक्ति का अधिग्रहण किया अत. यह बताना वास्तव में कठिन है कि किसी अन्य राष्ट्रपति के अधीन सविधान किस प्रकार कार्य करेगा। इस प्रकार वह

संविधान में वर्णित शक्ति से कहीं अधिक शक्ति का उपयोग करता है। अल्जीरिया की क्रान्ति के पुनरुत्थान का नियन्त्रण करने के लिए अप्रेल १९६१ में उसने जिस ढंग से अपनी सार्वजनिक घोषणाएँ की उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचम गणतंत्र का संस्थापक होने की प्रतिष्ठा के बल पर ही वह कार्य करता है। केवल चार भूतपूर्व जनरलों को ही आदेश द्वारा उनके सम्मान (Legion of Honour) से वंचित नहीं किया गया वरन् अल्जीरिया की असफल सैनिक क्रान्ति से संबंधित सभी सैनिक अधिकारियों को बन्दी बनाकर उनके कार्यों के लिए दण्ड दिया गया।[27] फरवरी १९६१ में सूचना दी गई कि फ्रांसीसी रक्षातन्त्र में शीघ्र ही मौलिक परिवर्तन होने वाले हैं, परन्तु यदि ये परिवर्तन हुए भी हैं तो क्या हुए हैं इसका पता लगाने के कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी आधारभूत तथ्य यह है कि जब से जनरल द गॉल ने सत्ता सम्भाली है, राष्ट्रपति का सैनिक स्वरूप पहले की अपेक्षा अधिक प्रमुख बन गया है।

(III) न्यूज़ीलैण्ड

सामान्य संरचना :

न्यूज़ीलैण्ड के छोटे-छोटे द्वीपों की अपेक्षाकृत सरल रक्षा-समस्याओं का समाधान एक ऐसी रक्षा संरचना द्वारा किया जाता है जो न तो विस्तृत है और न ही जटिल। वहाँ एकात्मक प्रकार का रक्षा तन्त्र उपलब्ध है और रक्षामंत्री तीनों सेवाओं के लिए उत्तरदायी है। लगता है कि कैबिनेट की रक्षा समिति और प्रधानमंत्री के विभाग के अधीन कार्यरत 'रक्षा सचिवालय' समन्वय का कार्य करते हैं। सदैव की भाँति प्रधानमन्त्री ही रक्षा समिति का अध्यक्ष होता है और रक्षामंत्रालय स्वयं एक समन्वयकारक निकाय है।

रक्षा समिति :

१९३९[28] में एक रक्षापरिषद का गठन किया गया। आजकल इसे "रक्षा समिति" कहते हैं। महान्यायवादी, और रक्षा तथा विदेशी विभागों के मन्त्री इस सर्वोच्च नियत्रक निकाय के सदस्य होते हैं तथा प्रधानमन्त्री इसका अध्यक्ष होता है। जनतान्त्रिक प्रथा के अनुरूप, नौसेना, जनरल और वायु स्टाफ के अध्यक्ष तथा कोष और विदेश विभाग के सचिव "सलाहकार की हैसियत" से इस समिति की गोष्ठियों में उपस्थित होते हैं। रक्षा समिति का मुख्य कार्य 'ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों के साथ सहयोग और रक्षा के प्रश्नों तथा न्यूज़ीलैंड के राष्ट्रसंघ का सदस्य होने के कारण उत्पन्न सैनिक प्रश्नों" सहित रक्षा नीति और संगठन की निरन्तर समीक्षा करते रहना है।

---

२७ ११ मई १९६१ का Times of India देखिए

२८ राष्ट्रसंघ की मासुध वर्ष पुस्तिका

सेनाध्यक्षों की समिति :

सभी देशों की भाँति न्यूज़ीलैंड में भी इस समिति में तीनों सेवाओं के सेनाध्यक्ष होते हैं और इसका कार्य सरकार को रक्षा नीति और सामरिक प्रश्नों पर सलाह देना है। इसका अपना सचिवालय होता है और कार्यवाही नियोजन, गुप्त सूचना, सचार आदि में सम्बन्धित अनेक अन्तर-सेवा समितियाँ इसकी सहायता करती हैं। समन्वयन के लिए मुख्य प्रशासनिक अधिकारियों की एक समिति भी होती है। जिसमें तीनों में से प्रत्येक सेवा के वरिष्ठ कार्मिक और आपूर्ति अधिकारी होते हैं। कोष का एक प्रतिनिधि भी इसमें होता है। चिकित्सा सम्बन्धी व्यवस्था अथवा वस्त्रों का प्रावधान जैसे तदर्थ प्रश्नों पर विचार करने के लिए यह समिति बहुधा अपने को उप-समितियों में विभाजित कर लेती है।

रक्षा विज्ञान (नीति) समिति :

यद्यपि न्यूज़ीलैण्ड एक छोटा-सा देश है और उसके अत्यधिक वैज्ञानिक समस्याओं का सामना करने की सम्भावना भी कम ही है फिर भी वहाँ एक रक्षा विज्ञान (नीति) समिति है जिसमें सेनाध्यक्ष और वैज्ञानिक एव औद्योगिक अनुसधान विभाग का सचिव होते हैं। इस प्रकार न्यूज़ीलैण्ड में एक कार्यकारी समिति रक्षा विज्ञान सम्बन्धी कार्यवाही का मार्गदर्शन करती है। इस समिति में उपभोक्ता सेवाओं का प्रतिनिधित्व उनके सेनाध्यक्ष करते हैं। आधुनिक काल में रक्षा मामलों में विज्ञान का महत्त्व सर्वोपरि है और यह भी ध्यान देने की बात है कि न्यूज़ीलैण्ड में दो सलाहकार समितियाँ अर्थात् वैज्ञानिक अनुसधान सलाहकार समिति और रक्षा विज्ञान सलाहकार समिति हैं जो सेवाओं और सरकारी वैज्ञानिकों और सरकारी सदस्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यूनाइटेड किंगडम की भाँति सयुक्त नियोजन समिति और रक्षा विज्ञान योजना के नियोजन और कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी इसकी तकनीकी उपसमितियाँ रक्षा विज्ञान (नीति) समिति की सेवा करती हैं। सशस्त्र सेनाओं का एक वैज्ञानिक सलाहकार भी होता है जो अनुसधान कार्यों का समन्वयन एव निर्देशन करता है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसधान विभाग के अन्तर्गत एक नियमित रक्षा विज्ञान सचिवालय भी होता है।

सेवाओं की आवश्यकता के अनुरूप कार्य करने की प्रेरणा से पूर्ण वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं का दल तैयार करने के लिए न्यूज़ीलैण्ड रक्षा वैज्ञानिक कोर का गठन किया गया है। इसमें एक अल्पकालिक सेवा कमीशन के आधार पर ५ या ६ वर्ष के लिए तीनों सेवाओं के कर्मचारियों में से भरती की जाती है। चुने हुए व्यक्तियों को दो या तीन वर्ष के लिए स्नातकोत्तर अध्ययन करना पड़ता है और फिर वे रक्षा-आवश्यकता सम्बन्धी समस्याओं पर कार्य करते हैं। इस प्रकार न्यूज़ीलैण्ड नीति और विशेषज्ञ नियोजन के आधुनिकतम तन्त्र का उदाहरण प्रस्तुत करता है। सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिए यह नियोजन प्रत्येक अवस्था में वैज्ञानिक नियोजन से

यथेष्ट एवं उचित रीति से समन्वित रहना है। इस प्रकार अपने विशेषज्ञ नियोजन का मूल्य बढ़ाने के लिए सेनाध्यक्षों की समिति को निरन्तर नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधान की जानकारी मिलती रहती है।

(IV) दक्षिण अफ्रीका

संवैधानिक स्थिति :

दक्षिण अफ्रीका का संविधान एकात्मक है और उसकी संसद में एक ही सदन होता है। अतः संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया अथवा भारत के संघात्मक संविधानों की भाँति रक्षा के अवस्थान का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी जैसा कि सभी लिखित अथवा अलिखित संविधानों में होता है, रक्षा सेनाओं की सर्वोच्च कमान राज्याध्यक्ष को प्राप्त है। दक्षिण अफ्रीका अधिनियम १६०६ की धारा १७ के अनुसार "संघ के भीतर जल और स्थल सेनाओं की प्रमुख कमान राजा अथवा उसके प्रतिनिधि गवर्नर जनरल में निहित है।"[30]

सामान्य व्यवस्था :

पहले दक्षिण अफ्रीका संघ की रक्षा प्रणाली १६१२ के रक्षा अधिनियम संख्या १३ द्वारा निर्धारित की गई थी। समय-समय पर इस अधिनियम में संशोधन होते रहे, परन्तु रक्षा सेनाओं और रिजर्व के संगठन संबंधी आधारभूत संरचना अपरिवर्तित ही रही। उच्चतर रक्षातंत्र तो अधिनियम द्वारा निर्धारित नहीं किया गया है परन्तु इसमें रक्षा सेनाओं के गठन का वर्णन किया गया है कि स्थायी सेना किस प्रकार की होगी और नागरिक सेनाएँ तथा स्वयं-सेवी रिजर्व किस प्रकार इसकी कमी पूरी करेंगे। फिर भी अधिनियम द्वारा रक्षा परिषद के संगठन और कार्यों का निर्धारण किया गया है। १६३३ तक इसकी अध्यक्षता प्रधान मंत्री के स्थान पर रक्षा मंत्री करता था।[31]

समस्त सेनाओं पर सरकार के रक्षा विभाग का नियंत्रण होता है और इसका अध्यक्ष कैबिनेट स्तर का एक मंत्री–रक्षा मंत्री– होता है। अनेक समितियाँ जिनमें रक्षा परिषद् और सेना परिषद अधिक महत्त्वपूर्ण हैं मंत्री की सहायता करती हैं।

रक्षा परिषद :

१६१२ के रक्षा अधिनियम के अनुच्छेद २६ के अनुसार गवर्नर जनरल को समय-समय पर अपने द्वारा निर्धारित कार्य करने के लिए एक रक्षा परिषद स्थापित

---

३० जब से नया गणतंत्रीय संविधान लागू हुआ है 'राजा' का स्थान राष्ट्रपति ने ले लिया है।

३१ खेद है कि उच्चतरीय रक्षातंत्र संबंधी विस्तृत सूचना प्राप्त करना संभव नहीं हो सका है।

करने का अधिकार दिया गया था। १९१२ के अधिनियम की दूसरी सूची में परिषद का गठन इस प्रकार निर्धारित किया गया है :

(अ) रक्षामंत्री परिषद् का पदेन अध्यक्ष,
(आ) गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त ४ सदस्य, और
(इ) रक्षा सचिव परिषद् का सचिव होगा।

अधिनियम में घोषित परिषद् का मुख्य कार्य १९१२ के अधिनियम के प्रशासन संबंधी प्रस्तावों पर गवर्नर जनरल को सलाह देना था। अधिनियम ने गवर्नर जनरल द्वारा किए जाने को कुछ कार्य निर्धारित किए थे अतः रक्षामंत्री के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह संसद के सम्मुख "प्रत्येक वर्ष इसका प्रथम सत्र प्रारम्भ होने के चौदह दिन के भीतर-भीतर उससे पिछले वर्ष में गवर्नर जनरल द्वारा उन शक्तियों के प्रयोग के ढंग और उन पर रक्षा परिषद् द्वारा इच्छित संस्तुतियों के संबंध में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करे।" इससे सशस्त्र सेनाओं के संबंध में गवर्नर जनरल की शक्ति के प्रयोग पर संसदीय नियंत्रण के सिद्धान्त का प्रतिपादन होता है। अब गवर्नर जनरल का स्थान राष्ट्रपति ने ले लिया है।

सेना परिषद् :

१९३८ में इसका अस्तित्व था और शायद यह अब भी कार्यशील है। रक्षा मंत्री इसका अध्यक्ष होता है तथा जनरल स्टाफ का अध्यक्ष, अडजुटाट जनरल, क्वार्टर मास्टर जनरल, वायु सेना निदेशक और रक्षा सचिव इसके सदस्य होते हैं। जब नीति संबंधी महत्त्वपूर्ण विषयों पर रक्षामंत्री परामर्श प्राप्त करना आवश्यक समझता है तो परिषद् की बैठक होती है। सेना परिषद् के पास कार्यकारी शक्ति नहीं होती। वास्तव में दोनों निकाय मूलतः सलाहकार निकाय ही हैं।

यह स्पष्ट है कि दक्षिण अफ्रीका में स्थल सेना के मुख्य स्टाफ अधिकारियों वाली सेना परिषद ही सेना के नियोजन के लिए उत्तरदायी हो सकती है। इसका कारण यह है कि भारत की भाँति दक्षिण अफ्रीका के पास भी स्थल सेना ही मुख्य सशस्त्र सेना थी तथा नौसेना और वायु सेना अपेक्षाकृत छोटी सेवाएँ थीं। फिर भी १९३८ के पश्चात् अन्य दो सेवाओं के विकास के साथ सेनाध्यक्षों की समिति का जन्म होना आवश्यक ही था। दक्षिण अफ्रीका दक्षिण गोलार्द्ध के अपेक्षाकृत सुरक्षित कोने में स्थित है। अपनी इस भौगोलिक स्थिति के कारण उसके लिए बाह्य रक्षा की समस्या इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी आतरिक न्याय और व्यवस्था बनाए रखने की। सेना परिषद इस समस्या का सम्पूर्ण समाधान प्रस्तुत करती है। इसी कारण विशेषज्ञ सैन्य नियोजन में जनरल स्टाफ के अध्यक्ष की सर्वोच्च महत्ता है।

जनरल स्टाफ का अध्यक्ष :

जनरल स्टाफ का अध्यक्ष थल सेना का सबसे वरिष्ठ अधिकारी होता है, परन्तु वह प्रधान सेनापति की दुहरी भूमिका अदा नहीं करता। १९१२ के रक्षा

अधिनियम के अनुभाग ८१ के अनुसार प्रधान सेनापति की नियुक्ति केवल युद्धकाल मे ही की जाती है।[32] शान्तिकाल में जनरल स्टाफ का अध्यक्ष सेना परिषद की सलाह से नियोजन कार्य करता है। सर्वोपरि निरीक्षण का कार्य भी जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष करता है। परन्तु अनुशासन संबंधी मामले इकाइयो और प्रतिष्ठानो के अध्यक्षों पर छोड़ दिए जाते हैं।

---

३२ रक्षा अधिनियम १९१२, अनुभाग ८१ (१) "युद्धकाल में गवर्नर जनरल रक्षा सेनाओं के किसी भी अधिकारी को एक देश की सभी सेनाओं अथवा उनके किसी भाग का कमाण्डर नियुक्त कर सकता है।"

परिशिष्ट 'आ'

फ्रांस का राष्ट्रीय रक्षा संगठन देखिए पृ.

परिशिष्ट 'ग्र'

द्वितीय विश्वयुद्ध मे यू० के० सरकार का नियन्त्रण (देखिए पृ० १३६)

४
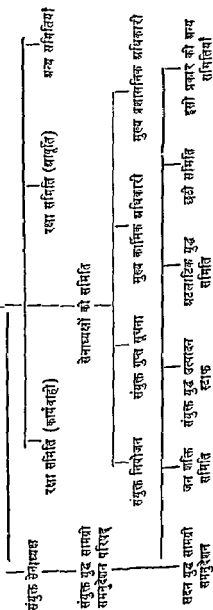
राष्ट्रमण्डल के संघीय राज्य

(I) कनाडा

कनाडा का संविधान संघीय है परन्तु केन्द्र को अवशिष्ट अधिकार क्षेत्र प्रदान करके यह सामान्य संघीय संविधानों से भिन्न हो जाता है।[1] संघ में शामिल विभिन्न प्रान्तों की विधान परिषदों के अतिरिक्त एक केन्द्रीय विधान परिषद् भी होने के कारण विधायिका शक्तियों का विभाजन आवश्यक हो जाता है। रक्षा और विदेशी मामले संघ में शामिल किसी एक प्रान्त के विषय न होकर सारे राज्य से सम्बन्धित होते हैं अत: उनके सम्बन्ध में केन्द्रीय संसद को एकछत्र अधिकार प्राप्त होता है। ब्रिटिश उत्तर अमरीका अधिनियम १८६७ के अनुभाग ९१ (७) के अनुसार "नागरिक सेना, स्थल सेना और नौसेना तथा रक्षा" के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार कनाडा की संसद को प्राप्त है। इस प्रकार केन्द्रीय संसद द्वारा राष्ट्रीय रक्षा सम्बन्धी अधिनियम बनाने तथा एक विभाग का निर्माण कर रक्षा मंत्री की नियुक्ति करने का प्रावधान किया गया है। राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम १९५०[2] ने स्थिति का आधुनिकीकरण कर दिया है। इस प्रकार उच्चतर रक्षा नीति और दक्ष सैनिक नियोजन का संगठन संसद के अधिनियम द्वारा निश्चित किया जाता है।

राष्ट्रीय रक्षा विभाग

रक्षा अधिनियम के अनुभाग ३ के अनुसार राष्ट्रीय रक्षा विभाग के नाम

---

१ संयुक्त राज्य का संविधान आदर्श संघीय संविधान है क्योंकि संविधान अविनाशी राज्यों के अविनाशी संघ का निर्माण करने वाली संधि का प्रतिनिधित्व करता है (Texas vs. White, 7, Wall 700) जिसके अनुसार अवशिष्ट अधिकार क्षेत्र राज्यों के पास ही रहता है और वे कुछ निश्चित परिगणित शक्तियाँ ही संघीय केन्द्र को प्रदान करते हैं। इस अर्थ में आस्ट्रेलिया भी वास्तविक संघ सिद्धान्त का पालन करता है, परन्तु कनाडा और भारत संघ में शामिल इकाइयों के बदले केन्द्र को अवशिष्ट अधिकार क्षेत्र प्रदान कर भिन्न हो जाते हैं। ब्रिटिश उत्तर अमरीका अधिनियम १८६७ का अनुभाग ९१, और भारतीय संविधान अधिनियम १९५० का अनुभाग २८४(१) देखिए। अमरीका में अवशिष्ट विधायिका शक्ति राज्यों के पास रहती है, अमरीका का संविधान, अनु० ७७ (कनाडा संघ का स्वतन्त्र आदेश, १९५७)।

२ १४ Geo VI, C ४३,

से कनाडा सरकार का एक विभाग स्थापित किया गया है, राष्ट्रीय रक्षामंत्री इस विभाग की अध्यक्षता करता है जिसकी नियुक्ति वर्तमान काल के लिए महान सील के अधीन आयोग प्राप्त गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है। राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम १९५० के अनुभाग ४ में निश्चित किया गया है कि "कनाडियन सेनाओं, रक्षा अनुसंधान परिषद् और शत्रु की कार्यवाही" का प्रतिरोध करने के लिए नागरिक सुरक्षा की तैयारी सहित राष्ट्रीय रक्षा सम्बन्धी सभी मामलों की व्यवस्था और नियन्त्रण मंत्री के हाथ में होगा।[3] अधिनियम में गवर्नर जनरल के द्वारा राष्ट्रीय रक्षा के एक उपमंत्री और एक सहयोगी मंत्री की नियुक्ति का भी प्रावधान है। आपात्कालीन स्थिति में राष्ट्रीय रक्षा के अधिकतम तीन अतिरिक्त मंत्रियों और तीन सहयोगी मंत्रियों की नियुक्ति का अधिकार भी गवर्नर जनरल को प्राप्त है।[4] साथ ही ऐसे आपात्काल में प्रत्येक अतिरिक्त मंत्री अथवा सहयोगी मंत्री के लिए एक-एक अतिरिक्त उपमन्त्री की नियुक्ति भी की जा सकती है।

राष्ट्रीय रक्षा विभाग की यह सामान्य मंत्रीस्तरीय संरचना है, इसकी धारणा एक एकात्मक संगठन के रूप में की गई है और इसमें तीनों सेवाओं की आवश्यकता पूर्ति हेतु तीन अलग-अलग सेवा मन्त्रियों का प्रावधान नहीं है। फिर भी आपात्कालीन स्थिति में सेवाओं का विस्तार होने के फलस्वरूप कार्यभार बढ़ जाने पर राष्ट्रीय रक्षा के तीन अन्य मंत्रियों और उनकी सहायता के लिए उप और सहयोगी मंत्रियों की कल्पना भी की गई है। परन्तु ऐसा केवल आपात्काल में ही सम्भव है। सामान्यतः राष्ट्रीय रक्षा का एक मंत्री और एक उपमन्त्री होगा।[5]

रक्षा संगठन के आस्ट्रेलियाई संघीय प्रकार से बिल्कुल भिन्न कनाडा रक्षा के एक ही संगठन में एकीकरण और समन्वयन पर बल देता है। ३१ मार्च १९५१ को समाप्त वित्तीय वर्ष के राष्ट्रीय रक्षा विभाग के प्रतिवेदन में यह स्पष्ट किया गया है कि १९४६ से राष्ट्रीय रक्षा विभाग में एक 'मूक क्रान्ति' हो रही है जिसके फल समय बीतने के साथ-साथ अधिकाधिक स्पष्ट होते जा रहे थे। "एकीकरण और समन्वयन की एक प्रक्रिया चलती रही है जिसकी स्वाभाविक रूप से अधिक धूमधाम तो नहीं रही परन्तु इसके परिणामों का प्रत्येक स्तर पर और प्रत्येक

---

३ जहाँ तक "नागरिक सुरक्षा की तैयारी" का प्रश्न है कौन्सिल के आदेश के अधीन इसका उत्तरदायित्व राष्ट्रीय स्वास्थ्य और कल्याण मन्त्री को हस्तांतरित कर दिया गया है। शायद इस परिवर्तन को दर्शाने के लिए राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम में संशोधन करना पड़ेगा।

४ राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम, १९५० के अनुभाग ६१ (अ) और (आ)

५ राष्ट्रीय रक्षा विभाग की "सामान्य संरचना" में राष्ट्रीय रक्षा का एक मन्त्री और एक उपमन्त्री सम्मिलित हैं। यद्यपि राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम में शान्तिकाल में राष्ट्रीय रक्षा के एक सहयोगी मंत्री का भी प्रावधान है परन्तु अभी तक इस पद पर केवल एक ही व्यक्ति नियुक्त हुआ है और वह भी मन्त्री बनने से पहले कुछ ही महीने तक इस पर रहा।

निदेशालय पर दूरगामी प्रभाव हुआ है।"[6] इस प्रकार रक्षा सम्बन्धी सभी मामलों के लिए पूर्णतः उत्तरदायी एक ही मन्त्री के अधीन रक्षा विभाग निम्नलिखित सूत्रों पर आधारित एक सुनिश्चित नीति का पालन करता रहा है :—

(१) सर्वसम्मत सामरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक एकीकृत रक्षा योजना की स्वीकृति;
(२) एक रक्षा बजट जिसके अधीन योजनानुसार कोष और साधनों का बटवारा होगा;
(३) सेवाओं की द्विनीयावृत्ति का समापन;
(४) स्थिर और न्यायसंगत कार्मिक नीतियाँ; और
(५) रक्षा आवश्यकताओं के लिए रक्षा अनुसंधान और दूसरे सरकारी विभागों और उद्योगों के साथ निकट समन्वयन पर बल।

१९४६ में ओटावा में एक राष्ट्रीय रक्षा मुख्यालय की स्थापना हो जाने पर तीनों विभागों के एकीकरण और तीनों सेवाओं के समन्वयन का कार्य पूरे उत्साह से आरम्भ किया गया। आगे के पृष्ठों में तीनों सेवाओं की संरचना का वर्णन करने और राष्ट्रीय रक्षा विभाग में इनके सम्बन्ध की व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। संगठनात्मक व्यवस्था इस अध्याय के परिशिष्ट 'अ' में (देखिए पृ० १८३) स्पष्ट की गई है। कनाडी संरचना का विशिष्ट लक्षण यह है कि एक मंत्री के निदेशन में तीनों सेवाओं के अध्यक्ष अपनी-अपनी सेवा की समान सम्मान्ते हैं। कोई प्रधान सेनापति तो नहीं होता परन्तु प्रत्येक सेवा का सेनाध्यक्ष उस सेवा का प्रधान माना जाता है। कनाडा के रक्षातन्त्र का निर्माण करने वाले मुख्य राजनीतिक और सैनिक अवयवों का नीचे वर्णन किया गया है।

रक्षा नीति नियोजन का राजनीतिक तन्त्र तथा दल सैनिक और वैज्ञानिक नियोजन से इसका सम्बन्ध :

कैबिनेट रक्षा समिति :

अन्तिम विश्लेषण में हम पाते हैं कि कनाडा के रक्षा प्रयत्न का नियमन करने वाली नीति के लिए संसद और जनता के प्रति उत्तरदायी वरिष्ठ एजेन्सी कैबिनेट है। रक्षा सम्बन्धी विविध और जटिल नीति समस्याओं पर प्रभावी विचार विमर्श करने के लिए यह एक बहुत बड़ा निकाय है अतः कार्यकुशलता और शीघ्र कार्यवाही की दृष्टि से आवश्यक रूप से सैनिक स्वभाव के रक्षा प्रश्नों पर कैबिनेट रक्षा समिति नामक एक छोटा और सुगठित निकाय विचार करता है।

कैबिनेट रक्षा समिति का प्राथमिक विचारार्थ विषय रक्षा प्रश्नों पर विचार करना और तीनों सेवाओं की भरती और रख-रखाव सम्बन्धी नीति के मुख्य विषयों में कैबिनेट को प्रतिवेदन प्रस्तुत करना है। प्रधानमन्त्री इसकी अध्यक्षता करता है

६ ३१ मार्च १९५१ को समाप्त वित्तीय वर्ष का राष्ट्रीय रक्षा विभाग का प्रतिवेदन, ओटावा, पृष्ठ ६

और राष्ट्रीय रक्षामन्त्री इसका उपाध्यक्ष होता है। विदेशमन्त्री, वित्तमंत्री, रक्षा उत्पादन मंत्री, राष्ट्रीय स्वास्थ्य और कल्याण एवं न्याय मंत्री कैबिनेट रक्षा समिति के अन्य सदस्य होते हैं। निम्नलिखित अधिकारी सलाहकार के रूप में नियमित रूप से इसकी गोष्ठियों में उपस्थित होते हैं : सेनाध्यक्षों की समिति का प्रमुख, तीनों सशस्त्र सेनाओं के सेनाध्यक्ष, रक्षा अनुसंधान परिषद का प्रमुख, राष्ट्रीय रक्षा, वित्त और रक्षा उत्पादन के उपमन्त्री, विदेश मंत्रालय में अवर सचिव और कैबिनेट सचिव। इस प्रकार वास्तव में सरकार के सभी विभागों में रक्षा नीति सम्बन्धी मुख्य विषयों में समन्वयन का सर्वोच्च अवयव कैबिनेट रक्षा समिति ही है।

रक्षा परिषद् :

कनाडा की रक्षा सेनाओं पर राष्ट्रीय रक्षामंत्री का सामान्य नियन्त्रण है, प्रशासनिक मामलों में रक्षा परिषद् तथा सामरिक, कार्यवाही और प्रशिक्षण के मामलों में सेनाध्यक्ष उसे परामर्श देकर उसकी सहायता करते हैं। रक्षा परिषद् में राष्ट्रीय रक्षामंत्री, उसका संसदीय सहायक, राष्ट्रीय रक्षा का उपमंत्री और सहायक उपमन्त्री, सेनाध्यक्षों का प्रमुख, सशस्त्र सेवाओं के सेनाध्यक्ष और रक्षा अनुसंधान परिषद् के अध्यक्ष होते हैं। राष्ट्रीय रक्षामन्त्री इसका अध्यक्ष होता है।

रक्षा परिषद् का कार्य सारे विभाग को प्रभावित करने वाले अन्तर-सेवा प्रशासनिक मामलों में मंत्री को परामर्श देना है। गैरकार्यवाही सम्बन्धी मामलों में यह मन्त्री को परामर्श देती है। यह सेनाध्यक्षों की समिति से भिन्न है जो राष्ट्रीय रक्षामन्त्री और कैबिनेट रक्षा समिति को सैनिक योजनाओं और सामरिक मूल्यांकन के संदर्भ में रक्षा नीति के सम्बन्ध में परामर्श देती है।

सेनाध्यक्षों का सगठन :

(अ) सेनाध्यक्षों (की समिति) का प्रमुख

१९५१ तक सेनाध्यक्षों (की समिति) का कोई स्थायी प्रमुख नहीं होता था। इसके पूर्व वरिष्ठ सदस्य द्वारा इसकी अध्यक्षता करने की प्रथा थी। फिर भी १ फरवरी १९५१ के आदेश के अनुसार लेफ्टीनेंट जनरल (अब जनरल) चार्ल्स फौल्क्स (Charles Foulkes) को सेनाध्यक्षों (की समिति) का प्रमुख नियुक्त किया गया। मन्त्री द्वारा नियमों और निदेशों के अधीन सेनाध्यक्षों (की समिति) के प्रमुख के निम्न लिखित कार्य हैं :—

(अ) सेनाध्यक्षों और मन्त्री द्वारा मनोनीत सदस्यों की समिति की अध्यक्षता करना;

(आ) कनाडा की सेनाओं के प्रशिक्षण और कार्यवाही का समन्वयन करना;

(इ) मन्त्री द्वारा निर्दिष्ट अन्य कार्य करना ; और

(ई) उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन (NATO) के सैनिक प्रतिनिधि के रूप में कार्य करना और तत्सम्बन्धी सभी सैनिक मामलों के समन्वयन के लिए उत्तरदायी होना।

कनाडा के सेनाध्यक्षों (की समिति) के स्थायी प्रमुख की नियुक्ति करने का उद्देश्य यह है कि निर्णय लेने और संस्तुति करने से पूर्व रक्षा नीति तथा संयुक्त रक्षा सम्बन्धी सभी मामलों का समन्वयन कर लिया जाए। इसके साथ ही सेनाध्यक्षों (की समिति) का प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक गोष्ठियों में कनाडा का प्रतिनिधित्व करता है। विशुद्ध गुणों के आधार पर चुने हुए सेवा अधिकारी को ही इस पद पर नियुक्ति की जाती है। इस नियुक्ति के लिए व्यापक सैनिक अनुभव के अधिकारी की आवश्यकता होती है। साथ ही उसके कार्य ऐसे हैं कि सेनाध्यक्षों के सामने आने वाली किसी भी सैनिक समस्या पर विचार-विमर्श करके सहमति प्राप्त करने के लिए उसका चतुर, धैर्यवान और विवेकशील होना भी आवश्यक है। १९५१ के राष्ट्रीय रक्षा प्रतिवेदन में कहा गया है कि इससे "वर्तमान सेनाध्यक्षों के सचिवालय और संयुक्त स्टाफ संगठन को और अधिक विस्तृत निर्देशन प्राप्त होगा।"

(आ) सेनाध्यक्ष :

राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम १९५०[7] के अनुसार सेवाओं के सेनाध्यक्ष के पद का निर्माण किया गया था। अपनी परिषद की सहायता से गवर्नर जनरल को नौसेनाध्यक्ष, जनरल स्टाफ के अध्यक्ष और वायु सेनाध्यक्ष के पद पर एक-एक अधिकारी को "जैसा वह उचित समझे उसी पद-स्तर पर" नियुक्त करने का अधिकार है। ये सेनाध्यक्ष 'मंत्री के निदेशन' के अधीन हैं और अपनी-अपनी सेवाओं के "नियंत्रण और प्रशासन के लिए उत्तरदायी" हैं। यह महत्वपूर्ण है कि सेनाध्यक्षों को "कनाडा सरकार अथवा मंत्री के निर्णयों को प्रभावी बनाना और उनके निदेशों पर व्यवहार करना पड़ता है।" इस प्रकार अन्य लोकतंत्रीय देशों में जहाँ यह केवल एक सर्वसम्मत प्रथा है, कनाडा में इसके लिए सर्वाधिक निर्देश है कि सरकार के निर्णय "परिस्थिति के अनुसार नौसेनाध्यक्ष, जनरल स्टाफ के अध्यक्ष और वायु सेनाध्यक्ष द्वारा अथवा उनके माध्यम से जारी किए जाएँगे।"

(इ) सेनाध्यक्षों की समिति :

सेनाध्यक्षों की समिति सामूहिक रूप से सरकार की व्यावसायिक सैनिक सलाहकार समिति है। समिति का विचारार्थ विषय रक्षा नीति सम्बन्धी मामलों में राष्ट्रीय रक्षामंत्री और कैबिनेट रक्षा समिति को परामर्श देना तथा सैनिक योजनाएँ एवं सामरिक मूल्यांकन तैयार करना है। एक ही रक्षा नीति के पालन में सशस्त्र सेनाओं के प्रयत्नों के समन्वयन तथा संयुक्त सेवा संगठनों, प्रतिष्ठानों और कार्यवाही के समग्र नीति निर्देशन के लिए यह समिति उत्तरदायी है।

सामान्यतः सेनाध्यक्षों की समिति की गोष्ठियाँ इसके प्रमुख की अध्यक्षता में होती हैं, परन्तु राष्ट्रीय रक्षामंत्री अथवा सेनाध्यक्षों की इच्छानुसार राष्ट्रीय

---

7 अनुभाग १२

रक्षामंत्री की अध्यक्षता में भी गोष्ठी बुलाई जा सकती है। सेनाध्यक्षों की समिति में स्थायी प्रमुख, तीनों सशस्त्र सेनाओं में से प्रत्येक का सेनाध्यक्ष और रक्षा अनुसंधान परिषद का प्रमुख होता है। राष्ट्रीय रक्षा उपमंत्री सामान्यतः सेनाध्यक्षों की समिति की सभी गोष्ठियों में उपस्थित रहता है और जब विशुद्ध सैनिक महत्त्व के अतिरिक्त मामलों पर विचार-विमर्श किया जाता है तो कैबिनेट का सचिव और विदेश विभाग का अवर सचिव भी गोष्ठियों में शामिल होते हैं। राज्य की संरचना में सेनाध्यक्षों की समिति की स्थिति अन्य लोकतन्त्रीय देशों जैसी ही है। सेनाध्यक्ष सरकार के व्यावसायिक सैनिक सलाहकार हैं, वे किसी भी समिति में सरकार के सदस्य के रूप में न तो भाग ले सकते हैं और न ही मतदान कर सकते हैं। इसका यह अर्थ है कि जब तक व्यक्ति वर्दी धारण किए रहता है तब तक वह कनाडा में कैबिनेट स्तर तक नहीं उठ सकता क्योंकि इससे मतदाताओं के प्रति संवैधानिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त भंग होता है।

(ई) संयुक्त स्टाफ संगठन :

इस बात का निश्चय करने के लिए कि रक्षा के सभी पहलुओं पर विचार विमर्श किया जाए आवश्यकता होने पर सरकार के अन्य विभागों के सदस्य सेनाध्यक्षों के संगठन की सेवा करने वाली संयुक्त समितियों और संयुक्त स्टाफ के या तो सदस्य बना लिए जाते हैं अथवा उनका सहवरण कर लिया जाता है। कैबिनेट सचिवालय और रक्षा विभाग के मध्य घनिष्ठ सम्पर्क बना रहता है। सेनाध्यक्षों की समिति का सचिव कैबिनेट की रक्षा समिति का सचिव भी होता है और राष्ट्रीय रक्षा विभाग कैबिनेट सचिवालय में कार्य करने के लिए सेवा अधिकारी प्रस्तुत करता है। अनेक अन्य देशों में भी यही प्रथा प्रचलित है।

विस्तृत सैनिक नियोजन के लिए नीति का समन्वयन करने के लिए सेनाध्यक्षों का संगठन सरकारी स्तर पर मुख्य साधन है, और यही इस प्रकार के नियोजन में वैज्ञानिक पहलुओं के एकीकरण में सहायक होता है।

एकीकरण की नीति :

सेनाध्यक्षों के संगठन के विचाराधीन रक्षा विषयों से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के प्रयत्न का पूर्ण एकीकरण संयुक्त स्टाफ संगठन द्वारा किया जाता है। अधिकाधिक समन्वय प्राप्त करने और राष्ट्रीय रक्षा विभाग में विशेषरूप से चिकित्सा, प्रशासन और आपूर्ति क्षेत्रों में जहाँ कहीं सम्भव हो, एकीकरण की घोषित नीति और योजना के अनुसार अनेक संयुक्त निकाय बनाए गए हैं।

(अ) कनाडी सेना की चिकित्सा परिषद :

जुलाई १६३३ में कौंसिल के आदेश के अधीन कनाडी सेना की चिकित्सा परिषद् का गठन किया गया। इसका कार्य और उत्तरदायित्व कनाडी सेनाओं को चिकित्सा और परिचारिका सेवाओं के उचित एकीकरण और समन्वयन के लिए राष्ट्रीय रक्षामन्त्री से संस्तुति करना तथा कनाडी सेनाओं के स्वास्थ्य और चिकित्सा

सम्बन्धी देखभाल के सभी मामलों में चिकित्सा और परिचारिका नीति का निर्माण करना है। परिषद का अध्यक्ष कनाडी चिकित्सा व्यवसाय का एक प्रतिष्ठित योग्यता, अनुभव, क्षमता और ख्याति वाला नागरिक सदस्य होता है आपातकालीन स्थिति में चिकित्सा परिषद् के कार्य को सरल बनाने के लिए आवश्यकतानुसार उसे तीनों सेवाओं में से प्रत्येक में उचित पद पर नियुक्त किया जा सकता है। अंश-कालिक क्षमता में कार्य करने वाले तीन और असैनिक (चिकित्सक) होते हैं जिनमें से प्रत्येक कनाडी चिकित्सा व्यवसाय में प्रतिष्ठित हैसियत का व्यक्ति होता है, शाही कनाडी नौसेना का चिकित्सा महानिदेशक, चिकित्सा सेवा (स्थल सेना) का महा-निदेशक, चिकित्सा सेवाओं (वायुसेना) का निदेशक, और परिषद् का सचिव जिस पर पर्याप्त उत्तरदायित्व होता है और जो परिषद और सेनाध्यक्षों की समिति के प्रमुख के मध्य व्यावहारिक कड़ी होता है, इसके सदस्य होते हैं। कनाडी सेना की परिचारिका सेवाओं का निदेशक जिसे मत देने का अधिकार नहीं होता, सहायक सदस्य होता है और जब परिचारिका सेवाओं सम्बन्धी मामलों पर विचार-विमर्श होता है तो वह परिषद् को उपलब्ध रहता है। परिषद् का अध्यक्ष सेनाध्यक्षों की समिति के प्रमुख के प्रति सीधा उत्तरदायी होता है और कनाडी सेनाओं के स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी देखभाल के सभी मामलों में परिषद की ओर से उसे परामर्श देता है। वह सेनाध्यक्षों की समिति के प्रत्येक सदस्य से सीधा मिल सकता है और जब कनाडी सेनाओं की स्वास्थ्य, चिकित्सा और परिचारिका नीतियों को प्रभावित करने वाले मामलों पर विचार-विमर्श होता है तो रक्षा परिषद्, सेनाध्यक्षों की समिति, कार्मिक सदस्य समिति और कनाडी सेनाओं की किसी अन्य समिति की गोष्ठियों में भाग लेने का भी उसे अधिकार है।

(आ) कार्मिक सदस्य समिति :

कार्मिक सदस्य समिति के गठन का उद्देश्य यह है कि जहाँ तक सम्भव हो तीनों सेवाओं के कर्मचारी वर्ग को एक समान नियमों से नियंत्रित किया जाय। यह कर्मचारियों, चिकित्सा सेवाओं, वेतन, पेंशन तथा अन्य सम्बन्धित मामलों तथा भरती करके नाम दर्ज करने की विदेश नीति के संयुक्त प्रशासन सम्बन्धी नीति पर विचार करती है। इन कार्यों के सम्बन्ध में ब्यौरों पर विचार सामान्यतः इस कार्य के लिए गठित उपसमितियों में होता है और वे कार्मिक सदस्य समिति के सम्मुख प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं। नौसेना कर्मचारियों का अध्यक्ष, अडजुटाट जनरल (स्थल सेना), वायु सेना कर्मचारियों का सदस्य, रक्षा अनुसंधान परिषद का एक प्रतिनिधि तथा प्रशासन और वित्त के सहायक उपमंत्री कार्मिक सदस्य समिति के सदस्य होते हैं।

(इ) प्रमुख आपूर्ति अधिकारी समिति :

प्रमुख आपूर्ति अधिकारियों की समिति का उद्देश्य आपूर्ति और साज सामान का समन्वयन और एकीकरण करना है। प्रत्येक सशस्त्र सेवा से एक-एक प्रमुख

आपूर्ति अधिकारी, रक्षा अनुसंधान परिषद् का एक प्रतिनिधि और आवश्यकताओं का सहायक उपमंत्री इसके सदस्य होते हैं।

रक्षा अनुसंधान परिषद :

पिछले युद्धकाल मे राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद् कनाडी सशस्त्र सेनाओं की प्रमुख अनुसंधान एजेन्सी थी, इसके साथ ही सशस्त्र सेनाओं ने कार्यकारी आधार पर अपने-अपने मूल्यवान अनुसंधान केन्द्र भी स्थापित कर रखे थे। युद्ध की समाप्ति पर राष्ट्रीय रक्षा परिषद् अपने शान्तिकालीन अनुसंधान कार्यों मे व्यस्त हो गई और राष्ट्रीय रक्षा के आवश्यक अंग के रूप मे रक्षा अनुसंधान परिषद् नामक एक और संगठन स्थापित किया गया।

राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम[8] के अनुसार राष्ट्रीय रक्षामन्त्री को रक्षा अनुसंधान परिषद् की व्यवस्था और नियंत्रण करने का कार्य सौंपा गया है। इसका गठन अनुभाग ५३ मे वर्णित किया गया है। इसका मुख्य कार्य "इसकी राय मे राष्ट्रीय रक्षा को प्रभावित करने वाले वैज्ञानिक, तकनीकी तथा अनुसंधान और विकास के अन्य सभी मामलो मे" मंत्री को परामर्श देना है। रक्षा अनुसंधान परिषद मे एक अध्यक्ष, गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त दो उपाध्यक्ष, नौसेनाध्यक्ष, वायुसेनाध्यक्ष, जनरल स्टाफ का अध्यक्ष, राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद का प्रमुख, रक्षा उत्पादन विभाग का एक प्रतिनिधि तथा राष्ट्रीय रक्षा का उपमंत्री होते हैं।

"विश्वविद्यालयों, उद्योगों तथा अन्य अनुसंधान-हितों जिन्हें गवर्नर जनरल उचित समझे" का प्रतिनिधित्व करने वाले अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति का भी प्रावधान किया गया है। इस प्रकार वैज्ञानिक और तकनीकी योग्यताओं के आधार पर गवर्नर जनरल द्वारा छह सदस्य नियुक्त किए जाते हैं। इस संगठन का मुख्यालय स्टाफ, सलाहकार समिति और क्षेत्रीय अनुसंधान स्टेशन होते हैं।

रक्षा अनुसंधान परिषद एक बड़े महत्त्व की संस्था है और इसे कनाडा की रक्षा के लिए आवश्यक "चौथी सेवा" कहा जाता है। इसका मूलभूत उद्देश्य सशस्त्र सेनाओं की वैज्ञानिक आवश्यकताओं का बाहर फैले वैज्ञानिक निकायों के अनुसंधान कार्यों से तालमेल बैठाना है। उपभोक्ता सेवाओं से बराबर परामर्श किया जाता है और उनका दल वैज्ञानिकों से निकट सम्बन्ध स्थापित कराया जाता है। उच्चतम स्तर पर समन्वयन मे सहायता करने के लिए परिषद के प्रधान को सेनाध्यक्ष का दर्जा प्राप्त होता है और वह सेनाध्यक्षों की समिति और रक्षा परिषद का सदस्य होता है।

इस प्रकार कनाडी रक्षातंत्र अनेक कार्यकारी निकायों में एक दूसरे के साथ सहयोग करने वाले राजनीतिज्ञ, वर्दीधारी व्यक्ति, वैज्ञानिक तथा अन्य असैनिक अधिकारियों के सुन्दर सामंजस्य का प्रतिनिधित्व करता है जिनके शीर्ष पर

---

८ १९५० अनु० ४

तत्कालीन सरकार की योजनाओं और नीति निर्धारण में सहयोग देने के लिए कैबिनेट की रक्षा समिति होती है।

(II) आस्ट्रेलिया :

आस्ट्रेलिया का संघीय संविधान सच्चे अर्थों में संघीय प्रकार का है क्योंकि इसमें केन्द्र को परिभाषित शक्तियाँ दी गई हैं और अवशिष्ट न्यायाधिकार क्षेत्र राज्यों के पास होता है। चाहे संघीय केन्द्र सबल हो अथवा निर्बल 'रक्षा' सदा ही केन्द्रीय विषय होता है। अतः संयुक्त राज्य, कनाडा, अथवा भारत की भाँति आस्ट्रेलिया में भी राज्याध्यक्ष को सशस्त्र सेनाओं की सर्वोच्च कमान प्राप्त होती है, और रक्षा का विषय संघीय संसद की विधायिका क्षमता में आता है। राज्यों को कोई भी अवशिष्ट रक्षा शक्ति प्राप्त नहीं होती। आस्ट्रेलिया राष्ट्रमण्डल संविधान अधिनियम १६०० के अनुभाग ६८ के अनुसार "स्थल और नौसेना की मुख्य कमान महारानी के प्रतिनिधि गवर्नर जनरल में निहित होती है"। पुनः अनुभाग ५१ (६) में कहा गया है कि "राष्ट्र-मण्डल की नौसेना और स्थल सेना द्वारा रक्षा" के विषय में कानून बनाने का अधिकार केवल केन्द्रीय संघीय संसद को प्राप्त है।

रक्षा के उच्चतर अवयव

रक्षा परिषद और कैबिनेट :

रक्षा-नीति निर्धारण के लिए कैबिनेट उत्तरदायी है। रक्षा अधिनियम १६०३-५१ [६] के अधीन गठित एक विशिनिर्दिष्ट निकाय—रक्षा परिषद्—इसकी सहायता करता है। अधिनियम में इसके गठन, शक्तियों और कार्यों को निर्दिष्ट न कर समय-समय पर इनका निर्धारण पूर्णतः गवर्नर जनरल पर छोड़ दिया गया है। ऐसा लगता है कि परिषद का मुख्य कार्य प्रधानमंत्री अथवा रक्षामंत्री द्वारा पेश किए जाने वाले रक्षा नीति और संगठन के प्रश्नों पर परामर्श देना है। आजकल परिषद में निम्नलिखित सदस्य हैं :—

(१) प्रधानमंत्री
(२) कोषाध्यक्ष
(३) रक्षामंत्री
(४) विदेशमंत्री
(५) नौसेनामंत्री
(६) स्थल सेना मंत्री

---

६ रक्षा अधिनियम १६०३-५१ का अनुभाग ११":

"(१) गवर्नर जनरल निर्दिष्ट शक्ति और कार्यों वाली एक रक्षा परिषद गठित कर सकता है।
(२) स्थल सेनाओं के प्रशासन के लिए गवर्नर जनरल एक सेना परिषद गठित कर सकता है।
(३) सेना परिषद के कार्य और शक्तियाँ निर्दिष्ट होंगी"

(७) वायुसेना मंत्री
(८) राष्ट्रीय विकास मंत्री
(९) आपूर्ति मंत्री
(१०) सीनेट में सरकार का नेता
(११) रक्षा विभाग का सचिव
(१२) नौसेनाध्यक्ष
(१३) जनरल स्टाफ का अध्यक्ष
(१४) वायु सेनाध्यक्ष

यद्यपि आरम्भ में रक्षा परिषद् की सीमित शक्तियों और कार्यों के साथ धारणा की गई थी, पर यह यूनाइटेड किंगडम में कैबिनेट की रक्षा समिति जैसी ही भूमिका अदा करती है। अतः यह राज्य के रक्षातन्त्र के शीर्ष पर आती है परन्तु हाल के वर्षों में इसकी बैठक नहीं बुलाई गई है। इसके बदले उन रक्षा मामलों पर जिन पर सारी कैबिनेट के निर्णय की आवश्यकता नहीं होती, विचार करने के लिए रक्षा तैयारी समिति नाम से कैबिनेट की एक उपसमिति गठित की गई है। आवश्यकता होने पर सेनाध्यक्ष और दूसरे अधिकारी इसकी बैठक में शामिल होते हैं।

रक्षा विभाग :

रक्षामंत्री के पास एक नियमित विभागीय संगठन होता है और एक रक्षा सचिव उसके अधीन होता है। रक्षा विभाग के अधीन अनेक समितियों की सहायता से नीति नियोजन का दल सैनिक नियोजकों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इनमें से दो समितियाँ अन्य देशों में पाई जाने वाली सेनाध्यक्षों की समिति की ही प्रतिमूर्ति होती हैं। आस्ट्रेलिया में जिस समिति के तीनों सेनाध्यक्ष सदस्य होते हैं उसके अध्यक्ष के रूप में रक्षासचिव को विशिष्ट कार्य करना पड़ता है।

कैबिनेट और रक्षा परिषद की सत्ता के अधीन मंत्री और रक्षा विभाग निम्न लिखित कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं[10] : (१) रक्षा सेनाओं और उनकी आवश्यकताओं जिनमें (अ) ब्रिटिश राष्ट्रमंडल क्षेत्रीय रक्षा तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र के रक्षा पक्ष में सहकार, (आ) उत्पादन कार्यक्रमों और क्षमता की समीक्षा सहित रक्षा नीति का आपूर्ति पक्ष (इ) रक्षा नीति का वैज्ञानिक पक्ष और (ई) रक्षा नीति की वित्तीय आवश्यकताएँ और उपलब्ध कोष के आवंटन सम्बन्धी एकीकृत रक्षा नीति का निर्माण और इस पर सामान्य व्यवहार कराना।

(२) युद्धविराम और शान्ति की शर्तों, नियंत्रक आयोगों और अधिकार करने वाली सेनाओं का रक्षा पक्ष।

---

१० १९५९ की आस्ट्रेलिया राष्ट्रमण्डल वर्ष पुस्तिका सं ३८ पृ० ३६ रक्षा

(३) नीति या सिद्धान्त संबंधी विषय और संयुक्त सेवा अथवा अन्तर विभागीय रक्षा पक्ष संबंधी महत्वपूर्ण प्रश्न।

(४) उच्चतर रक्षातंत्र, संयुक्त सेवा तंत्र का नियंत्रण और रक्षा परिषद् का सचिवालय।

(५) (अ) ब्रिटिश राष्ट्रमंडल रक्षा में सहकार, (आ) संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र के अधीन उत्तरदायित्वों सहित क्षेत्रीय सुरक्षा में सहकार, (इ) युद्ध में उच्चतर निर्देशन और (ई) सेवाओं का उच्चतर निर्देशन के संगठन और तत्र संबंधी प्रश्नों का रक्षा पक्ष।

(६) राष्ट्रमण्डल युद्धपुस्तक (Commonwealth War Book) जो विभागीय युद्ध-पुस्तकों में विकसित आपात्कालीन राष्ट्रीय योजनाओं का सार-संक्षेप है।

(७) संयुक्त गुप्त-सूचनातंत्र जैसे अन्तर-सेवा संगठनों का प्रशासन।

(८) सशस्त्र सेनाओं के संगठन और शक्ति का रक्षा पक्ष, सेवाओं में उच्चतर नियुक्तियाँ, सम्मान और उपाधियाँ।

(९) नागरिक रक्षा के सैनिक पक्ष पर परामर्श।

रक्षा मंत्रालय के अधीन दक्ष सैनिक नियोजन :

रक्षा विभाग के इन कार्यों में समितियों की सहायता से पूरे किए जाने वाले रक्षा नियोजन के समन्वयन का सर्वोच्च कार्य शामिल है। रक्षा समिति, सेनाध्यक्षों की समिति और संयुक्त युद्ध उत्पादन समिति इनमें अधिक महत्त्वपूर्ण समितियाँ हैं।

रक्षा समिति एक विधिसम्मत निकाय है जिसमें तीनों सेवाओं के सेनाध्यक्ष होते हैं और रक्षा विभाग का सचिव इसका अध्यक्ष होता है। अभी हाल ही में कोष, प्रधानमन्त्री के विभाग और विदेश विभाग के सचिव भी इसके सदस्य बना दिए गए हैं। साथ ही अन्य विभागों यथा आपूर्ति और रक्षा उत्पादन के प्रतिनिधियों और दक्ष परामर्शदाताओं यथा रक्षा वैज्ञानिक परामर्शदाता का आवश्यकतानुसार सहवरण कर लिया जाता है।

इसका कार्य समग्र रूप से रक्षा नीति और संयुक्त सेवा और अन्तर–विभागीय रक्षा पक्ष के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर परामर्श देना है। मुख्यतः यह रक्षा मन्त्री को—

(१) समग्र रूप से रक्षा नीति तथा रक्षा कार्यक्रमों के निर्माण में सैनिक, सामरिक, आर्थिक, वित्तीय और विदेशी मामलों के पहलुओं के समन्वयन पर,

(२) नीति अथवा सिद्धान्त संबंधी विषयों और अन्तर-सेवा और अन्तर-विभागीय रक्षा पहलू वाले महत्वपूर्ण प्रश्नों; और

(३) रक्षा पहलू वाले अन्य मामलों पर परामर्श देती है जो मंत्री द्वारा अथवा उसकी ओर से समिति के सम्मुख पेश किए जाते हैं।

इस निकाय का नाम कुछ भ्रामक है। सदस्यता और कार्यों की दृष्टि से भारत अथवा यूनाइटेड किंगडम की कैबिनेट रक्षा समिति से इसकी कोई तुलना नहीं

की जा सकती। फिर भी यह एक महत्वपूर्ण समिति है क्योंकि सेनाध्यक्षों द्वारा निर्मित योजनाओं और नीतियों पर यह रक्षा मंत्रालय के असैनिक सचिवालय और रक्षामंत्री के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। यूनाइटेड किंगडम में ऐसी कोई समिति नहीं है यद्यपि रक्षामंत्री को अपने सभापतित्व में सेनाध्यक्षों की समिति की गोष्ठी बुलाने का अधिकार है। इस बात के कारण कि रक्षामंत्री और उसके सचिवालय की एक निश्चित राय होती है, यह आवश्यक हो जाता है कि जब योजनाओं का निर्माण हो रहा हो उस समय सेनाध्यक्षों को इसकी सूचना दे दी जाए अपेक्षाकृत इसके कि बाद में उन्हें रक्षामंत्री के दृष्टिकोण के अनुसार अपनी योजनाओं में परिवर्तन करने के लिए कहा जाए। रक्षामंत्री और उसके सचिवालय के दृष्टिकोण की नियोजन की उचित अवस्था पर सेनाध्यक्षों के सम्मुख प्रस्तुतीकरण को सरल बनाने के लिए या तो *यूनाइटेड किंगडम की भाँति रक्षामंत्री के लिए मुख्य स्टाफ अधिकारी की संस्था का* अथवा आस्ट्रेलिया की रक्षा समिति जैसी समिति का निर्माण करना होता है। भारत में ऐसी कोई समिति नहीं है जिसमें सेनाध्यक्ष सदस्य हों और रक्षा सचिव उसका अध्यक्ष हो। रक्षामंत्री का कोई मुख्य स्टाफ अधिकारी भी नहीं है जो सेनाध्यक्षों की समिति का सदस्य हो। यदि सेनाध्यक्ष असैनिक प्रमुख से पूर्ण सहयोग करें तो एक ऐसी रक्षा समिति बड़ी *सहायक होगी है जिसका अध्यक्ष रक्षा* समिति का हो और जिसके सदस्य सेनाध्यक्ष हों अत: आस्ट्रेलिया में सेनाध्यक्षों की समिति के लिए स्थायी प्रमुख प्रस्तुत करने का रक्षा समिति एक और प्रयोग है। संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, और फ्रांस में संयुक्त सेनाध्यक्षों की संस्था जिस रूप में वर्तमान है, सेनाध्यक्षों की समिति के लिए वही स्थायी प्रमुख के रूप में एक सेवा अधिकारी का प्रावधान करती है, *यद्यपि इसके परिणामस्वरूप जिस सेवा का प्रमुख होता है उसका* दोहरा प्रतिनिधित्व हो जाता है। आस्ट्रेलिया में सेनाध्यक्षों की समिति को अध्यक्षता एक असैनिक रक्षा सचिव को देकर एक नई समिति का गठन किया गया है। असैनिक व्यक्ति के प्रमुख होने के कारण समिति का पदनाम भी भिन्न है परन्तु यह सेनाध्यक्षों की समिति के लिए एक स्थायी प्रमुख के प्रावधान करने का ही उपाय है। *जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि एक ऐसी संस्था तभी कुशलतापूर्वक और* प्रभावी ढंग से कार्य कर सकती है जब रक्षा समिति की अध्यक्षता करने वाले रक्षा सचिव को सेनाध्यक्षों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है। इसी प्रकार जहाँ तक यूनाइटेड किंगडम में रक्षा मंत्रालय का सवाल है, यह संकेत किया गया है कि "रक्षा मंत्रालय के सैनिक और असैनिक स्टाफ की चतुराई, कुशलता और आत्मोन्मूलन पर ही तंत्र का सुसंगत *कार्य-संचालन निर्भर करता है। राष्ट्रीय स्थिति चाहे जो भी हो सैनिक* और असैनिक कार्मिक, राजनीतिज्ञ और असैनिक कर्मचारी, बाह्य संसार के सम्मुख एक समतल सतह ही प्रस्तुत करते हैं।"[११]

---

११ M. Howard "ग्रेट ब्रिटेन में केन्द्रीय रक्षा संगठन, १९५८", ११ The Political Quarterly, १९६० पृष्ठ ६६

आस्ट्रेलिया में रक्षा समिति "मंत्री को नौसेना, स्थल सेना और वायु सेना सेवाओं के संयुक्त कार्य का निर्देशन करने वाली स्थिर रक्षा नीति के आरम्भ करने और बनाए रखने तथा नौसेना, स्थल सेना और वायु सेना परिषदों एवं मंत्री के मध्य तकनीकी समन्वयकारक कड़ी प्रस्तुत करने के लिए परामर्श देने और विचार-विमर्श करने वाला निकाय है।"

सेनाध्यक्षों की समिति को सामरिक मूल्यांकन और सैनिक योजनाओं के निर्माण का कार्य सौंपा गया है। सदैव की भाँति तीनों सेनाध्यक्ष इसके सदस्य होते हैं। इसकी संरचना के अतिरिक्त इसका संगठन और कार्य भी यूनाइटेड किंगडम जैसे ही हैं अतः उन पर यहाँ विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं। फिर भी आस्ट्रेलियन तंत्र में रक्षा सचिव की अत्यधिक महत्ता के कारण यदि वह सेनाध्यक्षों की समिति की अध्यक्षता करता है तो इसके द्वारा प्रस्तुत योजनाओं पर मूल्यांकनों का मूल्य और भी बढ़ जाता है। इस प्रकार रक्षा समिति के कारण सेनाध्यक्षों की उत्कृष्ट स्थिति पृष्ठभूमि में पड़ जाती है। फिर भी वस्तुतः सैनिक नियोजन का कार्य तीनों सेवाओं के सेनाध्यक्षों को सौंपा गया है और इस संबंध में स्थापित व्यवहार से कोई अलगाव नहीं है।

संयुक्त रक्षा उत्पादन समिति सामरिक योजनाओं और उनकी आवश्यकताओं पर आवश्यक युद्ध क्षमता का निश्चय करने की दृष्टि से विचार करती है। सेवाओं की सामरिक सामग्री संबंधी आवश्यकताओं की समीक्षा, उपलब्ध उत्पादन कार्यक्रमों और औद्योगिक युद्ध क्षमता पर सलाह के लिए यह उत्तरदायी है।

इसके साथ ही अनेक अधीनस्थ उपसमितियाँ इन तीन प्रमुख समितियों की सहायता एवं सहयोग करती हैं। उदाहरणार्थ प्रमुख प्रशासनाधिकारियों की समिति ((रख-रखाव और सामग्री) और प्रमुख प्रशासनाधिकारियों की समिति (कार्मिक) रक्षा समिति और सेनाध्यक्षों की समिति दोनों की सहायता करती हैं। पुनः रक्षा अनुसंधान एवं विकास नीति समिति और संयुक्त नियोजन समिति तथा संयुक्त गुप्त सूचना समिति और संयुक्त प्रशासनिक नियोजन समिति का गठन विशेष रूप से रक्षा समिति और सेनाध्यक्षों की समिति की सहायता करने के लिए किया जाता है।

रक्षा अनुसंधान और समन्वयन :

तीनों सेवाओं के लिए आवश्यक हथियारों के प्रकार और साज-सामान पर वैज्ञानिक विकास के संघात का प्रत्येक देश की युद्धोत्तर नीति पर प्रभाव पड़ा है। रक्षा अनुसंधान के प्रत्येक मामले में विज्ञान के प्रयोग को उच्च प्राथमिकता देनी पड़ी है। रक्षाक्षेत्र में नीति संबंधी सभी प्रश्नों के लिए रक्षा विभाग उत्तरदायी होता है और स्वीकृत नीति-निर्णयों के संदर्भ में कार्यकारी कदम उठाने का अधिकार आपूर्ति विभाग को है। रक्षा मंत्रालय के अधीन उपयोक्ता सेवाओं और वैज्ञानिकों के मध्य सम्पर्क स्थापित कराने का मुख्य साधन रक्षा अनुसंधान और विकास नीति समिति है।

स्थल सेना का कमान सगठन, सेवा परिषदें श्रौर सेनाध्यक्षों की समिति :

सविधान अधिनियम १६०० के अनुसार ग्रास्ट्रेलिया के राष्ट्र मण्डल ने १६०१ मे रक्षा मामलो का नियत्रण सभाला । सविधान अधिनियम के अनुभाग ५१ (६) मे कहा गया है कि " राष्ट्रमण्डल और अनेक राज्यों की नौसैनिक और सैनिक सुरक्षा, तथा राष्ट्रमण्डल के कानूनों का पालन कराने के लिए सेना पर नियन्त्रण " पूर्णतः केन्द्रीय ससद की विधायिका क्षमता मे होगा । इस प्रकार केन्द्रीय सरकार को देशभर मे धीरे–धीरे एक रक्षातत्र स्थापित करना पडा क्योंकि न केवल राष्ट्रमण्डल वरन् अनेक राज्यों की सुरक्षा का भार भी इस पर था ।

१६०० मे सविधान अधिनियम पारित हो जाने पर राष्ट्रमण्डलीय सशस्त्र सेनाओ का धीरे धीरे अनेक अवस्थाओ मे विकास हुआ और अब वे सारे ग्रास्ट्रेलिया और सघ मे सम्मिलित सभी राज्यो मे फैल गई हैं । कमान प्रणाली का सगठन कठोर रूप से इस ग्रन्थ के सीमा-क्षेत्र में नहीं आता परन्तु देशभर मे कमान स्थापित करके केन्द्रीय सरकार को किस प्रकार अपना रक्षा उत्तरदायित्व पूरा करना पडता है इसकी व्याख्या करने के लिए इसका जिक्र किया गया है । इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि विभिन्न कमाण्डर सेनाध्यक्षों की समिति से सेवा परिषदों के माध्यम द्वारा किस प्रकार सीधे सबधित हैं और किस प्रकार इन परिषदों द्वारा दिए गए आदेशो का पालन करते हैं । १६३६ मे एक महत्त्वपूर्ण पग उठाया गया जब

(अ) शान्ति सगठन का युद्ध सगठन से तालमेल बढाने के लिए,

(आ) युद्ध के लिए सामान्य तैयारी और प्रशिक्षण के प्रश्नो पर एक उच्चतर सचालक द्वारा प्रादेशिक और निर्माण सचालको को पूर्णकालिक निर्देशन और निरीक्षण प्रस्तुत करने के लिए, और

(इ) सेना मुख्यालय के सीधे नियत्रण मे छोटे निर्माणों की सख्या कम करने के उद्देश्य से कमानो के सगठन का जन्म हुआ ।

फिर भी युद्धकाल मे ग्रास्ट्रेलिया मे मित्रराष्ट्रो की सेनाओ की उपस्थिति के कारण कमानो के नियमित सगठन में काफी अव्यवस्था हो गई । उदाहरणार्थ अगस्त १६४१ मे युद्ध कैबिनेट ने लेफ्टीनेन्ट जनरल सर ईवान मैके (Lieu -Gen. Sir Ivan Mackay) को घरेलू सेनाओ के प्रमुख कमान अधिकारी (General Officer Commanding-in-Chief) के रूप मे स्वीकृति प्रदान की । कार्यवाही निर्देशन के लिए प्रमुख कमान अधिकारी को कमानो का सचालन करने वाले सामान्य अधिकारियो से उच्चस्तर प्रदान किया गया परन्तु स्थल सेना मत्री और उसके माध्यम से कैबिनेट को परामर्श देने के लिए उत्तरदायी निकाय सेना परिषद के अधीन रखा गया । जब ग्रास्ट्रेलिया मे सयुक्त राज्य अमरीका की सेनाएँ रख दी गई तो दक्षिण पश्चिम प्रशात क्षेत्र के लिए जनरल डगलस मैक आर्थर (Genenal Douglas Mac Arthur) को मित्रराष्ट्रो का प्रधान सेनापति नियुक्त कर दिया गया । ग्रास्ट्रेलिया की स सेना के प्रधानसेनापति के रूप में जनरल सर टामस ब्लेमी (Genenal Sir

Thomas Blamey) की नियुक्ति से, सेनापरिषद् ने कार्य करना बन्द कर दिया और स्थल सेना का मुख्यालय आस्ट्रेलिया में मित्रराष्ट्रों की स्थल सेनाओं का मुख्यालय बन गया। मार्च १९४६ में युद्ध समाप्त होने पर सेना परिषद् तथा कमानों और सैनिक क्षेत्रों के संगठन को पुनर्जीवित किया गया। १९५५ में "सैनिक क्षेत्र" पद पुराना पड़ जाने के कारण त्याग दिया गया। इससे पता चलता है कि नीति निर्माता और नियोजक अर्थों तथा सेनाध्यक्षों की समिति की परिषद में कार्य करने वाले अधिकारियों को प्रधान सेनापति का पद नाम प्राप्त नहीं होता, भले ही उन्हें देश के कमानों को आदेश जारी करने पड़ते हों। आस्ट्रेलिया में प्रत्येक सेवा के प्रशासन के लिए परिषद् प्रणाली व्यवहृत होती है अतः इस सैनिक नियोजक को जो अपनी सेवा के सेनाध्यक्ष के रूप में कार्य करता है प्रधान सेनापति का पदनाम नहीं दिया गया है जैसा कि १९५५ से पूर्व भारत में होता था। इन दिनों आस्ट्रेलिया का कमान संगठन निम्न मानचित्र के अनुसार है :—

आस्ट्रेलिया में कमान संगठन

सैनिक मुख्यालय

उत्तरी कमान	पूर्वी कमान	दक्षिणी कमान	केन्द्रीय कमान	पश्चिमी कमान	तस्मानिया कमान	उत्तरी प्रदेश कमान
क्वीन्सलैण्ड राज्य, पापुआ और न्यूगिनी प्रदेश	दक्षिणी कमान के अधीन दक्षिणी भाग और केन्द्रीय कमान के अधीन पश्चिमी भागों के अतिरिक्त न्यू साउथ वेल्स राज्य।	दक्षिणी न्यू साउथ वेल्स के वृद्ध क्षेत्र सहित विक्टोरिया राज्य	पश्चिमी न्यू साउथ वेल्स के वृद्ध क्षेत्र सहित दक्षिण आस्ट्रेलिया राज्य आस्ट्रेलिया का राजधानी प्रदेश, नारफोक द्वीप।	पश्चिमी आस्ट्रेलिया राज्य	तस्मानिया राज्य	आस्ट्रेलिया का उत्तरी प्रदेश

मोटे तौर पर आस्ट्रेलिया की स्थल सेना कमान प्रणाली का आधार भौगोलिक है क्योंकि कमानों की सीमाएँ विभिन्न राज्यों की सीमाओं के समान ही हैं।

(III) भारत[13]

भारतीय स्वतन्त्रता और रक्षा सरचना

१५ अगस्त १९४७ को ब्रिटिश राज्य समाप्त हो जाने पर भारत के रक्षा मामलों मे वैधानिक शासन-पद्धति के युग का प्रारम्भ हुआ। यद्यपि ब्रिटिश राज्य अपने "विधानानुसार शासन" के लिए प्रसिद्ध था और इसने अधिकाधिक भारतीय तत्त्वों को अपने विश्वास मे लेने का प्रयत्न भी किया फिर भी इसमे सन्देह नहीं है कि १९४७ से पूर्व की भारत सरकार भारतीय निर्वाचक मण्डल के प्रति उत्तरदायी न होकर बुनियादी तौर पर इगलैंड की ससद के प्रति उत्तरदायी थी। अगस्त १९४७ से पूर्व का ब्रिटिश-तन्त्र कठोर कानूनी अर्थों में 'प्रवासी सेना' पर आधारित था जिसमे प्रधान सेनापति को वायसराय के पश्चात् सर्वाधिक उच्च स्थान प्राप्त था। भारतीय सशस्त्र सेनाओं की "उपनिवेशीय रिजर्व" या शान्तिकाल में "पुलिस टुकड़ी" एव युद्धकाल मे शाही सेनाओं के अग्रदूत भाग वाली भूमिका १९४७ के भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम के लागू होते ही सहसा समाप्त हो गई। सक्षेप मे कह सकते हैं कि पहले सशस्त्र सेनाओं का राजनीतिक और कार्यकारी नियन्त्रण प्रधान सेनापति मे निहित था जो स्थल सेना, नौसेना और वायु सेना का सर्वोच्च सेनापति होने के साथ-साथ वायसराय के प्रति उत्तरदायी एव उसके माध्यम से भारत-मन्त्री के प्रति उत्तरदायी युद्धमन्त्री भी था। इसके स्थान पर अब एक नई प्रणाली का उदय हुआ जिसके अन्तर्गत कैबिनेट के निर्माण तथा जनता द्वारा निर्वाचित और ससद के माध्यम से निर्वाचक मण्डल के प्रति उत्तरदायी रक्षामन्त्री द्वारासशस्त्र सेनाओं पर ससद के नियन्त्रण का प्रावधान है।[13]

पुनः १९५० मे जब भारत एक गणतन्त्र बन गया जिसका राज्याध्यक्ष और सशस्त्र सेनाओं का प्रधान सेनापति राष्ट्रपति होना है तो राज्य की सशस्त्र सेनाओं मे क्राउन की स्थिति बदल गई। यद्यपि क्राउन को राष्ट्रमण्डल का जिसका भारत एक सदस्य था, अध्यक्ष स्वीकार किया गया था, परन्तु राज्य की आतरिक सरचना मे उसे अधिक समय तक स्वीकार नही किया गया। अतः जब २६ जनवरी १९५० को भारत के गणतन्त्रीय सविधान का उद्घाटन हुआ तो बदली हुई परिस्थितियों मे तीनो सेवाओं, जहाजों और अन्य प्रतिष्ठानों के साथ जुड़ा 'शाही' उपसर्ग समाप्त कर दिया

---

१२ यहाँ मार्च १९६२ के आम चुनाव से पूर्व की भारतीय रक्षा संरचना का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् और विशेष रूप से अक्तूबर १९६२ में भारत पर चीनी आक्रमण के पश्चात् इसमें अनेक परिवर्तन हो गए हैं यथा कैबिनेट की आपातकालीन समिति, राष्ट्रीय रक्षा परिषद, रक्षा उत्पादन का राज्यमन्त्री तथा आर्थिक एव रक्षा मामलों में तालमेल के मन्त्री की नियुक्ति की गई है। इस अध्याय मे इन परिवतनों को शामिल करना सभव नहीं हो सका है क्योंकि यह पहले ही छप चुका था।

१३ इस अध्याय के परिशिष्ट आ मे गणतन्त्रीय भारत के रक्षातन्त्र को चित्रित गया है।

गया। इस प्रकार भारत की ताज के प्रति वैसी कोई निष्ठा नहीं है जैसी कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा अन्य उपनिवेशों की है जहाँ महारानी सशस्त्र सेनाओं की प्रधान सेनापति स्वीकार की जाती है। भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति ने राज्याध्यक्ष का पद ग्रहण कर लिया है।

भारतीय संविधान में 'रक्षा' :

मूलरूप से १९४६ की कैबिनेट मिशन योजना के अन्तर्गत गठित संविधान सभा १५ अगस्त १९४७ के पश्चात् एक स्वतन्त्र निकाय के रूप में प्रजातंत्रीय संविधानों के राष्ट्रपतीय और संसदीय प्रकारों के सर्वश्रेष्ठ अंग लेकर भारत के लिए एक संघीय संविधान के निर्माण में लग गई। इस प्रकार गठन होने के कारण सामान्य संवैधानिक व्यवहार के अनुरूप रक्षा और विदेशी मामलों पर कानून बनाने का एकमात्र अधिकार केन्द्रीय भारतीय संसद को प्रदान किया गया है।[14] संघसूची की पहली धारा में भारतीय संसद को "भारत और इसके प्रत्येक भाग की रक्षा तथा रक्षा के लिए तैयारी, युद्धकाल में इसके संचालन और युद्ध की समाप्ति पर प्रभावी असैन्यीकरण में सहायक कार्यों" के संबंध में विधायिका-अधिकार प्रदान किया गया है। इस धारा का क्षेत्र वास्तव में बहुत अधिक विस्तृत है क्योंकि इसमें युद्ध के लिए तैयारी भी शामिल है जो आस्ट्रेलिया में विवाद का विषय बनी रही और जिसका आस्ट्रेलिया के संघीय न्यायालय ने फेरे बनाम बुरवेट (Farey Vs. Burvett) मामले में निर्णय किया।[15]

भारतीय संविधान की संघसूची में पहली धारा का हर प्रकार के संभाव्य को समाहित करने के उद्देश्य से निर्माण किया गया है; इसी प्रकार के अन्य संविधानों के कार्यान्वयन द्वारा प्राप्त अनुभव पर आधारित होने के कारण यह इसका क्षेत्र परिभाषित कर देती है और इस प्रकार की संवैधानिक समस्याओं के उठने के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ती। पहली सूची-संघसूची (सातवीं अनुसूची)

---

१४ भारतीय संविधान, अनुच्छेद २४६ और सातवीं अनुसूची।

१५ (१९१६)२१. C. L. R. ४३३, इस प्रसिद्ध मुकदमे में युद्धकाल में डबलरोटी का अधिकतम मूल्य निर्धारित करने वाले नियम की वैधता को चुनौती दी गई थी। २ के मुकाबले ५ के बहुमत से नियम को वैध ठहराया गया और आइज़ेक्स जे. (Issacs J.) ने कहा कि 'रक्षा' न केवल रक्षा संबंधी वे कार्य आते हैं जिन पर राष्ट्रमण्डल की संसद अधिनियम बनाने की आवश्यकता समझे (पृ० ४५४) ग्रिफिथ सी० जे०(Griffith C.J.) ने इसका अनुमोदन करते हुए कहा कि संघीय अधिकार अथवा राज्य की रक्षा के उद्देश्य के लिए ही अधिकार के अधीन किए गए सभी कार्य स्वदेश रक्षा के अन्तर्गत शामिल होते हैं। शान्तिकाल में युद्ध के लिए तैयारी और युद्ध काल में ऐसा कोई भी कार्य इसमें शामिल होते हैं जो युद्ध के संचालन और शत्रु की पराजय में सहायक हों (पृ० ४४०)। यह मुकदमा सामान्य संवैधानिक महत्व का है और 'रक्षा' की सीमा और क्षेत्र निर्धारण करने में सहायता करता है।

की दूसरी धारा में संघ की नौसेना, स्थल सेना, वायु सेना तथा अन्य किसी भी प्रकार की सशस्त्र सेनाएँ तथा चौथी धारा में नौसेना, स्थल सेना और वायु सेना के प्रतिष्ठान और छावनियाँ भारतीय संसद की विधायिका शक्ति के अधीन रखी गई हैं। साथ ही धारा छह में अणुशक्ति और खनिज सम्पदा तथा सातवीं धारा में संसद के नियम द्वारा रक्षा के लिए अथवा युद्ध-सचालन के लिए आवश्यक घोषित उद्योगों को राज्य की विधानसभा के नियन्त्रण से मुक्त करके केन्द्र के अधीन रखा गया है। "हथियारों, आग्नेयास्त्रों और विस्फोटकों" का उत्पादन तथा रक्षा सम्बन्धी मामलों में निवारक नजरबन्दी भी रक्षा के क्षेत्र में रखे गए हैं। अन्त में धारा १५ में युद्ध और शान्ति जो विदेशी मामलों के साथ-साथ रक्षा से भी सम्बन्धित विषय हैं केन्द्रीय विधानमण्डल के क्षेत्र के अन्तर्गत रखे गए हैं।

नीति नियोजन के लिए रक्षा के उच्चतर अंग :

राष्ट्रपति

राज्याध्यक्ष होने के नाते राष्ट्रपति में ही संघ की रक्षा सेनाओं की सर्वोच्च कमान निहित है और संविधान अधिनियम के अनुच्छेद ५३(२) में कहा गया है कि "इसका कार्यान्वयन कानून द्वारा नियन्त्रित होगा।" यह सर्वमान्य संवैधानिक व्यवहार के अनुरूप ही है। संविधान अधिनियम के अनुच्छेद ७४ और ७५ में स्पष्ट रूप से संसदीय लोकतन्त्र की व्यवस्था की गई है। अतः रक्षा पर वस्तुतः नियंत्रण प्रधानमन्त्री और उसकी कैबिनेट के हाथ में है जिनका अनुच्छेद ७४ (१) में मन्त्रीपरिषद के रूप में वर्णन किया गया है। अधिनियम के अनुच्छेद ५३(२) के अनुसार राष्ट्रपति अपने में निहित शक्ति का प्रयोग उस मन्त्रीपरिषद की सलाह पर करता है जो 'कार्य' सचालन में उसकी सहायता करने के लिए गठित की जाती है। पुनः अनुच्छेद ७४(३) के अनुसार मन्त्रीपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। अतः आधुनिक भारत का रक्षातंत्र कैबिनेट अथवा मन्त्रीपरिषद के माध्यम से कार्यशील संसदीय नियन्त्रण के सिद्धान्त पर आधारित है।

रक्षामन्त्री :

इस रूप में रक्षामन्त्री की नियुक्ति का जो आस्ट्रेलियाई और कनाडी प्रणालियों का एक लक्षण है संवैधानिक प्रावधान नहीं है। कनाडी राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम १९५० में एक राष्ट्रीय रक्षामन्त्री, एक उपमन्त्री और एक सहायक मन्त्री की नियुक्ति का स्पष्ट प्रावधान है। दक्षिण अफ्रीका में भी रक्षामन्त्री का संवैधानिक अस्तित्व है क्योंकि द्वितीय अनुसूची को रक्षा अधिनियम १९१२ के अनुच्छेद २९ के साथ मिला कर पढ़ने से रक्षा परिषद् जिसका रक्षामन्त्री भी एक सदस्य होता है की संरचना निर्धारित होती है। भारत में यद्यपि ऐसा कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं है, परन्तु रक्षा को संघीय केन्द्र का एक मुख्य विषय मानने के कारण दो उपमन्त्रियों सहित एक रक्षामन्त्री नियुक्त किया गया है और ये सभी संसद के प्रति उत्तरदायी हैं। तीनों सेनाओं के प्रशासन और सामान्य रूप से रक्षा समस्याओं के

सम्बन्ध में मन्त्री संसद के प्रति उत्तरदायी हैं। रक्षा के लिए प्रधानमन्त्री का उत्तरदायित्व कार्यकारी कार्यों के लिए उसके समग्र उत्तरदायित्व के भीतर आता है और शान्ति-काल में उसे संसद को रक्षा मामलों सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं होती। अपने सहयोगियों की सहायता से रक्षामन्त्री ऐसा करता है। राष्ट्रीय रक्षा के मामलों में संसदीय सरकारों की सुदृढ़ परम्परा पर आधारित प्रधानमन्त्री के परम उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं हो सकता। (देखिए पृ० १७५ पर मानचित्र)

कैबिनेट की रक्षा समिति :

समग्र रक्षा नीति सम्बन्धी अपने उत्तरदायित्व का प्रयोग कैबिनेट अपने सदस्यों की एक उपसमिति के माध्यम से करती है। इसे कैबिनेट की रक्षा समिति कहते हैं। इसमें प्रधानमन्त्री, रक्षामंत्री, गृहमंत्री, वित्तमंत्री तथा प्रधानमन्त्री द्वारा मनोनीत अन्य मन्त्री होते हैं। (आजकल रेल, व्यापार, उद्योग, परिवहन तथा संचार मन्त्री इस समिति के सदस्य हैं।)[16]

उचित प्रजातन्त्रीय व्यवहार के अनुरूप तीनों सेवाओं के अध्यक्ष तथा वित्त (रक्षा) मंत्रालय का सचिव दक्ष सलाहकारों के रूप में उपस्थित रहते हैं; पर वे रक्षा समिति के सदस्य नहीं होते। रक्षा के क्षेत्र में आने वाले सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सारी कैबिनेट की ओर से विचार करना रक्षा समिति का कार्य है। रक्षा सेनाओं के प्रशासन सम्बन्धी सभी प्रश्नों, जिन पर उच्च स्तर के निर्णयों की आवश्यकता होती है, तथा नीति सम्बन्धी मामलों पर सरकार का निर्णय प्राप्त करने के लिए उन्हें रक्षा समिति को भेजा जाता है। संयुक्त उत्तरदायित्व वाले अत्यधिक महत्वपूर्ण मामलों को जिन पर सभी सदस्यों द्वारा विचार-विमर्श करना आवश्यक होता है, पूरी कैबिनेट के पास भेजने का इसे सवैधानिक अधिकार है।

रक्षामंत्री जो आवश्यक रूप से कैबिनेट तथा रक्षा समिति का सदस्य होता है रक्षा मन्त्रालय के नाम से अभिहित सचिवालय संगठन का अध्यक्ष होता है। कैबिनेट के प्रत्येक मन्त्री की भांति उसे भी दोहरा कार्य करना पड़ता है, क्योंकि वह कैबिनेट और रक्षा समिति को न केवल परामर्श देता है वरन् इन निकायों द्वारा निर्धारित नीतियों के पालन कराने के लिए भी उत्तरदायी होता है। उपर्युक्त कार्य वह रक्षा मन्त्रालय और सेनाध्यक्षों की समिति के माध्यम से पूरे करता है।

---

१६ यह स्थिति १९६१ में थी।

भारतीय रक्षा संगठन (देखिए पृ० १७४)
राष्ट्रपति
प्रधानमंत्री सहित कैबिनेट
केबिनेट की रक्षा समिति (प्रधानमंत्री इसका अध्यक्ष होता है)
रक्षामंत्री
उप रक्षामन्त्री I
रक्षामन्त्रालय
(रक्षा सचिव सहित)
उप रक्षामन्त्री II
स्थल सेनाध्यक्ष
स्थल सेनाउपाध्यक्ष
स्थल सेना मुख्यालय
जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष
क्वार्टर मास्टर जनरल
एडजुटान्ट जनरल
युद्ध-सामग्री का प्रमुख
नौसेनाध्यक्ष
नौसेना मुख्यालय
नौसेना उपाध्यक्ष
कार्मिक अध्यक्ष
सामग्री अध्यक्ष
नौसैनिक उड्डयन का अध्यक्ष
वायुसेनाध्यक्ष
वायुसेना मुख्यालय
वायुसेना उपाध्यक्ष
वायुसेना के प्रशासन का प्रमुख
वायुसेना के रख-रखाव का प्रमुख

दक्षिणी कमान
पूर्वी कमान
पश्चिमी कमान
भारतीय बेड़े का निदेशक ध्वज अधिकारी
ध्वज अधिकारी बम्बई
प्रमुख कामोडोर कोचीन
पूर्वी समुद्र-तट का कामोडोर
कार्यवाही कमान
प्रशिक्षण कमान
रख-रखाव कमान

परिशिष्ट 'आ' (देखिए पृ. 171)
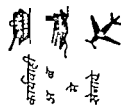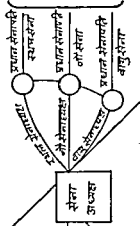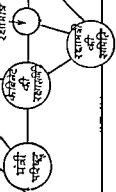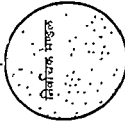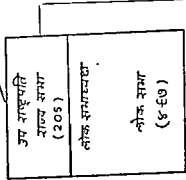
दक्ष सैनिक नियोजन के लिए सगठन:

रक्षा मंत्रालय के अतिरिक्त, सेनाध्यक्षों की समिति सर्वाधिक महत्वपूर्ण समन्वयकारक माध्यम है। सेवा स्तर पर यह वास्तविक अर्थों में सर्वोच्च समन्वय-कारक अवयव है। सदैव की भाँति तीनों सेवाओं के अध्यक्ष इसके सदस्य होते हैं और अप्रैल १९६५ तक वे प्रधान सेनापति और सेनाध्यक्ष की दोहरी भूमिका निभाते थे। फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका अथवा कनाडा के संयुक्त सेनाध्यक्षों के सगठनों की भाँति इसका कोई स्थायी प्रमुख नहीं होता है। केवल तीनों सेवाओं के सेनाध्यक्ष ही इसके सदस्य होते हैं और समिति का वरिष्ठ सदस्य इसका प्रमुख होता है। नीति सम्बन्धी उन सभी महत्वपूर्ण मामलों में पहले सेनाध्यक्षों की समिति में ही विचार विमर्श होता है जिन पर कैबिनेट की स्वीकृति आवश्यक होती है और दक्ष परामर्श के रूप में उनकी राय कैबिनेट के सम्मुख रखदी जाती है। निर्णय लेने का अधिकार केवल उपर्युक्त निकाय को ही है। कैबिनेट की रक्षा समिति की बैठकों में सेनाध्यक्ष भी उपस्थित रहते हैं।

सेनाध्यक्षों का पद-नाम परिवर्तन जिसकी घोषणा प्रधानमन्त्री ने २५ मार्च १९५५ को की थी सवैधानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रधान सेनापति का प्रसगत पद-नाम समाप्त कर देने में सरकार का विचार अन्य प्रजातान्त्रिक देशों के व्यवहार के अनुकूल कार्य करना था।

भारत के सवैधानिक इतिहास के संदर्भ में प्रधान सेनापति के पद-नाम का विशिष्ट महत्व है। ब्रिटिश काल में प्रधान सेनापति भारत का सैनिक अभिग्रहण करने वाली सशस्त्र सेनाओं का न केवल सर्वोच्च (Supreme) होता था वरन् वायसराय की कार्यकारिणी का भी एक सदस्य होता था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वायसराय की कैबिनेट सैनिक शासन के सिद्धान्त पर गठित थी, क्योंकि देश की सरकार का निर्माण असैनिक विधायकों—सरकारी अधिकारियों एवं जनता के मनोनीत प्रतिनिधियों—के साथ एक वर्दीधारी व्यक्ति को बैठाकर किया जाता था। सितम्बर १९४६ में अन्तरिम सरकार का गठन हो जाने पर स्थिति बदल गई और प्रधान सेनापति केवल तीनों सेवाओं का अध्यक्ष मात्र रह गया। १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद, प्रत्येक सेवा का अलग-अलग अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया। इनके पद-नाम थे भारतीय स्थल सेना का प्रधान सेनापति, शाही नौसेना का कमान ध्वजाधिकारी और शाही वायु सेना का कमान एयर मार्शल। उनकी परिवर्तित भूमिका निश्चित करने के लिए फरवरी १९४८ में उन्हें सेनाध्यक्ष का अतिरिक्त पद-नाम भी दे दिया गया। बाद में (जून १९४८ में) उनका पद-नाम इस प्रकार हो गया—भारतीय स्थल सेना का सेनाध्यक्ष और प्रधान सेनापति, भारतीय नौसेना का सेनाध्यक्ष और प्रधान सेनापति और भारतीय वायुसेना का सेनाध्यक्ष और प्रधान सेनापति।

संविधान की धारा ५३ (२) के अनुसार रक्षा सेनाओं की सर्वोच्च कमान अब राष्ट्रपति में निहित है और वह मन्त्री परिषद् के परामर्श पर कार्य करता है।

अतः मार्च १९५५ में प्रधानमन्त्री ने लोकसभा में स्पष्ट किया कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि प्रधान सेनापति का पद-नाम देर सवेर बदला जाना है और पुराने पद-नाम के साथ सेनाध्यक्ष शब्द जोड़ कर इस सकल्प का संकेत दे दिया गया था। परिणामस्वरूप कुछ असंगत और दुहरे पद-नाम बनाए रखने की न तो वास्तविक आवश्यकता थी और न इसका कोई औचित्य ही था, अतः सभी दृष्टिकोणों से यह अधिक समीचीन और उचित समझा गया कि इन मामलों मे अन्य प्रजातन्त्रीय देशों के व्यवहार का अनुसरण किया जाए। अतः यह निर्णय लिया गया कि १ अप्रैल १९५५ से तीनों सेनाओं के अध्यक्षों को क्रमश. स्थल सेनाध्यक्ष नौ सेनाध्यक्ष और वायुसेनाध्यक्ष कहा जाएगा।

ब्रिटिश संगठन के इस आधारभूत सिद्धान्त से कि सेवा विभागों में स्वीकृत नीति और योजनाओं पर व्यवहार करने के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को नीति और योजना निर्माण के केन्द्रीय तन्त्र मे एकत्र किया जाना चाहिए, भारत ने पूरा लाभ उठाया है। वास्तव में भारत में इस सिद्धान्त का इसके तर्कसंगत निष्कर्ष तक विस्तार कर दिया गया है। अप्रैल १९५५ से पूर्व भी ऐसा ही था। तीनों सेवाओं के सेनाध्यक्ष न केवल योजनाओं के निर्माण के लिए वरन् उन पर व्यवहार के लिए पहले भी उत्तरदायी थे और अब भी हैं। यद्यपि उनका प्रधान सेनापति पद-नाम समाप्त कर दिया गया है फिर भी अप्रैल १९५५ से पूर्व उन्हें जो शक्तियां और उत्तरदायित्व प्राप्त थे, उनसे उन्हें वंचित नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में श्री कॅम्पबेल जॉनसन (Campbell Johnson) की पुस्तक 'मिशन विद माउन्टबेटन' (Mission with Mountbatten) से उद्धरण देना लाभकारी होगा जिसमें सेनाध्यक्षों की समिति के जन्म के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। जूनागढ़ के भारत मे शामिल होने और पाकिस्तानी पक्ष के प्रश्न पर खतरनाक, गलत अथवा विनाशकारी निर्णय से बचने के लिए सरकार सामरिक स्थिति का पूरा मूल्यांकन चाहती थी। प्रसंगवश इस घटना से सेनाध्यक्षों के एक आवश्यक कार्य का निरूपण किया जा सकता है। यह अति प्रसिद्ध सामरिक सिद्धान्त है कि राजनीतिक दृष्टि से जो वाछनीय है उसे सामरिक दृष्टि से सम्भाव्य भी होना चाहिए। जब राजनीति को समरनीति से अलग कर दिया जाता है तो परिणाम बहुधा विनाशकारी होता है। राजनीतिज्ञों के मार्गदर्शन के लिए सामरिक समीकरण का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करना सेनाध्यक्षों का कर्तव्य है। भारत में सेनाध्यक्षों की कोई समिति नहीं थी अतः लॉर्ड माउन्टबेटन ने तुरन्त इसकी आवश्यकता अनुभव की और इसकी जोरदार सिफारिश की। कैम्पबेल जॉनसन लिखता है :

"इस प्रकार की किसी और उलझन को बचाने एव गलत निर्णय और सरकार के उत्तरदायित्व के खतरे को कम करने के उद्देश्य से माउन्टबेटन ने कैबिनेट की रक्षा समिति के गठन की सिफारिश की है। इस संदर्भ में सेनाध्यक्षों की समिति, संयुक्त सूचना एव संयुक्त नियोजन समितियां जैसी सहायक समितियां भी उसके ध्यान में हैं,

परन्तु साथ ही उसने उस ब्रिटिश व्यवहार में एक महत्वपूर्ण संशोधन भी सुझाया है जिसमें साम्राज्यिक जनरल स्टाफ का प्रमुख कार्यवाही कमान से पूरी तरह असम्बद्ध होता है। उसने इस बात पर बल दिया है कि प्रत्येक सेना में एक ही अधिकारी को प्रधान सेनापति और सेनाध्यक्ष की दुहरी भूमिका देने के व्यवहार को अपनाने से भारत को लाभ होगा। नेहरू और पटेल ने इस विचार को स्वीकार कर लिया और इस्मे (Ismay) से रक्षा की कैबिनेट के लिए समय रहते इसके संगठन पर विस्तार पूर्वक विचार करते हुए एक पत्र प्रस्तुत करने को कहा गया है।"[17]

यह २९ सितम्बर १९४७ की बात है। इस प्रकार भारत में सेनाध्यक्षों की एक समिति है जिसमें तीनों सर्वोच्च नियोजक सेनाध्यक्षों के रूप में उन योजनाओं के सर्वोच्च कार्यकारी भी होते हैं जिससे प्रभावी और व्यावहारिक नियोजन सम्भव हो जाता है।

इस संदर्भ में इस ओर संकेत करना उचित ही होगा कि कैबिनेट की रक्षा समिति, रक्षामन्त्री की समितियाँ, सेनाध्यक्षों की समिति तथा अन्य अनेक समितियों सहित उच्चतर रक्षा नियन्त्रण का जन्म लॉर्ड इस्मे की सिफारिशों के आधार पर १९४७ में हुआ। युद्धकाल में लॉर्ड इस्मे ने यूनाइटेड किंगडम में स्वयं इस संगठन का विकास करके इसे पूर्ण बनाया था और संयुक्त राज्य के रक्षा प्रशासन के लिए वैसा ही तन्त्र संगठित करने के लिए उन्हें संयुक्त राज्य की सरकार द्वारा भी आमंत्रित किया गया था। इस बात के अतिरिक्त कि भारत को आवश्यक रूप से उस प्रणाली को नहीं अपना लेना चाहिए, जिसका यूनाइटेड किंगडम में ऐतिहासिक कारणों से जन्म हुआ था यह भी ध्यान देने की बात है कि यूनाइटेड किंगडम की परिषद्-प्रणाली में प्रत्येक सेवा के लिए अलग-अलग मंत्रियों की नियुक्ति का विधान होने के कारण कोष के बटवारे के विषय में समन्वय का अभाव होकर अन्तर-सेवा प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गई है। इस कारण एक रक्षामन्त्री की नियुक्ति और सविधि द्वारा उसके कार्यों को पारिभाषित करना आवश्यक हो गया।

आजकल भारत में प्रचलित प्रणाली परिषद्-प्रणाली जैसे तन्त्र का ही प्रावधान करती है पर इसमें उसकी त्रुटियों का परिष्कार कर लिया गया है। रक्षा-मन्त्री की समितियों (अन्तर सेवा, स्थलसेना, नौसेना और वायु सेना) द्वारा विचार विमर्श के समय सेनाध्यक्षों को प्रमुख स्टाफ अधिकारियों और विचाराधीन विषयों से सम्बन्धित सेनाविशेषज्ञों को लाने की आज्ञा है। इस प्रकार इन समितियों के जिनकी समय-समय पर गोष्ठियाँ होती हैं, सभी विचार-विमर्श में सेना प्रतिनिधियों का पूर्ण सहयोग रहता है। भारत के रक्षातंत्र में सेनापरिषदों के निर्माण का प्रश्न मार्च १९५६ में संसद के सम्मुख आया और तत्कालीन रक्षामन्त्री डॉ० के० एन० काटजू ने स्थिति का इस प्रकार संक्षेप में वर्णन किया है।

---

१७ कम्पबेल-जोन्सन : Mission with Mountbatten, पृ० २१०

"मैं एक बात का उल्लेख करना चाहता हूँ जो माननीय सदस्य श्री बरक द्वारा उठाई गई है। अधिकारियों का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि हमने प्रधान सेनापति का पद-नाम समाप्त कर दिया है और सेना परिषदों के गठन के विषय में प्रश्न किया है। मेरा सुझाव है कि इस रूप में यह अत्यन्त महत्व की बात है। सेनापरिषद का उद्देश्य असैनिक और सैनिक तत्त्वों को समन्वित करना है। यूनाइटेड किंगडम के सैनिक संगठन का भी उल्लेख किया गया था। यूनाइटेड किंगडम में तीन मंत्री हैं, स्थल सेना के लिए उत्तरदायी युद्धमंत्री, दूसरा नौसेना मंत्री, और तीसरा वायु सेना-मंत्री। एक चौथा मंत्री भी है जिसे रक्षामंत्री कहते हैं। प्रत्येक मंत्री की स्थल सेना-परिषद्, नौसेना परिषद् जिसे सागर परिषद भी कहते हैं, और वायु परिषद होती है। हम माननीय सदस्य को बता देना चाहते हैं कि हमारे यहाँ पहले तो हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद है—मैं वे शब्द प्रयोग कर रहा हूँ जो अमरीका में प्रयुक्त होते हैं—दूसरे अत्यधिक विस्तृत कैबिनेट की रक्षा समिति है जिसमें कैबिनेट मंत्री भाग लेते हैं और फिर हमारे सेनाध्यक्ष और अन्य लोग हैं तथा निर्णय लिए जाने पर आवश्यकतानुसार कैबिनेट को इसकी सूचना दी जाती है और फिर सारे मामले पर पूरी कैबिनेट विचार-विमर्श करती है।

रक्षामंत्री की एक समिति होती है। रक्षामंत्री इसकी अध्यक्षता करता है और तीनों सेनाध्यक्ष अपने वरिष्ठ अधिकारियों के साथ इसमें उपस्थित होते हैं; हमारे असैनिक अधिकारी भी एकत्र होते हैं और जब कभी भी तीनों सेवाओं संबंधी महत्त्वपूर्ण प्रश्न होते हैं तो उन पर विचार-विमर्श होता है और परीक्षण के पश्चात् उन पर निर्णय लिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त तीन और समितियाँ होती हैं जिनकी रक्षामंत्री अध्यक्षता करता है। एक को स्थल सेना समिति, दूसरी को वायु समिति और तीसरी को नौसेना समिति कहते हैं। मेरा विचार है कि ये सेनापरिषदों के समकक्ष हैं और जब हमने इन वर्तमान समितियों का निरीक्षण किया तो हमने पाया कि ब्रिटिश प्रतिरूप के अनुसार सेनापरिषद नियुक्त करने का परिश्रम उठाना अनावश्यक है।" (देखिए १९५६ की लोकसभा की कार्यवाही)

रक्षामंत्री की समिति (समितियाँ)

डॉ० काटजू के वक्तव्य का पूरा-पूरा मूल्यांकन करने के लिए रक्षामंत्री के अधीन कार्यरत अनेक समितियों का विस्तारपूर्वक वर्णन करना पड़ेगा जिन्होंने यूनाइटेड किंगडम की 'सेवापरिषदों' का स्थान लिया है।

भारत द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व रक्षा एक सुरक्षित विषय था और इसके व्यय पर मतदान नहीं होता था। इस प्रकार तत्कालीन रक्षा सदस्य जो भारत में प्रधान सेनापति भी होता था, (न केवल स्थल सेना वरन् नौसेना और वायु सेना का भी अध्यक्ष) विधायिका अथवा भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं था। स्वतन्त्रता के पश्चात् रक्षा और रक्षा व्यय सम्बन्धी नीति के सभी प्रश्न भारतीय

संसद के निरीक्षण और स्वीकृति के अधिकार क्षेत्र में आ गए और रक्षामंत्री रक्षा व्यय सहित सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी हो गया।

रक्षामंत्री की नई भूमिका ने उच्चतर रक्षा नियन्त्रण के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन आवश्यक बना दिया। पहला महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तो १५ अगस्त १९४७ से तीनों सेवाओं के लिए अलग-अलग सेनाध्यक्ष की नियुक्ति करना था। फिर कैबिनेट की रक्षा समिति का गठन किया गया। यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य के उच्चतर रक्षा नियन्त्रण के युद्धकालीन अनुभव पर आधारित तंत्र की स्वीकृति के लिए लॉर्ड इस्मे ने एक योजना बनाई। इसमें कैबिनेट की रक्षा समिति और अनेक उपसमितियों के गठन की कल्पना की गई थी। भारत की स्वतन्त्रता के कुछ ही मास के भीतर कैबिनेट की रक्षा समिति, रक्षामंत्री की (अन्तर सेवा) समिति, सेनाध्यक्षों की समिति आदि के गठन की स्वीकृति सरकार द्वारा प्रदान कर दी गई और कुछ वर्तमान समितियों को भी उच्चतर रक्षा नियन्त्रण की सामान्य योजना में संयोजित कर दिया गया।

जिन समितियों में रक्षामंत्री उपस्थित रहता है उन सभी के संगठन और कार्यों का वर्णन निम्न प्रकार है:—

(१) कैबिनेट की रक्षा समिति:

संगठन.

अध्यक्ष:

प्रधानमंत्री

सदस्य.[18]

रक्षामंत्री

गृहमंत्री

वित्तमंत्री

रेलमंत्री

उद्योग एवं व्यापार मंत्री

यातायात एवं संचार मंत्री

उपस्थित रहने वाले :

रक्षा उपमंत्री (प्रथम)

रक्षा उपमंत्री (द्वितीय)

---

१८ आरम्भ में शिक्षामन्त्री स्वर्गीय मौलाना आजाद और उनके निधन के पश्चात् उद्योग एवं व्यापार मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री को उनकी विशिष्ट पृष्ठभूमि और अनुभव के कारण कैबिनेट की रक्षा समिति का सदस्य मनोनीत किया गया।

रक्षा मंत्रालय का सचिव
स्थल सेनाध्यक्ष
नौ सेनाध्यक्ष
वायु सेनाध्यक्ष
वित्तीय परामर्शदाता (रक्षा)

सचिवालय :

कैबिनेट सचिवालय

कार्य :

रक्षा सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर कैबिनेट की ओर से रक्षा समिति विचार करती है और आवश्यक मामलों की सूचना कैबिनेट को देती है।

इस समिति का विवरण पहले ही दिया जा चुका है। यहाँ पर इसका जिक्र इसलिए कर दिया गया है कि उन सभी समितियों को एक स्थान पर दे दिया जाए जिनमे रक्षामंत्री उपस्थित रहता है।

(२) रक्षामंत्री की (अन्तर सेवा) समिति :

संगठन :

अध्यक्ष :

रक्षामन्त्री

सदस्य :

रक्षा उपमन्त्री (प्रथम)
रक्षा उपमन्त्री (द्वितीय)
रक्षा मत्रालय का सचिव
स्थल सेनाध्यक्ष
नौ सेनाध्यक्ष
वायु सेनाध्यक्ष
वित्तीय परामर्शदाता (रक्षा)

सचिवालय :

कैबिनेट सचिवालय (सैनिक विभाग)

कार्य :

जो विषय इतने अधिक मूल्यवान न हों कि उन्हें कैबिनेट की रक्षा समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाए, उन सभी महत्वपूर्ण विषयों पर यह समिति निर्णय देती है।

रक्षामन्त्री की (अन्तर सेवा) समिति के अतिरिक्त रक्षामन्त्री की (स्थल सेना) समिति, रक्षामत्री की (नौसेना) समिति और रक्षामन्त्री की (वायुसेना) समिति भी होती है। ये समितियाँ विशिष्ट सेवाविषयक मुख्य नीति सम्बन्धी प्रश्नों

पर विचार करती हैं, रक्षामन्त्री इनका अध्यक्ष होता है और दो उपमन्त्री, सचिव, वित्तीय परामर्शदाता और सम्बन्धित सेवा का अध्यक्ष इनके सदस्य होते हैं।

रक्षामन्त्री निम्नलिखित समितियों का भी अध्यक्ष होता है।

(१) रक्षामन्त्री की वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास समिति
(२) रक्षामन्त्री की पेंशन सम्बन्धी अपील समिति
(३) रक्षामन्त्री की उत्पादन समिति
(४) केन्द्रीय सम्मान और पुरस्कार समिति

सेनाध्यक्षों की समिति का सहायक संगठन :

यूनाइटेड किंगडम के प्रतिरूप पर आधारित अनेक समितियाँ सेनाध्यक्षों की समिति की सहायता करती हैं। इनमें संयुक्त नियोजन समिति, संयुक्त प्रशासन नियोजन समिति और संयुक्त सूचना समिति शामिल हैं और ये सामरिक योजनाओं और सैनिक मूल्यांकनों की तैयारी में सेनाध्यक्षों की सहायता करती हैं।

तीनों सेवाओं की संयुक्त कार्मिक और रसद सम्बन्धी समस्याओं का समन्वय करने के लिए प्रमुख कार्मिक अधिकारी समिति और प्रमुख आपूर्ति अधिकारी समिति जैसी कई अतिरिक्त अन्तर सेवा समितियाँ होती हैं। ये दोनों समितियां रक्षामन्त्री की (अन्तर सेवा) समिति के निर्देशन के अधीन कार्य करती हैं और सीधे उसी समिति के प्रति उत्तरदायी होती हैं। प्रमुख कार्मिक अधिकारी समिति कर्मचारियों की सेवा शर्तों, अनुशासन, वर्दी, अवकाश, भर्ती आदि से सम्बन्धित विषयों पर विचार करती है। प्रमुख आपूर्ति अधिकारी समिति का कार्य :

(अ) निर्माण पुनर्निरीक्षण एवं प्राथमिकता
(आ) आपूर्ति और रसद
(इ) आवासन
(ई) संवाद और यातायात (जल, स्थल और वायु)
(उ) लघुशिल्प
(ऊ) भ्रंश उद्धार
(ए) आवश्यकता से अधिक वस्तुओं की व्यवस्था
(ऐ) अल्पाहार-गृह
(ओ) आधार पर डाक सेवाओं सम्बन्धी नीति पर अथवा अन्तर-सेवा विषयों पर रक्षामन्त्री की (अन्तर सेवा) समिति को परामर्श देना है।

विज्ञान की भूमिका :

नए आयुधों का आविष्कार और आग्नेय अस्त्रों की क्षमता वृद्धि के उपायों का विकास संसार की प्रमुख शक्तियों के रक्षा संगठन का विशिष्ट लक्षण रहे हैं और इस उपलब्धि के लिए उपभोक्ता सेवाओं और वैज्ञानिकों में घनिष्ठ सम्बन्ध होना आवश्यक है अतः चतुर्थ अंग के नाम से अभिहित यह कार्य भी रक्षा मन्त्रालय को सौंपा गया है। सभी रक्षा मन्त्रालयों का लक्षण होने के कारण भारत भी इस नियम

का अपवाद नहीं है। कनाडा, आस्ट्रेलिया और यूनाइटेड किंगडम में रक्षा विज्ञान का विकास पूर्णतः रक्षामन्त्रालय संगठन के कार्यक्षेत्र में आगया है। भारत में रक्षामन्त्री की वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास समिति है जो रक्षा संगठन में वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास सम्बन्धी सभी मामलों की देखभाल करती है। अध्यक्ष (रक्षामन्त्री) के अतिरिक्त रक्षा उपमन्त्री, रक्षामन्त्रालय के सचिव और अतिरिक्त सचिव, तीनों सेवाध्यक्ष, वैज्ञानिक सलाहकार और वित्तीय सलाहकार इस समिति के सदस्य होते हैं। रक्षा उत्पादन का महानियंत्रक, आयुध फैक्ट्रियों का महानिदेशक, मुख्य नियंत्रक (अनुसंधान और विकास) और तकनीकी विकास और उत्पादन का निदेशक (वायु) भी इस समिति की बैठकों में उपस्थित रहता है।

अनुसंधान और विकास समिति भी रक्षा मंत्रालय के अधीन कार्यरत निकाय है और वैज्ञानिक सलाहकार इसका अध्यक्ष होता है। इसका कार्य रक्षा अनुसंधान नीतियों के निर्माण में सहायता करना, रक्षा अनुसंधान और विकास पर सलाह देना तथा विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और अनुसंधान संस्थाओं को रक्षा अनुसंधान कार्यक्रमों के बंटवारे के विषय में सरकार से सिफारिश करना है। अन्य सब सदस्यों के साथ इस समिति में भारत के तीन विख्यात वैज्ञानिक भी होते हैं।

(VI) मलय संघ

राष्ट्रमण्डल के नए संघों में से मलय में स्थापित रक्षातंत्र का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। मलय संघ के संविधान का निर्माण ब्रिटिश सहयोग से हुआ था और यह यूनाइटेड किंगडम के कौन्सिल के एक आदेश [19] में समाहित है, अतः इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि रक्षा नियोजन व्यवस्था में भी कुछ सीमा तक यूनाइटेड किंगडम की स्थिति प्रतिबिम्बित होती है।

जैसाकि संघ में बहुधा होता है संविधान के अनुसार संघ के विदेशी मामले और रक्षा सम्बन्धी विषय केन्द्रीय क्षमता के अधीन हैं [20] और अवशिष्ट शक्ति राज्यों के पास है। [21] कार्यकारी शक्ति याग डि-परटुअन अगांग में निहित होती है जिसे शासकों की सभा चुनती है और जो संघ का सर्वोच्च अध्यक्ष होता है। [22] इस रूप में वह अनुच्छेद ४१ [23] के अनुसार संघ की सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति होता है। प्रजातंत्रीय सिद्धान्तों के अनुसार इस बात का स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि

---

१६ १९५७ का संख्या ११३३
२० नवीं अनुसूची के साथ अनु० ७४
१ अनुच्छेद ७३
२२ अनुच्छेद ३२ और ३९
२१ शेरीडन : मलय संघ का संविधान- १९६१ पृ० ५१

"इस संविधान अथवा संघ अधिनियम के अधीन यांग डि-परटुअन अगांग कैबिनेट अथवा कैबिनेट के सामान्य अधिकार के अधीन कार्यरत किसी मंत्री की सलाह के अनुसार कार्य करेगा।" यद्यपि अनुच्छेद ४०[24] में यह प्रावधान किया गया है कि प्रधानमंत्री की नियुक्ति में यांग डि-परटुअन अगांग स्वेच्छा से कार्य करेगा पर वास्तव में इस स्वेच्छा पर भी कुछ रोक लगा दी गई है। इस प्रकार अनुच्छेद ४३ यह निश्चित करता है कि संघ का अध्यक्ष अपने कार्यपालन में परामर्श देने वाली कैबिनेट को किस प्रकार नियुक्त करेगा। प्रथम तो वह "प्रतिनिधि सदन के उस सदस्य को प्रधानमंत्री नियुक्त करेगा जिस पर उसके मतानुसार उस सदन के बहुमत का विश्वास हो" फिर प्रधानमंत्री की सलाह से संसद के दोनों सदनों में से अन्य कैबिनेट मंत्री नियुक्त करेगा। आगे चलकर उसी अनुच्छेद में संसद के प्रति कैबिनेट के सामूहिक उत्तरदायित्व की शर्त रखी गई है, और यह प्रावधान किया गया है कि यदि प्रतिनिधि सदन का विश्वास प्रधानमंत्री में न रहे तो या तो उसे त्यागपत्र देना चाहिए या सदन भंग कर देने की मांग करनी चाहिए।

अतः यह स्पष्ट है कि मलय संघ में रक्षा का प्रजातान्त्रिक नियन्त्रण एक सुस्थापित संवैधानिक सिद्धान्त है। संघ का अध्यक्ष नाममात्र के लिए सर्वोच्च सेनापति है। असल में रक्षा नीति पर वास्तविक नियन्त्रण प्रधानमंत्री और उसकी कैबिनेट और अन्ततः प्रतिनिधि सदन का होता है जिसके प्रति वे उत्तरदायी होते हैं।

सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति के रूप में यांग डि-परटुअन अगांग की सहायता करने के लिए संविधान द्वारा एक सशस्त्र सेनापरिषद् स्थापित की गई है।[25] संघ के अध्यक्ष के सामान्य अधिकार के अधीन कार्यवाही सम्बन्धी प्रयोग के अतिरिक्त सशस्त्र सेनाओं सम्बन्धी सभी मामलों के लिए यह परिषद् उत्तरदायी है। परिषद् में निम्नलिखित सदस्य होते हैं—

(१) रक्षामंत्री जो इसकी अध्यक्षता करता है।
(२) केन्द्र से भिन्न राज्यों को प्रतिनिधित्व देने के लिए शासकों की सभा द्वारा नियुक्त एक मंत्री।
(३) संघीय सेना का जनरल कमान अधिकारी। उसे यांग डि-परटुअन अगांग नियुक्त करता है और वह संघीय सशस्त्र सेनाओं का सेनाध्यक्ष भी होता है।
(४) स्थल सेना का वरिष्ठ स्टाफ अधिकारी (कार्मिक)
(५) स्थल सेना का वरिष्ठ स्टाफ अधिकारी (क्वार्टर मास्टर)
(६) संघीय नौसेना का कमाण्डर।
(७) संघीय वायुसेना का कमाण्डर

---

२४ शेरीडान : वही, पृ० ९१
२५ शेरीडान वही पुस्तक, पृ० १२८-१२६, अनुच्छेद १३७।

(८) एक असैनिक रक्षा सचिव जो सशस्त्र सेनापरिषद के सचिव का कार्य भी करता है, तथा

(९) मॉग हिन्दुस्तान अफगान द्वारा नियुक्त अधिक से अधिक एक और असैनिक अथवा सैनिक सदस्य ।

इस सर्वोच्च रक्षा निकाय में असैनिक विशेषज्ञों तथा वैज्ञानिकों के प्रतिनिधित्व के विषय में संविधान में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है। फिर भी सशस्त्र सेना परिषद को अपने कार्य-संगठन और कार्य-संचालन के तरीकों का प्रावधान करने का अधिकार प्राप्त है। अपने सदस्यों के अतिरिक्त यह अन्य व्यक्तियों से भी परामर्श कर सकती है। अतः विशेषज्ञों को आमन्त्रित करना अथवा विशेषज्ञ उपसमितियाँ नियुक्त करना बड़ा ही सरल है। इस प्रकार रक्षा नियोजन एक असैनिक-सैनिक निकाय के हाथ में है जिसमें तीनों सेवाओं के वरिष्ठ अधिकारी शामिल होते हैं। यद्यपि सैनिक सदस्यों का बहुमत होता है फिर भी इसका अध्यक्ष और सचिव दोनों ही असैनिक व्यक्ति होते हैं। साथ ही, मंत्री होने के कारण अध्यक्ष कैबिनेट और संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।

परिशिष्ट 'ब' (देखिये पृष्ठ १७८)

कनाडा का रक्षा संगठन

राष्ट्रीय रक्षामन्त्री
(राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम १९५० का अनुच्छेद ३)

राष्ट्रीय रक्षा उपमन्त्री
(राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम १९५० का अनुच्छेद ७ (१))

राष्ट्रीय रक्षा विभाग

- रक्षा परिषद्
- सेनाध्यक्षों की समिति
- कार्मिक सदस्य समिति
- प्रमुख आपूर्ति अधिकारी समिति
- अन्तर-सेवा भरती समिति

- (१) कनाडियन सेनाएँ
  - नौ सेना — नौसेनाध्यक्ष (रा० र० अ० का अनु० १९)
    - सेनाध्यक्ष
    - कार्मिक अध्यक्ष
    - नौ सैनिक उड्डयन अध्यक्ष
    - नौ सैनिक अभियांत्रिक और निर्माण अध्यक्ष
  - स्थल सेना — स्थल सेनाध्यक्ष (रा० र० अ० का अनु० १९)
    - जनरल स्टाफ
    - अडजुटैंट जनरल
    - क्वार्टर मास्टर जनरल
    - प्रमुख आयुध अधिकारी
  - वायु सेना — वायुसेनाध्यक्ष (रा० र० अ० का अनु० १९)
    - वायु स्टाफ विभाग
    - वायु कार्मिक विभाग
    - साज-समान और विकास विभाग
- (२) रक्षा अनुसन्धान परिषद् (रा० र० अ० का अनु० ५३)
- (3) नागरिक रक्षा

नोट :—इस चार्ट की रचना अनेक पुस्तकों के अध्ययन के पश्चात् की गई है। यह किसी प्रकाशित अथवा अप्रकाशित चार्ट की पुनरावृत्ति नहीं है।

रा० र० अ०=राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम

५

संयुक्त राज्य अमरीका का रक्षातंत्र

सांविधानिक स्थिति

संयुक्त राज्य का संविधान इस बात का प्रावधान करता है कि रक्षा और विदेशी मामले राष्ट्रीय विषय होंगे और संघ में शामिल राज्यों को इन क्षेत्रों में कोई स्वतन्त्र सत्ता न होगी। इस अर्थ में संविधान संघीय संविधान का आदर्श प्रस्तुत करता है क्योंकि इसमें संघीय सरकार और संघ में शामिल राज्यों की शक्तियों और प्रभुसत्ता का विभाजन करके अवशिष्ट अधिकार-क्षेत्र राज्यों को प्रदान किया गया है। संविधान की प्रस्तावना जिसमें इसके उद्देश्यों का वर्णन किया गया है उस मूल प्रयोजन पर बल देती है जिसे प्राप्त करने हेतु संघ में शामिल राज्यों ने संघीय केन्द्र स्थापित करने के लिए आपस में समझौता किया। इसमें संयुक्त रक्षा प्रदान करना और "आंतरिक शान्ति सुनिश्चित करना" मूल उद्देश्यों के रूप में वर्णित किए गए हैं। इस प्रकार संविधान के चौथे अनुच्छेद के चौथे अनुभाग में कहा गया है, कि संघीय सरकार संघ में शामिल प्रत्येक राज्य की बाह्य आक्रमण से तथा 'किसी राज्य की विधायिका सभा अथवा कार्यकारिणी की प्रार्थना पर आंतरिक झगड़ों से' उसकी रक्षा करेगी। यद्यपि राज्य को अपनी सत्ता पालन कराने के उद्देश्य से नागरिक सेना रखने की आज्ञा है परन्तु कांग्रेस की आज्ञा बिना शान्तिकाल में सेनाएँ और जलयान रखने या आक्रमण अथवा तुरन्त खतरे की आशंका हुए बिना किसी पर आक्रमण करने की आज्ञा नहीं है।

रक्षा व्यवस्था सैनिक अधिकारियों पर असैनिक अधिकारियों की सर्वोच्चता के महान सिद्धान्त के अनुसार चलाई जाती है। इसे प्राप्त करने के लिए राष्ट्रपति और कांग्रेस की शक्तियों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि इनमें सैनिक अधिसत्ता के लिए स्थान नहीं रह गया है। इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध काल में सेनाओं को पहले युद्ध के यूरोपीय क्षेत्र में केन्द्रित किया जाए अथवा प्रशान्त क्षेत्र में, मुख्य आक्रामक कार्यवाही कहाँ की जाए, मोटे तौर पर सेनाओं का बंटवारा किस प्रकार हो आदि नीति सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्न अन्तिम विश्लेषण में स्वयं राष्ट्रपति द्वारा तय किए गए थे। इस प्रकार नीति नियोजन में शीर्ष स्थान प्राप्त होने के

कारण राष्ट्रपति को संयुक्त सेनाध्यक्षों की दक्ष योजनाएँ स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार है। यद्यपि सचिवालय स्टाफ राष्ट्रपति की सहायता करता है, परन्तु कठोर सांविधानिक सिद्धान्त के अनुसार वह न तो कांग्रेस और न निर्वाचक मण्डल के प्रति उत्तरदायी है। केवल राष्ट्रपति को ही संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त है तथा रक्षा का सर्वोच्च उत्तरदायित्व उसी का है। इस प्रकार पूर्ण कार्यकारी शक्तियों से सम्पन्न वही सर्वोच्च राजनीतिक अवयव है।

राष्ट्रपति

राष्ट्रीय रक्षा में संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति केन्द्रीय व्यक्ति है क्योंकि विधायिनी शक्ति से अलग कार्यकारी शक्ति (जैसाकि यूनाईटेड किंगडम में सम्भव नहीं है) और सभी सशस्त्र सेनाओं की कमान,[1] दोनों ही उसके हाथों में सौंपी गई हैं। अविभाज्य रूप से रक्षा समस्या से संयुक्त विदेश विभाग के संचालन का महत्त्वपूर्ण कार्य भी पूरी तरह उसके हाथों में है।

सशस्त्र सेनाओं के प्रधान सेनापति के रूप में युद्ध के अतिरिक्त राष्ट्रपति अनेक सैनिक कदम उठा सकता है।[2] लम्बे समय से यह स्वीकार किया जाता रहा है कि विधायिका से स्वीकृति प्राप्त किए बिना भी वह संयुक्त राज्य के 'अधिकसित हितों" की सुरक्षा के लिए आवश्यक कदम उठा सकता है।[3]

निस्सन्देह कांग्रेस द्वारा घोषणा किए बिना राष्ट्रपति को आक्रमण अथवा जबरदस्ती युद्ध आरम्भ करने का अधिकार नहीं है। सामान्यतः संयुक्त राज्य के विरुद्ध आक्रमण की स्थिति में ही राष्ट्रपति को आपातकालीन कदम उठाने का अधिकार है। उस दशा में वह सेनाएँ बुला सकता है, नागरिक सेना और राष्ट्रीय रक्षक संगठित कर सकता है और सशस्त्र प्रतिरोध के वे सभी पग उठा सकता है जो संयुक्त राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक हैं। सिद्धान्त रूप में यह कार्यों का आवश्यक विभाजन है क्योंकि यह स्पष्ट है कि अचानक आक्रमण का सामना करने के लिए कार्यकारी शक्ति होनी चाहिए। रक्षात्मक युद्ध की परिभाषा करना कठिन है। १९४५ के पश्चात् अनुभव ने सिद्ध किया है कि जितना ही भड़काने वाला आक्रमण

१ संविधान के अनुच्छेद II का अनुभाग II कहता है

"राष्ट्रपति संयुक्त राज्य की स्थलसेना, नौसेना, और संयुक्त राज्य की वास्तविक सेवा के लिए आमन्त्रित अनेक राज्यों की नागरिक सेनाओं का प्रधान सेनापति होगा, प्रत्येक कार्यकारी विभाग के प्रमुख अधिकारी से वह उनके पदेन कार्यों सम्बन्धी किसी भी विषय में लिखित परामर्श प्राप्त कर सकता है और महाभियोग के मामलों के अतिरिक्त संयुक्त राज्य के विरुद्ध अपराधों के लिए क्षमादान या समय की मोहलत देने का भी उसे अधिकार है।"

२ उदाहरणार्थ देखिए एल० सी० ग्रीन 'सशस्त्र मर्यादा, युद्ध और आक्रमण" 6 Archiv Des Volkerrechts. 1957 P. 387 at pp 394, 404-403.

३ देखिए Prize Cases (1862)2 Black 635.

होता है उसे उतने ही जोर से शुद्ध आत्मरक्षा के लिए आवश्यक कदम घोषित किया जाता है और दुष्टों 'शिकार' के धमकी भरे रुख के कारण आवश्यक बताया जाता है।[4] कोई भी देश स्वयं यह स्वीकार नहीं करना चाहता कि उसने आक्रमणकारी युद्ध छेड़ा है। अतः यह सम्भव है कि अपने द्वारा उठाए गए किसी भी सैनिक कदम को राष्ट्रपति अपनी क्षमता के भीतर कांग्रेस के अधिकार-क्षेत्र से मुक्त रक्षात्मक कार्यवाही सिद्ध करेगा।

युद्ध की वास्तविक घोषणा कांग्रेस द्वारा सामान्य विधायिका उपायों से की जानी चाहिए। वास्तव में कांग्रेस को राष्ट्रपति की सिफारिश पर कार्य करना पड़ता है, क्योंकि युद्ध की घोषणा करने की सिफारिश वह तभी करता है जब वह अपने कार्य-संचालन द्वारा युद्ध को दूर रखने में असमर्थ हो जाता है। इतिहास से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति की प्रार्थना पर कांग्रेस ने सदा युद्ध की घोषणा की है, भले ही उसके द्वारा विदेश विभाग के संचालन पर उसे कितना ही सन्देह क्यों न रहा हो।

संविधान निर्माताओं ने अनुभव कर लिया था कि ऐसी कमान मुख्य कार्यकारी के हाथ में ही होनी चाहिए अतः राष्ट्रपति स्थल सेना, नौ सेना, तथा एक बार संयुक्त राज्य की सेवा में बुला लिए जाने पर राष्ट्रीय रक्षकों का प्रधान सेनापति होता है। इस रूप में उसकी सत्ता विधानसभा अथवा न्यायपालिका के सभी नियंत्रणों एवं बन्धनों से मुक्त है। किसी भी सैनिक सचालक की भाँति राष्ट्रपति युद्धक्षेत्र में कमान सम्भाल सकता है पर वाशिंगटन द्वारा थोड़े समय के लिए युद्धक्षेत्र में उतरने के अतिरिक्त उसने कभी ऐसा नहीं किया है। युद्ध और शान्तिकाल में सेना की गतिविधि और व्यवस्था पर उसका नियन्त्रण होता है। युद्ध की सामरिकता का सर्वोच्च निर्देशन भी उसके हाथों में होता है, भले ही व्यवहार में वह सामान्यतः अपने सेनाध्यक्षों की सलाह से कार्य करता है। फिर भी अन्तिम उत्तरदायित्व उसी का है और बहुधा उसे ही इसका वहन करना पड़ता है; जैसाकि सामरिक मामलों में निर्णय लेने के लिए राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने १९४१ से १९४५ तक प्रधानमन्त्री चर्चिल के साथ अपनी गोष्ठियों में किया। सीनेट की सहमति से राष्ट्रपति सभी अधिकारियों की नियुक्ति करता है। सीनेट युद्धकाल में केवल वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति के समय ही अपने अधिकार का प्रयोग करती है।[5] अधिकारियों को पदमुक्त करने तथा उन्हें एक पद या स्थान से दूसरे पर स्थानान्तरित करने का उसे पूर्ण अधिकार होता है। सिद्धान्त रूप से वह यह सुनिश्चित कर सकता है कि उसका विरोधी कोई भी जनरल या नौसेनाधिकारी शक्ति अथवा प्रभाव के किसी पद पर न रहे।

४　देखिए ग्रीन, वही।

५　देखिए संविधान का अनुच्छेद II अनुभाग II

सरकार की राजनीतिक शाखाओं और नौसेनाओं के व्यावहारिक अध्यक्षों के बीच मध्यवर्ती का कार्य करने वाले युद्ध और नौसेना के असैनिक सचिव (और १९४७ से रक्षा और वायुसेना के सचिव भी) उसकी सहायता करते हैं। सेनाध्यक्ष इन सचिवों को युद्ध के तकनीकी पहलुओं पर परामर्श देते हैं। १७८९ में राष्ट्रपति की परामर्शदाता समिति की पहली बैठक से ही युद्ध सचिव इसका एक सदस्य होता था—यह रक्षा के महत्त्व का एक उदाहरण है। संविधान की स्थापना के तुरन्त बाद जॉन ऐडम्स का यह विचार कि "राष्ट्रीय रक्षा किसी भी राजनीतिज्ञ का मुख्य कर्त्तव्य है" वाशिंगटन द्वारा स्वीकार कर लिया गया था।

राज्य की सर्वधानिक रचना में राष्ट्रपति की तथाकथित परिषद को कोई केन्द्रीय मान्य स्थिति प्राप्त नहीं है। यह केवल सलाहकार निकाय थी और अब भी है। इस पर विधानसभा का नियन्त्रण नहीं है और न ही यह उसके प्रति उत्तरदायी है। इस प्रकार कार्यकारिणी के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तावित किसी प्रस्ताव के कांग्रेस में पराजित हो जाने पर भी कैबिनेट के किसी एक या सभी सदस्यों को त्याग-पत्र देने की आवश्यकता नहीं। संविधान में ऐसी व्यवस्था है कि राष्ट्रपति विभागाध्यक्षों से उनके पदों से सम्बन्धित विषयों पर लिखित राय माग सकता है।[6] ऐसा कोई सांविधानिक प्रावधान नहीं है जिसके द्वारा राष्ट्रपति को आवश्यक रूप से अपनी कैबिनेट की बैठक बुलानी पड़े अथवा उससे परामर्श लेना पड़े।

राष्ट्रपति कैबिनेट के सदस्यों की नियुक्ति करता है; वे केवल उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं और उनसे उसके साथ मैत्रीपूर्वक कार्य करने की अपेक्षा की जाती है क्योंकि कार्यकारिणी में कम से कम बाह्य एकता तो होनी ही चाहिए। जिस संविधि द्वारा युद्ध विभाग की स्थापना की गई थी उसमें यह स्पष्ट किया गया था कि यह एक कार्यकारी अवयव होगा और युद्ध सचिव केवल राष्ट्रपति के अधीन और उसी के प्रति उत्तरदायी होगा। संयुक्त राज्य तन्त्र का यह तत्त्व है कि इसमें राष्ट्रपति की तथाकथित कैबिनेट की नियुक्ति से उत्तरदायित्व का विभाजन नहीं होता, क्योंकि नियम और संविधान के अनुसार सभी कार्यकारी कार्यों का सर्वोच्च उत्तरदायित्व स्पष्ट और पूर्ण रूप से केवल राष्ट्रपति का है और वह इसे अपने किसी सलाहकार सचिव अथवा संयुक्त सेनाध्यक्ष पर नहीं डाल सकता। इस प्रकार उच्चतर रक्षानीति-नियोजन की एकमात्र केन्द्रीय धुरी राष्ट्रपति है और इस रूप में दक्ष सैनिक नियोजकों का विस्तृत संगठन उसकी भलीभाँति सहायता करता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१७९८ में युद्ध विभाग को स्थल सेना और नौसेना के दो भागों में बाँट दिया गया जिनका अपना अलग-अलग सचिव होता था। सशस्त्र सेनाओं के प्रधान

---

६ संविधान का अनुच्छेद II अनुभाग II

सेनापति की समग्र क्षमता में राष्ट्रपति दोनों सेवाओं के मध्य एकमात्र संगठनात्मक कड़ी प्रस्तुत करता था। वायु शक्ति का जन्म होने पर "किसी भी सामरिक कार्य-वाही के लिए उपयुक्त आयुधों के रूप में" वायुयानों की आवश्यक संख्या रखने का स्थल सेना और नौसेना दोनों के लिए प्रावधान किया गया। नौसैनिक उड्डयन के सम्बन्ध में स्थिति अभी भी ऐसी ही है, परन्तु १९३४ में वायु सेना का जनरल मुख्यालय स्थापित करके स्थल सेना की वायुशक्ति को अलग स्तर प्रदान कर दिया गया। इस प्रकार एक अलग सेवा को मान्यता प्राप्त हो गई यद्यपि नाम भर के लिए अभी भी वह स्थल सेना के वास्तविक समग्र नियन्त्रण के अधीन उसी का एक भाग थी। १९४१ में जनरल मार्शल का प्रशासनिक पुनर्गठन हो जाने पर युद्ध विभाग में वायुसेनाध्यक्ष को स्थलसेनाध्यक्ष के समकक्ष पदोन्नत कर दिया गया। एक अलग सचिव सहित वायु सेना को स्थल सेना और नौसेना के समकक्ष बनाने तथा तीनों सेवाओं को रक्षा सचिव के अधीन एक संगठन में लाने का कार्य राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम १९४७ के लिए छोड़ दिया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध काल में "जनरल स्टाफ"

द्वितीय विश्वयुद्ध के संचालन हेतु युद्ध विभाग के जनरल स्टाफ की पुनर्व्यवस्था सहित उच्चस्तरीय सैनिक नियोजन संगठन का १९४२ में पुनर्गठन किया गया। १९०३ तक रणक्षेत्र में सेना स्थल सेना के एक वरिष्ठ सैनिक अधिकारी कमांडिंग जनरल के अधीन रहती थी। आपूर्ति और प्रशासनिक अंगों के संचालक एडजुटान्ट जनरल के विभाग के माध्यम से युद्ध सचिव को सीधे प्रतिवेदन प्रस्तुत किया करते थे। १९०३ में स्थल सेना के कमांडिंग जनरल का पद समाप्त करके प्रथम सेनाध्यक्ष की नियुक्ति की गई। स्थल सेना के प्रधान सेनापति के रूप में राष्ट्रपति अपनी शक्ति का प्रयोग युद्ध सचिव के माध्यम से करता था, जो तकनीकी सलाह, रणक्षेत्र की सेनाओं के निर्देशन तथा युद्ध विभाग एवं स्थल सेना सम्बन्धी मामलों के समन्वय के लिए सेनाध्यक्ष पर निर्भर करता था। सेनाध्यक्ष के अधीन जनरल स्टाफ सारे सैनिक मामलों के नियोजन, समन्वय और निरीक्षण के लिए उत्तरदायी था। सभी आपूर्ति और प्रशासनिक सेवाओं को उनकी पहली स्वतन्त्रता से वंचित करके विशिष्ट स्टाफ के नाम से अभिहित युद्ध विभाग के एक समूह के अन्तर्गत रख दिया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व संयुक्त राज्य के नौ कोर क्षेत्रों और अनेक समुद्रपार रण क्षेत्रों के कमांडिंग जनरल एडजुटान्ट जनरल के कार्यालय के माध्यम से सेनाध्यक्ष को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते थे। १९४२ में युद्ध विभाग की कार्यवाही के सरली-करण और केन्द्रीकरण के उद्देश्य से उसका पुनर्गठन किया गया। विभिन्न अंगों और सेवाओं के प्रधानों के कार्यालय स्थल सेना भूमि सेनाओं, स्थल सेना वायुसेनाओं और स्थल सेना सेवा सेनाओं की तीन मुख्य कमानों में समूहबद्ध कर दिए गए। संयोग संचालक स्थल सेना सेवा सेनाओं के कमांडिंग जनरल, सैनिक स्कूलों और भूमि सेनाओं के नागरिक संगठनों के संचालक स्थल सेना भूमि सेनाओं के कमांडिंग जनरल को,

और संयुक्तराज्य की सभी वायु इकाइयाँ स्थल सेना वायु सेनाओं के कमांडिंग जनरल को जो व्यवहारतः विदेश स्थित वायुसेनाओं का भी नियंत्रण करता था, प्रतिवेदन प्रस्तुत किया करते थे।[7]

युद्ध काल में सेनाध्यक्ष द्वारा प्रतिदिन एक सभा करने की प्रथा पड़ गई थी। सभा में उपस्थित रहकर युद्ध सचिव सैनिक मामलों में सेनाध्यक्षों को पूरी स्वतंत्रता दे दिया करता था, और राजनीतिक निहितार्थ वाले सभी प्रश्नों पर सेनाध्यक्ष सचिव की सम्मति लेता था। जनरल स्टाफ स्तर पर ये सभी सभाएँ आवश्यक रूप से कार्यवाही सम्बन्धी होती थीं। लगभग प्रति दो सप्ताह में युद्ध सचिव स्वयं अपनी युद्ध परिषद की गोष्ठी किया करता था। इन सभाओं में युद्ध के अवर सचिव तथा सहायक सचिव, सेनाध्यक्ष और उसका सहकारी तथा तीनों प्रमुख कमानों के कमांडिंग जनरल उपस्थित रहा करते थे। इन गोष्ठियों में युद्ध विभाग के नीति सम्बन्धी सभी मामलों पर विचार विमर्श हुआ करता था।

युद्ध विभाग में होने वाला अधिकतर नियोजन संयुक्त सेनाध्यक्षों के लिए प्रारंभिक अथवा सहायक हुआ करता था। सैनिक नीति और सामरिक समस्याओं सम्बन्धी शीघ्र निर्णय के लिए आवश्यक निकाय के रूप में सेनाध्यक्षों का उदय हुआ। राष्ट्रपति के स्टाफ का अध्यक्ष, स्थल सेनाध्यक्ष, स्थल वायुसेनाओं का सेनाध्यक्ष और नौसैनिक कार्यवाही का अध्यक्ष इस संस्था के सदस्य होते थे और यह उच्चस्तरीय समस्याओं पर विचार-विमर्श करती थी। यह सेवा और रणक्षेत्रों की विरोधी मांगों का निष्पक्ष मूल्यांकन कर सकती थी जबकि अपनी निजि सेवाओं की ओर सामान्य झुकाव वाला जनरल स्टाफ ऐसा नहीं कर सकता था। अतः युद्ध के सामरिक संचालन, भोजन-आपूर्ति एवं युद्ध सामग्री के विभाजन तथा यातायात की आवश्यकताओं सम्बन्धी सभी योजनाओं और नीतियों का संयुक्त सेनाध्यक्ष निरीक्षण करते थे। संयुक्त नियोजन के उद्देश्य से इस निकाय के ब्रिटिश सेनाध्यक्षों से संयुक्त कर दिए जाने पर इस विस्तृत समूह का संयुक्त सेनाध्यक्षों का नाम दिया गया।

स्थल सेना की जनरल स्टाफ प्रणाली चाहे कितनी भी सन्तोषप्रद क्यों न रही हो उच्चस्तर पर रक्षा के समन्वय के लिए अभी काफी कुछ करना अपेक्षित था। उदाहरणार्थ, आवश्यक कार्यवाही के लिए उचित नियोजन करने में संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति का कार्य इसके प्रत्येक सदस्य को वीटो जैसा अधिकार प्राप्त होने के कारण असन्तोषजनक था। इस निकाय के अतिरिक्त समन्वय का कार्य मुख्यतः राज्य, युद्ध और नौसेना विभाग के तीन असैनिक सचिवों की अनौपचारिक गोष्ठियों अथवा राष्ट्रपति द्वारा बुलाए गए इन अधिकारियों और सैनिक संचालकों की गोष्ठियों पर छोड़ दिया गया था। इस प्रकार युद्धकाल में और विशेष रूप

---

७ पृष्ठ २१६ पर इस अध्याय का परिशिष्ट 'अ' देखिए।

से इसके तुरत बाद के वर्षों मे सेवाओं के बीच काफी संघर्ष और विशिष्ट शक्ति किसके पास है इस विषय मे काफी सन्देह बना रहा। १६४७ मे राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम द्वारा एक नए राष्ट्रीय रक्षा सगठन की स्थापना की गई।

राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, १६४७

राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम १६४७ के द्वितीय अनुभाग में वर्णित "नीति-घोषणा" में कहा गया है कि इस अधिनियम का उद्देश्य-

(अ) उनके (स्थल सेना, नौ सेना और वायु सेना) के समन्वयन और असैनिक नियन्त्रण के अधीन विलय नहीं वरन् एकीकृत निर्देशन का प्रावधान करना,

(आ) सशस्त्र सेनाओ के प्रभावी सामरिक निर्देशन और स्वीकृत नियंत्रण के अधीन उनकी कार्यवाही का प्रावधान करना, और

(इ) उनके एकीकरण द्वारा स्थल, जल और वायुसेनाओं की एक कार्यकुशल टीम तैयार करने का प्रावधान करना था।[8]

इस प्रकार १६४७ के अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा के समग्र सगठन के भीतर एक त्रिगुण तत्र की स्थापना की गई।[9] राष्ट्रीय सुरक्षा संगठन के तीन आधारस्तम्भ यथा राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद, राष्ट्रीय सैनिक प्रतिष्ठान, और राष्ट्रीय

---

[8] ४० वीं कांग्रेस का जन नियम सं २५३ : अध्याय ३४३ अनुच्छेद ७५८। राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम १६४७ में निहित आधारभूत नीति का निम्न प्रकार वर्णन किया गया है। "इस अधिनियम द्वारा, कांग्रेस का इरादा भविष्य में संयुक्त राज्य की सुरक्षा के लिए एक विस्तृत कार्यक्रम तैयार करना, राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी सरकार के कार्यों, विभागों और ऐजेन्सियों की एकीकृत नीतियों और कार्य प्रणालियों की स्थापना के लिए कार्य करना, रक्षा सचिव के निर्देशन, सत्ता और नियंत्रण के अधीन स्थल सेना, नौसेना (नौसैनिक उड्डयन और संयुक्त राज्य मैरिन को सहित) और वायुसेना को सम्मिलित करके एक रक्षा विभाग का प्रावधान करना, इस बात का प्रावधान करना कि अपने-अपने सचिव के अधीन गठित प्रत्येक सैनिक विभाग रक्षा सचिव के निर्देशन, सत्ता और नियंत्रण के अधीन कार्य करें; रक्षा सचिव के असैनिक नियन्त्रण के अधीन इन विभागों अथवा सेवाओं का विलय नहीं वरन् उनके एकीकृत निर्देशन का प्रावधान करना; एकीकृत या विशिष्ट युद्धकारी कमान और ऐसे कमानों की स्पष्ट और सीधी कमान रेखा स्थापित करने का प्रावधान करना; रक्षा विभाग में और विशेष रूप से अनुसंधान और अभियान्त्रिकी के क्षेत्रों में इसका समग्र निर्देशन और नियन्त्रण रक्षा सचिव में निहित करके अनावश्यक दोहरेपन को समाप्त करना; रक्षा विभाग में अधिक प्रभावी, कार्यकुशल और मितव्ययी प्रशासन का प्रावधान करना; एकीकृत कमान के अधीन उनकी कार्यवाही के लिए, तथा स्थल, नौसेना और वायुसेनाओं को एक कार्यकुशल टीम के रूप में संगठित करके परन्तु सभी सशस्त्र सेनाओं पर एक ही सेनाध्यक्ष अथवा सशस्त्र सेनाओं के एक ही जनरल स्टाफ की स्थापना न करके युद्धकारी सेनाओं के एकीकृत सामरिक निर्देशन का प्रावधान करना है।"

[9] इस अध्याय का परिशिष्ट 'आ' देखिए।

सुरक्षा साधन परिषद न केवल उच्चतर रक्षा नीति नियोजन के संगठन का निर्माण करते हैं वरन् राष्ट्रीय सैनिक प्रतिष्ठान के तन्त्र में दक्ष सैनिक नियोजन के लिए महत्त्वपूर्ण कोष भी बनाते हैं।

राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए उच्चतर नीति नियोजन और समन्वयन

सशस्त्र सेनाओं के प्रभावी सामरिक निर्देशन के लिए असैनिक सरकारी विभागों में आवश्यक समन्वयन उत्पन्न करने के लिए १९४७ के अधिनियम द्वारा दो संगठन स्थापित किए गए हैं, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् और राष्ट्रीय सुरक्षा साधन परिषद्।

(१) राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद

१९४७ के अधिनियम का अनुभाग १०१ जिसके अनुसार राष्ट्रीय रक्षा परिषद का गठन किया गया है, यह निर्धारित करता है कि परिषद् का कार्य राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी 'घरेलू, विदेश, और सैनिक नीतियों के एकीकरण के विषय में राष्ट्रपति को सलाह देना है जिससे सैनिक सेवाएँ और अन्य सरकारी विभाग एवं एजेन्सियाँ राष्ट्रीय सुरक्षा के मामलों में अधिक प्रभावी ढंग से सहकार करने में समर्थ हो सकें।' राष्ट्रपति द्वारा निदेशित अन्य कार्य करने के अतिरिक्त अधिनियम द्वारा परिषद के निम्नलिखित कार्य निर्धारित किए गए हैं —

राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में तथा इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति से सिफारिश करने के उद्देश्य से संयुक्त राज्य की वास्तविक और सम्भावित सैन्य शक्ति की तुलना में उसके उद्देश्यों, वायदों और खतरों का मूल्यांकन करना और उनके विषय में सूचना देना, एवं

राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बन्धित सरकारी विभागों और एजेन्सियों के समान हित के मामलों में नीतियों पर विचार करना और उनके सम्बन्ध में राष्ट्रपति से सिफारिश करना, तथा समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा मांगी गई अथवा जिन्हें यह स्वयं उचित समझे उन अन्य सिफारिशों को पेश करना और रिपोर्ट देना।

परिषद् की संरचना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि राष्ट्रीय सुरक्षा संगठन में यही एक ऐसा अंग है जिसकी अध्यक्षता राष्ट्रपति करता है। इसके स्थायी सदस्य निम्नलिखित होते हैं :—

राष्ट्रपति
गृहमन्त्री
रक्षामन्त्री
स्थलसेना मन्त्री
नौसेना मन्त्री

वायुसेना मन्त्री

राष्ट्रीय सुरक्षा साधन परिषद का प्रमुख।

कार्यकारी विभागों के सचिव, युद्ध सामग्री परिषद का प्रमुख तथा अनुसंधान और विकास परिषद का प्रमुख वैकल्पिक सदस्य होते हैं। सदस्यता सांविधिक होती है और सीनेट की सलाह और सहमति के बिना इसमें कोई परिवर्तन अथवा वृद्धि नहीं की जा सकती। परिषद के कर्मचारी वर्ग का प्रमुख राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक असैनिक कार्यकारी सचिव होता है।

फ्रांस में राष्ट्रीय रक्षा समिति, आस्ट्रेलिया में रक्षा परिषद तथा यूनाइटेड किंगडम और भारत में कैबिनेट की रक्षा समिति राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद के समरूप हैं।

विदेश नीति का रक्षा विचारों से सदैव घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और वह इस पर निर्भर भी होती है। अतः राष्ट्र की सैनिक क्षमता और विदेश नीति में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए उच्चतर कार्यकारी स्तर पर एक निकाय की आवश्यकता होती है। अपनी मिश्रित सदस्यता के कारण राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद यह सुनिश्चित करती है कि कोई भी निर्णय लिए जाने से पूर्व प्रस्तावित राजनीतिक नीति सम्बन्धी सभी सैनिक समस्याओं का विस्तारपूर्वक परीक्षण कर लिया जायगा। इस प्रकार यह सैनिक समस्या और "राजनीतिक नीति" को संयोजित करती है। राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद की स्थापना द्वारा संयुक्त राज्य के इतिहास में प्रथम बार "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक आकांक्षा और सैनिक व्यवहारिकता में सम्पर्क स्थापित करने: राष्ट्रपति को इस पर आधारित परामर्श देने" के उद्देश्य से एक प्रशासनिक तंत्र की स्थापना की गई है।[10] दूसरे शब्दों में "राजनैतिक दृष्टि से जो कुछ वांछनीय है वह सैन्य दृष्टि से सम्भव भी होना चाहिए" इस कहावत का उचित रूप में पालन करते हुए राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद का उद्देश्य तत्कालीन सरकार को परामर्श देना है।

राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद की सहायता के लिए केन्द्रीय सूचना एजेन्सी स्थापित की गई है। अधिनियम का अनुभाग १०२ राष्ट्रपति को सीनेट की सलाह और सहमति से सशस्त्र सेना के कमीशनप्राप्त अधिकारियों अथवा असैनिक कर्मचारियों में से १४००० डालर वार्षिक वेतन पर एक निदेशक नियुक्त करने का अधिकार प्रदान करता है। इस अध्याय के परिशिष्ट 'अ' में जिसमें राष्ट्रीय सुरक्षा के सम्पूर्ण संगठन को प्रदर्शित किया गया है केन्द्रीय सूचना एजेन्सी के कार्यों का वर्णन किया गया है।

---

10 रक्षा सचिव का प्रथम प्रतिवेदन, १९४८, राष्ट्रीय सैन्य प्रतिष्ठान, संयुक्त राज्य अमरीका।

(२) राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद्

'सीनेट की सलाह और सहमति से' राष्ट्रपति असैनिक व्यक्तियों में से किसी एक को इस परिषद का अध्यक्ष नियुक्त करता है।

इस परिषद[11] का कार्य निम्नलिखित मामलों सहित सैनिक, औद्योगिक और नागरिक तैयारियों के समन्वयन सम्बन्धी मामलों में राष्ट्रपति को सलाह देना है।

(i) युद्धकाल में सैनिक और नागरिक आवश्यकताओं के लिए राष्ट्र के औद्योगिक और प्राकृतिक साधनों के प्रभावी उपयोग का कार्यक्रम बनाना, युद्ध काल में नागरिक अर्थ व्यवस्था की स्थिरता बनाए रखना तथा इस अर्थ व्यवस्था का युद्ध की स्थिति और आवश्यकता से तालमेल बैठाना;

(ii) युद्धकाल में सैनिक और नागरिक आपूर्ति, वस्तुओं और उत्पादानों के उत्पादन, प्राप्ति, वितरण तथा नवहन से सम्बन्धित संघीय एजेन्सियों और विभागों के कार्यकलाप में एकीकरण की नीतियों का निर्माण करना;

(iii) युद्धकाल में जन-शक्ति, साधनों और उत्पादक सुविधाओं की सम्भावित आवश्यकताओं और सम्भावित आपूर्ति के मध्य सम्बन्धों को निर्देशित करना ;

(iv) युद्ध सम्बन्धी एवं भयकर सामग्री के उपयुक्त भण्डार स्थापित करना तथा इन भण्डारों को सुरक्षित बनाए रखने की नीतियाँ निर्धारित करना ;

(v) उन उद्योगों, सेवाओं, सरकार और आर्थिक कार्यक्रमों का सामरिक पुनर्स्थापन करना, जिनका राष्ट्र की सुरक्षा के हित में निरन्तर कार्य करते रहना आवश्यक है।

परिषद् की सरचना का कार्यभार राष्ट्रपति पर छोड़ दिया गया है, अधिनियम में केवल इतना ही कहा गया है कि "विभिन्न कार्यकारी विभागों तथा स्वतन्त्र एजेन्सियों के प्रतिनिधियों के अध्यक्ष जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करेगा" इस परिषद् के सदस्य होंगे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्वयुद्ध या आपातकाल में राज्य के आर्थिक और जन-शक्ति सम्बन्धी साधनों के उचित नियमन के लिए यह आवश्यक अंग है। युद्ध सम्बन्धी उत्पादन के लिए आधारभूत उद्योगों तथा अन्य आर्थिक कार्यक्रमों को समन्वित करने का इसे पूर्ण अधिकार है। इस प्रकार यह राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु नागरिक तंत्र के समन्वयन की श्रेणी में आता है। अधिनियम की धारा १०३ के अन्तर्गत स्वय की सैनिक, औद्योगिक और नागरिक तैयारियों के समन्वयन सम्बन्धी मामलों में सलाह देने के लिए राष्ट्रपति ने युद्ध, राजकोष,

---

11 राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, धारा १०३

सुरक्षा, आतंरिक मामलों, कृषि, व्यापार और श्रममन्त्री को इसका सदस्य नियुक्त किया है।

(३) राष्ट्रीय सैनिक सस्थान

यहाँ हम राष्ट्रीय सैनिक संस्थान से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं जो आधुनिक राज्यतंत्र मे सुविदित पद-नाम 'रक्षा मत्रालय' के समकक्ष है। १६४७ के राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अतिरिक्त १६५८ का रक्षा विभाग पुनर्गठन अधिनियम तथा राष्ट्रपति का कांग्रेस के नाम ३ अप्रैल १६५८ का सन्देश संयुक्त राज्य के रक्षा तंत्र के विकास में आधुनिकतम महत्वपूर्ण घटना रहे हैं। रक्षा विभाग के निम्नलिखित कार्य निर्धारित किए गए हैं :

(i) बाहरी अथवा भीतरी सभी शत्रुओं से संयुक्त राज्य के संविधान की रक्षा करना और इसका समर्थन करना,

(ii) सामयिक और प्रभावी सैनिक कार्यवाही द्वारा संयुक्त राज्य, इसकी सम्पत्ति और इसके हितों के लिए आवश्यक क्षेत्रों की सुरक्षा निश्चित करना,

(iii) संयुक्त राज्य के हितों और राष्ट्रीय नीतियों का समर्थन करते हुए उन्हें विकसित करना।

(iv) संयुक्त राज्य की आंतरिक सुरक्षा को सुनिश्चित करना।

रक्षा सचिव

अमरीकी इतिहास में पहली बार १६४७ में एक रक्षा सचिव की नियुक्ति की गई थी। 'राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी सभी मामलों में वह राष्ट्रपति का प्रमुख सहायक' होता था।[12] रक्षा सचिव की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है परन्तु उसका चुनाव 'असैनिक व्यक्तियों' में से ही करना होता है, अधिनियम की धारा २०२ (अ) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'वह व्यक्ति जो पिछले दस वर्षों से सशस्त्र सेनाओं के नियमित भाग में कमीशन प्राप्त अधिकारी के रूप में सक्रिय सेवा में रहा है, रक्षा सचिव के रूप में नियुक्ति का अधिकारी नहीं है।' इससे नागरिक नियंत्रण का मौलिक सिद्धान्त जो अधिनियम की धारा २ में नीति सम्बन्धी घोषणा में दिया गया है, प्रतिपादित होता है।

१६४७ के अधिनियम द्वारा गठित राष्ट्रीय सैनिक संस्थान मे रक्षा सचिव आधारभूत स्तम्भ होता है और उसे निम्नलिखित विधि-निर्दिष्ट कार्य करने पड़ते हैं।-

---

१२ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम १६४७, धारा (२०२) (अ)। राष्ट्रीय सैनिक संस्थान जिसका केन्द्र-बिन्दु रक्षा सचिव होता है, के संगठन के लिए परिशिष्ट '६' पृष्ठ २१० द)देखिए।

(i) राष्ट्रीय सैनिक संस्थान और उसके सभी विभागों और एजेन्सियों के लिए सामान्य नीतियाँ और कार्यक्रम निर्धारित करना,

(ii) ऐसे विभागों और ऐजेन्सियों पर सामान्य निर्देशन, सत्ता और नियन्त्रण रखना,

(iii) प्राप्ति, आपूर्ति, परिवहन, कोठार, स्वास्थ्य और अनुसंधान के क्षेत्रों में अनावश्यक दोहरेपन और आच्छादन को दूर रखने के लिए उचित पग उठाना,

(iv) राष्ट्रीय सैनिक संस्थान के अंगभूत विभागों और एजेन्सियों के बजट अनुमान तैयार करने को समन्वित एवं नियंत्रित करना, बजट ब्यूरो के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए बजट अनुमान निर्धारित एवं निश्चित करना, सम्बद्ध विनियोग अधिनियम के अधीन ऐसे विभागों और एजेन्सियों के बजट कार्यक्रमों का निरीक्षण करना,

(v) राष्ट्रीय सैनिक संस्थान के व्यय, कार्य, एवं उपलब्धियों तथा आवश्यक संस्तुतियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति और कांग्रेस के सम्मुख लिखित प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।

यहाँ इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि १९४७ की व्यवस्था के अधीन रक्षा सचिव की उपस्थिति के बावजूद स्थल सेना, नौसेना और वायुसेना के तीनों सचिव भी राष्ट्रपति से सीधे मिल सकते हैं और धारा २०२ (उसका प्रतिबंध) में निर्धारित किया गया है कि रक्षा सचिव को सूचित करके वे अपने अपने विभाग सम्बन्धी कोई भी प्रतिवेदन अथवा संस्तुति राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं।

१९५८ के अधिनियम के पश्चात् रक्षा विभाग के संगठन पहले की अपेक्षा अधिक एकीकृत रूप धारण कर लिया है और इसमें रक्षा सचिव को पर्याप्त विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं। १९५८ के अधिनियम में रक्षा सचिव के कार्यों को पुनः परिभाषित किया गया है तथा अन्य शक्तियों के अतिरिक्त निम्नलिखित शक्तियाँ भी उसे प्रदान की गई हैं :

(अ) राष्ट्रपति की स्वीकृति से एकीकृत और विशिष्ट कमान स्थापित करना तथा स्थलसेना, नौसेना एवं वायुसेना के तीनों विभागों की सेनाएँ निर्धारित करना और विशिष्ट मिशन प्रावटित करना; जिन सेनाओं का इस प्रकार निर्धारण नहीं होगा वे अपने-अपने विभागों में ही रहेंगी।

(आ) तीनों सेवा विभागों का प्रबन्ध करने वाले तीनों सचिवों पर निर्देशन, सत्ता और नियंत्रण रखना,

(इ) दोहरेपन को कम करते हुए अधिक प्रभावी और मितव्ययी प्रशासन प्रदान करने के लिए उचित पग उठाना। कांग्रेस की सशस्त्र सेवा समिति को आवश्यक ब्यौरा देने के तीस दिन पश्चात् ही वह ऐसा पग उठा सकता है।

(ई) सीनेट की स्वीकृति से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त रक्षा अनुसंधान और अभियांत्रिकी के असैनिक निदेशक के अधीन होने वाले अनुसंधान और विकास पर नियंत्रण रखना। तकनीकी और वैज्ञानिक मामलों में वह रक्षा सचिव के अधीन उसके मुख्य सलाहकार के रूप में कार्य करेगा।

साथ ही सहायक सचिवों की संख्या ४ से घटाकर तीन और सहायक रक्षा सचिवों की संख्या ६ से घटाकर ७ कर दी गई है।

रक्षा सचिव के अधीन संगठन[13]

रक्षा सचिव के विविध कार्यों में निम्नलिखित व्यक्ति उसकी सहायता करते हैं :—

(अ) उसके अधीन कार्यरत सचिवालय,

(आ) निम्नलिखित परिषदें और स्टाफ :
- संयुक्त सेनाध्यक्ष
- युद्ध परिषद्
- सैन्य सामग्री परिषद्
- अनुसंधान और विकास परिषद्, तथा

(इ) तीनों सेनाओं अर्थात् स्थलसेना, नौसेना और वायुसेना के तीन सैनिक विभाग।

१९५८ के रक्षा विभाग पुनर्गठन अधिनियम के पश्चात् रक्षा विभाग के अधीन कार्यरत विभिन्न संगठनों के आपसी सम्बन्धों की व्याख्या करने वाले महत्वपूर्ण निर्देश रक्षा सचिव द्वारा जारी किए गए हैं।

(१) रक्षा विभाग और इसकी अंगभूत एजेन्सियों के सभी कार्य रक्षा सचिव के निर्देशन, सत्ता और नियंत्रण में किए जाते हैं।

(२) रक्षा सचिव तथा संयुक्त सेनाध्यक्षों का कार्यालय, सैनिक विभाग और इन विभागों के अधीन सैनिक सेवाएँ, एकीकृत और विशिष्ट कमान तथा विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु रक्षा सचिव द्वारा स्थापित ऐसी अन्य एजेन्सियाँ रक्षा विभाग में सम्मिलित होती हैं।

(अ) रक्षा सचिव को तुरत स्टाफ सहायता तथा सलाह प्रदान करने हेतु अलग-अलग निर्देशित और गठित रक्षा सचिव और संयुक्त सेनाध्यक्षों के कार्यालय संदर्भ (आ) के अनुसार पूर्ण समन्वय और सहकार से कार्य करते हैं।

(i) रक्षा अनुसंधान और अभियांत्रिकी के निदेशक, सहायक रक्षा सचिवों, जनरल काउन्सल एवं अपने उत्तरदायित्व और कर्त्तव्यपालन में अपनी सहायता के लिए रक्षा सचिव द्वारा गठित अन्य स्टाफ कार्यालय ,रक्षा सचिव के

---

13 देखिए इस अध्याय का परिशिष्ट '१' पृष्ठ २१७

कार्यालय में सम्मिलित होते हैं। इन कार्यालयों के अध्यक्षों के कार्य रक्षा सचिव द्वारा वर्तमान नियमों के अधीन निर्धारित किए जाएंगे।

(ii) उन्हें दिए गए कार्यों के लिए संयुक्त सेनाध्यक्ष एक समूह के रूप में सीधे रक्षा सचिव के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अध्यक्ष के अतिरिक्त संयुक्त सेनाध्यक्षों का प्रत्येक सदस्य संयुक्त सेनाध्यक्षों द्वारा विचारित अथवा कार्यान्वित मामलों पर अपने-अपने सैनिक विभाग के सचिव को पूर्णरूप से अवगत रखने का उत्तरदायी होगा।

(आ) प्रत्येक सैनिक विभाग (नौसेना विभाग में नौसैनिक उड्डयन और संयुक्त राज्य नाविक बेड़ा भी शामिल हैं) अपने अपने सचिव के अधीन अलग अलग गठित किया जाएगा और रक्षा सचिव के निदेशन, सत्ता और नियन्त्रण के अधीन कार्य करेगा। ऐसे विभाग की कार्यवाही और कार्यकुशलता के लिए सैनिक विभाग का सचिव रक्षा सचिव के प्रति उत्तरदायी होगा। सैनिक विभागों को इन सचिवों के द्वारा या उनके द्वारा नामांकित व्यक्तियों द्वारा, या रक्षा सचिव या उसकी लिखित आज्ञा से विशेष रूप से प्रदत्त या विधिसम्मत शक्ति द्वारा आदेश दिए जायेंगे।

(इ)एकीकृत और विशिष्ट कमानों के कमाण्डर उन्हें सौंपे गए सैनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राष्ट्रपति और रक्षा सचिव के प्रति उत्तरदायी होते हैं। कमान शृंखला राष्ट्रपति से रक्षा सचिव तक और संयुक्त सेनाध्यक्ष के माध्यम से एकीकृत और विशिष्ट कमानों तक संबंधित है। राष्ट्रपति अथवा रक्षा सचिव अथवा रक्षा सचिव की सत्ता और निदेशन के अधीन संयुक्त सेनाध्यक्षों द्वारा इन कमाण्डरों को आदेश जारी किए जाएंगे। ये कमाण्डर उन्हें सौंपी गई सेनाओं की कार्यवाही के लिए पूरी तरह उत्तरदायी होंगे और संयुक्त कमान योजना द्वारा निर्धारित तथा अन्य सक्षम सत्ता द्वारा जारी किए गए निदेशों के अनुरूप कार्य करेंगे।

दक्ष नियोजन संगठन :

(१) संयुक्त सेनाध्यक्ष

द्वितीय विश्वयुद्ध काल में संयुक्त सेनाध्यक्ष सामरिक नीति, युद्ध-सामग्री और जहाजरानी की आवश्यकताओं, उत्पादन और आवंटन, सशस्त्र सेनाओं की जन-शक्ति आवश्यकताओं तथा संयुक्त स्थल और नौसेना संबंधी मामलों पर राष्ट्रपति को सलाह देते थे। वे राष्ट्रपति के निदेशन में सामरिक योजनाएं तैयार करके उन पर व्यवहार कराने के लिए आदेश जारी करते थे। १९४७ में एक संविधि द्वारा संयुक्त सेनाध्यक्षों की संरचना और कार्यों को पारिभाषित करके उनकी एक स्थायी एजेन्सी बना दी गई।

अधिनियम में स्पष्ट किया गया है कि सर्वोच्च सेनापति (राष्ट्रपति) के सेनाध्यक्ष, स्थलसेनाध्यक्ष, नौसैनिक कार्यवाही अध्यक्ष, और वायु सेनाध्यक्ष से मिलकर

बनने वाले संयुक्त सेनाध्यक्ष अपनी संयुक्त क्षमता में 'राष्ट्रपति और रक्षा सचिव के प्रमुख सैनिक सलाहकार होंगे'।

संयुक्त सेनाध्यक्षों के निम्नलिखित कार्य हैं[14]—

(अ) राष्ट्रपति और रक्षा सचिव की सत्ता और निदेशन के अधीन संयुक्त सेनाध्यक्षों के निम्नलिखित कार्य होंगे :—

(१) सामरिक योजनाएँ तैयार करना और सशस्त्र सेनाओं के सामरिक निदेशन की व्यवस्था करना;

(२) संयुक्त व्यूह रचना की योजनाएँ तैयार करना और इन योजनाओं के अधीन सैनिक सेवाओं को व्यूह रचना सम्बन्धी उत्तरदायित्व सौंपना;

(३) जब कभी राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में संयुक्त कमान आवश्यक हो तो सामरिक क्षेत्रों में ऐसी कमान स्थापित करना;

(४) सशस्त्र सेनाओं के संयुक्त प्रशिक्षण के लिए नीतियों का निर्माण करना;

(५) सेना के सदस्यों की शिक्षा के समन्वयन हेतु नीति निर्माण करना;

(६) सामरिक और व्यूह रचना सम्बन्धी योजनाओं के अनुसार सेनाओं की सामग्री और कर्मचारियों सम्बन्धी मुख्य आवश्यकताओं की समीक्षा करना;

(७) संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र के प्रावधान के अनुरूप संयुक्त राष्ट्र की सैनिक स्टाफ समिति में संयुक्त राज्य के प्रतिनिधित्व का प्रावधान करना।

(८) संयुक्त सेनाध्यक्ष राष्ट्रपति और रक्षा सचिव के प्रमुख सलाहकारों के रूप में कार्य करेंगे तथा राष्ट्रपति और रक्षा सचिव द्वारा निर्दिष्ट अथवा कानून द्वारा निर्धारित अन्य कार्य भी करेंगे।"

संयुक्त स्टाफ के कर्मचारी :

स्थल सेना, नौसेना, जहाजी बेड़े, तथा वायुसेना से समान संख्या में कर्मचारी चुने जाते हैं। संयुक्त स्टाफ के अध्यक्ष द्वारा चुने गए निदेशक और संयुक्त स्टाफ के सदस्यों का कार्यकाल आपातकाल के अतिरिक्त तीन वर्ष होगा।

संयुक्त सेनाध्यक्षों के कार्य :

१९५८ के रक्षा पुनर्गठन अधिनियम के पारित होने के पश्चात् संयुक्त सेनाध्यक्षों के कार्य रक्षा सचिव द्वारा जारी किए गए एक निदेश में निर्धारित किए गए हैं। यह निदेश[15] १९४७ के राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम और १९५८ के अधिनियम पर आधारित है और इस विषय पर नवीनतम स्थिति प्रस्तुत करता है :

---

१४ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम १९४७, धारा २११ (ब)

१५ देखिए २१ दिसम्बर १९५८ का निदेश संख्या ५१००.१

"सयुक्त सेनाध्यक्ष जिसमे अध्यक्ष, सयुक्त राज्य स्थल सेना का सेनाध्यक्ष, नौसैनिक कार्यवाही का अध्यक्ष, सयुक्त राज्य वायु सेनाध्यक्ष होते हैं रक्षासचिव के निकटतम सैनिक स्टॉफ की संरचना करते है और सयुक्त सेनाध्यक्षो का सगठन इसकी सहायता करता है। संयुक्त सेनाध्यक्ष राष्ट्रपति, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् और रक्षा सचिव के प्रमुख सैनिक सलाहकार होते हैं। जहाजी बेडे से सीधे संबधित मामलों मे सयुक्त राज्य के जहाजी बेडे के कमाण्डेन्ट को सयुक्त सेनाध्यक्षों के सदस्यो के समकक्ष पद प्राप्त है। रक्षा सचिव को सहायता और सलाह देने के अपने कार्यों की पूर्ति के लिए तथा राष्ट्रपति और रक्षा सचिव की सत्ता और निदेशन के अधीन, सेनाध्यक्षों के निम्नलिखित कार्य होगे :-

(१) एकीकृत और विशिष्ट कमानो के सदर्भ मे कार्यवाही कमान की शृ खला मे सलाहकारी और सैनिक स्टाफ के रूप मे कार्य करना, राष्ट्रपति और रक्षा सचिव से एकीकृत और विशिष्ट कमानो तक आनेवाले सन्देशो के लिए साधन सुलभ करना, तथा किसी अन्य सत्ता (अधिकारी) द्वारा एकीकृत और विशिष्टि कमानो के सचालको को सम्बोधित सयुक्त हित के सभी सन्देशो को समन्वित करना।

(२) एकीकृत और विशिष्ट कमानो द्वारा संचालित कार्यवाही के निदेशन एव ऐसे कमानो के लिए रक्षा सचिव द्वारा निर्देशित कमान सबधी कार्य-पालन के लिए सामरिक योजनाएँ तैयार करना और सशस्त्र सेनाओं को सामरिक निर्देशन प्रदान करना।

(३) व्यूह रचना सम्बन्धी एकीकृत योजनाएँ तैयार करना जिनमे इन योजनाओ के अनुसार सशस्त्र सेनाओ को सौंपे गए व्यूह रचना सम्बन्धी कार्य भी शामिल हैं।

(४) सैनिक तैयारियो के लिए एकीकृत योजनाएँ तैयार करना।

(५) रक्षा विभाग के अन्तर्गत प्रयोग हेतु उचित, सामयिक और विश्वसनीय सयुक्त सूचना प्रस्तुत करना।

(६) सामरिक और व्यूह रचना की योजनाओं से सम्बन्धित सशस्त्र सेनाओ की प्रमुख कार्मिक, सामग्री एव व्यूह रचना सम्बन्धी आवश्यकताओ की समीक्षा करना।

(७) निर्धारित उद्देश्यो की पूर्ति हेतु एकीकृत और विशिष्ट कमानो के सचालको के कार्यक्रमो और योजनाओं पर उपयुक्तता, सभाव्यता और औचित्य निर्धारित करने की दृष्टि से विचार करना।

(८) सैनिक विभागो और सशस्त्र सेनाओं को अपनी विस्तृत योजनाएँ तैयार करने के लिए आवश्यक सैनिक मार्गदर्शन देना।

(९) दूसरे राष्ट्रो की सशस्त्र सेनाओं के साथ मिलकर संयुक्त सैनिक कार्यवाही करने के लिए यथा-निर्देश सयुक्त योजनाओ की तैयारी में भाग लेना।

(१०) सामरिक क्षेत्रों में एकीकृत और विशिष्ट कमानों की स्थापना और सैन्य संरचना के विषय में रक्षा सचिव से संस्तुति करना।

(११) एकीकृत और विशिष्ट कमानों के संचालकों के लिए आवश्यक सुविधाओं, कर्मचारियों एवं संचार सम्बंधी मुख्यालय सहयोग निश्चित करना तथा ऐसा सहयोग प्रदान करने का उत्तरदायित्व सैनिक विभागों को सौंपने की संस्तुति करना।

(१२) (अ) एकीकृत कार्यवाही और प्रशिक्षण तथा (आ) सशस्त्र सेनाओं की सैन्य-शिक्षा के समन्वयन हेतु सिद्धान्त निर्धारित करना।

(१३) सशस्त्र सेनाओं के किसी भी कार्य के लिए जिसके लिए सुदृढता की आवश्यकता हो तथा उसके स्थानान्तरण, पुनर्निर्धारण, समापन अथवा एकीकरण के सम्बन्ध में प्राथमिक उत्तरदायित्व सौंपने के लिए रक्षा सचिव से संस्तुति करना।

(१४) बजट की तैयारी के संबंध में संयुक्त राज्य के सामरिक विचारों, सामयिक राष्ट्रीय सुरक्षा नीति और सामरिक युद्ध योजनाओं पर आधारित सैनिक आवश्यकताओं का लेखा तैयार करके रक्षा सचिव के सम्मुख सूचना और विचार विमर्श के लिए प्रस्तुत करना। आवश्यकताओं के इन लेखों में कार्य, कार्यों की प्राथमिकता, सैन्य आवश्यकताओं तथा सैनिक संस्थानों और आधारों के विकास हेतु सामान्य सामरिक निर्देशन तथा सशस्त्र सेनाओं की साज-सज्जा और रख-रखाव शामिल हैं।

(१५) (अ) रक्षा विभाग के एकीकृत कार्यक्रम की तैयारी में प्रयुक्त विस्तृत सामरिक निर्देश के आलेख (आ) सर्वसामान्य सैनिक आवश्यकताओं के आलेख, (इ) एकीकृत और विशिष्ट संचालकों की आवश्यकता पूर्ति हेतु विकास कार्यक्रमों के सैनिक महत्त्व संबंधी आलेख, और (ई) सशस्त्र सेनाओं को विशिष्ट नए आयुध सौंपने के लिए संस्तुति करके अनुसंधान और अभियान्त्रिकी के मामलों में रक्षा सचिव को सलाह देना और उसकी सहायता करना।

(१६) औद्योगिक संचालन के कार्यक्रमों के विकास हेतु सामान्य सामरिक निर्देश तैयार करके रक्षा सचिव के सूचनार्थ और विचारार्थ प्रस्तुत करना।

(१७) मित्र सेनाओं, सामग्री और संयुक्त राज्य के सामरिक उद्देश्यों से संबंधित सुविधा आवश्यकताओं, सामयिक राष्ट्रीय सुरक्षा नीति, सामरिक युद्ध योजनाओं तथा स्वीकृत कार्यक्रमों पर व्यवहार सहित सैनिक सहायता कार्यक्रमों तथा विदेशी सेनाओं संबंधी अन्य कार्यों के विकास के लिए सैनिक निर्देश तैयार करके रक्षा सचिव के समक्ष प्रस्तुत करना; एवं यथावश्यकता स्वीकृत सैनिक उद्देश्यों के अनुरूप सैनिक सहायता कार्यक्रमों को बनाए रखने के लिए रक्षा सचिव से संस्तुति करना।

(१८) संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र के अनुरूप संयुक्त राष्ट्रों की सैनिक स्टाफ समिति में तथा अन्य समुचित शक्तिसम्पन्न सैनिक स्टाफों, परिषदों, सभाओं और मिशनों में संयुक्त राज्य के प्रतिनिधित्व का प्रावधान करना।

(१६) राष्ट्रपति अथवा रक्षा सचिव द्वारा निर्धारित अन्य कार्य सम्पादित करना।"

पुनः संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति में उनकी सदस्यता के संबंध में सेनाध्यक्षों के उत्तरदायित्वों और कार्यवाही को परिभाषित करना आवश्यक समझा गया है। इसके साथ ही अन्य सदस्यों के संबंध में संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति के अध्यक्ष के कर्तव्य भी निर्धारित करने थे। इस महत्वपूर्ण पहलू पर रक्षा सचिव का आदेश[1] इस प्रकार है :

(अ) संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्य के रूप में सैनिक सेवाओं के अध्यक्षों के कर्तव्य उनके अन्य कर्तव्यों से ऊपर होंगे। यह सुनिश्चित करने हेतु कि संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्य के रूप में अपना कर्तव्य पालन करने के लिए सैनिक सेवाध्यक्षों के पास आवश्यक समय है, वे उचित कार्य अपने उपाध्यक्षों को सौंप देंगे।

(आ) अपना उत्तरदायित्व पालन करने में संयुक्त सेनाध्यक्ष वैज्ञानिक, औद्योगिक, आर्थिक तथा सैनिक आदि सभी दृष्टिकोणों से उपलब्ध सर्वाधिक सक्षम और विचारित विचारधारा का उपयोग कर सकेंगे।

(इ) सर्वश्रेष्ठ नियोजन और कार्यवाही सुनिश्चित करने के लिए :

(१) संयुक्त सेनाध्यक्षों के संगठन के सभी तत्व रक्षा सचिव के कार्यालय के उचित कार्यालयों से पूर्ण एवं प्रभावी सहकार करेंगे। महत्वपूर्ण स्टाफ अध्ययनों की सभी अवस्थाओं में संयुक्त सेनाध्यक्ष रक्षा सचिव के कार्यालय के विचार और विशेष योग्यता का लाभ प्राप्त करेंगे। ऐसे अध्ययन तैयार करने के लिए आवश्यक विशिष्ट तथ्य सामान्य कार्यवाही के रूप में, रक्षा सचिव के कार्यालय के उचित कार्यालयों के माध्यम से प्राप्त किए जाएँगे।

(२) संयुक्त स्टाफ के विभिन्न निदेशालयों के निदेशक रक्षा सचिव के उपयुक्त कार्यालयों के साथ सक्रिय सम्पर्क रखेंगे। सूचनाओं का आदान-प्रदान, तकनीकी सलाह का आदान प्रदान, तथा आपसी लाभ के लिए मार्गदर्शन इसमें शामिल होंगे, पर केवल यही इसकी सीमा नहीं होगी। रक्षा सचिव के कार्यालय के कार्यालयों के अध्यक्ष भी ऐसा ही सम्पर्क बनाए रखेंगे तथा संयुक्त सेनाध्यक्षों के संगठन के उपयुक्त सदस्यों से औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से मिलने के लिए प्रतिनिधि उपलब्ध करेंगे।

(ई) संयुक्त सेनाध्यक्षों के प्रति आदेश और निदेश रक्षा सचिव अथवा उपरक्षा सचिव द्वारा जारी किए जाएँगे। संयुक्त सेनाध्यक्षों द्वारा की जाने वाली कार्यवाही सम्बन्धी प्रार्थनाएँ, रक्षा सचिव द्वारा विशेष रूप से प्रदत्त अधिकार के अनुरूप उसके कार्यालय के उत्तरदायी अधिकारियों द्वारा संयुक्त सेनाध्यक्षों अथवा उनकी समिति के अध्यक्ष से की जा सकती हैं।

---

१ देखिए ११ दिसम्बर १६५८ का निदेश संख्या ५१००.१

(उ) सामरिक और व्यूह रचना सम्बन्धी योजनाओं का विकास सार्वभौम राष्ट्रीय हितों पर आधारित होगा, और संयुक्त सेनाध्यक्षों के संगठन के कर्मचारी ऐसे हितों का समर्थन करने की क्षमता और योग्यता के आधार पर चुने जाएँगे।

(ऊ) संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति के प्रमुख का निम्नलिखित विषयों पर अधिकार होगा और वह

(१) संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्य के रूप में कार्य करने और इसकी अध्यक्षता करने के लिए।

(२) संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति की गोष्ठियों के लिए कार्यसूची प्रस्तुत करने और व्यावहारिक रूप में यथा संभव शीघ्रता से अपना कार्य सम्पन्न करने में उनकी सहायता करने के लिए।

(३) संयुक्त सेनाध्यक्षों के विचाराधीन सामयिक रुचि के महत्त्वपूर्ण मामलों की सामयिक प्रगति के संबंध में रक्षा सचिव को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए।

(४) जिन मामलों पर संयुक्त सेनाध्यक्ष एकमत नहीं हो सके हैं उनके विषय में रक्षा सचिव को सूचित करने तथा मतवैभिन्न्य सहित संयुक्त सेनाध्यक्षों की संस्तुतियाँ, सलाह और विचार रक्षा सचिव को प्रेषित करने के लिए।

(५) रक्षा सचिव के सभी कार्यालयों को सैनिक सलाह उपलब्ध कराने की व्यवस्था करने के लिए।

(६) संयुक्त सेनाध्यक्षों को अल्प महत्व के मामलों से मुक्त रखने की व्यवस्था करने के लिए।

(७) संयुक्त स्टाफ और संयुक्त सेनाध्यक्षों के संगठन की अधीनस्थ संरचना को इस प्रकार संगठित करने के लिए कि उन्हें सौंपे गए कार्य निश्चित रूप से कुशलतापूर्वक सम्पन्न हो सकें।

(८) संयुक्त सेनाध्यक्षों की ओर से संयुक्त स्टाफ और इसके निदेशक की व्यवस्था करने के लिए। "व्यवस्था करना" पद का अर्थ है प्रभावित तत्त्वों के कार्य का संचालन, मार्गदर्शन एवं प्रशासन करना और इस बात को सुनिश्चित करना कि कार्य इस ढंग से सम्पन्न हो कि रक्षा सचिव और संयुक्त सेनाध्यक्ष अपना पूर्ण उत्तर-दायित्व पालन कर सकें। संयुक्त स्टाफ संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति अथवा उसके प्रमुख द्वारा निर्धारित सभी कार्य करेगा।

(९)प्रमुख द्वारा विचार-विमर्श अथवा कार्यवाही के लिए किसी सैनिक विभाग को सौंपे जाने की सम्मति सहित रक्षा सचिव को प्रेषित विषय के सम्बन्ध में आवश्यकतानुसार संयुक्त सेनाध्यक्षों को सूचित रखने के लिये उत्तरदायी होगा।

(१०) संयुक्त सेनाध्यक्षों की सलाह और रक्षा सचिव की स्वीकृति से उनके लिए रक्षा विभाग के बाहर से सलाहकार नियुक्त करने के लिए उत्तरदायी होगा :—

(ए) संयुक्त स्टाफ के निदेशक और संयुक्त सेनाध्यक्षों के संगठन के सदस्यों का निर्वाचन निम्न प्रकार होगा :–

(१) संयुक्त सेनाध्यक्षों के परामर्श और रक्षा सचिव की स्वीकृति से संयुक्त सेनाध्यक्षों का प्रधान, संयुक्त स्टाफ के निदेशक का चुनाव करके उसका कार्यकाल निर्धारित करेगा। साधारणतः निदेशक का कार्यकाल दो वर्ष होगा, युद्धकाल के अतिरिक्त यह कार्यकाल और एक वर्ष से अधिक के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता।

(२) संयुक्त सेनाध्यक्षों के संगठन के सदस्य संयुक्त सेनाध्यक्षों द्वारा अपने प्रधान की सहमति से चुने जाएँगे।

(ए) कार्यकारी सहकारी सदस्यों के कर्तव्य और कार्यवाही के तरीके संयुक्त सेनाध्यक्षों द्वारा निर्धारित किए जाएँगे।

(ओ) संयुक्त स्टाफ के निदेशक और रक्षा सचिव के कार्यालय के उचित कार्यालयाध्यक्ष को उपर्युक्त अनुच्छेद इ(२) के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपनी अलग-अलग एजेन्सियों में पूर्ण सहकार सुनिश्चित करने का विशेष उत्तरदायित्व और अधिकार है।

संयुक्त सेनाध्यक्षों की सहायता के लिए तीनों सेनाओं में से प्रत्येक में से १०० अधिकारियों के चुनाव द्वारा निर्मित संयुक्त स्टाफ नामक एक सचिवालय तथा कुछ संयुक्त समितियाँ होती हैं जिनमें से अधिक महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं :–

(१) मिलेजुले ढंग के मामलों पर विचार करने हेतु अध्ययन तैयार करने और नीति निर्धारण करने में सहायता करने के लिए संयुक्त सामरिक सर्वेक्षण समिति।

(२) एकत्र करने वाली एजेन्सियों द्वारा संग्रहीत गुप्त सूचना के आधार पर संयुक्त गुप्त सूचना के अनुमान तैयार करने के लिए उत्तरदायी संयुक्त गुप्त सूचना समिति।

(३) सामयिक और भविष्य सम्बन्धी सामरिक योजनाएँ और सैनिक नीति तैयार करने के लिए उत्तरदायी संयुक्त सामरिक योजना समिति।

(४) संयुक्त सेनाध्यक्षों के अधिकार-क्षेत्र में आने वाली व्यूह रचना तथा मुख्य सामग्री और जनशक्ति सम्बन्धी आवश्यकताएँ तैयार करने और उन पर संस्तुति करने के लिए उत्तरदायी संयुक्त व्यूह रचना नियोजन समिति।

(५) संयुक्त समाचार समिति, संयुक्त युद्ध सामग्री आवंटन समिति और संयुक्त ऋतु विज्ञान सम्बन्धी समिति।

इन समितियों के कर्मचारियों की भरती के सिद्धान्त ब्रिटिश सेनाध्यक्षों के संगठन के समान ही हैं अर्थात् नियोजकों को किसी न किसी समय अपनी योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए भी उत्तरदायी होना चाहिए, दूसरे शब्दों में नियोजन एक बन्द कोष्ठ तक सीमित नहीं है। १९५८ के बाद केन्द्रीकृत नियोजन में सुधार करने

की दृष्टि से सयुक्त स्टाफ (संयुक्त सेनाध्यक्षों का स्टाफ) की सख्या ४०० तक बढ़ा दी गई थी ।

सयुक्त राज्य मे सयुक्त सेनाध्यक्षो की सस्था अपने सभी आधारभूत सिद्धान्तों में ब्रिटिश प्रणाली के इतने समीप है कि यह कहा सकता है कि यह वहाँ स्थायी रूप से पुनर्स्थापित हो गई है और अब इसने सघीय राज्य की सुरक्षा सरचना मे अपनी जड़ें जमा ली हैं । फिर भी एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि जिस प्रकार ब्रिटिश सेनाध्यक्ष प्रधानमन्त्री और कैबिनेट की रक्षा समिति के माध्यम से सशस्त्र सेनाओं पर प्रभावी ससदीय नियन्त्रण के साधन हैं उस प्रकार संयुक्त सेनाध्यक्ष सीधे कांग्रेस के नियन्त्रण के साधन नहीं हो सकते । संयुक्त राज्य मे सयुक्त सेनाध्यक्षों के संगठन को किसी आन्तरिक कमी के कारण ऐसा नहीं है वरन् सघीय सरचना में निहित मॉन्टेस्क्यू (Montesquieu) के शक्तियों के अलगाव के सिद्धान्त के परिणाम स्वरूप है जिसके अनुसार राष्ट्रपति कांग्रेस के प्रति उस प्रकार उत्तरदायी नहीं है जिस प्रकार ब्रिटिश प्रधानमन्त्री वेस्टमिनिस्टर स्थित संसद के प्रति उत्तरदायी है । सशस्त्र सेनाओ के लिए धन की स्वीकृति कांग्रेस देती है अतः राष्ट्रपति पर उसका प्रभावी नियंत्रण है । कांग्रेस का वित्तीय नियंत्रण इतना प्रमुख है कि अन्तिम विश्लेषण मे राष्ट्रपति को कांग्रेस की इच्छानुसार कार्य करना पड़ता है और जहाँ तक ऐसी इच्छा युद्ध की किसी कार्यवाही से सबधित है राष्ट्रपति सयुक्त सेनाध्यक्ष के माध्यम से ही उन इच्छाओं का प्रभावी रूप से पालन करा सकता है । इस प्रकार सयुक्त सेनाध्यक्षों की संस्था राजनीतिक रूप से महत्वहीन नहीं है ।

पुनः किसी विशिष्ट संदर्भ में सशस्त्र सेनाओं की शक्ति के संबंध में, राष्ट्रपति संयुक्त सेनाध्यक्षो की दक्ष सलाह से मार्गदर्शन प्राप्त करता है, तथा उनकी सलाह की सहायता से ही वह कांग्रेस और इसकी विभिन्न समितियों के सम्मुख अपना पक्ष प्रस्तुत करके उनकी सहमति प्राप्त करता है । अपनी समितियों के माध्यम से भी कांग्रेस का प्रभावी नियन्त्रण बना रहता है । कांग्रेस को इस साधन का पूर्ण ज्ञान है और राष्ट्रपति द्वारा इस पर अधिकार किए जाने की अपेक्षा वह इसे और सुदृढ़ बनाने की इच्छा रखती है । उदाहरणार्थ, १९५८ के रक्षा पुनर्गठन बिल में सदन-पाठ मे यह प्रावधान था कि सेवा सचिवालय और सयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्य स्वय अपनी ओर से शिकायतें और प्रस्ताव कांग्रेस के सम्मुख प्रस्तुत कर सकते थे । सीनेट-पाठ में सचिवों को इस अधिकार से वंचित करके इसे केवल अध्यक्षों के लिए ही सीमित कर दिया गया । १९५८ के बिल के इस परिवर्तित प्रावधान की भी राष्ट्रपति ने "वैध अवज्ञा" कह कर भर्त्सना की । फिर भी इससे विधानमण्डल की कार्यकारिणी के सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न अंग के साथ संपर्क बनाए रखने की आतुरता स्पष्ट हो जाती है । कार्यकारिणी इस विकास को पसंद नहीं करती क्योंकि इससे उत्तरदायित्व के विभाजन होने और ऐसा वातावरण तैयार होने का भय है जिसमें

सेनाध्यक्ष राष्ट्रपति के निर्णय को चुनौती दे सकेंगे और उनका ऐसा करना युद्धकाल मे विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार विचार विमर्श काल में जब १६५८ का बिल विधानमण्डल के मच पर था तो यह स्पष्ट हो गया कि बिल के निम्न-लिखित पहलुओं पर सदन को एक निश्चित मत प्रकट करना था :–

(१) सैनिक अध्यक्षों को प्रशासन के प्रतिकूल निर्णयों के विरुद्ध कांग्रेस से अपील करने का अधिकार देने वाले नियम को वापस लेना।

(२) रक्षा सचिवो को विभिन्न सेवाओ को दिए गए कार्यों और भूमिका का स्थानान्तरण, विलयन अथवा समापन करने की असीमित शक्तियाँ देना।

(३) रक्षा सचिव के सार्वभौम नियन्त्रण के अधीन सचिवों द्वारा विभिन्न विभागो के प्रशासन की वर्तमान शक्ति को समाप्त करना।

(२) युद्ध परिषद्

दक्ष सेवा नियोजको का असैनिक तत्र से सम्पर्क साधने वाली प्रथम कड़ी रक्षा सचिव है जो रक्षा परिषद् का अध्यक्ष होता है और सेवाध्यक्ष इस परिषद के सदस्य होते हैं। संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति और युद्ध परिषद् सहयोगी संस्थाएँ हैं, उत्तरोक्त का कार्य रक्षा सचिव को "सशस्त्र सेनाओ सबंधी सामान्य रणनीति के मामलों पर" सलाह देना तथा "रक्षा सचिव द्वारा निर्देशित अन्य मामलों पर"[17] विचार करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करना है। स्थल सेना, नौसेना, और वायु सेना के सचिव तथा स्थल सेनाध्यक्ष, नौसैनिक कार्यवाही का अध्यक्ष और वायुसेनाध्यक्ष युद्ध परिषद् के सदस्य होते हैं और रक्षा सचिव इसका अध्यक्ष होता है।

दो अन्य विशेषज्ञ परिषदें संयुक्त सेनाध्यक्षो की समिति और युद्ध परिषद् की सहायता करती हैं :

(३) युद्ध सामग्री परिषद्

युद्ध सामग्री परिषद् मे एक अध्यक्ष और स्थलसेना, नौसेना तथा वायुसेना के तीनो सैनिक विभागो से उनके अपने सचिवो द्वारा मनोनीत एक-एक सहायक अथवा अवर सचिव होता है। "सीनेट की सलाह और सहमति से" राष्ट्रपति असैनिक व्यक्तियो मे से इसके अध्यक्ष की नियुक्ति करता है। १६४७ के अधिनियम की धारा २१३[18] मे परिषद के कार्य निर्धारित किए गए हैं और मोटे तौर पर इन्हे सामग्री प्रस्तुत करने के क्षेत्र मे सयुक्त सेनाध्यक्षो की सामरिक और व्यूह रचना सम्बन्धी योजनाओं का प्रशासनिक कार्य मे रूपान्तरण करना कहा जा सकता है, साथ ही सेवाओं के सैनिक साज-सामान एकत्र करने के कार्यक्रमो मे प्राथमिकताएँ निश्चित करना और इन कार्यक्रमों का देश के औद्योगिक साधनो से समन्वय स्थापित करना

---

१७ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, १९४७ की धारा २१०

१८ अधिनियम को धारा २१३ (१) में कहा गया है:

भी परिषद् का कार्य है। युद्ध-सामग्री के उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में यह समन्वय कारक शक्ति का कार्य करती है।

(८) अनुसंधान और विकास परिषद् :

परिषद् का अध्यक्ष सीनेट की सलाह और सहमति से राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है तथा स्थल सेना, नौसेना और वायुसेना के सचिवों द्वारा नामोद्दिष्ट दो-दो प्रतिनिधि इसके सदस्य होते हैं। परिषद का उद्देश्य रक्षा सचिव को 'राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधान के स्तर' के बारे में सलाह देना "तथा राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी वैज्ञानिक समस्याओं पर अनुसंधान और विकास के लिए उचित प्रावधान निश्चित करने में सहायता देना" है।[19]

---

१९ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, १९४७, धारा २१४ (अ)

रक्षा सचिव के निर्देशन में और संयुक्त सेनाध्यक्षों द्वारा तैयार की गई सामरिक और व्यूह रचना सम्बन्धी योजनाओं के समर्थन के लिए (युद्धसामग्री) परिषद् का कार्य;

(१) राष्ट्रीय सैनिक अधिष्ठान में अधिष्ठान के अंतर्भूत विभागों और एजेन्सियों के प्राप्ति उत्पादन और वितरण योजनाओं सहित औद्योगिक मामलों सम्बन्धी उपर्युक्त कार्यों का समन्वयन करना।

(२) औद्योगिक संचालन के सैनिक पहलुओं का नियोजन करना।

(३) विभिन्न सैनिक सेवाओं में प्राप्ति सम्बन्धी उत्तरदायित्व-विभाजन की संस्तुति करना, नाम-सूचियों का मानकीकरण करना, तथा एक ही स्थान पर प्राप्ति के आधार पर तकनीकी साज-सामान और सामान्य उपयोग की वस्तुओं की क्रय शक्ति का सर्वाधिक व्यावहारिक आवंटन करना।

(४) सामरिक कार्यवाहियों की व्यूह रचना सम्बन्धी सम्भावना के मूल्यांकन के लिए उत्पादन क्षमता, प्राप्ति और कर्मचारियों के आकलन तैयार करना।

(५) सैनिक प्राप्ति कार्यक्रमों के विभिन्न विभागों की पारस्परिक प्राथमिकताएं तय करना।

(६) परिषद् के कार्यक्षेत्र में आने वाले विषयों पर विचार करने के लिए वर्तमान अथवा भविष्य में गठित की जाने वाली अधीनस्थ एजेन्सियों पर नियंत्रण करना।

(७) प्राप्ति, उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में कार्यरत वर्तमान अन्तर-सेना एजेन्सियों का अधिकाधिक कार्यकुशलता और मितव्ययिता प्राप्त करने के उद्देश्य से पुनर्गठन, एकीकरण अथवा विलियन करना।

(८) विशेष रूप से सामरिक और अमहत्त्वपूर्ण सामग्री की प्राप्ति एवं वितरण तथा ऐसी सामग्री के उचित सुरक्षित भण्डार बनाए रखने सम्बन्धी सैनिक आवश्यकताओं का असैनिक अर्थ-व्यवस्था के साथ उचित समन्वयन करने के लिए अन्य विभागों और एजेन्सियों से सम्पर्क बनाए रखना और इनके सम्बन्ध में नीतियों सम्बन्धी सिफारिशें करना।

(९) संयुक्त सेनाध्यक्षों तथा उत्पादन, प्राप्ति और वितरण एजेन्सियों जिन पर सैनिक आवश्यकताएं पूरी करने का भार है, द्वारा प्रस्तुत सामग्री और कर्मचारी सम्बन्धी आवश्यकताओं को एकत्र करके उनकी समीक्षा करना और उनके सम्बन्ध में रक्षा सचिव से संस्तुति करना।

(१०) रक्षा सचिव द्वारा निर्दिष्ट अन्य कार्य सम्पन्न करना है।

१९४७ के राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की धारा २१४ (आ) में परिषद् के कार्यों का इस प्रकार उल्लेख किया गया है :

(१) सैनिक उद्देश्यों के लिए अनुसन्धान और विकास का पूर्ण एव समन्वित कार्यक्रम तैयार करना,

(२) राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रगति के विषय मे तथा सतत और विकासमान प्रगति के लिए आवश्यक उपायों पर सलाह देना;

(३) सैनिक विभागों के अनुसधान और विकास के समन्वयन के उपायों की संस्तुति करना तथा संयुक्त हित के विशिष्ट कार्यक्रमों के लिए उनमें उत्तरदायित्व आवंटित करना;

(४) राष्ट्रीय सैनिक अधिष्ठान से बाहर की एजेन्सियों के रक्षा और विकास सम्बन्धी मामलों में राष्ट्रीय सैनिक अधिष्ठान की नीति निर्धारित करना,

(५) अनुसधान, विकास और समरनीति के परस्पर प्रभाव पर विचार करना और उनके सम्बन्ध मे संयुक्त सेनाध्यक्षों को सलाह देना, तथा

(६) रक्षा सचिव द्वारा निर्देशित अन्य कार्य सम्पन्न करना।

कौन किस आयुध का विकास करे इसका निर्णय परिषद् करती है। यह इस बात का भी निश्चय करती है कि तीनों सेवाओं के कार्यों में अनावश्यक दोहरापन न हो परन्तु यह अच्छे परिणाम देने वाली प्रतियोगिता की आज्ञा दे सकती है। १९४७ मे डॉ॰ बुश को परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था और १९४८ मे रक्षा सचिव के पहले प्रतिवेदन मे बताया गया था कि परिषद् ने १८००० परियोजनाओं पर विचार किया जिनमे से ५००० पूरी की जा चुकी हैं।

१९५८ के रक्षा पुनर्गठन अधिनियम में एक अनुसंधान निदेशक की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है जो रक्षा सचिव के नियन्त्रण मे कार्य करेगा और सशस्त्र सेनाओं सम्बन्धी अनुसधान और विकास के लिए उत्तरदायी होगा। अनुसधान निदेशक के कार्य—

(i) वैज्ञानिक और तकनीकी मामलों मे रक्षा सचिव के प्रमुख सलाहकार के रूप मे कार्य करना,

(ii) रक्षा विभाग मे सभी अनुसधान और अभियान्त्रिक कार्यों का निरीक्षण करना, और

(iii) केन्द्रीय व्यवस्था वाले अनुसधान और अभियान्त्रिक कार्यों को निर्देशित करना है।

हूवर आयोग का प्रतिवेदन

सैनिक क्षेत्र में, सही और तुरन्त निर्णय लेने और इस पर तत्परतापूर्वक व्यवहार करने के लिए वर्दीधारी विशेषज्ञ सेवा अधिकारियों, असैनिक रक्षा सचिव एवं उनके राजनीतिक अध्यक्ष राष्ट्रपति के मध्य पूर्ण सहकार होना आवश्यक है। आधुनिक युद्ध त्रिविध पद्धति के होते हैं अतः कार्यवाही हेतु एक सुसंगठित योजना प्रस्तुत करने के लिए तीनों सेवाओं को आरम्भ से ही सहयोग करना पड़ता है। अन्तर्-सेवा और दूसरे सैनिक और असैनिक अंगों के विभिन्न तत्वों के मध्य यह सहकार प्राप्त करना सरल नहीं है; प्रगतिशील विकास का ध्यान रखते हुए इसके लिए सदैव उच्चतर मापदण्ड की आवश्यकता बनी रहती है। किसी भी योजना संगठन की सफलता के लिए इस सहकार को आवश्यक शर्त मानकर संयुक्त राज्य ने समय-समय पर वर्तमान तंत्र का अध्ययन कर उसमें सुधार करने हेतु सुझाव देने के लिए आयोग नियुक्त किए हैं। इस संदर्भ में हूवर आयोग (Hoover Commission) का प्रतिवेदन उल्लेखनीय है क्योंकि यह राज्य के राजनीतिक अंगों और दक्ष सैनिक नियोजकों के मध्य सम्बन्धों की संवैधानिक स्थिति पर विचार विमर्श करता है।

संघीय सरकार की कार्यकारिणी के संगठन का परीक्षण करने के लिए नियुक्त संवैधानिक हूवर आयोग ने रक्षातंत्र का परीक्षण करने के लिए एक उपसमिति गठित कर दी थी।

नागरिक नियंत्रण और उत्तरदायित्व पर विचार करते हुए आयोग ने अच्छी शासन व्यवस्था की तीन आवश्यकताओं यथा कार्यकुशलता, मितव्ययिता एवं कांग्रेस और जनता के प्रति स्पष्ट उत्तरदायित्व निश्चित करने हेतु किसी भी प्रजातंत्रीय सैनिक संगठन के लिए कुछ आधारभूत सिद्धान्त निर्धारित किए हैं। आगे चलकर आयोग ने टिप्पणी की कि इन सिद्धान्तों के लिए 'कमान और उत्तरदायित्व की स्पष्ट रेखाओं हेतु नियंत्रण और सत्ता का राष्ट्रपति और विभागाध्यक्षों में स्पष्ट केन्द्रीयकरण' आवश्यक है। आयोग ने कहा कि 'इनके बिना राष्ट्रपति और विभागाध्यक्ष वास्तविक नियंत्रण नहीं रख सकते, अतः कार्यवाही की न्यूनता और असफलता के लिए' कांग्रेस और जनता द्वारा उत्तरदायी नहीं ठहराए जा सकते। आयोग ने पाया कि राष्ट्रीय सैनिक संस्थान में इन सिद्धान्तों का बार-बार उल्लंघन न किया जा रहा है। अपने मत के समर्थन में आयोग ने फरवरी १९४९ में प्रकाशित अपने प्रतिवेदन में तीन सम्मतियाँ प्रकट कीं :

(अ) महत्वपूर्ण रक्षा नीतियों से सम्बन्धित कैबिनेट समितियों—राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् और राष्ट्रीय सुरक्षा साधन परिषद्—की सदस्यता और कार्यों के सांविधिक अनुबन्ध ने राष्ट्रपति की सत्ता सीमित कर दी है।

(आ) एकीकरण के स्थान पर कठोर संघीय संरचना स्थापित करने वाले 1947 के अधिनियम के प्रावधानों द्वारा रक्षा सचिव की सत्ता एवं इस प्रकार राष्ट्रपति का नियंत्रण अशक्त और अत्यधिक प्रतिबंधित हो गया है।

(इ) असैनिक उच्चाधिकारियों के मध्य सत्ता की सीमितता और अस्पष्टता के सीधे अनुपात में सेना असैनिक नियंत्रण से मुक्त हो गई है।

कार्यकुशलता का मूल नियंत्रण की एकता होने के कारण आयोग ने विचार प्रकट किया कि राष्ट्रीय सैनिक संस्थान में शक्ति का बिखराव 'अपव्ययी, सेवा-प्रतिद्वन्द्विता को प्रश्रय देने वाला और एकीकरण के सिद्धान्त का हनन करने वाला है।' आगे चलकर इसने विचार प्रकट किया कि 'जब जनता के नाम पर कांग्रेस और राष्ट्रपति किसी एक ही अधिकारी से किसी सरकारी कार्यवाही में उसकी भूमिका के लिए स्पष्टीकरण मांग सकते हैं तो उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को कठोरतापूर्वक लागू किया जा सकता है।" अतः आयोग ने अपने प्रतिवेदन में निम्नलिखित संस्तुति की :–

(अ) राष्ट्रीय सैनिक संस्थान से संबंधित सभी कानूनों के लिए एकीकृत असैनिक नियंत्रण और उत्तरदायित्व का सिद्धान्त निर्देशक नियम होना चाहिए तथा पूर्ण सत्ता और उत्तरदायित्व राष्ट्रपति और कांग्रेस के अधीन रक्षा विभाग के सचिव में केन्द्रित होनी चाहिए।

(आ) सेवा विभागों अथवा उनके अधीनस्थ इकाइयों में निहित सारी सांविधिक सत्ता, राष्ट्रपति की सत्ता के अधीन सीधी रक्षा सचिव को प्रदान कर दी जानी चाहिए और आवश्यकतानुसार उसे यह सत्ता दूसरों को सौंपने का भी अधिकार होना चाहिए।

(इ) नीतियाँ और कार्यक्रम निर्धारित करने का अधिकार केवल राष्ट्रपति और कांग्रेस के अधीन रक्षा सचिव को होगा।

(ई) सेवा सचिवों को रक्षा सचिव को लांघकर अपील करने के अधिकार से वंचित किया जाना चाहिए, वे सीधे और पूर्णरूप से उसी के प्रति उत्तरदायी होने चाहिए; राष्ट्रपति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने वाला एकमात्र अभिकर्ता रक्षा सचिव होना चाहिए; उनकी स्थिति स्पष्ट करने के लिए सेवा सचिवों को स्थलसेना, नौसेना और वायुसेना के अवर सचिव का पद–नाम दिया जाना चाहिए।

(उ) इस बात का स्पष्ट प्रावधान किया जाना चाहिए कि रक्षा सचिव के पूर्ण निर्देशन और सत्ता के अधीन तीनों सेवाओं का प्रशासन अनेक अवरसचिवों द्वारा चलाया जाएगा।

(ऊ) राष्ट्रपति द्वारा सीनेट की स्वीकृति से तीनों सेवाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले संयुक्त सेनाध्यक्ष नियुक्त किए जाएँगे तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति से रक्षा सचिव संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति की अध्यक्षता करने, रक्षा

सचिव का प्रतिनिधित्व करने, तथा उसे प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए एक अध्यक्ष नियुक्त करेगा।

(ए) सैनिक बजट तैयार करने तथा कांग्रेस द्वारा प्रदत्त धन व्यय करने की पूर्ण और अन्तिम सत्ता सहित सारी प्रशासनिक सत्ता केवल राष्ट्रपति की सत्ता के अधीन रक्षा सचिव में केन्द्रित होगी।

(ऐ) आपूर्ति और सामग्री प्राप्त करने और उनकी व्यवस्था करने की पूर्ण सत्ता रक्षा सचिव में निहित होगी। तीनों सेवाओं के उपयोग में अपव्यय और महँगे दोहरेपन को सभी सम्भव साधनों से कम करने के निर्देशों सहित रक्षा सचिव यह सत्ता युद्ध सामग्री परिषद् को (अथवा अपनी इच्छानुसार अन्य अधिकारियों और एजेन्सियों को) सौंप सकता है।

(ओ) सैनिक कर्मचारी प्रशासन के लिए एकीकृत प्रणाली की संस्तुति के अनुरूप सैनिक शिक्षा, प्रशिक्षण, भरती, पदोन्नति और सेवाओं में स्थानान्तरण रक्षा सचिव के केन्द्रीय नियन्त्रण और निर्देश के अधीन रखे जाने चाहिये।

(औ) नागरिक सेवा आयोग द्वारा स्वीकृत मानदण्ड और प्रक्रिया के अधीन असैनिक कर्मचारियों की भरती राष्ट्रीय सैनिक संस्थान में विकेन्द्रित कर दी जानी चाहिए।

(अं) कांग्रेस अथवा राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित नीतियों के अधीन सभी सेवाओं में सैनिक और असैनिक कर्मचारियों के लिए एक समान कर्मचारी नीतियां निर्धारित करने की पूर्ण सत्ता रक्षा सचिव में निहित होनी चाहिए।

राष्ट्रीय सैनिक संस्थान की संगठनात्मक व्यवस्था सम्बन्धी और भी कई संस्तुतियां आयोग ने कीं। उदाहरणार्थ, उन्होंने पाया कि वहाँ 'मूल्य जागरूकता' का अभाव है और इसके परिणामस्वरूप सैनिक व्यय अत्यधिक होता है। बजट निर्माण की प्रणाली के पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता थी अतः आयुध प्रावधान के क्षेत्र में साधनों की बरबादी की रोकथाम सुनिश्चित करने की दृष्टि से वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रगति के विषय में सभी स्तरों पर निकटस्थ नियन्त्रण की सिफारिश की गई।

अन्तर-सेवा सहकार में सुधार करने की दृष्टि से प्रस्तुत निम्नलिखित प्रस्तावों को समिति ने विचार-विमर्श के पश्चात् अस्वीकार कर दिया :—

(अ) तीनों सैनिक सेवाओं पर एक ही सेनाध्यक्ष और एक ही जनरल स्टाफ,

(आ) तीनों सैनिक विभागों का एक ही विभाग के रूप में विलयन।

(इ) नौसेना-वायु अंग का वायुसेना के साथ विलयन,

उपर्युक्त (अ) के विषय में उपाध्यक्ष एचेसन (Acheson) ने मतभेद के रूप में एक अलग वक्तव्य प्रस्तुत किया जिसमें बताया कि संयुक्त सेनाध्यक्ष अपने असैनिक अध्यक्षों, संवैधानिक प्रधान सेनापति और उसके मुख्य सलाहकार रक्षा

सचिव के नियंत्रण से काफी दूर थे। असैनिक वैज्ञानिकों और युद्ध सामग्री परिषद् से भी वे दूर थे। आगे चलकर अलग-अलग सेनाध्यक्षों पर अपनी-अपनी सेवा की विशिष्टता और विस्तारवाद के विचारों से अत्यधिक प्रभावित होने का भी दोष लगाया गया। इस विषय में 'राष्ट्रीय नीति का एकीकरण करने वाली एजेन्सी के रूप में अपने उत्तरदायित्व को पहचानने और स्वीकार करने में' असफल होने का दोष भी उन पर लगाया गया। इन दोषों को दूर करने के लिए उपाध्यक्ष अचेसन के नोट में एक ही सेनाध्यक्ष के पद के निर्माण की बात कही गई। वास्तव में कुशलता और मितव्ययिता प्राप्त करके के लिए उनकी यह सिफारिश थी कि सुधार-कार्य एकीकरण के नाभि-केन्द्र—संयुक्त सेनाध्यक्षों से प्रारम्भ होना चाहिए। उपयुक्त अधीनस्थ अधिकारियों का सहयोग पाकर एक सेनाध्यक्ष किसी एक ही सेवा की विशिष्टता के भावों से मुक्त रहेगा। यदि तीन या चार सदस्यों वाले किसी संगठन की अपेक्षा एक ही सेनाध्यक्ष पर अधिक सरलता से स्थापित की जा सकने वाली उत्तरदायित्व की एक स्पष्ट रेखा है तो नागरिक नियंत्रण का सिद्धान्त सुदृढ़ होता है। अचेसन ने तर्क प्रस्तुत किया कि यदि हूवर आयोग एक ही रक्षा सचिव रखने के सुझाव से सहमत हो जाता तो रक्षा सचिव के सलाहकार के रूप में एक ही सेनाध्यक्ष का पद निर्माण करके सत्ता के केन्द्रीयकरण के लिए सुदृढ़ आधार बन जाता। एक सेवा वाली राष्ट्रीय सशस्त्र सेना का गठन करके ही एक सेनाध्यक्ष रखना संभव हो सकता है, इस बात का भी अचेसन ने अनुभव नहीं किया। एक ही सेनाध्यक्ष रखने के लिए तीनों सेवाओं का एक सेवा में विलयन या एकीकरण आवश्यक शर्त होगी क्योंकि वर्तमान सेवा-प्रतिद्वन्द्विताओं की उपस्थिति में एक सेनाध्यक्ष केवल विस्फोटक असन्तोष को ही जन्म दे सकता है। यूनाइटेड किंगडम में सेनाध्यक्षों की समिति जिसकी सदस्य संख्या अब तीन से बढ़ाकर चार कर दी गई है, के स्वरूप और गठन के कारण यह समस्या उठ खड़ी होती है कि इसकी अध्यक्षता एक असैनिक अधिकारी करे या सेवा अधिकारी करे और प्रतिनिधित्व से वंचित किए बिना सेवाओं को उनकी विशिष्टता-भावना से किस प्रकार दूर रखा जाए। इन गूढ़ मामलों पर यहाँ विचार करने की आवश्यकता नहीं परन्तु इतना कहना पर्याप्त होगा कि नए आयुधों के आविष्कार और युद्धकला की नई तकनीक के विकास के कारण सैनिकतंत्र के नाभि-केन्द्र सेनाध्यक्षों की समिति के गठन कार्य और भूमिका ने सैनिक इतिहास और संगठन के विद्यार्थी के लिए रुचिकर अध्ययन प्रस्तुत किया है, तथा राजनीतिज्ञों के लिए यह सतत ध्यान देने और विचार करने की वस्तु रही है।

दूसरी रुचिकर संस्तुति 'प्रमुख सैनिक सहायक अथवा मुख्य स्टाफ अधिकारी' की नियुक्ति से सम्बन्धित है। यह संस्तुति बड़ी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें सेनाध्यक्षों की समिति के स्तर पर योजनाओं के निर्माण में एक असैनिक अधिकारी को सम्बन्धित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। रक्षा सचिव का प्रमुख

स्टाफ अधिकारी संयुक्त सेनाध्यक्षों (की समिति) के नियमित सदस्यों से निम्न पदस्तर का होना था। यह संस्तुति की गई कि उसे बिना सदस्यता के संयुक्त सेनाध्यक्षों के साथ बैठना चाहिए, और सचिव की अनुपस्थिति में उसका प्रतिनिधित्व करने और उसके दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए उत्तरदायी होना चाहिए। हूवर आयोग की ये तथा अन्य संस्तुतियां पूर्णरूप से लागू नहीं की गई हैं। फिर भी इन्होंने सरकार को नीति और दक्ष नियोजन संगठन की सुरचना में सुधार की सम्भावनाओं तथा शीघ्र और सुसंगत परिणाम प्राप्त करने हेतु सैनिक और असैनिक तत्त्वों के सतत सहकार के साथ सेवाओं के उचित समन्वयन पर सक्रिय विचार करने की दिशा में प्रेरित किया है। रक्षा पुनर्गठन अधिनियम जिसने रक्षा सचिव की शक्तियां बढ़ाकर विस्तृत रक्षातंत्र का एकीकृत नियंत्रण एक बार और अन्तिम रूप से उसके अधीन कर दिया १९५८ से पूर्व पारित नहीं हुआ था।

यद्यपि अधिनियम में वे सब बातें नहीं आ पाई हैं जिनकी हूवर आयोग ने संस्तुति की थी फिर भी तीनों सशस्त्र सेवाओं में सफल समन्वयन प्राप्त करने की कुंजी प्रदान कर इसने कार्यकुशलता के लिए आवश्यक उत्तरदायित्व की रेखा स्थापित करने में सहायता की है। पुनः १९५८ के अधिनियम ने तीनों सेवाओं का विलयन किए बिना अन्तर-सेवा समन्वयन की आवश्यकता को न केवल पूर्णतः समन्न ही है वरन् रक्षा सचिव, जो अपना कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने की असाधारण योग्यता वाला व्यक्ति होगा, की शक्तिशाली सत्ता बनाकर सैनिकतंत्र के साथ पूर्ण सहकार के आधार पर असैनिक नियन्त्रण के सिद्धान्त को दृढ़तापूर्वक स्थापित करने में भी सहायता की है।

परिशिष्ट 'ख' (देखिए पृष्ठ
संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति
रक्षा सचिव
उद्देश्य
कार्य
राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद्
उद्देश्य
कार्य
राष्ट्रीय सुरक्षा साधन परिषद्
उद्देश्य
कार्य
विशेष सहायक

परिशिष्ट (इ) (देखिए पृ० १६८–२००)

राष्ट्रीय सैनिक संस्थान १६४८

रक्षा सचिव

सामान्य नीतियाँ और कार्यक्रम निर्धारित करता है तथा राष्ट्रीय सैनिक संस्थान पर सामान्य निर्देशन, सत्ता और नियन्त्रण रखता है।

युद्ध परिषद्

सशस्त्र सेनाओं सम्बन्धी सामान्य नीति के मामलों पर रक्षा सचिव को सलाह देना

सचिव का सहायक

सचिव के सहायक और उसके निकटस्थ स्टाफ के कार्यकारी अधिकारी के रूप में कार्य करता है।

सचिव का निकटस्थ कार्यालय

- सचिव का सहकारी
  - जन सूचना कार्यालय
- विशेष सहकारी
  - सचिवालय कार्यालय
- विशेष सहकारी
  - विधायिका सम्पर्क कार्यालय
  - काउन्सल का कार्यालय
- बजट कार्यालय
- लेखा नीति कार्यालय
- विशेष सहकारी
  - प्रगति प्रतिवेदन और आँकड़े कार्यालय
- प्रशासनिक कार्यालय
- सचिव का सहकारी
  - नागरिक सुरक्षा नियोजन कार्यालय

परिषदें और स्टाफ

- संयुक्त सेनाध्यक्ष
- युद्ध सामग्री परिषद्
- अनुसंधान और विकास परिषद्
- सैनिक सम्पर्क समिति
- कार्मिक नीति परिषद्

सैनिक विभाग

- स्थल सेना विभाग
- नौसेना विभाग
- वायु सेना विभाग

परिशिष्ट 'घ'

द्वितीय विश्वयुद्ध काल में संयुक्त राज्य का युद्ध विभाग (देखिए पृ० १९३)

युद्ध सचिव

- सहायक युद्ध सचिव
- प्रशासनिक सहायक और प्रमुख लिपिक
- सहायक वायु युद्ध सचिव
- युद्ध का अवर सचिव
- सेनाध्यक्ष
  - सचिवालय —— उपसेनाध्यक्ष
    - जनरल स्टाफ

विशिष्ट कार्यवाही नियोजन | G१ | G२ | G3 | G4 | विधायिका और सम्पर्क | नव नागरिक विकास मामले | महा निरीक्षक | जन शक्ति परिषद् | बजट | विशिष्ट नियोजन

रक्षा कमान | कार्यशील सेनाएं | रणक्षेत्र | भू-वायुसेनाओं का कमांडिंग जनरल | वायुसेना का कमांडिंग जनरल | स्थलसेना सेवा सेनाओं का कमांडिंग जनरल

६

सैनिक तानाशाही के रूप में परिवर्तित संवैधानिक प्रजातंत्र

प्रजातन्त्रीय देशों के सैनिक तन्त्र का वर्णन करने के पश्चात् एकाधिकारवादी राज्यों के सैनिक संगठन के परीक्षण के साथ एक नया अध्याय प्रारम्भ होना है। परन्तु ऐसा करने से पूर्व उन देशों के शासनतन्त्र का अध्ययन करना उपयोगी होगा जिनमें पहले प्रजातन्त्रीय सरकारें थीं पर अब सैनिक क्रान्तियों के फलस्वरूप वहाँ तानाशाही पद्धति स्थापित हो गई है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अनेक देशों में सैनिक क्रान्तियाँ हुई हैं। दक्षिणी अमरीका में यह कोई असाधारण घटना नहीं रह गई है। यूनानियों और रोमनों के काल से चले आ रहे इस प्रकार के सैनिक अभियान की सफलता के अनेक कारण हैं पर सशस्त्र सेनाओं की संवैधानिक स्थिति तथा उन्हें सौंपी गई भूमिका सर्वाधिक प्रभावी कारण हैं। उदाहरणार्थ प्रजातन्त्र में कार्यकारिणी के मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी होने के कारण किसी वर्दीधारी व्यक्ति के कैबिनेट का सदस्य होने की कल्पना नहीं की जा सकती। पाकिस्तान में एक जनरल का कैबिनेट का सदस्य बन जाना ही सशस्त्र सेनाओं द्वारा सैनिक क्रान्ति के माध्यम से असीमित सत्ता हथियाने में सहायक हुआ।

(१)मिस्र

सामान्य संवैधानिक संरचना

शाह फौद ने १२ दिसम्बर, १९३५ को एक घोषणा पर हस्ताक्षर करके मिस्र में १९२३ का संविधान पुनः लागू कर दिया। यह संविधान जुलाई, १९५२ तक चलता रहा और मोटे तौर पर इसे सीनेट और प्रतिनिधि सदन सहित संवैधानिक राजतंत्र कहा जा सकता है।

सीनेट के सदस्यों का चुनाव दस वर्ष के लिए होता था और इनमें से आधे सदस्य प्रति पाँच वर्ष पश्चात् बदल दिए जाते थे अतः यह एक ऐसा निकाय था

जिसे भग नही किया जा सकता था। सीनेट के २/५ सदस्यो का शाह द्वारा और ३/५ सदस्यों का वयस्क मताधिकार द्वारा चुनाव होता था।

प्रतिनिधि सदन का चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा पाँच वर्ष के लिए किया जाता था।

शक्तियों के वितरण की व्यवस्था इस प्रकार की गई थी कि शाह की स्थिति जिसका पर्याप्त मात्रा में संवैधानिकीकरण कर दिया गया था, ऐसी थी कि उसके पास यदि वह उचित प्रयोग करना चाहे तो पर्याप्त शक्ति बच रही थी। सीनेट और प्रतिनिधि सदन के साथ-साथ शाह द्वारा सारी विधायिका शक्ति का प्रयोग किया जाता था। करों सम्बन्धी विधेयकों के अतिरिक्त जिन पर शाह और प्रतिनिधि सदन ही विचार करते थे, किसी भी विधेयक को लाने का प्रत्येक सदन को समान अधिकार था। मत्री अलग-अलग और सामूहिक रूप से सदन के प्रति उत्तरदायी होते थे और शाह को इसे भग करने का अधिकार था। शाह मत्रियो को नामांकित एव पदमुक्त कर सकता था।

सविधान मे सशोधनतत्र की भी स्थापना की गई थी क्योंकि प्रत्येक सदन-में दो तिहाई बहुमत की साविधिक आवश्यकता का प्रावधान करके सविधान मे सशोधनों को सामान्य विधेयकों से भिन्न करने का प्रयास किया गया था। इस प्रकार सिद्धान्त रूप मे मिश्र ससदीय सरकार सहित एक सवैधानिक राजतन्त्र था जिसमें शाह मत्रिपरिषद के माध्यम से कार्य करता था और मत्री ससद के प्रति उत्तरदायी होते थे।

शाह के अधीन रक्षातत्र

तीनो सेवाओं के सर्वोच्च सेनापति शाह और मिस्री कैबिनेट के एक सदस्य युद्ध और नौसेनामंत्री–के माध्यम से सशस्त्र सेनाओं पर असैनिक नियत्रण का विधान किया गया था। सर्वोच्च सेनापति के रूप मे शाह कैबिनेट के माध्यम से नियंत्रण रखता था तथा युद्ध और नौसेना मत्री स्थल सेना, नौसेना और वायु सेना तथा तटरक्षको और सीमा सुरक्षा दल की दो अर्द्धसैनिक इकाइयो के सम्बन्ध मे सरकारी नीति पर व्यवहार करने के लिए उत्तरदायी था। जुलाई १९५२ मे शाह द्वारा पदत्याग के पश्चात् शाह का स्थान कार्यवाहक शासन परिषद् ने ले लिया परन्तु वास्तव में जनरल नजीब ने एक सैनिक तानाशाही स्थापित कर दी थी।

सैनिक कमान और प्रशासन के अंग

पुराने सविधान के अनुसार रक्षा नीति-निर्धारण सर्वोच्च रक्षा परिषद् का उत्तरदायित्व था। प्रधानमत्री इसकी अध्यक्षता करता था और निम्नलिखित व्यक्ति इसके सदस्य होते थे :–

(१) मत्री परिषद् का अध्यक्ष — अध्यक्ष
(२) युद्ध और नौसेना मत्री — उपाध्यक्ष

(३) सार्वजनिक निर्माण मंत्री
(४) वित्तमंत्री
(५) संचार मंत्री
(६) युद्ध और नौसेना मंत्री का स्थायी अवर सचिव
(७) स्थल सेना के जनरल स्टॉफ का अध्यक्ष

स्थल सेनाध्यक्ष रक्षा परिषद का सदस्य होता था और उसे मतदान का अधिकार था। पुनः सैनिक क्रान्ति से तुरन्त पूर्व मंत्री के व्यक्तिगत पद सहित प्रधान सेनापति के पद का निर्माण किया गया था। इस प्रकार सशस्त्र सेनाओं के एक सदस्य को मंत्रीपद का आनन्द-लाभ प्राप्त करने की आज्ञा मिल गई थी। सशस्त्र सेनाओं के प्रधान सेनापति और सेनाध्यक्ष न केवल व्यावसायिक सैनिक विशेषज्ञ थे वरन् वे दोनों कैबिनेट के सदस्य भी थे और अन्य मंत्रियों के साथ उन्हें मतदान का भी अधिकार था। निस्सन्देह अन्य प्रजातांत्रिक देशों में प्रचलित पद्धति से यह एक गम्भीर अलगाव था जहां सरकारी निर्णय सदैव कैबिनेट द्वारा लिए जाते हैं तथा सैनिक विशेषज्ञ उपस्थित तो रहते हैं पर उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होता। मिस्र की यह पद्धति थाइलैंड के समान है जहां कैबिनेट के सदस्य सशस्त्र सेनाओं से भी लिए जाते हैं। स्याम में हुई अनेक सैनिक क्रान्तियों की शृंखला का यह परिणाम है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है सैनिक क्रान्ति से पूर्व प्रधान सेनापति को मिस्रीतंत्र में शामिल करके संविधान ने सशस्त्र सेनाओं को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया था।

(१) युद्ध और नौसेना मंत्रालय, (२) सर्वोच्च स्थल-सेनापरिषद् (३) स्थल सेना जनरल स्टाफ और (४) अधिकारी परिषद सैनिक कमान और प्रशासन के अन्य अंग थे।

युद्ध और नौसेना मंत्रालय :

युद्ध और नौसेना मंत्रालय में केन्द्रीय प्रशासन तथा सीमा प्रशासन शामिल थे। १६५६ में स्थल सेना के केन्द्रीय प्रशासन में निम्नलिखित विभाग और सेवाएँ थीं :–

सरदार का मुख्यालय,
स्थल सेना मुख्यालय,
भरती विभाग,
काहिरा और ब्रिगेडों का मुख्यालय,
निर्माण विभाग,
आपूर्ति विभाग,
आयुध सेवाएँ
चिकित्सा विभाग

पशुचिकित्सा विभाग, और
सैनिक वायु सेना।

१९५८ मे सैनिक वायु सेना का पर्याप्त विस्तार हो चुका था और यह एक अलग मन्त्रालय के अधीन एक अलग सेवा के रूप मे मान्यता प्राप्त करने की प्रतीक्षा कर रही थी। किसी भी आधुनिक राज्य की सशस्त्र सेनाओ का आवश्यक अंग होने के नाते वायु सेना के विकास के साथ यह मान्यता प्राप्त होनी थी।

युद्ध मन्त्रालय का सचिव एक असैनिक अधिकारी होता था और दो अवर सचिव एक सैनिक और एक असैनिक उसकी सहायता करते थे।

सर्वोच्च स्थल सेना परिषद् :

सर्वोच्च स्थलसेना परिषद् का कार्य जवरल लामबन्दी सहित सैन्य संगठन तथा राष्ट्रीय रक्षानीति सम्बन्धी सभी प्रश्नो पर सलाह देना था। इस स्थल सेना परिषद् के प्रस्ताव जिसमे युद्ध और नौसेना मन्त्री, सेनाध्यक्ष, अडजुटांट जनरल, क्वार्टर मास्टर जनरल, सेना सचिव और शाही फरमान द्वारा नियुक्त चार वरिष्ठ अधिकारी होते थे, मन्त्री परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते थे। परिषद् रक्षातन्त्र का इतना महत्त्वपूर्ण अंग नही थी जितना कि सर्वोच्च रक्षा परिषद क्योंकि वह उत्तरोक्त परिषद् के अधिकतम कार्यों को करने मे सक्षम थी। यद्यपि ऐसा लगता है कि इससे बार-बार परामर्श नही किया जाता था फिर भी स्थल सेना परिषद् एक निष्प्राण निकाय नहीं था।

स्थल सेना का जनरल स्टाफ :

१९५२ से पूर्व मिस्र मे स्थल सेना के जनरल स्टाफ का सगठन इस प्रकार था :

(१) स्थल सेना का अध्यक्ष
(२) अडजुटांट जनरल
(३) जनरल स्टाफ अधिकारी
(४) युद्ध और नौसेना मन्त्रालय का सचिव

किसी जनरल स्टाफ मे अडजुटांट जनरल तथा युद्ध और नौसेना मन्त्रालय के सचिव को शामिल किया जाना एक नवीन लक्षण था। यूनाइटेड किंगडम मे, रक्षामन्त्री का मुख्य स्टाफ अधिकारी सेनाध्यक्षो की समिति का सदस्य होता था, परन्तु वह असैनिक व्यक्ति नहीं होता था। पुनः रक्षा मन्त्रालय का सचिव जो सेनाध्यक्षो की समिति की गोष्ठियो मे उपस्थित रहता है इसका सदस्य नहीं होता। इस प्रकार लगता है कि स्थल सेना जनरल स्टाफ मे एक सैनिक अधिकारी के अधीन कार्यरत सचिव-स्तर के असैनिक सदस्य के कारण जुलाई १९५२ की सैनिक क्रांति से पूर्व सशस्त्र सेनाऐं इस तंत्र में लाभप्रद स्थिति को पहुँच गईं।

अधिकारियो की परिषद् :

अधिकारियो की परिषद् पदोन्नति, अवकाश प्राप्ति, नियुक्तियो, सम्मान और

पुरस्कारों के विषय में संस्तुति करने वाला एक महत्त्वपूर्ण अंग थी। वह ये संस्तुतियाँ युद्ध और नौसेना मंत्री से करती थी और वह सशस्त्र सेनाओं के प्रधान सेनापति से विचार-विमर्श करके अपना निर्णय लेता था।

सशस्त्र सेनाओं का प्रधान सेनापति :

तीनों सेवाओं में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से १९५२ से पूर्व इस पद का निर्माण किया गया था। मिस्र में संयुक्त सेनाध्यक्ष जैसी कोई संस्था नहीं थी अतः ऐसा अनुभव किया जाता था कि इस पद पर तीनों सेवाओं को नियंत्रित करने वाला एक सर्वोच्च सेनापति होना चाहिए। इस अधिकारी की नियुक्ति शाही फरमान द्वारा होती थी और स्पष्टतः तत्कालीन सरकार का इस महत्त्वपूर्ण पद पर कोई नियंत्रण नहीं था। उच्च कमान का यह भी एक लक्ष्य था जिसने इन सशस्त्र सेनाओं के पक्ष को बल प्रदान किया जिसका सर्वोच्च सेनापति शाह स्वयं होता था।

१९५२ की सैनिक क्रान्ति से पूर्व मिस्र के रक्षातंत्र का एक संगठनात्मक मानचित्र (चार्ट) नीचे दिया जा रहा है

सर्वोच्च रक्षा परिषद्
प्रधानमंत्री, अध्यक्ष तथा मंत्री और प्रधान सेनापति अन्य व्यक्तियों सहित सदस्य

शाह
युद्ध और नौसेना मंत्री
सशस्त्र सेनाओं का प्रधान सेनापति (मंत्री)

युद्ध और नौसेना मंत्रालय | सर्वोच्च स्थल सेनापरिषद् | स्थल सेनाध्यक्ष | अधिकारियों की परिषद

स्थलसेना के जनरल स्टाफ का अध्यक्ष | एडजुटांट जनरल | जनरल स्टाफ अधिकारी | युद्ध और नौसेना मंत्रालय का सचिव

केन्द्रीय प्रशासन | सेना प्रशासन

जिला क्षेत्र आदि
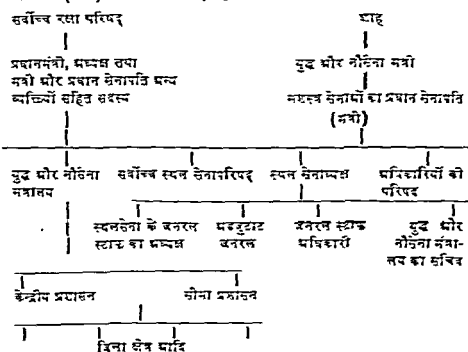
१९५२ की सैनिक क्रान्ति :

उपर्युक्त समीक्षा से ऐसा लगता है कि अनेक मामलों में सशस्त्र सेनाओं को लाभकारी स्थिति प्राप्त थी और सर्वोच्च सेनापति के रूप में शाह इस दिशा में पर्याप्त शक्ति का प्रयोग कर सकता था। उसे सीनेट के २/५ सदस्यों को नामांकित करने

का अधिकार था अतः शाह फारूक षड्यन्त्र द्वारा शक्तिशाली वफ्द नेता नहसपाशा को १९४४ से आगे मंत्रिमंडल से बाहर रखने में सफल हो गया। संकुचित क्षेत्रीय हितों के लिए कार्यरत अनेक दलों ने ऐसी स्थिति उत्पन्न करदी जिसमें अल्पकालिक अशक्त कार्यकारियों ने शाह को आवश्यकता से अधिक शक्ति दे दी और इसी कारण मिस्र में संसदीय प्रणाली असफल हो गई। वफ्द ने १९४५ के चुनावों का बहिष्कार किया और किसी भी मिली-जुली सरकार में शामिल होने से बराबर इन्कार करती रही। वफ्द ने इस बात पर बल दिया कि तटस्थ कैबिनेट के अधीन नए चुनाव कराए जाने चाहिये परन्तु राजमहल के विरोध के कारण यह स्वीकार नहीं किया गया और स्थिति लगातार बिगड़ती चली गई। संसदीय विरोध और तीव्र जन आलोचना का सामना करते हुए अल्पमत सरकारें शाही सहयोग पर अधिकाधिक निर्भर रहने लगी और उन्होंने शाह को राजनीति में घसीट कर उसे पूर्णत अलोकप्रिय बना दिया। संसदीय दलों की अशक्तता और एक के बाद एक आने वाली सरकारों के कारण शाह ने राज्य के प्रशासन में हस्तक्षेप की अधिकाधिक शक्ति प्राप्त कर ली। साज-सामान के क्रय, अनुशासनात्मक कार्यवाही, तथा पदोन्नति और नियुक्तियों के विषय में सशस्त्र सेनाएँ पूर्णरूप से उसके एकाधिकार में आगईं। यदि शाह अपने को सशस्त्र सेनाओं के साथ एकाकार करके उनकी राजभक्ति प्राप्त कर लेता तो वह सर्वोच्च कार्यकारी शक्ति प्राप्त कर सकता था। परन्तु अपने अनुत्तरदायी कार्यों द्वारा उसने सेना को अपना शत्रु बना लिया और अपने ही पतन का मार्ग प्रशस्त किया। शाह की असफलताएँ क्रान्ति में सहायक हो सकती थीं, परन्तु राज्य के समग्र सगठन में सशस्त्र सेनाओं की लाभकारी स्थिति के कारण ही क्रान्ति सभव हो सकी। जुलाई १९५२ से पूर्व सशस्त्र सेनाओं को देश की आतरिक राजनीति में निर्णायक प्रभाव रखने वाला राज्य का महत्त्वपूर्ण अग माना जा सकता था। जब देश की आतरिक स्थिति बिगड़ने लगी और स्थिति में सुधार करने के लिए एक शक्तिशाली व्यक्ति की आवश्यकता अनुभव हुई तो तत्कालीन सरकार का निर्माण करने हेतु स्थल सेना ने एक व्यक्ति प्रस्तुत कर दिया।

समाचारपत्रों की सूचनाओं से ऐसा लगता है कि सैनिक क्रान्ति से काफी पहले मिस्र की सेना में विशेषकर नवयुवक अधिकारियों में अत्यधिक अशान्ति और असन्तोष व्याप्त था। स्थल सेना के उच्चाधिकारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार के आरोपों, पदोन्नतियों की धीमी गति, तथा इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण फिलस्तीनी युद्ध के समय मिस्री सेनाओं की आपूर्ति और साज-सामान के सम्बन्ध में गम्भीर घोटालों का रहस्योद्घाटन इस असन्तोष को भड़काने वाले सहायक कारण थे। उपर्युक्त के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि शाह फारूक के परिचारक दल के सदस्यों सहित कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों ने उन ठेकों से लाभ उठाया था जिनके अतर्गत सेना को दोषपूर्ण आयुध और युद्ध सामग्री की आपूर्ति की गई थी। स्थल सेना में यह धारणा सर्वव्याप्त थी कि इन ठेकों के अधीन आपूर्ति किए गए दोषपूर्ण आयुध और युद्ध

सामग्री ही उस युद्ध में मिस्र की हार का एक प्रमुख कारण थे। अतः ऐसा लगता है कि इन सब कारणों से तथा इस कारण से कि जिन लोगों पर आयुध ठेकों से लाभ उठाने का दोष था उनके विरुद्ध कोई स्पष्ट कार्यवाही नहीं की गई थी, सारी सेना में असन्तोष फैल गया। यह असन्तोष सैनिक क्रान्ति के रूप में फूट पड़ा और ईमानदारी के लिए अत्यधिक ख्यातिप्राप्त अधिकारी जनरल नजीब ने जो टाइम्स के कूटनीतिज्ञ संवाददाता के शब्दों में, "एक ऐसा व्यक्तित्व था जिसके चारों ओर स्थल सेना के उच्चवर्गों में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध अनेक कनिष्ठ अधिकारियों का असन्तोष स्वाभाविक रूप से केन्द्रित था" इस का नेतृत्व किया।

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि जनरल नजीब के घोषणापत्र में संसद को भंग करने तथा संसद का समर्थन प्राप्त सरकारों को भंग करने के शाही अधिकार को समाप्त करके शाह की शक्ति सीमित करने के उद्देश्य से मिस्र के संविधान में संशोधन की मांग की गई थी। जनरल नजीब की आधारभूत मांग यह थी कि शाह को राज्य के प्रशासन में हस्तक्षेप करने की आज्ञा नहीं होनी चाहिए। उस समय के समाचार पत्रों की रिपोर्टों से पता लगता है कि यदि शाह पूर्णतः संवैधानिक अथवा लोकप्रिय होता तो सम्भव है कि सैनिक क्रान्ति कभी न होती। सैनिक क्रान्ति की आतरिक कहानी से स्पष्ट पता चलता है कि शाह द्वारा जनरल नजीब को युद्ध और नौसेना मंत्री नियुक्त करने की सिरीपाशा की संवैधानिक सलाह न मानने के कारण न केवल सिरीपाशा ने त्यागपत्र दिया वरन् सैनिक क्रान्ति भी अवश्यम्भावी हो गई। सिरीपाशा का उत्तराधिकारी हिलालीपाशा न तो सशस्त्र सेनाओं की भावनाओं को नियंत्रित कर सका और ही फारूक के एक बहनोई कर्नल इस्माइल शेरीन बे को युद्ध और नौसेना मंत्री नियुक्त करने के शाही निर्देश का विरोध कर सका। इससे शाह का भवितव्य निश्चित हो गया और समाचार पत्रों द्वारा वर्णित अपनी कैबिनेट नियुक्त करने के प्रधानमंत्री के उचित एवं न्यायसंगत अधिकार को जनसमर्थन मिल गया तथा ऐसे परिवर्तन की मांग की भावना का उदय हो गया जिसके लिए कोई संवैधानिक उपाय नहीं था।

अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस आवश्यक संवैधानिक परिवर्तन को लाने के लिए जिसे जनेच्छा चाहती तो थी पर ला नहीं सकती थी, सेना द्वारा प्रवेश की आवश्यक और अनुकूल परिस्थितियां विद्यमान थीं। इसके अतिरिक्त सशस्त्र सेनाओं की संवैधानिक स्थिति भी क्रान्ति में सहायक थी। संक्षेप में कह सकते हैं कि चार ऐसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र थे जिनमें सशस्त्र सेना को लाभ की स्थिति प्राप्त थी :

(१) सशस्त्र सेनाओं के प्रधान सेनापति को मंत्रीपद प्राप्त था और उसे सर्वोच्च रक्षा परिषद् तथा कैबिनेट की सदस्यता प्रदान की गई थी। इसने किसी लोकतन्त्रीय देश में सरकार की ओर से निर्णय लेने के लिए एक वर्दीधारी व्यक्ति

को भी चुने हुए असैनिक व्यक्तियों के साथ बैठाने का एक विचित्र दृष्टांत स्थापित कर दिया।

(२) पुनः युद्ध और नौसेना मन्त्रालय के सचिव को जो एक उच्चस्तरीय असैनिक अधिकारी था, स्थल सेनाध्यक्ष के अधीन रखने से वर्दीधारी व्यक्ति की श्रेष्ठता का संकेत मिलता है। इस प्रकार सशस्त्र सेनाओं पर प्रभावी नागरिक नियन्त्रण रखने की सम्भावनाएँ क्षीण हो गई थीं।

(३) शाह सशस्त्र सेनाओं पर अपना विशेषाधिकार मानता था और संसद की ओर से केबिनेट को उन पर नियन्त्रण करने की आज्ञा नहीं देता था।

(४) पुनः सशस्त्र सेनाओं पर संसदीय नियन्त्रण के ढीलेपन और कमजोरी का यह भी कारण था कि वित्त वर्ष आरम्भ होकर कुछ माह बीत जाने तक मिस्र की संसद बजट स्वीकार नहीं करती थी और इस प्रकार एक स्थायी आदेश के अनुसार नए वित्त वर्ष में रख-रखाव पर पिछले वर्ष के लिए स्वीकृत राशि के बराबर धन व्यय होता रहता था। संक्षेप में, उस प्रयुक्त संसदीय नियन्त्रण के आधार का जिसके अनुसार प्रतिवर्ष सेना के लिए वित्त व्यवस्था पर मतदान जरूरी होता है, मिस्र में अभाव था। इस प्रकार क्रान्ति के लिए उत्तरदायी महत्त्वपूर्ण सहायक कारण मिस्र की प्रणाली में ही विद्यमान थे।

मोटेतौर पर यदि सैनिक क्रान्तियों का कोई सिद्धान्त बनाया जाए तो कहा जा सकता है कि उन्हें जनभावना से समर्थन प्राप्त होता है और वही उनकी सफलता का मूल कारण होता है। मिस्र के विषय में यह सिद्धान्त और भी तीव्रता से लागू होता है। वाफ्दी, उदारवादी, राष्ट्रवादी तथा साथी एवं उग्रवादी मुस्लिम भ्रातृत्व संगठन सहित सभी प्रमुख राजनीतिक दलों के नेताओं ने जनरल नजीब के कार्य की प्रशंसा और शाह फारूक के शासन की भर्त्सना करते हुए वक्तव्य जारी किए। वफ्द के नेता नहसपाशा और वफ्द के महामन्त्री सेराग-ऐ-दीन पाशा जो जेनेवा में छुट्टियाँ मना रहे थे विमान द्वारा मिस्र लौट आए और उन्होंने नजीब से व्यक्तिगत मुलाकात करके घोषणा की कि अत्याचार समाप्त होने और हमारी महान सेना और इसके महान नेता जनरल नजीब द्वारा देश की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित होने पर ही हम वापस आए हैं। उदारवादी नेता हुसैन हेकल पाशा ने भी भूतपूर्व भ्रष्ट शासन की निंदा करते हुए जनरल नजीब को अपने दल का पूर्ण समर्थन देने के विषय में वक्तव्य जारी किया। नजीब के बाद जब जनरल नासेर ने सत्ता सम्भाली तब भी ऐसा ही जनसमर्थन उमड़ा था और इसी के बल पर वह अभी तक सत्ता में बना है। नासेर का शासन अब दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गया है और सबने इसे मान्यता प्रदान कर दी है।

अपेक्षाकृत एक छोटे देश मिस्र में जिसमें उचित-नियन्त्रण हीन राजशाही संविधान लागू था, १९५२ की क्रान्ति की सफलता यह सिद्ध करने में सहायक है कि किसी बड़े देश में जहाँ सुदृढ संविधान हो और जिसके प्रति समय बीतने के

साथ-साथ सम्मान की भावना बढ़ती गई हो सैनिक क्रान्ति की योजना बना लेना कठिन है।

(२) १६५८ से पूर्व पाकिस्तान की रक्षा संरचना

जब १६४७ के स्वतन्त्रता अधिनियम ने भारत और पाकिस्तान के दो देशों का निर्माण कर दिया उस समय १६३५ का भारत-सरकार अधिनियम अविभाजित भारत की आधारभूत संवैधानिक संरचना प्रदान करता था। दोनों देश इस पर व्यवहार करते रहे परन्तु २६ जनवरी १६५० को भारत ने अपनी संविधान-सभा द्वारा निर्मित संविधान स्वीकार कर लिया। एक संविधान-सभा की संविधान निर्माण का कार्य सौंप कर पाकिस्तान ने भी अपने आपको 'राष्ट्रमण्डल में एक गणतन्त्र" होने की घोषणा करदी। पाकिस्तान का रक्षातन्त्र सम्बन्धी कोई प्रकाशित साहित्य उपलब्ध नहीं है अतः समाचारपत्रों की रिपोर्टों से जो कुछ संग्रहीत हो सकता है उसके आधार पर रक्षा नीति और दस सैनिक नियोजन संगठन के वर्णन करने का यहाँ प्रयास किया गया है। यहाँ जनरल अयूब खां के अधीन स्थापित सैनिक तानाशाही से पूर्व की स्थिति का वर्णन किया गया है। आज के पाकिस्तान में सशस्त्र सेनाओं की सही संवैधानिक स्थिति क्या है इसका कुछ पता नहीं। फिर भी मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि आज वर्दीधारी व्यक्ति ही राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर नियुक्त हैं और इस शासन को सैनिक तानाशाही कहा जा सकता है। विश्वसनीय सामग्री के अभाव में वर्तमान तन्त्र का विस्तृत वर्णन करने का विचार नहीं है। फिर भी इस्कन्दर मिर्जा के राष्ट्रपति काल के शासन का वर्णन नीचे दिया जा रहा है जिसका अंत उसने मार्शल ला की घोषणा करके ८ अक्तूबर १६५८ को कर दिया था। यह सर्वविदित है कि मिर्जा की तानाशाही स्थापित होने के कुछ मास पश्चात् ही स्थल सेनाध्यक्ष जनरल अयूब खां ने सत्ता सम्भालकर एक संगठित सैनिक तानाशाही स्थापित कर दी और वही आज के पाकिस्तान को सरकारी तंत्र प्रदान करती है।

१६५८ से पूर्व रक्षा नीति-नियोजन

प्रधानमंत्री एवं रक्षामंत्री :

स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद रक्षा को अत्यधिक महत्त्व दिए जाने के कारण प्रधानमन्त्री ने रक्षा विभाग स्वयं सम्भाल लिया था। श्री लियाकत अली खां के उत्तराधिकारी ने भी प्रधानमन्त्री होने के साथ-साथ रक्षा विभाग को भी अपने अधीन रखा। परन्तु १६५४ में शाही पाकिस्तानी स्थल सेना के प्रधान सेनापति जनरल अयूब खां को रक्षामंत्री नियुक्त कर दिए जाने पर स्थिति में मौलिक परिवर्तन हो गया। कैबिनेट स्तर के उत्तरदायित्व का पद विधानसभा के निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए ही सुरक्षित होता है। किसी वर्दीधारी व्यक्ति को इस स्तर तक पदोन्नत करने से यूनाइटेड किंगडम जैसी लोकतन्त्रीय संसदीय सरकार के मूल पर ही कुठाराघात होता है। सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्य वहाँ उपस्थित हैं तो रहते

हैं पर वे कैबिनेट की रक्षा समिति के नियमित सदस्य नहीं होते। पाकिस्तान में अभी तक कोई निश्चित चुनाव न होने के कारण मतदाताओं के प्रति सरकारी उत्तरदायित्व का सिद्धान्त पूर्णतः स्थापित नहीं हो पाया है फिर भी स्वीकृत राजनीतिक सिद्धान्त के अनुसार प्रधान सेनापति के रूप में कार्यरत कोई सेवाधिकारी विधायिका के लिए चुनाव लड़े बिना कैबिनेट पद प्राप्त नहीं कर सकता और चुनाव वह तब तक नहीं लड़ सकता जब तक वह राज्य के कार्यकारी प्रशासन में लाभ के पद पर कार्यरत है। छठे भाग के सातवें अध्याय में समस्या के इस पहलू पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है, यहाँ इसका संकेत केवल इसलिए कर दिया है कि कैबिनेट के गठन में इस परिवर्तन के कारण १९५८ से पूर्व की पाकिस्तान सरकार को भी व्यवहारतः कैबिनेट सरकार के रूप में वर्णन करना कठिन है।

कैबिनेट की रक्षा समिति :

ऐसा समझा जाता है कि सैनिक तानाशाही की स्थापना के पूर्व पाकिस्तान में भी भारत की रक्षा समिति के समकक्ष एक समिति थी। कैबिनेट की रक्षा समिति के कुछ अन्य मंत्री सदस्य होते थे और प्रधानमन्त्री इसकी गोष्ठियों की अध्यक्षता करता था। सामान्य प्रथा के अनुसार वित्तमन्त्री इस समिति का सदस्य होता था। अतः १९५८ से पूर्व कैबिनेट की रक्षा समिति पाकिस्तान के रक्षा मामलों में सर्वोच्च नियन्त्रक अंग थी। जब पाकिस्तानी स्थल सेना के प्रधान सेनापति को पदोन्नत करके रक्षामंत्री बना दिया गया तो समझा जाता है कि उपसेनाध्यक्ष सेनाध्यक्षों की समिति का सदस्य बन गया और इस प्रकार कैबिनेट की रक्षा समिति के विचार-विमर्श के समय उपस्थित रहने लगा। सेनाध्यक्षों की समिति की साधारण गोष्ठियों में उपसेनाध्यक्ष उपस्थित रहा करता था परन्तु महत्त्वपूर्ण गोष्ठियों की अध्यक्षता रक्षामंत्री ही, जो स्थल सेना का प्रधान सेनापति भी होता था, करता था। इस प्रकार राजनीतिक स्तर पर क्रान्ति से पूर्व भी नीति नियोजन और दल नियोजन एक दूसरे से पूर्णतः उलझे हुए थे। वास्तव में एक दल नियोजक को भी पदोन्नत करके रक्षा नीति-निर्माता बना दिया गया था। दल सैनिक नियोजकों के दृष्टिकोण से यह विजयोल्लास की बात हो सकती है परन्तु संसदीय लोकतन्त्र के उचित कार्यान्वयन की दृष्टि से इसे एक अधोगामी पग ही कहा जा सकता है। लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के विपरीत सशस्त्र सेनाओं को पदोन्नत करना एक ऐसा पग था जिसने सैनिक शासन की स्थापना को आवश्यक बना दिया और अक्तूबर १९५८ में इसकी स्थापना हो कर ही रही।

संयुक्त संचालकों की समिति :

यदि यह निकाय आज भी विद्यमान है तो इसे भारत की सेनाध्यक्षों की समिति के समकक्ष कहा जा सकता है। तीनों सेनाओं के प्रधान सेनापति इसके सदस्य होते हैं और उपसेनाध्यक्ष इसका सचिव होता है। प्रारम्भ में इसका मुख्य कार्यालय कराची में था। संयुक्त संचालकों की समिति के वही कार्य हैं जो पूर्व वर्णित सेनाध्यक्ष

की समिति के हैं। १९५८ से पूर्व की व्यवस्था में उपसेनाध्यक्ष के अधीन अनेक समितियाँ कार्य करती थीं। पर पता नहीं आज भी यह संस्था विद्यमान है अथवा नहीं अतः इसकी संक्षेप में व्याख्या करना आवश्यक है।

करांची स्थित उपसेनाध्यक्ष :

जब पाकिस्तानी स्थल सेना के मुख्यालय रावलपिण्डी में स्थित थे, तब उनका प्रतिनिधि उपसेनाध्यक्ष कराची में रहता था और दो अन्य सेना मुख्यालयों सहित रक्षा मन्त्रालय भी वहीं स्थित था। अब पाकिस्तान की राजधानी कराची से हटा दी गई है अतः आधुनिकतम व्यवस्था के बारे में कुछ भी पता नहीं है। फिर भी १९५८ से पूर्व उपसेनाध्यक्ष सम्पर्क अधिकारी की भाँति कार्य करता था और बहुधा कराची और रावलपिण्डी के मध्य घूमता रहता था। वह शाही पाकिस्तानी सेना का सेनाध्यक्ष था अतः अन्तर-सेवा गुप्त सूचना निदेशालय, संयुक्त नियोजन समिति और संयुक्त गुप्त सूचना समिति उसके अधीन कार्य करती थीं। इन समितियों का गठन बहुधा सेनाध्यक्षों की समिति की-सहायता करने के लिए होता था। इस प्रकार उपसेनाध्यक्ष जिसकी सामान्य समितियाँ सहायता करती थीं, संयुक्त संचालकों की समिति के अधीन एक लघु अन्तर-सेवा सचिवालय का कार्य करता था। सैनिक शासन स्थापित हो जाने के पश्चात् सशस्त्र सेनाओं का विशेष रूप से स्थल सेना का पर्याप्त विस्तार हुआ होगा क्योंकि क्रान्ति मुख्यतः स्थल सेना द्वारा ही की गई थी।

७

सर्वाधिकारवादी राज्यों में रक्षा संगठन

नात्सी जर्मनी, सेनाध्यक्ष

हिटलर के अधीन रक्षातन्त्र :

हिटलर द्वारा सत्ता प्राप्त किये जाने के उपरान्त जर्मनी मे रक्षा मत्रालय का इतिहास सारी सशस्त्र सेनाओ पर नियन्त्रण का स्वय हिटलर और राइख की उस कैबिनेट के हाथो मे केन्द्रीकृत होने का इतिहास है जो धीरे-धीरे एक ऐसी सस्था बन गई थी जिसमे केवल उच्च पार्टी सदस्य या अधिकारी ही होते थे। १९३३ मे सत्ता सभालने पर हिटलर ने तत्कालीन युद्धमन्त्री, सेनाध्यक्ष और सर्वोच्च सचालक द्वारा प्रयुक्त सत्ता स्वय अपने हाथ मे ले ली और युद्ध मत्रालय का पूर्णत: पुनर्गठन करके स्थल सेना, नौसेना तथा वायु सेना की कार्यकारी कमानों के साथ ओबर कमाडो डर व्येहरमाख्ट (Ober Kommando der Wehrmacht) नामक एक सर्वोच्च समन्वय निकाय का गठन किया।

राइख कैबिनेट को न केवल सरकार की पूरी कार्यकारी शक्तिया ही सौंपी गई वरन् यह अप्रतिबधित विधायकी का कार्य भी करती थी। १९३७ तक कैबिनेट में केवल पार्टी के सदस्य ही होते थे और उन्हे पार्टी सोपान मे भी समान स्तर का पद प्राप्त होता था। वे पार्टी के उद्देश्यो को सारी जनता के लिए बाध्य विधायिका और प्रशासनिक कार्यों मे रूपान्तरित करने के साधनमात्र थे।

ज्यों-ज्यो समय बीतता गया साधारण कैबिनेट की गोष्ठियां कभी-कभार ही होने लगीं। जनवरी १९३३ मे यह ४८ सदस्यो वाली एक व्यवस्थाहीन सस्था थी। विधेयक एक विभाग मे आरम्भ होकर दूसरे विभाग को भेजे जाते थे। सारे आधार-भूत राजनीतिक प्रश्नो, कदमो और विभागीय गतिरोधो का स्वय हिलटर व्यक्तिगत रूप से निर्णय करता था।

यह कैबिनेट जिसमे युद्धमन्त्री (१९३८ तक), वायुमत्री, आयुध और युद्ध सामग्री मत्री (जिसे १९४३ से युद्ध उत्पादन मत्री की सज्ञा दी गई) होते थे, रक्षा

कार्यों का संचालन करने की दृष्टि से बहुत बड़ा विवाद थी। अतः युद्धकाल और इससे तुरन्त पूर्व के वर्षों में इन विषयों पर विचार करने के लिए कैबिनेट की कार्यकारी और विधायिका शक्ति वाले अनेक स्वतंत्र निकायों में बांट दिया गया था। (पृ० २३२ पर चार्ट देखिए)।

समय और महत्त्व के अनुसार विधायिका और कार्यकारी कार्यों वाली इन अनोखी संस्थाओं में से पहली संस्था राइख रक्षा परिषद् थी जिसे कैबिनेट ने रक्षा सम्बन्धी सभी मामलों को निर्देशित एवं समन्वित करने के लिए अप्रैल १९३३ में गठित किया। इस परिषद् में युद्ध और वायुमंत्री (वायुमन्त्री वायु सेना का प्रधान सेनापति भी होता था) तथा स्थल और नौसेना के प्रधान सेनापति होते थे। ये प्रधान सेनापति ही इस निकाय के ऐसे सदस्य थे जो साधारण कैबिनेट के सदस्य नहीं होते थे। परन्तु १९३८ में औपचारिक मंत्री पद प्राप्तकर ये परिषद् की गोष्ठियों में भाग लेने लगे।

१९३८ में युद्धमंत्री का पद समाप्त कर दिया गया। हिटलर ने सारी सशस्त्र सेनाओं की कमान और युद्धमंत्री का सारा उत्तरदायित्व स्वयं सम्भाल लिया। उसी समय तीनों सेवाओं का नियोजन और समन्वयन करने एवं सर्वोच्च प्रधान सेनापति के रूप में हिटलर के व्यक्तिगत स्टाफ की भांति कार्य करने के लिए सशस्त्र सेनाओं की सर्वोच्च कमान (O. K. W.) का सर्वोच्च निर्देशक स्टॉफ के रूप में गठन किया गया अब से आगे ओ. के. डब्ल्यू. (O. K. W.) का प्रधान राइख मंत्री के पद सहित कैबिनेट और राइख रक्षा परिषद् का सदस्य होने लगा।

अगस्त १९३९ में युद्ध-संचालन हेतु गठित एक छोटे निकाय राइख की रक्षा के लिए मंत्री परिषद् ने उस राइख रक्षा परिषद् का स्थान ले लिया जिसमें पार्टी के अधिकारी और लगभग आधे दर्जन मंत्री होते थे। राइख रक्षा परिषद् के अधिकतर कार्यों का संचालन राइख रक्षा समिति नामक एक कार्यकारिणी समिति करती थी। इस समिति को सुप्रवाही बनाने के लिए वायु और प्रचार मंत्रालय के अतिरिक्त सभी मंत्रालय तीन समूहों में बांट दिए गए थे जिनकी अध्यक्षता आर्थिक मामलों के तथा राइख प्रशासन के पूर्णाधिकारी और ओ. के. डब्ल्यू. (O. K. W.) के अध्यक्ष करते थे। राइख की रक्षा के लिए मंत्री परिषद् का आधार यही 'तीन व्यक्तियों की संस्था' थी।

मंत्री परिषद् की अध्यक्षता वायुमंत्री गोरिंग करता था तथा 'तीन व्यक्तियों की संस्था' के अतिरिक्त फ्यूहरर का सहकारी और राइख चान्सलरी का अध्यक्ष इसके सदस्य होते थे। फ्यूहरर के पश्चात् युद्ध के अंत तक यही निकाय राज्य का सर्वोच्च विधायिका और कार्यकारी अंग बना रहा यद्यपि युद्ध-संचालन में हिटलर के बढ़ते हुए व्यक्तिगत हस्तक्षेप के कारण इसकी सक्रियता घटती गई।

जनरल स्टाफ का विकास

१९१८ तक महान जनरल स्टाफ युद्ध मंत्रालय से केवल अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित था। कमीश्नरी स्तर के सभी स्टाफों में जनरल स्टाफ के प्रतिनिधि रहते थे, तथा युद्धक्षेत्र के संचालकों और अपने मध्य मतभेद एवं व्यूह सम्बन्धी मामलों तक में ये प्रतिनिधि स्टाफ के अध्यक्ष से अपील कर सकते थे और किया करते थे। स्टाफ का अध्यक्ष जनरलों की बात न मानकर जनरल स्टाफ के अधिकारियों का समर्थन करता था। परन्तु हिटलर के अधीन जनरल स्टाफ सीधे युद्ध मंत्रालय के अधीन कर दिया गया था। ओ. के डब्ल्यू (O. K W) का संगठन जर्मन युद्धतंत्र को हिटलर की देन था जो तीनों सेनाओं के एकीकरण और समन्वयन के लिए न केवल सेनाध्यक्षों की धारणा का विस्तार था वरन् जहां तक योजना पर व्यवहार से अलग नियोजकों के एक स्थायी निकाय का प्रश्न था इसकी चरम परिणति भी था।

जर्मन सर्वोच्च कमान :

जर्मन सर्वोच्च कमान चार भागों में विभाजित था —

१– ओ. के. डब्ल्यू (O. K W.) के अधीन एकीकृत सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च कमान। सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च प्रधान सेनापति होने के नाते फ्यूहरर और राइख्सकांजलर इसका अध्यक्ष होता था। संयुक्त कार्यवाही का प्रमुख कीटल (Keitel) इसका व्यावसायिक अध्यक्ष था।

२– स्थल सेना की सर्वोच्च कमान (O. K H) के अधीन स्थल सेना सर्वोच्च कमान।

३–नौसेना की सर्वोच्च कमान (O.K M) के अधीन नौसेना सर्वोच्च कमान।

४– वायु सेना की सर्वोच्च कमान (O.K.L) के अधीन वायु सेना कमान।

यद्यपि यहाँ हम सेनाध्यक्षों की समिति की धारणा वाले ओ. के डब्ल्यू (O K.W.) से ही सम्बन्धित हैं फिर भी ओ के एच ओ.के.एम (O.K.H O K M) और ओ. के. एल. (O.K.L.) की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि ओ. के. डब्ल्यू (O.K.W.) के साथ उनके सम्बन्धों ने ही जनरल स्टाफ संगठनों को प्रधानता प्रदान की।

१–सशस्त्र सेनाओं की सर्वोच्च कमान (O K.W.):

१९३८ के राइख युद्धमंत्रालय के सशस्त्र सेना विभाग को सशस्त्र सेनाओं की सर्वोच्च कमान ओ. के. डब्ल्यू (O.K.W.) का पद-नाम देकर सशस्त्र सेनाओं के लिए प्रमुख सत्ताधिकारी बना दिया गया। व्यक्तिगत रूप से सभी सशस्त्र सेनाओं पर सर्वोच्च सत्ता प्राप्त करने के कारण सर्वोच्च कमान (O K W.) सीधी हिटलर के निरीक्षण और प्रभाव में आ गयी। इस प्रकार तीनों सेवाओं के सम्मिलित राजनीतिक और प्रशासनिक मामलों पर नियन्त्रण करने तथा राजनीति और युद्ध नीति की सीमा रेखा वाले मामलों पर विचार करने के लिए एक निकाय का गठन किया गया।

जर्मन सेना प्रणाली को नियन्त्रित करने वाला आधारभूत सिद्धान्त कमान की एकता थी। इस सिद्धान्त के उदाहरण उच्चतम और निम्नतम सोपानों में देखे जा सकते हैं। इस प्रणाली के अधीन, स्थल सेना, नौसेना, और वायु सेना एक ही सेवा सशस्त्र सेना की शाखाएं मानी जाती थीं और इसका अध्यक्ष सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च कमान (O.K.W) होता था। सर्वोच्च कमान (O.K.W.) एक ही विषय के रूप में परिकल्पित राष्ट्रीय रक्षा के लिए उत्तरदायी था अतः शान्ति और युद्ध काल में न केवल अन्तर सेवा नीति के सभी मामलों 'वरन् युद्ध के आर्थिक पहलुओं पर भी इसका नियन्त्रण था। इस विशिष्ट समन्वयकारक अंग का उद्देश्य, १९१८ में जर्मन पराजय के लिए उत्तरदायी हिटलर-पूर्व उच्चतर कमान संगठन की दुर्बलताओं को समाप्त करना था। समग्र समरनीति का समन्वयन करने के साथ-साथ सैनिक आपूर्ति और समग्र संचालन का उत्तरदायित्व भी ओ. के. डब्लू (O.K.W.) पर था। यह एक सर्वोच्च प्रशासनिक एजेन्सी के रूप में कार्य करता था और इस दृष्टि से मनोवैज्ञानिक युद्ध और सैनिक अनुसधान जैसे विषयों सहित युद्ध मन्त्रालय के अधिकतर प्रशासनिक कार्यों की देखभाल करता था।

O.K.W. का कार्य सम्बन्धी चार्ट
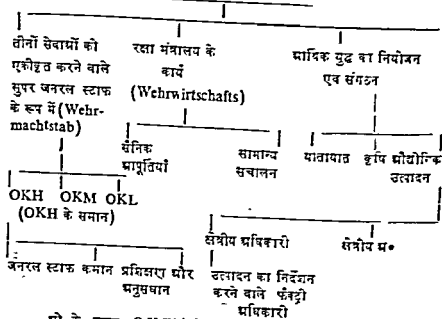
ओ. के. डब्लू. (O.K.W.) के सर्वोच्च संगठन के माध्यम से हिटलर युद्ध प्रयत्नों के राजनीतिक, कूटनीतिक और सैनिक निर्देशन का समन्वय करता था और उसका सेनाध्यक्ष कीटेल (Keitel) सारे सैनिक तन्त्र को प्रशासनिक, सामरिक और आर्थिक रूप से नियन्त्रित करता था। इस प्रकार तीनों सेवाएं और उनके स्टाफ संगठन ओ. के. डब्लू. (O.K.W.) के अधीन आगए।

हिटलर के अधीन रक्षा
हिटलर
(राइख चांसलर और राइख अध्यक्ष)
राइख रक्षा परिषद् (१९३३)
राइख कैबिनेट परिषद् (१९३८) (अध्यक्ष वॉन न्यूरथ)
राइख कैबिनेट (राइख्सरेगियरिंग) (जनवरी १९३३ में निम्नलिखित सहित ४८ सदस्य
राष्ट्र की रक्षा के लिए मंत्री परिषद् (१९३९)
तीन व्यक्तियों की सत्ता १९३५
समग्र युद्धकार्य के लिए प्रतिनिधि १९४४
गोयबल्स
OKW का प्रधान
आर्थिक मामलों का पूर्णाधिकारी
राइख प्रशासन का पूर्णाधिकारी
OKW का प्रधान
फ्यूहरर की सहकारी
विदेश मन्त्री
प्रचार मन्त्री
वायुमन्त्री (४)
स्थलसेना का प्रधान सेनापति
नौसेना का प्रधान सेनापति
राइख चासलरी का प्रधान
विदेश मन्त्री
युद्ध मन्त्री (१)
आयुध और युद्ध सामग्रीमन्त्री (२)
वायु मन्त्री (३)
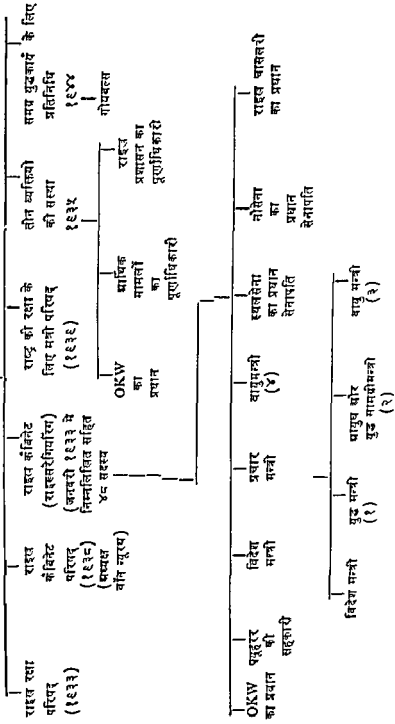
जर्मनी के सारे युद्ध प्रयत्नो के समन्वय और निर्देशन के लिए उत्तरदायी होने के कारण ओ के. डब्ल्यू (O K W.) सयुक्त नियोजन, सयुक्त गुप्त सूचना तथा उत्पादन, आपूर्ति और जन शक्ति के समन्वयन का नियन्त्रण करता था। समग्र अन्तर सेवा नीति के अतिरिक्त सभी ब्यौरे तीनों सेवाओ के स्टाफ पर छोड दिए गए थे। इस प्रकार सिद्धान्त रूप से सामरिक नियोजन, स्थल सेना की सर्वोच्च कमान ओ० के० एच० (O K H) (सेना का पुराना जनरल स्टाफ) के क्षेत्र से हटाकर ओ० के० डब्ल्यू (O.K.W.) को हस्तान्तरित कर दिया गया। इस प्रकार स्थल सेना का जनरल स्टाफ इसे सौंपी गई कार्यवाही मे स्थल सेना का अश पूरा करने के लिए पूर्ण रूप मे उत्तरदायी हो गया।[1]

ओ० के० डब्ल्यू० (O K.W) का सर्वप्रमुख कार्यालय सशस्त्र सेना कार्यवाही स्टाफ था और यह समरनीति और नियोजन के मामले मे हिटलर का प्रमुख सलाहकार निकाय था। यह ओ० के० डब्ल्यू० (O.K.W.) के रणक्षेत्र मुख्यालय पर स्थित था जिसे फ्यूहरर हाउप्ट क्वार्टियर कहते थे। यह एक सयुक्त जनरल स्टाफ था, जिसमे तीनों सेवाओ के अधिकारी होते थे और यह सैनिक कार्यवाही के नियोजन और कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी था। इसमे सशस्त्र सेना कार्यवाही स्टाफ का एक उपाध्यक्ष भी होता था जिसके अधीन कार्यवाही, सगठन, गुप्त सूचना तथा आपूर्ति सम्बन्धी तीन अनुभाग होते थे। इन अनुभागो मे तीनो सेवाओ के प्रतिनिधि अधिकारी होते थे। जिससे आधुनिक युद्ध के अतर-सेवा पक्ष की स्वीकृति का सकेत मिलता है। ओ० के० डब्ल्यू०(O.K.W) के अधीन गुप्त-सूचना अनुभाग मे भूतपूर्व गुप्त सूचना शाखा के अश तथा भूतकाल के महान उत्तरदान पुराने विदेश तथा प्रति गुप्त सूचना कार्यालय के अन्य कार्यवाही अश शामिल थे।

२–स्थल सेना की सर्वोच्च कमान (O.K H.) और जनरल स्टाफ–स्थल सेना :

ओ० के० एच० (O K H.) युद्ध कार्यालय था और फ्यूहरर तथा राइख्स् भाजलर इसके शीर्ष पर स्थल सेना के प्रधान सेनापति के रूप मे था। इसके अधीन एक बडा सगठन आ गया।[2] जर्मन सशस्त्र सेनाओ मे स्थल सेना सबमे बडा और सबसे महत्वपूर्ण अग थी, अतः युद्ध के आरभ काल से ही हिटलर इसी शाखा को अपने सीधे नियन्त्रण मे लाने का इच्छुक था। मास्को अभियान की असफलता के बाद दिसम्बर १९४१ मे ब्राउखित्स (Brauchitsch) को स्थल सेना के प्रधान सेनापति पद से हटाकर हिटलर ने व्यक्तिगत कमान स्वय सभाल ली। इसके बाद वह स्वयं स्थल सेना की कमान संभाले रहा और इसके फलस्वरूप ओ० के० डब्ल्यू०

---

१ O.K.W. की मुख्य शाखाएँ और अनुभाग इस अध्याय के परिशिष्ट 'अ' मे दिखाए गए हैं।

२ वही

(O.K.W.) और ओ० के० एच० (O.K.H.) के कार्यों में विलयन और दोहरापन हो गया। ओ० के० डब्ल्यू० (O.K.W.) सर्वोच्च जनरल स्टाफ और ओ० के० एच० (O.K.H) केवल स्थल सेना का जनरल स्टाफ था।

इस प्रकार ओ० के० डब्ल्यू० (O.K.W.) का प्रधान होने के साथ-साथ कीटेल स्थल सेना सम्बन्धी मामलों में हिटलर के कार्यकारी अधिकारी के रूप में भी कार्य करता था। इसी प्रकार केन्द्रीकरण के लिए इच्छुक हिटलर के प्रभावी व्यक्तित्व के कारण स्थल सेना जनरल स्टाफ तथा ओ० के० डब्ल्यू० (O.K.W.) में स्थित समस्त सेना कार्यवाही स्टाफ के वास्तविक शक्ति और कार्य में विभाजक रेखा खींचना कठिन था। ओ० के० डब्ल्यू० (O.K.W.) का महत्त्व बढ़ाने वाले किसी भी कदम से ओ० के० एच० (O.K.H) अप्रसन्न होता था। सैनिक मामलों में अपने को महान जनरल स्टाफ का उत्तराधिकारी मानकर ओ० के० एच० (O.K.H) राजनीतिक मध्यस्थ और उसके स्टाफ की प्रभुसत्ता के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए अनिच्छुक था। कुछ काल तक तो परिणाम सन्देहास्पद रहा और ओ० के० एच० (O.K.H) हिटलर के समग्र निर्देशन के अधीन समरनीति का नियन्त्रक बना रहा और हिटलर अपने को अप्रसन्न करने वाले जनरलों को पदमुक्त करने के प्रधान सेनापति के अधिकारों का प्रयोग करता रहा।

पोलैण्ड, पश्चिमी योरोप, बाल्कन के अभियान तथा रूसी अभियान के प्रथम भाग का संचालन मुख्यतः ओ० के० डब्ल्यू० (O.K.W.) द्वारा ही किया गया था। हिटलर ने तो केवल राजनीतिक और मोटे-मोटे समर निर्देश ही दिए थे। १९४१ में हिटलर ने स्वयं स्थल सेना के प्रधान सेनापति का पद सम्भाल लिया और १९४२ में उसने अपने सर्वाधिक स्वामिभक्त अनुयायी जनरल जीत्सलर (Zeitzler) को ओ० के० एच० (O.K.H.) का प्रधान नियुक्त कर दिया। तब से ओ० के० एच० (O.K.H.) का प्रभाव घटता ही गया। हिटलर ने निर्णय किया कि ओ० के० एच० (O.K.H.) को केवल रूसी मोर्चे के लिए तथा अन्य सभी रणक्षेत्रों के लिए ओ० के० डब्ल्यू० (O.K.W.) को पूर्णरूप से उत्तरदायी होना चाहिए। विभिन्न मोर्चों की आवश्यकताओं का समन्वयन करने के लिए हिटलर के अनियमित व्यक्तिगत निर्देशन के अतिरिक्त किसी स्वतन्त्र निकाय के अभाव में उत्तरदायित्व का यह विभाजन बड़ी भूल सिद्ध हुआ। फ्यूहरर का हस्तक्षेप धीरे-धीरे यहाँ तक बढ़ता गया कि युद्ध के अन्तिम दिनों में व्यूह रचना के क्षेत्र में उसके सहसा परामर्श से स्थानीय संचालक पंगु हो गए और इस प्रकार कमान की सामान्य शृंखला भी निरर्थक हो गई। इस प्रकार हिटलर ने एक ऐसी प्रणाली का विकास किया जिस पर न केवल उसका आधिपत्य था वरन् जो तीनों सेवाओं के प्रतिद्वन्द्वी दावों को समन्वित करने के लिए पूरी तरह उस पर और उसकी योग्यता पर ही आश्रित थी। जब तक वह सन्तुलन बनाए रख सका यह प्रणाली सन्तोषपूर्वक कार्य करती रही परन्तु बाद में उसके भूल करने पर यह तन्त्र बिखरने लगा।

हमारी रुचि यहां सेनाध्यक्षों की धारणा के विकास में है मन' ओ० के० एच० (O K H.) के अधीन स्थल सेना जनरल स्टाफ के संगठन की केवल रूपरेखा का वर्णन करना ही पर्याप्त है।

स्थल सेना जनरल स्टाफ में मूलत बारह शाखाएँ होती थीं जो सभी कर्मचारी और नियोजन कार्य की देखभाल करने के लिए सर्वोच्च क्वार्टर मास्टर कहे जाने वाले पांच वरिष्ठ अधिकारियों के अधीन समूहबद्ध थीं। युद्ध काल में रणक्षेत्र में सेवाओं की विभिन्न शाखाओं में अनेक अतिरिक्त उच्चस्तरीय अधिकारी मुख्य सलाहकार के रूप में नियुक्त किए गए थे। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जनरल क्वार्टर मास्टर कहा जानेवाला प्रमुख आपूर्ति और प्रशासन अधिकारी था जो रणक्षेत्रीय सेना की प्रशासनिक संरचना और आपूर्ति के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी था। पुन. पाच वरिष्ठ जनरल स्टाफ अधिकारी होते थे जिनमें से प्रत्येक के अधीन लगभग छह शाखाएँ होती थीं। उदाहरणार्थ प्रथम वरिष्ठ जनरल स्टाफ अधिकारी धरातल वर्णन, समरचालों और कार्यवाही नियोजन की देखभाल करता था तथा दूसरा कार्यवाही क्षेत्र में प्रशिक्षण का उत्तरदायी था। तीसरा तकनीकी सेवाओं और चौथा गुप्त-सूचना शाखा की देखभाल करता था।

स्थल सेना के प्रधान सेनापति और जनरल स्टाफ के अध्यक्ष के अधीन विभिन्न विध्वंसक दलों का प्रतिनिधित्व करने वाले जनरल अधिकारियों का एक समुदाय था। रणक्षेत्र में अपने-अपने दल के संगठन, प्रशिक्षण, साज–सामान और सामरिक नियोजन के मामलों में ये अधिकारी मुख्य सलाहकार के रूप में कार्य करते थे। उन्हें वास्तविक कमान शक्ति तो नहीं प्राप्त थी परन्तु युद्धक्षेत्र में प्राप्त अनुभव के आधार पर ये सैन्य दलों को निर्देश और सुझाव दिया करते थे। तकनीकी पुस्तकों के प्रकाशन जैसे अन्य विषयों में वे स्थल सेना जनरल कार्यालय में अपने-अपने शाखा के निरीक्षणालयों से सहयोग किया करते थे। इस श्रेणी के अधिकारियों को 'सामान्य' (General) की अपेक्षा 'प्रमुख' या Chef का पद-नाम प्राप्त होता था, क्योंकि युद्धकाल में उन्हें अन्य अधिकारियों की भांति जनरल स्टाफ के साथ संयुक्त किए जाने की अपेक्षा इसमें मुख्यवस्थित रूप में सम्मिलित समझा जाता था। सेवादलों के रूप में वर्गीकृत जर्मन स्थल सेना की शाखाओं के प्रधान भी इसी प्रकार जनरल स्टाफ से संयुक्त होते थे, परन्तु वे सब प्रमुख आपूर्ति और प्रशासन अधिकारी के अधीन होते थे।

वरिष्ठ अधिकारियों के इस समुदाय में से पैन्जर सैन्य दलों के प्रतिनिधित्व के अभाव का स्पष्टीकरण १९४३ में चालन सैन्य दलों के प्रमुख के स्थान पर पैन्जर सैन्य दलों के प्रमुख निरीक्षक की नियुक्ति करके किया गया। जनरल स्टाफ में पैन्जर सैन्य दलों के प्रमुख निरीक्षक का प्रतिनिधित्व सभी सशस्त्र सेनाओं के लिए उसका प्रमुख टैंक-विरोधी अधिकारी करता था।

अन्य महत्त्वपूर्ण प्रमुख अधिकारी निम्नलिखित होते थे :—

(अ) प्रमुख पदाति सेना अधिकारी जो नियमित पैदल सेना, हल्की पैदल सेना, पर्वत सेनादल, घुड़सवार सेना और निरीक्षण के मामलों के लिए उत्तरदायी था।

(आ) प्रमुख तोपखाना अधिकारी जिसके अधीन प्रमुख सागरतटीय और किले तोपखाना अधिकारी तथा प्रमुख स्थल सेना विमानभेदी तोपखाना अधिकारी होते थे।

(इ) नक्शा - निर्माण और सर्वेक्षण का प्रमुख जनरल स्टाफ के पार्श्ववर्ती सोपान का अंग होता था और रणक्षेत्र मुख्यालय पर उसका प्रतिनिधित्व नक्शा निर्माण और सर्वेक्षण करने वाले सैन्य दलों का संचालक करता था।

(ई) प्रमुख अभियंता और किलेबन्दी अधिकारी जो किलेबन्दियों के निरीक्षक एवं जल-थल अभियंताओं पर नियन्त्रण करता था।

स्थल सेना कर्मचारी कार्यालय:—जनरल स्टाफ और गृह कमान दोनों के नियन्त्रण से मुक्त यह कार्यालय सीधा स्थल सेना के प्रधान सेनापति के नियन्त्रण में आता था। जर्मन स्थल सेना के सभी श्रेणी के अधिकारियों की नियुक्तियों, स्थानान्तरण, पदोन्नति तथा ऐसे ही अन्य विषयों के लिए यह उत्तरदायी था। इस प्रकार अधिकारी वर्ग पर नियन्त्रण करने का यह सशक्त साधन था। यहाँ यह जान लेना रुचिकर है कि कर्नल या उससे उच्च पद पर पदोन्नति कर्मचारी-कार्यालय की संस्तुति पर स्वयं हिटलर द्वारा की जाती थी। निम्नस्तरीय पदों पर कर्मचारी कार्यालय अपने उत्तरदायित्व पर ही पदोन्नतियाँ कर दिया करता था। पुनः विविध प्रकार के विशेषाधिकारियों (चिकित्सा, पशुचिकित्सा, आयुध आदि) के स्थानान्तरण का अधिकार कर्मचारी-कार्यालय ने इन सेवाओं की देखभाल करने वाली तकनीकी शाखाओं को हस्तांतरित कर दिया था, फिर भी तकनीकी शाखाओं की संस्तुति पर उच्चतर पदों के सम्बन्ध में स्थानान्तरण का आदेश देने का अधिकार कर्मचारी-कार्यालय के पास सुरक्षित था।

(ग) नौसेना की सर्वोच्च कमान (O. K. M.)—नौसेना :

दूसरा उच्च कमान ओ० के० एम० (O. K. M.) था। इसकी तुलना ब्रिटिश नौसेना (British Admiralty) से की जा सकती है। एडमिरल राइडर (Raeder) प्रधान सेनापति के रूप में इसके शीर्ष पर था, फिर भी सर्वोच्च संचालक के रूप में हिटलर प्रस्तावों को स्वीकार करके नौसैनिक कार्यवाही का निर्देशन और मार्गदर्शन स्वयं करता था। हिटलर की रणनीति में रक्षा का नौसैनिक पहलू कुछ सीमा तक उपेक्षित रहा अतः ओ० के० एम० (O K M) ऐसा संगठन नहीं रहा जिससे विस्तृत परीक्षण की आवश्यकता हो। एक ऐसे युद्ध में जिसमें इंग्लैण्ड और अमरीका जैसी बड़ी नौसैनिक शक्तियाँ शत्रु पक्ष की ओर से युद्ध में शामिल थीं, सफलता के लिए आवश्यक अन्य सभी प्रकार के नौसैनिक जहाजों को छोड़कर मुख्य बल पनडुब्बी युद्ध पर दिया गया था। इस विषय पर बहुधा

टिप्पणी की गई है कि यदि जर्मन लोग समुद्री युद्ध की ओर अधिक ध्यान देते तो डनकर्क (Dunkirk) के पश्चात् वे अपना उद्देश्य प्राप्त कर सकते थे। फिर भी नौसेना स्टाफ का सगठन बहुत छोटे पैमाने पर स्थल सेना स्टाफ की भाँति ही था। यह ओ० के० डब्ल्यू० (O. K. W.) के सामान्य निर्देशन के अधीन कार्य करता था और कभी-कभी हिटलर से भी उलझ जाता था।

४-वायु सेना की सर्वोच्च कमान (OKL) और वायु स्टाफ

द्वितीय विश्वयुद्ध ने किसी देश की सीमाओं की सुरक्षा के लिए सबसे महत्वपूर्ण आधारभूत सहायता के रूप में एक कुशल वायुसेना के विकास और रखरखाव की आवश्यकता पर सर्वाधिक बल दिया। जर्मनी की राष्ट्रीय सुरक्षा में हिटलर की महानतम उपलब्धि जर्मन वायु सेना लुफ्तवाफ (*Luftwaffe*) का चमत्कारिक विकास था। किसी भी सामरिक कार्यवाही में वायु शक्ति की महत्ता का अनुमान पिछले युद्ध का एक मुख्य अनुभव रहा है। युद्ध और आतंक के अस्त्र के रूप में वायु शक्ति की महत्ता के विषय में हिटलर से अधिक कोई आश्वस्त नहीं था। संसार पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जिस सर्वशक्तिमान अस्त्र का हिटलर ने सहारा लिया वह वायु सेना थी और द्वितीय विश्व युद्ध में उसकी आरम्भिक विजयों के लिए यह सगठन ठीक उसी प्रकार उत्तरदायी था जिस प्रकार बाद के वर्षों में इसकी शक्तिहीनता के कारण विजयश्री मित्र राष्ट्रों के भाग्य में आ गई।

जहाँ तक वायुसेना का सम्बन्ध था बर्लिन स्थित वायु मन्त्रालय एक प्रशासनिक निकाय की भाँति कार्य करता था। गोरिंग की अध्यक्षता में जर्मन वायु स्टाफ भी अन्य वायु स्टाफों की भाँति गठित था। मिल्च (Milch) उसका सहकारी, जेशोनेक (Jeschonnek) उसका वायुसेनाध्यक्ष तथा उदेत (Udet) वायुयान डिजाइन एवं आपूर्ति का प्रमुख था। वायुसेना-सगठन के नीति सम्बन्धी सभी मुख्य प्रश्नों पर विचार करने के लिए वायुसेनाध्यक्ष के अधीन फ्यूहरंगस्टाब (*Fuehrungstab*) नामक कार्यवाही निर्देशक स्टाफ था। वायु सेना नीति-निर्धारण की सभी आवश्यक मदें इसके अधिकार क्षेत्र में आती थीं।

रणक्षेत्र में वायु सेना की इकाइयों पर वायु मत्रालय द्वारा एक-एक जनरल के अधीन गठित निरीक्षणालयों की शृंखला के माध्यम से नियन्त्रण रखा जाता था। ये निरीक्षणालय कार्यवाही क्षेत्रों की इकाइयों और बर्लिन स्थित जर्मन वायु स्टाफ के मध्य कड़ी का कार्य करते थे। निरीक्षणालयों का कार्य यह सुनिश्चित करना था कि युद्ध क्षेत्र में वायु सेना कि इकाइयां वायु स्टाफ द्वारा निर्धारित नीति पर व्यवहार करें। तकनीकी और सामरिक विकास तथा वायुसेना की उड्डयन इकाइयों की पुनर्सज्जा एवं पुनर्प्रशिक्षण के लिए उत्तरदायी होने के कारण ये निरीक्षणालय वायु-मत्रालय के अधिकार-क्षेत्र से बाहर बड़ा प्रभाव रखते थे।

वायुकोर या वायु डिविज़न से असन्तुष्ट होने के कारण कार्यवाही कमान की एक इकाई के रूप में वायु स्टाफ १०० से लेकर २५० तक वायुयान बेड़ों की अनेक छोटी सामरिक वायु कमानों के साथ प्रयोग करता रहा। इसके साथ ही वे वायु फ्यूहरर (Air Fuhrer) नामक संचालकों के अधीन दमदर्पक, लड़ाकू और टोह लेने वाले विमानों की सन्तुलित टुकड़ियाँ थीं। ये संचालकों वायु बेड़े के स्थानीय संचालकों के अधीन होते थे। वायु स्टाफ सभी अधीनस्थ कमानों के शीर्ष पर स्थित था, परन्तु यह ओ. के. डब्ल्यू. संगठन के सामान्य निर्देशन और नियंत्रण में कार्य करता था। इन छोटी कमानों के पीछे स्थल सेना संरचना को जिसके साथ ये सबंधित होती थीं अविभाजित सहयोग देने का विचार था।

जर्मन सैनिक तंत्र मूल रूप में दोषपूर्ण नहीं था। सेनाध्यक्षों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था के पास सामरिक और सैनिक सम्भावनाओं का ठीक-ठीक अनुमान उपलब्ध था परन्तु दुर्भाग्य से अपने सम्मुख एक अलक्ष्य राजनीतिक उद्देश्य रखकर हिटलर ने राष्ट्र पर एक ऐसा असहनीय भार डाल दिया जो अन्ततः उसके विनाश का कारण सिद्ध हुआ था।

सारा संगठन हिटलर के विचित्र एवं महत्वपूर्ण व्यक्तित्व से आच्छादित था अतः उसके द्वारा स्थापित तंत्र का वास्तविक मूल्यांकन करना अत्यधिक कठिन है। ओ० के० डब्ल्यू० का सबसे बड़ा दोष नियोजन की एक स्वतंत्र विभाग के रूप में कल्पना करना था। इसके फलस्वरूप व्यावहारिक विचारों की अपेक्षा कोरे सिद्धान्तों पर अधिक बल दिया जाने लगा क्योंकि नियोजकों का कभी भी कार्यवाही क्षेत्र में नहीं जाना पड़ता था। हिटलर के चरित्र एवं व्यक्तित्व के विचित्र गुणों के कारण उपर्युक्त कठिनाई अत्यधिक बढ़ गई थी। इन प्रणालियों के अन्तर्वर्ती दोषों की अपेक्षा हिटलर की शंकाओं और बार-बार हस्तक्षेप ने उत्तर अवस्था में सैन्यितंत्र को बिलकुल नष्ट भ्रष्ट कर दिया। किसी भी सर्वाधिकारवादी राज्य में रक्षा को प्रभावशाली भूमिका अदा करनी पड़ती है। इन परिस्थितियों में राज्य और इसके तंत्र के सारे संगठन के शीर्ष पर स्थित होने के अधिकार से सम्पन्न तानाशाह की व्यक्तिगत इच्छा और मानसिक अस्थिरता पर पूरी तरह निर्भर होना इसके लिए एक गम्भीर खतरा है। उस तानाशाह को हटाने का कोई उपाय न होने के कारण खतरा और गंभीर हो जाता है।

लोकतंत्र में मतदाता-मण्डल को समय-समय पर न केवल कार्यकारिणी के शक्तिसम्पन्न अध्यक्ष चाहे वह राष्ट्रपति हो अथवा प्रधानमंत्री, को उखाड़ फेंकने का अवसर मिलता है, वरन् भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता के कारण उसे सरकारी नीति से असहमति प्रकट करने के भी अनेक अवसर मिलते हैं। सरकार को उखाड़ फेंकने में न सही सरकारी निर्णयों को पराजित करने में मतदाता-मण्डल ने भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता का बहुधा प्रभावी ढंग से उपयोग किया है। हिटलर के जिन

प्रकार की तानाशाही स्थापित की थी उसमें तानाशाह को हटाने का विध्वंस और विनाश के अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं था। सारी शक्तियाँ उसे हस्तान्तरित करके मतदाता-मण्डल ने उस पर नियन्त्रण खो दिया था और इसमें एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी जिसमें एक अकेले व्यक्ति ने शक्तिशाली रक्षातंत्र का प्रयोग स्वयं अपना और अपने देश का विनाश करने के लिए किया।

न्यूरम्बर्ग न्यायालय के ओ० के० डब्ल्यू० सबंधी विचारों पर विवेचना करना शायद यहाँ असंगत न होगा। अभियोग पक्ष ने जर्मन सशस्त्र सेनाओं के जनरल स्टाफ और हाईकमान को "अपराधी संगठन" घोषित कराने का प्रयत्न किया। "न्यायालय का विश्वास है कि जनरल स्टाफ और सर्वोच्चकमान को अपराधी नहीं घोषित किया जाना चाहिए। दोषी व्यक्तियों की संख्या इतनी सीमित है कि इस प्रकार की घोषणा किए बिना अधिकारियों पर अलग-अलग मुकदमा चला कर भी वांछित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है। परन्तु एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि न्यायालय की राय में जनरल स्टाफ और सर्वोच्च कमान कोई संगठन या समुदाय नहीं है""इस निर्दिष्ट समुदाय के विषय में कुछ टिप्पणी करना आवश्यक है। इसमें जीवित या मृत लगभग १३० अधिकारी हैं जिन्हें सैनिक सोपान में निश्चित पद प्राप्त थे। तीनों सशस्त्र सेनाओं ओ० के० एच० ओ० के० एम० और ओ० के० एल० में ये व्यक्ति उच्च पदाधिकारी थे। इन सबके ऊपर जर्मन सशस्त्र सेनाओं के सर्वोच्च कमान ओ० के० डब्ल्यू० की समग्र सत्ता थी और हिटलर इसका सर्वोच्च सचालक होता था। सर्वोच्च कमान के अध्यक्ष, प्रतिवादी कीटेल सहित ओ० के० डब्ल्यू० के अधिकारी एक अर्थ में हिटलर के व्यक्तिगत स्टाफ में थे। विस्तृत अर्थों में नियोजन और कार्यवाही पर विशेष बल सहित वे तीनों सेवाओं का समन्वयन और निर्देशन करते थे।"

"व्यक्तिगत अधिकारी इन चार में से किसी एक श्रेणी में आते थेः—

तीनों सेवाओं में से किसी एक का प्रधान सेनापति, (२) तीनों सेवाओं में से किसी एक का सेनाध्यक्ष (३) तीनों सेवाओं में से किसी एक का रणक्षेत्र में प्रधान सेनापति अथवा ओ० के० डब्ल्यू० का एक अधिकारी ... और ऐसे केवल तीन अधिकारी थे………

"ओ० के० डब्ल्यू० ओ० के० एच०, ओ० के० एम० और ओ० के० एल० की चार स्टाफ कमानों के स्टाफ *अधिकारी और सामान्यतः जनरल स्टाफ अधिकारी* कहे जाने वाले प्रशिक्षित विशेषज्ञ इसमें शामिल नहीं किए गए हैं।

"स्टाफ स्तर पर उनका नियोजन, रणक्षेत्र सचालकों और स्टाफ अधिकारियों के मध्य निरंतर गोष्ठियां, रणक्षेत्र और मुख्यालय पर कार्यवाही तकनीक अन्य देशों की स्थल सेनाओं, नौ सेनाओं और वायु सेनाओं के समान ही थी। समन्वयन और

निर्देशन के क्षेत्र में ग्रो० के० डब्ल्यू० के समग्र प्रभाव की समता ग्रान्लग्रमरीकी संयुक्त सेनाध्यक्षों जैसे ग्रन्य सगस्त्र सेनाग्रों के संगठनों से की जा सकती है भले ही इनमें पूर्ण एकरूपता न हो।.........उच्च (सेवा) सचालक......... किसी निश्चित समय पर उच्चसैनिक पदों पर ग्रासीन वृद्ध सैनिक व्यक्तियों का समुदाय है।"[3]

१ न्यूरम्बर्ग निर्णय Cmd ६६६४ (१९४६) पृ० ८१-८२

परिशिष्ट 'म' (देखिये पृ० २३३)

हिटलर के अधीन O K W का संगठनात्मक मानचित्र

सर्वोच्च सेनापति हिटलर

- **सशस्त्र सेना सर्वोच्च कमान का प्रमुख * कीटेल**
  - **सशस्त्र सेना केन्द्रीय कार्यालय**
    - सशस्त्र सेनाओं के मोटर परिवहन का अध्यक्ष *
    - सशस्त्र सेनाओं के परिवहन (रेल और जल) का अध्यक्ष*
    - सशस्त्र सेनाओं की गश्त सेवा का अध्यक्ष*
    - सशस्त्र सेनाओं का प्रमुख सर्जन*
    - OKW के अध्यक्ष सहित स्थल सेनाध्यक्ष
    - आर्थिक युद्ध ब्यूरो
    - युद्ध बन्दियों के मामलों का महानिरीक्षक
    - सशस्त्र सेनाओं की बजट शाखा
    - सशस्त्र सेनाओं का महाधिवक्ता और जज
  - **सशस्त्र सेना कार्यवाही स्टाफ ***
    - उपाध्यक्ष*
    - विदेशी समूह (सैनिक सहचारियों के लिए)
    - अन्तर-सेवा संचार*
    - सांकेतिक गुप्त सूचना विभाग*
    - सशस्त्र सेना ऐतिहासिक शाखा
    - सशस्त्र सेना प्रचार शाखा *
  - **सशस्त्र सेनाओं का सामान्य कार्यालय**
    - सामान्य सशस्त्र सेना शाखा
    - सशस्त्र सेना प्रशासन
    - युद्धबन्दियों का प्रमुख
    - कल्याणकारी पेन्शनों का निरीक्षणालय
    - सशस्त्र सेनाओं की कल्याण और पेंशन शाखा
    - नागरिकपेंशन शाखा
    - सशस्त्र सेना दुर्घटना शाखा
    - समझौतों का पूर्ण अधिकारी
    - हिटलर और युवक सम्पर्क
    - सैन्यविज्ञान शाखा
  - **सशस्त्र सेना आर्थिक कार्यालय**
    - सशस्त्र सेना आर्थिक शाखा
    - कच्चा मगल शाखा **
    - केन्द्रीय कच्चा माल शाखा**
    - सशस्त्र सेना निशानेबाजी केन्द्र
    - केन्द्रीय पेट्रोलियम शाखा **
    - आर्थिक विशेषज्ञ कर्मचारी विभाग
    - ठेके-मूल्य नियंत्रक शाखा *
  - **लामबन्दी और भरती कार्यालय**
    - स्थान पूर्ति शाखा
- **सशस्त्र सेनाओं का राष्ट्रीय समाजवादी निर्देशक स्टाफ**
  - आतरिक समूह दल सम्पर्क
- **मोटर परिवहन का महानिरीक्षक Gen. Insp K. fw.**

८

फासीवादी इटली में सेनाध्यक्ष

संवैधानिक स्थिति

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व इतालवी राजनीतिक संगठन में फासी दल सबसे अधिक प्रभावकारी दल था जिसने शक्ति द्वारा सत्ता प्राप्त करके शक्ति द्वारा ही इसे बनाए रखा, तथा सब कुछ शक्ति पर आश्रित होने के कारण इसे सशस्त्र सेनाओं का विस्तार करना पड़ा परन्तु इसने उन पर पूर्ण नियन्त्रण बनाए रखा। सर्वाधिकारवादी राज्य का यह एक आवश्यक लक्षण होता है और मुसोलिनी अपने सैनिक तंत्र की शक्ति पर मुख्यतः निर्भर करता था जिसका वह प्रभावी अध्यक्ष था। राज्य का विधिसम्मत अध्यक्ष राजा अवश्य था परन्तु सारी राजनीतिक और सैनिक शक्ति का संचालन ड्यूस (Duce) के ही हाथों में था।

फिर भी संविधान की धारा पांच के अनुसार युद्ध एवं शांतिकाल में राजा ही सभी सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च अध्यक्ष होता था। वास्तविक व्यवहार में राजा की सत्ता स्थायी रूप से द्वितीय ड्यूस को हस्तांतरित कर दी गई थी, जो दस वर्ष से अधिक काल तक युद्ध, नौसेना और वायुमंत्री बना रहा। इस प्रकार इटली को एक ऐसा रक्षामंत्री मिला जिसका सारी सशस्त्र सेनाओं तथा उनके कार्य कलाप को समन्वित करने वाले संयुक्त जनरल स्टाफ पर नियंत्रण था। शान्तिकाल में युद्धमंत्री सेनाओं के प्रशासन, युद्ध की तैयारी, प्रशिक्षण प्रतिष्ठानों के रखरखाव और समग्र रूप से सारे देश की रक्षा के लिए उत्तरदायी था। राज्य का एक अवर सचिव उसकी सहायता करता था। वायुमंत्री और नौसेनामंत्री के पद भी थे, यद्यपि स्थल सेना जैसे बड़े संगठन का नियंत्रक होने के कारण युद्धमंत्री को सर्वाधिक महत्व प्राप्त था। इस बात पर बल देना आवश्यक है कि सशस्त्र सेनाओं पर राजा को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था क्योंकि मुसोलिनी ने बलात् सर्वोच्च स्थिति का अधिग्रहण कर लिया था। ड्यूस की स्थिति राज्य के प्रधानमंत्री से कहीं अधिक उच्च थी।

राज्य और दल का सशस्त्र सेनाओं से सम्बन्ध

अन्य सर्वाधिकारवादी राज्यों की भाँति फासीवादी इटली में भी सत्तारूढ़ दल, सरकार एवं दल की केन्द्रीय कार्यकारिणी परस्पर विनिमयसाध्य पद थे। दल का सर्वोच्च अध्यक्ष मुसोलिनी था। दल के तीन प्रमुख केन्द्रीय अंग-राष्ट्रीय परिषद, निदेशालय और उच्च परिषद उसकी सहायता करते थे। एक ही दल ने सत्ता का अधिग्रहण करके "सब कुछ राज्य में, राज्य के लिए तथा राज्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं" अपना उद्देश्य वाक्य बना लिया था। पुनः सर्वोच्च स्तर पर राज्य दल के नेता के साथ एकाकार हो गया था। इसकी घोषणा के अनुसार दल का अध्यक्ष मुसोलिनी (Il Duce del Fascismo) था। अपनी आत्मकथा में मुसोलिनी ने कहा था "फासिस्ट दल का निर्माण करके मैंने सदैव इस पर दृढ़ प्रभाव बनाए रखा है।" इस प्रकार फासीवादी इटली में राज्य, दल और नेता परस्पर पर्यायवाची नाम बन गए थे। सभी तानाशाही सरकारों का यह एक सामान्य लक्षण है। फिर भी फासीवादी राज्य की धारणा साम्यवाद से भिन्न थी जो एक ऐसे वर्गहीन समाज की कल्पना करता है जिसमें राष्ट्रीय अथवा जातीय सीमाएँ न हों, इसके विपरीत फासीवाद राष्ट्र राज्य की सैन्यवादी प्रवृत्तियों एवं पूर्ण सर्वोच्चता में विश्वास करता था। यह सर्वोच्चता सशस्त्र सेनाओं पर आधारित थी अतः फासीवादी राज्य में सेनाओं की स्थिति और उनके अधिकारियों की महत्ता अत्यधिक बढ़ गई थी। युद्ध नीति निर्धारक और निर्देशक तन्त्र सहित एक विस्तृत सशस्त्र संगठन का निर्माण किया गया और इसका एकमात्र अध्यक्ष मुसोलिनी था।

सामान्य रक्षातंत्र :

तीनों सेवाध्यक्षों के ऊपर जनरल स्टाफ के अध्यक्ष का पद फासीवादी इटली के सैनिक संगठन में सचमुच अद्वितीय था। हिटलर ने ओ. के. डब्लू के गठन के रूप में अवश्य एक ऐसी संस्था की रचना की थी जो तीनों सेवाध्यक्षों से ऊपर थी, परन्तु फ्रांस और यूनाइटेड किंगडम ऐसी प्रणाली से अपरिचित थे। यह तो निर्विवाद सत्य है कि तीनों सेवाध्यक्षों को एक साथ लाने के लिए उनके ऊपर जनरल स्टाफ के रूप में एक समन्वयकारक अध्यक्ष स्थापित करना लाभप्रद था। युद्धपूर्व के इटली में जनरल स्टाफ के अध्यक्ष का चुनाव इटली के मार्शलों, जहाजी बेड़े के एडमिरलों और पूर्ण जनरलों में से होता था। कैबिनेट की सलाह पर एक शाही फरमान द्वारा उसे नियुक्त किया जाता था। वास्तव में वह प्रमुख सामरिक व्यक्ति होता था। वह सर्वोच्च कार्यकारी मुसोलिनी के तकनीकी सलाहकार के रूप में कार्य करता था। जनरल स्टाफ का अध्यक्ष, राज्य के रक्षा संगठन के समन्वय एवं सैनिक कार्यवाही सम्बन्धी योजनाएँ तैयार करने के लिए उत्तरदायी था। इस विषय में वह केवल सर्वोच्च कार्यकारी के प्रति उत्तरदायी होता था। पुनः जनरल स्टाफ का अध्यक्ष सर्वोच्च रक्षा समिति तथा दो या दो से अधिक युद्धकारी विभागों से सम्बन्धित राष्ट्रीय रक्षा के प्रश्नों का अध्ययन करने के लिए सरकार

द्वारा नियुक्त उपसमितियों का सदस्य होता था। आपातकालीन स्थिति अथवा युद्ध काल में उसकी विशिष्ट भूमिका होती थी क्योंकि प्रत्येक युद्धकारी सेवा के भाग सहित सैनिक कार्यवाही की सामान्य योजनाओं की मुख्य रूपरेखाएं प्रस्तुत करना उसका उत्तरदायित्व था। वह अपने प्रस्ताव द्वितीय ड्यूस के सम्मुख प्रस्तुत करता था जो उन्हें स्वीकार करके उनकी रूपरेखा तीनों सेवामन्त्रियों के पास भेज देता था। उन पर व्यवहार किए जाने के लिए सेवामंत्री उन योजनाओं को सम्बन्धित सेनाध्यक्षों को अग्रेसित कर देता था। संक्षेप में जनरल स्टाफ के अध्यक्ष की उपस्थिति का मूल उद्देश्य तीनों सेवाओं में समन्वय स्थापित करना था। जिन लिखित आदेशों के अनुसार इतालवी जनरल स्टाफ का अध्यक्ष कार्य करता था उनमें किसी भी आधुनिक राज्य में सेनाध्यक्षों की समिति के आवश्यक कार्य सम्मिलित हैं। युद्धपूर्व इटली में जनरल स्टाफ का अध्यक्ष निम्न उपायों द्वारा तीनों सेवाओं में समन्वय सुनिश्चित करता था :

(अ) युद्धकारी सेवाओं के सेनाध्यक्षों से विचार-विमर्श करके वह दो या दो से अधिक युद्धकारी सेवाओं की संयुक्त समर-चालों के कार्यक्रम प्रधानमंत्री के सम्मुख प्रस्तुत करता था।

(आ) संयुक्त समर चालों में उपस्थित रहकर वह उनके विषय में प्रधानमंत्री को प्रतिवेदन प्रस्तुत करता था और प्रधानमंत्री सम्बन्धित मंत्रियों के माध्यम से अपनी सम्मति एवं निर्णय युद्धकारी सेवाओं के सम्बन्धित सेनाध्यक्षों को अग्रेसित कर देता था।

पालन से सम्बन्धित राजनीतिक स्थिति से अवगत रखता था। प्रधान मंत्री जनरल स्टाफ के अध्यक्ष को उसके कर्त्तव्य पालन सम्बन्धी राजनीतिक स्थिति से अवगत रखता था।

युद्ध, नौसेना और वायुमन्त्रालय अपने आदेशों के अधीन सशस्त्र सेनाओं की युद्धक्षमता सम्बन्धी मुख्य प्रश्नों पर जनरल स्टाफ के अध्यक्ष को सूचित रखते थे। मुख्य उपनिवेशीय सैनिक प्रश्नों पर प्रधानमंत्री भी जनरल स्टाफ के अध्यक्ष से विचार-विमर्श करता था।

पुनः युद्धमंत्रालय के आदेशों के अधीन कार्यरत सैनिक गुप्त-सूचना सेवा जनरल स्टाफ के अध्यक्ष को विदेशों की सामान्य सैनिक स्थिति के बारे में निरन्तर सूचित रखती थी, तो भी प्रत्येक युद्धकारी सेवा का अध्यक्ष तकनीकी सूचना एकत्र और समन्वित करने के लिए उत्तरदायी था। युद्धकाल में जनरल स्टाफ के अध्यक्ष के कार्य सरकार द्वारा निर्धारित किए जाते थे।

जनरल स्टाफ के अध्यक्ष और प्रधानमंत्री, जो मुसोलिनी के व्यक्तित्व के रूप में राज्य का सर्वोच्च कार्यकारी था, के मध्य निकट सम्पर्क की ओर ये लिखित आदेश स्पष्ट संकेत करते हैं। निष्पक्ष अध्यक्ष की भाँति अपने प्रति औरों का विश्वास जमाने के लिए तीनों सेवाध्यक्षों के प्रमुख के रूप में जनरल स्टाफ के अध्यक्ष को उस सेवा के प्रति जिससे वह सम्बन्धित होता था अपनी व्यक्तिगत आस्था भुलानी

रहती थी। यह एक आवश्यक प्रश्न है कि तीनों सेनाध्यक्षों (की समिति) की प्रमुखता करने के लिए एक चौथा व्यक्ति होना चाहिए अथवा तीनों की अध्यक्षता करने के लिए बारी-बारी से अपने में से ही किसी एक को चुनना चाहिए। कनाडा और संयुक्त राज्य के नवीनतम व्यवहार के अनुरूप इतालवी संगठन में सेनाध्यक्षों की समिति के एक स्थायी प्रमुख का प्रावधान था। १९५१ के कौंसिल आदेश के अनुसार कनाडी सेनाओं की कार्यवाही और प्रशिक्षण का समन्वयन करने के लिए कनाडी सेनाध्यक्षों की समिति का एक स्थायी प्रमुख नियुक्त किया गया था। कुछ पूर्वी देशों ने भी इस संस्था का अनुकरण किया है और स्याम में तीनों सेनाध्यक्षों की समिति की अध्यक्षता करने के लिए एक संयुक्त सेनाध्यक्ष होता है। परन्तु भारत और पाकिस्तान में अपनाई गई ब्रिटिश प्रणाली सेनाध्यक्षों की एक त्रिसदस्यीय समिति में विश्वास करती है जिसका अध्यक्ष उन्हीं में से चुना जाता है। अंग्रेज जाति के विशिष्ट गुणों सहकार की भावना और आवश्यकतानुसार समझौता करने की इच्छा के कारण यह प्रणाली यूनाइटेड किंगडम में भली प्रकार चलती रही।

स्थल सेनाध्यक्ष :

स्थल सेनाध्यक्ष की नियुक्ति शाही फरमान द्वारा होती थी परन्तु वास्तविक निर्वाचन द्वितीय ड्यूस द्वारा किया जाता था। वह एक पूर्ण जनरल होता था और स्थल सेना कोर या डिविजन के सर्वाधिक सक्षम जनरल कमाडिंग अधिकारियों में से चुना जाता था। सेनाध्यक्ष युद्धमंत्री का प्रमुख तकनीकी सलाहकार होता था और उसकी सत्ता के अधीन युद्ध की तैयारी सम्बन्धी कार्यवाही और अध्ययनों को निर्देशित करता था। वह सैनिक स्कूलों, तकनीकी सेवाओं और सैनिक ट्रूपों का मुख्य निरीक्षक भी था। इन सब विषयों में वह मंत्री के प्रति उत्तरदायी होता था। परन्तु वह जनरल स्टाफ के अध्यक्ष के सामान्य निर्देशन के अधीन आता था तथा नौसेना और वायु सेनाध्यक्षों के सम्पर्क में कार्य करता था। स्थल सेना की विशिष्ट महत्ता के कारण अपने अन्य दो सहयोगियों से भिन्न स्थल सेनाध्यक्ष ड्यूस से भी मिल सकता था। उनके और ड्यूस के मध्य जो बातचीत होती थी उससे वह जनरल स्टाफ के अध्यक्ष को अवगत रखता था। फिर भी स्थल सेनाध्यक्ष जनरल स्टाफ के अध्यक्ष के सामान्य निर्देशन के अधीन था और इस शर्त के अनुसार उसके निम्नलिखित कार्य थे:—

(अ) स्थल सेना लड़ाई का क्रम और सेनाओं के संचालन के नियोजन और कार्यान्वयन, सामग्री के आवंटन एवं विभिन्न सेवाओं के संगठन सम्बन्धी सिद्धान्त निर्धारित करना,

(आ) रण क्षेत्र स्थित स्थल सेना में जनरल अफसरों की नियुक्ति के सम्बन्ध में मंत्री को प्रस्ताव भेजना,

(इ) संगठन सम्बन्धी प्रश्नों के अध्ययन की व्यवस्था करना,

(ई) लड़ाइयों के क्रम, सेनाओं के संचालन, एवं केन्द्रीयकरण तथा विभिन्न सेवाओं के सगठन और कार्यकलाप तथा उनके विभाजन की योजनाएँ तैयार करना,

(उ) सम्बन्धित अधिकारियों की सहमति से संचार साधनों की सुरक्षा अथवा आवश्यकता होने पर उन्हें भग करने तथा सागरतट की सुरक्षा और देखभाल एवं वायु सुरक्षा का प्रावधान करना,

(ऊ) किसी प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करना,

(ए) स्थल सेना की भरती और संगठन तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों में विभाजन के आधारभूत सिद्धान्तों का ब्योरा तैयार करना,

(ऐ) शान्तिकाल मे सेवाओं के सगठन और कार्यकलाप सम्बन्धी प्रश्नों पर अध्ययन करना और

(ओ) शान्ति और युद्धकाल में जनरल स्टाफ अधिकारियों की भरती और नियुक्ति के सम्बन्ध में अध्ययन करके प्रस्ताव रखना।

स्थल सेनाध्यक्ष को देश की राजनीतिक स्थिति से अवगत रखा जाता था तथा उपनिवेशीय सेनाओं के सगठन और उपनिवेशों की रक्षा सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर उसकी सम्मति आमन्त्रित की जाती थी। वह राष्ट्रीय रक्षा के सर्वोच्च आयोग का सदस्य होता था तथा युद्ध के लिए देश की तैयारी सम्बन्धी प्रश्नों का अध्ययन करने हेतु सरकार और युद्ध मत्रालय द्वारा गठित असाधारण आयोगों के विचार-विमर्श के समय उपस्थित रहता था।

जर्मन प्रणाली की भाँति विशिष्ट प्रशिक्षण के पश्चात् ही जनरल स्टाफ की भरती की जाती थी। जनरल स्टाफ के दो भाग होते थे—जनरल स्टाफ कोर और जनरल स्टाफ सेवा। पूर्वोक्त मे लेफ्टीनेंट कर्नल और उससे ऊपर के पद के अधिकारी और उत्तरोक्त में कनिष्ठ स्टाफ अधिकारी होते थे। जनरल स्टाफ सेवा के अधिकारियों में से कुछ जनरल स्टाफ कोर मे नियुक्त किए जाते थे परन्तु जनरल स्टाफ सेवा मे भरती स्टाफ कालिज में त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम तथा किसी सरचना के मुख्यालय में एक वर्ष के अनुभव के पश्चात् की जाती थी। इस प्रकार विशिष्ट प्रशिक्षण प्रत्येक जनरल स्टाफ अधिकारी का आवश्यक लक्षण था भले ही यह विशिष्ट प्रशिक्षण जर्मन प्रणाली के समान विस्तृत नहीं होता था।

नौसेनाध्यक्ष

नौसेना मंत्रालय और नौसेनाध्यक्ष का संगठन मोटे तौर पर अन्य दो सेवा मंत्रालयों के समान ही था।

एडमिरलों की समिति, नौसेना की सर्वोच्च परिषद् और नौसेना निर्माण परिषद् नौसेना मत्री को परामर्श देती थी।

एडमिरलों की समिति का गठन नौसेनामत्री करता था तथा इसका कार्य नौसेना सगठन, युद्ध की तैयारी एवं नौसेना निर्माण कार्यक्रमों सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर

जांच-पड़ताल करना था। अडमिरलों की समिति का अध्यक्ष एक अडमिरल होता था। नौसेना की सर्वोच्च परिषद् का अध्यक्ष और नौसेनाध्यक्ष इसके सदस्य तथा सारे उपअडमिरल और महानिरीक्षक इसके असाधारण सदस्य होते थे। वरिष्ठ अधिकारियों की पदोन्नति के लिए विशेष आयोग के रूप में इसकी गोष्ठियां हुआ करती थीं।

नौसेना की सर्वोच्च परिषद् का उत्तरदायित्व मंत्री द्वारा इसके पास भेजे गए विशेष प्रश्नों की जांच पड़ताल करना था। कनिष्ठ अधिकारियों की पदोन्नति के लिए एक साधारण आयोग के रूप में इसका गठन होता था। एक अडमिरल या उपअडमिरल इसका अध्यक्ष होता था, एक उपअडमिरल अथवा एक डिविजन का अडमिरल, एक रीअरअडमिरल, एक महानिदेशक और एक डिविजन का कमाण्डर इसके साधारण सदस्य होते थे, तथा महानिरीक्षक, नौसेना निर्माण परिषद् का अध्यक्ष, नौसेना कोर के महानिरीक्षक और सहायक नौसेनाध्यक्ष इसके असाधारण सदस्य होते थे।

नौसेना निर्माण परिषद् नौसेना इंजीनियरों की एक तकनीकी परिषद् थी और आयुध एवं युद्धसामग्री का महानिदेशक तथा नौसैनिक निर्माण का महानिदेशक इसके असाधारण सदस्य होते थे।

उपर्युक्त सलाहकार समितियों के अतिरिक्त नौसेनाध्यक्ष भी जो अडमिरल की हैसियत से ऊपर वर्णित तीनों निकायों का प्रभारी था, नौसेना मंत्री को परामर्श देता था। नौ सेनाध्यक्ष नौ सेना के संगठन और नियुक्ति तथा नौसेना निर्माण और आयुधीकरण सम्बन्धी अध्ययनों के उच्चतर निदेशन के लिए उत्तरदायी था। नौसैनिक कर्मचारी और सामग्री सम्बन्धी प्रश्नों पर भी वह विचार करता था और संयुक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शाही नौसेना के स्थल और वायु सेनाओं से सहकार सम्बन्धी सामान्य निर्देश देने वाले जनरल स्टाफ के अध्यक्ष से निरंतर सम्पर्क बनाए रखता था। नौसैनिक बेड़े और स्कूलों का निरीक्षण तथा नौसैनिक युद्ध के संस्थान का उच्चतर निदेशन भी उसका उत्तरदायित्व था। एक सहअध्यक्ष और दो निदेशक-एक कार्यवाही और दूसरा नौसैनिक सेवाओं के लिए—नौसेनाध्यक्ष के अधीन होते थे।

वायु सेनाध्यक्ष

वायु सेनाध्यक्ष वायु इकाइयों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी वायुमंत्री का सलाहकार था। इसके अतिरिक्त वायुमंत्री की सहायता करने के लिए शाही इतालवी वायुसेना के तीन और सलाहकार अंग थे: वायु परिषद्, सर्वोच्च वायु समिति तथा वायुयान निर्माण और साजसामान की योजनाओं का अध्ययन करने वाली समिति।

सैनिक और नागरिक उड्डयन सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों का अध्ययन करने के लिए वायुपरिषद् वायु मंत्रालय से सम्बन्धित सलाहकार निकाय था। वायुमंत्री

परिषद् की गोष्ठियाँ आमंत्रित करके उनकी अध्यक्षता करता था; उसकी अनुपस्थिति मे वायु मंत्रालय मे राज्य अवरसचिव अध्यक्ष होता था। सैनिक तैयारियाँ आरम्भ होने पर स्थल सेना की भाँति यह भी कार्य करना स्थगित कर देती थी।

वायुमंत्रालय से सम्बन्धित अन्य निकाय सर्वोच्च वायुसमिति थी जो वायुसेना के साजसमान और कर्मचारियो सम्बन्धी सामान्य संगठन के मामलों पर विचार करती थी।

वायुयान निर्माण और साज समान की योजनाओं के अध्ययन के लिए समिति नए वायुयानों और उनके इंजिनो सम्बन्धी अथवा प्रयोग में आ रहे वायुयानो और साज-सामान मे फेरबदल की समीक्षा करती थी।

वायुसेना सम्बन्धी नीति और कार्यवाही योजनाओ के निर्माण मे ये सभी निकाय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। विशेषकर सभी तीनो निकायो का सदस्य होने के कारण वायुसेनाध्यक्ष को नियोजन अवस्था मे समन्वयकारक अभिकर्ता कहा जा सकता है।

राष्ट्रीय रक्षा का सर्वोच्च आयोग

जनरल स्टाफ के अध्यक्ष के अतिरिक्त दूसरी समन्वयकारक एजेन्सी सदैव अन्तरविभागीय अंग के रूप मे कार्यरत राष्ट्रीय रक्षा का सर्वोच्च आयोग था। जनरल स्टाफ के अध्यक्ष के सैनिक अंग से भिन्न, इसे आवश्यक रूप से एक राजनीतिक अंग कहा जा सकता है। यद्यपि तानाशाही मे राज्य के राजनीतिक और सैनिक अंगो के मध्य भेद सदैव स्पष्ट नहीं रहता, फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि मुसोलिनी की अध्यक्षता वाले राष्ट्रीय सुरक्षा के सर्वोच्च आयोग से ऐसा प्रभाव पड़ता है कि सैनिक योजनाएँ स्वीकृति के लिए राज्य की सर्वोच्च सत्ता के सम्मुख प्रस्तुत की जाती थीं। राष्ट्रीय रक्षा को प्रभावित करने वाले प्रश्नो के परीक्षण और समाधान का समन्वय करके आयोग देश की सुरक्षा के लिए सभी राष्ट्रीय सेवाओ का उपयोग करने के लिए नियम निर्धारित करता था। सर्वोच्च आयोग मे एक कार्यकारिणी समिति और एक सलाहकार निकाय होते थे।

सर्वोच्च कार्यकारी मुसोलिनी कार्यकारणी समिति का अध्यक्ष तथा कैबिनेट स्तर के अन्य मंत्री इसके सदस्य होते थे; सलाहकार आयोग मे सलाहकार निकाय के रूप मे कार्य करने वाले तकनीकी व्यावसायिक सैनिक विशेषज्ञ होते थे जो कार्यकारिणी समिति की गोष्ठी के समय उपस्थिति में रहा करते थे। जनरल स्टाफ का अध्यक्ष, स्थलसेना के जनरल, नौसेना बेड़े के एडमिरल और वायुसेना के मार्शल, स्थलसेना, नौसेना और वायुसेना के अध्यक्ष, जनसुरक्षा के लिए स्वयसेवी नागरिक सेना का अध्यक्ष तथा नागरिक तैयारी समिति के अध्यक्ष इसके सदस्य होते थे।

राष्ट्रीय रक्षा का सर्वोच्च आयोग यूनाइटेड किंगडम की उस कैबिनेट रक्षा समिति के समान ही चित्र प्रस्तुत करता है जिस की उपस्थिति मे सेनाध्यक्ष रहते

है। जिन प्रश्नों पर सलाहकार निकायों की सलाह मांगी जाती थी उनका निश्चय कार्यकारिणी समिति करती थी।

निम्नलिखित निकायों की सक्षमता के अन्तर्गत आने वाले प्रश्नों को सलाह या टिप्पणी के लिए भेजने का अधिकार राष्ट्रीय रक्षा के सर्वोच्च आयोग को था:—

(अ) स्थल सेना परिषद्
(आ) एडमिरलों की समिति
(इ) टकनीकी वायु समिति
(ई) नागरिक तैयारी समिति

राष्ट्रीय रक्षा के सर्वोच्च आयोग के लिए गठित सचिवालय में तीनों सेवाओं के अधिकारी तथा युद्ध, नौसेना और वायु सेना के सेवामन्त्रालयों के असैनिक अधिकारी हुआ करते थे। प्रशासनिक दृष्टि से सचिवालय सीधे मुसोलिनी के अधीन आता था।

राष्ट्रीय रक्षा आयोग के संविधान के गम्भीर अध्ययन से पता लगता है कि इसके निर्णय सैनिक अध्यक्षों के निर्णयों के समान न होकर कैबिनेट निर्णयों के समान होते थे, भले ही इन निर्णयों को लेने में सैनिक विशेषज्ञों का पूर्णतम सहयोग लिया जाता था।

मुसोलिनी कालीन इटली के रक्षा संगठन का दिग्दर्शन कराने वाला एक मानचित्र इस अध्याय के परिशिष्ट 'अ' में दिया गया है।

परिशिष्ट 'ग'

मुसोलिनी के इटली का रक्षासंगठन

९
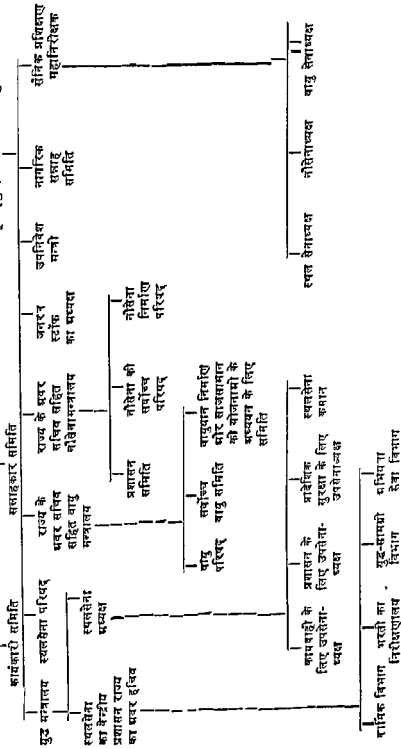
युद्धपूर्व जापान में सेनाध्यक्षों की समिति

संवैधानिक स्थिति

सम्राट

युद्धपूर्व जापान के संविधान के अनुसार स्थल और नौसेनाओं का सर्वोच्च प्रधान सेनापति सम्राट था। सिद्धान्त रूप में केवल वही उनके संगठन को निश्चित करता था, युद्ध की घोषणा करता था तथा शान्ति स्थापित करके संधियाँ करता था। इस प्रकार युद्ध और शान्तिकाल में सर्वोच्च कमान सम्राट के व्यक्तित्व में केन्द्रित थी।

सर्वोच्च सेना परिषद् तथा मार्शलों और एडमिरलों की परिषद जिनका कार्य केवल सलाह देना या सम्राट को परामर्श दिया करती थीं। इनमें से सर्वोच्च सेना-परिषद् को नीति निर्धारण तथा इसके समक्ष आने वाली समस्याओं का समाधान करने का भी अधिकार था।

आपातकाल में 'साम्राज्यी मुख्यालय' स्थापित करके सम्राट समस्त सेनाओं पर अपना नियन्त्रण बनाए रखता था। शान्तिकाल में इस मुख्यालय का गठन नहीं होता था। इसका उद्देश्य युद्धकाल में सम्राट को सर्वोच्च कमान संभालने में सहायता करना था। स्थल सेना और नौसेना के जनरल स्टाफों के अध्यक्ष, युद्ध और नौसेना के मन्त्री तथा विशेष रूप से चुने हुए अधिकारियों का स्टाफ इसमें शामिल होते थे। साम्राज्यी मुख्यालय में संयुक्त सेनाध्यक्षों की संस्था निहित थी। इस सम्बन्ध में निम्नांकित मानचित्र (चार्ट) जापानी सर्वोच्चकमान की शृंखला की विभिन्न कड़ियाँ प्रदर्शित करता है।

युद्ध मंत्रालय :

यद्यपि जनरल स्टाफ का अध्यक्ष अधिक शक्ति सम्पन्न एवं अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था फिर भी डिएट में स्थल सेना का प्रतिनिधित्व युद्ध मन्त्री ही करता था और इस प्रकार उसे सवैधानिक स्थिति प्राप्त थी। युद्ध मन्त्रालय स्थल सेना का प्रशासनिक, आपूर्ति और तैयारी का अभिकर्ता था। इसका प्रमुख युद्ध मन्त्री, स्थल सेना और डिएट के मध्य सम्पर्क स्थापित करने वाला कैबिनेट सदस्य होता था। यह जान लेना आवश्यक है कि सीधे सम्राट के प्रति उत्तरदायी वह सक्रिय सूची में एक जनरल या लेफ्टीनेंट जनरल होता था। जैसाकि मानचित्र से पता चलता है कोई भी व्यक्ति जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली डिएट के प्रति उत्तरदायी न होकर सीधे सम्राट के प्रति उत्तरदायी था। स्थल सेना जनरल स्टाफ के अध्यक्ष का युद्ध मन्त्री से सम्पर्क तो होता था परन्तु वह उसके अधीन न होकर सीधे सम्राट से मिल सकता था। पृष्ठ २५१ पर दिए गए मन्त्रालय के संगठनात्मक मानचित्र (चार्ट) से संसदीय नियन्त्रण का आभास मिलता है क्योंकि कम से कम तीन राजनीतिक सहकारी युद्धतन्त्र का नियन्त्रण करने में युद्धमन्त्री की सहायता करते थे। संसदीय उपमन्त्री और संसदीय सलाहकार तथा युद्ध उपमन्त्री वास्तव में नाममात्र के अधिकारी होते थे एवं डिएट के प्रतिनिधि के रूप में युद्धमन्त्री का भी समस्त सेनाओं पर कोई नियन्त्रण नहीं होता था। सेवाओं पर वित्तीय नियन्त्रण लागू करने की कोई वास्तविक शक्ति डिएट के पास नहीं थी एवं सरकार (कैबिनेट) और डिएट किसी को भी सशस्त्र सेनाओं के प्रशासन अथवा कमान सम्बन्धी किसी मामले में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था। साम्राज्यी जापानी संविधान में समस्त सेनाएँ एकमात्र सम्राट के अधिकारक्षेत्र में आती थीं और इन्हें राज्य के सवैधानिक संगठन में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त था।

इस सम्बन्ध मे एक द्रष्टव्य बात यह है कि नीति-निर्माण के महत्त्वपूर्ण कार्य मे युद्ध मत्रालय का कोई हाथ नहीं था। यह कार्य पूर्णत जनरल स्टाफ के अध्यक्ष के हाथ मे था। इससे स्पष्ट होता है कि युद्ध मत्रालय नीति निर्माता तन्त्र न होकर तैयारी, अनुशासन, मनोबल, उत्सव तथा आयुध उत्पादन से सम्बधित केवल एक प्रशासनिक सगठन था।

सम्राट के अधीन स्थल सेना और नौसेना के अध्यक्षो को सर्वोच्च शक्ति प्राप्त थी तथा वे केवल सम्राट के अध्यक्षीय नियन्त्रण मे नीति-निर्धारण और इस पर कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी थे।

स्थल सेना जनरल स्टाफ का अध्यक्ष

सम्राट और साम्राज्यी मुख्यालय के अधीन स्थल सेना का निर्देशन चार प्रमुख एजेन्सियो के हाथ मे था : जनरल स्टाफ, युद्ध मत्रालय, सैनिक प्रशिक्षण का महानिरीक्षक तथा स्थल सेना उड्डयन का महानिरीक्षक :

युद्ध	ससदीय	युद्धमत्री का सचिववालय	नियुक्ति विभाग
मत्री	उपमन्त्री		
	युद्ध उपमन्त्री कर्मचारी ब्यूरो ससदीय		पुरस्कार विभाग स्थल सेना मामलो का विभाग:
	सलाहकार	सैनिक मामले	सैनिक मामलो का विभाग
		सैनिक प्रशासन ब्यूरो	सैनिक प्रशासन विभाग; सैनिक तैयारी विभाग:
		आर्थिक सलाह ब्यूरो	अश्व विभाग: रक्षा विभाग:
		अस्त्र-शस्त्र ब्यूरो	युद्ध योजनाएँ, ईंधन, यातायात, उद्योगो और प्रशासन के विभाग
		क्षेत्रीय प्रशासन ब्यूरो	आयुध,मशीनीकृत सामग्री विभाग
		चिकित्सा ब्यूरो	वेतनाधिकारी विभाग,
		न्यायिक ब्यूरो	लेखा परीक्षा, वस्त्र, खाद्य सामग्री तथा निर्माण विभाग सफाई विभाग

इसमे जनरल स्टाफ के अध्यक्ष को सिद्धान्ततः समकक्षेषु प्रथम माना जाता था। अध्यक्ष समान स्तर के होते थे और केवल सम्राट के प्रति उत्तरदायी होते थे, जो उन्हे नियुक्त करता था और जिससे सीधे मिलने का उन्हें अधिकार था। जनरल स्टाफ का अध्यक्ष समरनीति के मामलो मे निर्णय लेने वाला अन्तिम अधिकारी था। युद्ध में कार्यवाही की सामान्य योजना तथा शान्तिकाल मे तैयारी और अभ्यास की योजनाओ की तैयारी के लिए उत्तरदायी होने के कारण वह स्थल सेना का

सर्वोच्च निदेशक भी होता था। इस प्रकार अन्ततः जनरल स्टाफ का अध्यक्ष ही जापान का सैनिक भाग्यविधाता था और सिद्धान्त में न सही व्यवहार में वही स्थल सेना संगठन पर नियन्त्रण रखता था।

जनरल स्टाफ कार्यालय में सामान्य मामले, कार्यवाही, गुप्त सूचना, यातायात और संचार, एवं इतिहास के विभाग शामिल होते थे। युद्ध सम्बन्धी योजनाएँ तैयार करना, संयुक्त सेनाओं का प्रशिक्षण और नियुक्ति, बड़ी सामरिक चालों का निर्देशन, सेनाओं की गतिविधि, रणक्षेत्र सेवा नियमों का संकलन, जनरल स्टाफ कॉलिज और भूसर्वेक्षण विभाग का निरीक्षण इसके कार्य थे। निम्नांकित चित्र जनरल स्टाफ के सामान्य संगठन का सर्वोत्तम दिग्दर्शन कराता है :

जापानी जनरल स्टाफ

स्थलसेना जनरल स्टाफ का उपाध्यक्ष

|

जनरल स्टाफ के अध्यक्ष

|

सामान्य कार्य ब्यूरो	सचिवालय	व्यक्तिगत कार्य
	प्रथम विभाग	संगठन और संग्रह
प्रथम ब्यूरो कार्यवाही	द्वितीय विभाग	कार्यवाही और युद्ध योजनाएँ
	तृतीय विभाग	किल
	चतुर्थ विभाग	समरचालें
द्वितीय ब्यूरो गुप्त सूचना	पंचम विभाग	अमरीकी और यूरोपीय विभाग
	षष्ठ विभाग	एशियाई विभाग
तृतीय ब्यूरो यातायात और संचार	सप्तम विभाग	संचार (तार और बेतार विभाग)
	अष्टम विभाग	यातायात (स्थल और जल)
चतुर्थ ब्यूरो इतिहास	नवम् विभाग	वे युद्ध जिनमें जापान ने भाग लिया
	दशम विभाग	वे युद्ध जिनमें जापान ने भाग नहीं लिया

जनरल स्टाफ विभाग

भूसर्वेक्षण विभाग

एक लेफ्टीनेंट जनरल एक डिविजन की कमान सम्भालता था और जनरल स्टाफ का एक कर्नल सेनाध्यक्ष के रूप में उसके साथ रहता था। स्टाफ, जनरल स्टाफ विभाग और एडजुटांट अथवा प्रशासनिक स्टाफ में विभाजित था। डिविजन

में जनरल स्टाफ विभाग का ग्रध्यक्ष एक कर्नल होता था, और वह जनरल कमांडिंग ग्रधिकारी तथा विभागाध्यक्षों और असैनिक ग्रधिकारियों के मध्य सम्पर्क सूत्र स्थापित करता था। विभागाध्यक्षों, ब्रिगेड या रेजीमेन्ट कमाण्डरों द्वारा जनरल कमांडिंग ग्रधिकारी के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने से पूर्व सभी प्रश्न सेनाध्यक्षों के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते थे। एक लेफ्टीनेंट कर्नल जो जनरल स्टाफ ग्रधिकारी प्रथम तथा एक मेजर और एक कैप्टेन जो क्रमश जनरल स्टाफ ग्रधिकारी द्वितीय तथा तृतीय होते थे डिविजन के सेनाध्यक्ष की सहायता करते थे। इसी प्रकार एक लेफ्टीनेंट कर्नल की ग्रध्यक्षता मे पदोन्नतियों, कर्मचारियों, नियुक्तियों, ग्रधिकारियों के रिकार्डों और ग्रकमीशन प्राप्त ग्रधिकारियों की देखभाल करने के लिए एक प्रशासनिक स्टाफ होता था।
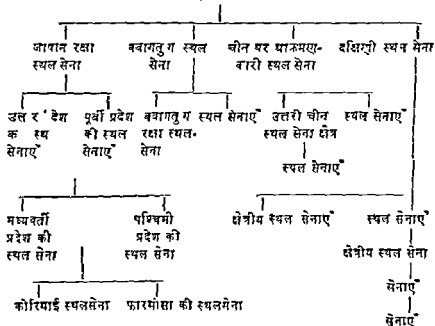
स्थल सेना का गठन प्रादेशिक और कार्यवाही दोनों के आधार पर किया गया था। जापान के प्रादेशिक स्थल सेना सगठन मे कोरिया और फारमोसा भी शामिल थे। जापान के मुख्य प्रदेश को भौगोलिक आधार पर चार स्थल सेना क्षेत्रों पूर्वी, मध्यवर्ती, पश्चिमी और उत्तरी मे विभाजित किया गया था। इस पृष्ठ पर दिया गया मानचित्र (चार्ट) जनरल स्टाफ के ग्रध्यक्ष के ग्रधीन स्थल सेना के सामान्य प्रादेशिक सगठन को प्रदर्शित करता है।

हम मुख्यतः सभी सेवाओं का समन्वयन करने वाली सेनाध्यक्षों की समिति

से ही सम्बन्धित हैं फिर भी साम्राज्यी मुख्यालय के अधीन सशस्त्र सेनाओं का समन्वयन करने वाले उच्चतर तंत्र से सीधे संयुक्त होने के कारण स्थल और नौ-सेनाओं के जनरल स्टाफ संगठन का संक्षिप्त विवरण भी दे दिया गया है।

साम्राज्यी नौसेना

साम्राज्यी नौसेना का गठन भी स्थल सेना के समान आधार पर किया गया था और वह सीधे सम्राट के अधीन कार्य करती थी। नौसेना जनरल स्टाफ का अध्यक्ष और नौसेना मंत्रालय इस कार्य में सम्राट की सहायता करते थे। इनके अतिरिक्त सम्राट को सलाह देने के लिए पांच सदस्यों वाली एक एडमिरल परिषद् तथा एक एडमिरल और एक उपएडमिरल वाली नौसेना स्टाफ परिषद् होती थी।

इस मानचित्र (चार्ट) से नौसेना सर्वोच्चकमान के गठन का पता चलता है :

नौसेना सर्वोच्चकमान

जापान की भौगोलिक स्थिति के कारण नौसेना को अत्यधिक महत्त्व दिया गया था। जापान अपने आप को सर्वप्रथम एक नौसैनिक शक्ति मानता था इसलिए एक अलग नौसेना मंत्रालय का गठन किया गया था। परन्तु नौसेना मंत्री कभी भी असैनिक व्यक्ति न होकर एक एडमिरल ही होता था और इससे स्पष्ट होता है कि लोकतंत्रीय देशों की भांति सशस्त्र सेनाओं पर असैनिक व्यक्तियों के नियन्त्रण का वहां प्रश्न ही नहीं उठता था।

इस प्रकार युद्धपूर्व के जापान में साम्राज्यी रक्षा संगठन के नीति-निर्माण

कक्ष सम्राट के अधीन युद्ध और शान्ति मे पूर्ण प्रभावकारी ढग से कार्य करने वाले नियत्रक और निर्देशक स्नायु केन्द्र थे।

युद्धोपरान्त जापानः

१९४५ मे जापान की पराजय के पश्चात् सैनिक और राजनीतिक नेताओ पर युद्ध अपराधियो के रूप मे अभियोग चलाया गया था। जर्मन सर्वोच्चकमान के विपरीत जापानी सर्वोच्चकमान अथवा जनरल स्टाफ पर इस रूप मे अभियोग लगाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

१९४६ के संविधान के अनुसार "जापान की जनता ने राष्ट्र के सार्वभौम अधिकार के रूप मे युद्ध का तथा अन्तर्राष्ट्रीय झगडे सुलझाने के लिए शक्ति की धमकी या उसके प्रयोग का सदा-सदा के लिए त्याग कर दिया।....कभी भी स्थल, नौ और वायु सेनाओ का गठन नही किया जाएगा और न ही युद्ध सामर्थ्य का जमाव किया जाएगा। युद्ध करने के राज्य के अधिकार को मान्यता नहीं प्रदान की जाएगी।"[1] इस प्रावधान ने जापान के संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनने की योग्यता के विषय मे कुछ सन्देह उत्पन्न कर दिया, पर समय बीतने पर वह बिना किसी कठिनाई के इसमे शामिल कर लिया गया और शीघ्र ही सुरक्षा परिषद् का सदस्य चुन लिया गया।

प्रशात युद्ध समाप्त होने के ५ वर्ष के भीतर ही यह स्पष्ट हो गया कि सविधान के बावजूद जापान पुन शस्त्र धारण करेगा। "स्थल सेना के नाभि-केन्द्र की रचना हो रही है : आतरिक व्यवस्था बनाए रखने और विध्वसक कार्यों का दमन करने के लिए गठित ७५०००० सदस्यो वाली राष्ट्रीय रिजर्व पुलिस अन्यत ही उच्च प्रशिक्षित एव समुचित रूप से शस्त्रसज्जित सैनिक सगठन बन जाएगा।[2] अमरीका की जापान से सुरक्षा सधि करने की इच्छा के सदर्भ मे जनरल मैक आर्थर (General Mac Arthur) ने १९५१ के अपने नव वर्ष सन्देश मे यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि आत्मरक्षा के लिए देश का पुन. शस्त्रीकरण आवश्यक हो सकता है। उसने सविधान की धारा ९ को 'स्वय आरोपित प्रतिबन्ध' कहा।[3] जापान के पुनर्शस्त्रीकरण पर कोई प्रतिबन्ध न लगाने वाली जापानी शान्ति सधि[4] मे भी आत्मरक्षा के इस अधिकार को स्पष्ट रूप से मान्यता प्रदान की गई है। १९५६ आते-आते जापान मे सविधान के सशोधन के लिए एक राजनीतिक आदोलन सक्रिय हो उठा तथा अनेक व्यक्तियो ने आत्मरक्षा सेनाओ की स्थिति के नियमितीकरण

---

१ धारा ९
2 The Observer, Aug. 13, 1950
3 The Times, Feb. 14, 1952
4 Cmd 8601 (1952) Art 5 (c)

हेतु धारा ६ में संशोधन करने की आवश्यकता पर बल दिया।[5] इस विषय पर अभी हाल में जापान के सर्वोच्च न्यायालय ने विचार किया है।[6] उसके अनुसार धारा ६ जापान के आत्मरक्षा के स्वाभाविक अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाती। साथ ही उसने इस बात का भी संकेत किया कि आवश्यक रूप से असुरक्षा असम्भव करके यह विदेशी आक्रमण के प्रतिरोध हेतु तैयारी करने की भी आज्ञा देती है। न्यायालय ने मुख्यरूप से संधि में सम्मिलित अन्य देशों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ से सहायता के उपाय की परिकल्पना की है। इस कारण न्यायालय ने इस बात पर बल दिया कि युद्ध क्षमता पर स्वयं जापान ने प्रतिबन्ध लगाया है, किसी अन्य राज्य ने नहीं। आत्मरक्षा हेतु युद्धक्षमता बनाए रखने के जापान के अधिकार पर न्यायालय ने कोई स्पष्ट निर्णय नहीं दिया, संकेतरूप से उसने इस अधिकार की स्वीकृति अवश्य प्रदान कर दी है।

---

5 The Times, Nov. 4, 1958

6 के० योकोटा "सुनागावा निर्णय में नए जापानी संविधान में युद्धत्याग की अर्थ व्याख्या," 4 Japanese Annual of International Law, 1960, p. 16

१०

सोवियत समाजवादी गणतंत्रों का संघ

१९१७ मे रूस मे सत्ता का अधिग्रहण करके क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् ने अपना पहले रक्षा मंत्रालय के रूप मे गठन किया। रूस के राजनीतिक-सैनिक क्षेत्र मे क्रान्ति का स्थायी योगदान एक ऐसी विचार धारा को जन्म देना था जिसके अनुसार द्वितीय विश्वयुद्ध मे दल के असैनिक सदस्य सशस्त्र सेनाओं के साथ कधे से कधा भिड़ाकर लड़ सकते थे। इस राजनीतिक विश्वास पर सर्वहारा वर्ग की एक अद्भुत सैनिक तानाशाही की रचना हुई है। इसका सैनिक पक्ष निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि न केवल सर्वोच्च सत्ता का आधिकारिक रूप से प्रयोग करने वाला व्यक्ति वर्दीधारी होता है, वरन् तीनो सेनाओ के प्रधान सेनापति भी धीरे-धीरे उप-मन्त्रियों के पद तक पहुँच गए हैं और सशस्त्र सेनाओं के मत्री की नियुक्ति भी सेनाओं में से ही की जाती है।[1] क्रान्ति की सफलता को लाल सेना के साथ सयुक्त करने वाले ऐतिहासिक तथ्य ने सवैधानिक ढाचे को इस सीमा तक परिवर्तित कर दिया है कि ४० वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी राज्य के सोपान मे सशस्त्र सेनाओं की उच्चतम स्थिति अभी तक ज्यों की त्यों बनी है। सोवियत सविधान मे निम्नलिखित धारा १३८ जोडने की आवश्यकता इस का प्रमाण है.

"लाल सेना मे सेवारत नागरिकों को राज्य के अन्य नागरिको के समान मतदान करने और स्वय चुनाव लडने का अधिकार प्राप्त है।" यह प्रावधान न केवल इसलिये विलक्षण है कि आधुनिक सविधानो के इतिहास मे इसकी तुलना किसी अन्य से नहीं की जा सकती, वरन् इसलिये भी कि दलीय सगठन और सरकारी तत्र के वास्तविक कार्य-व्यापार मे इसका पूर्ण उपयोग किया जाता है। इस प्रकार समय

---

१ यह वक्तव्य १९५३-५४ की स्थिति से सम्बन्धित है। इसके बाद समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं, परन्तु सशस्त्र सेनाओं की स्थिति पर सामान्यतः कोई हानिकर प्रभाव नहीं पड़ा है।

तथा द्वितीय विश्वयुद्ध जैसे लम्बे युद्ध की कसौटी पर खरी उतरने वाली इस केन्द्रीकृत सरकार का जन्म १९१७ में हुआ था एवं शीर्षस्थ व्यक्तियों में अनेक बार परिवर्तन होने के बावजूद आज भी इसमें न केवल सैनिक वरन् सरकार के कार्य के अन्य क्षेत्रों में भी महान शक्ति के लक्षण विद्यमान हैं।

संविधान और सशस्त्र सेनाएँ :

रूस में सेनाध्यक्षों की प्रणाली को भलीभाँति समझने के लिए उस देश की संवैधानिक संरचना में सशस्त्र सेनाओं की स्थिति का संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है। १९४४ में संशोधित १९३६ के संविधान की पहली धारा में सोवियत रूस को "मजदूरों और किसानों का समाजवादी राज्य" कहा गया है। पुनः धारा १३ में राज्य को "सोवियत समाजवादी गणतंत्रों के ऐच्छिक सहयोग के आधार पर निर्मित एक संघीय राज्य कहा गया है।" "इन गणतंत्रों की संख्या १६ है और इन्हें समान अधिकार प्राप्त हैं।" किसी भी संघीय राज्य के लिए संघ में शामिल इकाइयों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सत्ता के अधिकारों की व्याख्या करना आवश्यक है अतः धारा १४ में सोवियत रूस का अधिकारक्षेत्र निश्चित किया गया है। सन् १९३६ में रूसी संविधान के निर्माताओं ने इस आधारभूत नियम का कि अन्य संघीय संविधानों की भाँति रक्षा और विदेशी मामले केन्द्रीय सरकार के अधिकारक्षेत्र में आने चाहिए, का उल्लघंन नहीं किया। धारा १४ के उपविभाग (आ) और (ए) के अनुसार "युद्ध और शान्ति के प्रश्न" तथा सोवियत संघ के रक्षा संगठन और उसकी सभी सशस्त्र सेनाओं का निर्देशन "एवं संघ में शामिल गणतंत्रों की सैनिक संरचनाओं के संगठन के लिए निदेशक सिद्धान्त स्थिर करना" केन्द्रीय संघ सरकार की क्षमता के अन्तर्गत आते हैं।

सन् १९४४ में सोवियत संविधान संशोधित गया था। इसने संघीय गणतंत्रों को न केवल संघ (यूनियन) से अलग होने का (धारा १७) असाधारण और अभूतपूर्व अधिकार प्रदान किया वरन् "विदेशी राज्यों के साथ सीधे सम्बन्ध स्थापित करने, उनके साथ समझौता करने तथा राजनीतिक और वाणिज्य प्रतिनिधियों का आदान-प्रदान करने का "[2] (धारा १८-अ) अधिकार भी प्रदान किया। विदेशी मामलों और रक्षा में घनिष्ट सम्बन्ध होता है अतः गणतंत्रों को विदेशी राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार प्रदान करके सोवियत संविधान प्रत्येक संघीय गणतंत्र को अपनी सेनाएँ रखने का भी अधिकार प्रदान करता है। (धारा १८-आ)

---

२ जहाँ तक ज्ञात है संघ में शामिल किसी भी गणतंत्र ने किसी अन्य विदेशी राज्य से न तो संधि संबंध स्थापित किया है और न ही किसी ने अपनी सेनाएँ अथवा कूटनीतिक सेवा गठित की है। विशेष कारणों से जिन का वर्णन करना यहाँ संभव नहीं है यूक्रेन और श्वेतरूस के सोवियत समाजवादी गणतंत्र संयुक्त राष्ट्र संघ के स्वतंत्र सदस्य हैं।

रक्षा सार्वभौमिकता का लक्षण तथा राज्य को 'अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति' के रूप मे मान्यता प्रदान करने के लिए आवश्यक शर्त है। सोवियत सविधान मे १६४४ के सशोधन ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून के लिए एक कठिन समस्या उत्पन्न कर दी कि अपने सघीय गणतत्रो का प्रतिनिधित्व करने वाला सोवियत सघ एक "अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति" है अथवा ये गणतत्र अपने निजी अधिकार मे नियमित 'अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति' हैं। जब राष्ट्रो के समुदाय मे राज्य के सभी अधिकार और कर्त्तव्य सम्मिलित रूप से पूर्ण क्षमता प्राप्त केन्द्रीय सत्ता द्वारा प्रयुक्त किए जाते हैं तथा सघ मे शामिल राज्य किसी भी रूप मे केन्द्र के इस अधिकार मे साझीदार नही होते हैं तब सघीय राज्य को 'मिश्रित अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति' माना जाता है।[3] सघीय राज्य को युद्ध की घोषणा करने, शान्ति स्थापित करने, सहयोग की सन्धियाँ करने तथा कूटनीतिक प्रतिनिधि भेजने और उन्हे आमन्त्रित करने का पूर्ण अधिकार होता है, परन्तु सघ मे शामिल कोई भी सदस्य राज्य स्वय युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता। ऐसा सघीय राज्य वास्तविक 'अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति' बन जाता है और सघ में शामिल राज्यो को अन्तर्राष्ट्रीय कानून मे कोई मान्य स्थिति प्राप्त नहीं होती।[4] प्रश्न जब सोवियत संघ मे शामिल इकाइयों को विदेशी राज्यो से सीधा सम्पर्क स्थापित करने और सैनिक संरचना रखने का अधिकार प्रदान किया गया तो अन्तर्राष्ट्रीय कानून में उनकी स्थिति के सम्बन्ध मे प्रश्न उठ खड़ा हुआ। अधिक महत्त्वपूर्ण गणतत्रो ने सोवियत सघ के परिवार मे रहते हुए ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के समान अपने अलग अस्तित्व की माग की। १६४५ मे यूक्रेन और श्वेत रूस के गणतत्रो को सानफ्रासिस्को कान्फ्रेंस के लिए अलग-अलग आमंत्रित किया गया और आज भी वे सोवियत सघ से अलग संयुक्त राष्ट्र सघ के सदस्य हैं।[5]

फिर भी सोवियत सविधान की धारा १४ (अ) के अनुसार केन्द्रीय सरकार को 'युद्ध और शान्ति' के प्रश्नो पर अधिक महत्त्वपूर्ण शक्ति प्राप्त है, यह शक्ति सघीय गणतत्रो को नही प्रदान की गई है। इसी प्रकार धारा १४ (ए) के अनुसार

---

३ ओपेनहाइम: अन्तर्राष्ट्रीय कानून Vol I १८६

४ देखिए काहन बनाम पाकिस्तान सघ (१६५१) २ K B १००३, और साइस बनाम बहावलपुर का अमीर (१६५२) I All E. R. ३२६, २. All E. R. ६४, ग्रीन "पाकिस्तान का स्तर" ६ भारतीय कानून समीक्षा, १६५२ पृ० ६५

५ विदेशी मामलों के क्षेत्र में संघ में शामिल गणतन्त्रों को सत्ता प्रदान करने वाले कानून के संबध में डोवरिन की 'अ डियम सोसाइटी ट्रांजेक्शन' ३० (१६४४) के पृष्ठ २६०-२८३ देखिए। अन्तर्राष्ट्रीय कानून में संघीय राज्यों की स्थिति के विषय मे ओपेनहाइम का अन्तर्राष्ट्रीय कानून भाग १, धारा ८६ भी देखिए। व्यक्तिगत सदस्यता की पृष्ठभूमि के लिए रसल और लूथर का "संयुक्त राष्ट्र सघ घोषणा पत्र का इतिहास" १६५५, पृष्ठ २३३ और आगे देखिए।

प्रत्येक संघीय गणतंत्र को 'अपनी गणतंत्रीय सैनिक संरचना' रखने की आज्ञा देने के बावजूद रक्षा का संगठन और सोवियत संघ की सभी सशस्त्र सेनाओं का निर्देशन केन्द्रीय सत्ता के अधिकारक्षेत्र में है। इस प्रकार विदेशी मामलों और रक्षा के विषय में एक प्रकार के समवर्ती अधिकारक्षेत्र का अस्तित्व है, पर व्यवहार में दोनों ही क्षेत्रों में केन्द्रीय सरकार की महत्वपूर्ण सत्ता को निश्चित स्वीकृति प्रदान की गई है।

भारत मे स्वास्थ्य, शिक्षा एव खाद्य और कृषि प्रान्तीय विषय हैं, परन्तु फिर भी समन्वयन और सामान्य निर्देशन के लिए केन्द्रीय सरकार ने इनमें से प्रत्येक के लिए अलग-अलग मत्रालय गठित किए हैं। इन मामले में रूस में भी भारत जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। उभय सूचियों वाले अन्य संघीय संविधानों में भी ऐसे ही प्रावधान किए गए हैं। फिर भी सोवियत रूस में धारा १४ (अ) (आ) और (ए) द्वारा न केवल रक्षा मामलों का नियंत्रण करने वरन् अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में संघ का प्रतिनिधित्व करने, अन्य राज्यों के साथ सधियां करने, उनकी पुष्टि करने तथा सघ गणतंत्र और विदेशी राज्यों के मध्य सम्बन्धों के सामान्य लक्षणों का निर्धारण करने के महत्वपूर्ण मामलों का स्पष्ट उत्तरदायित्व भी केन्द्रीय सरकार को दिया गया है। अतः ऐसा लगता है कि यद्यपि संघीय गणतत्रों को सीधे सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार तो दिया गया है फिर भी इस पर व्यवहार करने की न तो उनसे आशा की जाती है और न इसकी आवश्यकता ही है, क्योंकि धारा १४ (अ) के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सबंधों में सघ के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने का कार्य सोवियत रूस की केन्द्रीय सरकार को सौंपा गया है।

यह वास्तव में महत्वपूर्ण है कि धारा ७७ के अनुसार नौसेना अभी तक संघ की सारी जनता का कमिसेरियत बनी है, यद्यपि रक्षा और विदेशी मामले गणतन्त्रीय जनता के कमिसेरियतों को हस्तातरित कर दिए गए हैं। ऐसा लगता है कि सभी गणतत्रों की रुचि इसमें न होने के कारण नौसेना गणतत्रों को हस्तातरित नहीं की जा सकी; इसके अतिरिक्त नौसेना का प्रभावी व्यवस्था केवल केन्द्रीय सत्ता द्वारा ही की जाती है। इस प्रकार धारा ७७ में रक्षा शब्द का अर्थ केवल स्थल और वायुसेना तक ही सीमित है।

सोवियत राज्य की राजनीतिक सरचना में इस महत्वपूर्ण परिवर्तन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक है। १९२२ में सोवियत सघ की स्थापना हो जाने के पश्चात् विदेशी राजनीतिक सम्बन्ध पूर्णतः विदेशी मामलों के सघीय कमिसेरियत में केन्द्रित हो गए थे तथा विदेशी सम्बन्धों के विषय में सभी गणतन्त्रों ने अपनी शक्ति इसे सौंप दी थी। १९४४ में सर्वोच्च सोवियत के सम्मुख अपने भाषण में एम. मोलोटोव ने रक्षा और विदेशी मामलों के कमिसेरियतों की सर्व सघ कमिसेरियतों से सघ गणतत्र कमिसेरियतों के रूप में परिवर्तित करने की

आवश्यकता की विस्तृत व्याख्या की। इस परिवर्तन का यह अर्थ था कि सोवियत संघ के सभी १६ गणतंत्र अब से अपनी-अपनी सेना और अपने-अपने कूटनीतिक प्रतिनिधि रखेंगे। उसने कहा कि 'बहुराष्ट्रीय सोवियत राज्य में राष्ट्रीय समस्या के महान समाधान' हेतु यह कदम उठाया गया था। आगे चलकर उसने कहा कि इस का अर्थ संघीय गणतंत्रों के कार्य का अत्यधिक विस्तार है और यह विस्तार उनके राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास अथवा दूसरे शब्दों में उनके राष्ट्रीय विकास के कारण संभव हुआ है।"[6]

६ फरवरी १९४४ के अपने महत्त्वपूर्ण रेडियो प्रसारण में एम. मोलोतोव ने यह प्रश्न उठाया, "हमारी लाल सेना को यह किस प्रकार प्रभावित करेगा ? क्या यह इसे शक्ति प्रदान करेगा"? उसने स्वयं ही उत्तर दिया, 'हां, निस्सन्देह यह इसे शक्ति प्रदान करेगा। हमारी सेना सदा सोवियत संघ की जनता के निकट और उसकी प्रिय रही है। देशभक्ति के युद्ध (Patriotic War) काल में सोवियत संघ की जनता का अपनी सेना के लिए प्रेम और भी सुदृढ़ और सार्वजनीन हो गया है.... गणतंत्रों की सैनिक इकाइयों की संरचना हमारी देशरक्षक सेना को, सोवियत संघ की विश्वसनीय रक्षा शक्ति को और भी सुदृढ़ करेगी।" उसने कहा, 'सोवियत संघ के शत्रुओं को इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिए कि इन नई स्थल सेना संरचनाओं के कारण हमारे राज्य की सशस्त्र सेनाएँ और शक्तिसम्पन्न बनेंगी। सोवियत संघ की जनता की बढ़ती हुई मित्रता का यह नया प्रतीक पूर्व और पश्चिम के राष्ट्रों में हमारे देश की प्रतिष्ठा-वृद्धि का कारण बनेगा।" विदेशी मामलों और रक्षा के कमिसेरियतों के इस रूप परिवर्तन को सोवियत रूस ने "लेनिन स्टालिन की राष्ट्रीय नीति के सिद्धान्तों के अनुरूप सोवियत संघ की राष्ट्रीय समस्या के समाधान के लिए उठाया गया प्रगतिशील कदम कहा है। यह सोवियत विकास में शासनतंत्र को "अधिक जटिल और शक्तिशाली" रूप देने वाले स्तर का प्रतिपादन करता था। इसका तात्पर्य लाल सेनाओं को अनेक छोटे-छोटे भागों में विभक्त करना नहीं वरन् मास्को स्थित केन्द्रीय सशस्त्र सेना संरचना के साथ साथ अनेक सहयोगी सेवाओं का गठन करना था। इसका अर्थ सशस्त्र सेनातंत्र का विस्तार और राष्ट्र का अधिक सैन्यीकरण करना था जिससे केन्द्र अथवा संघीय गणतंत्रों की तत्कालीन सरकार को सशस्त्र सेनाओं का समर्थन प्राप्त हो सके।

राजनीतिक संगठन और सैन्य विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए ऊपर वर्णित रूप परिवर्तन का अत्यधिक संवैधानिक महत्त्व है।

---

६ केसिंग का समकालीन पुरालेख-१९४४ पृ० ६२४६-६२५०

राज्य के उच्चतर रक्षा अंग

सोवियत अध्यक्ष मण्डल :

सर्वोच्च सोवियत का अध्यक्षमण्डल विधानसभा (सर्वोच्च सोवियत) के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में निर्वाचित कार्यकारी अंग है। इसमें राष्ट्रपति, १६ उपराष्ट्रपति, एक सचिव और २४ अन्य सदस्य होते हैं। सिद्धान्त रूप में राज्य की सर्वोच्च कार्यकारिणी शक्ति का संचालनकर्त्ता होने के नाते पूर्ववर्णित सिद्धान्त[7] के अनुसार धारा ४६ (ल), (व) और(र)के अधीन अध्यक्षमण्डल का उत्तरदायित्व "सोवियत संघ की समस्त सेनाओं की उच्चतर कमानों की नियुक्ति एवं पदमुक्ति करना", "सामान्य या आंशिक तैयारी" का आदेश देना, तथा "राज्य की रक्षा अथवा नागरिक व्यवस्था और राज्य की सुरक्षा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से सारे सोवियत रूस में या इसके अलग-अलग भागों से मार्शल लॉ की घोषणा करना" है।

अध्यक्षमण्डल जिसकी कार्यवाही सार्वजनिक नहीं होती राजाज्ञा जारी करता है, मन्त्रीपरिषद् के अध्यक्ष की सलाह से मंत्रियों की नियुक्ति करता है, तथा सर्वोच्च सोवियत की पुष्टि के अधीन अध्यादेशों द्वारा शासन चलाता है।

मंत्रिपरिषद्:

दिन प्रतिदिन का प्रशासन चलाने का वास्तविक भार रूसी जनता के कमिसारों की परिषद् पर है। धारा ६४ में इसे "राज्य का सर्वोच्च प्रशासनिक अंग" कहा गया है। यह परिषद् रूस की सर्वोच्च सोवियत (विधायिका) और इसके अधिवेशनों के अवकाशकाल में अध्यक्षमण्डल के प्रति उत्तरदायी होती है। यद्यपि १९४६ में संविधान में किसी प्रकार के संशोधन की कल्पना नहीं की गई थी फिर भी ऐसा लगता है कि जनता के कमिसारों की परिषद् के स्थान पर मंत्रिपरिषद् का गठन करके सरकारी तंत्र का पुनर्गठन किया गया था। रूस की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष पद से कालीनिन के त्यागपत्र के कारण सरकार के पुनर्गठन का अवसर प्राप्त हुआ था। मार्च १९४६ में सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया कि क्रान्ति के समय से चली आ रही जनता के कमिसारों की परिषद् का नाम बदल कर मंत्री परिषद् और जनता की कमिसेरियटों का 'रूस के मंत्रालय' कर दिया जाए। इसके फलस्वरूप आजकल परिषद् के सदस्यों को मंत्री का पदनाम दिया गया है।

मार्शल स्टालिन को १९४६ में मंत्री परिषद का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसके साथ ही उसे सशस्त्रसेनाओं के मंत्रालय का अतिरिक्त कार्य भी सौंप दिया गया।

कार्यकारिणी का सर्वशक्तिमान अंग होने के कारण सशस्त्र सेनाओं का नियंत्रण राज्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग को ही सौंपा जा सकता है। सभी प्रकार के आधुनिक और मध्य युगीन राज्यों में चाहे वे सर्वाधिकारवादी हों अथवा लोकतंत्रीय, इस सिद्धान्त का समान रूप से पालन किया जाता है।

इससे पता चलता है कि मंन्यीकृत संगठन में सशस्त्र सेनाम्रो पर राज्य के सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न व्यक्ति का पूर्ण नियंत्रण होना चाहिये।

संविधान के अनुसार मंत्री परिषद् के इस प्रशासनिक निकाय का चुनाव विधायिका (रूस की सर्वोच्च सोवियत) द्वारा दोनो सदनों की मयुक्त गोष्ठी मे होना है। धारा ५६ मे इस परिषद् को 'रूस की सरकार' का नाम दिया गया है और स्पष्ट शब्दों मे इसके लक्षण और कार्यों का वर्णन किया गया है।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है मंत्री परिषद् का अध्यक्ष मार्शल स्टालिन था। १६४७ तक सशस्त्र सेनाम्रो के मंत्री का कार्य भी उसी के पास रहा, तत्पश्चात् मार्शल बुल्गानिन ने उसका स्थान ग्रहण किया। इस प्रकार जब राज्य के सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति ने सशस्त्र सेनाओं का नियंत्रण अपने एक विश्वास पात्र के हाथो सौंप दिया तो उत्तरोक्त को "मंत्री परिषद् के उपाध्यक्ष" का पद-नाम दिया गया। सशस्त्र सेनाओं का मन्त्री पद संभालते समय न केवल मार्शल बुल्गानिन को उपाध्यक्ष का पदनाम दिया गया था वरन् १६४६ मे उसका स्थान लेने वाले मार्शल वैसिलिवस्की को भी यही पदनाम दिया गया। ऐसा लगता है कि कैबिनेट मे अपने महत्व के कारण विदेशी मामलो के मंत्री को भी यही पदनाम प्राप्त था। १६४७ के बाद जिस तंत्र का जन्म हुआ वह सब उसी के अनुरूप था। एक असैनिक व्यक्ति एन० एस० ख्रुचेव द्वारा शक्ति सभालने पर सैनिक सगठन का ताना-बाना उसे केन्द्र मानकर रचा गया। नागरिक पदस्तर पर उसका प्रभुत्व सशस्त्र सेनाओं सहित राज्य के सभी अंगो पर दल की सर्वोच्चता का प्रतिनिधित्व करता है।

रूस की रक्षा हेतु जनता की कमिसेरियत -

रूस की रक्षा हेतु जनता का कमिसेरियत देश के प्रशासन के लिए उत्तरदायी था; एक सैनिक परिषद् इसके सलाहकार का कार्य करती थी। जनता के कमिसारो की परिषद द्वारा चुने हुए ८० व्यक्ति इसके सदस्य होते थे। इन ८० व्यक्तियो की एक तदर्थ समिति होती थी जो किन्ही अर्थों मे १६५२ तक भारतीय ससद की स्थायी सलाहकार समितियो के समान होती थी। इस बात का कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि इस तदर्थ समिति का पूर्ण उपयोग किया जाता था; सैन्य परिषद् की गोष्ठिया कभी-कभार ही होती थीं अत इसकी शक्ति भी नगण्य थी। रूस की सैन्य परिषद् तथा सयुक्त राज्य मे राष्ट्रपति की शक्ति पर प्रभावी नियंत्रण रखने के लिए गठित कांग्रेस की समितियो में स्पष्ट ही आधारभूत अन्तर है।

रूस की रक्षा हेतु गठित जनता के कमिसेरियत के सीधे आदेश के अधीन निम्नलिखित अधिकरण होते हैं :

स्थल सेना जनरल स्टाफ,
केन्द्रीय स्थल सेना प्रशासन,
स्थल सेना राजनीतिक प्रशासन,
युद्ध सामग्री का महानिरीक्षक,

वायुसेना प्रशासन,
नौसेना प्रशासन,
स्थल सेना सेवा कोर,
सैनिक निर्माण प्रशासन,
केन्द्रीय सैनिक प्रशासन,
वित्तीय अनुमान आयोग,
चिकित्सा प्रशासन और
पशु चिकित्सा प्रशासन

प्रधान सेनापति

संघ की सशस्त्र सेनाओं के प्रधान सेनापति को सभी नागरिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी परन्तु उसे अपने निर्णयों की सूचना जनता की कमिसारों और संघ की क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् को देनी पड़ती थी। उसे नियुक्त और पदमुक्त करने का अधिकार जनता की कमिसारों की परिषद् को था।

१९४६ में कमिसेरियटों को समाप्त कर दिया गया और स्तालिन के मंत्रित्व में सशस्त्र सेनाओं का एक मंत्रालय गठित किया गया। इस समाप्ति के साथ सशस्त्र सेनाओं के मंत्री के अधीन एक एकीकृत कमान की रचना की गई और मार्शल स्तालिन को जो स्थल और नौसेना दोनों का सर्वोच्च प्रधान सेनापति बना, सर्वोच्च शक्ति प्रदान की गई। ऐसा लगता है कि स्तालिन स्वयं रक्षा का और एडमिरल कुजनेत्सोव नौसेना का कमिसार था। जब सशस्त्र सेनाओं को एक ही मंत्रालय के अधीन कर दिया गया तो लाल सेना की पूरी कमान संभाल कर स्तालिन उसका सर्वोच्च प्रधान सेनापति बन गया।

वायु सेना के विकास और विस्तार के कारण इसे स्थल और नौसेना के समकक्ष एक अलग सेवा के रूप में गठित करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसे एक अलग मंत्री के अधीन नहीं रखा गया वरन् पांच अन्य उपमन्त्रियों के साथ २१ मार्च १९४६ को इसके लिए रक्षा उपमन्त्री की नियुक्ति की गई।

इन नियुक्तियों के कारण सोवियत उच्च कमान का पुनर्गठन करना आवश्यक हो गया और इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण तीनों सेवाओं की समानता के सिद्धान्त की स्थापना था, क्योंकि तीन अलग-अलग उप या सहमन्त्री नियुक्त करके उन्हें इन सेवाओं के प्रधान सेनापति का भार सौंपा गया था। यह ध्यान देने योग्य है कि सोवियत वायु सेना के लिए एक अलग प्रधान सेनापति तो नियुक्त किया गया, परन्तु इसके लिए एक अलग मंत्रालय की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया गया।

ऐसा समझा जाता है कि तीनों सेवाओं के आपूर्ति संगठनों को एक कमान के अधीन एकीकृत करके एक मार्शल को उसका अध्यक्ष बना दिया गया। सर्वाधिक महत्वपूर्ण सैनिक अधिकारी होने के कारण जनरल स्टाफ के अध्यक्ष को तथा तीनों

सोवियत रूस में सशस्त्र सेना संगठन
राज्य रक्षा समिति
सशस्त्र सेनाओं का मन्त्री
१ अध्यक्ष
२. विदेश मन्त्री
३. सशस्त्र सेनाओं का मन्त्री
४. आन्तरिक मामलों का मन्त्री
५. रेल और आर्थिक मामलों का मन्त्री
सैनिक क्षेत्र
स्थल सेना का प्रधान सेनापति उपमन्त्री (सोवियत संघ का मार्शल)
नौ सेना का प्रधान सेनापति उपमन्त्री (सोवियत जहाजी बेड़े का अडमिरल)
वायु सेना का प्रधान सेनापति उपमन्त्री (उड्डयन का मुख्य मार्शल)
आपूर्ति संगठन का प्रधान सेनापति उपमन्त्री
सशस्त्र सेनाओं का महानिरीक्षक उपमन्त्री
मुख्य राजनीतिक निदेशालय
सैनिक प्रशिक्षण का मुख्य निदेशालय
निदेशालय
निदेशालय
निदेशालय
वायु कमान
निदेशालय
नौ सेना प्रतिष्ठान
निदेशालय
निदेशालय
क्षेत्रीय कमाण्डर
युद्ध परिषद्
स्थानीय साम्यवादी दल का सचिव
राजनीतिक कमाण्डर
मुख्य अंगों के प्रतिनिधि
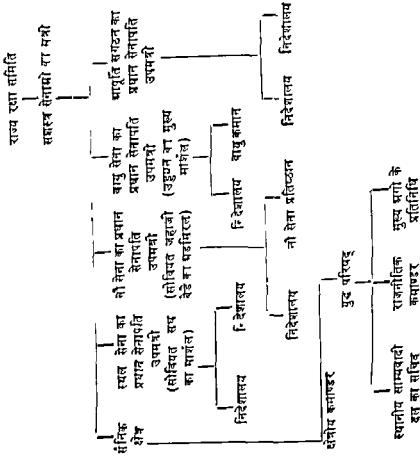
सेवाओं के प्रधान सेनापतियों और आपूर्ति संगठन के अध्यक्ष को उपमन्त्री नियुक्त किया गया। इनके अतिरिक्त सशस्त्र सेनाओं के महानिरीक्षक को छठा मन्त्री बनाया गया। वास्तव में यह एक असाधारण पद है और इसके कार्यों की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है। सीधे मन्त्री के सचिवालय संगठन के अधीन कुछ और भी अन्तर सेवा पक्ष वाले निदेशालय थे। साम्यवादी राज्य का गठन न केवल सशस्त्र सेनाओं की वरन् राज्य के राजनीतिक संगठन का संचालन करने वाले कर्मचारियों की शिक्षा और प्रशिक्षण पर भी आधारित होता है, अत. प्रमुख राजनीतिक निदेशालय सब से महत्त्वपूर्ण था।

देश के विभिन्न सैनिक क्षेत्रों की सेनाओं से सशस्त्र सेनाओं के मन्त्री का सीधा सम्पर्क होता था। रूस के कमान संगठन के बारे में अधिक सूचना उपलब्ध नहीं है, परन्तु ऐसा लगता है कि युद्ध के पश्चात् देश को लगभग बीस सैनिक क्षेत्रों में बाँट कर प्रत्येक क्षेत्र की कमान एक वरिष्ठ जनरल को सौंप दी गई थी। इन क्षेत्रों के सभी सैनिक कर्मचारी (चाहे वे किसी सेवा के हों) वरिष्ठ जनरल के अधिकार क्षेत्र में आते थे।

क्षेत्रीय सचालक के ऊपर एक युद्धपरिषद् होती थी जिसका एक सदस्य क्षेत्रीय साम्यवादी दल का सचिव होता था अत. इस बात पर बल देना आवश्यक है कि साम्यवादी दल का संगठन किसी सीमा तक राज्य की क्षेत्रीय सेनाओं को प्रभावित करता था। सिद्धान्त यह था कि क्षेत्रीय सचालक की सहायता के लिए परिषद् होती थी जिसमें क्षेत्रीय साम्यवादी दल का सचिव, एक वरिष्ठ राजनीतिक सचालक तथा मुख्य अंग यथा तोपखाना और अभियांत्रिकी के तीन सचालक होते थे। युद्ध परिषद् के सहकार से कार्य करने वाले क्षेत्रीय सचालक के बहुविध कार्यों में अनिवार्य सेवा, रिजर्व सैनिकों का प्रशासन, तैयारी, सैनिक महत्त्व के मामलों में संघ में शामिल इकाइयों की सरकारों से सम्पर्क तथा राजनीतिक विचार प्रसारण के महत्त्वपूर्ण विषय शामिल थे, क्षेत्रीय सचालक मन्त्री के नियन्त्रण में आते थे तथा सीधे उसी के प्रति उत्तरदायी होते थे।

दक्ष नीति निर्माता कक्ष[४]

यद्यपि रूस के रक्षातंत्र में सेनाध्यक्षों की समिति नाम का कोई अंग नहीं है परन्तु ऐसा समझा जाता है कि तीनों सेवाओं के प्रधान सेनापतियों में प्रत्येक सेवा के नीति निर्माता और कमान कार्य समाहित कर दिए गए हैं। जहाँ तक समन्वय का प्रश्न है सशस्त्र सेनाओं का मन्त्री विचार विमर्श के समय उनकी अध्यक्षता करता है। यद्यपि प्रधान सेनापतियों को अपनी अपनी सेवा के सेनाध्यक्ष

---

४ न इसके ने किस सीमा तक सोवियत संघ की संरचना को परिवर्तित किया है यह बात नहीं है। विषय पर उपलब्ध सामग्री के अभाव में इस वर्णन को आधुनिक काल तक विस्तृत नहीं किया जा सका है।

का पदनाम प्राप्त नहीं है फिर भी उपमन्त्री का कार्य करने के साथ-साथ वे यह कार्य भी करते हैं। यह स्पष्ट है कि जब प्रभावी शक्ति सशस्त्र सेना के उच्च-पदाधिकारियों मे केन्द्रित होती है तो वे केवल नीतिनिर्माता पक्ष की अपेक्षा कमान पक्ष पर अधिक बल देने लगते हैं और स्याम की भाँति रूस में भी तीनों सेवाओं के अध्यक्षों को नीतिनिर्माता कार्य का सकेत करने वाले 'सेनाध्यक्ष' पद नाम के बदले प्रधान सेनापति और उपमन्त्री के पदनाम दिए गए हैं। १९४७ से पूर्व भारत में भी एक प्रधान सेनापति होता था। स्वतन्त्रता के पश्चात् यह पद-नाम समाप्त कर दिया गया परन्तु 'सेनाध्यक्ष' की उपाधि बनी रही। प्रजातन्त्र मे वास्तविक और विधिसम्मत शक्ति राजनीतिक नेताओं के हाथों में रहती है और वे ससद सदस्य होने के कारण साथ साथ सशस्त्र सेनाओं के सदस्य नहीं हो सकते। परन्तु रूस के सविधान की धारा १२८ के अनुसार वहां ऐसा करने की स्वीकृति प्रदान की गई है।

प्रधान सेनापति एव 'स्टाफ' के महत्त्वपूर्ण नीतिनिर्माता-कार्य सहित उप-मन्त्री का कार्य करने वाले तीनों सेवाध्यक्षों के स्थान और स्थिति का सर्वोत्तम वर्णन इस अध्याय के अंत मे एक मानचित्र (चार्ट) में दिया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया है कि रूस में सेनाध्यक्षों की समिति के कार्य सशस्त्र सेनाओं के मन्त्री की अध्यक्षता में निम्नलिखित चार प्रधान सेनापतियों द्वारा किए जाते हैं :—

(१) स्थल सेना का प्रधान सेनापति, उपमन्त्री (सोवियत संघ का मार्शल)
(२) नौसेना का प्रधान सेनापति, उपमन्त्री (सोवियत संघ का एडमिरल)
(३) वायु सेना का प्रधान सेनापति, उपमन्त्री (उड्डयन का मुख्य मार्शल)
(४) आपूर्ति संगठन का प्रधान सेनापति, उपमन्त्री

राज्य की युद्ध क्षमता के विकास से संबंधित सभी विभागों और उद्देश्यों में पूर्ण-तम समन्वय स्थापित करने के लिए उत्तरदायी आपूर्ति संगठन के प्रधान सेनापति को शामिल करके आधुनिक युद्ध मे साज-सामान के महत्त्व पर पर्याप्त बल दिया गया है।

पुनः इस नीति निमार्ता निकाय का एक लक्षण यह है कि राज्य की सशस्त्र सेनाओं के शान्तिकाल के विकास और युद्धकाल में विस्तार सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण मामलों में इसे इतनी अधिक शक्ति प्राप्त है कि यह लगभग अन्तिम और निर्णय-कारी अंग बन गया है। यह बात बल देने योग्य है कि इस निकाय की अध्यक्षता करने वाला सशस्त्र सेनाओं का मन्त्री भले ही राज्य की राजनीतिक शक्ति का संचा-लक और इस प्रकार राज्य की रक्षा समिति का अध्यक्ष होता है, फिर भी उप-मन्त्रियों एवं आपूर्ति संगठन के प्रधान सेनापति सहित अन्य तीनों सेवाओं के प्रधान सेनापतियों द्वारा निर्मित योजनाओं को आशीर्वाद देने वाले और भी अन्य सदस्य इस समिति में होते हैं। राज्य की रक्षा समिति एक उच्चतर राजनीतिक अंग है।

विदेशमंत्री, सशस्त्रसेना मंत्री, गृहमन्त्री, रेलमंत्री, और आर्थिक मामलों का मन्त्री इसके सदस्य होते हैं।

इस प्रकार लागू किए जाने से पूर्व चारों प्रधान सेनापतियों द्वारा निर्मित एवं सशस्त्र सेनाओं के मंत्री द्वारा अनुमोदित योजनाओं का राज्य की रक्षा समिति द्वारा परीक्षण किया जाता है। यदि चारों प्रधान सेनापतियों के अध्यक्ष की हैसियत से सशस्त्र सेनाओं का मंत्री इन योजनाओं को स्वीकृति प्रदान कर देता है तो राज्य की रक्षा समिति द्वारा उनके अनुमोदन में कोई सन्देह नहीं रहता है, क्योंकि स्वयं सशस्त्र सेनाओं का मन्त्री मन्त्रीपरिषद् और रक्षा समिति दोनों का अध्यक्ष होता है। इस प्रकार रूस में दक्ष नीतिनिर्माता-कक्ष और नीतियों को स्वीकृति प्रदान करने वाले अंगों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है और उन पर सशस्त्र सेनाओं के अधिकारियों का प्रभुत्व रहता है। सारी प्रणाली का एक विशिष्ट लक्षण मंत्रि परिषद् में संचालकों की नियुक्ति है।

मंत्री परिषद् में संचालकों की नियुक्ति

ऐसा प्रतीत होता है कि इन तीनों सेवाओं के जनरल स्टाफ के अध्यक्षों और प्रधान सेनापतियों में से ही सशस्त्र सेनाओं के मन्त्री और उपमंत्री नियुक्त करने की परम्परा है। उदाहरणार्थ मार्शल अलेक्जैण्डर वैसिलिवस्की को अक्तूबर १९४३ में जनरल स्टाफ का अध्यक्ष नियुक्त किया गया और मार्च १९५६ में उसे उप रक्षामंत्री के पद पर पदोन्नत कर दिया गया। पुन एक वर्ष पश्चात् उसे मंत्री परिषद् के उपाध्यक्ष के पद पर पदोन्नत कर दिया गया। १९४९ में सशस्त्र सेनाओं का मंत्री बनकर वह मार्शल बुल्गानिन के स्थान पर आया। उत्तरोक्त भी एक सेवाधिकारी था जो १९४७ में उपमंत्री और उसी वर्ष कुछ काल पश्चात् मार्शल स्तालिन के स्थान पर सशस्त्र सेनाओं का मंत्री बना। बाद में १९४९ में मार्शल वैसिलिवस्की के पक्ष में उसने अपना यह उच्च पद त्याग दिया। फिर भी वह मंत्री परिषद् का उपाध्यक्ष बना रहा। १९५० में उसे मंत्री परिषद् में उपप्रधान मंत्री पद पर पदोन्नत कर दिया गया। स्थल सेना में इन पूर्व घटनाओं के अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि जब नए नौसेना मंत्रालय का गठन किया गया तो नौसेना के प्रधान सेनापति को नौसेना मंत्री नियुक्त कर दिया गया। १९४६ से पूर्व के तन्त्र में भी जब नौसेना के लिए एक कमिसार होता था, एडमिरल कुज़्नेत्सोव को कमिसार का पद प्राप्त था। पुन सशस्त्र सेनाओं के प्रधान मार्शल बुल्गानिन को मालेन्कोव के स्थान पर सोवियत राजनीतिक अध्यक्ष नियुक्त किया गया। संक्षेप में राज्य के उच्चतर राजनीतिक अंगों को नियंत्रित करने वाले कर्मचारी सशस्त्र सेना से आने के कारण राजनीतिक और सैनिक क्षेत्र परिवर्तनसाध्य है।

दल और सशस्त्र सेना :

यदि दल और राज्य परिवर्तनसाध्य पद हैं तो दल और सैन्य-सोपान को

भी समान रूप से परिवर्तनसाध्य माना जाना चाहिए। दल आजकल राज्य के उच्चतम राजनीतिज्ञों के साथ साथ महानतम जनरल भी भेंट करता है। सोवियत संविधान की धारा १३८ के अनुसार सशस्त्र सेना के सदस्यों को राज्य के अन्य नागरिकों की भांति चुनाव लड़ने और मतदान करने का अधिकार प्राप्त होने के कारण यह सम्भव है। इस प्रकार सशस्त्र सेनाओं के ऐडमिरल और जनरल, सैनिकों और नाविकों सहित साम्यवादी दल के सदस्य होते हैं और वे ही सर्वोच्च सोवियत, अध्यक्ष मण्डल, अथवा मंत्री परिषद् का चुनाव लड़ते हैं। इस प्रकार प्रजातंत्रीय देशों के समान सशस्त्र सेनाओं पर असैनिक नियंत्रण का वहां कोई सिद्धान्त नहीं है। धारा १३८ के अनुसार केन्द्रीकरण सम्भव होने के कारण राज्य के सर्वोच्च अंगों पर पदधारी व्यक्तियों का नियंत्रण हो गया है।

यद्यपि दल और सशस्त्र सेनाएं परिवर्तनसाध्य पद हैं, फिर भी पूर्वोक्त उत्तरोक्त के निरन्तर सहयोग के कारण शक्ति प्राप्त करता है। सशस्त्र सेनाओं द्वारा ही दल के शासन को अन्तिम स्वीकृति प्राप्त होने के कारण सोवियत प्रणाली में उनका विशेष महत्त्व है। दल के शासन का आधार प्रस्तुत करने के कारण दल के लिए उनकी स्वामिभक्ति सर्वाधिक चिन्तनीय विषय है। दल और सशस्त्र सेनाओं के मध्य निकटतम सहयोग का सर्वाधिक नवीनतम उदाहरण स्वयं ख्रुश्चेव है जो असैनिक वस्त्रों में दल के नेता के रूप में सशस्त्र सेनाओं एवं सम्पूर्ण राज्यतन्त्र के सर्वोच्च पद पर पहुँचा है। युग की सच्ची लोकतंत्रीय भावनाओं के अनुकूल बिना किसी सैनिक पद के यह सम्मान प्राप्त करने के लिए उसे बधाई दी जानी चाहिए भले ही वह राज्य की सशस्त्र सेनाओं के सम्बन्ध में 'सुप्रीमो' की शक्ति का संचालन करता है।

११

चीन गणतंत्र

चीन गणतन्त्र के सैनिक सगठन सम्बन्धी प्राधिकारिक सामग्री का बड़ा अभाव है। फिर भी सामान्य सांविधानिक व्यवस्था और उसमें सशस्त्र सेनाओं की स्थिति का संक्षिप्त विवरण यहाँ देने का प्रयास किया गया है। इस वर्णन में अनेक कमियाँ है। प्रथम तो तथ्यो की सत्यता की गारटी नहीं दी जा सकती। द्वितीय अद्यावधि वर्तमान स्थिति का विवरण भी उपलब्ध नही है। उदाहरणार्थ, केन्द्रीय जन सरकार के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष पद, सरकारी प्रशासनिक परिषद् और जन क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् का जिस रूप मे इस अध्याय मे वर्णन किया गया है शायद उनका वह रूप अब तक पुराना पड़ चुका है फिर भी किसी समय के महत्त्वपूर्ण ये अग चीन राज्य के राजनीतिक सैनिक विकास पर प्रकाश डालते हैं एव इनसे आगे की सूचना उपलब्ध न होने के कारण इनके प्रारम्भिक सगठन का वर्णन करना ही उपयोगी समझा गया है। आगे के पृष्ठो मे वर्णित रक्षातन्त्र १९५९ से पूर्वकाल का कहा जा सकता है। १९५४ मे चीन मे आम मतदान हुआ था जिसके परिणाम स्वरूप प्रथम राष्ट्रीय जन कांग्रेस चुनी गई थी।

अत मे यह और कहा जा सकता है कि इस विषय पर प्रामाणिक सामग्री की खोज मे नई दिल्ली स्थित चीनी दूतावास के सौजन्य से चीन गणतन्त्र के रक्षामन्त्री कामरेड पेंग तेह्-हुआई (Peng Teh-Huai) द्वारा सितम्बर १९५६ मे दिए गए भाषण की एक प्रति प्राप्त करना सभव हो सका है। इस विस्तृत दस्तावेज मे न केवल सेना के कार्य वरन् राज्य के रक्षा सगठन के विद्यार्थी के लिए अत्यधिक रुचिकर विषयों, सशस्त्र सेनाओ के निर्माण की प्रणालियो, सेना मे राजनीतिक कार्य की प्रणाली और सेना मे प्रजातन्त्र आदि पर भी विचार किया गया है। भाषण की प्रतिलिपि इस अध्याय के परिशिष्ट 'अ' के रूप मे उद्धृत की गई है (पृष्ठ २७९)। इस प्रकार इन पृष्ठो मे वर्णित सैनिक और असैनिक दोनो प्रकार का सगठन उस काल की स्थिति को चित्रित करता है जब माओ त्से-तुग विधिसम्मत राज्याध्यक्ष एव सारी सत्ता और शक्ति का वस्तुत सचालक था। १९५८ मे माओत्से तुग द्वारा चीन गणतन्त्र के राष्ट्रपति अथवा अध्यक्ष पद का त्याग कर दिए जाने के पश्चात् की स्थिति का ठीक-ठीक पता नही है। अत पहले क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् के अधीन राजनीतिक सैनिक व्यवस्था का वर्णन करने के पश्चात् आधुनिकतम प्रवृत्तियों की संक्षिप्त झलक प्रस्तुत करने के अतिरिक्त यहाँ नवीनतम सरचना के वर्णन करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है।

राज्य के सर्वोच्च राजनीतिक और सैनिक अंग के रूप में क्रान्तिकारी सैनिक परिषद्

जन क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् राज्य में सैनिक कमान का सर्वोच्च अंग था। इसका देश भर की जनमुक्ति सेना एवं अन्य सशस्त्र सेनाओं पर एकीकृत नियन्त्रण था। यह एक छोटा निकाय था जिसमें अध्यक्ष माओ त्से-तुंग और सात उपाध्यक्ष जिनमें प्रधान सेनापति चू तेह वरिष्ठ था होते थे। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दलीय नेता ल्यूशाओ-ची के साथ-साथ प्रधानमंत्री चाउ एन लाई भी एक उपाध्यक्ष था। इस प्रकार देश के स्वीकृत सैनिक तानाशाह माओ त्से-तुंग के अधीन दलीय नेता, प्रधानमन्त्री और प्रधान सेनापति उपाध्यक्ष के रूप में सैनिक परिषद् के सदस्य होते थे। सेनाध्यक्ष भी एक उपाध्यक्ष और सैनिक परिषद् का एक महत्त्वपूर्ण सदस्य होता था।[1]

ऐसा लगता है कि चीन ने अनेक विचार, सिद्धान्त और संस्थाएं सोवियत उदाहरण से ग्रहण की हैं। जन क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् नाम भी क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् जिसने रूसी क्रान्ति में इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी और जो अन्ततः पहला रूसी रक्षा मंत्रालय बनी थी, की याद दिलाता है। महत्त्वपूर्ण राजनीतिक और दलीय नेता जिस क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् के सदस्य होते हैं उसे एक प्रकार की कैबिनेट रक्षा समिति कहा जा सकता है। वास्तव में सोवियत प्रणाली में राज्य रक्षा समिति इसका प्रतिरूप होती है फिर भी प्रजातन्त्रीय राज्य के समकक्ष तन्त्र से इसकी कोई समानता नहीं की जा सकती क्योंकि यूनाईटेड किंगडम अथवा कनाडा में वर्दीधारी प्रधान सेनापति और सेनाध्यक्ष कैबिनेट रक्षा समिति के सदस्य नहीं होते, वे अधिक से अधिक सरकार के दक्ष व्यावसायिक सैनिक सलाहकार होते हैं। चीन में प्रधान सेनापति सैनिक परिषद् का केवल सदस्य ही नहीं वरन् वरिष्ठ उपाध्यक्ष भी होता है। राज्य के सर्वोच्च कार्यकारी अंग केन्द्रीय सरकार परिषद् में

1 राज्य के अंगों का वर्णन करते समय व्यक्तियों के नाम देने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी इस विशिष्ट मामले में राज्यतंत्र को ठीक ढंग से समझने के लिए यह कल्पना आवश्यक है कि क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् के मुख्यनेता केन्द्रीय जन सरकार परिषद् के भी नेता हैं। ऐसी परिस्थितियों में राज्य की सामान्य संरचना में न केवल सशस्त्र सेनाओं के महत्व का वरन् इस बात का संकेत करने के लिए भी कि वर्दीधारी व्यक्ति ही राज्य की अन्य उच्चतर कार्यकारी अंगों का नियंत्रण करते हैं, दोनों निकायों के सदस्यों के नाम नीचे दिए गए हैं :—

(1) जन क्रान्तिकारी सैनिक परिषद्

अध्यक्ष : माओ त्से-तुंग

उपाध्यक्ष : चू तेह (प्रधान सेनापति)

चेन चिन्ग काओ काग, लो-ची-रोन, लिन पिआओ

(2) केन्द्रीय जन सरकार परिषद्

अध्यक्ष : माओ त्से-तुंग

उपाध्यक्ष : चू तेह (प्रधान सेनापति)

लिउशाओ-ची सूंग चिंग लिंग ली-ची-शेन काओ कांग

वरिष्ठ उपाध्यक्ष होने के कारण राजनीतिक संरचना में उसके महत्व पर और भी बल दिया गया है।

सशस्त्र सेनाओं पर प्रधानमंत्री चाउ एन लाई की कैबिनेट सरकारी प्रशासन परिषद् का नियन्त्रण नहीं होता वरन् वे तो सीधे कैबिनेट के समान स्तर और शक्ति वाले निकाय जन सैनिक परिषद् के अधीन होती हैं। वास्तव में जन सैनिक परिषद् सरकारी प्रशासन परिषद् से कहीं अधिक सम्पन्न होती है क्योंकि पूर्वोक्त का अध्यक्ष माओ त्से तुंग और उपाध्यक्ष सरकारी प्रशासन परिषद् में प्रधानमंत्री चाउ एन लाई होता है। दोनों की उच्चस्तरीय सदस्यता एक समान होने के कारण नागरिक कैबिनेट (सरकारी प्रशासन परिषद्) और सैनिक कैबिनेट (जन क्रान्तिकारी सैनिक परिषद्) के मध्य संघर्ष की सभी सम्भावनाएं समाप्त हो गई हैं। सरकारी प्रशासन परिषद् में लगभग ६० सदस्य होते हैं। इनमें से प्रमुख एवं उच्चस्तरीय १२ सदस्य जन क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् के भी सदस्य होते है। अतः अभी तो संघर्ष की सम्भावना बिल्कुल नहीं है। फिर भी एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन संगठनों के सदस्य उच्चस्तरीय नेता वे लोग हैं जो जनमुक्ति सेना में लड़ चुके हैं और उसमें उन्हें उच्चपद प्राप्त था। सरकार को शक्ति द्वारा अपदस्थ किया गया था और माओ त्से-तुंग की सरकार परिवर्तन की सामान्य धाराओं से नहीं वरन् रणक्षेत्र में प्राप्त विजयों के फलस्वरूप सफलता प्राप्त हुई थी अतः ऐतिहासिक उद्गम के कारण उत्तराधिकारी सरकार में वर्दीधारी सदस्य होना स्वभाविक ही था। इस प्रकार मुक्ति सेना का संचालन करने वाले उच्चस्तरीय वर्दीधारी नेता अब आधुनिक सरकार के निर्माता और अधिकारी बन गए हैं। इस सरकार पर कोई असैनिक नियन्त्रण नहीं है।

नौसेना और वायुसेना

चीन का अभी तक नौसैनिक शक्ति के रूप में विकास नहीं हुआ है और उसकी वायुसेना का भी स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। रक्षा के नौसैनिक और वायुसेना पक्ष अभी तक स्थल सेनाओं के साथ संयुक्त हैं। समुद्रतटीय क्षेत्रों के लिए क्षेत्रीय सैनिक प्रशासन को नौसैनिक पक्ष सौंपा गया है। सोवियत रूस से विमान प्राप्त होने के फलस्वरूप वायुसेना का पर्याप्त विस्तार हुआ है और इसे अलग मान्यता प्राप्त होने वाली है। इस समय नौसेना और वायु सेना स्थल सेना के ही अंग हैं और उनपर क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् के अधीन एक एकीकृत संगठन का नियन्त्रण है। क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् के अधीन जनमुक्ति सेना के संगठन का विस्तृत चार्ट इस अध्याय के परिशिष्ट 'अ' में दिया गया है।

इस प्रकार नीतिनिर्माता और स्वीकृति प्रदान करने वाले रूसी तंत्र के समान चीनी संगठन में भी सशस्त्र सेनाओं के उच्चाधिकारी दक्ष स्तर पर नीति निर्माता होते हैं और उच्च स्तरीय सैनिक संगठन उन नीतियों को स्वीकृति प्रदान करता है। आधुनिक सेनाध्यक्षों की समिति के कार्य चीन की क्रान्तिकारी सैनिक परिषद् में उच्च राजनीतिक पदों पर आसीन सैनिक अधिकारियों द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं।

मुक्तिसेनाएं—चीनी साम्यवादी दल और स्थलसेना का राजनीतिक निर्देशन

सर्वाधिकारवाद की सर्वश्रेष्ठ परम्पराओं के अनुरूप चीन के साम्यवादी दल ने सशस्त्र सेनाओं के क्षेत्र में अपनी सदस्यता का मुक्त विस्तार किया है। स्वयं प्रधान सेनापति चू तेह माओ त्से-तुंग की अध्यक्षता वाली दल की केन्द्रीय समिति का वरिष्ठ उपाध्यक्ष है। जिस प्रकार सर्वोच्च सोवियत में राजनीति में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित सशस्त्र सेनाओं के अनेक सदस्य होते हैं, उसी प्रकार दल की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति और राज्य के अन्य अंगों में साम्यवादी जनरलों का प्रतिनिधित्व होता है। सेना की राजनीतिक शिक्षा का संगठन करने वाले राजनीतिक कमिसारों के माध्यम से दल सशस्त्र सेनाओं में अपने सिद्धान्तों का प्रसार करता है। एक राजनीतिक निदेशालय होता है जिसके कार्यालय चीनी सेना की सभी इकाइयों में पाए जाते हैं।

सैनिक परिषद् और सरकार के अन्य अंगों के मध्य राजनीतिक समन्वयन सरकारी प्रशासन परिषद् के प्रधानमन्त्री और सैनिक परिषद के एक उपाध्यक्ष चाउ-एन लाई द्वारा किया जाता है। यद्यपि इसका पहले भी वर्णन किया जा चुका है फिर भी यहां यह बता देना आवश्यक है कि माओ के अधीन कार्यरत सेना के राजनीतिक निदेशन का वही अध्यक्ष है।

चीन के सैनिक संगठन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष सेना से सम्बन्धित राजनीतिक पक्ष की पिरामिड जैसी संरचना है। उच्चतम स्तर से रेजीमेंट स्तर तक राजनीतिक निदेशन और प्रशिक्षण की व्यवस्था है। एक राजनीतिक कमिसार प्रत्येक संरचना से संयुक्त होता है और उसका कार्य विचारों की प्रवृत्तियों पर निगरानी रखना, राजनीतिक प्रशिक्षण संगठित करना और शिक्षा की देखभाल करना आदि है। चीन के सभी महत्त्वपूर्ण नेताओं का किसी न किसी समय इस प्रकार स्थल सेना से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जब १९२४ में बोरोडिन की सलाह पर व्हाम्पो अकादमी की स्थापना की गई तो चाउ एन लाई इसके राजनीतिक विभाग का निदेशक बना और १९२८ के पश्चात् भी क्रान्तिकारी सेना के साथ उसी रूप में चलता रहा। पी दी पी तथा अन्य राजनीतिक नेता भी सेना के साथ राजनीतिक कमिसार थे। इस बात पर बल देना आवश्यक है कि चीनियों के लिए स्थल सेना राजनीतिक प्रणाली का एक उपकरण है और इसलिए प्रत्येक स्तर पर इसका न केवल राजनीतिक नियन्त्रण वरन् उचित राजनीतिक प्रशिक्षण भी आवश्यक समझा जाता है।

जन आंदोलन विभाग चीनी सेनाओं का विशिष्ट लक्षण है। सेना सभी संगठित जन आन्दोलनों में भाग लेती है और इसे राजनीतिक शिक्षा का आवश्यक भाग समझा जाता है।

इस अध्याय के परिशिष्ट 'आ' में दिए गए जनमुक्ति सेना तन्त्र और सैनिक क्रान्तिकारी परिषद् की स्थिति का वर्णन करने वाले विस्तृत संगठनात्मक मानचित्र द्वारा राजनीतिक कमिसारों की संख्या का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। प्रमुख राजनीतिक कमिसार और उसके उपप्रमुख को मुक्ति सेना के प्रधान

सेनापति और उपप्रधान सेनापति के समकक्ष माना जाता है। सामान्यतया राजनीतिक विभाग के अधीन प्रमुख सैनिक क्षेत्रों के सचालकों के समान स्तर पर अधिकारियों का एक नियमित सोपान है। मानचित्र विभिन्न रणक्षेत्रीय सरचनाओं में अपने सचालकों और उनके सहकारियों के समकक्ष राजनीतिक कमिसारो की सख्या का उल्लेख करता है। यह कहना सत्य है कि चीन के सारे क्रान्तिकारी आन्दोलन मे स्थल सेना एक प्रभावी कारक थी। यह बात देश की सम्पूर्ण सावैधानिक प्रणाली में भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती है और भविष्य मे होने वाली चीन राज्य की राजनीतिक और सैनिक सरचना के विकास को भी इसने प्रभावित किया है।

आधुनिकतम प्रवृत्तियों की झलक :

१९५८ और उसके पश्चात्

चीन गणतत्र के राजनीतिक और सैनिक अगो का ऊपर दिया गया वर्णन कुछ मामलो मे अब पुराना पड चुका है और यद्यपि नवीनतम स्थिति का यथेच्छित सही-सही वर्णन करना सम्भव नही है फिर भी चीनी राज्य सगठन मे नवीनतम प्रवृत्तियो की कुछ झलक उपलब्ध हुई है जिससे दल के महत्त्व और राज्यतत्र के राजनीतिक और सैनिक चक्रो मे इसके द्वारा धीरे-धीरे स्थापित सर्वोच्चता का सकेत मिलता है। जब चीनी साम्यवादी दल की केन्द्रीय सम्मिति के वुहान मे २८ नवम्बर से १० दिसम्बर १९६८ तक हुए खुले अधिवेशन मे माओ त्से तुंग ने गणतत्र के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने की अपनी इच्छा व्यक्त की तो चीन मे एक महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन आया। फिर भी दल मे माओ की सर्वोच्च स्थिति बनी रही क्योंकि १९५९ के आरम्भ मे आधिकारिक रूप से यह घोषणा की गई कि अब से आगे वह अपनी शक्ति साम्यवादी दल के अध्यक्ष के उच्च आसन से नीति-निर्देशन सम्बन्धी प्रश्नो पर विचार करने मे केन्द्रित करेगा। वर्ष १९५४ का सविधान दल द्वारा आधिकारिक रूप से स्वीकार कर लिए जाने पर माओ सितम्बर १९५४ मे गणतत्र का अध्यक्ष चुना गया था। २ अप्रेल १९५९ को राष्ट्रीय जनकाग्रेस ने माओ के उत्तराधिकारी के रूप मे ल्यू शाओ ची को गणतत्र का अध्यक्ष चुना। चाउ एन लाई पुनः प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुआ और मार्शल चेन यी विदेशमन्त्री बना रहा। पुन. १७ सितम्बर १९५९ को चीन गणतत्र के राजनीतिक और सैनिक तन्त्र की कार्य प्रणाली को प्रभावित करने वाले अनेक राजनीतिक और सैनिक परिवर्तनो की घोषणा की गई। उदाहरणार्थ भूतपूर्व जनसुरक्षा मत्री लो जुई चिंग को जनरल हूआग के चाग के स्थान पर सशस्त्र सेनाओ का अध्यक्ष बनाया गया। यह ध्यान देने योग्य बात है क्योंकि इससे यह सिद्ध हो जाता है कि चीन मे मत्री और सशस्त्र सेनाओ के अध्यक्ष के पद एक दूसरे से विनिमयसाध्य हैं। यह भी सम्भव है कि उत्तरोक्त एक उच्चतर पद था जिस पर जन सुरक्षा मत्री को पदोन्नत किया गया। पेकिंग ने इन परिवर्तनो के लिए कोई कारण नहीं बताया फिर भी इनसे यह परिणाम

निकाला गया कि ये १९५८ के आगे तेज कदम आन्दोलन के दुष्परिणामों से उत्पन्न दल में पड़ी आंतरिक फूट का परिणाम थे और इनका उद्देश्य स्थल सेना पर साम्यवादी दल के नियंत्रण को कठोर बनाना था।[2]

यद्यपि संगठनात्मक अध्ययन में नीति सम्बन्धी विवाद और व्यक्तिगत ईर्ष्या का कोई स्थान नहीं है, फिर भी दल और सेना के मध्य सम्बन्धों की संगठनात्मक व्यवस्था को प्रभावित करने वाले आंतरिक विवादों का जिक्र करना आवश्यक जान पड़ता है। अपने वक्तव्य में ल्यू शाओ ची ने १९५९–६० के नीति विवाद का निम्नलिखित शब्दों में बड़े ही उपयुक्त ढंग से संक्षेप में वर्णन किया है—

कामरेड माओत्से तुंग ने बहुधा कहा है कि समाजवादी परिवर्तन और निर्माण के दो साधन हैं-एक के द्वारा काम अच्छा और शीघ्र होता है तथा दूसरे से धीरे-धीरे और इतना अच्छा नहीं। हमें कौनसा साधन अपनाना है, यही एक मात्र समस्या है।"

ऐसी सूचना मिली है[3] कि दल के द्वितीय उपाध्यक्ष और चीनी प्रधानमंत्री चाउ एन लाइ ने धीमी पर दृढ़ प्रगति का तथा साम्यवादी दल के प्रथम उपाध्यक्ष ल्यू शाओ ची ने सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को यथासम्भव तेजी से हांक कर शीघ्र और चमत्कारिक परिणाम प्राप्त करने का पक्ष लिया। गणतंत्र के अध्यक्ष पद पर ल्यू शाओ ची की नियुक्ति का सर्वप्रथम अर्थ है गणतंत्र के राजनीतिक एवं सैनिक संगठन के उच्च पदाधिकारियों पर दल की प्रमुखता स्थापित करना। भले ही चाउ एन लाई प्रधानमंत्री क्यों न हो वह दल का द्वितीय उपाध्यक्ष ही है। राज्य के साम्यवादी संगठन में चीनी प्रधानमंत्री की स्थिति और कार्यों पर विचार करते हुए दल और सरकार के सम्बन्धों के सारे ढांचे का परीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार यदि सामान्य ढाचे के अनुसार सरकारी तंत्र का संचालन सरकारी अधिकारियों द्वारा किया जाता है तो ऐसा लगता है कि चीनी प्रशासन में सरकार के कार्य का उत्तरदायित्व उतने ही महत्त्वपूर्ण ढंग से दल के अधिकारियों पर भी पड़ता है। ल्यू शाओ ची के अनुसार स्थानीय स्तर पर दल के स्थानीय अधिकारी आर्थिक विकास के नेता होने चाहिए"।[4] अतः साम्यवादी दल का सचिवालय सरकारी तंत्र के समानान्तर एक सरचना का संचालन करता है। सभी प्रभावी आर्थिक निर्णय दल में ही लिए जाते हैं और योजनाओं पर व्यवहार करने के लिए दल के साधनों का प्रयोग किया जाता है। अतः कुछ अर्थों में दलीय संगठन अधिक शक्तिशाली होता है। जैसी कि पत्र-पत्रिकाओं में सूचना दी गई है, यदि यह सत्य है कि आर्थिक नियोजन

---

२ देखिए संसार की घटनाओं का वार्षिक रजिस्टर, १९५१, पृष्ठ २५८

३ प्रशांत मामले, भाग ३१, सं० ४, दिसम्बर १९५८, पृ० ३३१, और कीसिंग के पुरालेख, १९५८-६०, पृ० १६८६३

४ प्रशांत मामले, भाग ३१, सं० ४ दिसम्बर १९५८ पृ० ३३२।

कार्य राज्य परिषद् से दलीय सचिवालय को हस्तांतरित कर दिया गया है तो दल को एक सांविधानिक मान्य स्थिति प्राप्त हो जायगी और यह सरकार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग बन जाएगा।[5]

थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ यही बात सैनिक संगठन पर भी लागू होती है। गणतंत्र के शुद्ध राजनीतिक अंगों पर दल के प्रभुत्व की अपेक्षा पूर्व इतिहास के कारण सेना के सम्बन्ध में दल के नेतृत्व को सुदृढ़ करना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ऐसी सूचना है कि आठवीं कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन के तुरत बाद साम्यवादी दल की सैनिक समिति का अधिवेशन हुआ था। उपरोक्त की उपस्थिति के विषय में कोई पूर्व सूचना नहीं थी। दल के महामंत्री ने इस सभा में जिसमें सभी महत्त्वपूर्ण सैनिक नेता उपस्थित थे, भाषण किया। १९५८ के सेना दिवस की स्मृति में लिखे अपने लेख में राज्य के उपाध्यक्ष मार्शल चू तेह ने सैनिक मामलों में दलीय नेतृत्व की आवश्यकता पर बल दिया है। राजनीति की उपेक्षा कर सैनिक तकनीक पर पूरा ध्यान केन्द्रित करने वाले लोगों की कड़ी आलोचना की गई। इस राजाज्ञा कि चीनी सेना के सभी अधिकारी चाहे उनका पद कितना ही उच्च क्यों न हो प्रत्येक वर्ष एक मास के लिए साधारण सैनिकों की भांति कार्य करेंगे ने राज्य के सैनिक मामलों में दल का प्रभुत्व असन्दिग्ध रूप से स्थापित कर दिया है।[6] जनमुक्ति सेना को सोवियत प्रारूप के अनुसार पूर्णतया आधुनिक सेना के रूप में परिवर्तित करना प्रमुख समस्या थी। ऐसा लगता है कि व्यवसायिकता और जनता से अलगाव से बचने के लिए तथा सशस्त्र सेनाओं पर दल के प्रभुत्व की प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए ही जनरल स्टाफ के अध्यक्ष सूयू के स्थान पर दलीय सचिवालय के सदस्य हुआंग को चेंग को नियुक्त किया गया। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि सशस्त्र सेनाओं के प्रमुख अधिकारी और प्रमुख राजनीतिक अधिकारी दोनों ही दलीय सचिवालय के सदस्य हैं। ये ही दो व्यक्ति रक्षा उपमंत्री भी होते हैं। इस प्रकार आन्तरिक संघर्ष के कारण मंत्रे ही चाउ की अपेक्षा त्यू की स्थिति अधिक मजबूत हो गई है यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि संगठन और सरकार के तरीकों के दृष्टिकोण से इसका अर्थ राज्य के राजनीतिक और सैनिक अंगों पर दलीय तंत्र की विजय है। संक्षेप में इस विवाद का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ है कि प्रशासन और सेना की अपेक्षा दल ने अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर ली है। इस बात का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि चीन का अत्यधिक शक्तिशाली दलीय सचिवालय एक दिन रूस की भांति देश के प्रभावी प्रशासन का सर्वशक्तिमान अंग बन

---

५ वही

६ जनमुक्ति सेना, राजनीतिक विभाग निदेश। २० सितम्बर १९५८ (नवचीन समाचार समिति)

जाएगा।[7] माओत्से तुंग की ११ मई १९६३ की इस नवीनतम घोषणा कि चीन की लगभग पच्चीस लाख सेना पर माओ त्से-तुंग और साम्यवादी दल का एक छत्र नियन्त्रण होगा से भी इस बात की पुष्टि हुई है।[8] पुनः ८ मई १९६३ को १९ नए नियम जारी किए गए जिन्हें समाचारपत्रों ने सेना में राजनीतिक कार्य को सुदृढ़ बनाने वाले महान और परम महत्त्व के नियम बताया। नियमों में कहा गया है कि राजनीतिक वैचारिक कार्य का स्थान प्रथम है और अस्त्र युद्ध में आवश्यक कारक तो हैं पर निर्णायक कारक नहीं—सामग्री की अपेक्षा जनता अधिक निर्णायक है। जनमुक्ति सेना के संगठन संबंधी माओ के अति पुराने सिद्धान्त को दोहराने वाला यह वक्तव्य तथा व्यावसायिक की अपेक्षा राजनीतिक नियन्त्रण पर बल देना सशस्त्र सेनाओं सहित राज्य के सारे तंत्र पर दल की प्रभुता सिद्ध करता है। जहां तक ज्ञात है माओ त्से-तुंग को चीनी संविधान में कोई राजनीतिक पद प्राप्त नहीं है, वह केवल साम्यवादी दल का सर्वोच्च अध्यक्ष है और इसी कारण समकालीन सरकार पर उसका सर्वोच्च नियन्त्रण है।

परिशिष्ट म (देखिये पृ. २६६ 'अ')

कामरेड पेंग तेह-हुआई (रक्षा मंत्री) का भाषण

साथियों !

कामरेड ल्यू शाओ ची के राजनीतिक प्रतिवेदन, राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के विकास की द्वितीय पंचवर्षीय योजना सम्बन्धी प्रस्तावों पर कामरेड चाउ एन लाई के प्रतिवेदन, तथा दल के संविधान के संशोधन संबंधी कामरेड टेंग हसिआओ-पिंग के प्रतिवेदन से मैं पूर्णतया सहमत हूं। दल की केन्द्रीय समिति के सैनिक मामलों के आयोग की ओर से अब मैं संक्षेप में सैनिक कार्य के विषय में कुछ कहूंगा।

१—चीनी जन मुक्ति सेना का सहासिक संघर्ष

चीनी जन मुक्ति सेना ने एक बड़ा लम्बा और कष्टकर मार्ग तय किया है। हमारी सेना बिना किसी पूर्वाधार से प्रारंभ हुई; एक छोटी सेना से कि विकसित होकर बड़ी सेना बनी और अनेक उतार चढ़ावों के पश्चात इसने अन्तिम विजय प्राप्त की।

अपनी स्थापना के तुरंत पश्चात् चीन के साम्यवादी दल ने कुओमिताग-साम्यवादी सरकार को समर्थन देकर विकसित किया और हमारे देश की १९२४-२७ की महान क्रान्ति में भाग लेकर इसका नेतृत्व किया। जब क्रान्तिकारी सेनाओं ने यांग्त्सी घाटी में प्रवेश किया और वहां किसानों और मजदूरों का आन्दोलन अत्यधिक विकसित हो उठा तो साम्राज्यी और सामन्ती सेनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कुओमिताग प्रतिक्रियावादियों ने अपनी नकाब उतार फेंकी और खुले रूप से क्रान्ति विरोधी हो गए। १९२७ के बसंत और ग्रीष्म के मध्य उन्होंने अपनी प्रतिक्रियावादी

---

७ प्रशांत मामले, भाग ३१, सं० ४ दिसम्बर, १९५८ पृ० ३२५।

८ हिन्दुस्तान टाइम्स, साप्ताहिक, १२ मई १९६३।

सैनिक क्रान्ति प्रारंभ करदी और इतिहास में अभूतपूर्व श्वेतभय दिखाकर क्रान्तिकारी सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। हजारों की सख्या मे साम्यवादी और क्रान्तिकारी मौत के घाट उतार दिए गए। फिर भी साम्यवादी दल और क्रान्तिकारियों को भयभीत नहीं किया जा सका। इसके विपरीत प्रतिक्रियावादियों के श्वेत आतंक के कारण सात्विक क्रोध से सुलगते हुए उन्होंने सशस्त्र विद्रोह कर दिया। इन सशस्त्र विद्रोहों में अति प्रसिद्ध नान-चाग विद्रोह, पतझड़ फसल विद्रोह, और कैन्टन विद्रोह के मध्य ही चीनी मजदूरों और किसानों की लाल सेना की स्थापना हुई।

अक्तूबर १९२७ मे पतझड़ फसल विद्रोह की सशस्त्र सेनाओं के एक भाग, जिसका नेतृत्व कामरेड माओ त्से-तुग कर रहा था, हूनान कियाग्सी सीमा पर चिंग काग पर्वत क्षेत्र मे घुस गया। वहाँ पर नानचाग विद्रोह की सशस्त्र सेनाओं का कुछ भाग जिसका नेतृत्व कामरेड चू तेह कर रहा था उनसे आ मिला। इस प्रकार चिंग काग पर्वत क्षेत्र को केन्द्र मान कर हूनान कियाग्सी सीमा क्षेत्र का क्रान्तिकारी आधार तैयार हो गया, हंसिया और हथौड़े के चिन्ह वाला लाल झण्डा लहरा उठा और स्थानीय अत्याचारियों को उखाड़ कर धरती के बटवारे का नारा गूँज उठा। यह आधार देश भर मे दल और जनता के संघर्ष का सही मार्गदर्शक दिशाचिन्ह बन गया। इस क्रान्तिकारी केन्द्र के प्रभाव मे साम्यवादी दल के नेतृत्व मे अनेक प्रान्तों और जिलों की जनता ने लाल सेना की गुरिल्ला इकाइयां सगठित करना, क्रान्तिकारी आधार स्थापित करना और कृषि आन्दोलन चलाना आरम्भ कर दिया। प्रतिक्रियावादियों के "घेरो और नष्ट करो," आन्दोलनों के विरुद्ध कठोर संघर्ष के लम्बे वर्षों मे जिनमे कुओमितांग सेना और जमींदारों की सेनाओं के बड़े भाग का सफाया हो गया, अनेक क्षेत्रों मे लाल सेना की गुरिल्ला इकाइयों के सैनिकों की संख्या बढ़कर तीन लाख हो गई और उन्होंने एक करोड़ से अधिक जनता मे क्रान्तिकारी आधार स्थापित कर दिए। फिर १९३१ मे हमारा दल वाग मिंग और पोकु के मिथ्या और भ्रमपूर्ण सिद्धान्तों के प्रभाव मे आगया और राजनीतिक एव सैनिक नीतियों मे वामपथी अवसरवाद की गम्भीर भूलें हुईं। परिणामस्वरूप वर्षों के कठोर परिश्रम और रक्तपात के मूल्य पर स्थापित क्रान्तिकारी आधार लगभग समाप्त हो गए और जन-सेना विनाश के कगार पर आ खड़ी हुई। महान ऐतिहासिक महत्त्व की कान्फ्रेन्स त्सुन्यी कान्फ्रेंस मे इस मिथ्या वामपथी नेतृत्व का सशोधन किया गया। और केन्द्रीय समिति मे कामरेड माओ त्से-तुंग का नेतृत्व दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गया इस प्रकार एक भयकर स्थिति टल गई तथा लाल सेना की आधारभूत युद्धकारी सेनाएँ सुरक्षित बच गईं। उपरिवर्णित काल की अग्निपरीक्षा ने हमारे दल को फौलाद बना दिया और इसने राजनीतिक और सैनिक सघर्ष का मूल्यवान अनुभव प्राप्त किया। इस प्रकार सम्पूर्ण दल और सम्पूर्ण सेना ने आधारभूत रूप मे सही सैनिक एव राजनीतिक दिशा का अनुभव कर लिया और इस अनुभव ने जापानी आक्रमण के विरुद्ध प्रतिरोधक युद्ध का सचालन करने की उपयुक्त स्थितियां पैदा करदीं।

१९३१ में हमारे देश के उत्तर पूर्वी क्षेत्र पर अधिकार करके जापानी साम्राज्यवादी उत्तरी चीन में आगे बढ़ते गए और ७ जुलाई १९३७ को उन्होंने हमारे देश के विरुद्ध बड़े पैमाने पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। हमारे दल ने एक बार पुनः कुओमिनतांग से सहकार किया और जापानी आक्रमण का प्रतिरोधक महान युद्ध आरम्भ करने के लिए लालसेना का आठवीं मार्ग सेना और नई चौथी सेना के रूप में गठन किया गया। केन्द्रीय समिति द्वारा लोचवान कांफ्रेंस में स्वीकृत नीति और कार्यक्रम के अनुसार हमारी सेना उत्तरी चीन और मध्यचीन के मोर्चे पर बढ़ती गई और शत्रु के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध करती रही। वहां हमने जापान विरोधी आधार स्थापित कर दिए और एक ऐसी प्रणाली लागू की जिसमें सरकारी प्रशासन के उच्चाधिकारी साम्यवादियों, दल से बाहर प्रगतिशील तत्वों और मध्यवर्ती तत्वों से समान संख्या में लिए गए। जापानी साम्राज्यवाद का सामना करने के लिए हमने जनता को संगठित किया और भूमि के लगान और ऋण के ब्याज में छूट प्राप्त करने तथा प्राकृतिक विपत्तियों के पश्चात पड़ने वाले अकाल से बचाव के सुधारवादी तरीके अपनाने में किसानों की सहायता की। हमारी सेना ने लड़ाइयों के बीच पड़ने वाले समय का जनता पर भार कम करने के लिए उत्पादन में हाथ बंटाने में सहयोग दिया। जापानी आक्रमण के प्रतिरोधक युद्ध के आठ वर्षों में जापानी आक्रमणकारियों के निरंतर "सफाया करो" अभियानों, उनके विविध अत्याचारों (सब को मारो, सब को जलाओ, और सब को लूटो) तथा जापानी आक्रमण-कारियों और कुओमिनतांग प्रतिक्रियावादियों की दोहरी मार के बावजूद हमारी सेना ने शत्रु की पिछली पंक्ति में अविचल रूप से जापान विरोधी गुरिल्ला युद्ध जारी रखा, जापान की आक्रमणकारी सेना के ६० प्रतिशत से अधिक और कठपुतली सेना के ९० प्रतिशत भाग से युद्ध किया और मुख्य युद्ध कारी सेना बन गई। युद्ध समाप्त होते-होते हमारी सेना की संख्या बढ़कर १३ लाख और जापान विरोधी आधारों की जन संख्या १६ करोड़ हो गई। इस प्रकार चीनी जनता के इतिहास में एक अभूतपूर्व क्रान्तिकारी सेना की रचना हुई।

युद्धकाल में चीनी जनता ने बहुत कष्ट सहे थे अतः युद्ध समाप्ति पर उन्होंने शान्ति और लोकतन्त्रीय सुधारों की तीव्र आवश्यकता पर बल दिया। चीनी जनता की मांग का प्रतिनिधित्व करने वाले हमारे दल ने चीन में शान्तिपूर्ण उपायों से लोकतन्त्रीय सुधार करने की आशा से कुओमिनतांग से बातचीत आरम्भ करदी। जनता को भ्रम में डालने और हमारी सेना के विरुद्ध एक घातक आक्रमण करने के लिये अपनी सेनाएं एक करने का समय प्राप्त करने के लिए पहले तो कुओमिनतांग प्रति-क्रियावादियों ने शान्तिप्रेमी होने का नाटक किया और हमारे साथ बातचीत चलाते रहे। फिर जैसे ही उन्होंने अपनी सेनाएं एकत्र करलीं उन्होंने अपना शान्तिप्रेमी मुखौटा उतार फेंका। अमरीकी साम्राज्यवादियों से सहायता और प्रोत्साहन पाकर

हमसे तीन गुनी सेना लेकर उन्होंने मुक्त क्षेत्रों के विरुद्ध बड़े पैमाने पर युद्ध छेड़ दिया। इस प्रकार चीनी जनता को दूसरे युद्ध में प्रवेश करना पड़ा। शान्तिपूर्ण उपायों से लोकतन्त्रीय सुधारों को लागू करने के मार्ग का अन्वेषण करने वाली हमारी केन्द्रीय समिति ने समझदारी से और समय रहते हमें जागरूकता में कमी करने अथवा हथियार रखने के विरुद्ध सावधान कर दिया। अतः जब प्रतिक्रान्ति-वादी कुओमिताग सशस्त्र सेनाओं ने मुक्त क्षेत्रों के विरुद्ध अपना सामान्य अभियान छेड़ा तो हमारी जनता और सशस्त्र सेनाएं धैर्यपूर्वक उनका प्रतिरोध करने के लिए संगठित हो गईं। कामरेड माओ त्से-तुंग द्वारा निर्धारित दस प्रमुख सैनिक सिद्धान्तों के निर्देशन में और देशभर की जनता के सहयोग से साढ़े तीन वर्ष की भयंकर लड़ाई में हमारी सेना ने शत्रु की ८० लाख सेना का विनाश कर दिया, ताइवान और कुछ अन्य द्वीपों के अतिरिक्त सारे देश को मुक्त करा लिया और युद्ध में पूर्ण विजय प्राप्त की।

सारे राष्ट्र की विजय के उपरान्त अपने लोकतन्त्रीय सुधारों की सुरक्षा एवं आर्थिक पुनर्निर्माण की सहायता हेतु हमारी सेना ने देश के अनेक भागों में सशस्त्र कुओमिनतांग एजेन्टों और स्थानीय लुटेरों का सफाया कर दिया और तेजी से बड़े पैमाने पर निःशस्त्रीकरण करके सैनिकों को नागरिक कार्यों में लगा दिया जिस से वे हर प्रकार के निर्माण कार्य में भाग ले सकें। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के वैज्ञानिक सिद्धान्त और चीनी क्रान्ति के मूर्त व्यवहार के आधार पर कामरेड माओ त्से तुंग ने चीनी क्रान्ति, चीन के क्रान्तिकारी युद्ध और हमारी सेना के निर्माण का बड़ा विस्तृत और सुन्दर विश्लेषण किया है। उसके लेखों ने सदैव हमारी सेनाओं का निर्देशन किया है और क्रान्तिकारी युद्ध के संचालन हेतु उनके सम्मुख एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि जहां कहीं भी दल की केन्द्रीय समिति और कामरेड माओ त्से-तुंग के सही नेतृत्व का अनुसरण किया गया वहीं क्रान्तिकारी युद्ध में हमारी सेना निरंतर विजयी हुई अन्यथा इसे गम्भीर क्षति उठानी पड़ी। १९३१ से १९३४ तक "वामपंथी" अवसरवादी दौर के परिणामस्वरूप हमारी सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी। इसके बाद चाग कुओ-ताओ की डरकर भागने और संबंध विच्छेद करने की नीति तथा दक्षिण अन्हुवे घटना से भी इसे हानि हुई। इन सब से हमने कटु ऐतिहासिक पाठ सीख लिया।

यह स्पष्ट है कि विजय प्राप्त करने और पराजय से बचने के लिए क्रान्तिकारी सेना को दल का सही नेतृत्व मिलना चाहिए। सारी सेना के अधिकारियों और जवानों में घनिष्ट संबंध होना चाहिए और उन्हें दृढ़तापूर्वक दल के सही नेतृत्व का अनुसरण करना चाहिए अन्यथा विजय प्राप्त करना असम्भव है।

विस्तृत जन समुदाय की सहायता और समर्थन के कारण भी चीनी जन-मुक्ति सेना ने विजय प्राप्त की। हमारी सेना और जनता के हित और आवश्यकताएं पूर्णतया एक समान थीं। जिस प्रकार मछली जल में रहती है, उसी प्रकार हम

जनता से घुल-मिल कर रहते थे। जनता के विस्तृत समुदाय को अपने अनुभव से ज्ञात था कि हमारी सेना का उद्देश्य उनकी मुक्ति और सुख के लिए लड़ना है। अपना भाग्य हमारी सेना के साथ जोड़ कर जनता ने इसे अपने "भाई और बेटों" की सेना माना।

इसी कारण जनता सेना के लिए जनशक्ति का भण्डार बन गई। युद्धकाल में जनता में पर्याप्त कार्य हो चुका था, अतः वह स्वेच्छा और उत्साह के साथ सेना में शामिल हो गई।

इसी कारण जनता स्वयमेव सेना के लिए भोजन और चारे की आपूर्ति का स्रोत बन गई। प्रत्येक घर परिवार हमारी सेना के लिए एक फैक्टरी, एक भण्डार या एक अस्पताल बन गया और इस बात का ध्यान रखने लगा कि हमारे सैनिकों के लिए वस्त्र, भोजन, आवास या यातायात की सुविधाओं का अभाव न रहे।

इसी कारण हमारे दल के नेतृत्व में जनता ने स्वेच्छा से आत्मरक्षा कोर और हमारी सेना के साथ-साथ मिल कर लड़ने के लिए नागरिक सेना संगठित की। उन्होंने सहसा आक्रमण किए और विध्वंसक छापे मारे, जासूसों और देशद्रोहियों को साफ कर दिया, टोह लेने का कार्य किया, घायलों को उठाकर ले गए, भोजन और युद्ध-सामग्री की ढुलाई की, मार्गदर्शकों के रूप में कार्य किया—इस प्रकार हमारी सेना को युद्ध में जनता से अनेक सेवाएं प्राप्त हुई।

जनमुक्ति सेना की विजय का कारण इसका जनता की अपनी सेना होना है। कामरेड माओ त्से-तुंग ने हमारे सैनिकों के विषय में कहा है: "वे थोड़े से व्यक्तियों या किसी छोटे गुट के स्वार्थी उद्देश्यों के लिए नहीं वरन् सारे राष्ट्र के हितों के लिए संगठित होकर साथ-साथ लड़े हैं। इन सेना का एकमात्र उद्देश्य है दृढ़तापूर्वक चीनी जनता का समर्थन करना और पूरे दिल से उसकी सेवा करना। हमारी सेना का इतिहास बताता है कि इसके पदनाम, कार्यों और शत्रुओं में अनेक परिवर्तन हुए हैं परन्तु जनसेना के रूप में इसका स्वरूप एक समान रहा है, और जनता की सेवा करने के अपने आदर्श से यह कभी विचलित नहीं हुई है।"

हमारी सेना जनता की सेना है अतः इसके सभी सदस्यों में उच्चकोटि की राजनीतिक जागरूकता और पहल की भावना है। वे जानते हैं कि वे किन व्यक्तियों और किन उद्देश्यों के लिए लड़ रहे हैं। संघर्ष में उनके उच्च क्रान्तिकारी आदर्श और स्पष्ट रूप से घोषित उद्देश्य हैं। इसी कारण वे इतनी वीरता और दृढ़ता से शत्रु पर आघात कर सके। उनमें न केवल निडरता और साहस था वरन् विशिष्ट स्थितियों के अनुकूल अनेक दांवपेंच खोज निकालने में भी उन्होंने उच्चकोटि की बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की। जापानी आक्रमण के प्रतिरोधक युद्ध के काल में भूमिगत युद्ध, मुक्तियुद्ध के काल में विध्वंसक आक्रमण, अमरीकी साम्राज्यवाद का प्रतिरोध करके कोरिया की सहायता करने के युद्धकाल में सुरंगों का युद्ध इन सब की खोज हमारे

अधिकारियों और जवानों ने की थी। इसी कारण उनमें राजनीतिक कर्त्तव्य की उच्च भावना है। भयंकर युद्ध में किसी अधिकारी के मरने अथवा घायल होने की स्थिति में उसके अधीन कोई अन्य अधिकारी या जवान अस्थायी रूप से उसकी कमान संभालने में सक्षम था। यदि किसी युद्धकारी इकाई में थोड़े ही व्यक्ति बच रहते तो भी वे अन्तिम जवान रहने तक युद्ध जारी रखते और कितनी भी भयंकर स्थिति क्यों न हो वे अन्त तक अपना सैनिक कर्त्तव्य पालन करते रहते थे।

जनसेवा होने के कारण हमारी सेना षड्यन्त्रों तथा शक्ति और लाभ के लिए छीन झपट से मुक्त है। सभी सैनिक चाहे वे नई या पुरानी किसी इकाई में क्यों न हों, चाहे वे अधिकारी हों या जवान जनता की सेवा के कार्य में एक जुट रहते हैं। विचारधारा में एक समान और कार्य में एक दूसरे के सहकारी होने के कारण अपने संयुक्त कार्यों को पूरा करने के लिए सदैव वे एक दूसरे की सहायता करते हैं।

हमारी सेना जनता की सेना है अतः हम सदैव जनता के हितों का ध्यान रखते हैं और उसके कल्याण के लिए उत्सुक रहते हैं। जहाँ कहीं भी और जब कभी भी संभव होता है हम कार्य और उत्पादन में और उनकी कठिनाइयाँ दूर करने में जनता की सहायता करते हैं। उनके रीति रिवाजों और आदतों का हम सम्मान करते हैं और कभी भी उनके हितों का अतिक्रमण नहीं करते हैं अतः। जहाँ कहीं भी हमारी सेना गई वह जनता के साथ घुल मिल कर रही और उनके साथ मिल कर इसने उनकी मुक्ति के लिए संघर्ष किया।

हमारी सेना जनसेना है अतः वह सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की अदमनीय भावना से ओतप्रोत है। लम्बे समय तक हमारी सेना उन शत्रुओं से लड़ती रही है जिन्हें अनेक सुविधाएं प्राप्त थीं। हमारा साज-सामान निम्न स्तर का था। युद्ध-सामग्री हमें कठिनाई से प्राप्त होती थी, हमारे पास अपर्याप्त भोजन और वस्त्र थे और हमारी चिकित्सा सुविधाएं विशेष रूप से अत्यल्प थीं। हमें कोई वेतन नहीं मिलता था और न ही आराम करने या एकत्र होने का कोई अवसर। लम्बे मार्च के समय हमने अविश्वसनीय कष्ट उठाये पर हमने किसी कष्ट के सामने घुटने नहीं टेके वरन् उन्हें वशीभूत करके सदैव उन पर विजय प्राप्त की।

संक्षेप में दल द्वारा सशस्त्र सेनाओं के सही नेतृत्व का दृढ़ता-पूर्वक पालन, जनता के साथ घनिष्ट संबंधों का निर्माण और जन क्रान्तिकारी सेना के गुणों का संरक्षण-मूल रूप से यही हमारी सेना की विजय के लिए उत्तरदायी रहे हैं। इसलिए हमारी सेना में किसी भी साथी के अहंकारी अथवा आत्मसंतोषी बन जाने की सम्भावना नहीं है। हरेक को कठोर परिश्रम करना है और ध्यान पूर्वक अपनी कमियों को दूर करके पूर्व विजयों के आधार पर प्रगति करनी है। केवल इसी प्रकार समाजवाद के महान काल में हम अपनी सेना के ऐतिहासिक उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं।

सेना के कार्य और इसके विकास के निदेशक सिद्धान्त

चीनी गणतन्त्र की स्थापना से हमारे देश में समाजवादी निर्माण और समाजवादी परिवर्तन का एक नया युग आरम्भ हुआ। इस नए युग में हमारी सेना के कार्य ये हैं : हमारे देश के समाजवादी निर्माण की रक्षा करना, इसकी सार्वभौमिकता, प्रादेशिक अखण्डता और सुरक्षा की रक्षा करना, ताइवान की मुक्ति के लिए तैयारी की स्थिति बनाए रखना, तथा देश में शान्ति और व्यवस्था को सुदृढ़ करना। इस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में शिथिलता आ रही है परन्तु अमरीकी साम्राज्यवादी आक्रामक क्षेत्रों ने अभी भी सैनिक आक्रमण की अपनी योजनाओं का त्याग नहीं किया है। वे हमारी जनता के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण नीति पर चल रहे हैं। उन्होंने ताईवान में हमारे प्रदेश पर अधिकार कर रखा है, लड़ाकू सैनिक गुटों का संगठन कर रहे हैं, हमारे देश के पड़ौस में सैनिक आक्रमण के लिए आधार बना रहे हैं और इन आधारों को नए-नए शस्त्रों से किलेबन्दी कर रहे हैं। इस प्रकार हमारी सेना का मुख्य कार्य साम्राज्यवादी आक्रमण से रक्षा करके हमारे देश के निर्माण को संरक्षित रखना है।

मुख्य भूमि की मुक्ति के तुरन्त बाद हमारे दल की केन्द्रीय समिति और हमारी सरकार ने स्पष्ट संकेत दिया है कि चीनी जनमुक्ति सेना को अपने मौलिक आधार पर एक शानदार और आधुनिक क्रान्तिकारी सेना बनाना है। ऐसी सेना का निर्माण करने में हमारा उद्देश्य साम्राज्यवादी आक्रमण से रक्षा करके हमारे देश की सुरक्षा निश्चित करना है। हमारा यही एकमात्र उद्देश्य है। आक्रमणकारी युद्ध छेड़ने की तैयारी करने के अपने अनुचित उद्देश्यों को छिपाने के लिए युद्ध की मनोवृत्ति वाले अमरीकी कुछ देशों को डरा कर अपने हाथ की कठपुतली बना रहे हैं तथा उन्हें और भी वशीभूत करने के लिए वे लोग जानबूझकर यह प्रचार कर रहे हैं कि हमारी सेना के निर्माण से इन देशों को खतरा पैदा हो जाएगा। परन्तु अफवाहों से सच्चाई नहीं छिप सकती। पिछले कुछ वर्षों से अनेक देशों की जनता और नेताओं ने हमारे देश के साथ निरन्तर सम्पर्क स्थापित करके धीरे-धीरे हमारी सरकार और जनता की शान्ति की सच्ची आशा और युद्ध की मनोवृत्ति वाले अमरीका के षड्यन्त्रों को पहचान लिया है। इस प्रकार अधिकाधिक देश हमारे साथ शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के लिए तैयार हैं। हमने किसी देश पर आक्रमण करने की न कभी इच्छा की है और न कभी ऐसा करेंगे। किसान-मजदूर संगठन पर आधारित हमारे समाजवादी देश का नेतृत्व मजदूर वर्ग के हाथ में है अतः कोई भी आक्रमण-कारी कार्य हमारे देश के आवश्यक स्वभाव के अनुकूल नहीं है। हमारे देश का समाजवादी स्वभाव ही हमारी शान्तिपूर्ण विदेशनीति और हमारी सेना की सामरिक रक्षा की आधारभूत नीति निर्धारित करता है। हम कभी दूसरों के विरुद्ध आक्रमण करने का अपराध नहीं करेंगे और न ही अपने पर आक्रमण सहन करेंगे। यदि कोई आक्रमणकारी गुट अपना विवेक त्याग कर हमारे देश के विरुद्ध आक्रमण-

कारी युद्ध छेड़ दे तो निश्चयपूर्वक हमारी सेना और हमारी जनता हथियार उठाकर दृढ़तापूर्वक युद्ध करेंगी और जब तक शत्रु का पूर्ण विनाश नहीं हो जाता तब तक उस पर आघात करती रहेंगी।

केन्द्रीय समिति द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा का निर्माण करने के लिए हमने पिछले सात वर्षों में अत्यधिक परिश्रम किया है।

वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हमारी सेना की इकतीस डिविजनों और आठ रेजीमेंटों को भग करके सामूहिक रूप से उत्पादन और निर्माण के कार्य पर लगा दिया गया है। नागरिक कार्यों के लिए स्थानान्तरित श्रेणियों तथा सेना से अलग किए गए सैनिकों सहित इनकी कुल सख्या ५० लाख है। इस समय नयी भरती को मिलाकर हमारी सेना की कुल सख्या देश की स्वतन्त्रता के समय की सख्या से लगभग २७ लाख कम है। १९६१ में सेनाओं पर व्यय राज्य के सम्पूर्ण व्यय का ४८% था पर १९५६ में इसे घटाकर १९.९८% कर दिया गया। युद्ध सामग्री की अन्तरराष्ट्रीय कमी के सोवियत सघ के प्रस्तावों से हम पूर्णतया सहमत हैं और यदि इस प्रश्न पर सहमति हो जाए तो हम अपनी सेनाओं को और भी कम करने को प्रस्तुत हैं।

पहले व्यावहारिक रूप से हमारी सेनाओं में केवल पदाति सैनिक ही थे, अब पदाति सेना को आधार बनाकर हम वायु सेना, नौसेना, वायुयान भेदी सेनाएँ, नागरिक सुरक्षा इकाइयाँ, सचार इकाइयाँ और रसायन युद्ध प्रतिरोधक इकाइयाँ गठित कर चुके हैं। इस प्रकार हमने सम्मिलित आयुधों की एक सेना तैयार करली है। हमारी सेना के गठन के पश्चात् यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है। हमारी सेना द्वारा लडाईयों के रिकार्ड में पदाति सेना ने अति महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है, हमारी सेना का यह आधारभूत अग है और आज भी इसका अनुपात सर्वाधिक है। परन्तु अब इसके साज-समान में आधारभूत परिवर्तन कर दिया गया है। तोपखाना और टैंक इकाइयाँ अति सुदृढ बनादी गई हैं तथा अन्य इकाईयों की तकनीकी साज-समान में भी सुधार किया गया है। आधुनिक युद्ध में वायु सेना और विमान भेदी सेनाएँ अति महत्त्वपूर्ण अग होती है। यद्यपि हमारी वायु सेना अभी तक बडी वायु शक्तियों के समान शक्तिशाली नहीं है, फिर भी हम इस मामले में अब बिलकुल कमजोर नहीं रहे है। आधुनिक साज-सामान सहित वायुयान भेदी सेनाओं की स्थापना की जा चुकी है। इसी प्रकार हमारी नौसेनाओं का भी विकास किया गया है। हमारी सेनाओं के आधुनिकीकरण को बहुत समय नहीं बीता है और अभी भी हमारी सारी सेनाएँ और आयुध पूर्णतया आधुनिक नहीं हो पाए हैं, पर हमारे देश में अभूतपूर्व पैमाने पर उनका आधुनिकीकरण हो चुका है। हमारे राष्ट्रीय आर्थिक निर्माण के तेजी से विकसित होने के कारण हमारी सेना का आधुनिकीकरण निश्चयपूर्वक आगे बढ़ेगा। यहाँ हमें अपने महानतम मित्र सोवियत सघ के प्रति

आभार प्रकट करना चाहिए क्योंकि उसने हमें भ्रातृत्व की भावना से सैनिक साज-सामान देकर हमारे राष्ट्रीय रक्षा उद्योग स्थापित करने में सहयोग दिया है।

सशस्त्र सेनाओं के तकनीकी साज-सामान में सुधार करने के साथ-साथ संचालकों की योग्यता बढ़ाने, साज-सामान का उपयोग सुधारने, और सभी श्रेणियों के सैनिकों की राजनीतिक जागरूकता एवं उनका वैज्ञानिक और सांस्कृतिक स्तर उन्नत करने के लिए सभी सेनाओं का नियमित प्रशिक्षण आरम्भ किया गया है। योग्य संचालकों और दक्ष तकनीशियनों के बिना सर्वश्रेष्ठ उपकरणों से पूर्ण लाभ नहीं प्राप्त किया जा सकता। अतः आधुनिक साज-सामान और आधुनिकीकृत संगठन होने के बावजूद ऐसा किया गया है। इसलिए पिछले कुछ वर्षों में अधिकारियों और सैनिकों का प्रशिक्षण हमारी सेना का नियमित केन्द्रीय कार्य बन रहा है। युद्ध का अनुभव रखने वाले सैनिकों की बड़ी संख्या को उच्च प्रशिक्षण प्रदान करने और आधुनिक युद्ध के सिद्धान्तों और तकनीक सम्बन्धी उनके ज्ञान को अति उच्चस्तर तक उठाने के लिए अनेक सैनिक अकादमियां और स्कूल खोले गये हैं। नवीनतम कार्यों और समाचारों से प्रकट होता है कि हमारी सेनाओं का प्रशिक्षण स्तर उन्नत करने में बड़ी प्रगति हुई है।

आधुनिक सेना की एक महत्त्वपूर्ण शर्त नियमित सैनिक प्रणाली है। हमारी सेना के आधुनिकीकरण के नियमितिकरण पर बल देना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पिछले वर्षों में हमारी सेना के विभिन्न स्थानों पर बिखरे होने के कारण इसकी सब इकाईयों के लिए एक समान सैनिक प्रणाली का अभाव था। नियमितिकरण का अर्थ है एकीकृत कमान और सैनिक संगठनों, प्रणालियों, प्रशिक्षण और अनुशासन में एकरूपता। इस प्रकार के नियम और निर्देश सारी सेना में लागू किए जा चुके हैं और सशस्त्र सेनाओं के प्रशिक्षण कार्य और जीवन में इनके परिणाम अच्छे हुए हैं।

हमारी सेना की सामरिक रक्षानीति पर व्यवहार सुनिश्चित करने और साम्राज्यवादियों द्वारा हम पर होने वाले किसी भी अचानक आक्रमण का सामना करने के लिए पिछले कुछ वर्षों से हमारी सेना अग्रिम राष्ट्रीय रक्षाशक्ति के साथ सामरिक महत्त्व के अनेक स्थानों पर रक्षा का आधुनिक निर्माण कार्य करती रही है। जब तक साम्राज्यवादी आक्रमणकारी गुट अपनी आक्रमणकारी योजनाएँ नहीं त्याग देता तब तक हम अपने रक्षा निर्माण कार्यों को सुदृढ़ और उन्नत करते रहेंगे।

हमें विश्वास है कि ऐसा रक्षा निर्माण कार्य होने तथा आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सजी जनसेना होने पर हमारे देश पर आक्रमण करने का साहस करने वाला कोई भी शत्रु अपने उद्देश्य में सफल नहीं होगा।

आधुनिक युद्ध में कार्यवाही के क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होने के कारण जन शक्ति और सामग्री के साधनों की बड़े पैमाने पर आवश्यकता पड़ती है। हम पर

अचानक होने वाले किसी भी साम्राज्यवादी आक्रमण से प्रभावी ढंग से रक्षा करने हेतु हमें अपनी स्थायी सेना और सुरक्षित सेना तथा शान्तिकालीन राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था और युद्ध कालीन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे समन्वयन की समस्याओ का विवेकपूर्ण समाधान करना चाहिये। जहाँ तक जन शक्ति का प्रश्न है हमे स्थायी सेना के साथ-साथ बड़ी संख्या मे अधिकारी और जवानो की सुरक्षित सेना रखना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने स्वेच्छा सेवा प्रणाली के स्थान पर आवश्यक सेवा प्रणाली एव सुरक्षित अधिकारियों और जवानो की भरती और प्रशिक्षण आरम्भ कर दिए है, धीरे-धीरे विश्वविद्यालयो और कालिजो में भी सैनिक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम आरम्भ किए जाएँगे। जहाँ तक सामग्री साधनो का संबंध है, युद्ध छिड़ने की दशा में प्रारंभिक आवश्यकतापूर्ति हेतु हमें निश्चित मात्रा में अस्त्र शस्त्र और अन्य सामग्री तैयार रखनी चाहिए। पूर्ण युद्धकाल में आवश्यक साज-सामान और सामग्री की बड़ी मात्रा में पूर्ति करने हेतु हमें राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को तुरन्त शान्तिकालीन उत्पादन से युद्धकालीन उत्पादन में बदलना होगा और युद्ध कालीन उत्पादन के लिए शान्ति-कालीन नागरिक उत्पादन की विभिन्न शाखाओ में सुरक्षित रखे गये आवश्यक साज सामान और तकनीकी कर्मचारियो पर निर्भर रहना पड़ेगा। शान्तिकाल में राष्ट्रीय आर्थिक योजना की पूरी तैयारी करके ही हम एक बार युद्ध छिड़ जाने पर युद्धकालीन उत्पादन को तुरन्त इसकी पूर्ण क्षमता तक पहुँचा सकते है और युद्धरत राष्ट्रीय सेनाओ को सामग्री का अक्षय भण्डार पहुंचाकर विजय सुनिश्चित कर सकते हैं। और यदि युद्ध न छिड़े तो अपनी वित्तीय शक्ति, सामग्री साधनो और जन शक्ति का आर्थिक निर्माण कार्य के लिए प्रयोग कर सकते है।

सक्षेप मे समाजवादी निर्माण के लिए हमारी जनता को दीर्घकालीन शान्ति-पूर्ण वातावरण की तथा समाजवादी निर्माण की रक्षा करने और आपातकालीन स्थिति का सामना करने के लिए एक आधुनिकीकृत क्रान्तिकारी सेना की आवश्यकता है। हमारा कार्य इन दो आवश्यकताओ मे उचित तालमेल बैठाना है। इसलिये हमे अपनी सेना के आधुनिकरण को आगे बढाना है और साथ ही राष्ट्रीय आर्थिक निर्माण की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखते हुए सैनिक निर्माण मे अत्यधिक मितव्ययिता बरत कर बर्बादी रोकना है। सैनिक उपायों पर व्यवहार करते समय हमे उत्पादन और रोजगार सम्बन्धी जनहितो पर ध्यानपूर्वक विचार करना है, जनता से घनिष्ट सम्बन्ध बनाए रखना है और एक क्रान्तिकारी सेना की परिश्रम, मितव्ययिता और साहस की परम्पराओं को आगे बढ़ना है। पिछले कुछ वर्षों मे हमने अपनी सेना के निर्माण मे आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। परन्तु अनुभव की कमी और स्थिति के अपर्याप्त अध्ययन के कारण हमारे कार्य मे कुछ गम्भीर दोष रह गए थे। उदाहरणार्थ पुर्ननिर्माण की आरम्भिक अवस्था में उन्नत तकनीकी साज-समाज की अत्यधिक माँग की प्रवृत्ति थी, सेना के नियमितीकरण और रक्षा निर्माण योजनाओ पर व्यवहारकाल मे ऐसे भी मामले हुए जिनसे

अधिकारियों और जवानों की अथवा जनता और सेना की एकता पर बुरा प्रभाव पड़ा, आधुनिकीकृत सेना के निर्माण में दूसरे देशों के अनुभव का लाभ उठाते समय वास्तविक स्थिति पर पर्याप्त विचार किए बिना अनुपयुक्त प्रशिक्षण और कार्य प्रणाली अपनाली गई है। इनमें से कुछ दोषों को दूर किया जा चुका है और हम इन्हें फिर से नहीं आने देंगे परन्तु कुछ दोष जो अभी तक दूर नहीं किए जा सके हैं, उन्हें दूर करना है। ऐसी आशा की जाती है कि स्थानीय दलीय समितियां सेना के कार्य का निरन्तर निरीक्षण एवं निर्देशन करेंगी।

III सशस्त्र सेनाओं के निर्माण में प्रयुक्त प्रणालियाँ

अपने अनुभव और सेना की वास्तविक स्थिति का अनुमान लगाकर सेना के आधुनिकीकरण के कार्य को पूरा करने के लिए हमें निम्नलिखित प्रणालियों का पालन करते रहना चाहिये :

(१) सेना के नेतृत्व की प्रणाली

चीनी जनमुक्ति सेना के नेतृत्व की आधारभूत प्रणाली दलीय समिति के सामूहिक नेतृत्व के अधीन सेना के नेताओं के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की प्रणाली है। नेतृत्व की यह प्रणाली हमारी सेना के व्यवहार में काफी प्रभावी सिद्ध हुई है।

सेना में साम्यवादी दल की समितियाँ सभी स्तरों पर लोकतंत्रीय केन्द्रीकरण के आधार पर गठित की गई हैं। दलीय समिति मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्तों के अनुरूप सेना पर अपना सामूहिक नेतृत्व बनाए रखती है। आपात्काल के अतिरिक्त जबकि सशस्त्र इकाईयों के नेता अपनी सक्षमता के अधीन अपने विवेकानुसार निर्णय ले सकते हैं, सभी महत्त्वपूर्ण मामलों यथा उच्चतर संगठनों द्वारा निर्मित महत्त्वपूर्ण निर्देश और आदेश, सैनिक योजनाएं और कदम, राजनीतिक और व्यूहरचना सम्बन्धी कार्य, श्रेणियों का आंवटन आदि पर दलीय समिति की सभाओं में लोकतन्त्रीय ढंग से विचार-विमर्श होता है जिससे सभी सदस्यों के सम्मिलित ज्ञान के आधार पर निश्चित निर्णय लिए जा सकें। बाद में ये निर्णय इकाईयों के सैनिक और राजनीतिक नेताओं को सौंप दिए जाते हैं जो इन पर व्यवहार कराने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

हमारी सेना में सैनिक संचालकऔर राजनीतिक अधिकारी दोनों ही नेता हैं। सेना के नेतृत्व के लिए वे संयुक्त रूप से उत्तरदायी हैं फिर भी इनके कार्य का विभाजन किया गया है। उच्चतर अधिकारियों द्वारा दिए गए आदेशों और निर्देशों तथा इसी स्तर की दलीय समितियों द्वारा लिए गए सैनिक मामलों सम्बन्धी निर्णयों को लागू करने का उत्तरदायित्व सैनिक संचालकों का है, राजनीतिक कार्य सम्बन्धी निर्णयों को लागू करने का उत्तरदायित्व राजनीतिक अधिकारियों का है।

दलीय समिति की सामूहिक नेतृत्व प्रणाली सेना में लागू करना आवश्यक है, क्योंकि ऐसा करने से ही सेना पर दल का नेतृत्व भली भाँति सुनिश्चित किया

जा सकता है, दल की नीतियों एवं राज्य के कानूनों और आदेशों पर व्यवहार निश्चित हो जाता है और नेता वर्ग में शुद्ध सैनिक दृष्टिकोण और व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति को रोका जा सकता है। केवल ऐसा करके ही हम व्यक्ति की योग्यता की कमी को सामूहिक ज्ञान के पूर्ण प्रयोग द्वारा पूरा कर सकते हैं और व्यक्ति के व्यक्ति-निष्ठ और एकांगी दृष्टिकोण को सुधार सकते हैं। ऐसा होने पर सभी कार्य, विशेष-कर सैनिक कार्यवाही गम्भीर विचार-विमर्श के पश्चात् सुदृढ़ आधार पर चलाई जा सकेगी। केवल ऐसा करके ही किसी इकाई के नेता सारी परिस्थिति को समझ कर किसी मामले में एकीकृत निर्णय पर पहुंच सकते हैं और इस प्रकार एक केन्द्रीकृत कमान, सेनाओं के एकीकृत कार्य और वास्तविक स्थिति के अनुसार लचीले तरीके से समस्याओं के उचित समाधान का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं।

अपने सामूहिक नेतृत्व को सुदृढ़ करने हेतु दलीय समिति को कार्य की लोक-तन्त्रीय प्रणाली को प्रश्रय देना चाहिये और व्यवहारिक कार्य में जनरेखा पर डटे रहना चाहिए। दलीय समिति को श्रेणियों के विस्तृत समूह से घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ाने चाहियें और कार्य की प्रगति का निरीक्षण करने हेतु सभी छोटे बड़ों को निम्नस्तर तक जाना चाहिए, जनता द्वारा प्राप्त अनुभव को संग्रहीत करके उसे लोकप्रिय बनाना चाहिए तथा आलोचना और आत्मालोचना द्वारा हमारे कार्य के दोष और गल्तियों को ठीक करना चाहिए। इस प्रकार हम दलीय समिति की उत्तरदायी श्रेणियों को जनता और वास्तविकताओं से विलग होने के कारण होने वाली नौकर-शाही और शुद्ध कमानवादी गल्तियों से बचा सकेंगे। एक बार किसी कार्य के सम्बन्ध में निर्णय हो जाने पर दलीय समिति को इकाइयों के नेताओं को अपनी पहल और रचनात्मक योग्यता का प्रयोग करके इस पर निस्संकोच व्यवहार करने की छूट देनी चाहिए और उनके कार्यों का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करना चाहिए। सब कुछ अपने हाथ में लेना और दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप करना दलीय समिति के लिए उचित नहीं है।

सेना में नेताओं के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की प्रणाली बनी रहनी चाहिए क्योंकि हमारी सेना युद्धकारी कार्यों को पूरा करने वाला एक सशस्त्र क्रान्तिकारी संगठन है। यदि युद्धजनित आपातकाल में किसी सशस्त्र इकाई के नेता दृढ़ता-पूर्वक उत्तरदायित्व वहन करने और समयानुकूल दृढ़ आदेश जारी करने में असफल रहते हैं तो संयुक्त शस्त्रों वाली उनकी सेना में अव्यवस्था फैल जाएगी और वे लड़ाई में असफल तक हो जायेंगे। हमारे कार्य में भी नेताओं द्वारा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व सम्भालने की अयोग्यता टालमटोल और विलम्ब को जन्म देगी। अतः कार्य विभाजन के अनुसार दलीय समिति के सामूहिक नेतृत्व के अधीन सभी स्तरों के नेताओं को दृढ़ता और उत्साहपूर्वक अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। यह सोचकर कि दलीय समिति के सामूहिक नेतृत्व ने नेताओं का उत्तरदायित्व कम कर दिया है, कार्य करना भी अनुचित है।

दलीय समिति के सामूहिक नेतृत्व और सशस्त्र सेनाओं के नेताओं के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के सामञ्जस्य पर आधारित नेतृत्व प्रणाली हमारी सेना में दीर्घ व्यवहार द्वारा काफी सुदृढ़ आधार पर स्थापित हो गई है। यदि हम इस प्रणाली के पूर्ण महत्त्व को समझें और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के मूल्य पर सामूहिक नेतृत्व या सामूहिक नेतृत्व के मूल्य पर व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर बल दिए बिना इस पर ठीक ढंग से व्यवहार करें तो यह सेना के एकीकृत और केन्द्रीकृत नेतृत्व को कमजोर करने की अपेक्षा उसे और भी प्रभावशील बनाएगी और आपात्काल में अवरोध पैदा करने के बदले कार्य में आवश्यक नवीनतम पैदा करेगी।

सेना के आधुनिकीकरण के साथ साथ हमारे पास विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र भी हो जायेंगे और तब इस प्रणाली के गुणों को बिना किसी अवरोध के पूर्ण विकास करने का अवसर देना अधिक आवश्यक हो जायगा।

(२) सेना में राजनीतिक कार्यप्रणाली

चीनी जनमुक्ति सेना के आरम्भ काल से ही चीनी साम्यवादी दल ने इसमें राजनीतिक कार्य की प्रणाली स्थापित की। हमें दल के सही नेतृत्व तथा सेना के राजनीतिक कार्यकर्ताओं, अधिकारियों और जवानों के प्रति आभार प्रकट करना चाहिए जिनके प्रयत्नों के कारण दीर्घकालीन युद्ध का सामना करते-करते हमारी सेना ने राजनीतिक कार्य के अनुभव का मूल्यवान भण्डार प्राप्त कर लिया। इसकी आंतरिक एकता को सुगठित करने, इसकी युद्धकारी योग्यता बढ़ाने, इसके लिए विस्तृत जनसमर्थन प्राप्त करने और क्रान्तिकारी युद्ध में भाग लेने को प्रोत्साहित करने, शत्रु सेना में विघटन पैदा करके और उनके जवानों को अपनी ओर मिलाकर अपनी विजय सुनिश्चित करने में इसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। राजनीतिक कार्य हमारी सेना की जीवन रेखा बन गया है।

सेना में राजनीतिक कार्य तत्त्वतः सेना में दल का कार्य है और दल के कार्यकारी संगठन ही राजनीतिक अंग है। राजनीतिक अंगों के माध्यम से, दल सारी सेना की राजनीतिक और वैचारिक शिक्षा को निर्देशित करता है, सभी सैनिकों में साम्यवादी विचारधारा और देशभक्ति की भावना भरता है, उनमें फैले गलत विचारों और कार्य करने के गलत ढंगों को सुधारता है, दल की केन्द्रीय समिति की राजनीतिक दिशा एवं राज्य के नियमों एवं कानूनों का पालन करने में सेना का नेतृत्व करता है, तथा सेना में दल और युवा संघ के संगठनों और सभी अधिकारियों और जवानों द्वारा उच्चतर संगठनों के आदेश और निर्देश पालन किए जाने में तथा सेना के अनेक कार्यों के विवेक एवं दृढ़तापूर्वक पूरा करने में उनका नेतृत्व करता है।

राजनीतिक कार्य से सेना के युद्धकारी कार्यों तथा अन्य प्रकार के कार्यों को सहायता मिलती है। सेना के प्राथमिक और विशिष्ट कार्यों के अनुरूप ही इसके राजनीतिक अंगों के कार्यों को परिभाषित करना चाहिए। अतीत में हमारी सेना

का प्राथमिक कार्य राष्ट्रीय लोकतंत्रीय क्रान्ति में विजय प्राप्त करना था। अबमे इसका कार्य साम्राज्यवादी आक्रमण से रक्षा करके हमारे देश के समाजवादी निर्माण को सुरक्षित रखना है। युद्धकार्यों के अतिरिक्त हमारी सेना के शान्ति-कालीन विशेष कार्य हैं: अपना निर्माण करना, युद्ध की स्थिति के लिये तैयार रहना, तथा प्रशिक्षण पर केन्द्रित अनेक दैनिक कार्य करना। वर्तमान समय में हमारी सेना के प्राथमिक और विशिष्ट दोनों प्रकार के कार्यों को पूर्णरूपेण सम्पन्न निश्चित करने के लिए सेना में हमारे राजनीतिक कार्य का विशिष्ट उद्देश्य है: सैनिकों को उचित राजनीतिक और वैचारिक शिक्षा प्रदान करना, अधिकारियों और जवानों की राजनीतिक जानकारी बढ़ाना, सेना में आंतरिक एकता तथा सेना और जनता की एकता को सुदृढ़ करना, प्रत्येक क्रान्तिकारी सैनिक की सूझ-बूझ और रचनात्मक शक्ति को विकास का पूर्ण अवसर देना, सेनाओं की युद्धकारी क्षमता बढ़ाना तथा साम्राज्यवादियों द्वारा सहसा होने वाले आक्रमणों के विरुद्ध उच्च जागरूकता बनाए रखना है।

राजनीतिक कार्य की सही भूमिका निश्चित करने के लिए सेना में इसे कमजोर करने अथवा इसका महत्व कम करने वाली प्रवृत्ति को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। साथ ही सेनामें राजनीतिक अंगों को विशिष्ट स्थान और अधिकार देने की दोषपूर्ण प्रवृत्ति भी समाप्त कर दी जानी चाहिए।

सैनिक विभागों के साथ समन्वयपरक सामंजस्य बनाए रखने के लिये राजनीतिक अंगों को पहल करनी चाहिए, उन्हें अधिकारियों और जवानों के सारे विकास को राजनीतिक कार्य के लिये सगठित करने का ढंग ज्ञात होना चाहिये। केवल इसी ढंग से राजनीतिक अंग अपनी भूमिका पूरी तरह अदा करते हुए अपना कार्य सम्पन्न कर सकते हैं।

आज की नई ऐतिहासिक परिस्थितियों में हमारी सेना के राजनीतिक कार्य-कर्त्ताओं को जन रेखा पालन करते हुए लोकतंत्र पर व्यवहार करने, वास्तविकताओं में गहरे उतर कर जनता से सहयोग करने तथा आलोचना और आत्मालोचना करने की कार्यप्रणाली को जीवित रख कर और भी विकसित करना चाहिए। साथ ही अपने को एक आधुनिकीकृत सेना की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल ढालने के लिए इन्हें सभी सैनिक कार्यवाहियों का पूर्ण परिचय प्राप्त करना चाहिए, अपनी-अपनी इकाइयों का तकनीकी स्तर और कार्य की वास्तविक स्थितियां जाननी चाहिये, अपने कार्य के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान नम्रतापूर्वक प्राप्त करना चाहिये तथा वास्तविकताओं से पलायन की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति से बचना चाहिए। इस प्रकार नवीन परिस्थितियों में सेना में राजनीतिक कार्य उत्साहपूर्वक चलाया जा सकता है।

(३) सेना में प्रजातन्त्र

दृढ़ क्रान्तिकारी अनुशासन से बंधा होने के साथ चीनी जनमुक्ति सेना

अत्यधिक विकसित लोकतन्त्रीय जीवन से भी अनुप्राणित है। अपने प्रारम्भकाल से हमने अपने सैनिकों को सरदारों की सेनाओं में व्याप्त स्वेच्छाचारिता से मुक्त रखा है और बड़े पैमाने पर कार्य करने के लोकतन्त्रीय उपाय स्वीकार किए हैं। १६२६ की कुटियन कान्फ्रेंस के पश्चात् लम्बे संघर्षकाल में केन्द्रीकृत नेतृत्व के अधीन धीरे-धीरे लोकतन्त्र लाया गया। दलीय समितियों द्वारा सामूहिक नेतृत्व और राजनीतिक कार्य की प्रणाली से इस प्रणाली का घनिष्ट और अविच्छेद्य सम्बन्ध है। लोकतंत्रीय जीवन की इस प्रणाली के अभाव में दलीय समितियों द्वारा सामूहिक नेतृत्व और राजनीतिक कार्य केवल कोरी औपचारिकतायें बनकर रह जाते हैं। इसके विपरीत दलीय समितियों के सामूहिक नेतृत्व और राजनीतिक कार्य द्वारा सुनिश्चित किए बिना केन्द्रीकृत नेतृत्व के अधीन सच्चा लोकतन्त्र असम्भव हो जाएगा।

जनमुक्ति का साधन होने के कारण ही हमारी सेना में लोकतन्त्र पर व्यवहार होता है। अपने संघर्ष में निम्न और उच्च पद के सैनिकों, अधिकारियों और जवानों तथा सेना और जनता सब के आधारभूत हित और उद्देश्य एक समान हैं। उनमें किसी भी प्रकार का वर्ग विरोध और व्यक्तिगत हितों के लिए आपसी झगड़े नहीं हैं।

६० करोड़ जनता को मुक्त कराने के महान उद्देश्य और युद्ध द्वारा प्रतिक्रान्तिकारी समस्त सेनाओं को विध्वस करने के कठिन कार्य का बीड़ा उठाने के कारण भी हमारी सेना में लोकतन्त्र पर व्यवहार किया जाता है। ऐसा करना मुट्ठी भर व्यक्तियों की शक्ति से परे है, इसके लिए सारी सेना में क्रान्तिकारी उत्साह और रचनात्मक योग्यता आवश्यक है। इसी कारण केन्द्रीकृत नेतृत्व के अधीन इस लोकतन्त्रीय प्रणाली पर व्यवहार करना आवश्यक है। हमने ऐसा किया है और ऐसा करते रहेंगे।

हमारी सेना में लोकतन्त्र के अनेक पहलू हैं। केवल दल और युवा लीग के जीवन में ही नहीं वरन् दैनन्दिन कार्य और सक्रिय सैनिक कार्यवाहियों में भी इसका अस्तित्व है। किसी भी महत्वपूर्ण कार्य पर दलीय समिति द्वारा सामूहिक विचार किए जाने और निर्णय लिए जाने के पश्चात् यदि आवश्यक होता है तो इसे जूनियर अधिकारियों और सैनिकों को विचार-विमर्श के लिए सौंप दिया जाता है तथा उनके उचित प्रस्ताव स्वीकार कर लिए जाते हैं। दूसरे शब्दों में लोकतन्त्रीय उपाय और जन-रेखा पर व्यवहार किया जाता है। सक्रिय सैनिक कार्यवाही के मामलों में हम परिस्थिति के अनुसार युद्धकारी कार्यों तथा विजय प्राप्त करने की शर्तों और साधनों का सभी अधिकारियों और सैनिकों के सम्मुख विश्लेषण करके उन्हें उन पर विस्तृत और अन्वेषक विचार-विमर्श के लिए प्रोत्साहित करते हैं ताकि सैनिक नेताओं की योजनायें और निश्चय साधारण सैनिक द्वारा भी अपने ही निश्चय और योजनाओं के रूप में स्वीकार कर लिये जायं। युद्ध समाप्त होने पर उनके अनुभवों

पर विचार करने तथा प्रत्येक अधिकारी और सैनिक के गुण-दोषों का लेखा जोखा रखने के लिए लोकतन्त्रीय सभाएँ आयोजित की जाती हैं। सम्पन्न हुए कार्य का अध्ययन और सारांश तैयार करने, विकसित अनुभव की संस्तुति करने तथा कमियों और भूलों की आलोचना करने के लिए दैनिक कार्यकाल में भी अनेक प्रकार की सभायें आयोजित की जाती हैं। अपने कार्य में सुधार करने हेतु न केवल वरिष्ठ अधिकारी कनिष्ठ अधिकारियों की आलोचना कर सकते हैं, वरन् कनिष्ठ अधिकारियों को वरिष्ठ अधिकारियों की और सैनिकों को अपने अधिकारियों की आलोचना करने का भी अधिकार है। वरिष्ठ अधिकारियों को कनिष्ठ अधिकारियों और सैनिक की सम्मति नम्रतापूर्वक सुननी पड़ती है और अपनी उचित आलोचना स्वीकार करनी पड़ती है। वे न तो आलोचना का दमन कर सकते हैं और न ही अपने आलोचकों के विरुद्ध बदले की कार्यवाही कर सकते हैं। यदि आलोचना और सम्मति गलत हो तो वे अपना स्पष्टीकरण दे सकते हैं। हमारा अनुभव है कि ऐसा लोकतन्त्र सम्बन्धित अधिकारियों की प्रतिष्ठा को हानि नहीं पहुँचाता, वरन् लोकतन्त्रीय नेतृत्व द्वारा निर्मित और जनता द्वारा स्वीकृत प्रतिष्ठा ही ऐसी प्रतिष्ठा है जो किसी भी कसौटी पर खरी उतरती है हमारी सेनामें अनुशासन भी मुख्यतया लोकतन्त्रीय साधनों द्वारा ही लागू किया जाता है। केवल बड़ी श्रेणियों द्वारा छोटी श्रेणियों का निरीक्षण और प्रतिबन्ध ही इसके अंग नहीं हैं वरन् जनता की आलोचना और स्वयं शिक्षा तथा उनमें प्रत्येक अपने को और सब मिलकर एक दूसरे को अनुशासित रखने की राजनीतिक जागरूकता बढ़ाकर भी इसे बनाए रखा जाता है। चाहे उच्च अधिकारियों का निरीक्षण हो अथवा न हो, चाहे शान्तिकाल हो अथवा युद्धकालीन अत्यन्त जटिल और कठिन परिस्थितियाँ हो यह स्वैच्छिक आत्मानुशासन सदैव बना रहता है।

अतीत में हमारे कुछ साथियों ने सेनामें लोकतन्त्र विकसित करने को अधिक महत्व नहीं प्रदान किया। हमने इस भूल की कड़ी आलोचना की और इसके विरुद्ध कठोर संघर्ष किया है। वर्तमान काल में जब हमारी सेना में आधुनिकीकरण और नियमितिकरण की प्रक्रिया चल रही है, हमारे कुछ अन्य साथियों में हमारी लोकतन्त्रीय जीवन प्रणाली के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया है क्योंकि उनका विचार है कि आधुनिक युद्ध में कमान सम्बन्धी उच्चस्तरीय केन्द्रीयकरण के कारण लोकतन्त्र पर बल देना आवश्यक नहीं है। यह उचित नहीं है। इन साथियों को इस बात का अनुभव नहीं है कि आधुनिकीकरण और नियमितिकरण ने हमारी सेना के तत्वतः जन सेना स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं किया है, उच्च विकसित लोकतन्त्र के आधार पर ही उच्चस्तरीय सच्चे केन्द्रीयकरण का निर्माण किया जा सकता है, जोर जबरदस्ती द्वारा लाया गया केन्द्रीयकरण नकली है और किसी भी कसौटी पर खरा नहीं उतरता अतः अपनी सेनाओं का आधुनिकीकरण और नियमितिकरण करते समय हमें

अत्यधिक विकसित लोकतन्त्रीय जीवन से भी अनुप्राणित है। अपने आरम्भकाल से हमने अपने सैनिकों को सरदारों की सेनाओं में व्याप्त स्वेच्छाचारिता से मुक्त रखा है और बड़े पैमाने पर कार्य करने के लोकतन्त्रीय उपाय स्वीकार किए हैं। १६२६ की कुटियन कान्फ्रेंस के पश्चात् लम्बे समयकाल में केन्द्रीकृत नेतृत्व के अधीन धीरे-धीरे लोकतन्त्र लाया गया। दलीय समितियों द्वारा सामूहिक नेतृत्व और राजनीतिक कार्य की प्रणाली से इस प्रणाली का घनिष्ट और अविच्छेद्य सम्बन्ध है। लोकतंत्रीय जीवन की इस प्रणाली के अभाव में दलीय समितियों द्वारा सामूहिक नेतृत्व और राजनीतिक कार्य केवल कोरी औपचारिकतायें बनकर रह जाते हैं। इसके विपरीत दलीय समितियों के सामूहिक नेतृत्व और राजनीतिक कार्य द्वारा सुनिश्चित किए बिना केन्द्रीयकृत नेतृत्व के अधीन सच्चा लोकतंत्र असम्भव हो जाएगा।

जनमुक्ति का साधन होने के कारण ही हमारी सेना में लोकतन्त्र पर व्यवहार होता है। अपने संघर्ष में निम्न और उच्च पद के सैनिकों, अधिकारियों और जवानों तथा सेना और जनता सब के आधारभूत हित और उद्देश्य एक समान हैं। उनमें किसी भी प्रकार का वर्ग विरोध और व्यक्तिगत हितों के लिए आपसी झगड़े नहीं हैं।

६० करोड़ जनता को मुक्त कराने के महान उद्देश्य और युद्ध द्वारा प्रतिक्रान्तिकारी सशस्त्र सेनाओं को विध्वंस करने के कठिन कार्य का बीड़ा उठाने के कारण भी हमारी सेना में लोकतन्त्र पर व्यवहार किया जाता है। ऐसा करना मुट्ठी भर व्यक्तियों की शक्ति से परे है, इसके लिए सारी सेना में क्रान्तिकारी उत्साह और रचनात्मक योग्यता आवश्यक है। इसी कारण केन्द्रीकृत नेतृत्व के अधीन इस लोकतन्त्रीय प्रणाली पर व्यवहार करना आवश्यक है। हमने ऐसा किया है और ऐसा करते रहेंगे।

हमारी सेना में लोकतन्त्र के अनेक पहलू हैं। केवल दल और युवा लीग के जीवन में ही नहीं वरन् दैनन्दिन कार्य और सक्रिय सैनिक कार्यवाहियों में भी इसका अस्तित्व है। किसी भी महत्वपूर्ण कार्य पर दलीय समिति द्वारा सामूहिक विचार किए जाने और निर्णय लिए जाने के पश्चात् यदि आवश्यक होता है तो इसे जूनियर अधिकारियों और सैनिकों को विचार-विमर्श के लिए सौंप दिया जाता है तथा उनके उचित प्रस्ताव स्वीकार कर लिए जाते हैं। दूसरे शब्दों में लोकतन्त्रीय उपाय और जन-रेखा पर व्यवहार किया जाता है। सक्रिय सैनिक कार्यवाही के मामलों में हम परिस्थिति के अनुसार युद्धकारी कार्यों तथा विजय प्राप्त करने की शर्तों और साधनों का सभी अधिकारियों और सैनिकों के सम्मुख विश्लेषण करके उन्हें उन पर विस्तृत और अन्वेषक विचार-विमर्श के लिए प्रोत्साहित करते हैं ताकि सैनिक नेताओं की योजनायें और निश्चय साधारण सैनिक द्वारा भी अपने ही निश्चय और योजनाओं के रूप में स्वीकार कर लिये जायं। युद्ध समाप्त होने पर उनके अनुभवों

पर विचार करने तथा प्रत्येक अधिकारी और सैनिक के गुण-दोषों का लेखा जोखा रखने के लिए लोकतन्त्रीय सभाएँ आयोजित की जाती हैं। सम्पन्न हुए कार्य का अध्ययन और सारांश तैयार करने, विकसित अनुभव की सस्तुति करने तथा कमियों और भूलों की आलोचना करने के लिए दैनिक कार्यकाल में भी अनेक प्रकार की सभायें आयोजित की जाती हैं। अपने कार्य में सुधार करने हेतु न केवल वरिष्ठ अधिकारी कनिष्ठ अधिकारियों की आलोचना कर सकते हैं, वरन् कनिष्ठ अधिकारियों को वरिष्ठ अधिकारियों की और सैनिकों को अपने अधिकारियों की आलोचना करने का भी अधिकार है। वरिष्ठ अधिकारियों को कनिष्ठ अधिकारियों और सैनिक की सम्मति नम्रतापूर्वक सुननी पड़ती है और अपनी उचित आलोचना स्वीकार करनी पड़ती है। वे न तो आलोचना का दमन कर सकते हैं और न ही अपने आलोचकों के विरुद्ध बदले की कार्यवाही कर सकते हैं। यदि आलोचना और सम्मति गलत हो तो वे अपना स्पष्टीकरण दे सकते हैं। हमारा अनुभव है कि ऐसा लोकतन्त्र *सम्बन्धित अधिकारियों की प्रतिष्ठा को हानि नहीं पहुँचाता, वरन् लोकतन्त्रीय* नेतृत्व द्वारा निर्मित और जनता द्वारा स्वीकृत प्रतिष्ठा ही एसी प्रतिष्ठा है जो किसी भी कसौटी पर खरी उतरती है हमारी सेनामें अनुशासन भी मुख्यतया लोकतन्त्रीय साधनों द्वारा ही लागू किया जाता है। केवल बड़ी श्रेणियों द्वारा छोटी श्रेणियों का निरीक्षण और प्रतिबन्ध ही इसके अंग नहीं हैं वरन् जनता की आलोचना और स्वयं शिक्षा तथा उनमें प्रत्येक अपने को और सब मिलकर एक दूसरे को अनुशासित रखने की राजनीतिक जागरूकता बढ़ाकर भी इसे बनाए रखा जाता है। *चाहे उच्च अधिकारियों का निरीक्षण हो अथवा न हो,* चाहे *शान्तिकाल हो* अथवा युद्धकालीन अत्यन्त जटिल और कठिन परिस्थितियाँ हों यह स्वेच्छिक आत्मानुशासन सदैव बना रहता है।

अतीत में हमारे कुछ साथियों ने सेनामें लोकतन्त्र विकसित करने को अधिक महत्व नहीं प्रदान किया। हमने इस भूल की कड़ी आलोचना की और इसके विरुद्ध कठोर संघर्ष किया है। वर्तमान काल में जब हमारी सेना में आधुनिकीकरण और नियमितिकरण की प्रक्रिया चल रही है, हमारे कुछ अन्य साथियों में हमारी लोकतन्त्रीय *जीवन प्रणाली के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया है क्योंकि उनका विचार है कि* आधुनिक युद्ध में कमान सम्बन्धी उच्चस्तरीय केन्द्रीयकरण के कारण लोकतन्त्र पर बल देना आवश्यक नहीं है। यह उचित नहीं है। इन साथियों को इस बात का अनुभव नहीं है कि आधुनिकीकरण और नियमितिकरण ने हमारी सेना के तत्वतः जन सेना स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं किया है, उच्च विकसित लोकतन्त्र के आधार पर ही उच्चस्तरीय सच्चे केन्द्रीयकरण का निर्माण किया जा सकता है, और जबरदस्ती द्वारा लाया गया केन्द्रीयकरण नकली है और किसी भी कसौटी पर खरा नहीं उतरता अतः अपनी सेनाओं का आधुनिकीकरण और नियमितिकरण करते समय हमें

लोकतंत्र को कमजोर करने वाली प्रवृत्ति के विरुद्ध लड़ना चाहिए तथा लोकतंत्र को विकसित करके उसे और भी सुदृढ़ बनाना चाहिए।

(iv) अध्ययन का प्रश्न

किसी आधुनिक क्रान्तिकारी सेना को न केवल आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक से वरन् मार्क्सवाद-लेनिनवाद और अद्यतन सैनिक विज्ञान से भी सुसज्जित होना चाहिए। आधुनिक सैन्य विज्ञान में विज्ञान की कई शाखाओं का सम्मिश्रण है अतः किसी आधुनिक क्रान्तिकारी सेना के अधिकारियों को विज्ञान, संस्कृति, तकनीक और आधुनिक युद्ध के नियमों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, और इसी क्षेत्र में हम सर्वाधिक पिछड़े हुए हैं। अतः अध्ययन हमारा प्रमुख कार्य है और इसे अन्य सब कार्यों पर प्राथमिकता प्राप्त है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद और कामरेड माओ त्से-तुंग की रचनाओं के गहन अध्ययन के अतिरिक्त हमें आधुनिक सैनिक विज्ञान और तकनीक, युद्ध में आधुनिकीकृत सेना की कमान सचालन की कला और नई सैन्य प्रणालियों का भी गहन अध्ययन करना चाहिये। इन विषयों के अध्ययन हेतु अधिक प्रयत्न किए बिना हम आधुनिक अस्त्रों के प्रयोग में प्रवीण नहीं हो सकते और न ही युद्ध में किसी आधुनिकीकृत सेना की कमान सम्भाल सकते हैं, और इसके परिणामस्वरूप हम अपनी सेना को सर्वोत्तम आधुनिकीकृत क्रान्तिकारी सेना नहीं बना सकेंगे।

अपनी सेना का आधुनिकरण आरम्भ करते समय हमने सोवियत सेना के विकसित अनुभव के पूर्णतम अध्ययन पर बल दिया था। यह उचित ही था और पिछले कुछ वर्षों में हमने इस दिशा में पर्याप्त महान उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार में सर्वाधिक विकसित और आधुनिकीकृत क्रान्तिकारी सेना होने के कारण सोवियत सेना का विकसित अनुभव अभी भी हमारे अध्ययन का मुख्य विषय होगा। सोवियत सेना के पास उच्च कोटि का सैन्य विज्ञान, प्रथम श्रेणी की सैन्य तकनीक और युद्ध में आधुनिक सेनाओं की कमान सम्भालने के अनुभव का मूल्यवान भण्डार है। सोवियत सेना के विकसित अनुभव का लाभ उठाने के लिए अत्यधिक परिश्रम करके हम बार बार गलती करके सीखने की प्रक्रिया को संक्षिप्त कर सकते हैं, चक्करदार मार्ग से आगे बढ़ने से बच सकते हैं और अपनी सेना का आधुनिकरण शीघ्रता पूर्वक कर सकते हैं। निस्सन्देह हमें अन्य मित्र देशों की सेनाओं के विकसित अनुभव से भी लाभ उठाना चाहिये। इसके साथ ही हमें पूंजीवादी देशों के सैनिक मामलों का भी अध्ययन करना चाहिये जिनसे हम उनके यहाँ होने वाली प्रगति और अपनी प्रगति से परिचित हो जाय। उनकी तकनीकी विज्ञान में जो कुछ भी हमारे लिए उपयोगी है हमें उसका भी अध्ययन करना चाहिये।

विदेशों के सैनिक अनुभवों से लाभ उठाते समय हमें नम्र विद्यार्थियों की भांति व्यवहार करना चाहिये। विनम्रता के बिना हम न तथ्यों की तह तक पहुँच सकते हैं और न ही कुछ प्राप्त कर सकते हैं। यह सब सोचकर कि हमने आसानी

सेनाओं और साम्राज्यवादियों द्वारा शस्त्र-सज्जित कुओमितांग सेनाओं को हराया तथा चीनी जन स्वयं सेवकों ने कोरिया में अमरीकी सेनाओं को हराया, हमारे कुछ साथियों को अभिमान और आत्मसन्तोष हो गया है और वे सोचने लगे हैं कि अब या भविष्य में किसी भी आपात्कालीन स्थिति का सामना करने के लिये हमें पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो गया है और हमें अन्य लोगों के गुणों से कुछ भी सीखना बाकी नहीं है। यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है। पर क्या इसका यह अर्थ है कि हम अब तक के अपने सारे अनुभव को समाप्त कर दें ? नहीं, हमें इस अनुभव के भण्डार की समाप्ति करने की आवश्यकता नहीं है, हमें तो इसे सुरक्षित रख कर और भी गहन बनाना चाहिए। उदाहरणार्थ क्रान्तिकारी युद्ध के दीर्घकाल में निर्धारित हमारी सेना के निर्माण और युद्ध संचालन को निर्देशित करने वाले सिद्धान्त तथा कोरिया के युद्ध में चीनी जन स्वयंसेवकों द्वारा प्राप्त अनुभव अभी भी बड़े लाभदायक होंगे। अपने अध्ययन में हमें अपनी सेना के ऐतिहासिक अनुभव का विदेशों के विकसित सैनिक अनुभव से समन्वय करना चाहिए।

विदेशों के सैनिक अनुभव का उपयोग करते समय हमें विश्लेषणात्मक, आलोचनात्मक एवं तथ्यपरक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए अन्धविश्वास अथवा अन्धानुकरण की प्रवृत्ति से बचना चाहिए। सभी मूर्त अनुभव चाहे विदेशों के हों या हमारे अपने, समय, स्थान और अन्य अनेक विशिष्ट स्थितियों से प्रभावित होते हैं अतः ऐसा करना आवश्यक है। विदेशों के लिए जो कुछ उचित रहा है वह हमारी सेना की विशिष्ट स्थिति में उचित या पूर्णतया उचित नहीं भी हो सकता, यही नहीं वरन् अतीत में जो कुछ हम उचित समझते थे वह भी अब या भविष्य में परिस्थितियाँ बदल जाने के कारण बिल्कुल गलत या थोड़ा बहुत सही सिद्ध हो सकता है। अतः वास्तविक परिस्थितियों का विश्लेषण और जाँच-पड़ताल किए बिना हम अविवेकपूर्वक और जल्दीबाजी में सब कुछ क्यों अपनालें ? इस दृष्टि से परीक्षण करने पर महान उपलब्धियों के बावजूद हमारे अध्ययन में गम्भीर कमियाँ दिखाई पड़ती हैं। हमारी सेना द्वारा स्वीकृत नियम और प्रणालियाँ तथा पिछले कुछ वर्षों में इसके द्वारा प्रयुक्त शिक्षा के साधन मुख्यतया व्यावहारिक हैं परन्तु कुछ मामलों में हमने अपनी सेना के ऐतिहासिक गुणों और इसकी वास्तविक स्थिति पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है वरन् एक सिद्धान्तवादी और औपचारिक दृष्टिकोण अपनाकर अपनी सेना की सुन्दर परम्पराओं को हानि पहुँचाई है तथा सेना की आंतरिक एकता एवं सेना और जनता की एकता को प्रभावित किया है। अतः इस गलत प्रवृत्ति का परिष्कार करके हमें अपने अध्ययन में अधिक व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिये।

अतीत में वास्तविकता एवं जनता से शिक्षा ग्रहण करना हमारा आधारभूत उपाय था। पिछले कुछ वर्षों में हमारे कुछ साथियों ने इस उपाय को भुला दिया है। ये वास्तविकता की गहराई में झांकने अथवा इसे समझने और इसका अध्ययन

करने का प्रयत्न नहीं करते, जिस वास्तविक परिस्थिति से उन्हें परिचित होना चाहिये उस पर उनका अधिकार नहीं तथा जनता के रचनात्मक कार्य से वे पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। हमें याद रखना चाहिये कि जन-व्यवहार ज्ञान का स्रोत और सत्य का मापदण्ड है। वास्तविकता में गहरे पैठ कर ही कोई व्यक्ति इसमें विद्यमान कठिनाइयां और असगतियां देख सकता है एवं इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने और इन असगतियों का समाधान करने के सिद्धान्त और उपाय खोज सकता है। वास्तविकता मे गहरे पैठकर ही हम अपने नियमों, प्रणालियों, आदेशों और निर्देशों की सत्यता की सीमा जान सकते हैं और उन्हें उन्नत करने का आधार खोज सकते हैं। वास्तविकता मे गहरे पैठकर ही हम जनता द्वारा निर्मित नई वस्तुओं की खोज और उनकी महत्ता के सम्बन्ध में व्यक्तिगत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, इन बिखरी हुई और अव्यवस्थित नवीन रचनाओं को व्यवस्थित कर सकते हैं तथा वास्तविक अनुभव और पुस्तकीय ज्ञान में समन्वय स्थापित कर सकते हैं।

हमारी सेना के पास सैन्य-निर्माण और युद्ध सम्बन्धी अनुभव का मूल्यवान भण्डार हैं। विनम्र और परिश्रमी विद्यार्थियों की भांति व्यवहार करते हुए यदि हम अपने अध्ययन के तरीकों, अन्धानुकरण और जनता से अलगाव के दोषों को सुधार लें तो हमें विश्वास है कि हम सोवियत सघ तथा अन्य देशों के विकसित सैनिक अनुभव का सफलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त करके इसका अपनी सेना के ऐतिहासिक और आधुनिकीकरण के व्यवहारिक अनुभव से समन्वय कर सकेंगे जिससे धीरे-धीरे हमारे देश की वास्तविक परिस्थिति के अनुकूल एक आधुनिक सैन्य-विज्ञान का निर्माण हो सके।

साथियों, दल की आठवी कांग्रेस की सफलता सारी चीनी जनता के लिए नई विजयों की ओर बढ़ने के मार्ग में एक विभाजन-बिन्दु सिद्ध होगी। कांग्रेस की सफलता से प्रेरणा प्राप्त कर चीनी जनमुक्ति सेना आधुनिकीकरण, ताईवान की मुक्ति और मातृभूमि की रक्षा के गौरवपूर्ण कार्य अधिक प्रभावी ढग से सम्पन्न करेगी। यदि हमारी सेना मे सभी साथी अपनी पूर्ण शक्ति से कार्य करें, विनम्र और समझदार बनें, अभिमान और जल्दबाजी से बचें, परिश्रमपूर्वक अध्ययन करें और हमारी कमियों पर विजय प्राप्त करें तो दल और सरकार के नेतृत्व मे जनता और देश की शक्तिशाली आर्थिक शक्तियों के समर्थन से हम निश्चयपूर्वक इन गौरवपूर्ण कार्यों को सम्पन्न कर सकेंगे। संसार की शान्ति की रक्षा के लिए संघर्ष का संचालन करने में हम सदैव महान सोवियत सेना, अपने अन्य मित्र देशों की सेना और सारे ससार की शान्ति प्रेमी जनता के साथ कधे से कधा मिलाकर खड़े रहेंगे।

१२

अन्तरराष्ट्रीय संगठन और सामूहिक रक्षा

१९४५ से पूर्व स्थिति

पिछली पांच शताब्दियों में योरोप ने समय-समय पर बड़े भयंकर सकटों का सामना किया है और प्रत्येक महायुद्ध अथवा युद्ध-शृंखला के पश्चात् संगठित शान्ति का आधार निश्चित करने हेतु पर्याप्त परिश्रम किया गया है। शान्ति की योजनाओं और रूपरेखाओं की सख्या अत्यधिक है परन्तु इनमे से कुछ ही ऐसी हैं जिन्होंने इतिहास की धारा को प्रभावित किया है। योरोप अथवा ससार मे शान्ति स्थापित करने की इन अधिकतर योजनाओं का सर्वोच्च उद्देश्य सारे प्रतिरोध समाप्त करके प्रादेशिक विजय करना और विस्तारवाद रहा है। इनमे सर्वाधिक आदर्शवादी योजनाएँ भी यह मान कर चलती थीं कि प्रस्तावित सगठन मे सम्मिलित राज्यों की रक्षा की किसी भी योजना मे सशस्त्र सेनाओं का प्रावधान होना चाहिए।

१४६२ का मध्ययुगीन सघ

पन्द्रहवीं शताब्दी मे बोहेमिया के सम्राट पोडब्राड के जॉर्ज (George of Podebrad) ने योरोप मे दो उद्देश्यों वाली एक अन्तर्राष्ट्रीय ससद का प्रस्ताव रखा। इसका पहला उद्देश्य पोप और पवित्र रोमन सम्राट की शक्तियों को सीमित करके स्थायी शान्ति सुनिश्चित करना और दूसरा तुर्कों से ईसाई धर्म की रक्षा करना था। पहले-पहल १४६१ में जब तुर्कों के विरुद्ध ईसाई राज्यों के धर्मयुद्ध की परियोजना पर अत्यधिक बल दिया जा रहा था यह योजना[1] रोम के सम्मुख प्रस्तुत की गई। *यद्यपि योजना का तथाकथित उद्देश्य धर्म-युद्ध था, परन्तु यह भी* सम्भव है कि इसका वास्तविक उद्देश्य पोप की सत्ता से बोहेमिया के सम्राट के सम्भावित सघर्ष मे सम्राट की स्थिति को सुदृढ करने हेतु उसके मित्रों मे संधियां करना रहा हो। १४६२ में पोलैण्ड द्वारा यह योजना स्वीकार कर लिए जाने पर

१ योजना के पूर्ण वर्णन के लिए Schwitzky की पुस्तक Dereurop aische Furstenband Georges Von Podebrad, १९०७ देखिए।

पोलैण्ड और बोहेमिया के मध्य एक रक्षा-संधि हो गई। इस बात पर सहमति हो गई कि दोनों राज्यों के मध्य होने वाले सभी विवादों को पंचनिर्णय द्वारा सुलझाया जाए। उसी वर्ष वेनिस-वार्ता के समय इस प्रस्ताव के पेश किए जाने पर फ्रांस, हंगरी, बरगंडी और बवेरिया ने इसका हार्दिक स्वागत किया। १४६४ में सम्राट ने एक राजदूत फ्रांस भेजा जिसने आपस में शान्ति बनाए रखने एवं तुर्कों से ईसाई धर्म की रक्षा करने के लिये फ्रांस, जर्मनी और इटली के ईसाई राजाओं का संघ बनाने का प्रस्ताव फ्रांस के सम्राट के सम्मुख रखा।

इस विस्तृत योजना में यह प्रावधान था कि सभी शक्तियां युद्ध छेड़ने का अपना अधिकार संघ को सौंप देंगी तथा गैर-सदस्यों द्वारा आक्रमण होने पर एक दूसरे की रक्षा करेंगी। साथ ही गैर-सदस्यों में युद्ध रोकने के लिए भी संघ अपने प्रभाव का प्रयोग करेगा और गैर-सदस्यों द्वारा संघ के निर्णय स्वीकार करने से मना करने पर सभी सदस्य उन पर आक्रमण करेंगे।[2]

संघ का मुख्य अंग सभा थी जिसकी पहली बैठक बेसिल (Basle) में और बाद में बारी-बारी से प्रत्येक राज्य में होनी थी। इस सभा में मतदान एक स्वतन्त्र राज्य एक मत के आधार पर न होकर प्रत्येक राष्ट्रीयता के लिए एक मत के आधार पर होना था। सभा को कुछ उच्च शक्तियां प्राप्त थीं, युद्ध की घोषणा करने और संधि करने, अपने सदस्यों पर कर लगाकर सेनाओं का प्रावधान करने और सैनिक कार्यवाही का निर्देशन करने की शक्ति इसके हाथों सौंपी गई थी। इसे नए सदस्यों के प्रवेश को नियंत्रित करना, अपने संगठन के लिए नियम बनाना, अपनी सेनाओं द्वारा विजित प्रदेशों पर शासन करना और इन मामलों में सामान्य विधायिका शक्तियों का प्रयोग करना था।

संधि के रूप में इस योजना को अनेक सरकारों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया परन्तु यह एक प्रस्ताव मात्र ही रही। भले ही इस पर व्यवहार न हो सका फिर भी राष्ट्रों के मध्ययुगीन संघ की इस प्रारम्भिक और महत्वाकांक्षी राजकीय योजना का बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है।

चतुर्थ हेनरी की महान योजना (१६१०)

फ्रांस के सम्राट चतुर्थ हेनरी की महान योजना ने सतरहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में अनेक शान्ति योजनाओं को प्रेरित किया। इस बात में सन्देह है कि यह योजना मूलतः चतुर्थ हेनरी की रचना थी अथवा उसके वित्तमंत्री सली के विचारों पर आधारित थी क्योंकि सली के संस्मरणों में यह सविस्तार प्राप्त होती है।[3] योजना का वास्तविक स्रोत चाहे कुछ भी हो चतुर्थ हेनरी के नाम के साथ सम्बन्धित

---

२ यहां संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र की धारा २(६) से कुछ समानता दिखाई पड़ती है।

३ [illegible] १९०६।

होने के कारण भविष्य में निर्मित इस प्रकार की अन्य योजनाओं पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। सारे योरोप को १५ शक्तियों में इस प्रकार बराबर विभाजित करने का प्रस्ताव था कि किसी को एक दूसरे से स्पर्द्धा और भय न हो। प्रत्येक सरकार के मंत्रियों को लेकर योरोप की एक ऐसी संघीय परिषद् बनाने का विचार था जिसका सत्र शान्ति और युद्ध के प्रश्नों का निर्णय करने के लिए निरन्तर चलता रहे। प्रत्येक प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य को अपनी एक छोटी परिषद् गठित करने का और इस परिषद् को सामान्य संघीय परिषद् में अपील करने का अधिकार था।

संघीय परिषद् की एक संयुक्त सेना होनी थी जिसके लिए प्रत्येक राज्य परिषद् द्वारा निर्धारित कोटे के अनुसार अपने वित्तीय साधनों के अनुपात में सैनिक देगा। २,६०,००० पैदल और ६०,००० घुड़सवार सैनिकों की एक सेना की योजना बनाई गई जिसकी साज-सज्जा और रसद-रसाव का उत्तरदायित्व सब म शामिल राज्यों पर था। इस सेना के लिए किसी भी सम्राट को ६०,००० पैदल और २०,००० घुड़सवार सैनिक, फ्रांस और इंग्लैंड में से प्रत्येक को २०,००० पैदल और ४००० घुड़सवार तथा बोहेमिया को ५,००० पैदल और १,००० घुड़सवार देने थे।

ऐसी आशा की गई थी कि धार्मिक कारणों से कोई युद्ध नहीं होगा और न ही कोई शक्ति सारे योरोप पर प्रभुत्व जमाने की स्थिति में होगी, तथा संघीय सरकार के अधीन सारा योरोप समान स्तर प्राप्त सदस्य राज्यों का महासंघ बन जायगा जिसके पास बड़े वित्तीय साधन होंगे और शक्तिशाली राष्ट्रों पर नियन्त्रण एवं अशक्त राष्ट्रों की रक्षा करने वाली एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना होगी। इसे दैवयोग से अधिक क्या कहा जाय कि इस योजना का आधार फ्रांस के परम्परागत शत्रु हैप्सबुर्ग के राजघराने का विध्वंस और योरोप के नक्शे का मूलत: फ्रांस के हित में पुनर्निर्माण करना था। यह भी सम्भव है कि राज्यों और राजनीतिक सत्ताओं का नियोजित विभाजन एक ऐसे योरोपीय युद्ध को जन्म देता जो सारे महाद्वीप को अपनी लपेट में ले लेता।

महान योजना का महत्त्व इस धारणा की मौलिकता में है भले ही इस पर कभी व्यवहार नहीं किया गया। विश्व राज्य के पुराने विचार से भिन्न होने पर भी यह योजना इस धारणा और राष्ट्रीय स्वतन्त्र राज्य की धारणा में ताल मेल बैठाना चाहती थी।

चतुर्थ हेनरी की महान योजना के पश्चात् इसी प्रकार की योजनाएँ विलियम पेन द्वारा १६९३[4] में, चार्ल्स डी सेंटपियरे द्वारा १७१३[5] में, रूसो (जिसने सेंटपियरे

४ योरोप की वर्तमान और भविष्यत्कालीन शान्ति पर निबन्ध सं० अमरीकी शान्ति समाज, १९१७.

५ *Project de traite pour rendre la paix universelle*, १७१३.

का योजना का सार-संक्षेप प्रकाशित किया)[6] बेंथम[7] और कांट[8] द्वारा भी पेश की गईं। इन सभी व्यक्तियों ने योरोप के संघ की योजनाएं प्रस्तुत कीं।

कॉम्टे डी सेंट साइमन ने १८१४ में एक रचना प्रकाशित की जिसका शीर्षक था "योरोपीय समाज का पुनर्गठन और प्रत्येक राष्ट्र की स्वतन्त्रता सुरक्षित रखते हुए योरोपीय राष्ट्र को एक राजनीतिक निकाय में सम्बद्ध करने की आवश्यकता और उपाय।" इस योजना में योरोप की एक सामान्य संसद की कल्पना की गई जो पूर्व योजनाओं की भांति केवल राजाओं की सभा न होकर योरोपीय जनता द्वारा निर्वाचित सभा होगी। २४० सदस्यों वाली इस संसद का गठन इंग्लैण्ड की संसद जिसमें दो सदन—एक जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का और दूसरा राजा द्वारा नियुक्त विशिष्ट व्यक्तियों का होते हैं के आधार पर होना था। राजा के निर्वाचन के विषय में कोई सकेत नहीं किया गया था। उसी वर्ष रूस के सम्राट अलेग्जेंडर द्वारा प्रस्तावित पवित्र संगठन के कारण शान्ति योजनाओं के इतिहास में इस योजना का महत्त्व धूमिल पड़ गया।

पवित्र संगठन (१८१५)

सम्राट अलेग्जेंडर द्वारा प्रस्तावित पवित्र संगठन में इस बात पर बल दिया गया कि सम्राटों के सम्बन्ध "हमारे रक्षक (ईसामसीह) द्वारा बताए गए उदात्त सत्यों" पर आधारित होने चाहिएं तथा इस बात की पुष्टि की गई कि राजाओं की परिषदों और उनके कार्यों का निर्देशन न्याय, ईसाई उदारता और शान्ति के सिद्धांतों से प्रभावित होना चाहिए। पहले-पहल रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया के तीन राजाओं के मध्य एक संधि सम्पन्न हुई जिसके अनुसार उन्होंने "भ्रातृत्व के सत्य और अविच्छेद्य" बंधनों में बंधे रहने का निश्चय किया। बाद में संगठन के सिद्धान्तों को स्वीकार करने वाली सभी शक्तियों को इसमें सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया गया और उनमें से अनेक इसमें शामिल भी हो गईं। संगठन में शामिल न होने वाले प्रमुख अपवाद पोप और इंग्लैण्ड का कार्यवाहक सम्राट थे जिसने इस आधार पर इसमें शामिल होने से इन्कार कर दिया कि ब्रिटिश संविधान के अनुसार (किसी भी संगठन के समझौते पर) उत्तरदायी मंत्रियों के हस्ताक्षर होना भी आवश्यक था। सिद्धान्त रूप से पवित्र संगठन केवल योरोप तक सीमित नहीं था, अमरीका को इसमें शामिल होने के लिए प्रेरित करने के लिए ज़ार ने असफल प्रयास किया।

वास्तव में एक दूसरे से भिन्न होने पर भी जन-सामान्य की भाषा में पवित्र

---

६ सामाजिक समझौता, १७६१.
७ Works भाग २ "अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धान्त" १८४१,
८ Zumewigen Frieden, १७९५ (शाश्वत शान्ति की ओर १९३१.)

संगठन (Holy Alliance) और चतुष्पक्षीय सगठन (Quadruple Alliance) समान-धर्मी थे। पवित्र सगठन अस्पष्ट सिद्धान्तों वाली एक सामान्य सधि थी जिसके अनुसार राजाओं के आपसी सम्बन्ध धार्मिक सिद्धान्तों पर आधारित होने थे। इसके विपरीत पहली बार १८१४ मे गठित चतुष्पक्षीय सगठन मे ग्रेट ब्रिटेन, रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया शामिल थे। १८१५ मे पेरिस की द्वितीय सधि में इस संगठन को अन्तिम स्वरूप प्राप्त हुआ। इसका उद्देश्य १८१५ की व्यवस्था के अनुसार शान्ति बनाए रखने का व्यवहारिक कार्य करना था।

यॉरोपीय समुदाय (The Concert of Europe):

नवम्बर १८१५ की सहयोग सधि द्वारा चारों सम्राट सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति और योरोप मे शान्ति बनाए रखने के लिए आवश्यक उपायों पर विचार विमर्श करने हेतु नियमित गोष्ठियाँ करने पर सहमत हो गए। यह शक्तियों का केवल रक्षात्मक समुदाय ही नहीं था बरन् विशिष्ट समझौतों से बधा और तत्कालीन महान शक्तियों द्वारा समर्थित एक वास्तविक राष्ट्रमण्डल था। वियना कांग्रेस मे चतुष्पक्षीय सगठन ने स्वीकार किया कि पेरिस सधि पर हस्ताक्षर करने वालों की एक प्रभावी कॅबिनेट होनी चाहिये। योरोप की शान्ति को प्रभावित करने वाले सभी मामले इस कॅबिनेट के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने थे। अन्य शक्तियां जिनके हित अथवा अधिकार शक्तियों के इस समुदाय के विचाराधीन किसी मामले मे निहित होते थे उन्हें भी विचार-विमर्श मे भाग लेने का अधिकार था। इस आधार पर आगामी वर्षों मे अनेक अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस की गई।

योरोपीय समुदाय के विचार का उत्साहपूर्वक समर्थन करने मे कासलरी (Castlereagh) का उद्देश्य योरोपीय स्थायित्व की शर्तों पर शान्ति बनाए रखना था। वह एक ऐसी प्रणाली स्थापित करना चाहता था जिसके द्वारा सभी चार महान शक्तियाँ (१८१८ में फ्रांस के शामिल हो जाने पर इनकी सख्या बढ कर पाच हो गई) सैनिक शक्ति मे पर्याप्त सतुलित होने के कारण योरोप की रक्षा हेतु एक सुरक्षा परिषद् गठित कर सकें। इस क्षेत्र मे राष्ट्रों के निरन्तर सहयोग को सरल बनाने के लिए वह एक स्थायी सस्था स्थापित करने की इच्छा करता था। उसे आशा थी कि चतुष्पक्षीय गठबधन जिसमे सहयोगियों की नियमित गोष्ठियों का प्रावधान था कूटनीति के पुराने उपायों को परिवर्तित करके प्रभुता-सम्पन्न राज्यों के मध्य व्यवहार की एक नई और उपयोगी प्रणाली को जन्म देगा।

परन्तु उसकी आशाओं की पूर्ति में तीन बाधाएं आ खड़ी हुई। चारों ओर स्थल से घिरा होने के कारण रूस अपने पड़ोसी राज्यों में घुसपैठ कर सकता था, सुरक्षा परिषद् सभी लोकतन्त्रीय और राष्ट्रवादी आन्दोलनों को कुचलने पर उतारू प्रतिक्रियावादी सम्राटों का गठबधन बन सकती थी, और अन्ततः ब्रिटिश जनता अतीत मे अपनी विदेश नीति को निर्धारित करने वाली अलगाव की प्रवृत्ति को पुनः अपना सकती थी।

इतिहास से स्पष्ट होता है कि जिस सामूहिक भय का प्रतीकार करने के लिए संगठनों की रचना होती है उसके समाप्त होते ही उनका विघटन प्रारम्भ हो जाता है। यह समझौता भी इसका अपवाद नहीं था। ब्रिटिश सरकार चतुष्पक्षीय गठबंधन को फ्रांस में सैन्यवाद के पुनरुत्थान को रोकने वाला सामयिक समझौता भर मानती थी परन्तु मैटरनिख इसे पवित्र गठबंधन का राजनीतिक अस्त्र मानता था और योरोप में कहीं भी होने वाले क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचलने के लिए इसका विस्तार करना चाहता था। दूसरे देशों के मामलों में हस्तक्षेप करने के प्रति ब्रिटेन की अरुचि और ज़ार की उत्सुकता के कारण एक दरार पैदा हो गई और अन्ततः समझौता टूट गया। साथ ही काफी समय तक समझौते को युग की उदार भावनाओं के विपरीत राजाओं का व्यक्तिगत गठबंधन मान कर सन्देह की दृष्टि से देखा गया।

१८२० में ट्रोपाओ की कांग्रेस में (Congress of Troppau) समुदाय का अन्त हो गया। इस कांग्रेस में समझौते में शामिल शक्तियों ने एक मूल-संधि-पत्र जारी किया जिसने यह सिद्धान्त स्वीकार किया कि योरोप की शान्ति व्यवस्था को घरेलू क्रान्ति द्वारा खतरा उत्पन्न होने पर अपराधी को आवश्यकता पड़ने पर बल प्रयोग द्वारा भी, "महान समझौते की गोद" में लाना उनका कर्तव्य है। ज़ार का दृढ़ विश्वास था कि योरोप की एक ही क्रान्ति सभी राष्ट्रों के अस्तित्व को चुनौती देने के लिये काफी है अतः इसे शक्ति द्वारा कुचल दिया जाना चाहिये। कासलरी इस बात पर बल देता रहा कि ऐसा कोई भी हस्तक्षेप शान्ति के लिये खतरा है और ब्रिटिश राय में यह एक ऐसा तर्क था जिसका प्रत्युत्तर नहीं दिया जा सकता था। इन विरोधी विचारों में किसी प्रकार का समझौता कराने की समस्या का कोई समाधान नहीं मिल सका और ग्रेट ब्रिटेन चतुष्पक्षीय संगठन से अलग हो गया। सम्मेलन प्रणाली असफल हो चुकी थी और योरोपीय समुदाय विघटित हो गया। यह सत्य है कि तीन महान शक्तियों—रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया के सम्राट १८४८ के आन्दोलनों तक सहयोगी बने रहे; परन्तु वास्तव में यह समुदाय क्रान्ति से निरंकुश राजतन्त्र की रक्षा करने वाला एक संघ मात्र बनकर रह गया।

फिर भी इन महान परियोजनाओं को बिल्कुल ही असफल नहीं कहा जा सकता। सम्राटों की अनेक कांग्रेसों के सम्मुख योरोप के अनेक भागों से अपीलें आईं और उनके प्रभाव के बल पर झगड़े निपटाये गये; उदाहरणार्थ डेनमार्क की अपील पर समुदाय ने स्वीडन के चौदहवें चार्ल्स को कील की सन्धि के अनुबन्धों को पूरा करने के लिये बाध्य किया। अनेक कांग्रेसों की शृंखला अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में एक व्यवहार संहिता स्थापित करने और शक्तियों के स्थायी समुदाय की स्थापना के लिए पहला कदम सिद्ध हुई; एक शताब्दी पश्चात् इसका स्वाभाविक विकास राष्ट्र संघ के रूप में हुआ।

राष्ट्र संघ (The League of Nations)

महायुद्ध (1914–18) की समाप्ति के पश्चात राज-नीतिज्ञों ने एक बार फिर राष्ट्रों के मध्य शान्ति स्थापित करने और इसकी सुरक्षा के लिये कोई संस्था गठित करने की दिशा में अपने प्रयास प्रारम्भ कर दिये। स्थायी संस्थान की एक योजना पर पहली बार विश्व व्यापी स्तर पर व्यवहार किया गया। 1919 में राष्ट्र संघ की स्थापना इसके प्रतिज्ञापत्र की प्रस्तावना के शब्दों में "अन्तर्राष्ट्रीय सहकार बढ़ाने और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा प्राप्त करने हेतु" हुई।

इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु संघ के प्रतिज्ञापत्र में राष्ट्रों के आपसी झगड़ों के शान्तिपूर्ण समाधान का प्रावधान किया गया। संघ के कार्य सीमित थे परन्तु इसकी स्थापना ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक महान् प्रगति का सन्देश दिया। यह विश्वव्यापी स्तर पर एक ऐसी प्रणाली प्रारम्भ करने का प्रयास था जिसका उद्देश्य सारे संसार से युद्ध का बहिष्कार करना था।

राष्ट्रसंघ की सदस्यता इसके प्रतिज्ञापत्र में वर्णित कर्तव्यों को स्वीकार करने के लिये तैयार किसी भी राष्ट्र के लिये खुली थी परन्तु इसके कार्य सरकारी स्तर के नहीं थे। संघ के सदस्य अपने द्वारा समर्थित प्रतिज्ञापत्र में वर्णित कुछ कर्तव्यों का पालन करते थे परन्तु ऐसा करते समय वे व्यक्तिगत सदस्यों से उच्च स्तरीय ऐसा निकाय नहीं बन जाते थे जिसके पास उन पर नये कार्य थोपने के निर्णय लेने की शक्ति हो। कुछ भी हो इस प्रकार संघ के किसी भी सदस्य राज्य की प्रभुसत्ता की अवहेलना नहीं की गई थी। सदस्य राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता के प्रति जैनेवा में प्रकट किये गये शाब्दिक सम्मान के अतिरिक्त प्रतिज्ञापत्र में ही इस प्रभुसत्ता को शामिल करने के लिये अनेक ठोस कदम उठाये गये थे। पहले तो अपनी इच्छानुसार दो वर्ष का नोटिस देकर कोई भी राज्य संघ की सदस्यता से त्यागपत्र दे सकता था। पुनः संघ से टूट जाने का अधिकार प्रभावतः निरपेक्ष था। जिस पर सर जॉन फिशर विलियम्स (Sir John Fischer williams) ने टिप्पणी की[1] इसके अतिरिक्त प्रभुसत्ता बनाये रखने का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रावधान स्वयं प्रतिज्ञापत्र का आधार सर्वसम्मति का सिद्धान्त था।

संघ के अंग

सभा (Assembly), परिषद् (Council) और सचिवालय तथा स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन सहित अनेक तकनीकी संगठन संघ के अंग थे। संघ की सभा में प्रत्येक सदस्य राज्य के प्रतिनिधि होते थे और सामान्यतया इसकी गोष्ठी वर्ष में एक बार जेनेवा में होती थी।

मूल योजना के अनुसार परिषद् में 9 सदस्य होते थे—स्थायी स्थान प्राप्त पांच महाशक्तियां (अर्थात् संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रांस, इटली

---

१ सर जॉन फिशर विलियम्स: राष्ट्र संघ के प्रतिज्ञापत्र के कुछ पहलू, १९३४.

और जापान) तथा सभा द्वारा निर्वाचित चार अन्य। संयुक्त राज्य अमरीका कभी भी संघ का सदस्य नहीं बना तथा जर्मनी और रूस ने बाद में प्रतिज्ञापत्र भंग करने से पूर्व अल्पकाल के लिये इसकी सदस्यता ग्रहण की; इटली और जापान ने भी ऐसा ही किया। इन विश्वासघातों के कारण संघ की योजना कभी भी पूरी तरह लागू नहीं हुई। शान्ति बनाये रखने में महाशक्तियों का उत्तरदायित्व औरों से अधिक है इस बात को स्वीकार करके ही उन्हें परिषद् में स्थायी स्थान प्रदान किया गया था। संघ की उत्तर अवस्थाओं में स्थायी और अस्थायी सदस्यों में अन्तर ही इसका अवशेष रह गया। सभा के बहुमत की स्वीकृति से परिषद् एक मत से नये सदस्यों का चुनाव करती थी।[10] अस्थायी सदस्य जिनकी संख्या १९३० में बढ़ाकर दस कर दी गई थी सभा द्वारा तीन वर्ष के लिये चुने जाते थे; इस अवधि के पश्चात् तीन वर्षों तक उनका पुनर्निर्वाचन नहीं हो सकता था, जब तक कि सभा दो तिहाई बहुमत से तुरन्त उन्हें पुनर्निर्वाचन योग्य घोषित न कर दे, और ऐसा किसी एक समय तीन राज्यों के लिये ही किया जा सकता था।

परिषद् में जिस राज्य का प्रतिनिधित्व नहीं होता था उसकी स्थिति की सुरक्षा इस आवश्यक नियम से हो जाती थी कि जब कभी भी परिषद् विशेष रूप से उस राज्य के हितों को प्रभावित करने वाले मामलों पर विचार करेगी तो उसे इसकी गोष्ठियों में भाग लेने के लिये आमंत्रित किया जाना चाहिये।

अन्तर्राष्ट्रीय सहकार के पिछले प्रयत्नों में निरन्तरता और नियमितता का अभाव था परन्तु महासचिव और विस्तृत स्टाफ वाले उसके सचिवालय द्वारा अब इन्हें सुनिश्चित कर दिया गया। एक अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक सेवा के रूप में कार्य करके यह संघ का स्थायी प्रशासन तन्त्र प्रस्तुत करता था। महासचिव के निरीक्षण में निम्नलिखित विभाग कार्य करते थे—(१) राजनीतिक विभाग (२) विधि-सम्बन्धी विभाग (३) आर्थिक विभाग (४) संचार विभाग (५) वित्त विभाग (६) स्वास्थ्य विभाग (७) राज्यादेश तथा अन्य विभाग। न तो सामूहिक सुरक्षा के लिए कोई तंत्र था और न ही रक्षा समस्याओं के लिए यहां तक कि निरस्त्रीकरण के परीक्षण हेतु भी कोई विभाग नहीं था। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का यह पहलू द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विकसित होने के लिए छोड़ दिया गया था और आज भी यह किसी भी प्रकार पूर्णता के निकट नहीं है।

दोनों निकायों के कार्यों का विभाजन करने वाली कोई स्पष्ट रेखा न होने के कारण यह कहना सम्भव नहीं है कि परिषद् एक कार्यकारिणी तथा सभा एक

---

१० देखिये एच० सी० ग्रीन "मद्र मनुष्य का सन्मोता और इसका परिषद्" ११ अनुनन कानूनी समस्याएँ, १९६०, पृ० २५५ तथा, 'इसका परिषद् में प्रतिनिधित्व एक समस्या', १९ अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को भारतीय वार्षपुस्तक, १९६२,

संसद की भांति कार्य करती थी। संघ के कार्यक्षेत्र में आने वाले या संसार की शान्ति को प्रभावित करने वाले किसी भी मामले पर दोनों में से कोई भी विचार कर सकती थी। परिषद् के सभी सदस्य सभा के भी सदस्य होते थे और सामान्यतः कोई भी निकाय सर्वसम्मति के बिना कार्य नहीं कर सकता था अतः दोनों में संघर्ष की सम्भावना कम थी। छोटा निकाय होने के कारण परिषद् आपातकाल में कार्य करने के अधिक उपयुक्त थी। सभा की वर्ष में एक गोष्ठी होती थी पर इसकी वर्ष में तीन या चार गोष्ठियां हुआ करती थी। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा-परिषद् के अर्थ में यह कार्यकारिणी समिति तो नहीं थी फिर भी परिषद् ने अपने आपको सभा की कार्यकारिणी समिति समझने की प्रवृत्ति पनप रही थी। संघ के पालन हेतु सभा सामान्य नीति निर्धारित करती थी तथा ब्यौरे तैयार करने और प्रशासन का निरीक्षण करने का कार्य परिषद् पर छोड़ देती थी। इस प्रकार परिषद् के निम्नलिखित कार्य थे: शस्त्र सज्जा सीमित करने की योजनायें तैयार करना, आक्रमण के विरुद्ध धारा १० में उल्लिखित गारंटी को पूरी करने के उपायों पर सलाह देना, युद्ध होने अथवा इसकी आशंका होने पर संघ के किसी भी सदस्य की प्रार्थना पर गोष्ठियां करना (धारा ११), सैनिक प्रतिबन्ध लागू करने की संस्तुति करना (धारा १६), प्रतिज्ञा-पत्र का उल्लंघन करने वाले किसी भी सदस्य का बहिष्कार करना (धारा १६) तथा गैर-सदस्यों के झगड़ों पर विचार करना (धारा १७)। नये सदस्यों और परिषद् के अस्थायी सदस्यों के चुनाव का उत्तरदायित्व केवल सभा पर था। इनके अतिरिक्त अन्य किसी भी मामले पर कोई भी निकाय विचार कर सकता था।

साधारणतया परिषद् अथवा सभा के निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते थे। संघ के स्वभाव और दृष्टिकोण का विशिष्ट लक्षण सर्व-सम्मति सम्बन्धी प्रावधान थे। वे प्रत्येक सदस्य को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता प्रदान करते थे जिसके फलस्वरूप सामूहिक कार्यवाही असम्भव हो जाती थी। प्रतिज्ञापत्र की धारा ५ में कहा गया है, "इस प्रतिज्ञापत्र में स्पष्ट रूप से उल्लिखित स्थलों अथवा वर्तमान संधि की शर्तों के अतिरिक्त सभा अथवा परिषद् के निर्णयों के लिए गोष्ठी में उपस्थित संघ के सभी सदस्यों की सहमति आवश्यक होगी।" पुनः यदि संघ के किसी सदस्य का परिषद् में प्रतिनिधित्व नहीं होता था तो उस सदस्य के हितों को विशेष रूप से प्रभावित करने वाले मामलों पर विचार करने के लिए आमंत्रित परिषद् की किसी भी गोष्ठी में उसे अपना प्रतिनिधि भेजने के लिए आमंत्रित करना पड़ता था। इस सर्वसम्मति नियम का प्रभाव "प्रत्येक सदस्य के इस औपचारिक अधिकार की सुरक्षा करना था कि इसके सभी सहयोगी सदस्य भी मिलकर इसे कोई आदेश नहीं दे सकते।" अतः यह सर्वसम्मति नियम एक बड़ा अवरोध सिद्ध हुआ और इसके कारण संघ कभी भी कोई ठोस कार्यवाही नहीं कर सका। संघ के किसी भी सदस्य को इसके किसी उपाय का समर्थन करने के लिए न तो बाध्य किया जा सकता था और न ही ऐसे राज्य को मत देकर संघ से बाहर किया जा सकता था। अतः

असहमत राज्य का विरोध दूर करने के लिए संघ को प्रचार और नैतिक दबाव पर निर्भर रहना पड़ता था।[11]

'कार्य विधि' सम्बन्धी मामले जिन पर साधारण बहुमत से निर्णय लिया जा सकता था; सभा द्वारा नए सदस्यों का प्रवेश जिसके लिए दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती थी; सभा के बहुमत और परिषद् के सभी सदस्यों द्वारा पुष्ट प्रतिज्ञा-पत्र में कोई संशोधन (यद्यपि कोई भी असहमत राज्य इस प्रकार के संशोधन से बाध्य होने की अपेक्षा संघ की सदस्यता छोड़ने को स्वतन्त्र था और ऐसा वह किसी भी समय दो वर्ष का नोटिस देकर कर सकता था); किसी भी विवाद पर परिषद् अथवा सभा का प्रतिवेदन (धारा १५) जिसके लिए सम्बन्धित पक्षों की सहमति आवश्यक न थी सर्वसम्मति नियम के अपवाद थे। इन अपवादों सहित सर्व-सम्मति नियम सर्वमान्य था। अन्तर्राष्ट्रीय जनमत की शक्ति यद्यपि छोटी शक्तियों के मामले में बहुधा प्रभावी सिद्ध होती थी परन्तु किसी महाशक्ति की अवज्ञा को वशीभूत करने में यह पूर्णतया अक्षम थी जैसाकि चीन-जापान-युद्ध के समय स्पष्ट हुआ।

सामूहिक कार्यवाही तंत्र

सामूहिक सुरक्षा की धारणा का जन्म राष्ट्र संघ के साथ हुआ। प्रतिज्ञापत्र में उचित और प्रभावी प्रावधानों के अभावों में भी सामूहिक कार्यवाही के लिए एक स्पष्ट मार्ग निर्धारित कर दिया गया था। आवश्यकता और इच्छा होने पर राष्ट्र इसका अनुसरण कर सकते थे।

प्रतिज्ञापत्र की धारा १० के अनुसार संघ के सदस्यों ने "संघ के सब सदस्यों की प्रादेशिक अखण्डता और वर्तमान राजनीतिक स्वतन्त्रता का सम्मान करने और इसकी बाहरी आक्रमण से सुरक्षा करने" का वचन दिया। "ऐसे किसी आक्रमण अथवा आक्रमण की आशंका और भय होने की स्थिति में परिषद् इस कर्तव्य का पालन करने के उपायों पर सलाह देगी।" इसके विपरीत धारा १९ में "अब लागू न होने वाली सन्धियों पर पुनर्विचार और विश्वशान्ति को खतरे में डालने वाली अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों पर विचार" का प्रावधान किया गया था। अतः यह स्पष्ट है कि यह धारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में किसी परिवर्तन के विरुद्ध न होकर केवल बाह्य आक्रमण द्वारा किए गए परिवर्तनों के विरुद्ध थी। किसी सदस्य की स्वतन्त्रता सुरक्षित रखने के लिए व्यावहारिक कदम उठाने का उत्तरदायित्व परिषद् द्वारा इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के उपायों पर सलाह दिए जाने के समय तक नहीं रहता था। ऐसी सलाह देने के लिए सारी परिषद् को एक मत होना पड़ता था अथवा विवादग्रस्त पक्षों के अतिरिक्त शेष परिषद् को एक मत होना पड़ता था इसका कभी निर्णय नहीं किया गया।

---

११ [illegible] (१९३२) में [illegible] न्यायालय की रचना पर देखिए, [illegible] B [illegible] (लन्दन : [illegible] प्रेस, पृ० [illegible])

परिषद् द्वारा सर्वसम्मत सलाह दिए जाने पर भी इसे पालन करने का सदस्यों पर कोई निरपेक्ष उत्तरदायित्व नहीं था। ऐसी सलाह का किस सीमा तक पालन किया जाए यह निर्णय सदस्य राज्यों पर छोड़ दिया गया था। धारा १० पर व्यवहार कराने मे इतनी गम्भीर कठिनाइयाँ थीं कि कितनी ही बार विशेषकर चीन द्वारा १९३२ मे और इथोपिया द्वारा १९३५ मे अपीलें किए जाने पर भी इस पर कभी व्यवहार नहीं कराया जा सका। १९३३ मे जापान की असहमति के बावजूद सभा ने इस आशय का एक प्रतिवेदन स्वीकार किया कि जापान ने इस धारा का उल्लघन किया है परन्तु परिषद् ने सलाह देने के लिए कोई पग नहीं उठाया। इटली और इथोपिया के मध्य विवाद मे इस धारा के स्थान पर धारा १६ के अधीन कार्यवाही की गई थी। किसी भी दिशा मे विवाद की समाप्ति से पूर्व धारा १० के अधीन कार्यवाही करने का प्रश्न नहीं उठा। लड़ाई समाप्त हो चुकने और सैनिक शक्ति द्वारा अन्य राज्य की प्रादेशिक अखण्डता भग कर दिए जाने पर ही धारा १० को लागू करने का प्रश्न उठता था। शायद धारा १० का उद्देश्य विजेताओं को प्रादेशिक लाभ पहुँचाने वाली लड़ाई रोकना था और पेरिस समझौते (१९२८) के पश्चात् तो यह मात्र सिद्धान्त की घोषणा के कुछ अधिक नहीं रह गई।

सघ ने धारा ११ पर कुछ सीमा तक सफलतापूर्वक व्यवहार किया। इस धारा मे यह प्रावधान किया गया था कि कोई युद्ध या युद्ध की आशका सघ की चिंता के विषय थे और राष्ट्रों की शान्ति की सुरक्षा हेतु उपयुक्त और प्रभावी कार्यवाही करना इसका कर्तव्य था। ऐसी कोई आपात स्थिति उत्पन्न होने पर महासचिव को सघ के किसी सदस्य की प्रार्थना पर परिषद् की बैठक बुलानी पड़ती थी। परिस्थिति के अनुकूल कार्यवाही करने की छूट देने मे यह धारा काफी लचीली थी और विवाद की प्रारम्भिक स्थितियों में रोकथाम की कार्यवाही करने के लिए बड़ी ही उपयुक्त। १९२५ ई० में जब यूनान ने बुल्गेरिया की भू-प्रदेश पर आक्रमण कर दिया तो परिषद् ने साहसपूर्वक कार्य करते हुए दोनो पक्षों को कठोर निर्देश दिए जिनके कारण यूनानी सेनाओं को पीछे हटना पड़ा; बाद मे यूनान द्वारा दी जाने वाली हर्जाने की राशि तय की गई। दुर्भाग्य की बात यह है कि अपने निर्णयों का पालन कराने के लिए सघ के पास कोई प्रभावी कानून न होने के कारण परिषद् की संस्तुतिएँ दोनों पक्षों के लिए कानूनी रूप से बाध्य नहीं थीं। यद्यपि शब्दो से कार्यकरी निर्णय का अनुमान लगता है परन्तु सघ केवल नैतिक उपाय ही काम मे ला सकता था। इसके अतिरिक्त इस धारा के अधीन सर्वसम्मति पर भी बल दिए जाने के कारण विवाद मे एक पक्ष भी परिषद् की कार्यवाही मे बाधा डाल सकता था और उस अवस्था में इसे केवल बहुमत की नैतिक शक्ति पर ही निर्भर करना पड़ता था। सघ के प्रारम्भिक अनुभवों से यह सोचने का आधार बना कि परिषद् द्वारा सुझाए गए उपायों के पीछे जनमत की शक्ति उन पर व्यवहार करा लेगी पर जापान की अवज्ञा और इसके सम्मुख परिषद् के सकोच से स्पष्ट हो गया कि जहाँ तक किसी शक्ति सम्पन्न राज्य का प्रश्न है ऐसा कुछ नहीं था। इस प्रकार सर्वसम्मति का नियम जो

संघ के संगठन का मुख्य आधार था आक्रमणकारी के विरुद्ध प्रभावी सामूहिक कार्य-वाही के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा सिद्ध हुआ और इसने सामूहिक सुरक्षा की सभी आशाओं पर पानी फेर दिया।

धारा १० और ११ के प्रावधानों से मुक्त विवादों से निपटने के लिए धारा १२ से १७ तक में एक विस्तृत योजना दी गई थी। धारा १२ के अनुसार सदस्य इस बात पर सहमत थे कि "उनके मध्य विघटनकारी विवाद उठ खड़ा होने पर" वे इसे पंच-फैसले अथवा न्यायिक-निर्णय के लिए सौंप देंगे अथवा परिषद् से इसकी जाँच-पड़ताल करने का आग्रह करेंगे। पहला विकल्प अपनाए जाने पर पंच-फैसला या न्यायिक-निर्णय उचित समय के भीतर दे दिया जाना था तथा दूसरा विकल्प अपनाए जाने पर परिषद् को छः महीने के भीतर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना पड़ता था। सदस्य इस बात पर भी सहमत थे कि चाहे कुछ भी हो पंच-फैसले, निर्णय या प्रतिवेदन के पश्चात् तीन मास तक वे युद्ध का सहारा नहीं लेंगे। स्पष्ट रूप से इस धारा का अन्तर्निहित उद्देश्य (सम्बन्धित पक्षों को) शांत होने का समय देना था क्योंकि विवादास्पद विषय पर लम्बे काल तक युद्ध टल जाने से फिर कभी भी युद्ध होने की सम्भावना नहीं रहती।

'युद्ध का सहारा लेना' पद का अर्थ अस्पष्ट होने के कारण इस धारा के अधीन सदस्यों द्वारा वहन किए जाने वाले उत्तरदायित्व की निश्चित सीमा बहुत स्पष्ट नहीं थी। एक राज्य का दूसरे राज्य के विरुद्ध बलप्रयोग अपने आप में युद्ध नहीं कहलाता।[12] साधारण नियमानुसार कम से कम एक राज्य को तो युद्ध की भावना अर्थात् युद्ध की कानूनी शर्तें पैदा करने की इच्छा रखनी ही चाहिए। यह इच्छा युद्ध की घोषणा अथवा किसी अन्य स्पष्ट उपाय द्वारा व्यक्त होनी चाहिए। १९३१ के चीन जापान विवाद में विभिन्न कारणों से कोई भी पक्ष इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं था कि शत्रुता के अस्तित्व ने 'युद्ध की स्थिति' उत्पन्न कर दी थी।[13] फिर भी यह कल्पना नहीं की गई थी कि 'युद्ध का सहारा' लेने के कारण उत्पन्न होने वाले सदस्यों के उत्तरदायित्व इस बात पर निर्भर करेंगे कि शत्रुता युद्ध की स्थिति पैदा करती है अथवा नहीं। इतालवी नौसेना द्वारा कोरफू पर बमबारी के कारण १९२३ में यह प्रश्न उठा। परिषद् ने न्यायशास्त्रियों की एक समिति से इस बात पर सलाह देने का आग्रह किया कि युद्ध न भड़काने के उद्देश्य वाले उत्पीड़न के कार्य प्रतिज्ञापत्र की धारा १२ से १५ तक के अन्तर्गत आते हैं अथवा

---

१२ देखिए उदाहरणार्थ एन० सी० ग्रीन "कोरिया में युद्ध का स्वरूप," ४ अन्तर्राष्ट्रीय कानून त्रैमासिकी, १९५१ पृ० ४६२ तथा 'इरास्त केंवर, युद्ध और अनाक्रमण' ६ Archiv des Volkerrecht १९५७ पृ० ६८७.

१३ देखिए कोवे का कादम्बरी किसेन काइरोडो बेरा बनाम बेन्थम स्टी० एस० कं०(१९३९), २ K. B. ५४४.

नहीं और इसका उत्तर यह मिला कि यह सब परिस्थितियों पर निर्भर करता था। इस उत्तर की अस्पष्टता से पता चलता है कि इस धारा का उल्लंघन करने के पर्याप्त छिद्र मौजूद थे।

धारा १३ उन विवादों से सम्बन्धित थी जिन्हें विवादग्रस्त पक्ष पंच-फैसले या न्यायिक-निर्णय के लिये सौंपने को तैयार थे, साथ ही इस धारा में सामान्य रूप से यह उपाय लागू किए जाने के उपयुक्त कुछ प्रकार के विवादों का भी संकेत किया गया था। किसी संधि की व्याख्या करना, अन्तर्राष्ट्रीय कानून का कोई प्रश्न, या किसी ऐसे तथ्य की उपस्थिति जिसके प्रमाणित हो जाने पर किसी अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य की अवहेलना सिद्ध हो कुछ ऐसे मामले थे। ऐसे मामले धारा १४ के अधीन स्थापित स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को भेजे जाते थे। सदस्य किसी भी पंच फैसले अथवा निर्णय का सद्भावपूर्वक पालन करने और इन्हें स्वीकार करने वाले किसी सदस्य के विरुद्ध युद्ध का सहारा न लेने के लिये सहमत थे।

धारा १२ में जिन दो वैकल्पिक उपायों का प्रावधान किया गया था धारा १५ उनमें से दूसरे विकल्प अर्थात् किसी विवाद को परिषद् को सौंपने से सम्बन्धित थी। विवाद में शामिल कोई भी पक्ष इसकी सूचना महासचिव को दे सकता था और वह पूरी जाँच-पड़ताल के लिए सभी आवश्यक व्यवस्था करता था। परिषद् का पहला कार्य समझौता करा देना था। इस कार्य में सफलता मिल जाने पर यह तथ्यों सम्बन्धी वक्तव्य और समझौते की शर्तें प्रकाशित कर देती थी। ऐसा करने का उद्देश्य यह भय दूर करना था कि एक राजनीतिक निकाय होने के नाते परिषद् किसी कमजोर राज्य को समझौते की अन्यायपूर्ण शर्तें मानने के लिए बाध्य न कर सके। इन प्रयत्नों में असफल हो जाने पर परिषद् का अगला कार्य विवाद का एक प्रतिवेदन और इसके सम्बन्ध में अपनी संस्तुतियाँ प्रकाशित करना था। विवादग्रस्त पक्षों के मतों के अतिरिक्त यदि यह प्रतिवेदन सर्वसम्मति से प्रस्तुत होता तो संघ के सदस्य प्रतिवेदन की संस्तुतियों का पालन करने वाले विवादग्रस्त पक्ष के साथ युद्ध न छेड़ने के लिये सहमत थे। यदि प्रतिवेदन केवल बहुमत पर आधारित होता तो आवश्यक कार्यवाही करने का अधिकार सदस्य राज्यों के पास सुरक्षित रहता था। किसी भी स्थिति में विवादग्रस्त पक्ष प्रतिवेदन स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं थे, धारा १२ के अधीन निर्धारित आवश्यक अवधि के पश्चात् उन्हें युद्ध आरम्भ करने की स्वतन्त्रता थी। फिर भी ऐसी आशा की जाती थी कि सारे संसार को तथ्यों का पता चल जाने और भावनाएँ शांत होने का समय मिल जाने के कारण युद्ध से बचा जा सकेगा।

यदि विवादग्रस्त पक्षों में से एक पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार उस पक्ष के निजी अधिकारक्षेत्र में आने वाले विषयों को विवाद का कारण मानता और परिषद् भी ऐसा ही पाती तो धारा १५ के आठवें अनुच्छेद के अनुसार परिषद् को कोई भी संस्तुति करने का अधिकार नहीं था। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रतिबन्ध था

क्योंकि ऐसे विवाद बहुधा शान्ति के लिये सर्वाधिक खतरनाक होते हैं। अपनी पहल पर अथवा किसी एक पक्ष की प्रार्थना पर परिषद् ऐसे किसी मामले को सभा के सम्मुख प्रस्तुत कर सकती थी। इस अवस्था में परिषद् को धारा १२ और १५ के अधीन प्राप्त सभी शक्तियां सभा को प्राप्त हो जाती थीं परन्तु किसी प्रतिवेदन को परिषद् के सभी सदस्यों और सभा के अन्य सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त होने पर इसका परिषद् के सर्वसम्मत प्रतिवेदन जैसा ही प्रभाव होता था। पुनः नैतिक शक्ति पर पूर्ण आस्था प्रकट की गई थी और सदस्यों का एकमात्र नैतिक दायित्व यही था कि वे सर्वसम्मत प्रतिवेदन का पालन करने वाले पक्ष के विरुद्ध युद्ध न छेड़ें।

धारा १६ और "सामूहिक कार्यवाही" :

धारा १६ में 'प्रतिबन्धों का उपबन्ध' शामिल था अतः यह बड़ी महत्वपूर्ण धारा थी। धारा १२, १३ या १५ की अवहेलना करके यदि संघ का कोई सदस्य युद्ध आरम्भ कर देता तो ऐसा माना जाता था कि इसने संघ के सभी सदस्यों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया है और अब प्रतिज्ञापत्र भंग करने वाले राज्य के साथ सारे वित्तीय और व्यापार सम्बन्ध तुरन्त भंग कर देना था।

ऐसी अवस्था में परिषद् का कार्य प्रतिज्ञापत्र की सुरक्षा हेतु सम्बन्धित सरकारों से संघ के सदस्यों द्वारा प्रभावी स्थल, नौ और वायु सेनाएँ अंशदान के रूप में देने की संस्तुति करना था। इसके अतिरिक्त संघ के सदस्य आर्थिक और वित्तीय उपायों द्वारा भी परस्पर सहयोग करने और प्रतिज्ञापत्र के प्रावधानों की सुरक्षा में सहकार करने वाले संघ के किसी भी सदस्य की सेनाओं को अपने भू-प्रदेश से जाने की अनुमति देने के लिये सहमत थे। प्रतिज्ञापत्र भंग करने वाले किसी भी सदस्य को आक्रामक राज्य के अतिरिक्त शेष परिषद् के सर्वसम्मत मत द्वारा बहिष्कृत किया जा सकता था। प्रतिज्ञापत्र की किसी भी धारा को भंग करने पर बहिष्कार का नियम लागू किया जा सकता था।

आर्थिक दबाव लागू करने का उत्तरदायित्व बड़ा कठोर था। यदि सदस्यों को एकबार इस बात का विश्वास हो जाता कि किसी नियम का उल्लंघन हुआ है तो वे एक कठोर नाकेबन्दी करने के लिये बाध्य थे। इस प्रकार आरम्भ से ही संघ ने आर्थिक दबाव द्वारा युद्ध रोकने और शान्ति बनाए रखने का प्रयास किया। प्रतिज्ञापत्र का उल्लंघन हुआ है अथवा नहीं यह निर्णय करना प्रत्येक सदस्य का कार्य था परन्तु यदि परिषद् यह निर्णय कर लेती थी कि इसका उल्लंघन हुआ है तो सभी सदस्यों को कार्यवाही करने के लिये आमन्त्रित करना और आर्थिक दबाव आरम्भ करने की तिथि निश्चित करना इसका कर्तव्य था।

धारा १६ (२) और "सामूहिक सुरक्षा":

संघ के किसी सदस्य को सैनिक कार्यवाही करने का आदेश देने की कोई कानूनी बाध्यकारी शक्ति परिषद् के पास नहीं थी। तुरन्त सम्बन्धित सरकारों के ऐच्छिक

सहकार से ऐसी कार्यवाही किए जाने का उत्तरदायित्व परिषद् पर छोड़ दिया गया था। इस प्रकार सैनिक कार्यवाही को पृष्ठभूमि में और अनिश्चित रखा गया था। राष्ट्र संघ में संयुक्त राष्ट्र संघ की सैनिक स्टाफ समिति के समकक्ष कोई निकाय नहीं था, जो प्रतिज्ञापत्र के प्रावधानों का सैनिक शक्ति द्वारा पालन कराने की योजना बना सके।

फिर भी यह धारा एक ऐसी कार्यवाही के लिए अधिकार प्रदान करती थी जो प्रतिज्ञापत्र से पूर्व केवल लड़ाई की स्थिति के अनुकूल थी। प्रतिज्ञापत्र में इस नियम का प्रतिपादन किया गया था कि यदि कोई सदस्य प्रतिज्ञापत्र भंग करके युद्ध का सहारा ले तो वह तटस्थ व्यवहार की माँग करने का अधिकारी नहीं रह जाता।

पुनः धारा १६ (२) ने शक्ति के सामूहीकरण और इसे अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को सौंपने का एक निश्चित प्रयास किया।

"ऐसी स्थिति में संघ के प्रतिज्ञापत्र की सुरक्षा हेतु प्रयुक्त सशस्त्र सेनाओं के लिए सदस्यों द्वारा सामूहिक रूप से प्रभावी स्थल, नौ और वायु सेनाएँ अंशदान में देने की सभी सम्बन्धित सरकारों से संस्तुति करना परिषद् का कर्त्तव्य होगा।"

१९३५ का इटली और इथोपिया का युद्ध एक ऐसा अवसर था जब धारा १६ में वर्णित संघ के नियमों का सहारा लिया गया। भले ही संघ इथोपिया पर बलप्रयोग रोकने अथवा इटली को आक्रमण करने के लिए दण्ड देने में असमर्थ रहा परन्तु सदस्य राज्यों द्वारा धारा १६ के अधीन की गई कार्यवाही सामूहिक सुरक्षा प्राप्ति की सही दिशा में एक पग सिद्ध हुई। प्रथम तथ्य तो यह है कि ६ अक्टूबर १९३५ को इटली और अबीसीनिया के मध्य युद्ध छिड़ जाने पर लगभग ५० सरकारों ने एक बैठक करके यह सम्मति प्रकट की कि इटली ने "संघ के प्रतिज्ञापत्र की धारा १२ के अधीन नियमों की अवहेलना करके युद्ध का सहारा लिया है।" दूसरे उन सरकारों ने युद्धरत दोनों राज्यों की अपने प्रतिद्वन्द्वी के साथ प्रतियोगिता में बाधा डालने के उपाय भी किए। उदाहरणार्थ,

(अ) इटली को शस्त्र, युद्ध सामग्री और युद्ध के उपकरण निर्यात, पुनर्नियात अथवा प्रेषित करने पर नियमित प्रतिबन्ध लगा दिया गया परन्तु इथोपिया को उनकी आपूर्ति पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया।

(आ) इटली की सरकार को ऋण देने और उधार माल बेचने पर प्रतिबंध लगा दिये गये परन्तु इथोपिया को ये सुविधाएँ मिलते रहने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया।

(इ) सहकार करने वाले देशों में इटली से माल आयात करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, तथा

(ई) मूल सामग्री विशेषकर तेल को छोड़कर अन्य खनिज पदार्थ इटली को निर्यात या पुनर्निर्यात करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया परन्तु इथोपिया को उनकी आपूर्ति अप्रतिबन्धित रही।

यह कार्यवाही अन्तर्राष्ट्रीय कानून में परम्परागत तटस्थता की नीति के अपवाद का प्रतिनिधित्व करती है। यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इंग्लैंड जिन युद्धों में स्वयं भाग नहीं लिया करता था उनमें पूर्ण निष्पक्षता की नीति पालन करने में सदैव अग्रणी रहा करता था। परन्तु १९३५ में इंगलैण्ड ने अनेक कौंसिल आदेश पारित करके युनाइटेड किंगडम में रहने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रतिज्ञापत्र भंग करने वाले देशों के साथ कुछ वस्तुओं के व्यापार को (जिनको पिछले युद्धों में युद्धरत किसी एक या दोनों पक्षों के साथ किए जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी) दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया। वास्तव में यह एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक स्थिति थी कि ५० अनुबद्ध देश मिलकर बैठक करें और दोनों युद्धरत पक्षों में से एक को संधि भंगकर्ता और आक्रमणकारी के रूप में भर्त्सना करने के लिए स्पष्ट रूप से एकमत हो जाँय।

पुनः १९३५ में किए गए उपाय यदि संघ के प्रतिज्ञापत्र (की रक्षा) के लिए न होते तो तटस्थता के नियम का गम्भीर उल्लंघन माने जाते और इनसे प्रभावित राज्य को प्रतिकार अथवा इससे भी अधिक गम्भीर कार्यवाही करने का अच्छा आधार मिल जाता। इस प्रकार अपनी असफलता के बावजूद संघ सामूहिक सुरक्षा का प्रथम सिद्धान्त घोषित करने में सफल रहा। युद्ध छिड़ने के उत्तरदायित्व के प्रश्न पर परम्परागत कानूनी तटस्थता के स्थान पर संघ ने युद्ध के लिए उत्तरदायी पक्ष निश्चित करने और संघ के प्रतिज्ञापत्र का उल्लंघन करके युद्ध करने को गैर कानूनी कहकर भर्त्सना करने के ढंग की व्यवस्था की। पुनः एक संधि के अनुसार शक्ति एकत्र करके अन्तर्राष्ट्रीय अनुशासन के हाथों सौंप दिए जाने को इसने पूर्णतया कानूनी स्वरूप प्रदान किया। प्रतिज्ञापत्र ने निम्न उपायों द्वारा शान्ति बनाए रखने का प्रयत्न किया:— (अ) विवाद सुलझाने के लिये ढंग का निर्माण करके,

(आ) कुछ युद्धों को गैर कानूनी घोषित करने की प्रक्रिया निश्चित करके, और

(इ) गैर-कानूनी युद्ध छेड़ने वाले राज्य के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही करके।

लार्ड मैक्नायर (Lord Mcnair) ने ठीक ही कहा है कि "संघ ने बल प्रयोग का बहिष्कार नहीं किया वरन् केवल इसका कानूनीकरण और अराष्ट्रीयकरण कर दिया।'[११] यह सत्य है कि संघ ने बल प्रयोग का अराष्ट्रीयकरण अथवा कानूनीकरण करने का प्रयत्न किया और इस सम्बन्ध में पहला आवश्यक पग उठाकर मार्गदर्शन भी किया परन्तु व्यवहार में राज्यों ने कभी भी वास्तविक अराष्ट्रीयकरण को स्वीकार नहीं किया। १९३६ में लार्ड मैक्नायर ने स्वीकार किया कि "इसके (सामूहिक सुरक्षा के) प्रयोग का ढंग अभी भी राष्ट्रीय है, हां, इसके प्रयोग से पूर्व इसे अनिश्चित स्वरूप प्राप्त हो जाता है परन्तु करने वाला निर्णय अवश्य सामूहिक है। इस प्रकार हो जाने पर इसे जन-स्वीकृति का स्वरूप प्राप्त हो

---

११ कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अन्तर्राष्ट्रीय कानून के ह्वेवेल (Whewell) प्रोफेसर के रूप में प्रो० आर्नोल्ड डी० मैक्नायर का उद्घाटन भाषण।

जाता है परन्तु इस पर वास्तविक व्यवहार व्यक्तिगत हाथों में ही रहता है। मेरे विचार से सामूहिक सुरक्षा प्रणाली जिसकी ओर बढने के लिए सारा विश्व और सबसे पहले योरोप हाथ पाव मार रहा है, का यही तत्व है और आजकल इसका परीक्षाकाल चल रहा है।" ये विचार इटली और इथोपिया का युद्ध समाप्त होने से पूर्व उस समय प्रकट किए गए थे जब विधिवेत्ता और राजनीतिज्ञ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाए रखने के लिए आधारभूत आरक्षण के रूप मे राज्यों के अशदान से निर्मित एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना अथवा सामूहिक सेना के विषय मे विचार कर रहे थे। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् सयुक्त राष्ट्र सघ की स्थापना मे इस सबध मे एक प्रारम्भ देखा जा सकता है जिसका उचित विकास नहीं हो पाया है। एक ही अन्तर्राष्ट्रीय सगठन के सदस्य विभिन्न राष्ट्रों के अशदान से निर्मित सयुक्त राष्ट्र सघ की सेना का सयुक्त राष्ट्र सघ के झडे तले लडने का पहला उदाहरण कोरियाई कार्यवाही को माना जा सकता है। यह सुविदित है कि बडे विचार-विमर्श के पश्चात् भी सयुक्त राष्ट्र संघ ने इस विशिष्ट दिशा मे कोई उचित प्रगति नहीं की है तो भी १९६० मे कांगो संकट के समय सयुक्त राष्ट्र संघ कांगों मे अपनी कार्यवाही आरम्भ करने की स्थिति मे था। इस अवसर पर सयुक्त राष्ट्र सघ की ओर से भाग लेने वाले किसी एक राज्य द्वारा नहीं वरन् सयुक्त राष्ट्र सघ के नाम पर ही कमान सम्भाली गई थी।

दोषपूर्ण तन्त्र और प्रतिज्ञापत्र के दोषपूर्ण प्रयोग के कारण राष्ट्र सघ अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति और सुरक्षा बनाये रखने तथा सामूहिक सुरक्षा की विश्वव्यापी प्रणाली के रूप मे कार्य करने मे असफल रहा। राष्ट्र सघ कठोर अर्थों मे एक प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय सरकार निर्मित करने का प्रयास नही था। यह इस सिद्धान्त पर आधारित था कि प्रत्येक राज्य की अपनी सार्वभौम सत्ता बनी रहेगी तथा अपने सार्वभौम अधिकारों का प्रयोग करते हुए सदस्य कुछ कार्य करने और कुछ न करने के लिये सहमत रहेंगे। प्रत्येक मामले मे मतदान के समय एकमत होने की आवश्यकता, जैसा कि हम देख चुके हैं, इस सिद्धान्त का मूलतन्त्र था। इस प्रकार सघ अपने सदस्यों को कोई कार्यवाही करने के लिए किसी भी प्रकार बाध्य नहीं कर सकता था, इसका कार्य केवल सलाह देना और सस्तुति करना था। निर्णयों को अनिवार्य बनाने वाला सदस्यों के लिए कोई कार्यकारी निकाय नहीं था। इस प्रकार सघ एक विशृंखल संगठन और अपने सदस्यों के लिये एक सामूहिक नामभर था। ऐसे किसी भी सगठन की प्रभावशीलता सदस्यों के व्यक्तिगत व्यवहार तथा अपने कर्तव्यों का सम्मान करने की उनकी इच्छा और योग्यता पर निर्भर होती है। न तो व्यक्तिगत सदस्यों को एक साथ कार्य करने के लिए बाध्य किया जा सकता था और न ही बहुमत सारे निकाय की ओर से कार्य कर सकता था। सघ ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक विशृंखल सगठन के लिए अनुपयुक्त परिस्थितियों की उपस्थिति तथा भविष्य

में और अधिक संगठित आधार पर अमल किए जाने की आवश्यकता स्पष्ट कर दी थी।[15]

महान् शक्तियों के विश्वासघात ने भी संघ के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित कीं। अपनी सफलता के लिये संघ को जिन मात्र शक्तियों पर निर्भर रहना पड़ता था उनमें से संयुक्त राज्य अमरीका आरम्भ ही से इससे अलग रहा, रूस कई वर्ष बाद इसमें शामिल हुआ तथा जर्मनी, इटली और जापान ने प्रतिज्ञापत्र का उल्लंघन किया। इस सम्बन्ध में १९२८ के केलॉग ब्रियाँ (Kellogg-Briand) समझौते का उल्लेख करना आवश्यक है। ६२ राज्यों और देशों द्वारा स्वीकार कर लिए जाने और व्यवहारतः 'अपने प्रादेशिक क्षेत्र में सार्वभौम' होने के कारण इसने बड़ी आशाएँ जगा दी थीं। इसका उद्देश्य कुछ शक्तियों के संघ का सदस्य न होने के कारण होने वाली असफलता को दूर करना था। इसे कभी-कभी पेरिस शान्ति समझौता (The Peace Pact of Paris) भी कहा जाता है। इसमें केवल दो धाराएँ थीं—

(i) "राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप में युद्धत्याग" और (ii) 'सभी प्रकार के झगड़ों और विवादों का समाधान केवल शान्ति पूर्ण उपायों से किए जाने' की घोषणा करना। इसके अतिरिक्त केलॉग-ब्रियाँ समझौते ने तटस्थता की धारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया और १९३५ में ईडन (राष्ट्र संघ के मामलों के मंत्री के रूप में) ने कहा कि केलॉग-ब्रियाँ समझौता अथवा प्रतिज्ञापत्र भंग करने का अर्थ है कि प्रतिज्ञापत्र भंग करने वाले राज्य को "संघ के अन्य सदस्यों द्वारा तटस्थता के किसी भी नियम का पालन किये जाने पर बल देने का कानूनी अधिकार नहीं था।"[16] फिर भी तथ्य यह है कि १९२८ के केलॉग-ब्रियाँ समझौते को किसी भी अन्य सन्धि या समझौते की भाँति भंग किया जा सकता था और ऐसा करते ही हस्ताक्षर करने वाले देश न तो आक्रामक राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ देने और न ही तटस्थता के नियमों की अवहेलना करने को बाध्य थे। यदि महान् शक्तियाँ आक्रामक राज्य के विरुद्ध तुरन्त निर्णायक कार्यवाही करने का एक सामान्य समझौता कर लेतीं तो संसार का इतिहास ही भिन्न होता। १९३९ में संयुक्त राज्य और सोवियत संघ दूर खड़े रहे। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सार्वभौम स्वतन्त्र राज्यों के मध्य समझौता कराना सदैव एक कठिन कार्य कर रहा है। इस प्रकार सामूहिक सुरक्षा पर प्रभावी व्यवहार कराने में राष्ट्र संघ के सामने सबसे बड़ी बाधा सर्वसम्मति का नियम था और अब संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने सुरक्षा परिषद् के सदस्यों का निषेधाधिकार है और इन दोनों ने ही इन संस्थाओं को पंगु बना दिया।

---

१५ देखिये जी० श्वार्जनबर्गर 'शक्ति की राजनीति': १९५१ अध्याय १४

१६ हैन्सर्ड (कॉमन्स) vol. ३०२, पृ० ३१८ (२३ अक्टूबर, १९३५)

१३

संयुक्त राष्ट्र संघ का सैनिक तंत्र

राष्ट्रसंघ में बहुत अधिक विश्वास व्यक्त किया गया था पर इस की असफलता के पश्चात् १९३९ में एक विश्वयुद्ध छिड़ जाने पर भी मित्र-राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों ने अपना यह विश्वास नहीं त्यागा कि उसी प्रकार की कोई न कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था शान्ति बनाए रखने का सर्वाधिक अवसर प्रदान करती है।

संयुक्त राज्य अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन ने १२ अगस्त १९४१ को अटलांटिक घोषणा पत्र[1] पर हस्ताक्षर करके एक नए अन्तर्राष्ट्रीय निकाय की योजना का शुभारम्भ किया, और इस निकाय के आधारभूत सिद्धान्त निर्धारित किए तथा संयुक्त राष्ट्र-संघ के घोषणापत्र में व्यक्त 'सारे राष्ट्रों को अपनी-अपनी सीमा के भीतर सुरक्षापूर्वक रहने के साधन प्रस्तुत करने और सभी देशों के सभी मनुष्यों को भय और अभाव से मुक्त रहकर अपना जीवन व्यतीत करने का आश्वासन देने वाली शान्ति स्थापित कराने की" इच्छा का समर्थन किया।

मित्र राष्ट्रों के युद्धकालीन सम्मेलन ने १ जनवरी १९४२ को संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किए।[2] इस घोषणापत्र में मित्र राष्ट्रों ने अटलांटिक घोषणापत्र में व्यक्त सिद्धान्त स्वीकार किये।

अक्टूबर १९४३ में मास्को सम्मेलन के समय चीन, ग्रेट ब्रिटेन, सोवियत रूस और संयुक्त राज्य अमरीका के प्रतिनिधियों के मध्य "अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए सभी शान्तिप्रेमी राज्यों की सार्वभौमिक एकता के सिद्धान्त पर आधारित एक सामान्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जिसकी सदस्यता शान्ति प्रेमी सभी छोटे-बड़े राज्यों के लिये खुली रहेगी निकटतम व्यवहार्य तिथि तक स्थापित करने की आवश्यकता पर" सहमति हो गई। विश्व शान्ति संगठन के प्रस्तावों का प्रारूप निर्धारित करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य

---

१ ईगल्टन, अन्तर्राष्ट्रीय विधान, Vol. १, पृ० ३.

२ वही पृ० १

अमरीका, सोवियत संघ और चीन के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन अगस्त १९४४ में डम्बर्टन ओक्स में हुआ।

सुरक्षा परिषद में मतदान सूत्र से सम्बन्धित एक समझौता[3] जिस पर ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ ने फरवरी १९४५ में याल्टा में हस्ताक्षर किए और ये प्रस्ताव[4] अप्रैल १९४५ में सानफ्रान्सिस्को में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस का आधार बने। इस कान्फ्रेंस में संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणापत्र तैयार किया गया और २६ जून १९४५ को ५० राष्ट्रों ने इस पर हस्ताक्षर किए।

राष्ट्रसंघ इस विचार पर आधारित था कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति बनाए रखने का सर्वोत्तम उपाय सामूहिक निष्क्रिय रक्षा का एक रूप था। शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा विवाद निपटाने का प्रावधान तो किया गया परन्तु धारा १६ जिसके अधीन प्रतिबंध लागू किए जा सकते थे के अतिरिक्त प्रतिज्ञापत्र पर व्यवहार कराने की अथवा संघ की कमान में सशस्त्र सेनाओं के सामूहिक प्रयोग की कोई प्रणाली नहीं थी। वास्तव में संघ ने विवादग्रस्त राष्ट्रों के मध्य समझौता करने के कुछ प्रारंभिक प्रयत्न कर लिए जाने तक बल प्रयोग रोकने के अतिरिक्त युद्ध का बहिष्कार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणापत्र इस निश्चित सिद्धान्त पर आधारित है कि नए संगठन का मुख्य उत्तरदायित्व अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सभी सदस्यों के लिए सुरक्षा परिषद[5] द्वारा बल प्रयोग की कार्यवाही के लिए आमंत्रित किए जाने के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थिति में युद्ध से दूर रहना अनिवार्य कर दिया गया है।

संघ का एक अन्य गम्भीर दोष कुछ बड़ी शक्तियों का इसका सदस्य न होना था। किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के पूर्णतया प्रभावी होने के लिए आवश्यक है कि सभी महान शक्तियाँ इसकी सदस्य हों। बाहर रह जाने वाली शक्तियाँ अपने अलगाव के कारण शान्ति को चुनौती देने वाली संधियाँ करने को बाध्य हो जाती हैं। द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व की दशाब्दी में जर्मनी, इटली और जापान के साथ ऐसा ही हुआ था। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रभावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में बल प्रयोग के साधनों का बहुत भार आवश्यक साधन जुटाने में सक्षम कोटि वाली महान शक्तियों पर ही पड़ता है। परिणामस्वरूप ऐसी शक्तियाँ अपने सार्वभौम अधिकारों के किसी भी भाग को किसी ऐसे जो उन्हें आर्थिक, वित्तीय और सैनिक

---

3 गुडरिच हैम्ब्रो, संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणापत्र, १९४९ पृ० ५१६.

4 वही पृ० ५०२.

5 परन्तु घोषणापत्र में आत्मरक्षा का स्वाभाविक अधिकार स्वीकार किया गया है।

स्वाग के बड़े कार्यों में उलझा दे अन्तर्राष्ट्रीय निकाय को सौंपने में अवश्य सतर्क रहती हैं। परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत रूस उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध 'कार्यकारी' स्वभाव के किसी भी मामले में बाध्य करने की शक्ति प्राप्त किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में शामिल होने को तैयार नहीं थे। इस प्रकार सभी महाशक्तियों की सदस्यता सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार प्रदान किया गया।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है संघ ने अपने प्रतिज्ञापत्र में अपनी कमान में कोई अन्तर्राष्ट्रीय सशस्त्र सेना रखने का प्रावधान नहीं किया था। किसी भी वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय सेना को संसार के किसी भी भाग में कार्यवाही करने में सक्षम होना चाहिए और इसके लिये संसार में जहाजी बेड़ों, परिवहन आधारों और मरम्मत करने की सुविधाओं की आवश्यकता होती है। ऐसी सेना के पास सामग्री और साधनों का पर्याप्त भंडार तथा प्रशिक्षित सैनिकों का एक बड़ा दल सुरक्षित रहना चाहिए अत: ऐसी किसी भी सेना को राष्ट्रीय सेनाओं तथा राष्ट्रीय सार्वभौमिकता और स्वतन्त्रता के मूल्य पर ही रखा जा सकता है। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में ऐसी सेना रखना एक व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय सशस्त्र सेना का प्रस्ताव राज्यों के एक संघ के आधार पर ही व्यावहारिक प्रस्ताव बन सकता है, भले ही यह संघ अन्य मामलों में कितना ही विशृंखल क्यों न हो। रक्षा समर नीति के दबाव में सामूहिक सुरक्षा के अनेक प्रयत्न किए गए हैं, उदाहरणार्थ ब्रुसेल्स संधि, उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन और ऐसे ही अन्य संगठन इस बात का प्रतीक हैं अतः ऐसा विकास असम्भव नहीं कहा जा सकता। फिर भी घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किए जाने के समय अन्तर्राष्ट्रीय सेना का एकमात्र आधार संयुक्त राष्ट्र संघ की कमान के अधीन एक साथ कार्य करने वाली राज्यों की राष्ट्रीय सेनाएँ ही थीं।

बल प्रयोग की कार्यवाही के मार्ग में निस्सन्देह अनेक कठिनाइयाँ हैं। जिन महाशक्तियों को ऐसी सेनाओं के अधिकतर भाग के रख-रखाव का भार वहन करना पड़ता है उनके मध्य एकता बनाए रखने का कार्य बड़ा कठिन सिद्ध हुआ है। ऐसे उपायों के लिये निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाएँ अथवा नहीं यह समस्या भी बड़ी जटिल है। सर्वसम्मति को आवश्यक मान कर कभी कुछ भी करना सम्भव नहीं है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में घोरतम अपराधी को भी थोड़े-बहुत समर्थक मिल ही जाते हैं। बहुमत की स्वीकृति को पर्याप्त मानने पर राष्ट्रों को उनकी इच्छा के विरुद्ध और शायद उनके निकटतम और सर्वाधिक विश्वस्त मित्रों के विरुद्ध भी युद्ध छेड़ने के लिये विवश किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जब कभी भी किसी राष्ट्र पर नियन्त्रण भंग करने के कारण किसी प्रकार का दबाव डाला जाता है तो सामान्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है भले ही सिद्धान्त रूप में

वह इसका सदस्य रहे या न रहे और ऐसे असन्तुष्ट राज्य अपना अलग संगठन बना सकते हैं जैसाकि १९३९ में धुरी-राष्ट्रों के साथ हुआ।

सामूहिक सुरक्षा के निश्चित नैतिक उपायों द्वारा शान्ति सुनिश्चित करने की पद्धति किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणापत्र के माध्यम से इन कठिनाइयों के समाधान के लिए क्या उपाय किया इस पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अंग

संयुक्त राष्ट्र संघ के दो मुख्य अंग साधारण सभा और सुरक्षा परिषद हैं; ये लीग(League) की सभा और परिषद के उत्तराधिकारी हैं। राष्ट्र संघ में सामान्यतया सभा या परिषद में से कोई भी प्रकार की शान्ति को प्रभावित करने वाले मामलों पर विचार करने में सक्षम थी परन्तु घोषणापत्र में साधारण सभा और सुरक्षा परिषद के अलग-अलग कार्यक्षेत्रों को कठोरतापूर्वक परिभाषित करते हुए इन्हें एक दूसरे से बिल्कुल अलग रखा गया है।

साधारण सभा और सुरक्षा परिषद के अतिरिक्त धारा ७ द्वारा परिभाषित आर्थिक और सामाजिक परिषद्, संरक्षण परिषद, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और एक सचिवालय संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्य अंग हैं। इन प्रमुख अंगों के अतिरिक्त आवश्यकता होने पर घोषणापत्र के अनुसार सहायक अंग गठित करने की शक्ति भी इसे प्रदान की गई है।

साधारण सभा में संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य होते हैं और इसे शान्ति बनाए रखने सम्बन्धी किसी भी प्रश्न पर विचार-विमर्श करने की शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार यह अन्तर्राष्ट्रीय विश्व के विषयों पर जन-विचार-विमर्श का एक मंच प्रस्तुत करती है तथा विश्व-जनमत की शक्ति को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करने की अनुमति प्रदान करती है। यह मुख्य रूप से विचार-विमर्श करने वाली सभा है और इसे किसी भी विवाद में निश्चित कार्यवाही करने की शक्ति प्राप्त नहीं। फिर भी यह सामान्य कल्याण अथवा राष्ट्रों के मध्य मैत्री सम्बन्धों को क्षति पहुंचाने वाली किसी भी स्थिति के शान्तिपूर्ण समाधान के उपायों की संस्तुति कर सकती है। सुरक्षा परिषद के विचाराधीन किसी भी विवाद के सम्बन्ध में यह कोई संस्तुति तो नहीं कर सकती परन्तु इस पर विचार अवश्य कर सकती है (धारा ११२)। एक अर्थ में साधारण सभा और राष्ट्र संघ की सभा की शक्तियों में बड़ी महत्त्वपूर्ण भिन्नता है; उत्तरोक्त में प्रत्येक मतदान में एकमत की आवश्यकता का स्थान अब घोषणापत्र की धारा १८ में वर्णित आवश्यक प्रश्नों के लिए दो तिहाई बहुमत तथा अन्य सभी मामलों में साधारण बहुमत ने ले लिया है।

सुरक्षा परिषद में ११ सदस्य होते हैं। इनमें से पाँच सदस्यों अर्थात् संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ, ग्रेट ब्रिटेन, चीन और फ्रांस को परिषद में स्थायी स्थान

प्राप्त है, शेष दस का संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य सदस्यों में से दो वर्ष के लिये चुनाव होता है।[6]

संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों की अपेक्षा इस निकाय को अत्यधिक शक्ति प्राप्त है और कार्यकारी क्षेत्र में यह सर्वोपरि है। शान्ति भंग होने का खतरा होने ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आक्रमण रोकने अथवा कुचलने के लिए आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ करने का एकमात्र अधिकार इसे प्राप्त है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य सुरक्षा परिषद के निर्णयों को मानने और उन पर व्यवहार करने के लिए बाध्य हैं (धारा २५) तथा विशिष्ट समझौतों के अधीन संयुक्त राष्ट्र संघ की सशस्त्र सेनाओं को अपने भू-प्रदेश से जाने का मार्ग देना तथा आवश्यकता पड़ने पर संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए कुछ निश्चित सेनायें तैयार रखना भी सदस्यों का कर्तव्य है (धारा ४३)।

सुरक्षा परिषद् के दो मुख्य कार्य हैं, प्रथम, यह विवादों, विवादों को जन्म देने वाली स्थितियों, शान्ति के लिये खतरे और शान्तिभंग के दमन को सुलझाने के लिए सीधी कार्यवाही सम्बन्धी सभी निर्णय लेती है। द्वितीय, जिन अन्य मामलों में ऐसी कार्यवाही आवश्यक नहीं होती, उन पर भी यह निर्णय लेती है। पहली श्रेणी के मामलों पर पाचों स्थायी सदस्यों में सहमति होना आवश्यक है। सीधी कार्यवाही किए जाने से पूर्व पाच महाशक्तियों सहित सुरक्षा परिषद के कम से कम सात सदस्यों द्वारा इसका समर्थन होना आवश्यक है धारा (२७३)। यदि सुरक्षा परिषद में यह विवाद उठ जाए कि किसी विशेष मामले में एक मत की आवश्यकता है अथवा वह केवल कार्यविधि सम्बन्धी मामला है तो वर्गीकरण की प्राथमिक समस्या पर एकमत का नियम ही लागू होता है। इसे "दोहरा निषेधाधिकार" कहते हैं। जब इस बात पर सहमति हो जाती है कि कोई विषय केवल कार्यविधि सम्बन्धी ही है तो उस पर सात के बहुमत से निर्णय लिया जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के प्रावधान इस मान्यता पर आधारित है कि महाशक्तियां शान्ति में भी उसी प्रकार सहकार करती रहेंगी जैसाकि उन्होंने युद्ध के समय किया था।

स्थायी सदस्यों के एकमत होने पर ही सुरक्षा परिषद इस मामले में अपनी कार्यवाही कर सकती है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी महाशक्ति के विरुद्ध बाध्य करने वाली कोई भी कार्यवाही नहीं की जा सकती। वास्तव में यदि १६३५ में राष्ट्र संघ में भी यही प्रणाली विद्यमान होती तो अपने विरुद्ध लगाए गए प्रतिबन्धों पर इटली निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता था। दुर्भाग्य से किसी एक निश्चित भूभाग

---

६ देखिए एल० सी० ग्रोन० 'महा मनुष्य के समझौते और सुरक्षा परिषद्' ११ वर्तमान कानूनी समस्याएं, १६६० पृ० १२१, और "सुरक्षा परिषद् में प्रतिनिधित्व-एक सर्वेक्षण", १२ अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की भारतीय वर्षपुस्तक १९६२

की शान्ति के विपरीत विश्वशान्ति को वास्तविक खतरा किसी महाशक्ति के आक्रमण से ही हो सकता है और घोषणापत्र के अधीन इस पर उचित नियंत्रण करना कठिन है। निषेधाधिकार की शक्ति न होने पर भी किसी महाशक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को एक बड़े युद्ध में उलझना पड़ता और संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों द्वारा प्रतिबन्ध स्वीकार करने का मुख्य उद्देश्य किसी ऐसी स्थिति को उत्पन्न होने से रोकना ही है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के समय जो विश्व स्थिति थी उसमें निषेधाधिकार की शक्ति करना अवश्यंभावी हो सकता था परन्तु इसने १९वीं सदी के योरोप की राजनीतिक प्रदान दल बन्दी की कांग्रेस प्रणाली को न केवल पुनर्स्थापित किया है वरन् संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से इसका सारे संसार में विस्तार भी कर दिया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल उद्देश्य

घोषणापत्र की धारा १ के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखना और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शान्ति को खतरा पैदा करने वाले कारणों को दूर रखने और उनकी रोकथाम करने एवं आक्रमणकारी कार्यवाहियों अथवा शान्ति भंग के अन्य मामलों के दमन के लिये प्रभावी सहकारी कदम उठाना, तथा शान्ति भंग करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय विवादों अथवा स्थितियों का न्याय और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धान्तों के अनुरूप शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा निपटारा या समाधान करना है। इस रूप में यह धारा संघ को कानूनी अधिकार प्रदान करके सभी सदस्य-राज्यों और कुछ सीमा तक गैर-सदस्यों को भी कर्तव्य से बाध देती है। इस प्रकार संघ के कार्यों में शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई है क्योंकि इनके बिना संघ का अन्य कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं किया जा सकता। अतः यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य उचित रीति से सम्पन्न करने के लिए धारा २४ के अधीन सुरक्षा परिषद को मूलरूप से उत्तरदायी बनाया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को भय पैदा न करने वाले आतरिक झगड़ों में संघ को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। शान्ति को खतरा पैदा होने और पहले कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता होने पर संघ को सामूहिक सुरक्षा की प्रणाली पर निर्भर करना पड़ता है।

इसकी कुछ व्यवस्था तो घोषणापत्र में और कुछ धारा ४३ के अधीन की जाने वाली विशेष व्यवस्थाओं में की गई है। इन व्यवस्थाओं के अनुसार सभी सदस्य शान्ति को होने वाले खतरों और आक्रमणकारी कार्यवाही रोकने और उनका दमन करने के लिए सहयोग उपयोग करने को बाध्य है। परन्तु अभी तक ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

राज्यों की "सार्वभौमिक समानता" का सिद्धान्त

धारा २ में कहा गया है कि संघ सभी सदस्यों को "सार्वभौम समानता" के सिद्धान्त पर आधारित है। इसका अर्थ यह नहीं कि सदस्यों को असीमित प्रभुसत्ता

प्राप्त है, कुछ घटनाओं में कार्यवाही करने के लिए वे घोषणापत्र द्वारा बाध्य हैं। उदाहरणार्थ, कहीं शांति भंग होने पर सुरक्षा परिषद् किसी भी सदस्य से सैनिक और आर्थिक साधनों की मांग करने के साथ-साथ उसकी जनशक्ति और उसके भू-प्रदेश का प्रयोग भी कर सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ सदस्यों को विशेष अधिकार प्राप्त हैं। पांच महाशक्तियों को सुरक्षा परिषद् और संरक्षण परिषद् में स्थायी स्थान प्राप्त हैं। सुरक्षा परिषद् में किसी एक महाशक्ति का ऋणात्मक मत पांच छोटी शक्तियों के ऋणात्मक मतों के समान प्रभावकारी होता है। घोषणापत्र के किसी भी संशोधन के लिए पांचों महाशक्तियों का एकमत होना आवश्यक है, अन्य सदस्य यदि संघ से त्यागपत्र न देना चाहें तो उन्हें बहुमत के सामने झुकना पड़ता है। महाशक्तियों के निषेधाधिकार के अतिरिक्त सुरक्षा परिषद् सहित संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी अंग बहुमत से ही निर्णय लेते हैं।

घोषणापत्र में स्पष्ट कहा गया है कि आवश्यक रूप से किसी राज्य के घरेलू अधिकार-क्षेत्र में आने वाले मामलों में हस्तक्षेप करने अथवा किसी सदस्य को ऐसे मामले घोषणापत्र के अधीन समाधान हेतु प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करने का संयुक्त राष्ट्र संघ को कोई अधिकार नहीं है। फिर भी इस सिद्धान्त का उद्देश्य बाध्य करने वाले उपायों को लागू कराने में व्याघात पैदा करना नहीं है। बहुधा एक-दूसरे को आच्छादित करने वाले घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार-क्षेत्रों को परिभाषित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ, सीमा शुल्क और आयात-निर्यात कर नीतियों तथा जातीय अल्पसंख्यकों के साथ व्यवहार का अत्यधिक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिघात हो सकता है। दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के मामले में महासभा ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि वह इस बात से संतुष्ट हो जाए कि राज्यों के सम्बन्धों को साधारणतया घरेलू माने जाने वाले मामलों में वास्तविक हानि पहुंची है तो वह अपनी सक्षमता के प्रति आपत्तियों की अनदेखी कर सकती है। किसी घरेलू संघर्ष के परिणामस्वरूप शान्ति को खतरा पैदा होने, शान्ति भंग होने अथवा आक्रमण-कार्यवाही हो जाने पर संयुक्त राष्ट्र संघ हस्तक्षेप कर सकता है। इन विभिन्न प्रावधानों से पता चलता है कि सदस्यों की सार्वभौमिक समानता का सिद्धान्त वास्तविक की अपेक्षा सैद्धान्तिक है।

विवादों का शांतिपूर्ण समाधान

(धारा ३३ से धारा ४१ तक)

सामूहिक सुरक्षा तन्त्र स्थापित करने वाले घोषणापत्र के प्रावधानों के वर्णन का प्रयास करने से पूर्व विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान सम्बन्धी कार्य-विधि का जिक्र करना आवश्यक है क्योंकि सामूहिक सुरक्षा प्रणाली के अधीन सैनिक कार्यवाही करने से पूर्व इस पर व्यवहार किया जाता है। घोषणापत्र का मूल उद्देश्य विवादों के समाधान में युद्ध की भूमिका समाप्त करके अन्तर्राष्ट्रीय मतभेदों को शान्तिपूर्वक सुलझाने सम्बन्धी मूलभूत नियम की स्थापना कर देना है। विवादों को शान्तिपूर्वक

सुलझाने के इस मूल सिद्धान्त की स्थापना हेतु ही सामूहिक सुरक्षा के अधीन सैनिक कार्यवाही की जाती है। संयुक्त राष्ट्र संघ किसी भी मूल्य पर शान्ति स्थापित कराने वाली संस्था है और यदि शान्ति का मूल्य युद्ध ही हो तो यह उसके लिए भी तैयार रहता है। लगता है संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल उद्देश्य यही है।

घोषणापत्र की ३३ से ३८ तक धाराएँ विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान से सम्बन्धित हैं। धारा ३३ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को खतरे में डालने वाले किसी भी विवाद में उलझे पक्षों को पहले "बातचीत, जाँच-पड़ताल, मध्यस्थता, समझौते, पंच-फैसले, न्यायिक निर्णय, क्षेत्रीय एजेन्सियों और व्यवस्थाओं की सहायता से अथवा अपनी पसंद के अन्य शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा" विवाद का समाधान खोजना चाहिए। आवश्यकता होने पर सुरक्षा परिषद् सम्बन्धित पक्षों से अपना विवाद इन उपायों द्वारा सुलझाने का आग्रह करेगी। इस प्रकार विवादग्रस्त पक्ष और सुरक्षा परिषद् दोनों ही संयुक्त रूप से विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए उत्तरदायी हैं। ये समवर्ती पर स्वतन्त्र कार्य हैं और किसी को दूसरे द्वारा पहल किए जाने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। यद्यपि घोषणापत्र में गैर-सदस्यों पर कानूनी उत्तरदायित्व थोपने का कोई प्रयास नहीं किया गया है फिर भी गैर-सदस्यों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों का कानूनी दृष्टि से नहीं वरन् शक्ति की वास्तविकता के अनुसार पालन सुनिश्चित कराने का उत्तरदायित्व धारा २ (६) के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ पर ही डाला गया है। इस प्रकार धारा ३३ द्वारा सारे संसार में स्वार्थपूर्ति हेतु बल प्रयोग के बहिष्कार का प्रयत्न किया गया है।

यदि ऐसे विवादग्रस्त किसी पक्ष के मत में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को खतरा है तो उसे शान्तिपूर्ण समाधान के उपाय लागू करने पड़ते हैं। दूसरे पक्ष द्वारा यह उपाय न अपनाए जाने पर विवाद को सुरक्षा परिषद् के सम्मुख रखना पड़ता है और वह इसके विषय में अपना निर्णय देती है। सुरक्षा परिषद् के समक्ष लाया जाने वाला कोई विवाद शान्ति के लिए खतरनाक है अथवा नहीं इसका निर्णय स्वयं परिषद् करती है। ऐसा करना कार्यविधि सम्बन्धी मामला न होने के कारण इस निर्णय पर भी कोई स्थायी सदस्य निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है। यदि सुरक्षा परिषद् को यह विश्वास हो जाए कि विवादग्रस्त पक्ष शान्तिपूर्ण समझौते के उपाय नहीं कर रहे हैं तो उसे या तो धारा ३६ और ३७ के अधीन समझौते के उचित उपायों की संस्तुति करनी पड़ती है अन्यथा दोनों पक्षों से धारा ३३ के अधीन अपनी पसंद के शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा विवाद निपटाने का आग्रह करना पड़ता है।

धारा ३४ के अनुसार सुरक्षा परिषद् को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि किसी भी विवाद अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और विवाद को जन्म देने वाली किसी भी स्थिति की जाँच-पड़ताल करके यह निश्चय करे कि ऐसे विवाद और स्थिति का बना रहना अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरा है अथवा नहीं। इस प्रकार इस धारा के अधीन किसी भी विवाद का स्वभाव निश्चित करने के लिए

सुरक्षा परिषद् अपनी पहल पर कार्यवाही कर सकती है। इस प्रकार धारा ३३ के अधीन विचारणीय 'विवाद' और अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष एवं विवाद को जन्म देने वाली स्थिति में अन्तर किया गया है। इस धारा के अधीन गलत और सही का प्रश्न नहीं है। सुरक्षा परिषद् केवल शान्ति के लिए खतरे के अस्तित्व के प्रश्न की ही जाँच-पड़ताल करती है। ऐसी जाँच-पड़ताल कार्यविधि सम्बन्धी न होने के कारण इस पर निषेधाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। भारत और पाकिस्तान के मध्य काश्मीर सम्बन्धी विवाद की जाँच-पड़ताल के लिए इसी धारा के अधीन आयोग नियुक्त किया गया था।

धारा ३५ के अनुसार कोई भी सदस्य सुरक्षा परिषद् अथवा महासभा का ध्यान 'विवाद' अथवा (इसे जन्म देने वाली) स्थिति' के अस्तित्व की ओर आकर्षित कर सकता है। घोषणापत्र में वर्णित शान्तिपूर्ण समझौते का उत्तरदायित्व स्वीकार करके कोई गैर-सदस्य भी ऐसा ही कर सकता है। सामान्यतया विवादग्रस्त पक्षों में से एक पक्ष द्वारा ही विवाद की सूचना दी जाती है। परन्तु स्थिति की सूचना कभी-कभी अविवादग्रस्त राज्यों द्वारा भी दी जाती है। उदाहरणार्थ जनवरी १९४६ में यूक्रेन ने इन्डोनेशिया की स्थिति के विषय में सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकर्षित किया था, तथा अप्रैल १९४६ में पोलैंड ने सुरक्षा परिषद् से स्पेन की स्थिति पर विचार-विमर्श करने का आग्रह किया था।

धारा ३३ में वर्णित किसी भी प्रकार के विवाद के निपटारे के लिए उसकी किसी भी अवस्था में सुरक्षा परिषद् धारा ३६ के अनुसार उचित कार्यवाही या उपाय की संस्तुति कर सकती है।

धारा ३३ में वर्णित किसी भी प्रकार के विवाद में उलझे हुए पक्ष यदि उस धारा में वर्णित किसी भी उपाय द्वारा समझौता करने में असफल रहते हैं तो उस समय धारा ३७ के अनुसार मामला सुरक्षा परिषद् के सम्मुख लाया जाता है। यदि सुरक्षा परिषद् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी विवाद के बने रहने से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को भय पैदा हो जाएगा तो यह धारा ३६[7] के अधीन कार्यवाही करने अथवा समझौते की शर्तों की संस्तुति करने का निश्चय करती है। धारा ३४ के अधीन यह निश्चय कर लिए जाने पर भी कि अमुक विवाद शान्ति के लिए खतरा है, धारा ३३ में निर्देशित कार्यविधि की असफलता का प्रतिवेदन प्राप्त होने पर सुरक्षा परिषद् को पुनः इस विषय में विचार करना पड़ता है। भारत और पाकिस्तान के मध्य काश्मीर विवाद के समय सुरक्षा परिषद् ने यह निर्णय किया कि इस धारा के अधीन अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया है तथा शान्ति

---

७ घोषणापत्र के हिन्दी अनुवाद में यहाँ धारा ३७ का सदर्भ देकर शान्ति को चुनौती, शान्ति-भंग और आक्रामक कार्यों में की जाने वाली कार्यवाही से सम्बन्धित अध्याय ६ का उद्धरण दिया गया है।

और व्यवस्था बनाए रखने के लिए विस्तृत संस्तुतियाँ कीं।

धारा ३३ से ३७ के अधीन प्राप्त अपनी शक्ति को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाए बिना किसी विवाद में सम्बन्धित सभी पक्षों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर सुरक्षा परिषद् धारा ३८ के अनुसार उनके शान्तिपूर्ण समझौते के लिए संस्तुति कर सकती है।

घोषणापत्र के असैनिक प्रतिबन्ध :

शान्ति को खतरा, शान्तिभंग और आक्रामक कार्यों के सम्बन्ध में कार्यवाही पर विचार करने वाली घोषणापत्र की धाराओं में धारा ३९ पहली है। इनमें से किसी के अस्तित्व का निश्चय करके उनके सम्बन्ध में संस्तुतियाँ अथवा धारा ४१ और ४२ के अधीन बल प्रयोग के कार्य का निर्णय करना इस धारा के अधीन सुरक्षा परिषद् का कार्य हो जाता है। संघ (League) द्वारा आक्रमण को परिभाषित करने के सभी प्रयास असफल होने पर घोषणापत्र की रचना इस मान्यता के आधार पर की गई है कि आक्रमण के सभी मामलों को समाहित करने वाली कोई परिभाषा देना सम्भव नहीं है अतः शान्ति को खतरे की आशंका के सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार सुरक्षा परिषद् को देना सर्वोत्तम समझा गया। किसी साथी सदस्य के साथ युद्ध की गैर-कानूनी कार्यवाही हो जाने पर संघ के अधीन, सदस्यों को परिषद् अथवा सभा की पूर्व संस्तुति के बिना धारा १६ के अधीन प्रतिबन्ध लागू करने पड़ते थे। परन्तु घोषणापत्र के अधीन सबसे पहले सुरक्षा परिषद् को निर्णय लेना पड़ता है। धारा ५१ के अधीन आत्मरक्षा के स्वाभाविक अधिकार के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों को शान्ति को खतरा, शान्तिभंग या आक्रामक कार्य होने सम्बन्धी सुरक्षा परिषद् के निर्णय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, साथ ही उन्हें परिषद् द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धों और उनके स्वरूप की भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यदि किसी राज्य ने आत्मरक्षा के आधार पर कार्यवाही आरम्भ कर दी है तो सुरक्षा परिषद् द्वारा इसके विपरीत निर्णय दिए जाने तक वह इसे जारी रख सकता है।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी निर्णय इसके सभी सदस्यों पर लागू होते हैं फिर भी निषेधाधिकार के प्रयोग द्वारा बल प्रयोग के उपायों पर व्यवहार रोका जा सकता है। इस प्रकार यदि सुरक्षा परिषद् का कोई स्थायी सदस्य विवाद में एक पक्ष हो तो वह सुरक्षा परिषद् को शान्ति को खतरा, शान्तिभंग या आक्रामक कार्य की घोषणा करने से रोक सकता है। सुरक्षा परिषद् द्वारा एक बार ऐसी स्थिति की उपस्थिति का निर्णय कर लिए जाने पर वह सम्बन्धित पक्षों को धारा ४० के अधीन अस्थायी उपाय स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकती है, समझौते की सिफारिश कर सकती है अथवा प्रतिबन्ध लागू करने के लिए आवश्यक कदम उठा सकती है।

धारा ४० के अनुसार सुरक्षा परिषद् संस्तुति करने अथवा धारा ४३ के अधीन उपायों का निर्णय करने से पूर्व विवादग्रस्त पक्षों को अस्थायी उपाय मानने

के लिए बाध्य कर सकती है। इस प्रकार किसी विवाद को बढ़ने से रोकने के लिए एक प्रकार की प्राथमिक आज्ञा का प्रावधान किया गया है। इस धारा के अनुसार सुरक्षा परिषद् किसी भी पक्ष से किसी क्षेत्र से अपनी सेनाएँ वापस बुलाने का आग्रह कर सकती है। धारा ४१ के अनुसार सुरक्षा परिषद् अपने निर्णयों को लागू कराने के लिए सशस्त्र सेनाओं के प्रयोग के अतिरिक्त अन्य उपाय निश्चित करके संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों से इन उपायों को लागू करने का आग्रह कर सकती है। सुरक्षा परिषद् द्वारा एक बार धारा ३६ के अधीन शान्ति को खतरा, शान्तिभंग अथवा आक्रामक कार्य की उपस्थिति का निर्णय कर लिए जाने पर तथा शान्ति बनाए रखने के लिए इसकी संस्तुतियों का कोई प्रभाव न होने पर इसे बल प्रयोग का उपाय अपनाना पड़ता है। धारा ४१ के अधीन ऐसे उपाय सैनिक उपाय नहीं होते परन्तु अन्य उपायों तथा आर्थिक और कूटनीतिक दबाव द्वारा शान्ति बनाए रखने का प्रयास किया जाता है।

असैनिक प्रतिबन्ध आर्थिक और कूटनीतिक दो प्रकार के होते हैं। घोषणापत्र में आर्थिक प्रतिबन्धों की विस्तृत सूची तो नहीं दी गई है परन्तु किसी राज्य की सचार-व्यवस्था भंग करने से लेकर इसे बिलकुल अलग-थलग करने के कुछ उदाहरण अवश्य दिए गए हैं। परिस्थिति के अनुसार ये उपाय एक एक करके अथवा एक साथ ही लागू किए जा सकते हैं। कूटनीतिक प्रतिबन्धों में नाराजगी प्रकट करने के कोमल उपाय यथा कूटनीतिक मिशनों के अध्यक्षों को वापस बुलाना, जैसाकि स्पेन के साथ किया गया था[८] से लेकर कूटनीतिक सम्बन्ध पूर्णतया भंग कर देना तक शामिल हैं। आर्थिक और कूटनीतिक प्रतिबन्धों के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि परिषद् "सदस्यों से उन्हें लागू करने का आग्रह कर सकती है" परन्तु सैनिक प्रतिबन्धों के विषय में यह स्वयं "कार्यवाही कर सकती है।" इसमें अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाए रखने के सैनिक और असैनिक उपाय लागू किए जाने का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। परिषद् के पास राजदूत वापस बुलाने और सीमाएँ बन्द करने का साधन न होने का कारण उपरोक्त उपाय सदस्य-राज्यों द्वारा ही लागू किए जाते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि धारा ४३ के अनुसार विशिष्ट समझौतों पर हस्ताक्षर न होने के कारण किसी विशिष्ट स्थिति का सामना करने के लिए तदर्थ आधार पर सदस्यों द्वारा प्रदान में दी गई सेनाओं के अतिरिक्त सुरक्षा परिषद् के पास अपनी कोई सेनाएँ नहीं होतीं।

सामूहिक सैनिक कार्यवाही के प्रावधान

(धारा ४२ से ४६)

यदि सुरक्षा परिषद् यह समझे कि धारा ४१ के अधीन किए गए उपाय

८ देखिये एल० सी० ग्रीन "स्पेनी दुविधा", १२ संसार के मामले, १९४६,

अपर्याप्त हैं तो यह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने या पुनर्स्थापित करने के लिए धारा ४२ के अधीन नौसेना या स्थल सेना द्वारा आवश्यक कार्यवाही कर सकती है। इसमें संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों की स्थल, नौ और वायु सेनाओं द्वारा प्रदर्शन, नाकाबंदी तथा अन्य कार्यवाहियाँ शामिल हो सकती हैं। संघ के प्रतिज्ञापत्र में सदस्यों पर कुछ असैनिक प्रतिबन्धों की भाँति सैनिक प्रतिबन्ध लागू करने का विशिष्ट उत्तरदायित्व नहीं सौंपा गया था अतः धारा ४२ में संघ के प्रतिज्ञापत्र की अपेक्षा कहीं अधिक प्रगतिशील प्रावधान किया गया है। प्रतिज्ञापत्र के अनुसार संघ के सदस्यों के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वे परिषद् द्वारा वाञ्छनीय समझे जाने वाले सैनिक उपाय आवश्यक रूप से लागू करें। प्रतिज्ञापत्र की धारा १० और धारा १६ (२) के अनुसार परिषद् केवल आवश्यक उपायों की संस्तुति ही कर सकती थी और ऐसी संस्तुति के लिए भी सभी सदस्यों का एकमत से समर्थन आवश्यक था।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का घोषणा-पत्र दो महत्त्वपूर्ण बातों में संघ की प्रणाली से आगे है। प्रथम तो सुरक्षा परिषद् को वायु, नौ और स्थल सेनाओं के प्रयोग के संबंध में सर्वसम्मति के बिना भी निर्णय लेने का अधिकार है। धारा २७ (३) के अनुसार स्थायी सदस्यों की सहमति सहित किन्हीं भी सात सदस्यों के बहुमत से निर्णय किया जा सकता है। यह सत्य है कि सभी सदस्यों की सर्वसम्मति के स्थान पर अब केवल स्थायी सदस्यों की सहमति ही आवश्यक मानी गई है परन्तु इसे प्राप्त करना भी उतना ही कठिन है, भले ही सुरक्षा परिषद् के व्यवहार में मतदान के समय किसी स्थायी सदस्य की अनुपस्थिति को उसकी 'सहमति' मान लिया जाए। इसके अतिरिक्त मतदान के समय परिषद् कक्ष से किसी स्थायी सदस्य की अनुपस्थिति के कारण भी मतदान अवैध नहीं माना जाता। वास्तव में १९५० में सोवियत संघ की अनुपस्थिति के कारण ही सुरक्षा परिषद् कोरिया के सम्बन्ध में कोई निर्णय ले सकी थी। धारा २५ के अनुसार सुरक्षा परिषद् द्वारा एक बार निर्णय लिए जाने पर स्पष्ट उत्तरदायित्व निश्चित हो जाते हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों से उनका निष्ठापूर्वक पालन करने की अपेक्षा की जाती है।

धारा ४२ में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए एकीकृत सेना के प्रयोग का प्रावधान तो किया गया है परन्तु इस बात का कोई संकेत नहीं किया गया है कि यह सामूहिक सेना किस प्रकार एकत्र की जायगी। धारा ४३ में सेना एकत्र करने के विशिष्ट उपाय का प्रावधान किया गया है। इसमें यह निर्धारित किया गया है कि ऐसी सेना एकत्र करने के लिए सुरक्षा परिषद् को 'यथाशीघ्र' अपने और सदस्यों के समूह के मध्य विशेष समझौते करने पड़ेंगे। हस्ताक्षर करने वाले राज्यों को अपनी सामान्य सांविधानिक कार्यविधि के अनुसार इन समझौतों की पुष्टि करनी पड़ेगी। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ की सामूहिक

सुरक्षा प्रणाली में घोषणापत्र के अधीन सैनिक समझौतों की व्यवस्था की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा उत्पन्न होने पर तथा ऐसे समझौते होने से पूर्व संक्रमण-कालीन तंत्र का प्रावधान धारा १०६ में किया गया है। उस स्थिति में संघ केवल पाँच महाशक्तियों की कार्यवाहियों पर ही निर्भर कर सकता है। धारा १०६ के अनुसार "उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से आवश्यक कार्यवाही करने के सम्बन्ध में एक दूसरे से तथा अवसर के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य सदस्यों से भी विचार-विमर्श करना पड़ता है।" संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र के अधीन वर्तमान सामूहिक सुरक्षा के संगठन में धारा ४३ के अधीन समझौतों का न होना एक गम्भीर दोष है।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिये सेनाओं के सामूहिक प्रयोग के सम्बन्ध में घोषणापत्र के निर्माताओं ने तीन विकल्प रखे थे। पहला, *'राष्ट्रीय सेनाओं के ऊपर या उनके स्थान पर एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय सेना' की* स्थापना से सम्बन्धित था। दूसरा, 'विशिष्ट उद्देश्यों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय निर्देशन के अधीन रखे गए सैनिक दस्तों' की प्रणाली की स्थापना से सम्बन्धित था। तीसरे विकल्प में 'राष्ट्रीय सेनाओं द्वारा उनके राष्ट्रीय सामरिक निर्देशन और विन्यास-कौशल-कमान में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किए बिना एक प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय निर्देशन के अधीन' सामूहिक कार्यवाही का प्रावधान किया गया था। संघ (League) के प्रतिज्ञापत्र में तीसरे प्रकार की सामूहिक सेना का प्रावधान किया गया था परन्तु इस पर कभी व्यवहार नहीं किया गया। संघ (League) की असफलता के कारण तीसरे प्रकार की व्यवस्था से कुछ अधिक करने की आवश्यकता स्पष्ट हो गई थी। पहले विकल्प द्वारा सदस्य-राज्यों की सार्वभौमिकता का अत्यधिक उल्लंघन होता था अतः इसे अस्वीकार कर दिया गया तथा घोषणापत्र के अधीन दूसरे विकल्प को बड़े बहुमत से स्वीकार कर लिया गया। यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य सुरक्षा परिषद् को हर प्रकार की सहायता और सुविधाओं सहित सशस्त्र सेनाओं के दस्ते देने पर पहले ही सहमत हो जाएँगे। अतः धारा ४३ के अधीन ऐसे समझौते करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है परन्तु अभी तक ऐसे समझौते न होने का भी बड़ा कानूनी महत्त्व है।

ऐसा कहा जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सगठन पर संयुक्त राष्ट्र संघ की III/३ समिति ने इसका यह अर्थ स्वीकार किया है कि धारा ४३ के अधीन सुरक्षा परिषद् से ये विशिष्ट समझौते किए बिना किसी सदस्य को धारा ४२ के अधीन सैनिक कार्यवाही करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। परन्तु यह तर्क भी दिया गया है कि धारा २५, ३६ और ४२ की भाषा अत्यन्त स्पष्ट होने के कारण सैनिक कार्यवाही किए जाने से पूर्व ऐसे समझौते होना आवश्यक नहीं रह जाता। महासभा के २६ नवम्बर १९४७ के प्रस्ताव को फिलस्तीन पर लागू करने सम्बन्धी सुरक्षा

परिषद् की बहस में इस बात का एक कानूनी दृष्टान्त मिल जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका के प्रतिनिधि ने यह स्पष्ट कर दिया कि "घोषणापत्र की धारा ४३ की शर्तों के अनुसार सुरक्षा परिषद् को सशस्त्र सेनाएं उपलब्ध कराने के सम्बन्ध में अभी तक कोई समझौता न होने"[९] के कारण कोई भी सैनिक कार्यवाही करने से पूर्व घोषणापत्र के अधीन विचार-विमर्श करना आवश्यक है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि धारा ४३ के अधीन कल्पित किसी विशिष्ट समझौते के अभाव में भी कार्यवाही करने के लिए धारा ४२ के अधीन सामूहिक सेना एकत्र की जा सकती है। यह सत्य है कि धारा ४२ में वायु, नौ और स्थल सेनाओं का स्रोत स्पष्ट नहीं किया गया है परन्तु उपर्युक्त धारा में 'सुरक्षा परिषद् के निर्देशन में एक स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय सशस्त्र सेना के गठन और प्रयोग'[१०] का निषेध करने वाली कोई बात नहीं की गई। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में १९४८ में दिए गए ट्रिग्वेली के भाषण से भी इस दृष्टिकोण की पुष्टि होती है जिसमें उसने महासचिव द्वारा "संयुक्त राष्ट्र की छोटी रक्षा सेना"[११] भरती करने की सम्भावना का समर्थन किया था।

धारा ४३ में परिकल्पित समझौतों में जितने अंशदान का प्रावधान किया गया है उससे अधिक देने के लिए कोई सदस्य बाध्य नहीं था, इस तर्क का औचित्य स्वीकार करते हुए लाउटरपाख्ट[१२] (Lauterpacht) ने यह संकेत किया है कि सदस्य राज्यों द्वारा 'धारा ४२ के अधीन सैनिक कार्यवाही करना' धारा ४३ के अधीन किए गए समझौतों पर पूर्णतया निर्भर नहीं था। उसका सुझाव है कि इनके अभाव में भी सम्बन्धित सदस्य "घोषणापत्र के अधीन अपना कर्त्तव्य-पालन करने

९ U. N. Doc. S/PV २५३, पृ० ४३.

१० गुडरिच और हैम्ब्रो 'संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र,' १९४९, पृ० २८१

११ इस सम्बन्ध में 'संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र का भाष्य' १९५०, पृ० ९६ पर बेंटविच और मार्टिन भी इस से सहमत हैं कि 'घोषणापत्र में परिषद् को अन्तर्राष्ट्रीय सेना भरती करने और बनाए रखने से रोकने वाली कोई बात नहीं है; धारा ४३ (१) के शब्दों से भी जहाँ परिषद् के अधीन कार्यरत राष्ट्रीय दस्तों को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने का एक मात्र उपाय न मानकर उन्हें केवल सदस्यों का 'अंशदान' माना गया है इस दृष्टिकोण को समर्थन मिलता है।' अन्तर्राष्ट्रीय कानून संघ १९६० की हैम्बर्ग कान्फ्रेंस में घोषणापत्र समिति का प्रतिवेदन तथा जी० श्वर्जनबर्गर का "संयुक्त राष्ट्रसंघीय सेना की समस्यायें" १२ वर्तमान कानूनी समस्यायें, १९५९, पृ० २४७ भी देखिए।

१२ ओपनहाइम 'अन्तर्राष्ट्रीय कानून' Vol २, सातवां सम्करण, धारा ५२ fb. पृ० १६८.

के सर्वोत्तम उपाय के सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद् में विचार-विमर्श करने के लिए बाध्य हैं।" इस प्रकार धारा ४२ और ४३ के अनुसार वह सुरक्षा परिषद् के निर्देशन में एक स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय सेना की सम्भावना को अस्वीकार नहीं मानता। परन्तु वास्तव में धारा ४३ के अधीन 'विशिष्ट उद्देश्यों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय निर्देशन में रखे गये राष्ट्रीय सैनिक दस्तों की' प्रणाली ही अपनाई गई है। घोषणापत्र की धारा ४५ का भी यही उद्देश्य प्रतीत होता है क्योंकि इसमें कहा गया है कि "सदस्य तुरन्त उपलब्ध राष्ट्रीय वायुसेना के दस्तों को संयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय बल प्रयोग की कार्यवाही के लिए एकत्र कर देंगे जिससे संयुक्त राष्ट्र संघ आवश्यक सैनिक उपाय कर सके।"

कोरियायी संघर्ष में सामूहिक सैनिक कार्यवाही

संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की छत्रछाया में सामूहीकृत सेना के प्रयोग का प्रथम उदाहरण कोरियायी संघर्ष में मिलता है। अतः प्रस्तावित भिन्न-भिन्न उपायों और राष्ट्रीय सैनिक दस्तों के अंशदान एकत्र करने के तरीकों का केवल ऐतिहासिक ही नहीं वरन् उतना ही व्यावहारिक महत्त्व भी है, अतः उनका वर्णन किए बिना यह विचार-विमर्श अधूरा ही रहेगा।

कोरियायी कार्यवाही के समय १९५० में सुरक्षा परिषद् की विशेष प्रार्थना पर संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा नामांकित एक संचालक के अधीन 'संयुक्त राष्ट्र संघ के झण्डे तले संयुक्त राष्ट्र संघ की सेना' के रूप में लड़ने वाले 'राष्ट्रीय दस्तों' की प्रणाली अपनाई गई थी। यह सब ७ जुलाई १९५०[13] को स्वीकृत एक प्रस्ताव के अनुसार है जिसमें सुरक्षा परिषद् ने (सोवियत संघ की अनुपस्थिति में) यह संस्तुति की "कि सेना और अन्य सहायता प्रदान करने वाले सभी सदस्य संयुक्त राज्य अमरीका के अधीन एकीकृत कमान को ऐसी सेनाएँ उपलब्ध करायेंगे, संयुक्त राज्य अमरीका से ऐसी सेना का संचालक नामांकित करने की प्रार्थना करेंगे, और उत्तरी कोरिया की सेनाओं के विरुद्ध अभियान में एकीकृत कमान को भाग लेने वाले राष्ट्रों के झण्डों के *साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र संघ के झण्डे का प्रयोग करने का अधिकार* प्रदान करेंगे।" सुरक्षा परिषद् ने संयुक्त राज्य अमरीका से एकीकृत कमान के अधीन की जाने वाली कार्यवाही का प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का भी आग्रह किया।

जब १९५० में संसार को पहली बार दक्षिण कोरिया पर आक्रमण होने का पता चला तो सुरक्षा परिषद् ने धारा ३९ के अधीन पहला पग उठाया।[14] उत्तरी

१३ सुरक्षा परिषद् के व्यवहार का संग्रह १९४६, १९५१, १९५४, पृ० ३५६.

१४ देखिए एल० एम० गुडरिच 'कोरिया' १९५६, एल० सी० ग्रीन 'कोरिया और संयुक्त राष्ट्र संघ' ४ (NS), विश्व मामले, १९५०, पी० बी० पॉटर 'कोरियायी स्थिति के कानूनी पक्ष' ४४ A J I L, १९५०, संयुक्त राष्ट्रसंघ "संयुक्त राष्ट्रसंघ ने कोरियायी चुनौती का किस प्रकार सामना किया," १९५३

कोरिया की कार्यवाही द्वारा शान्ति भंग होने की औपचारिक रूप से घोषणा करके सुरक्षा परिषद् ने उत्तरी कोरिया के अधिकारियों से आक्रामक कार्यवाही तुरन्त बंद करके अपनी सेनाएँ ३८वीं समानान्तर (सीमा) तक लौटा लेने का आग्रह किया।[१५] इसके पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने सभी सदस्यों से घोषणापत्र की धारा २ (५) के अनुसार इस प्रस्ताव का पालन कराने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को सभी प्रकार की सहायता देने का आग्रह किया। उत्तरी कोरिया द्वारा पहले प्रस्ताव पर व्यवहार न किए जाने पर सुरक्षा परिषद् ने अगला प्रस्ताव पारित किया जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों से कोरिया गणतन्त्र को सशस्त्र आक्रमण का सामना करने और अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए आवश्यक सहायता देने की संस्तुति की।[१६] केवल संस्तुति मात्र होने से इसका कोई वास्तविक प्रभाव नहीं पड़ा। संयुक्त राज्य अमरीका से संयुक्त राष्ट्र का झण्डा फहराने के लिए अधिकृत एक संचालक नामांकित करने का आग्रह करते हुए ७ जुलाई १९५० का प्रस्ताव पास करके तीसरा महत्त्वपूर्ण पग उठाया गया। इस प्रस्ताव में सदस्य राज्यों से संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा प्रस्तुत एकीकृत कमान के अधीन अपनी सशस्त्र सहायता का अंशदान देने की संस्तुति भी की गई। १४ जुलाई १९५० को उत्तरी कोरिया के विरुद्ध परिषद् की कार्यवाही का समर्थन करने वाले सभी ५२ सदस्य-राज्यों से संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्थल सेनाओं के रूप में प्रभावी युद्धकारी सहायता प्रदान करने की एक और आवश्यक अपील करके महासचिव ने चौथा पग उठाया। ली (Lie) ने मित्र सदस्य-राष्ट्रों को सूचित किया कि इस विषय में संयुक्त राज्य अमरीका 'संयुक्त राष्ट्र संघ की सभी सदस्य सरकारों से सीधे विचार-विमर्श' के लिए प्रस्तुत रहेगा। एक प्रेस कान्फ्रेंस में उसने इस बात पर बल दिया कि कोरिया में संयुक्त राष्ट्र संघ को उपलब्ध कराई जाने वाली सेनाएँ केवल 'सांकेतिक' नहीं वरन् 'प्रभावी' सेनाएँ होनी चाहिए। पुनः महासभा की राजनीतिक समिति ने १७ मई १९५१ को संयुक्त राज्य अमरीका के प्रतिनिधि द्वारा प्रस्तुत चीन और उत्तरी कोरिया को सामरिक वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबंध लगाने सम्बन्धी एक प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव पर टीका-टिप्पणी न करने वाले केवल थोड़े से राज्यों और सोवियत गुट के अतिरिक्त सभी सदस्यों के उत्तर महासभा द्वारा विधिवत् पारित इस प्रतिबन्ध-प्रस्ताव की भावना के अनुरूप थे।[१७] संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गई उपर्युक्त अपीलों की सहज और उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया हुई क्योंकि बड़ी संख्या में सदस्य-राष्ट्र अपनी घरेलू आवश्यकताएँ पूरी करने के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ को उत्तरी कोरिया के विरुद्ध अधिकाधिक सैनिक, आर्थिक और अन्य प्रकार

१५ २५ जून १९५० का प्रस्ताव, ऊपर उद्धृत संग्रह, पृ० ३५५.

१६ २७ जून १९५० का प्रस्ताव, वही, पृ० ३५६

१७ ए० ५०० (V)

की सहायता देने के लिए सहमत हो गए। इस टिप्पणी के साथ कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में किसी संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना का निर्माण "संयुक्त राष्ट्र संघ के मध्यस्थता कार्य की अपेक्षा उसके अनिवार्य कार्य पर बल देगा" तथा "शान्ति बनाए रखने के लिए उचित मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार करने में सहायक नहीं होगा" के साथ भारत ने घायल और बीमार कर्मचारियों की सेवा करने के लिए एक एम्बुलेन्स इकाई संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंप दी। उसने यह भी कहा कि भारतीय सेना का गठन केवल आंतरिक सुरक्षा हेतु ही किया गया है और इसमें समुद्र पार सेवा के लिए अभियानकर्त्ता तत्वों का अभाव है। सिद्धान्त रूप में कोई आपत्ति न होने पर भी भारत की वर्तमान वित्तीय अवस्था में ऐसे तत्वों का निर्माण करना असम्भव होगा।

यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा बनाए रखने के लिए सामूहिक रक्षा गठित करने सम्बन्धी संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ के सुझावों तथा घोषणाओं का संक्षिप्त विवरण देना अप्रासंगिक न होगा। अचेसन (Acheson) ने अक्टूबर १९५० में 'विश्व सुरक्षा सेना' के निर्माण की अपील करते हुए युद्ध रोकने के लिए एक चार-सूत्री योजना प्रस्तुत की—

(१) शान्ति भंग या आक्रामक कार्य होने पर यदि सुरक्षा परिषद् को कार्यवाही करने से रोक दिया जाए तो महासभा की आपत्कालीन बैठक चौबीस घंटे की सूचना पर बुलाने का प्रावधान करना।

(२) जिस क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष की सम्भावना हो उसके तुरन्त एवं स्वतन्त्र निरीक्षण हेतु तथा वहाँ से प्रतिवेदन भेजने के लिए महासभा द्वारा किसी भी राज्य में उसके आमंत्रण या उसकी सहमति से जाने वाली 'सुरक्षा गश्त' की स्थापना करना।

(३) प्रत्येक सदस्य राष्ट्र की सशस्त्र सेनाओं में संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से तुरन्त कार्यवाही करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त एक संयुक्त राष्ट्र इकाई या इकाइयाँ नामांकित करने की एक योजना। ऐसी इकाइयाँ संगठित, प्रशिक्षित एवं सुसज्जित करने के लिए एक संयुक्त राष्ट्र सैनिक सलाहकार की नियुक्ति का सुझाव दिया गया। अचेसन ने इस बात पर बल दिया कि जबतक वे सेनाएँ जिनका घोषणापत्र की धारा ४३ के अधीन प्रावधान किया गया है, संयुक्त राष्ट्र को उपलब्ध न हो जायें, तब तक इन राष्ट्रीय इकाइयों की स्थापना विश्वव्यापी सुरक्षा-प्रणाली के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

(४) घोषणापत्र के उद्देश्यों और सिद्धान्तों पर व्यवहार कराने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सामूहिक कार्यवाही के माध्यम से—सशस्त्र सेनाओं के प्रयोग सहित—प्रयुक्त साधनों का अध्ययन और उन पर प्रतिवेदन करने के लिए महासभा

द्वारा एक समिति की स्थापना करना।[18]

सोवियत प्रतिनिधि ने संयुक्त राज्य अमरीका के उपर्युक्त प्रस्तावों का प्रतिरोध करते हुए तीन सूत्री योजना प्रस्तुत की। इसमें किसी सामूहिक सेना के गठन का जिक्र तो नहीं था परन्तु स्वयं महाशक्तियों द्वारा अपनी सशस्त्र सेनाएं कम करने का सुझाव दिया गया था।[19]

३ नवम्बर १९५० को महासभा ने 'अचेसन योजना' के एक संशोधित रूप को 'शान्ति प्रस्ताव हेतु संगठन' के नाम से स्वीकार कर लिया।[20] महासभा ने प्रस्ताव किया :—

(१) कि शान्ति को खतरा, शान्तिभंग या आक्रामक कार्य होने पर यदि सर्वसम्मति का अभाव सुरक्षा परिषद् द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के अपने प्राथमिक उत्तरदायित्व का पालन करने में बाधक हो तो महासभा तुरन्त इस विषय पर विचार करेगी और आवश्यकता पड़ने पर इसके लिए आपात-कालीन बैठक भी बुला सकेगी;

(२) अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के किसी भी क्षेत्र की स्थिति पर विचार करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए एक शान्ति निरीक्षण आयोग की स्थापना करेगी;

(३) सदस्यों से अपनी सशस्त्र सेनाओं में सुरक्षा परिषद् या महासभा की संस्तुति पर संयुक्त राष्ट्र संघ की सेवा के लिए उपलब्ध इकाइयाँ रखने की संस्तुति करेगी;

(४) ऐसी इकाइयों के सम्बन्ध में सदस्यों को परामर्श देने के लिए सुरक्षा परिषद् से सैनिक विशेषज्ञों की एक नामावली तैयार करने की प्रार्थना करेगी;

(५) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए प्रयुक्त साधनों के विषय में सुरक्षा परिषद् अथवा महासभा को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए एक सामूहिक उपाय समिति की स्थापना करेगी।

सामूहिक उपाय समिति ने अपने प्रतिवेदन[21] में निम्नलिखित संस्तुतियाँ कीं :—

(अ) सभी सदस्य-राज्य अपने-अपने प्रदेशों में संयुक्त राष्ट्र संघ की सेवा के लिए तुरन्त उपलब्ध कराई जाने योग्य प्रशिक्षित और सुसज्जित सेनाएँ रखेंगे;

(आ) शान्तिभंग या आक्रामक कार्य का सामना करने के लिए सदस्य राज्यों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ को तुरन्त दी जाने वाली सहायता में विलम्ब कराने वाले

---

१८ महासभा कार्यालय दस्तावेज, पाँचवा सत्र, पृ० २४.

१९ वही, पृ० ८१-५.

२० प्रस्ताव ३७७ (V) संयुक्त राष्ट्र के अंगों के व्यवहार का संग्रह Vol. I पृ० ३१८.

२१ संयुक्त राष्ट्र संघ के दस्तावेज ए/१८२२ महासभा कार्यालय दस्तावेज, छठा सत्र, परिशिष्ट १३.

सभी प्रावधानों को दूर करने के लिए अपने कानूनों की समीक्षा करेंगे,

(इ) कोरिया जैसे किसी अन्य आक्रमण के समय किसी एक राज्य अथवा राज्यों के समूह को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विधिवत् अधिकार प्राप्त "कार्यकारी सैनिक अधिकरण" के रूप में नियुक्त कर दिया जाना चाहिए। यह अधिकरण कार्यवाही के समन्वयन और निर्देशन की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र की नीति के ढाँचे में इसकी ओर से कार्य करेगा और इस प्रकार इस पर "संयुक्त राष्ट्र सेनाओं के सामरिक नियन्त्रण और निर्देशन का" पूर्ण उत्तरदायित्व होगा, और

(ई) प्रस्तावित कार्यकारी सैनिक अधिकरण के अधीन सेवारत सेनाओं को "संयुक्त राष्ट्र संघीय सेनाएँ" कहा जाना चाहिए।

इस सम्बन्ध में इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि 'समिति ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भरती की गई और स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय कमान वाली एक संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना की सम्भावित स्थापना पर भी संक्षेप में विचार किया, परन्तु इसके विचार में ऐसी सेना का निर्माण प्रशासनिक, वित्तीय और सैनिक दृष्टि से अव्यावहारिक था।"[२२]

सोवियत गुट के विरोध के बावजूद महासभा ने जनवरी १९५२[२३] में उपर्युक्त संस्तुतियों पर आधारित एक और प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें सभी सदस्य देशों से महासभा की संस्तुति पर किसी भी आक्रमणकारी के विरुद्ध प्रयोग की जाने वाली संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन सेवारत सशस्त्र सेनाएँ तैयार रखने हेतु आवश्यक पग उठाने का आग्रह किया गया। इस प्रस्ताव से महासभा का यह दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रस्ताव अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए सामूहिक सुरक्षा प्रणाली गठित करने के उद्देश्य से सामूहिक सेना एकत्र करने का प्राथमिक पग है।

आधारभूत तथ्य यही है कि कोरिया में लड़ने वाली सामूहिक सेना चाहे किसी प्रकार की रही हो, किसी आक्रमणकारी को दण्ड देने के लिए ऐसी सेना का गठन नहीं किया जा सकता था, यदि संयुक्त राज्य अमरीका जैसी एक महाशक्ति इस विषय में पहल करने के साथ-साथ पर्याप्त जनशक्ति और धन का अपव्यय करके संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से 'बल प्रयोग की कार्यवाही का' तर्कसंगत परिणाम निकालने के लिए संघर्ष न करती रहती। इस प्रकार गठित सामूहिक सेना सुरक्षा परिषद् की कोई स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय सेना न होकर "राष्ट्रीय दस्तों" के रूप में थी

---

२२ एल एम. गुडरिच और ए पी साइमन्स 'संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखना' १९५५ पृ० ४२३

२३ प्रस्ताव ५०३ (VI) ३५९, प्रारम्भिक गोष्ठी, १२ जनवरी १९५२ देखिए (GAOR) छठा सत्र, परिशिष्ट संख्या २० (A/2119), पृ० २–३.

अतः कार्यवाही का संचालन निश्चित अंशदान देने वाले राज्य अथवा राज्यों को सौंपना आवश्यक था।

अन्य सभी सदस्य-राज्यों की तुलना में संयुक्त राज्य अमरीका का अंशदान सर्वाधिक होने के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ की सेनाओं की सामूहीकृत कमान संयुक्त राज्य अमरीका के हाथों ही सौंपनी पड़ी थी। सुरक्षा परिषद् का तत्सम्बन्धी प्रस्ताव संयुक्त राज्य अमरीका से 'ऐसी सेनाओं का संचालक नामांकित करने की' प्रार्थना करता है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संचालक की नियुक्ति करने वाला अधिकरण निहितार्थ से उसे पदमुक्त करने वाला अधिकरण भी बन जाता है। जैसाकि राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा जनरल मैकआर्थर को पदमुक्त किए जाने से स्पष्ट हो गया। कोरिया में कार्यवाही संचालन में संयुक्त राज्य अमरीका की प्रधान भूमिका भी इससे स्पष्ट हो जाती है। वास्तव में यह बात ध्यान देने योग्य है कि कोरिया में युद्ध का सामरिक निर्देशन सुरक्षा परिषद् द्वारा नहीं वरन् अंशदान देने वाली शक्तियों के किसी संयुक्त सेनाध्यक्ष तन्त्र के बिना संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा किया गया था। सुरक्षा परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना जनरल मैकआर्थर की पदमुक्ति के अतिरिक्त यालू बिजलीघर जैसे महत्त्वपूर्ण केन्द्रों पर सामरिक बमवर्षा सहित कार्यवाही के संचालन पर संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति का सर्वोच्च नियंत्रण था। यह कार्य सामूहिक रक्षा प्रणाली के अधीन बल प्रयोग की कार्यवाही के आदर्शवादी सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं था क्योंकि यदि कार्यवाही का संचालन किसी ऐसे सदस्य के हाथ में छोड़ दिया जाए जो सामूहिक प्रणाली के अन्य सदस्यों के साथ विचार-विमर्श द्वारा कार्य न करे तो जाने-अनजाने अपनी किसी कार्यवाही द्वारा वह युद्ध ज्वाला को उन दूरगामी परिणामों तक भड़का सकता है जिसके लिए अन्य सदस्य तैयार न हों। अतः इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि आक्रमण का सामना करने वाली सामूहिक कार्यवाही को सफल बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का संयुक्त राज्य अमरीका जैसा उत्साही सदस्य सदैव उपलब्ध न हो, परन्तु इसके साथ ही सदा यह भय भी बना रहता है कि अनियंत्रित उत्साह किसी ऐसी स्थिति को पहुँचा सकता है जो सामूहिक सुरक्षा में अंशदान देने वाले राज्यों को स्वीकार्य न हो। इस प्रकार सामूहिक सुरक्षा उपलब्ध करना गम्भीर कठिनाइयों से भरा है और कोरियाई संघर्ष के बाद अभी भी इसे प्रायोगिक स्थिति में ही माना जा सकता है।

कोरियायी प्रयोग के पश्चात् ऐसे अनेक अवसर आए हैं जब संयुक्त राष्ट्र संघ के नाम पर या इसकी छत्रछाया में किसी न किसी प्रकार की सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी है।

इनमें सबसे अधिक रुचिकर मामला १९५६ के अन्त में स्वेज कार्यवाही सम्बन्धी है। कोरियायी स्थिति के विपरीत इस अवसर पर सुरक्षा परिषद् में निषेधाधिकार प्राप्त दो शक्तियों (फ्रांस और यूनाइटेड किंगडम) ने अनेक कारणों

से जिनका वर्णन करना यहाँ आवश्यक नहीं है[२४] संयुक्त राष्ट्र संघ के एक अन्य सदस्य के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। शान्ति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव के अनुसार महासभा ने २ नवम्बर १९५६ को एक आपत्कालीन सत्र की बैठक में युद्ध विराम की अपील की [२५] और इसके दो दिन पश्चात् एक अन्य प्रस्ताव पारित किया [२६] जिसमें महासचिव से पूर्व-प्रस्ताव की शर्तों के अनुसार "संघर्ष समाप्त कराने और इसका निरीक्षण करने के लिए एक आपत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना गठित करने की योजना" ४८ घन्टे के भीतर प्रस्तुत करने को कहा गया। महासचिव ने इतनी तत्परता से कार्य किया कि ५ नवम्बर को एक अन्य प्रस्ताव पारित करके [२७] "संघर्ष समाप्त कराने और इसका निरीक्षण करने के लिए एक आपत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय सेना की एक संयुक्त राष्ट्र संघीय कमान" स्थापित करदी और मध्यपूर्व में संयुक्त राष्ट्र संघ शान्ति निरीक्षण संगठन के सेनाध्यक्ष को इस कमान का प्रमुख नियुक्त कर दिया। कमान के प्रमुख को तुरन्त संयुक्त राष्ट्र संघ शान्ति निरीक्षण संगठन की प्रेक्षक सेनाओं में से सीमित संख्या में अधिकारी भरती करने का अधिकार प्रदान किया गया, साथ ही उसे महासचिव की सलाह से विभिन्न सदस्य-राज्यों से अतिरिक्त संख्या में आवश्यक अधिकारियों की सीधी भरती करने का भी अधिकार प्रदान किया गया। यह जान लेना रुचिकर है कि यह प्रस्ताव केवल अधिकारियों की भरती से सम्बन्धित था और इसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया था कि सुरक्षा परिषद् के पाँच स्थायी सदस्यों का कोई भी नागरिक इसमें भरती नहीं किया जाएगा।

सेना के गठन का कार्य महासचिव पर छोड़ दिया गया था और इस विषय[२८] पर अपने द्वितीय[२९] प्रतिवेदन में उसने एक ऐसी सेना का पक्ष लिया जिसका मुख्य उत्तरदायी अधिकारी संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्त किया जाएगा और जो महासभा और/अथवा सुरक्षा परिषद् के प्रति उत्तरदायी होगा। यह अधिकारी किसी एक राष्ट्र की नीतियों से मुक्त होगा और महासचिव से उसका सम्बन्ध शान्ति

२४ उदाहरणार्थ देखिए एल सी ग्रीन "सशस्त्र संघर्ष, युद्ध और आत्मरक्षा" 7 Archiv des Volkerrecht, 1957. पृ० ३६७, "संयुक्त राष्ट्र संघ का दोहरा मानदण्ड" विश्वमामलों की वर्ष पुस्तक १९५७, पृ० १०४.

२५ प्रस्ताव ९९७ (E S—1)

२६ प्रस्ताव ९९८ (E S—1)

२७ प्रस्ताव १००० (E S—1)

२८ दस्तावेज A/3302, ६ नवम्बर, १९५६

२९ पहले प्रतिवेदन (दस्तावेज A/3289) में सदस्यों से केवल उसका प्राथमिक विचार-विमर्श किया गया है और कमान की स्थापना की आवश्यकता बताई गई है।

निरीक्षण संगठन के सेनाध्यक्ष के समकक्ष होगा। हैमरशोल्ड ने संकेत किया कि 'आपात्कालीन' सेना के रूप में यह निश्चय ही 'संघर्ष समाप्त कराने और उसका निरीक्षण करने वाली' एक स्थायी सेना थी। आगे चलकर उसने संकेत किया कि यह सेना 'शान्ति के लिए संगठित होने' के प्रस्ताव के अधीन कार्य करेगी, अतः सम्बन्धित पक्षों की सहमति प्राप्त करना आवश्यक होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि "सेना के लिए अपनी इकाइयाँ अंशदान में देने वाले पक्षों की सहमति से महासभा को ऐसी सेना गठित करने का अधिकार तो है, परंतु वह इस सेना से किसी राज्य की सरकार की अनुमति के बिना उस राज्य के भू-प्रदेश में रहने अथवा कार्य करने की प्रार्थना नहीं कर सकती। (फिर भी) इसमें सुरक्षा परिषद् द्वारा ऐसी सेना के संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र के ६ वें अध्याय में निर्धारित सीमा में प्रयोग करने की सम्भावना का बहिष्कार नहीं किया गया है।" परन्तु सेना गठित करने सम्बन्धी प्रस्तावों का ६ वें अध्याय से कोई सम्बन्ध नहीं। महासचिव ने यह भी संकेत किया कि उसके अनुसार इन प्रस्तावों का यह अर्थ है कि इस सेना को सैनिक पहल करने का कोई अधिकार नहीं है। गैर-मिस्री सेनाओं के मिस्र में रहते समय और उनके वहाँ से चले जाने पर वहाँ व्यवस्था बनाए रखने में सहायता करने के लिए मिस्र की सहमति से ही यह सेना वहाँ प्रवेश करेगी। इसका स्तर प्रेक्षक सेना से अधिक पर युद्धकारी सेना से कम होगा। वास्तव में इसे बीच-बचाव कराने वाली[३०] सेना ही कहा गया है।

सेना की संरचना और विस्तृत संगठन के विषय में महासचिव का विचार था : "कि कुछ भी हो प्रारम्भिक अवस्था में सेना में केवल कुछ बटालियनें ही सम्मिलित की जाएँगी और वे सेना देने में देर न करने वाले देशों या विदेशों के समूहों से ली जाएँगी। मेरा यह प्रयत्न है कि सेना में संतुलित संरचना का प्रावधान करने की दृष्टि से इकाइयों के चुनाव के लिए विस्तृत नामावली तैयार की जाय। इसके अतिरिक्त नियोजन और संगठन सम्बन्धी निर्णय बहुधा कमान के प्रमुख और उसके स्टॉफ के विवेक पर निर्भर होंगे।"[३१] महासचिव द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव महासभा[३२] ने स्वीकार कर लिए और सेना के नियोजन और दूसरी कार्यवाही के उन पहलुओं, जिन पर अभी तक महासभा ने विचार नहीं किया है और जो कमान प्रमुख के सीधे

३० देखिए जी० श्वार्जनबर्गर 'संयुक्त राष्ट्रसंघीय सेना की समस्याएँ' १२ वर्तमान कानूनी समस्याएँ, 1959, पृ० 247, पृ० 252 पर

३१ यह प्रतिवेदन और अन्य अनेक प्रासंगिक दस्तावेज अन्तर्राष्ट्रीय और तुलनात्मक कानून की ब्रिटिश संस्था ने अपने 'संयुक्त राष्ट्र संघ आपात्कालीन सेना : आधारभूत दस्तावेज' (ई० लाउटरपाक्ट द्वारा संग्रहीत) 1960 में प्रकाशित किए हैं।

३२ प्रस्ताव 1001 (E S—1), 7 नवम्बर 1956.

उत्तरदायित्व क्षेत्र में नहीं आते हैं, का विचार करने के लिए एक परामर्शदात्री समिति स्थापित कर दी। इसने सेनाओं का वित्तीय भार उठाने सम्बन्धी महासचिव के ये प्रस्ताव भी मान लिए कि इकाइयों की साज-सज्जा और वेतन के भुगतान का उत्तरदायित्व उन्हें देने वाले राज्य पर ही होगा परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य सभी व्यय संयुक्त राष्ट्र संघ के सामान्य बजट के बाहर से किये जाएँगे। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र संघ ने आपात्कालीन कोष का एक विशेष लेखा आरम्भ किया गया है जिसमें सदस्यों को अपने बजट-उत्तरदायित्वों के अनुरूप ही अंशदान देना होगा। परन्तु अनेक सदस्यों, विशेषकर सोवियत गुट के सदस्यों ने अपना उत्तरदायित्व पूरा करने से इन्कार कर दिया।

परामर्शदात्री समिति में विचार-विमर्श के उपरांत महासचिव ने फरवरी १९५७ में सेना के नियम जारी किए। इनके अनुसार सेना का 'संचालक' वह जनरल अधिकारी होता है जिसे महासभा 'संयुक्त राष्ट्र कमान' का अध्यक्ष नियुक्त करती है और अपने मुख्यालय स्टाफ सहित संचालक को ही 'संयुक्त राष्ट्र कमान' कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ का झण्डा लहराने और महासचिव के साथ विचार-विमर्श के पश्चात् संचालक द्वारा निर्धारित विशिष्ट राजाक धारण करने के लिए अधिकृत सेना संयुक्त राष्ट्र संघ का सहायक अंग होती है। कमान और सदस्य राज्यों द्वारा कमान के अधीन रखे गये सभी सैनिक कर्मचारी इसमें शामिल होते हैं। यद्यपि कर्मचारी अपनी राष्ट्रीय सेवा में रहते हैं परन्तु सेना में संयुक्त होने पर वे 'संयुक्त राष्ट्र संघ की सत्ता के अधीन अन्तर्राष्ट्रीय कर्मचारी हो जाते हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सेना को सौंपे गए कार्यवाही सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न करने तथा इस सेना के अधीन रखी गई सैनिक टुकड़ियों की नियुक्ति और विस्तार के लिये उत्तरदायी संचालक के निर्देश उन पर लागू होने लगते हैं। संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंगों से मिलने वाले निर्देश संचालक और कमान शृंखला के माध्यम से महासचिव द्वारा प्रेषित किए जाएँगे। सभी प्रशासनिक, कार्यकारी और वित्तीय मामलों में महासचिव को अधिकार प्राप्त होगा और वही सरकारों से सेना सम्बन्धी समझौते की वार्ता और समझौता करने के लिए उत्तरदायी होगा। सेना की कार्यवाही तथा सुविधाओं, आपूर्ति और सहायक सेवाओं के प्रावधान की व्यवस्था करने के लिए संचालक को प्रत्यक्ष अधिकार प्राप्त होगा। इस अधिकार का प्रयोग वह महासचिव की सलाह से करेगा।"[33]

मोटे तौर पर ऐसा लगता है कि राजनीतिक और सैनिक शाखाओं में विभक्त संयुक्त राष्ट्र संघीय आपात्कालीन सेना का तंत्र किसी लोकतंत्रीय राज्य के सैनिक संगठन के समान है। राजनीतिक नियोजन संयुक्त राष्ट्र संघ अर्थात् सुरक्षा परिषद् या महासभा के हाथ में है और ये दोनों राजनीतिक अंग हैं क्योंकि इनमें उपस्थित

---

३३ दस्तावेज ST/SGB/UNEF/1, 20 फरवरी, 1957.

सैनिक व्यक्ति भी अपने राज्य का राजनीतिक प्रतिनिधि ही होता है। महासचिव की तुलना रक्षामंत्री से की जा सकती है परन्तु वह उत्तरोक्त की राजनीतिक भूमिका से वंचित होता है तथा उसे सामान्यतया मंत्री की अपेक्षा अपने विवेक से कार्य करने की कहीं अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। परामर्शदात्री समिति उसकी रक्षा समिति के रूप में कार्य करती है और उसका सर्वोच्च संचालक उसका सेनाध्यक्ष भी होता है। सैनिक क्षेत्र में केवल उत्तरोक्त ही उत्तरदायी होता है यद्यपि उसे संगठन के सैनिक और राजनीतिक अंगों के मध्य कड़ी का कार्य करने वाले अपने मंत्री-महासचिव-की सलाह से कार्य करना पड़ता है।[३४]

संयुक्त राष्ट्र संघ की दूसरी दिलचस्प सैनिक कार्यवाही जून १९५८ में हुई। लेबनान ने अपने मामलों में संयुक्त अरब गणराज्य द्वारा तथाकथित हस्तक्षेप की शिकायत सुरक्षा परिषद् से की और उस पर विद्रोही दस्तों को सहायता और शस्त्र देने का आरोप लगाया। एक प्रस्ताव में जिसके समय सोवियत संघ अनुपस्थित रहा, सुरक्षा परिषद् ने लेबनान की सीमा में सैनिकों की गैर-कानूनी घुसपैठ और युद्ध सामग्री की आपूर्ति की रोकथाम सुनिश्चित करने के लिए लेबनान में एक प्रेक्षक दल भेजने का निर्णय किया,[३५] महासचिव को आवश्यक कदम उठाने का अधिकार दिया और प्रेक्षक दल से आग्रह किया कि वह महासचिव के माध्यम से परिषद् को सूचित रखे। इस प्रस्ताव पर व्यवहार करते हुए महासचिव ने 'विस्तृत राजनीतिक और सैनिक अनुभव वाले' व्यक्तियों को लेबनान में प्रेक्षक के रूप में जाने को आमंत्रित किया और तुरन्त कार्यवाही के रूप में यरूशलम स्थित शान्ति निरीक्षण संगठन से इस मुख्य दल की सहायता के लिए एक और दल गठित किया। उत्तरोक्त दल को तुरन्त लेबनान पहुँच जाने का आदेश दिया गया। लगभग छः सप्ताह में कोई १०० प्रेक्षक लेबनान पहुँच गये।

लेबनान स्थित संयुक्त राष्ट्र प्रेक्षक दल और मिस्र स्थित आपातकालीन सेना में अन्तर भली-भांति समझ लेना चाहिए। उत्तरोक्त युद्ध-विराम और सेनाओं की वापसी का निरीक्षण करने वाली एक बीच-बचाव सेना थी जिसे दो युद्धकारी सेनाओं के मध्य रखा गया था। लेबनान स्थित दल सीमित 'निगरानी' कार्य करने वाला एक प्रेक्षक दल मात्र था। वास्तव में इसका कार्य इतना सीमित था कि एक मास के भीतर ही लेबनान के राष्ट्रपति की प्रार्थना पर उस देश की अखंडता सुनिश्चित करने

---

३४ संयुक्त राष्ट्र संघ की तदर्थ और स्थायी सेनाओं सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर ग्राई की 'संयुक्त राष्ट्र संघ शान्ति सेना' 1957 में विचार-विमर्श किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून संघ की हैम्बर्ग कान्फ्रेंस, 1960 के प्रतिवेदन में 'संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना की कानूनी समस्याओं' पर विचार-विमर्श भी देखिए।

३५ दस्तावेज S/4023, 11 जून 1958.

और प्रेक्षक दल से सहकार करने के लिये संयुक्त राज्य अमरीका ने अपनी सेनाएँ भेज दीं। परन्तु इस दल ने गैर-लेबनानी सेनाओं से सम्पर्क रखने का विचार अस्वीकार कर दिया क्योंकि उस भू-प्रदेश में सुरक्षा परिषद् के आदेश के अधीन केवल यह दल ही रखा गया था।

सुरक्षा परिषद् में अनेक सदस्यों ने संयुक्त राज्य अमरीका की सेनाओं के वहाँ जाने की आलोचना की और स्वीडन ने एक प्रस्ताव में कहा कि जिन परिस्थितियों के कारण प्रेक्षक दल भेजा गया था अब वे पर्याप्त रूप में बदल गई हैं अतः अगली सूचना प्राप्त होने तक महासचिव को दल की कार्यवाही पर रोक लगा देनी चाहिए। जापान ने प्रेक्षक दल की शक्ति बढ़ाने का प्रस्ताव रखा क्योंकि ऐसा करने से संयुक्त राज्य अमरीका की सेनाओं की वापसी के लिए आवश्यक स्थिति पैदा हो सकेगी। इस प्रस्ताव में संयुक्त राज्य अमरीका की सेनाओं की तुरन्त वापसी का आग्रह नहीं किया गया था अतः इस पर सोवियत संघ ने निषेधाधिकार का प्रयोग किया। परिणामस्वरूप महासचिव को घोषणा करनी पड़ी कि किसी भी रिक्तता की पूर्ति करना उसका कर्त्तव्य है और दल की कार्यवाही जारी रखने से इसे और भी विकास का अवसर मिलेगा।

नवम्बर १९५८ में लेबनान ने सुरक्षा परिषद् की कार्यसूची पर से अपनी शिकायत हटाने की प्रार्थना की तथा दल ने इसे सौंपा गया कार्य सम्पन्न हुआ मान कर इसे वापस बुलाने का प्रतिवेदन किया।[३६] कार्यवाही समाप्त करने सम्बन्धी महासचिव के पत्र[३७] के कारण परिषद् इस पर सहमत हो गई।

मध्यपूर्व की स्थिति के कारण आस्ट्रिया[३८] ने उस क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघीय पुलिस द्वारा समर्थित एक स्थायी संयुक्त राष्ट्र आयोग गठित करने का प्रस्ताव रखा। संयुक्त राष्ट्र आपातकालीन सेना सम्बन्धी प्रयोग[३९] के अनुभवों पर अपने प्रतिवेदन में महासचिव द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ की किसी भी स्थायी सेना का स्पष्ट विरोध किये जाने के कारण यह प्रस्ताव गिर गया। महासभा की राजनीतिक समिति द्वारा बिना किसी विचार-विमर्श के यह प्रतिवेदन स्वीकार कर लिये जाने के कारण राष्ट्रपति आइजनहावर का 'एक स्थायी शान्ति सेना'[४०] सम्बन्धी प्रस्ताव भी गिर गया।

कांगो में संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाही शायद ऐसी सैनिक कार्यवाही थी

---

३६ —दस्तावेज S/४११४

३७ —दस्तावेज S/४११५.

३८ —द टाइम्स, ७ अगस्त १९५८.

३९ —दस्तावेज A/३९४३, ९ अक्टूबर १९५८.

४० —द टाइम्स, ७ नवम्बर १९५८.

जिसने सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और जन-भावना जागृत की। बेल्जियन कांगो द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त कर लिये जाने पर विभेदकारी दलों ने अपनी-अपनी सरकारें गठित कर लीं। इस कारण देश में गृह युद्ध फैल गया और नागरिक प्रशासन एवं सार्वजनिक व्यवस्था पूर्णतया भंग हो गई। जुलाई १९६० में कांगो सरकार ने जो अभी तक संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्य नहीं बन पाई थी, महासचिव से प्रशासन के क्षेत्र में तकनीकी सहायता और सैनिक सहायता देने की माँग की। महासचिव ने सुरक्षा परिषद् का ध्यान इस माँग की ओर आकर्षित किया और कांगो में बेल्जियम की सेनाओं की सतत उपस्थिति को आन्तरिक एवं सम्भावित अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का भी कारण मानते हुये उसने सुरक्षा परिषद् में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक सेना कांगो में भेजने का प्रस्ताव किया। इस सेना को आत्मरक्षा की सीमाओं से आगे बढ़ने तथा अपने को आंतरिक संघर्ष में एक पक्ष बनाने वाली कार्यवाही करने की आज्ञा नहीं थी। उसने यह भी स्पष्ट किया कि इस सेना में वे ही कर्मचारी होने चाहिए जिनकी राष्ट्रीयता अनावश्यक जटिलता न पैदा करे। कहने का तात्पर्य यह है कि पाँच स्थायी सदस्यों के अतिरिक्त जहाँ तक सम्भव हो अफ्रीकी सेनाओं को ही इसमें शामिल किया जाना चाहिए। सुरक्षा परिषद् ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें बेल्जियम की सेनाओं की वापसी कराने और जब तक सरकार की राय में राष्ट्रीय सुरक्षा सेनाएँ अपना कर्तव्य पालन करने में सक्षम न हो जायें तब तक आवश्यक सैनिक सहायता प्रदान करने का अधिकार महासचिव को दिया।

स्वेज संकट के समय स्थापित दृष्टान्त का अनुसरण करते हुए महासचिव ने फिलस्तीन में संयुक्त राष्ट्र संघीय शान्ति निरीक्षण संगठन के सेनाध्यक्ष को कांगो में संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाही का संचालक नियुक्त कर दिया। यरुशलम से इस अधिकारी और उसके स्टाफ के आगमन तक घाना की सेनाओं का अंशदान सबसे अधिक होने के कारण अस्थायी रूप से कमान घाना रक्षा स्टाफ के अध्यक्ष को ही सौंप दी गई। बाद में कमान आयरिश अंशदान का नेतृत्व करने वाले अधिकारी को सौंप दी गई परन्तु महासचिव का अपना सेनाध्यक्ष सेना के साथ संयुक्त रहा। १९६० के अंत तक कांगो में २७ देशों से आमन्त्रित २०,००० सैनिक थे, आयरलैण्ड, स्वीडन तथा अमरीका और एशिया के १३ देशों से बड़े-बड़े दस्ते आये थे। केवल सुरक्षात्मक अस्त्रों से सज्जित होने, बेल्जियमवासियों द्वारा वापस लौटने में ढीलापन दिखाने, और अलग होने वाली कटंगा सरकार द्वारा सेना को अपने क्षेत्र में प्रवेश करने से मनाही कर देने के कारण शीघ्र ही इस सेना के लिए कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुईं। इसके अतिरिक्त जुलाई में संयुक्त राष्ट्र सेनाओं के अंग ट्यूनिशिया की सेना ने लुलुआबुर्ग नगर पर अधिकार करके कांगो के ३००० सैनिकों को हथियार डालने पर बाध्य कर दिया।

१९६१ के आरम्भिक महीनों में कांगो की आंतरिक राजनीतिक समस्याओं का यह परिणाम हुआ कि जिन राज्यों ने संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना के लिए अंशदान दिये थे वे संघर्षरत दलों का पक्ष लेकर सेना की कार्यवाहियों की आलोचना करने लगे क्योंकि उनमें से अनेक राज्यों का यह मत था कि यह सेना प्रधानमंत्री के समर्थकों के विरुद्ध कार्य कर रही है। प्रधानमंत्री ने ही सबसे पहले संयुक्त राष्ट्र संघ से सहायता की माँग की थी परन्तु जब महासभा की प्रमाणपत्र समिति ने संयुक्त राष्ट्र संघ में राष्ट्रपति का प्रतिनिधित्व स्वीकार कर लिया तो उसने प्रधान मंत्री को पदमुक्त कर दिया। परिणामस्वरूप भाग लेने वाले अनेक राज्यों ने इस सेना से अपने कर्मचारी वापस बुला लेने का विचार व्यक्त किया। स्थिति सम्भालने के उद्देश्य से जनवरी १९६१ के अंत में महासचिव ने अपना पहला दृष्टिकोण कि संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना को कांगो के आन्तरिक मामलों से अलग रहना चाहिए, बदल दिया। उसने अपने आदेश विस्तृत करने का सुझाव दिया जिससे वह कांगो की सेना को राजनीति से बाहर रखने के लिए आवश्यक पग उठा सके। उसका यह सुझाव अस्वीकार कर दिया गया क्योंकि इसे स्वीकार कर लिये जाने पर संयुक्त राष्ट्र संघ की सेना को कांगो की सेना से हथियार छीनने के लिए बल प्रयोग करना पड़ता। कार्यवाही के आरम्भिक दिनों में कार्यवाहक सेनापति द्वारा ऐसा करने के सभी प्रयत्नों को संयुक्त राष्ट्र के असैनिक अधिकारियों ने निष्फल कर दिया था।

संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाही कांगो के प्रधानमंत्री पैट्रिस लुमुम्बा की प्रार्थना पर आरम्भ की गई थी। उसकी हत्या के पश्चात् सुरक्षा परिषद् ने संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना को राजनीतिक गिरफ्तारियाँ रोकने अथवा जिन राजनीतिक बन्दियों की हत्या होने का सन्देह था उनकी मुक्ति का प्रयत्न करने के अतिरिक्त गृह युद्ध रोकने के लिए आवश्यकतानुसार बल प्रयोग करने का अधिकार देने का प्रस्ताव किया।[४१] इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना के कार्य में मौलिक परिवर्तन हो गया। आरम्भ में इसे "सांविधानिक या अन्य किसी प्रकार के संघर्ष में पक्ष लेने, उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने अथवा उसके परिणाम को प्रभावित करने का अधिकार नहीं था।" यद्यपि अभी तक इसके द्वारा किसी राजनीतिक दल की ओर से सक्रिय हस्तक्षेप किये जाने पर प्रतिबंध लगा था परन्तु गृहयुद्ध रोकने के उद्देश्य से कांगो के मामलों में हस्तक्षेप करने का इसे स्पष्ट अधिकार मिल गया था। यह पहला अवसर था जब किसी भी संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना को विशुद्ध सुरक्षात्मक कार्यवाही से कुछ अधिक करने की अनुमति प्रदान की गई थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सैनिक स्टाफ समिति

घोषणापत्र में यह प्रावधान किया गया है कि सुरक्षा परिषद् द्वारा एक बार

४१—द टाइम्स, २२ फरवरी १९६१

सैनिक कार्यवाही का निर्णय कर लिए जाने पर सदस्यों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपी गई सशस्त्र सेनाओं का निर्देशन धारा ४७ के अधीन गठित परिषद् के एक स्थायी सहायक अंग—सैनिक स्टाफ समिति—के हाथों सौंप दिया जाना चाहिए।

धारा ४६ के अनुसार सशस्त्र सेनाओं के प्रयोग सम्बन्धी योजनाएँ सैनिक स्टाफ समिति के सहयोग से सुरक्षा परिषद् द्वारा तैयार की जायेंगी। इससे सुरक्षा परिषद् और सैनिक स्टाफ समिति के मध्य वही सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो किसी राज्य के उच्चतम राजनीतिक अंग और सेनाध्यक्षों के मध्य होता है जिन्हें राजनीतिक उत्तरदायित्व वहन करने वाली कार्यपालिका शक्ति द्वारा सौंपे गये अधिकार ही प्राप्त होते हैं। सुरक्षा परिषद् को सभी सैनिक मामलों में सहायता और परामर्श देने के लिए ही धारा ४७ के अधीन सैनिक स्टाफ समिति गठित की गई है।

संरचना :

इस समिति में सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों के सेनाध्यक्ष अथवा उनके प्रतिनिधि होते हैं।

चार्टर तैयार किये जाने की अवस्था में सैनिक स्टाफ समिति की संरचना के प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श किया गया और छोटी शक्तियों ने इसमें अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए पर्याप्त प्रभाव प्रयुक्त किया। परन्तु उन्हें अधिक प्रतिनिधित्व देना सम्भव न हो सका क्योंकि किसी राज्य के सेनाध्यक्षों की समिति के आकार पर आधारित सैनिक स्टाफ समिति स्वभाव और कार्यों से एक छोटा सुगठित निकाय होना चाहिए। छोटी शक्तियों को संतुष्ट करने के लिए यह प्रावधान किया गया कि "संयुक्त राष्ट्र संघ के जिन सदस्यों को इस समिति में स्थायी प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है उन्हें" आवश्यकतानुसार "इसमें भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जायेगा।" वर्तमान सैनिक स्टाफ समिति में सभी स्थायी सदस्यों के सेनाध्यक्ष होने के कारण यह लगभग एक वर्जित सदस्यों का एक स्थूल निकाय बन गया है। वास्तव में इस निकाय की कार्यवाहियाँ पूर्णतया निष्फल रही हैं।

कार्य :

संक्षेप में सैनिक स्टाफ समिति के निम्नलिखित कार्य हैं :—

(१) अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु सैनिक आवश्यकताओं के प्रश्न पर सुरक्षा परिषद् को सलाह एवं सहायता देना। वास्तव में यह धारा ४३ में उल्लिखित "विशिष्ट समझौते" किये जाने से सम्बन्धित है परन्तु अभी तक इनमें से एक भी समझौता नहीं हुआ है।

(२) धारा ४२ में विशेष रूप से उल्लिखित उद्देश्य की पूर्ति हेतु सुरक्षा परिषद् के संचालन में सौंपी गई सेनाओं के सामरिक निर्देशन के सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद् को सलाह और सहायता देना। धारा ४२ और ४३ के अधीन सेनाओं के

प्रयोग और संचालन के सम्बन्ध में सैनिक स्टाफ समिति का कार्य केवल सामरिक निर्देशन तक सीमित है, व्यूहरचना संचालन इसमें शामिल नहीं है। यह पक्ष जान-बूझ कर छोड़ दिया गया है क्योंकि घोषणापत्र में कहा गया है कि 'ऐसी सेनाओं के संचालन सम्बन्धी प्रश्नों पर बाद में विचार किया जायेगा।"

(३) धारा २६ की शर्तों के अधीन 'आयुधों के निर्देशन की एक प्रणाली स्थापित करने' सम्बन्धी योजनाएं तैयार करने में सुरक्षा परिषद् को सलाह और सहायता देना। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि मोटे तौर पर सैनिक स्टाफ समिति के कार्य राष्ट्र संघ (League of Nations) की स्थायी स्थल, नौ, और वायु समितियों के समान ही हैं।[४२] सुरक्षा परिषद् को वे अनेक अतिरिक्त कार्य भी करने पड़ते हैं जो राष्ट्र संघ की परिषद् के अधिकार क्षेत्र से बाहर थे अत निस्सन्देह संघ के ऐसे ही अंग के कार्यों की तुलना में संयुक्त राष्ट्र संघ की सैनिक स्टाफ समिति के कार्य कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं।

सैनिक स्टाफ समिति और धारा ४३

एक सामूहिक सेना को जन्म देने वाले जिन समझौतों की धारा ४३ के अधीन कल्पना की गई थी उनके सफलतापूर्वक सम्पन्न न होने के कारण सैनिक स्टाफ समिति कोई भी कार्य नहीं कर पाई है। कोरियायी संघर्ष में भी संयुक्त राज्य अमरीका के संयुक्त सेनाध्यक्ष ही मुख्य नियोजक थे तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की सैनिक समिति को कार्यवाही नियोजन के मामले में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं था। इसी प्रकार मिश्र में संयुक्त राष्ट्र संघीय आपत्कालीन सेना, लेबनान में प्रेक्षक दल, और कांगो में सेना की कार्यवाहियाँ भी सैनिक स्टाफ समिति से पृथक् थीं। पुनः उत्तर अतलांतिक संधि संगठन के अधीन सैनिक समिति (सेनाध्यक्ष) और ब्रूसेल्स संधि की पश्चिमी संघ सेनाध्यक्षों की समिति संयुक्त राष्ट्र संघ की सैनिक स्टाफ समिति के सर्वोपरि अधिकार क्षेत्र में नहीं आती। सामूहिक आत्मरक्षा के समझौते धारा ४३ के क्षेत्र में नहीं आते अत. सैनिक स्टाफ समिति का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि जब सुरक्षा परिषद् ने सैनिक स्टाफ समिति से घोषणापत्र की धारा ४३ के संदर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाये रखने की सैनिक आवश्यकताओं पर विचार करने का आग्रह किया तो इसकी संस्तुतियों पर सहमति न हो सकी। वास्तव में जिस धारा ४७ के अधीन इस महत्त्वपूर्ण सहायक अंग (सैनिक स्टाफ समिति) की स्थापना की गई है उसी में इसका यह उत्तरदायित्व निश्चित किया गया है कि यह परिषद् को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने का मौलिक कार्य सम्पन्न करने सम्बन्धी सैनिक आवश्यकताओं के विषय में

---

४२ प्रतिज्ञापत्र, धारा ९.

सलाह देगी। ३० अप्रैल १९४७ को सैनिक स्टाफ समिति ने "संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्रों द्वारा सुरक्षा परिषद् को उपलब्ध कराई जाने वाली सशस्त्र सेनाओं के संगठन को निर्देशित करने वाले सामान्य सिद्धान्तों पर अपने निष्कर्षों के सम्बन्ध में एक प्रतिवेदन सुरक्षा परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किया।"[४३] इस प्रतिवेदन में ४१ धाराएँ थी जिनमें से २५ सर्वसम्मति से स्वीकार करली गईं, परन्तु ये बहुत महत्वपूर्ण नहीं थी। उदाहरणार्थ निम्न विषय सर्वसम्मति में स्वीकार किए गए हैं—

(१) उपलब्ध कराई जाने वाली सशस्त्र सेनाओं का गठन सामान्यतया सदस्य राष्ट्रों की सशस्त्र सेनाओं की राष्ट्रीय इकाइयों से होना चाहिए (धारा ३),

(२) सुरक्षा परिषद् को सशस्त्र सेनाएँ, सुविधाएँ और अन्य सहायता सौंपने का "अवसर सभी सदस्यों को मिलना चाहिए और यह उनका कर्त्तव्य होना चाहिए" (धारा ६),

(३) आरम्भ में स्थायी सदस्य ही मुख्य अंशदान देंगे परन्तु जब संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य सदस्यों के अंशदान उपलब्ध हो जाएँगे तो उन्हें भी पहले से संग्रहीत सेनाओं के साथ संयुक्त कर दिया जायगा (धारा १० और ११),

(४) संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी भी सदस्य से संयुक्त राष्ट्र संघ को अंशदान देने के उद्देश्य से अपनी सेनाओं में वृद्धि करने का अनुरोध नहीं किया जाना चाहिए,

(५) "सुरक्षा परिषद् के अधीन कार्यवाही करने के अतिरिक्त" सशस्त्र सेनाएँ "अंशदान देने वाले अलग-अलग देशों के पूर्ण संचालन में होनी चाहिए;" (धारा ३६)

(६) जब सुरक्षा परिषद् सेनाओं का प्रयोग कर रही हो तो सुरक्षा परिषद् के अधीन सैनिक स्टाफ समिति उनके सामरिक निर्देशन के लिए उत्तरदायी होगी और राष्ट्रीय दस्तों का संचालन अंशदान देने वाले सदस्यों द्वारा नियुक्त संचालकों द्वारा होगा एवं ये दस्ते अपना 'राष्ट्रीय स्वरूप' बनाए रखेंगे और सदैव अपनी राष्ट्रीय सशस्त्र सेनाओं में प्रयुक्त अनुशासन और निर्देशनों से नियन्त्रित होंगे। (धारा ३८ और ३९)।[४४]

परन्तु कुछ अधिक महत्वपूर्ण विषयों, यथा प्रत्येक स्थायी सदस्य के अंशदान का आकार, पर असहमति थी। सोवियत प्रतिनिधि मण्डल कुल शक्ति और सेनाओं की संरचना दोनों ही विषयों में समानता के सिद्धान्त में विश्वास करता था, परन्तु

---

४३ दस्तावेज S/३३६

४४ अनुशासनात्मक और संगठनात्मक प्रावधानों की संयुक्त राष्ट्र संघीय आपत्कालीन सेना के लिए निर्देशनों की धारा ११–१४ और ३४–४३ से तुलना की जानी चाहिए। DOC SJ/SCB/4 NEF/1.

अन्य प्रतिनिधिमण्डलों का विचार था कि स्थायी सदस्यों का अंशदान 'तुलनात्मक' होना चाहिए और "प्रत्येक स्थायी सदस्य की राष्ट्रीय सेनाओं की सरचना और आकार में भिन्नता के कारण" इन अंशदानों में स्थल, नौ और वायु सेना के अलग-अलग दस्तों की शक्ति में भी पर्याप्त भिन्नता हो सकती है। पुन इस बात पर भी असहमति थी कि सशस्त्र सेनाओं के सर्वोपरि या सर्वोच्च सचालन के ऊपर सुरक्षा परिषद् को सर्वोच्च सचालक के अधीन कार्यरत स्थल, नौ, और वायु सेनाओं के प्रधान सेनापति भी नियुक्त करने चाहिए या नहीं। संक्षेप में सुरक्षा परिषद् को उपलब्ध कराई जाने वाली सशस्त्र सेनाओं की शक्ति और सरचना के विषय में सहमति नहीं हो सकी। अत सैनिक स्टाफ समिति कार्य आरम्भ नहीं कर सकी है और राष्ट्रीय अंशदानों के आधार पर जिस प्रकार की स्थायी सामूहिक सेना की घोषणापत्र में व्यवस्था की गई थी वह गठित नहीं की जा सकी।

नि सन्देह सदस्यों द्वारा सशस्त्र सेनाओं के अंशदान का मानदण्ड निश्चित करने के मार्ग में अलघ्य कठिनाइयाँ हैं और धारा ४३ के अधीन 'समझौते या समझौतों' की पुष्टि किए जाने की स्थिति तक पहुँचने के लिए उन पर लम्बी और विस्तृत बातचीत और विचार-विमर्श की आवश्यकता होगी। इस कठिनाई का अनुमान लगाकर ही घोषणापत्र की धारा १०६ में कहा गया है कि धारा ४३ में परिकल्पित विशिष्ट समझौतों के लागू होने से पूर्व सुरक्षा परिषद् के पाँच स्थायी सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के उद्देश्य से सयुक्त राष्ट्र सघ की ओर से आवश्यक सयुक्त कार्यवाही करने के लिए परस्पर विचार-विमर्श करेंगे। इसके साथ ही धारा १०६ ऐसी कार्यवाही के लिए उत्तरदायी किसी भी सरकार द्वारा "किसी ऐसे राज्य के सम्बन्ध में जो द्वितीय विश्व-युद्ध काल में वर्तमान घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षरकर्त्ता किसी देश का शत्रु रहा है" कार्यवाही करने के अधिकार को स्वीकार करती है।

यद्यपि सैनिक स्टाफ समिति सयुक्त राष्ट्र सघीय सेना एकत्र करने का कोई सर्वमान्य आधार तैयार करने में असमर्थ रही और ऐसी किसी सेना के राष्ट्रीय अंशदानों के प्रावधान सम्बन्धी विशेष समझौते भी नहीं किए जा सके। फिर भी इन के कारण सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा कोरिया, स्वेज क्षेत्र (सिनाई पट्टी), लेबनान या कांगो में तदर्थ आधार पर सैनिक उपाय अपनाने के मार्ग में कोई बाधा नहीं आई।

अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और सामूहिक रक्षा सम्बन्धी वर्त्तमान स्थिति

सयुक्त राष्ट्र सघ के घोषणापत्र के अधीन सामूहिक सुरक्षा तंत्र तथा कोरिया, स्वेज और कांगो में सामूहिक कार्यवाही के व्यावहारिक प्रदर्शन से एक अपूर्ण प्रणाली का आभास होता है। सुरक्षा परिषद् और सदस्य राज्यों के मध्य आवश्यक समझौते

नहीं हो पाए हैं अत. संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन सामूहिक सैनिक कार्यवाही तब को एक प्रकार से अपूर्ण अथवा अजन्मा कहा जा सकता है। पहली बार कोरिया में सामूहिक सैनिक कार्यवाही के प्रदर्शन से यह पता चलता है कि यह तब अपूर्ण रूप से गठित हुआ था क्योंकि अंशदान देने वाले एक ही सदस्य द्वारा सर्वाधिक भार वहन किए जाने के कारण कार्यवाही सचालन मे उसका पूरा नहीं तो सर्वाधिक योगदान था। यद्यपि सैनिक कार्यवाही सयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रस्ताव के अधीन की गई थी फिर भी कार्यवाही सचालन न तो सुरक्षा परिषद् के सामरिक निर्देशन के अधीन था और न ही सयुक्त राष्ट्र संघ की सैनिक स्टाफ समिति के नियन्त्रण में। इसके विपरीत जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सामरिक निर्देशन सयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति के हाथ मे तथा कोरियायी कार्यवाही का दैनन्दिन निर्देशन सयुक्त राज्य अमरीका के संयुक्त सेनाध्यक्षों के हाथ मे था। निस्सन्देह कार्यवाहीरत सशस्त्र सेनाएँ एकत्र की गई थीं क्योंकि सयुक्त राष्ट्र संघ के अनेक सदस्यो ने किसी न किसी रूप में अंशदान किया था। इन परिस्थितियों मे सामूहिक सुरक्षा की दिशा में कोरियायी संघर्ष के योगदान के विषय में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि इसने सामूहिक कार्यवाही के लिए राष्ट्रीय इकाइयों को उपलब्ध करा दिया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा प्रणाली के लिए पहले पग का सकेत मिलता है। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि सामूहिक सुरक्षा के लिये कोरियायी घटना का योगदान सीधे संयुक्त राष्ट्र संघ के तंत्र के अधीन नहीं था और इसी कारण इसका महत्त्व कुछ घट जाता है। जब सुरक्षा परिषद् के विचार-विमर्श में सोवियत संघ भाग नहीं ले रहा था उस समय कोरियायी संघर्ष के साथ सयुक्त राष्ट्र संघ की एक मात्र कड़ी स्थापित हुई थी। यदि वह कोरिया पर विचार-विमर्श के समय उपस्थित रहता तो घोषणापत्र की धारा २७ (३) मे निर्धारित मतदान प्रणाली के अनुसार वह यह सुनिश्चित करा लेता कि संयुक्त राष्ट्र संघ को इस मामले में कुछ लेना-देना नहीं है। उपस्थित और मतदान मे भाग लेने वाले स्थायी सदस्यों की सर्वसम्मति की आवश्यकता सुरक्षा परिषद् की प्रभावशीलता के लिए पर्याप्त रूप में उत्तरदायी है।[४५]

---

४५ घोषणापत्र में सुरक्षा परिषद् की शक्तियों और धारा २७ के अधीन इसकी मतदान प्रणाली से उत्पन्न अनेक गंभीर दोष हैं। इसकी क्षमता मे आने वाले आधारभूत मामलों पर कार्यवाही किये जाने से पूर्व पाँच स्थायी सदस्यों के समवर्ती मतों सहित सात सदस्यों का स्वीकारात्मक मत आवश्यक होता है। कार्यविधि सम्बन्धी मामले किन्हीं भी सात सदस्यों के स्वीकारात्मक मत द्वारा निपटाये जा सकते हैं, परन्तु यदि इस बात पर ही विवाद उठ खड़ा हो कि कोई मामला कार्यविधि सम्बन्धी है या आधारभूत तो इस प्राथमिक प्रश्न को ही आधारभूत मान लिया जाता है।

यदि कोई सदस्य मतदान में भाग न ले अथवा मतदान के समय अनुपस्थित रहकर मतदान न करे तो इसे ऋणात्मक मत न माना जाना ही अशक्त‍ता का दोष दूर करने वाला एक मात्र लक्षण है।[४६]

७ अगस्त १९५० को कोरिया पर संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रस्ताव पारित होने के समय सुरक्षा परिषद् से सोवियत संघ की अनुपस्थिति ने संसार के सम्मुख यह स्पष्ट कर दिया कि संघ (League) के प्रतिज्ञापत्र के विपरीत संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र को बाहर की अपेक्षा भीतर से ही प्रभावहीन किया जा सकता है। उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले स्थायी सदस्यों की सर्वसम्मति एक ऐसी शर्त है जो भविष्य में संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन की जाने वाली किसी भी सैनिक कार्यवाही में बाधा डाल सकती है। यह एक व्यापक वक्तव्य हो सकता है परन्तु ऐसा लगता है कि ९० प्रतिशत मामलों में पाँच स्थायी सदस्य किसी सामूहिक सैनिक कार्यवाही के लिए कठिनाई से ही सहमत हो पाएँगे। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव के अधीन कोरिया में की गई कार्यवाही के बावजूद सामूहिक सुरक्षा के प्रति स्थायी योगदान की दृष्टि से घोषणापत्र का मूल्य बड़ा ही विवादास्पद है।

इसके विपरीत 'शान्ति के लिए संगठन' प्रस्ताव की शर्तों के अनुसार महासभा की क्षमता का विस्तार करके यह दोष दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि स्वेज, लेबनान और कांगो के संकट के समय जब अन्ततः संयुक्त राष्ट्र संघ से सशस्त्र सेनाएँ एकत्र करने का आग्रह किया गया तो इसने इसके लिए कोरिया में प्रयुक्त उपायों से भिन्न उपाय किए। इन

[पिछले पृष्ठ का शेषांश]

यह सत्य है कि (विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान से सम्बन्धित) छठे अध्याय के अधीन निर्णयों के समय विवादग्रस्त पक्ष को मतदान से बाहर रखने का घोषणापत्र में प्रावधान है। परन्तु यदि कोई स्थायी सदस्य विवाद के अस्तित्व से ही इन्कार कर दे अथवा अपने आपको विवाद में एक पक्ष न माने तो सुरक्षा परिषद् द्वारा यह पता लगा लिये जाने तक कि स्थायी सदस्य वास्तव में विवाद में एक पक्ष है मतदान से बाहर रहने का नियम उस पर लागू नहीं होगा परन्तु सुरक्षा परिषद् की इस खोज पर निषेधाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। एक बात और है कि मतदान से बाहर रहने का प्रावधान शान्तिपूर्ण समाधान पर ही लागू होता है बल प्रयोग के मामलों पर नहीं क्योंकि उनमें सदैव निषेधाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

४६ देखिये एल सी ग्रीन 'कोरिया और संयुक्त राष्ट्र संघ' ४ (NS) विश्व मामले, १९५० पृ० ४१४ और पृ० ४२७-२८, ४३२, ४३४-३६ और "सुरक्षा परिषद् की वापसी" ८ विश्व मामलों की वर्ष पुस्तक, १९५४, पृ० ६५ और पृ० ९८-१०६ पर।

घोषणापत्र के अनुसार आक्रमण के 'खतरे या अप्रत्याशित आक्रमण' से भिन्न केवल 'सशस्त्र आक्रमण' के मामले में ही सामूहिक आत्मरक्षा के अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।[४८] इस अधिकार का तभी तक प्रयोग किया जा सकता है जब तक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा पुनर्स्थापित करने के लिए सुरक्षा परिषद् आवश्यक पग न उठाए। इस कारण भी इस अधिकार का प्रयोग सीमित हो जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है स्थायी सदस्यों के एकमत का अभाव सुरक्षा परिषद् के मार्ग में बाधा उपस्थित करके इसकी कार्यवाही को विफल कर सकता है और सुरक्षा परिषद् द्वारा कार्य करने की विफलता का स्पष्ट बहाना लेकर सामूहिक रक्षा तंत्र के अधीन की गई कार्यवाही जारी रखी जा सकती है।

इस औचित्य के सन्दर्भ में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अनेक महत्त्वपूर्ण बहुपक्षीय सन्धियाँ की गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनका उद्देश्य सामूहिक संगठन के किसी सदस्य पर होने वाले अन्धाधुन्ध आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए सामूहिक आत्मरक्षा के प्रभावी सैनिक उपायों को उचित सिद्ध करना है। यह ध्यान देने योग्य है कि इन समझौतों में अपनी इच्छाओं की सत्यता प्रमाणित करने और संसार के सम्मुख यह प्रदर्शित करने कि सामूहिक रक्षा समझौते शान्ति के विरुद्ध षड्यंत्र नहीं वरन् सदस्य राज्यों में से किसी एक पर होने वाले आक्रमण से उसकी रक्षा करने का उपाय मात्र हैं, के लिए घोषणापत्र की धारा ५१ का स्पष्ट उल्लेख करना आवश्यक समझा गया है।[४९]

क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ

युद्ध के आधुनिक आयुधों की प्रकृति के कारण क्षेत्रीय व्यवस्थाओं का महत्त्व घटता जा रहा है। सैनिक समर नीति विशेषज्ञों का विश्वास है कि विशेषकर भौगोलिक सीमा बद्ध राज्यों की रक्षा के लिए इन (आयुधों) का सामूहिक रूप से ही भली-भाँति

---

४८ देखिए नगेन्द्रसिंह 'अणु आयुध और अन्तर्राष्ट्रीय कानून,' 1959, पृ० 121 इसके अतिरिक्त सी० एच० एम० वाल्डॉक अन्तर्राष्ट्रीय कानून में अलग-अलग राज्यों द्वारा शक्ति प्रयोग का नियंत्रण 81 (Hague Recueil), 1952, पृ० 455 तथा पृ० 496–498 पर भी, एल० सी० ग्रीन० 'सशस्त्र संघर्ष, युद्ध और आत्मरक्षा' 6 (Archiv des Volkerrechts), 1957, पृ० 387 और पृ० 424 तथा आगे भी; डी० डब्ल्यू० बोवेट 'आत्मरक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय कानून, 1958 पृ० 188 तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून संघ की 48 वीं कान्फ्रेंस न्यूयार्क के प्रतिवेदन, 1958 पृ० 507–628 पर जी० श्वार्जनबर्गर संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र में आत्मरक्षा के सिद्धान्त के कुछ पहलुओं पर प्रतिवेदन तथा उस पर विचार-विमर्श भी देखिए।

४९ देखिए सर एरिक बेकेट 'उत्तर अटलांटिक सन्धि,' 1950 पृ० 12-18, 26-30

विस्तार किया जा सकता है।

डनकर्क की संधि[५०] योरोप में होने वाला पहला[५१] क्षेत्रीय समझौता था, जिस पर यूनाइटेड किंगडम और फ्रांस ने ४ मार्च १९४७ को हस्ताक्षर किए। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि दोनों देशों ने "संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र और विशेषकर धारा ४९,५१,५२,५३, और १०७ के अनुसार शान्ति बनाए रखने और आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए" संयुक्त राष्ट्र संघ से सहकार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।

दूसरी क्षेत्रीय व्यवस्था परस्पर सहायता की अन्तर-अमरीकी संधि[५२] द्वारा हुई जिस पर २ सितम्बर १९४७ को रियोडिजनेरो में हस्ताक्षर हुए; इसमें भी धारा ५१ का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। धारा ३ के अनुसार समझौते में शामिल पक्षों ने यह प्रतिज्ञा की है कि किसी एक अमरीकी राज्य के विरुद्ध आक्रमण सभी अमरीकी राज्यों के विरुद्ध आक्रमण माना जायगा। अत. यह निश्चय किया गया है कि "संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की धारा ५१ में स्वीकृत व्यक्तिगत और सामूहिक आत्म-रक्षा के स्वाभाविक अधिकार का प्रयोग करते हुए समझौते में शामिल प्रत्येक पक्ष आक्रमण का सामना करने में सहायता देने का वचन देता है।"

यूनाइटेड किंगडम, बेल्जियम, फ्रांस, लक्समबर्ग और नीदरलैण्ड के मध्य १७ मार्च १९४८ को ब्रूसेल्स की संधि[५३] हुई। इसकी धारा ४ में कहा गया है कि समझौते में शामिल उच्च पक्षों में से यदि किसी पर आक्रमण हो तो समझौते में शामिल अन्य पक्ष "संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की धारा ५१ के प्रावधानों के अनुसार उस पक्ष को अपनी शक्ति और सभी प्रकार की सैनिक और अन्य सहायता प्रदान करेंगे।"

एक 'क्षेत्रीय एजेन्सी' स्थापित करने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय व्यवस्था उत्तर अतलांतिक संधि[५४] है जिस पर ४ अप्रैल १९४९ को हस्ताक्षर हुए। इसकी प्रस्तावना में न केवल संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों की दुहाई दी गई है वरन् धारा ५ में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि यदि हस्ताक्षरकर्त्ताओं में किसी एक पर कोई आक्रमण होगा तो यह उन सब पर आक्रमण माना जायगा और उनमें से प्रत्येक संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की धारा ५१ में स्वीकृत व्यक्तिगत या सामूहिक

---

५० Cmnd 7217, 1947.

५१ परन्तु 1945 में अरब लीग के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर हो चुके थे।

५२ 43, AJIL. 1949 परिशिष्ट, पृ० 53

५३ Cmd 7599, 1949; 23 अक्टूबर 1954 की पेरिस संधि पत्र द्वारा संशोधित Cmd 9304, 1954.

५४ Cmd 7789, 1949

आत्मरक्षा के सिद्धान्त पर व्यवहार करते हुए इस प्रकार आक्रमण के शिकार पक्ष या पक्षों की सहायता के लिए व्यक्तिगत रूप से अथवा अन्य सदस्यों के परामर्श से आवश्यक कार्यवाही करेगा। धारा ५ में स्पष्ट कहा गया है कि 'उत्तर अतलान्तिक क्षेत्र की सुरक्षा बनाए रखने अथवा पुनर्स्थापित करने के लिए' इस प्रकार की जाने वाली कार्यवाही में सशस्त्र सेना का प्रयोग भी शामिल है। पुनः संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र की धारा ५१ का पालन करते हुए संधि की धारा ५ में इस बात का स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि ऐसा सशस्त्र आक्रमण होने पर इन उपायों की "सूचना तुरन्त सुरक्षा परिषद् को दी जायगी और जब, सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने अथवा पुनर्स्थापित करने के आवश्यक उपाय करले तो इन उपायों को स्थगित कर दिया जायगा।"

इन क्षेत्रीय व्यवस्थाओं के पश्चात् संसार के विशिष्ट क्षेत्रों के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक व्यवस्थाएँ की गई। इनमें सबसे पहली एनजस (ANZUS) संधि है जिस पर आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और संयुक्त राज्य अमरीका ने १ सितम्बर १९५१ को हस्ताक्षर किए। यह संधि संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र में पक्षों के विश्वास की पुष्टि तो करती है परन्तु इसमें किसी विशिष्ट धारा का उल्लेख नहीं किया गया है। "प्रशान्त क्षेत्र में क्षेत्रीय सुरक्षा की अधिक व्यापक व्यवस्था हो जाने तक शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए अपने सामूहिक सुरक्षा के प्रयत्नों में समन्वय स्थापित करने की" इच्छा के कारण सम्बन्धित पक्षों ने यह मत व्यक्त किया है कि इस क्षेत्र में किसी राज्य पर सशस्त्र आक्रमण होने से सभी राज्यों को खतरा पैदा हो जायगा अतः वे "ऐसे किसी सशस्त्र आक्रमण तथा इसके कारण किए गये उपायों की सूचना तुरन्त संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् को देंगे और सुरक्षा परिषद् द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए आवश्यक कदम उठा लिए जाने पर इन उपायों को स्थगित कर देंगे।" इस धारा (४) से ऐसा लगता है कि यह संधि घोषणापत्र की क्षेत्रीय व्यवस्थाओं सम्बन्धी धारा ५३ की अपेक्षा आत्मरक्षा सम्बन्धी धारा ५१[५५] के अधिकार-क्षेत्र में आती है। फरवरी १९५३ में दक्षिण-पूर्व एशिया की रक्षा पर विचार-विमर्श हेतु फ्रांस और यूनाइटेड किंगडम सहित एक पंच शक्ति सैनिक सम्पर्क दल गठित करके इस संधि के क्षेत्र में थोड़ा-सा विस्तार कर दिया गया।

इसके पश्चात् दक्षिण-पूर्व एशिया सामूहिक रक्षा संधि[५६] का स्थान आता है जिस पर ८ सितम्बर १९५४ को हस्ताक्षर हुए और सीएटो (SEATO) का जन्म हुआ। एनजस (ANZUS) की भाँति सम्बन्धित पक्षों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के

---

५५ ४६ A.J I L, 1952, परि० पृ० 93.

५६ Cmd 265, 1957

घोषणापत्र में अपने विश्वास की पुष्टि तो की है पर इस संधि के आधारस्वरूप किसी धारा का उल्लेख नहीं किया है। धारा ४ के अनुसार "प्रत्येक पक्ष ने यह स्वीकार किया है कि संधि-क्षेत्र में किसी पक्ष अथवा राज्य अथवा भविष्य में पक्षों द्वारा सर्वसम्मति से नामोद्दिष्ट किसी क्षेत्र पर सशस्त्र आक्रमण से इस क्षेत्र की शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो जायगा अतः उस स्थिति में प्रत्येक पक्ष ने अपनी संविधानिक प्रक्रिया के अनुसार इस संयुक्त खतरे का सामना करने के लिए कार्यवाही करने पर सहमति व्यक्त की है। इस अनुच्छेद के अधीन किए गए उपायों की सूचना तुरन्त संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् को दी जायगी।" परन्तु सुरक्षा परिषद् द्वारा हस्तक्षेप किए जाने पर ऐसे उपाय स्थगित कर दिए जाने का इस संधि में कोई प्रावधान नहीं है। इस क्षेत्र की शान्ति को खतरा पैदा होने पर "सामूहिक रक्षा के उपायों पर सहमति प्राप्त करने के लिए" विचार-विमर्श करने का भी इस संधि में प्रावधान है। परन्तु इस सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद् को सूचित करने का कोई प्रावधान नहीं है भले ही संधि में शामिल पक्षों ने धारा ६ में घोषणा की है कि यह संधि संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र में प्रदत्त उनके अधिकार और कर्त्तव्यों को किसी भी रूप में प्रभावित नहीं करती और न ही यह किसी ऐसी संधि के प्रतिकूल है जिसमें उनमें से कोई पक्ष शामिल है।

तुर्की और ईरान के मध्य द्विपक्षीय संधि के कारण केन्द्रीय संधि संगठन[५७] का जन्म हुआ; बाद में यूनाइटेड किंगडम और पाकिस्तान भी इनमें शामिल हो गए और संयुक्त राज्य अमरीका इन से सहयोग करने को सहमत हो गया। इस संधि की धारा १ में कहा गया है "संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की धारा ५१ के अनुरूप सभी सम्बन्धित पक्ष अपनी सुरक्षा एवं बाह्य आक्रमण से रक्षा हेतु एक दूसरे से सहकार करेंगे।" जुलाई १९५८ में संधि में शामिल पक्षों ने घोषणा की कि "सामूहिक सुरक्षा के उपाय कर लिए गए हैं (और) संयुक्त सैनिक नियोजन का विकास हो चुका है।"[५८]

सामूहिक सुरक्षा व्यवस्थाओं में सहकार करना केवल "पश्चिमी" शक्तियों ने ही आवश्यक नहीं समझा है। "संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र के उद्देश्यों और सिद्धान्तों से निर्देशित होकर" सोवियत गुट के राज्यों ने १४ मई १९५५ को मित्रता, सहकार और परस्पर सहयोग की एक संधि (वारसा समझौता) पर हस्ताक्षर किए।[५९] सभी पक्षों ने "इनमें से किसी एक की राय में संधि में शामिल किसी एक या कई पक्षों पर सशस्त्र आक्रमण होने का खतरा होते ही, शान्ति और सुरक्षा बनाए

---

५७ Cmd 9544, 1955

५८ द टाइम्स, 29 जुलाई 1958.

५९ 49 A.J.I.L., 1955 परिशिष्ट पृ० 194

रखने तथा संयुक्त रक्षा सुनिश्चित करने के लिए" तुरन्त परस्पर विचार-विमर्श करने का वचन दिया है। इसके अतिरिक्त योरोप में किसी एक पक्ष पर सशस्त्र आक्रमण होने की स्थिति में धारा ४ के अनुसार, प्रत्येक पक्ष "संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की धारा ५१ के अनुसार व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आत्मरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए या तो स्वयं या संधि में शामिल अन्य पक्षों की सहमति से सशस्त्र सेनाओं सहित सभी आवश्यक साधन लेकर तुरन्त उस राज्य की सहायता के लिए आयेगा।" उन्होंने इस धारा के आधार पर किए जाने वाले उपायों की सुरक्षा परिषद् को सूचना देने तथा 'सुरक्षा परिषद् द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने और पुनर्स्थापित करने के आवश्यक उपाय किए जाने पर' अपने द्वारा किए जा रहे उपायों को तुरन्त स्थगित करने का भी वचन दिया। एक राजनीतिक परामर्शदाता दल जिसमें प्रत्येक सदस्य-राज्य को प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा, इस संधि के अधीन विचार-विमर्श का संचालन करेगा।

इस संधि का पालन करते हुए, वारसा शक्तियों ने अपनी सशस्त्र सेनाओं[१०] की एक संयुक्त कमान स्थापित करने का निश्चय किया और एक सोवियत जनरल को इन संयुक्त सशस्त्र सेनाओं का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। हस्ताक्षर करने वाले राज्यों के रक्षामंत्री अथवा अन्य सैनिक अधिकारी इन सेनाओं के उप-प्रधान सेनापति होंगे। ये उप-प्रधान सेनापति संयुक्त सेनाओं के लिए अपने राज्यों द्वारा दी गई सशस्त्र सेनाओं का संचालन करेंगे। प्रधान सेनापति के अधीन मास्को में एक स्टाफ होगा जिसमें हस्ताक्षरकर्त्ता राज्यों के जनरल स्टाफों के स्थायी प्रतिनिधि शामिल होंगे। संयुक्त सेना का विन्यास राज्यों के मध्य परस्पर रक्षा की आवश्यकताओं के अनुसार होने वाले समझौतों से प्रभावित होगा। राजनीतिक परामर्शदाता समिति संयुक्त सशस्त्र सेनाओं के किसी भी संगठन की रक्षा शक्ति को सुदृढ़ बनाने सम्बन्धी सामान्य प्रश्नों पर विचार करके आवश्यक निर्णय लेगी। यद्यपि इस व्यवस्था से ऐसा आभास होता है कि राजनीतिक और सैनिक स्तर एक दूसरे से पृथक् हैं परन्तु इस तथ्य पर साम्यवादी राज्यों में सेनाओं की भूमिका सम्बन्धी हमारे पूर्व वक्तव्य की दृष्टि से विचार करना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अमरीकी और योरोपीय सदस्य राज्यों द्वारा की गई क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ तथा वारसा समझौता संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र की धारा ५२-५४ के अन्तर्गत नहीं आते क्योंकि इन धाराओं के अनुसार

---

१० 49 A.J.I.L., 1955, परिशिष्ट पृ० 198

इन्हें क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ नहीं माना जा सकता।[61] इस सम्बन्ध में श्री गोखल-देकर ने कहा है कि "किसी क्षेत्रीय व्यवस्था के सदस्यों को धारा ५१ द्वारा प्रदत्त सामूहिक रक्षा के अधिकार का धारा ५३ किसी भी प्रकार हनन

---

६१ धारा ५२ :—(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने सम्बन्धी क्षेत्रीय कार्यवाही के उपयुक्त किसी भी विषय पर व्यवहार के लिए क्षेत्रीय व्यवस्थाओं या ऐजेन्सियों के अस्तित्व का बहिष्कार करने वाली कोई बात घोषणापत्र में नहीं कही गई है। परन्तु ये व्यवस्थाएँ और ऐजेन्सियाँ तथा उनके कार्य संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के अनुकूल होने चाहिए।

(२) ऐसी व्यवस्थाओं में शामिल होने अथवा ऐसी ऐजेन्सियों का गठन करने वाले संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य क्षेत्रीय विवादों को सुरक्षा परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत करने से पूर्व इन क्षेत्रीय व्यवस्थाओं अथवा क्षेत्रीय ऐजेन्सियों के माध्यम से शान्तिपूर्वक सुलझाने के सभी प्रयत्न करेंगे।

(३) सुरक्षा परिषद् सम्बन्धित राज्यों की पहल अथवा अपने आग्रह पर इन क्षेत्रीय व्यवस्थाओं या क्षेत्रीय ऐजेन्सियों के माध्यम से स्थानीय विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान के विकास को प्रोत्साहित करेगी।

(४) धारा ३४ और ३५ पर क्रियान्वयन किए जाने के मार्ग में यह धारा कोई बाधा उत्पन्न नहीं करती।

धारा ५३ :—(१) जहाँ भी उपयुक्त होगा सुरक्षा परिषद् अपनी सत्ता के अधीन बल प्रयोग की कार्यवाही किए जाने में इन क्षेत्रीय व्यवस्थाओं या ऐजेन्सियों का उपयोग करेगी। परन्तु सम्बन्धित सरकारों के आग्रह पर इस धारा के अनुच्छेद २ में परिभाषित शत्रुराज्य द्वारा भविष्य में किए जाने वाले आक्रमण रोकने का उत्तरदायित्व संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा ले लिए जाने तक धारा १०७ के क्रियान्वयन के लिए अथवा ऐसे किसी राज्य द्वारा आक्रामक नीति के नवीकरण के विरुद्ध क्षेत्रीय व्यवस्थाओं में प्रस्तावित उपायों के अतिरिक्त ये क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ या क्षेत्रीय ऐजेन्सियाँ सुरक्षा परिषद् से अधिकार प्राप्त किए बिना बल प्रयोग की कोई कार्यवाही नहीं करेंगी।

(२) इस धारा के अनुच्छेद १ में प्रयुक्त 'शत्रुराज्य' पद उस राज्य पर लागू होता है जो द्वितीय विश्वयुद्ध काल में वर्तमान घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने वाले किसी राज्य का शत्रु रहा है।

धारा ५४ :—अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए क्षेत्रीय व्यवस्थाओं या क्षेत्रीय ऐजेन्सियों द्वारा की जाने वाली अथवा उनके विचाराधीन प्रत्येक कार्यवाही से सुरक्षा परिषद् को निरन्तर एवं पूर्णतया अवगत रखा जायगा।

नहीं करती ।"[६२] इस प्रकार ये सभी क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र के आठवें अध्याय की किसी धारा की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की धारा ५१ से सम्बन्धित हैं। इसके विपरीत इन क्षेत्रीय संधियों को घोषणापत्र के प्रतिकूल सिद्ध करने के लिए भी दृढ़तापूर्वक तर्क दिए गए हैं। संसद सदस्य श्री ज़िलियाकस (Mr Zilliacus) ने अपनी 'पक्वदार माँद के दाँत' (Dragon's Teeth) नामक पुस्तिका में कहा है कि जिस धारा ५३ में संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन क्षेत्रीय व्यवस्थाओं की कल्पना की गई है उसमें यह प्रावधान भी है कि "सुरक्षा परिषद् से अधिकार प्राप्त किए बिना क्षेत्रीय व्यवस्थाओं के अधीन अथवा क्षेत्रीय ऐजेन्सियों द्वारा बल प्रयोग की कोई कार्यवाही नहीं की जायगी।" इससे श्री ज़िलियाकस यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इस घोषणापत्र में सुरक्षा परिषद् की आज्ञा प्राप्त किए बिना आक्रमणों का सामना करने के लिए क्षेत्रीय व्यवस्थाओं के अधीन कार्यवाही का स्पष्ट बहिष्कार किया गया है। अतः उनका यह तर्क है कि उत्तर अतलान्तिक संधि की धारा ५ में सुरक्षा परिषद् से अधिकार प्राप्त किए बिना सैनिक कार्यवाही करने का प्रावधान न होने के कारण यह संधि संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र के प्रतिकूल है। परन्तु १९५४ में महासभा की बहस में भाग लेते समय भारत के भूतपूर्व रक्षामंत्री श्री कृष्णामेनन ने एक अन्य दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'सीएटो' (Sue) के संगठन की निम्नलिखित शब्दों में चर्चा की

"समान विचारधारा वाले अथवा अल्प काल के लिए समान विचारधारा वाले राष्ट्रों का गुट चाहे जो कुछ भी करे उस पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता। परन्तु यह समझौता इससे भी आगे बढ़ जाता है।.... "दक्षिण-पश्चिम प्रशान्त सागर और दक्षिण-पूर्व एशिया के सामान्य क्षेत्र को यह अपना क्षेत्र नामोद्दिष्ट करता है। साधारणतया दक्षिण-पूर्व एशिया का विस्तार हिमालय से लेकर भूमध्य रेखा तक है। इसके अतिरिक्त दक्षिण-पश्चिम प्रशान्त सागर एक खुला सागर है। अतः इस दृष्टि से हम अनुभव करते हैं कि यह समझौता हमें हानि पहुँचाता है।

"इसे एक क्षेत्रीय संगठन सिद्ध करने के लिए महासभा के सम्मुख बहस करते हुए इस संधि के प्रस्तावकों ने, जिनमें से कुछ ने इस पर हस्ताक्षर भी किए हैं, घोषणापत्र की किसी न किसी धारा का उदाहरण दिया है। कुछ ने धारा ५१ का सहारा लेकर यह दावा किया है कि इस धारा के अधीन यह एक शुद्ध रक्षा संगठन है। आइए देखें धारा ५१ क्या कहती है ? यह कहती है कि '—

संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी सदस्य के विरुद्ध सशस्त्र आक्रमण होने पर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए सुरक्षा परिषद् द्वारा आवश्यक

---

६२ हेन्सर्ड Vol ४६४ संख्या ११५ कॉ २१३१, १२ मई १९४६, सर ऐरिक बेकेट की 'उत्तर अतलान्तिक संधि' १९५० भी देखिए।

उपाय किए जाने से पूर्व व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आत्मरक्षा के स्वाभाविक अधिकार को हानि पहुँचाने वाली कोई बात वर्तमान घोषणापत्र में नहीं कही गई है। आत्मरक्षा के इस अधिकार का प्रयोग करते हुए सदस्यों द्वारा किए गए उपायों की सूचना तुरत सुरक्षा परिषद् को दी जाएगी.......

"मैं इस प्रश्न की गहराई में नहीं जाऊँगा कि यह संयुक्त साधन है अथवा केवल विचाराधीन और न ही मैं सुरक्षा परिषद् को सूचना देने के प्रश्न पर विचार करूँगा। परन्तु कोई आक्रमण न होने तक हम इसे आत्मरक्षा का साधन नहीं मान सकते। साथ ही इसे न तो निश्चयपूर्वक आत्मरक्षा और न ही सामूहिक रक्षा कहा जा सकता है। यह भी सन्देहास्पद है कि कम्पनी या निगम के सामूहिक व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले व्यक्तियों से भिन्न व्यक्तियों द्वारा निर्मित इस सामूहिक व्यक्तित्व को कानून स्वीकार करे। ये व्यक्ति प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य हैं और इनका व्यक्तित्व सदैव एक दूसरे से पृथक् रहता है। यदि इनके व्यक्तित्व का विलय हो गया है तो इस महासभा में इनके अलग-अलग बैठने पर आपत्ति की जा सकती है। अतः वे अनेक व्यक्ति हैं और आत्मरक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः घोषणापत्र की धारा ५१ यहाँ लागू नहीं होती। इस प्रकार यह संगठन उपर्युक्त धारा में वर्णित लक्षणों वाला एक सैनिक संगठन भी नहीं है।

"यदि यह कहा जाय कि यह समझौता धारा ५२ के अन्तर्गत आता है तो हम कहेंगे कि यह एक क्षेत्रीय संगठन नहीं है क्योंकि धारा २४ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखना सुरक्षा परिषद् का कर्तव्य है। इस प्रकार इसे क्षेत्रीय संगठन सिद्ध करने वाला कोई भी तर्क हमारी दृष्टि में पूर्ण रूप से अस्वीकार्य है।

"भारत सरकार को मनीला कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया था। भारत ने इसमें भाग नहीं लिया क्योंकि ऐसा करने का अर्थ अपनी नीतियों में परिवर्तन करना होता। ऐसा करने का अर्थ होता कि हम अपने दृष्टिकोण के प्रति निष्ठावान नहीं हैं अथवा हमने बर्मा के साथ अभी हाल ही में जो समझौते और करार किए हैं उनका कोई अर्थ नहीं रह जाता।"[63]

इस विषय पर भिन्न-भिन्न मतों के बावजूद श्री कृष्णामेनन की यह सम्मति कि सामूहिक आत्मरक्षा के संदर्भ में इन मतों में स्पष्ट विरोधाभास है, बड़ी महत्त्वपूर्ण है। कानूनी पक्ष के अतिरिक्त श्री कृष्णामेनन ने इन क्षेत्रीय रक्षा समझौतों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में पैदा होने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर संकेत करने पर भी पर्याप्त बल दिया है। उनका उद्देश्य शान्ति स्थापना को प्रोत्साहित

---

६३ महासभा 'शासकीय दस्तावेज' (९वाँ सत्र) राजनीतिक समिति, गोष्ठी संख्या ४६२ पृ० २३०, १९५४.

करना कहा जाता है परन्तु ऐसा करने की अपेक्षा वे शान्ति के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। सामूहिक सुरक्षा की कोई व्यवस्था या प्रणाली तभी वास्तव में प्रभावशील हो सकती है जब यह व्यापक धारणा पर आधारित हो और सभी विचारधाराओं के राज्यों में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कर सकें तथा संसार में शान्ति और समन्वय के विकास को आघात पहुँचाने वाली विरोधी क्षेत्रीय व्यवस्थाओं की रचनाओं के लिए उत्तरदायी किसी भी प्रकार की संयसंधि को जन्म न दें। अत यह कहा जा सकता है कि घोषणापत्र के अधीन सामूहिक सुरक्षा की एक दोषहीन प्रणाली विकसित नहीं हो पाई है क्योंकि इसमें आत्मरक्षा के बहाने बल प्रयोग का बहिष्कार न करके इसके प्रयोग को 'सामूहिक आत्मरक्षा' तक विस्तृत कर दिया गया है। ये क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ चाहे संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की धारा ५१ से सम्बन्धित हो अथवा धारा ५२ या ५३ के अधीन स्थापित की गई हो, कैम्ब्रिज में अन्तर्राष्ट्रीय कानून के ह्वेवेल प्रोफेसर के रूप में लॉर्ड मैक्नायर[६४] ने अपने उद्घाटन भाषण में सामूहिक सुरक्षा की जिस आवश्यकता की कल्पना की थी उसकी इनसे पूर्ति नहीं हुई है। सारे विश्व के लिए सामूहिक सुरक्षा की धारणा को आधार जितना विस्तृत होना चाहिए उतना व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है।

उपसंहार

कुल मिलाकर संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणापत्र राष्ट्रसंघ के प्रतिज्ञापत्र के अधीन विद्यमान स्थिति के विकास का प्रतिनिधित्व करता है। फिर भी यह कहना गलत है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन सामूहिक रक्षा की एक नियमित प्रणाली भले ही वह पूर्णतया दोषमुक्त न हो, विकसित हो गई है। पर यह बात दृढ़तापूर्वक कही जा सकती है कि द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व जो स्थिति थी उसमें अत्यधिक सुधार हुआ है। अत राष्ट्रसंघ के प्रतिज्ञापत्र की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणापत्र किन अर्थों में विकास का प्रतिनिधित्व करता है इसका सही आकलन इन दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से किया जा सकता है।

राष्ट्रसंघ

१. सैनिक और आर्थिक दोनों ही प्रतिबन्धों के विषय में राष्ट्रसंघ के प्रतिज्ञापत्र में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था कि प्रतिज्ञापत्र का उल्लंघन होते ही प्रतिबन्ध स्वत लागू हो जायें। धारा १२, १३ और १५ में निषिद्ध परिस्थितियों में युद्ध का आश्रय लेने पर ही प्रतिबन्ध लागू किये जाने की सम्भावना थी।

२. उपर्युक्त धाराओं के अधीन वास्तव में प्रतिज्ञापत्र का उल्लंघन हुआ है

---

६४ अन्तर्राष्ट्रीय कानून की ब्रिटिश वर्ष पुस्तक (१९३६) Vol XVII पृ० १५०.

अथवा नहीं इसे स्वय निश्चित करने का अधिकार सघ के प्रत्येक सदस्य को होने के कारण प्रतिबंधों का तंत्र पूर्णतया विकेन्द्रीकृत हो गया था।

३. यदि किसी सदस्य को एक बार यह विश्वास हो जाय कि प्रतिज्ञापत्र का उल्लंघन हुआ है तो वह ऐसा करने वाले राज्य के विरुद्ध तुरन्त आर्थिक प्रतिबन्ध लागू करने को बाध्य था।

४. यह बात महत्वपूर्ण है कि सैनिक प्रतिबंधों के विषय में ऐसी कोई बाध्यता नहीं थी क्योंकि प्रतिज्ञापत्र की धारा १६ मे यह प्रावधान था कि परिषद् "विभिन्न सम्बन्धित सरकारो से सघ के प्रतिज्ञापत्र की रक्षा के लिए प्रयुक्त होने वाली सशस्त्र सेनाओं के लिए सदस्यों द्वारा अंशदान मे दी जाने वाली प्रभावी स्थल, नौ और वायुसेना के विषय में संस्तुति करेगी।"

इस प्रकार सघ के सदस्यों को कार्यवाही करने का अधिकार प्रदान करके एवं कानून को सामूहिक रूप से लागू करने का सिद्धान्त स्वीकार करके प्रतिज्ञापत्र ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून में निश्चित रूप से एक भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था। परन्तु सैनिक प्रतिबंधों के विषय मे ऐसी किसी कानूनी बाध्यता का अभाव था और आर्थिक प्रतिबंधों के विषय मे सभी सदस्य-राष्ट्र यह अनुभव करने लगे थे कि इनका स्वरूप भी अब बाध्यकारक नहीं रह गया था।

संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणापत्र

उपर्युक्त स्थिति से संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र के अधीन गठित तंत्र की तुलना करने पर हम देखते हैं कि यह स्पष्ट रूप से प्रगतिशील है। सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों के मध्य सर्वसम्मति की आवश्यकता घोषणापत्र का एक गम्भीर दोष है परन्तु इसके निम्नलिखित लक्षणों से स्पष्ट हो जाता है कि १९४५ में इस पर हस्ताक्षर करके कोई प्रतिगामी पग नहीं उठाया गया था।

१. बल प्रयोग के तंत्र को लागू करने का उत्तरदायित्व सघ के व्यक्तिगत सदस्यों के बदले अब संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख अंग सुरक्षा परिषद् को सौंपा गया है। शान्ति के लिए खतरे की उपस्थिति का निर्णय करना और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा बनाये रखने के लिए संस्तुति करना धारा ३९ के अधीन सुरक्षा परिषद् का कानूनी कर्तव्य है।

२. घोषणापत्र की धारा ७ के अधीन सुरक्षा परिषद् के निर्णयों का पालन करना संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों के लिये अनिवार्य है। इस विषय मे सैनिक एवं अन्य प्रकार के प्रतिबंधों मे किसी प्रकार का भेद नहीं किया गया है।

३. आक्रमण होने या शान्ति भंग का निर्णय करने के लिए सुरक्षा परिषद् किसी कठोर परिभाषा से बन्धी नहीं है।

४. घोषणापत्र के सहायक अंग—सैनिक स्टाफ समिति—के माध्यम से सामूहिक

सैनिक कार्यवाही के नियमित निर्देशन और नियत्रण का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार सयुक्त राष्ट्र सघ के घोषणापत्र के अधीन गठित यह तकनीकी सैनिक सगठन राष्ट्रसघ के प्रतिज्ञापत्र के अधीन इसी प्रकार के सगठन से निश्चयपूर्वक प्रगतिशील है।

५ अपनी सबसे बडी असफलता मतदान की कार्यविधि मे भी सयुक्त राष्ट्र सघ के घोषणापत्र ने सघ के प्रतिज्ञापत्र मे प्रतिष्ठित प्रत्येक सदस्य की सर्वसम्मति के सिद्धान्त को त्याग कर इसके स्थान पर केवल स्थायी सदस्यो की सर्वसम्मति के सिद्धान्त को स्थापित किया है। सक्षेप मे, जहाँ सघ के प्रतिज्ञापत्र के अनुसार ५० से अधिक सदस्यो का सर्वसम्मत होना आवश्यक था अब सयुक्त राष्ट्र सघ के घोषणापत्र मे केवल *पाँच स्थायी सदस्यो का सर्वसम्मत होना ही पर्याप्त माना गया है।* वास्तव मे यह बडे खेद का विषय है कि मानव-मात्र के कल्याण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विषयो मे ये पाँच सदस्य भी एकमत नही हो पाते। सयुक्त राष्ट्र सघ के प्रारभिक दो वर्षों मे सदस्यो की सर्वसम्मति की अनिवार्यता के कारण २३ निर्णय नही लिये जा सके क्योकि एक स्थायी सदस्य बराबर निषेधाधिकार का प्रयोग करता रहा। इसके पश्चात् अनेक बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया जा चुका है। सघ और राष्ट्रसघ के अनुभवो से यह निष्कर्ष निकलता है कि ससार के राष्ट्रो मे शान्ति की सच्ची इच्छा और आवश्यक सद्भावना के अभाव मे सामूहिक रक्षा की कोई प्रणाली सफल नही हो सकती। सब राष्ट्र न सही उनमे से कुछ तो सहमत हो ही सकते हैं और सहमत होने वाले यह राज्य एक नई प्रणाली विकसित कर रहे हैं। एक दूसरे के मनोभाव समझने वाले राज्यो ने भिन्न दिशा मे प्रयास आरम्भ कर दिये है और वे *'सर्वसम्मति के नियम'* की बाधा के बिना सामूहिक रक्षा प्रणाली मे सहकार कर सकते हैं। कानूनी विचारो के अतिरिक्त सकीर्ण अथवा क्षेत्रीय आधार पर ही सही अन्तर्राष्ट्रीय सशस्त्र सेनाएँ भरती करने, रखने और उनका प्रयोग करने के एक प्रयोग के रूप मे उत्तर अतलान्तिक सधि ने पर्याप्त सैनिक महत्त्व प्राप्त कर लिया है।

१४

समकालीन संधियाँ और "सामूहिक समझौते"

खेद का विषय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के जीवन के आरम्भिक दो वर्षों में ही यह स्पष्ट हो गया कि सदस्यों के मध्य अत्यधिक विचार-वैभिन्य होने के कारण घोषणापत्र के प्रमुख उद्देश्यों को शीघ्रतापूर्वक प्राप्त करना असम्भव है। दिसम्बर १९४७ मे विदेश मंत्रियों का लन्दन सम्मेलन भंग होने पर पश्चिमी योरोप की रक्षा एक आवश्यक समस्या बन गई। पश्चिमी योरोप के देश यह अनुभव करते थे कि पृथक् इकाईयों के रूप मे रहने पर कोई भी युद्ध-प्रिय शक्ति उन पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर सकती है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि रक्षा-उद्देश्यों के लिए गठित एक संघ के माध्यम से परस्पर सहयोग करके ही वे एक-एक करके पराजित होने से अपनी रक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं। भय के इन कारणों से ही ब्रूसेल्स संधि और उत्तर अतलान्तिक संधि पर हस्ताक्षर हुए।

डनकर्क की संधि

इन संधियों के अग्रदूत के रूप मे ४ मार्च १९४७ को डनकर्क की संधि (Treaty of Dunkirk) पर हस्ताक्षर हुए।[1] यह युनाइटेड किंगडम और फ्रांसीसी गणतंत्र के मध्य परस्पर सहयोग और मैत्री की एक पन्द्रह वर्षीय संधि थी। इस संधि मे दोनों देशों के मध्य आर्थिक समस्याओं पर विचार-विमर्श का प्रावधान था और यह मुख्यतया जर्मनी के विरुद्ध थी। इसकी शर्तों के अनुसार दोनों मे से यदि कोई भी देश पुनः जर्मनी के साथ युद्ध मे उलझ जाय तो दूसरा उसे अपनी शक्ति भर पूर्ण सैनिक एवं अन्य सहायता देने को वचनबद्ध था।

ब्रूसेल्स की संधि

पश्चिमी योरोप को सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से डनकर्क की संधि का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होने के कारण एक अधिक व्यापक संधि की आवश्यकता थी। एक वर्ष से कुछ ही अधिक समय पश्चात् १७ मार्च १९४८ को बेल्जियम, फ्रांस, लक्समबर्ग,

---

1 Cmd ७२१७ (१९४७)

नीदरलैण्ड और युनाइटेड किंगडम के मध्य ब्रुसेल्स की संधि[2] पर हस्ताक्षर हुए।[3] यह संधि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सहयोग तथा संयुक्त रक्षा की समस्याओं से सम्बन्धित थी।

किसी भी स्थान पर शान्ति को खतरा उत्पन्न करने वाली स्थिति पैदा होने पर हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा परस्पर विचार-विमर्श के वचन के बावजूद पाँचों शक्तियों ने आक्रमण होने पर एक दूसरे की सहायता करने का विशिष्ट समझौता भी किया। अतीत में सैनिक मामलों और विदेश नीति में समन्वय स्थापित करने वाले किसी *स्थायी तंत्र का अभाव* इन संधियों का सबसे बड़ा दोष रहा है। सैनिक क्षेत्र में सैनिक साज-सामान के मानकीकरण की समस्याओं तथा छोटे राष्ट्रों द्वारा वित्तीय कारणों से भलीभाँति संतुलित सेनाएँ रखने की असमर्थता के कारण भी इस आवश्यकता पर बल दिया गया है। इस तथ्य को स्वीकार करके ही ब्रुसेल्स संधि में संगठन के वचनों का पालन कराने के लिए एक स्थायी तंत्र की व्यवस्था की गई है।

इस संधि की धारा ७ के अनुसार संगठन में सर्वोच्च अधिकार सहित एक परामर्शदात्री परिषद् स्थापित की गई है, पाँचों शक्तियों के विदेश मंत्री इसके सदस्य होते हैं और इसका अधिवेशन बारी बारी से प्रत्येक राज्य की राजधानी में तीन मास में कम से कम एक बार अवश्य होता है। संधि के अन्तर्गत आने वाले सभी प्रश्नों पर *पाँचों शक्तियों द्वारा परस्पर विचार-विमर्श सुलभ कराने के अपने कार्य की निरन्तरता* सुनिश्चित करने के लिए परिषद् के एक स्थायी अंग की स्पष्ट आवश्यकता थी। लन्दन में एक स्थायी आयोग स्थापित करके यह आवश्यकता पूरी की गई, चारों शक्तियों के लन्दन स्थित कूटनीतिक प्रतिनिधि, यूनाइटेड किंगडम का एक राजदूत स्तर का प्रतिनिधि, और एक उचित सचिवालय इसमें शामिल थे। स्थायी आयोग राजनीतिक क्षेत्र में पाँचों शक्तियों के मध्य राजनीतिक विचार-विमर्श का स्थायी अवयव है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अनेक समितियाँ और उप-समितियाँ गठित करके यह उनकी *कार्यवाही निर्देशित करता है। आयोग को रक्षा* के क्षेत्र में, सैनिक समिति, आपूर्ति परिषद्, सेनाध्यक्षों की समिति और युद्ध संचालन के अतिरिक्त अन्य विषयों सम्बन्धी रक्षा समिति के कार्यों से नियमित रूप से अवगत रखा जाता है। आवश्यकतानुसार आयोग रक्षा संगठन की कार्यवाहियों को समन्वित करके राजनीतिक सलाह भी दे सकता है। यह उस धारा का कार्य भी करता है जिसके माध्यम से रक्षा संगठन सम्बन्धी सूचना परामर्शदात्री परिषद् को भेजी जाती है।

---

२ Cmd ७५९९ (१९४९), २३ अक्टूबर १९५४ को संशोधित Cmd ९३०४) (१९५४)

३ जून १९४८ में जर्मन जनवादी गणतंत्र और इटली भी इसमें शामिल हो गए।

संधि के अनुसार परामर्शदात्री परिषद् के सामान्य निर्देशन के अधीन गठित पश्चिमी संघ की रक्षा समिति नामक रक्षा संगठन का उत्तरदायित्व पाँचों शक्तियों के रक्षामंत्रियों पर है। इस समिति की औपचारिक स्थापना ३० अप्रैल १९४८ को हुई तथा भविष्य में गठित किये जाने वाले सहयोगी निकायों की रचना और कार्यों के विषय में मंत्रियों को सलाह देने के लिए एक स्थायी सैनिक समिति स्थापित की गई है जिसका मुख्यालय लन्दन में है। अपने सेनाध्यक्षों तथा स्थायी सैनिक समिति के प्रतिवेदनों पर व्यवहार करते हुये रक्षामंत्रियों ने सितम्बर १९४८ में अपने राष्ट्रीय सैनिक कर्मचारियों का निर्देशन करने वाली एक संयुक्त रक्षा नीति का पालन करने के लिए एक स्थायी समिति की स्थापना के आदेश दिये। यह संस्था दो मुख्य भागों में विभाजित थी। एक भाग सैनिक नियोजन से सम्बन्धित था और दूसरा भाग उत्पादन और आपूर्ति की समस्याओं से।

सैनिक नियोजन शाखा में पाँचों शक्तियों के सेनाध्यक्षों की एक समिति तथा प्रत्येक देश द्वारा प्रदत्त एवं स्थायी सैनिक समिति द्वारा निर्देशित पूर्णकालिक प्रतिनिधियों का एक स्थायी पंचशक्ति सैनिक नियोजन स्टाफ होता था।

उत्पादन और आपूर्ति सम्बन्धी संगठन में एक सैनिक आपूर्ति परिषद् और प्रत्येक देश द्वारा प्रदत्त एक स्थायी पंचशक्ति स्टाफ होते थे।

पाँचों शक्तियों के सेनाध्यक्षों की समिति में सामान्यतया प्रत्येक शक्ति का एक सेनाध्यक्ष होता है। अपने स्टाफ के कार्य की समीक्षा करने और रक्षा समिति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए इस समिति की गोष्ठियाँ नियमित रूप से होती हैं। सेनाध्यक्षों की समिति का कार्य समुद्र पार के देशों सहित सम्पूर्ण पश्चिमी संघ की रक्षा को प्रभावित करने वाले विषयों पर रक्षा समिति को सलाह देना तथा रक्षा समिति द्वारा इसे सौंपे गये सभी मामलों की जाँच-पड़ताल करके उन पर विचार करना है। सेनाध्यक्षों की समिति के विशेष कार्य पश्चिमी योरोप में :—

(अ) संधि में शामिल देशों की सैनिक आवश्यकताएँ पूरी करने हेतु पाँचों देशों के सैनिक साधनों को संगठित करना;

(आ) विभिन्न राष्ट्रों की सेनाओं को एक प्रभावी युद्धकारी तंत्र के रूप में संगठित करना;

(इ) एक ओर आंतरिक सुरक्षा और घरेलू रक्षा तथा दूसरी ओर पश्चिमी योरोप की संयुक्त रक्षा की आवश्यकताओं के मध्य उचित संतुलन बनाए रखना; तथा

(ई) कार्यवाही सम्बन्धी आवश्यक योजनाएँ बनाकर उन पर व्यवहार करने के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी पश्चिमी योरोप के संयुक्त रक्षा संचालन के लिए आवश्यक साधनों के उचित मूल्यांकन, तैयारी और वितरण को सुनिश्चित करना है।[४]

---

४ Cmd ७८८३.

इस प्रकार सेनाध्यक्षों की यह समिति द्वितीय विश्वयुद्ध काल में वाशिंगटन स्थित संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति के समान आधार पर गठित है। यद्यपि सेनाध्यक्षों की गोष्ठियाँ समय-समय पर होती रहती हैं फिर भी इन गोष्ठियों के मध्य कार्य करने के लिए लन्दन में एक स्थायी सैनिक समिति है। सेनाध्यक्षों की समिति की सहायता के लिए स्थायी सचिवालय के रूप में कार्य करने वाले प्रत्येक देश के विभिन्न मन्त्रिमण्डलों के अध्यक्ष इस समिति के सदस्य होते हैं। सचिवालय का गठन एकीकृत पचशक्ति आधार पर किया जाता है एवं सचिवालय में यूनाइटेड किंगडम के प्रतिनिधि मण्डलों के पूर्णकालिक सदस्य रक्षा मन्त्रालय स्टाफ के सदस्य होते हैं।

सितम्बर १९४८ में इसकी गोष्ठी में यह भी निर्णय किया गया था कि *पश्चिमी संघ की रक्षा सम्बन्धी तकनीकी और सामरिक समस्याओं का अध्ययन करने* हेतु एक स्थायी सैनिक अध्यक्ष के अधीन एक सैनिक, नौसैनिक और वायु कमान होनी चाहिए। प्रधान सेनापतियों की यह समिति मूलतः लार्ड माण्टगोमरी (Lord *Montgomery*) *की अध्यक्षता में गठित की गई थी और संघ में शामिल प्रत्येक* देश से एक-एक कमान संचालक चुना गया था। रक्षा की विस्तृत योजनाएँ तैयार करने के लिए सेनाध्यक्षों की समिति के प्रति उत्तरदायी इस समिति में अपना संचालक न भेजने वाले देश को भी प्रतिनिधित्व प्राप्त था।

५ अक्टूबर १९४८ को योरोप के विभिन्न क्षेत्रों में नियमित संचालकों की नियुक्ति की घोषणा करके पाँचों शक्तियों ने एक महत्त्वपूर्ण पग उठाया। पश्चिमी योरोप की स्थल सेनाओं का प्रधान सेनापति एक फ्रांसीसी जनरल ज्यां दलात द तासीनी) Jean de Lattre de Tassigny) था। पश्चिमी योरोप की वायु सेना का प्रधान सेनापति एक अंग्रेज वायु चीफ मार्शल सर जेम्स रॉब (*Sir James Robb*) था। इसी प्रकार उप-एडमिरल जांजर्ड पश्चिमी योरोप का ध्वजाधिकारी था। सैनिक अध्यक्ष और प्रधान सेनापतियों के स्टाफ में नीदरलैण्ड, बेल्जियम और लक्सम-बर्ग के तीन छोटे राज्यों के उच्च पदाधिकारी थे।

ब्रूसेल्स संधि के अधीन संगठन के उत्पादन और आपूर्ति पक्ष पश्चिमी संघ सैनिक आपूर्ति परिषद् के नियंत्रण में है जिसमें पाँचों शक्तियों का एक-एक सदस्य होता है। यह परिषद् सैनिक साज-सामान के उत्पादन और प्राप्ति के संयुक्त प्रश्नों पर विचार करके इनके सम्बन्ध में रक्षा समिति से संस्तुतियाँ करती है। सैनिक आपूर्ति परिषद् के कार्य निम्नलिखित हैं :—

(अ) सैनिक आपूर्ति को प्रभावित करने वाले सभी प्रश्नों पर रक्षामंत्रियों को सलाह देना;

(आ) अपने संयुक्त रक्षा उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जिन सेनाओं की भरती और रख-रखाव का पाँच शक्तियाँ निश्चय करें उनके लिये आयुधों और साज-सामान सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुमानों के तुलनात्मक समन्वय की व्यवस्था करना,

(इ) इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपाय निश्चित करके अपने निर्णयों में रक्षा समिति को सूचित करना, और

(ई) पश्चिमी संघ के सेनाध्यक्षों की समिति से इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक सलाह प्राप्त करना और सेनाध्यक्षों को आपूर्ति के प्रश्नों पर आवश्यक सलाह देना।

सेनाध्यक्षों की समिति की भाँति ही सैनिक आपूर्ति परिषद् का एक स्थायी पचशक्ति स्टाफ लन्दन में रहता है। इसमें प्रत्येक देश का एक पूर्णकालिक प्रतिनिधि-मण्डल होता है और इन प्रतिनिधिमण्डलों के अध्यक्षों की एक आपूर्ति कार्यकारिणी समिति इसका निर्देशन करती है।[५]

पश्चिमी संघ रक्षा संगठन शान्तिकाल में एक क्रान्तिकारी संगठन है। परम्परागत शान्तिकालीन सैनिक सन्धि में सामान्यतया युद्धकाल में आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए शक्तियों के एक संगठन की स्थापना की जाती है। शान्तिकाल में ऐसी संधियों में बहुधा अल्प सहकार ही दिखाई पड़ता है और यदि सैनिक शक्तियों और नीतियों में समन्वयन होता भी है तो केवल युद्ध छिड़ने पर ही होता है। पश्चिमी योरोप के मामले में स्पष्ट ही एक ऐसे प्राधिकरण की आवश्यकता थी जिसके निर्णयों पर कार्यान्वयन करते समय राज्यों के मत-वैभिन्न्य के कारण गम्भीर बाधाएँ और विलम्ब न हों। साथ ही इस प्राधिकरण द्वारा पाँचों शक्तियों की सेनाओं को एक एकीकृत सेना के रूप में संगठित किये बिना भी यह संधि प्रभावहीन रहेगी क्योंकि भविष्य में होने वाले युद्धों की तीव्रगति के कारण एक बार युद्ध छिड़ जाने पर ऐसे समन्वयन के लिये बहुत कम समय मिल पायगा।

स्टाफों के मध्य प्रभावी विचार-विमर्श का कोई तरीका तथा अपनी निजी सेनाओं की संख्या और तैयारी के विषय में सन्धि में शामिल किसी भी देश के स्वतंत्र नियंत्रण में हस्तक्षेप किये बिना संयुक्त विदेश नीतियों और संयुक्त युद्ध योजनाओं पर एक समझौता होना चाहिए। जिन सम्भावनाओं के विरुद्ध प्रावधान करना है वे तथा उपलब्ध साधनों के परिमाण सम्बन्धी प्रश्न विदेश नीति से सम्बन्धित राजनीतिक प्रश्न हैं। एक बार इन समस्याओं का समाधान हो जाने पर रक्षा के क्षेत्र में इन नीतियों का कार्यान्वयन कोष एकत्र करने वाले वित्त विभाग पर, कोष का प्रशासन एवं आपूर्ति और साज-सामान एकत्र करने वाले आपूर्ति विभाग पर, कार्यवाही नियोजन करने वाले स्टाफ पर, तथा सेनाओं की सार-सम्भाल और निर्देशन करने वाली एक कमान पर निर्भर करता है। ब्रूसेल्स संधि संगठन में ये सभी तत्त्व विद्यमान हैं। संगठन विदेश विभाग और रक्षा के परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध को स्वीकार करता है। जिन खतरों का सामना करने के लिए तैयारी करनी चाहिए उनके विषय में विदेश

५ इस अध्याय का परिशिष्ट 'अ' देखिए।

विभाग के संचालक सेना के संचालकों को भलीभांति सूचित कर सकते हैं। विदेश विभाग का सचालन आवश्यकता के समय उपलब्ध सेना की संख्या पर निर्भर करता है। अत: रक्षा में सहकार के लिए एक संयुक्त विदेश नीति की आवश्यकता होती है जिसमें सम्भावित मित्रों और शत्रुओं में भेद करते हुए युद्ध सम्बन्धी सामान्य कार्यवाही पर विचार किया जा सके। संगठन के शीर्ष पर स्थित विदेश मन्त्रियों की परामर्शदात्री समिति कूटनीति और रक्षा में पूर्ण सहयोग निश्चित करती है।

पश्चिमी संघ रक्षा संगठन ने शान्तिकाल में शक्तियों के मध्य सैनिक सहयोग के अन्य क्षेत्रों में भी नए-नए प्रयोग किये। सेनाध्यक्षों की समिति गठित करने का निर्णय समन्वित नियोजन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण प्रगति का प्रतीक है। इस समिति में सामान्यतया प्रत्येक शक्ति का एक-एक सेनाध्यक्ष होता है और वही अपने देश के तीनों सेनाध्यक्षों के संयुक्त विचार समिति के सम्मुख प्रस्तुत करता है। सेनाध्यक्षों की सहायता करने वाली स्थायी सैनिक समिति के कार्य में संयुक्त स्टाफों का सिद्धान्त (जिसमें अलग-अलग अधिकारी अपनी सेवा भुजा का विचार किये बिना अपने देश का एकीकृत दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं) इस धारणा को एक पग और आगे बढ़ाता है। निम्न स्तरों पर किसी एक ही सेवा की कार्यवाही को प्रभावित करने वाली समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता है। परन्तु सेनाध्यक्षों की समिति और स्थायी सैनिक समिति के स्तर पर तीनों सेवाओं के लिए एक ही प्रतिनिधि रखने का सिद्धान्त दृढतापूर्वक स्थापित कर दिया गया है।

अत. ब्रूसेल्स संधि ने सामूहिक राजनीतिक व्यक्तित्व सम्पन्न एक ऐसे संगठन को जन्म दिया जिसे मुख्यालय स्थित नियोजकों और रणक्षेत्र स्थित संचालकों वाले एक सक्रिय सैनिक संगठन का समर्थन प्राप्त है। योरोप के एक ही भाग तक सीमित छोटे पैमाने का यह संगठन वास्तव में सामूहिक रक्षा प्रणाली स्थापित करने का एक अद्वितीय प्रयोग था। संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणापत्र धारा ४३ के विशिष्ट संकल्प के बावजूद अभी तक ऐसे किसी संगठन को जन्म नहीं दे पाया था। यदि संयुक्त राज्य अमरीका अपने सारे आर्थिक और सैनिक साधनों से इस संगठन की सहायता न करता तो अपने सदस्यों की सच्चाई और ईमानदारी के बावजूद यह असफल हो जाता। संयुक्त राज्य अमरीका के प्रवेश के साथ ही सामूहिक प्रयत्नों के इतिहास में महान सम्भावनाओं से पूर्ण एक नया अध्याय आरम्भ करने के उद्देश्य से ब्रूसेल्स संधि का उत्तर अतलांतिक संधि संगठन में विलय कर दिया गया। योरोपीय रक्षा समुदाय के असफल हो जाने पर उत्तर अतलांतिक संधि संगठन के साथ और भी अधिक समन्वय स्थापित करने हेतु १९५४ में ब्रूसेल्स संधि में आधारभूत संशोधन कर दिये गये हैं।[१]

---

१ Cmd ९३०४ (१९५४)

उत्तर अतलांतिक संधि

ब्रुसेल्स संधि संगठन के आरम्भ से ही संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा सैनिक प्रेक्षकों के माध्यम से इसके कार्य से सम्बन्धित रहे थे। निस्सन्देह पाँच शक्तियों द्वारा किया गया पथ-प्रदर्शक कार्य न केवल उत्तर अतलांतिक संधि के अधीन स्थापित संगठन का स्वरूप निश्चित करने में वरन् अन्तर्राष्ट्रीय मामलों और रक्षा के प्रश्नों में ऐसी संधि किए जाने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने में भी बड़ा ही सहायक सिद्ध हुआ। जिस दिन ब्रुसेल्स संधि पर हस्ताक्षर हुए उसी दिन कांग्रेस को दिए गए एक वक्तव्य में राष्ट्रपति ट्रूमैन ने कहा था, "अपनी रक्षा करने के लिए योरोप के स्वतंत्र देशों ने दृढ़ निश्चय किया है, मेरा विश्वास है कि इस उद्देश्य की पूर्ति में उनकी सहायता करने के लिए हमें भी ऐसा ही दृढ़ निश्चय करना चाहिए।" इस वक्तव्य के पश्चात् जून १९४७ में सीनेट ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें 'अविराम स्वयं-सेवा और परस्पर सहायता पर आधारित तथा संयुक्त राज्य अमरीका की राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने वाली सामूहिक और क्षेत्रीय व्यवस्थाओं के साथ संयुक्त राज्य अमरीका को सांविधानिक प्रक्रियाओं द्वारा सम्बन्धित करना' अमरीका की नीति का उद्देश्य कहा गया है।

१ जनवरी १९४९ को संयुक्त राष्ट्र संघ के अध्यक्ष ने घोषणा की कि संयुक्त-राज्य अमरीका तथा अन्य राष्ट्र एक अतलांतिक समझौते का ब्यौरा तैयार करने में लगे हैं। आरम्भिक सात सदस्यों के साथ पाँच सदस्य और मिल गए और इस प्रकार ४ अप्रैल १९४८ को बारह राज्यों ने अतलांतिक संधि पर हस्ताक्षर किये।[७] पश्चिमी संघ की पाँच शक्तियों, संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा के साथ-साथ—नार्वे, डेनमार्क, इटली, पुर्तगाल और आइसलैण्ड ने भी इस संधि पर हस्ताक्षर किये।[८]

संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों का प्राथमिक कार्य धारा ५ में इस प्रकार पारिभाषित किया गया है :

संधि में शामिल देश इस बात पर सहमत हैं कि योरोप या उत्तर अमरीका में उनमें से किसी एक या एक से अधिक देशों पर सशस्त्र आक्रमण उन सब पर आक्रमण माना जायगा; इसके परिणामस्वरूप वे इस बात पर भी सहमत हैं कि ऐसा सशस्त्र आक्रमण होने की स्थिति में उनमें से प्रत्येक संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की धारा ५१ में स्वीकृत व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुये स्वयं तथा अन्य पक्षों के सहयोग से उत्तर अतलान्तिक क्षेत्र की सुरक्षा पुनर्स्थापित करने और इसे बनाए रखने के लिए सशस्त्र सेनाओं के प्रयोग

---

७ Cmd ७७८९ (१९४९)

८ जर्मन जनवादी गणतंत्र १९ अक्टूबर १९५४ को इसमें शामिल हुआ पर यूनान और तुर्की १९५२ में ही इसके सदस्य बन चुके थे।

सहित आवश्यक कार्यवाही द्वारा इस प्रकार से आक्रमण का शिकार होने वाले पक्ष अथवा पक्षों की तुरन्त सहायता करेगा।

उत्तर अतलान्तिक संधि के अंग

परिषद्—संधि का उद्देश्य पूरा करने के लिए सभी आवश्यक मामलों पर विचार-विमर्श करने तथा आवश्यक सहायक निकाय स्थापित करने के लिए संधि की धारा ६ के अनुसार इन देशों के विदेश मंत्रियों की एक परिषद् स्थापित की गई। यह परिषद् उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन का प्रमुख निकाय है तथा अन्य सभी सहायक निकाय इसके अधीन हैं। यदि विदेश मंत्री परिषद् की गोष्ठियों में उपस्थित नहीं हो पाते तो पूर्ण सत्ता प्राप्त प्रतिनिधि उनका स्थान लेते हैं। ब्रुसेल्स संधि के अधीन स्थापित स्थायी आयोग के समकक्ष कोई निकाय न होने के कारण आवश्यकतानुसार किसी भी समय परिषद् की गोष्ठी तुरन्त आयोजित करने के उद्देश्य से सम्बन्धित पक्षों के वाशिंगटन स्थित कूटनीतिक प्रतिनिधियों को अपनी-अपनी सरकार का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार प्रदान किया गया है। आरम्भ में परिषद् की मंत्री-स्तरीय गोष्ठियों की अध्यक्षता वार्षिक आधार पर बारी-बारी से प्रत्येक देश द्वारा की जाती थी, परन्तु स्थायी प्रतिनिधियों की गोष्ठी की अध्यक्षता महासचिव ही करता था। दिसम्बर १९५६ में परिषद् की अध्यक्षता भी महासचिव ही करने लगा है। परिषद् अपने निर्णय बिना मतदान के एकमत से लेती है। सामान्य वार्षिक सत्रों के समय तथा पक्षों के बहुमत द्वारा आवश्यक समझे जाने वाले अन्य किसी समय इसकी गोष्ठियाँ अध्यक्ष द्वारा आयोजित की जाती हैं। इसके साथ ही धारा ४ या ५ का आवाहन करने वाले किसी भी पक्ष की प्रार्थना पर विशेष सत्र भी आयोजित किये जा सकते हैं। धारा ४ में किसी एक पक्ष की राय में उसकी प्रादेशिक अखण्डता, राजनीतिक स्वतन्त्रता और सुरक्षा को खतरा उत्पन्न होने पर विचार-विमर्श का प्रावधान है। धारा ५ के अधीन सभी पक्ष इस बात पर सहमत हैं कि उनमें से किसी एक पर सशस्त्र आक्रमण उन सबके विरुद्ध आक्रमण माना जायगा और उत्तर अतलान्तिक क्षेत्र की सुरक्षा पुनर्स्थापित करने और बनाए रखने के लिए सभी आवश्यक कार्यवाही तुरन्त की जायगी। सभी पक्ष बारी-बारी से परिषद् की अध्यक्षता करते हैं।

उत्तर अतलान्तिक संधि की सितम्बर १९५८ की स्थिति का असैनिक और सैनिक संगठनात्मक मानचित्र इस अध्याय के परिशिष्ट 'ई' में दिया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि निश्चित राजनीतिक और सैनिक क्षेत्रों वाले एक संगठन को जन्म दिया गया है। विदेश मंत्रियों की उत्तर अतलान्तिक परिषद् सदस्य-राज्यों की ओर से नीति सम्बन्धी आधारभूत सिद्धान्तों पर नियम बनाती थी तथा अपने सेनाध्यक्षों, सैनिक समिति और स्थायी दल की सहायता से

उस नीति पर व्यवहार कराने का उत्तरदायित्व उत्तर अतलान्तिक रक्षा समिति पर था। इस प्रकार सामूहिक रक्षा संगठित करने के तदर्थ उद्देश्य की पूर्ति हेतु एक राजनीतिक इकाई का बीजारोपण हुआ है।

उत्तर अतलान्तिक रक्षा समिति

परिषद् के अधीन मंत्री-स्तर की दो समितियाँ स्थापित की गई हैं : उत्तर अतलान्तिक रक्षा समिति जिसके सदस्य राज्यों के रक्षामंत्री होते हैं तथा उत्तर अतलान्तिक रक्षा वित्त एवं आर्थिक समिति जिसमें वित्तमंत्री सदस्य होते हैं। रक्षा समिति में प्रत्येक सदस्य-राज्य का एक-एक प्रतिनिधि होता है जो या तो रक्षामंत्री होता है या उसका प्रतिनिधि। बारी-बारी से प्रत्येक सदस्य-राज्य का प्रतिनिधि इसकी अध्यक्षता करता है तथा इसकी गोष्ठी अध्यक्ष द्वारा वर्ष में एक बार अथवा सदस्यों के बहुमत द्वारा निर्धारित समय पर आयोजित की जाती है। इस समिति का कार्य सशस्त्र आक्रमण का सामना करने के लिए सदस्यों की व्यक्तिगत और सामूहिक क्षमता विकसित करने के लिए आवश्यक उपायों की संस्तुति करना है।

रक्षा समिति के अधीन रक्षा संगठन की दो मुख्य शाखाएँ—एक सैनिक नियोजन सम्बन्धी और दूसरी आपूर्ति समस्याओं सम्बन्धी स्थापित की गई हैं।

उत्तर अतलान्तिक सैनिक समिति में प्रत्येक सदस्य-राज्य का एक-एक प्रतिनिधि होता है जो सामान्यतया सेनाध्यक्ष अथवा उसका प्रतिनिधि होता है। आइसलैण्ड के पास कोई सेना न होने के कारण इस समिति में उसका प्रतिनिधित्व एक असैनिक अधिकारी करता है। इस समिति का कार्य अपने स्थायी दल को सैनिक स्वभाव के सामान्य नीति-निर्देश देना, रक्षा समिति तथा अन्य एजेन्सियों को सैनिक मामलों में परामर्श देना, और रक्षा समिति से उत्तर अतलान्तिक क्षेत्र की एकीकृत रक्षा के लिए सैनिक उपायों की संस्तुति करना है। वास्तव में यह रक्षा समिति की राजनैतिक निकाय की सेनाध्यक्षों की समिति है और जैसा कि राज्यों में होता है इसका उत्तरदायित्व सामरिक समीक्षा प्रस्तुत करना एवं रक्षा समिति को व्यावसायिक दक्ष सैनिक सलाह देना है।

सैनिक समिति के कुशल और शीघ्र कार्य-संचालन हेतु इसकी 'सामूहिक दल' नामक एक समिति है जिसमें फ्रांस, यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमरीका का एक-एक प्रतिनिधि होता है। यह दल स्थायी रूप से वाशिंगटन में रहता है। सैनिक समिति द्वारा प्रदत्त सामान्य नीति-निर्देश के अनुसार स्थायी दल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह क्षेत्रीय नियोजन दलों अथवा संगठन के किसी अन्य निकाय को उनके कार्य के लिए आवश्यक सैनिक स्वभाव के विशिष्ट नीति-निर्देश और सूचनाएँ प्रदान करेगा। स्थायी दल का पेरिस स्थित प्रतिनिधि परिषद् से सम्पर्क बनाये रखता है। उत्तर अतलान्तिक क्षेत्र की एकीकृत रक्षा का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए स्थायी दल क्षेत्रीय नियोजन दलों द्वारा प्रस्तुत योजनाओं को समन्वित एवं एकीकृत करता है

और उनके विषय में सैनिक समिति से उचित सस्तुतियाँ करता है। 'परिस स्थित योरोपीय मित्र शक्तियों के सर्वोच्च मुख्यालय का अध्यक्ष योरोप का सर्वोच्च मित्र सेनापति, नौरफोक, वर्जीनिया स्थित अतलान्तिक कमान के मुख्यालय का अध्यक्ष, अतलान्तिक का सर्वोच्च मित्र सेनापति, धारा (Channel) समिति और धारा कमान, और कनाडा-संयुक्त राज्य अमरीका क्षेत्रीय नियोजन दल स्थायी दल के अधीन होते हैं। शान्तिकाल में इनमें से केवल योरोपीय मित्र शक्तियों के सर्वोच्च मुख्यालय के अधीन ही सेनाएँ रहती हैं।"[९] निस्सन्देह यह स्वीकार किया जाता है कि क्षेत्रीय नियोजन दलों का प्राथमिक कार्य अपने-अपने क्षेत्रों और उन सरकारों के लिए योजनाएँ तैयार करना है जो इन योजनाओं पर व्यवहार करने के लिए सहमत हो गई हैं। अतः यह निश्चय किया गया है कि यदि स्थायी दल सेनाओं के प्रयोग सहित किसी कार्यवाही अथवा किसी ऐसे सदस्य जिसे स्थायी दल में प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो, के साधनों के प्रयोग के विषय में उक्त सदस्य द्वारा स्वीकृत व्यवस्थाओं से भिन्न योजना की संस्तुति करता है तो उस सदस्य को स्थायी दल द्वारा ऐसी संस्तुतियाँ तैयार करने के कार्य में भाग लेने का अधिकार होगा। इसके साथ ही जब क्षेत्रीय नियोजन दल अपनी क्षेत्रीय योजनाओं की सूचना स्थायी दल को दें तो यह आवश्यक नहीं कि स्थायी दल का कोई सदस्य ही उन्हें प्रस्तुत करे और उनकी व्याख्या करे, क्षेत्रीय दल का कोई भी सदस्य ऐसा कर सकता है। जिन देशों का स्थायी दल में प्रतिनिधित्व नहीं है वे इससे निकट सम्पर्क बनाए रखने के लिए एक विशेष प्रतिनिधि नियुक्त कर सकते हैं। इस स्थायी दल की स्थापना द्वारा अतलान्तिक सन्धि संगठन की शक्तियों ने शीघ्र और कुशल सैनिक नियोजन के कार्य को एक छोटे निकाय के हाथ में सौंपने की आवश्यकता को व्यावहारिक मान्यता प्रदान कर दी है।

उत्तर अतलान्तिक क्षेत्र की सुरक्षा के विशिष्ट पक्षों का अध्ययन करने के लिए स्थायी दल के अधीन अनेक क्षेत्रीय नियोजन दल गठित किए गए थे। ब्रूसेल्स सन्धि के अपेक्षतया छोटे पर अधिक सुगठित दल में इन निकायों की आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार स्थायी दल और क्षेत्रीय नियोजन दलों का गठन करके ब्रूसेल्स सन्धि में संशोधन कर दिया गया है।[१०]

प्रत्येक क्षेत्रीय दल का कार्य अपने क्षेत्र की रक्षा योजनाएँ विकसित करके उनकी स्थायी दल के माध्यम से संस्तुति करना और विभिन्न क्षेत्रीय नियोजनों में संघर्ष दूर करके समन्वय स्थापित करने के लिए अन्य क्षेत्रीय नियोजन दलों से सहकार करना है। यदि क्षेत्रीय नियोजन दल किसी ऐसे राज्य के भू-प्रदेश की रक्षा को

---

९ एम० एम० बॉल : उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन और योरोपीय सन्धि आन्दोलन, १९५९, पृ० ६२।

१० इस अध्याय का परिशिष्ट 'ग' देखिए।

प्रभावित करने वाली अथवा उसकी सेनाओं, सुविधाओं या साधनों के प्रयोग के सम्बन्ध में संस्तुति करता है जो उस दल का सदस्य नहीं है तो उस राज्य को दल द्वारा ऐसी संस्तुतियाँ तैयार करने के कार्य मे भाग लेने का अधिकार होगा। इसके अतिरिक्त यदि कोई दल यह समझे कि कोई राज्य जो उस दल का सदस्य नहीं है उस क्षेत्र की रक्षा योजना में योगदान कर सकता है तो उचित होने पर वह उस राज्य को नियोजन कार्य मे भाग लेने के लिए आमन्त्रित कर सकता है। रक्षा समिति ने अक्टूबर १९४९ में अपनी एक गोष्ठी मे निश्चय किया कि कार्यविधि और संगठन सम्बन्धी प्रश्नों को अलग-अलग दलों के निर्णयों पर छोड देना सर्वोत्तम है। अब यह निर्णय करना कि प्रत्येक दल में प्रतिनिधित्व प्राप्त देशों के रक्षामंत्रियों की गोष्ठियाँ बुलाना कहाँ तक उपयुक्त है दल का ही कार्य है। किसी क्षेत्र के सेनाध्यक्षों और सैनिक समिति एवं वाशिंगटन स्थित इसके स्थायी दल के मध्य मंत्री-स्तर की एक औपचारिक समिति स्थापित करना अनावश्यक और व्ययसाध्य समझा गया। जब किसी रक्षा दल के रक्षामन्त्रियों के सम्मेलन की आवश्यकता अनुभव की जाय तो निस्सन्देह ऐसा सम्मेलन हो सकता है।

सैनिक उत्पादन और आपूर्ति परिषद्—उत्तर अतलान्तिक सैनिक उत्पादन और आपूर्ति परिषद् जिसमें प्रत्येक सदस्य-राज्य का उपमंत्री स्तर का एक-एक प्रतिनिधि होता है, सीधे रक्षा समिति से प्रतिवेदन करती है। परिषद् का कार्य यह सुनिश्चित करना है कि सैनिक उत्पादन और सामग्री एकत्र करने के कार्यक्रम रक्षा योजनाओं को प्रभावी समर्थन दे सकें। इसके साथ ही यह परिषद् साज-सामान के मानकीकरण को प्रोत्साहित करने वाले कार्य में सहायक सैनिक निकायों के साथ पूर्ण सहयोग से कार्य करेगी और उन्हें नये और सुधरे हुए आयुधों के उत्पादन और विकास के सम्बन्ध में तकनीकी सलाह उपलब्ध करायेगी। सैनिक आपूर्ति स्थिति की समीक्षा करने, अपर्याप्त वस्तुओं की आपूर्ति बढ़ाने के साधनों की सिफारिश करने तथा सैनिक साज-सामान उत्पादन के और अधिक कुशल उपायों को प्रोत्साहित करने के लिए यह परिषद् रक्षा समिति के प्रति विशेष रूप से उत्तरदायी है। साथ ही यह पुर्जों और उत्पादनों के मानकीकरण तथा सामरिक और खतरनाक वस्तुओं के उत्पादन और प्रयोग पर निगरानी रखने के लिए भी उत्तरदायी है।[११] लन्दन स्थित एक स्थायी कार्यकारी स्टाफ परिषद् के दैनन्दिन कार्य का संचालन करता है। इस स्टाफ में प्रत्येक राज्य द्वारा प्रदत्त योग्यता-प्राप्त कर्मचारी होते हैं। सैनिक समिति के स्थायी दल के साथ घनिष्ठ सहयोग बनाए रखने के लिए परिषद् का एक सम्पर्क अनुभाग वाशिंगटन में रखा जाता है।

यहाँ इस बात का संकेत कर देना भी उचित जान पड़ता है कि उत्तर अतलान्तिक

---

११ परिषद् के कार्यों के विस्तृत ब्यौरे के लिए Cmd ७८८३ का पृ० २८ देखिये।

संधि संगठन के सदस्य तीन प्रकार की सेनाएँ रख सकते हैं . उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन को सौंपी गई सेनाएँ, इसके लिए निर्धारित वे सेनाएँ जो इसे आपातकाल मे अथवा भविष्य मे किसी समय उपलब्ध करायी जाएँगी तथा पूर्णरूपेण राष्ट्रीय सेनाएँ । उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन को सौंपी गई अथवा इसके लिए निर्धारित सेनाओं पर योरोप के सर्वोच्च सहबद्ध संचालक की सत्ता का लॉर्ड इस्मे द्वारा निम्न शब्दों मे वर्णन किया गया है

योरोप के सर्वोच्च सहबद्ध संचालक को शान्तिकाल मे उसको कमान को सौंपी गई सभी सेनाओं पर कार्यवाही सम्बन्धी नियंत्रण प्राप्त होता है और वही उनके लिए उचित संगठन, साज-सज्जा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था करने के लिए उत्तरदायी होता है । शान्तिकाल मे अन्य सेनाओं का विस्तार और निर्धारित सेनाओं के संचालन तथा उन्हें अपनी कमान के अधीन लाने की प्राथमिकता सुनिश्चित करने के मामलों मे वह राष्ट्रीय अधिकारियों से सीधे व्यवहार कर सकता है । अपनी सेनाओं की व्यूहरचना का उत्तरदायित्व प्रत्येक राष्ट्र पर होता है परन्तु इन राष्ट्रीय व्यवस्थाओं मे समन्वय स्थापित करने का उत्तरदायित्व योरोप मे सर्वोच्च सहबद्ध संचालक पर है ।[१२]

ब्रूसेल्स संधि और उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन

पश्चिमी योरोपीय क्षेत्रीय नियोजन दल की सरचना ब्रूसेल्स संधि संगठन के समान थी । अब जब वाशिंगटन मे हस्ताक्षरकर्ताओं ने उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की सामान्य योजना स्वीकार करली तो यह निश्चय करना आवश्यक हो गया कि वर्तमान ब्रूसेल्स संधि रक्षा संगठन को नई योजना के अनुरूप बनाने के लिए इसमे क्या परिवर्तन किए जाएँ । पश्चिमी संघ रक्षा समिति ने इस समस्या का परीक्षण करके २३ नवम्बर १६४६ को एक विज्ञप्ति जारी की जिसमे उत्तर अतलान्तिक रक्षा समिति को सुझाव दिया गया कि अतलान्तिक संधि संगठन के पश्चिमी योरोपीय क्षेत्रीय नियोजन दल मे अपनी स्थायी सैनिक समिति सहित ब्रूसेल्स संधि संगठन के सेनाध्यक्षों की समिति एवं उचित समय पर भाग लेने वाले कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका के प्रतिनिधि होंगे । ब्रूसेल्स संधि के अधीन गठित रक्षा समिति, प्रधान सेनापतियों की समिति तथा आपूर्ति परिषद् की शक्तियाँ और कार्य पूर्ववत् बने रहेंगे । इसके अतिरिक्त यह भी सुझाव दिया गया कि ब्रूसेल्स संधि संगठन सम्बन्धी सूचना और इसके द्वारा सम्पन्न अथवा नियोजित कार्य के ब्यौरे उत्तर अतलान्तिक स्थायी दल को दिए जाएँगे ताकि उत्तर अतलान्तिक सैनिक समिति के सम्मुख अपनी संस्तुतियाँ प्रस्तुत

---

१२ बॉल, उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन और योरोपीय संघ आन्दोलन के पृ० ६२ पर लॉर्ड इस्मे के उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन : प्रथम पाँच वर्ष, १६५५ पृ० ७२ का उद्धरण ।

करते समय उक्त निकाय को आवश्यक सूचना उपलब्ध हो सके।

दिसम्बर १९४९ में उत्तर अतलान्तिक रक्षा समिति ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इसके फलस्वरूप ब्रूसेल्स सन्धि के वर्तमान ढाँचे को कोई क्षति नहीं पहुँची परन्तु पश्चिमी संघ के सेनाध्यक्षों की समिति और इसकी स्थायी सैनिक समिति को उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन के पश्चिमी योरोपीय क्षेत्रीय नियोजन दल के रूप में कार्य करने का दोहरा उत्तरदायित्व मिल गया है।

इसके साथ ही जब उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन ने पूर्ण शक्ति प्राप्त कर ली और कमान संरचना का स्वरूप निश्चित हो गया तो जनरल आइजनहावर द्वारा पश्चिमी योरोप की रक्षा कमान सम्भालने पर पश्चिमी संघ के प्रधान सेनापतियों की समिति को अपना उत्तरदायित्व और कार्य उन्हें सौंपने पड़े। इस प्रकार ब्रूसेल्स सन्धि की रक्षा प्रणाली की स्वतन्त्र सत्ता समाप्त हो गई। फील्ड-मार्शल मान्टगोमरी को जनरल आइजनहावर के अधीन योरोप के उप-सर्वोच्च सहबद्ध संचालक का पद स्वीकार करना पड़ा। परिणामस्वरूप ब्रूसेल्स सन्धि अब उत्तर अतलांतिक संधि संगठन का सहायक अंग बनकर रह गई। ब्रूसेल्स सन्धि में संशोधन करने वाले १९५४ के पेरिस मूल सन्धि पत्रों[13] द्वारा इस बात पर और भी अधिक बल दिया गया है। यूरोपीय रक्षा समुदाय का जन्म न होने तथा उत्तर अतलांतिक क्षेत्र और पश्चिमी योरोप की रक्षा में जर्मन जनवादी गणतन्त्र को शामिल करने का निर्णय करने के कारण ये मूल सन्धि पत्र आवश्यक हो गए थे। ब्रूसेल्स सन्धि की पूर्ति और संशोधन करने वाले प्रथम सन्धि पत्र की धारा ३ के अनुसार इस बात का स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि "सन्धि का पालन करते समय उच्च संविदाकारी पक्ष और सन्धि के अधीन उनके द्वारा स्थापित अन्य अंग उत्तर अतलांतिक संधि संगठन के निकट सहकार में कार्य करेंगे। (साथ ही) उत्तर अतलांतिक संधि संगठन के सैनिक स्टाफों के दोहरे-पन को अनावश्यक समझते हुए सैनिक मामलों में सूचना और सलाह प्राप्त करने के लिए परिषद् (जिसे अब पश्चिमी योरोपीय संघ की परिषद् का नाम दिया गया है) और इसकी एजेन्सी उत्तर अतलांतिक संधि संगठन के समुचित सैनिक अधिकारियों पर निर्भर करेंगी।"

द्वितीय मूल सन्धि पत्र पश्चिमी योरोपीय संघ की सेनाओं से सम्बन्धित था। शान्तिकाल में सदस्यों को अपनी सेनाओं की योरोपीय रक्षा समुदाय के लिए निर्धारित संख्या तथा चार डिविजनें; यूनाइटेड किंगडम को द्वितीय सामरिक वायु सेना और लक्समबर्ग का एक युद्धकारी रेजीमेन्टल दल योरोप के सर्वोच्च सहबद्ध संचालक को सौंप देना था। नौसेना के सम्बन्ध में भी व्यवस्था की गई थी। योरोप के सर्वोच्च सहबद्ध संचालक द्वारा किए गए निरीक्षणों के फलस्वरूप पश्चिमी योरोपीय संघ की

---

१३ Cmd ९३०४, १९५४

परिषद् को नियमित सूचना प्राप्त होती रहेगी। इस मूल सधि पत्र मे यह भी निश्चय *किया गया कि यूरोप की मुख्य भूमि पर सदस्यो द्वारा रखी जाने वाली अन्तर्देशीय* रक्षा सेनाओं और पुलिस सगठन की शक्ति और उद्देश्य "उनके उचित कार्यों तथा आवश्यकताओं तथा उनके वर्तमान स्तरो को ध्यान मे रखते हुए" पश्चिमी योरोपीय *सघ के सगठन के अधीन समझौतो द्वारा निर्धारित किए जाएँगे।*

योरोप स्थित ब्रिटिश सेनाओं के सम्बन्ध मे विशेष प्रावधान किया गया। यूनाइटेड किंगडम ने योरोप के सर्वोच्च सहबद्ध सचालक को सौंपी गई सेनाओं अथवा *इनके समान युद्धकारी क्षमता वाली अन्य सेनाओं की प्रभावी* शक्ति बनाए रखने का उत्तरदायित्व लिया। उसने इन सेनाओं को "योरोप के सर्वोच्च सहबद्ध सचालक के विचारो को ध्यान मे रखकर निर्णय लेने वाले" सदस्यो के बहुमत की इच्छा के विरुद्ध *वापस न बुलाने का भी वचन दिया। इसके साथ यह भी स्वीकार किया गया कि* "समुद्रपार किसी तीव्र आपातकालीन स्थिति" के समय यूनाइटेड किंगडम इस उत्तरदायित्व से बाध्य नही होगा। योरोप मे सेना रखने का वित्तीय भार अत्यधिक होने *पर यूनाइटेड किंगडम को "अपनी सरचनाओ के रखरखाव की वित्तीय स्थिति की* समीक्षा करने के लिए उत्तर अतलान्तिक परिषद् को आमत्रित करने का अधिकार होगा।"

उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन की कार्यशीलता

सैनिक संरचना का विकास

मई १९५० तक प्रायमिक नियोजन का पर्याप्त अश पूरा हो चुका था अत *उस तिथि के पश्चात् योजनाओं पर व्यवहार करने का कार्य* तुरन्त हाथ मे ले लिया गया। सदस्य राज्यो का विचार था कि सामूहिक सतुलित सेनाओं के निर्माण के उद्देश्य से व्यय मे हिस्सा बटाना अत्यधिक आवश्यक था। सधि मे शामिल सदस्यो को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि यदि सभी सदस्यो के एकत्रित साधनो का उचित रीति से समन्वयन करके प्रयोग किया जाय तो वे उन देशो की सामरिक और आर्थिक प्रगति को क्षति पहुँचाए बिना उचित सैनिक रक्षा के उत्तरोत्तर और शीघ्रगामी विकास को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त थे।

कोरियाई सघर्ष के पश्चात् परिषद् की गोष्ठी सितम्बर १९५० मे हुई और उसने "सामूहिक रक्षा को मजबूत करने की तुरन्त आवश्यकता" पर विचार-विमर्श किया। उन्हे "अल्पातिअल्प समय मे योरोप की रक्षा के लिए पर्याप्त एकीकृत सैन्य शक्ति" गठित करने की आवश्यकता से अवगत कराया गया। इस सेना को "सामूहिक प्रयत्नो के आधार पर आपूर्ति और वित्त सम्बन्धी पर्याप्त *व्यवस्थाएँ*" उपलब्ध कराने पर भी वे सब सहमत हो गए। परन्तु पश्चिमी जर्मनी को पुन: शस्त्रसज्जित करने के अनपेक्षित अमरीकी प्रस्ताव के परिणामस्वरूप फ्रांसीसी विरोध के कारण परिषद् की *गोष्ठी स्थगित करनी पडी।* परन्तु जो विचार-विमर्श हो चुका था उसके फलस्वरूप

सेनाओं को एकीकृत करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इस प्रकार सितम्बर १९५० में परिषद् ने कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए। यह दर्शाने के लिए कि सामूहिक रक्षा गठित करने के लिए सदस्य-राज्य किस सीमा तक आगे आने को तैयार थे वे निर्णय नीचे दिए गए हैं :

(अ) जर्मनी पश्चिमी योरोप की रक्षा में भाग लेगा।

(आ) केन्द्रीकृत कमान के अधीन एक एकीकृत सेना गठित की जायगी।

(इ) अपने अधीन राष्ट्रीय इकाइयों का शान्तिकाल में एक सेना के रूप में प्रशिक्षण निश्चित करने के लिए सर्वोच्च मंत्रालय को "पर्याप्त शक्ति सौंपी जायगी।" सर्वोच्च संचालक के अधीन कार्यरत स्टाफ सेनाएँ अंशदान करने वाले सभी राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाला अन्तर्राष्ट्रीय स्टाफ होगा।

(ई) इस प्रकार गठित अन्तर्राष्ट्रीय सेना के उच्चतर सामरिक निर्देशन का संचालन स्थायी दल करेगा। सर्वोच्च संचालक और स्थायी दल के मध्य वही सम्बन्ध होगा जो प्रधान सेनापति और राष्ट्रीय सेनाध्यक्षों के मध्य होता है।

दिसम्बर १९५० में परिषद् की ब्रूसेल्स में एक और गोष्ठी हुई और उसमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए :

(i) जनरल आइजनहावर को सर्वोच्च संचालक नियुक्त किया गया।

(ii) 'एकीकृत कमान के अधीन एक एकीकृत सेना' सम्बन्धी सभी व्यवस्थाओं को अन्तिम स्वरूप दिया गया।

(iii) सैनिक उत्पादन और आपूर्ति परिषद् के स्थान पर एक रक्षा उत्पादन परिषद् गठित करने की स्वीकृति प्रदान की गई। नई परिषद् को पहले से अधिक शक्ति प्राप्त थी और "उत्पादन को विस्तृत करना और उसकी गति तेज करना" इसका विशिष्ट कार्य था।

एक के पश्चात् एक तेजी से लिए गए निर्णय न केवल एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना के गठन में वरन् अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय पर इसे नियंत्रित और निर्देशित करने वाले उचित अंग की रचना में भी पर्याप्त सहायक सिद्ध हुए। पुनः सैनिक संगठन अतलान्तिक परिषद् के राजनीतिक संगठन के उचित नियंत्रण में रखा गया जिसमें संधि में शामिल राज्यों के रक्षामंत्रियों वाली रक्षा समिति और विदेश मंत्री थे।

इसके अतिरिक्त १९५० के अन्तिम दिनों में योरोपीय रक्षा समुदाय के विचार का जन्म हुआ। यह फ्रांस सरकार की ओर से एम० प्लेवन (M. Pleven) द्वारा प्रस्तुत सदर्थ योजना का परिणाम था। इसका उद्देश्य पश्चिमी जर्मनी को उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन से बाहर रखना था। उस समय संयुक्त राज्य अमरीका और यूनाइटेड किंगडम जर्मनी के पुनःशस्त्रीकरण की वकालत कर रहे थे पर फ्रांस इस पर रोक लगाना चाहता था। इस प्रकार १९६० में उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन ने उस विवाद को जन्म दिया जिसका शान्तिकाल में पहले कभी

अस्तित्व नही रहा था और यह युद्ध सीमा तक सदस्य सरकारो की सार्वभौम सत्ता के मूल्य पर किया गया। उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन के लिए सदस्य राज्यो द्वारा निर्धारित सेनाएँ एक अर्थ मे अब राष्ट्रीय सेनाएँ नही रह गई थी। सदस्य राज्य राष्ट्रीय निर्णयो द्वारा उन्हे प्रशिक्षित कर सकते थे, उनकी आवश्यकता पूर्ति कर सकते थे, उनका सचालन कर सकते थे और उनकी शक्ति बढा सकते थे परन्तु 'उनका विन्यास, युद्ध मे उनकी भूमिका और महाद्वीप मे उनका सयुक्त प्रशिक्षण और आपूर्ति' अब योरोप के सहबद्ध शक्तियो के सर्वोच्च मुख्यालय मे सर्वोच्च सचालक की चिन्ता के विषय बन गए थे। (देखिए पृ० ३७५ पर मानचित्र)

योरोप मे सर्वोच्च मुख्यालय स्थापित करने का श्रेय जनरल आइजनहावर को मिलना चाहिए जिसने अनेक कमानें स्थापित करने के साथ-साथ मुख्यालय पर नियमित नियोजनो का तत्र भी स्थापित किया। पेरिस स्थित सैनिक मुख्यालय सगठन जिसमे सर्वोच्च सहबद्ध सचालक के अधीन सेनाध्यक्ष शामिल होते हैं नीचे दिया गया है।[१४] इससे स्पष्ट हो जाता है कि आरभिक दिनो मे महत्त्वपूर्ण पदो को भरने के लिए किस प्रकार फासीसी, ब्रितानी और अमरीकी जनरल भरती किए गए थे। आजकल योरोप की विभिन्न शक्तियो की सैन्य शक्ति मे हुए परिवर्तन को ध्यान मे रखते हुए बहुत बडी मात्रा मे वरिष्ठ कमान सदस्य राज्यो के वरिष्ठ अधिकारियो को सौंपदी गई हैं। ऐसा कहा जाता है कि इन पदो पर कार्य करते समय उनसे अपनी राष्ट्रीयता भूलने और अपने प्रस्ताव तैयार करते समय केवल योरोप की रक्षा के विशिष्ट कार्य का ही ध्यान रखने का आग्रह किया जाता है। इस बात पर बल देना आवश्यक है कि यह मुख्यालय सगठन उत्तर अतलान्तिक परिषद् के समग्र नियत्रण और निर्देशन के अधीन स्थायी दल और सैनिक समिति के अधीन आ गए।

कमानों की रचना

जनरल आइजनहावर न केवल पेरिस स्थित सर्वोच्च मुख्यालय को उचित स्वरूप प्रदान करने के लिए उत्तरदायी था वरन् वह उत्तर अतलान्तिक सधि के अधीन निर्मित कमानो की सरचना का भी प्रमुख निर्माता था। पश्चिमी सघ के प्रधान सेनापतियो की समिति को समाप्त करके उसने न केवल ब्रूसेल्स सधि की रक्षा प्रणाली को सभाल लिया वरन् उसने योरोपीय रक्षा कमानो के क्षेत्र को भी विस्तृत किया। जैसा कि पृ० ३७७ पर दिए गए मानचित्र से स्पष्ट हो जाता है।[१५]

पश्चिमी योरोप का भूभाग योरोपीय एशियायी महाद्वीप की मुख्य भूमि का

---

१४ अतलान्तिक सधि . स्वतत्र ससार मे उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन की भूमिका। चैथम सदन अध्ययन दल, लन्दन का प्रतिवेदन राष्ट्रीय मामलो के शाही सस्थान की ओर से ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस द्वारा प्रकाशित, १९५२

१५ वही।

एक प्रायद्वीप है। इसी कारण इसे उत्तरी, मध्यवर्ती और दक्षिणी तीन अलग-अलग कमानों में विभाजित किया गया और १९५१ की बसंत ऋतु में निम्नलिखित योजना प्रकाशित की गई

(१) **मध्यवर्ती योरोप की कमान**—जिसमें स्थल सेनाओं का प्रधान सेनापति, वायु सेना का प्रधान सेनापति और नौ सेनाध्यक्षाधिकारी शामिल थे। ये तीनों सेनापति सीधे सर्वोच्च संचालक के अधीन थे।

(२) **उत्तरी योरोप की कमान**—जिसमें सर्वोच्च संचालक के प्रति उत्तरदायी एक प्रधान सेनापति होता था जो अपने क्षेत्र की सभी सहबद्ध नौ सेनाओं का (सारी नौ सेनाओं का नहीं) संचालन करता था। सहबद्ध स्थल सेनाओं का नार्वे स्थित संचालक; सहबद्ध रक्षा सेनाओं का डेनमार्क स्थित संचालक और उत्तर योरोप की सहबद्ध वायु सेना का एक संचालक उसके अधीन होते थे।

(३) **दक्षिणी योरोप की कमान**—जिसमें सर्वोच्च संचालक के प्रति उत्तरदायी एक प्रधान सेनापति होता था जो अपने क्षेत्र की सभी सहबद्ध सेनाओं (सारी नौ सेनाओं का नहीं) संचालन करता था और सहबद्ध स्थल सेनाओं का एक संचालक और सहबद्ध वायु सेनाओं का एक संचालक उसके अधीन होते थे।

वास्तव में यह बड़ा महत्वपूर्ण है कि शांतिकाल में केवल सहबद्ध सेनाओं के रूप में उन्हें सौंपी गई सेनाओं के अतिरिक्त सदस्य राज्यों की अन्य राष्ट्रीय सेनाओं पर प्रधान सेनापतियों का कोई नियन्त्रण नहीं होता था।[१९] उदाहरणार्थ, उत्तरी योरोप का प्रधान सेनापति समझौते के अधीन उसे सौंपी गई ब्रिटिश नौ सेना की इकाइयों के अतिरिक्त शेष ब्रिटिश नौ सेना बेड़े का नियंत्रण नहीं करता था। इसी प्रकार दक्षिणी योरोप का प्रधान सेनापति भूमध्य सागर स्थित फ्रांसीसी और इटाली देशों की सभी नौ सेनाओं को नहीं वरन् इन देशों द्वारा विशेष रूप से उसे सौंपी गई नौ सेनाओं को ही संचालित करता है।

---

१९. वही।

योरोप की सहबद्ध शक्तियों का सर्वोच्च मुख्यालय
१ जून १९५२

वायु सेना सहकारी ए वी एम. सान्डर्स (यूनाइटेड किंगडम)	योरोप का सर्वोच्च सहबद्ध सचालक, जनरल मैथ्यू रिजवे (सयुक्त राज्य अमरीका)
नौ सेना सहकारी वाइस अडमिरल लेमोनियर (फ्रांस)	उप सर्वोच्च सहबद्ध सचालक, फील्ड मार्शल मान्टगोमरी (यूनाइटेड किंगडम)

सेनाध्यक्ष जनरल ग्रुएन्थर
(सयुक्त राज्य अमरीका)

कार्यकारी राष्ट्रीय सैनिक प्रतिनिधि	योरोप में सहबद्ध शक्तियों के सर्वोच्च मुख्यालय के राष्ट्रीय सैनिक प्रतिनिधि

उपसेनाध्यक्ष व्यूह रचना और प्रशासन	उप सेनाध्यक्ष योजनाएँ और कार्यवाही

जनसूचना अध्यक्ष — स्टाफ का सचिव — सेनाध्यक्षों का विशिष्ट सहायक — कार्यक्रम अनुभाग

योरोपीय क्षेत्र में स्थापित कमानों के अतिरिक्त "सयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा के साथ योरोप की विस्तृत और महत्वपूर्ण समुद्री सचार व्यवस्था" का नियत्रण और उसकी रक्षा करने के लिए उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन की अलग कमानों का समूह स्थापित करना भी आवश्यक समझा गया। अत योरोप में सहबद्ध शक्तियों के सर्वोच्च सचालक के समकक्ष अतलान्तिक के सर्वोच्च सहबद्ध सचालक के पद की रचना की गई जिसकी अपनी कमान सरचना थी। अडमिरल मैक कॉर्मिक को सर्वोच्च सहबद्ध सचालक नियुक्त किया गया और उसने अतलान्तिक को दो प्रधान सेनापतियों के अधीन पूर्वी और पश्चिमी दो क्षेत्रों में विभाजित किया। इसके साथ ही भूमध्य सागर स्थित सहबद्ध सेनाओं के एक प्रधान सेनापति, इगलिश चैनल और ब्रिटिश द्वीपसमूह के निकटवर्ती सागर के लिए उत्तरदायी एक चैनल कमान और उत्तर अमरीका क्षेत्र की रक्षा योजना बनाने के लिए एक कनाडा-अमरीका क्षेत्रीय नियोजन दल की नियुक्ति करना भी आवश्यक समझा गया। उत्तरोक्त ने १९५८ के अत तक किसी औपचारिक कमान रचना की स्थापना नहीं की।[१७]

योरोप की सहबद्ध कमान सम्बन्धी नवीनतम स्थिति (१९५८) जिसमें

१७ बॉल, पूर्व उद्धृत ग्रथ पृ० ६५-६६.

१९५२ की अपेक्षा पर्याप्त विस्तार हो चुका है इस अध्याय के परिशिष्ट 'ई' में दी गई है। पुनः जैसा कि इस अध्याय के परिशिष्ट 'उ' मे दिए गए मानचित्र मे स्पष्ट किया गया है अतलान्तिक की समूहवद्ध कमान भी एक विस्तृत संगठन के रूप में विकसित हो चुकी है। उत्तर अतलान्तिक संधि सगठन के सैनिक संगठन की सरल संरचना जिसके अधीन अनेक कमानें कार्य करती हैं इस अध्याय के परिशिष्ट 'ऊ' में दी गई है।

योरोप में सहबद्ध शक्तियों का सर्वोच्च मुख्यालय

(पेरिस १९५२)

(जनरल मैथ्यू बी० रिजवे)

संयुक्त राज्य अमरीका

उत्तरी योरोप की सहबद्ध सेनाएँ (एडमिरल ब्रिन्ड, यूनाइटेड किंगडम), ओस्लो	मध्य योरोप की सहबद्ध स्थल सेनाएँ (जनरल जुइन, फ्रांस), फॉन्टेनब्लो	मध्य योरोप की सहबद्ध वायु सेनाएँ (ले० जनरल नॉरस्टाड, संयुक्त राज्य अमरीका), फॉन्टेनब्लो	मध्य योरोप का ध्वजाधिकारी (वाइस एडमिरल जॉजर्ड, फ्रांस), फॉन्टेनब्लो	दक्षिण योरोप की सहबद्ध सेनाएँ (एडमिरल कार्ने, संयुक्त राज्य अमरीका), नेपल्स
नार्वे की सहबद्ध स्थल सेनाएँ, ओस्लो	डेनमार्क की सहबद्ध स्थल सेनाएँ, कोपेनहेगन	उत्तरी योरोप की सहबद्ध स्थल सेनाएँ, ओस्लो	उत्तरी योरोप की सहबद्ध नौ सेनाएँ, ओस्लो	
*तुर्की की सहबद्ध स्थल और वायु सेनाएँ	दक्षिण योरोप की सहबद्ध स्थल सेनाएँ, वेरोना	दक्षिण योरोप की सहबद्ध वायु सेनाएँ, फ्लोरेंस	दक्षिण योरोप की सहबद्ध नौ सेनाएँ, नेपल्स	यूनान की सहबद्ध स्थल और वायु सेनाएँ*

*एक अस्थायी व्यवस्था के अनुसार यूनान और तुर्की की नौ सेनाएँ अपनी-अपनी राष्ट्रीय कमान के अधीन ही है। यूनान और तुर्की की स्थल और वायु सेनाओं की उचित संरचना का अभी विकास हो रहा है।

राजनीतिक संरचना का विकास

सुपरिभाषित कार्यों वाली कमानों की स्पष्ट शृंखला सहित सैनिक अंग पूर्ण रूप से गतिशील हो चुके थे परन्तु राजनीतिक और आर्थिक अंगों का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। लगता है अभी भी सदस्य राज्य राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता हस्तान्तरित करने को इच्छुक नहीं थे। परिणामस्वरूप सैनिक क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया पर राजनीतिक क्षेत्र में उसी मात्रा में शक्ति की वृद्धि नहीं हुई। जैसा कि पहले कहा जा चुका है नियन्त्रण की किसी लोकतन्त्रीय संरचना में सैनिक क्षेत्र का मार्गदर्शन और निर्देशन करने वाला राजनीतिक क्षेत्र सैनिक क्षेत्र से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है। अत सैनिक संरचना के विस्तार के साथ जिसने एक नियमित आकार ग्रहण कर लिया था असैनिक पक्ष को पुनर्गठित करना भी आवश्यक हो गया था।

अत. मई १९५१ में परिषद् के पुनर्गठन की घोषणा की गई। यह निर्णय किया गया कि उत्तर अतलान्तिक रक्षा समिति तथा उत्तर अतलान्तिक वित्त और अर्थ समितियाँ समाप्त करके इनका विदेश मन्त्रियों की अतलान्तिक परिषद् में विलय कर दिया जाना चाहिए। परिषद् की कार्यसूची के अनुसार विदेश, रक्षा और वित्तमन्त्री जब भी वे चाहें अतलान्तिक परिषद् में शामिल हो सकते थे। साथ ही मई १९५० में नियुक्त सहकारियों की शक्ति में भी पर्याप्त वृद्धि कर दी गई। समितियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गई थी और उनका निरीक्षण और निर्देशन आवश्यक बन गया था। अतः परिषद् ने लन्दन में सहकारी नियुक्त कर दिए जो समय समय पर अपनी गोष्ठियाँ करते रहते थे। उनका कर्त्तव्य इस बात का ध्यान रखना था कि नीति-निर्णयों पर भलीभाँति व्यवहार किया जाय। एक वर्ष पश्चात् मई १९५१ में ऐसा लगने लगा कि निरंतर गोष्ठियों की बात छोड़िए इसकी गोष्ठियाँ यदाकदा भी नहीं हो पाती थीं अत. सहकारियों के संगठन को निश्चित स्थान देना आवश्यक हो गया। इसके अनुरूप यह निर्णय किया गया कि इन्हें उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के स्थायी अंगों के कार्यों में समन्वयन करने और सैनिक निहितार्थ वाले सभी राजनीतिक मामलों पर स्थायी दल के साथ व्यवहार करने के लिए 'केन्द्र में निरंतर कार्यशील सत्ता' बन जाना चाहिए। इसके साथ ही रक्षा अर्थशास्त्र के क्षेत्र में पेरिस में एक नई वित्त और अर्थ परिषद् स्थापित की गई। इससे निस्सन्देह उत्तर अतलान्तिक शान्ति संगठन के नागरिक पक्ष की शक्ति पर्याप्त मात्रा में बढ़ गई, परन्तु जनरल आइजनहावर के भव्य व्यक्तित्व के कारण और राजनीतिक क्षेत्र में ऐसे किसी नागरिक अधिकारी के अभाव में सर्वोच्च मुख्यालय द्वारा स्थापित विस्तृत सैनिक तन्त्र की तुलना में राजनीतिक क्षेत्र अशक्त ही बना रहा।

जब सितम्बर १९५१ में परिषद् की गोष्ठी ओटावा में हुई तो इसे अपने सैनिक सलाहकारों द्वारा तैयार किए गए एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम का परीक्षण

करना पड़ा जिसे रक्षा, वित्त और उत्पादन के असैनिक सलाहकारों ने स्वीकार नहीं किया। अतः प्रस्तुत की गई सैनिक योजनाओं की दृष्टि से सदस्य-राज्यों की वास्तविक क्षमता का पता लगाने के लिए परिषद् को "अस्थायी परिषद् समिति" नामक अपनी एक अस्थायी समिति गठित करनी पड़ी। दूसरे शब्दों में इस समिति का कार्य "सैनिक और असैनिक पक्षों" में समझौता कराके परिषद् को स्वीकार्य समाधान की खोज करना था। अस्थायी परिषद् समिति एक अल्पकालिक निकाय होने पर भी उत्तर *अतलान्तिक संधि संगठन का एक महत्त्वपूर्ण अंग थी। यद्यपि सैनिक तंत्र में* पर्याप्त एकीकरण हो चुका था और सैनिक नियोजक राष्ट्रीय पक्षपात से मुक्त रह कर प्रस्ताव तैयार किया करते थे परन्तु असैनिक संगठन का अभी तक अराष्ट्रीयकरण नहीं हो पाया था तथा वित्त और अर्थ विशेषज्ञ अपनी सरकारों राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अनुसार ही सदस्य सरकारों को सलाह दिया करते थे। अतः असैनिक अधिकारियों के विशेषज्ञ स्टाफ और विशेषज्ञ दलों का अराष्ट्रीयकरण करना सेना के अपने हित में था। वास्तव में अस्थायी परिषद् समिति अल्पकालीन आधार पर इसी बात का प्रावधान करती थी। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि असैनिक संगठन को सुदृढ़ करके इसे सैनिक समस्याओं के अतिरिक्त अन्य सभी समस्याओं का निपटारा *करने में सक्षम बना दिया गया। योरोप में सहबद्ध शक्तियों का सर्वोच्च मुख्यालय* अब केवल सैनिक समस्याओं पर ही विचार करता था। इस प्रकार सर्वोच्च संचालक को अपने कार्य पर ध्यान केन्द्रित करने का अवसर मिल गया और उसे विशेष रूप से परिभाषित निम्नलिखित कार्य सौंपे गए :

(१) सदस्य देशों द्वारा उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन को सौंपी गई सशस्त्र सेनाओं की विभिन्न इकाइयों को एक एकीकृत सेना के रूप में गठित करने के लिए संगठित एवं प्रशिक्षित करना।

(२) रक्षा योजनाएँ तैयार करना।

(३) अपनी सेनाओं के पर्याप्तता और प्रशिक्षण सम्बन्धी मामलों तथा युद्ध *या शान्तिकाल में अपना कार्य सम्पन्न करने की अपनी योग्यता को प्रभावित करने* वाले सैनिक प्रश्नों के सम्बन्ध में स्थायी दल से संस्तुतियाँ करना।[१८]

एक बार अस्थायी परिषद् समिति और योरोप की सहबद्ध शक्तियों के सर्वोच्च मुख्यालय के कार्यों का विभाजन हो जाने पर अस्थायी परिषद् समिति के अल्पकालिक आधार पर *गठित होने के कारण दूसरा पग असैनिक पक्ष के लिए स्थायी* तंत्र का प्रावधान करना था। सहकारियों की परिषद् का प्रथम अध्यक्ष एक अमरीकी श्री चार्ल्स एम० स्पॉफोर्ड था जिसने दृढ़तापूर्वक अतलान्तिक परिषद् का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि वह और उसके अन्य सहकारी एक दक्ष राष्ट्रीय

---

१८ पूर्व उद्धृत अतलान्तिक संधि।

स्टाफ के रूप में कार्य कर रहे थे। इस प्रकार विभिन्न राष्ट्रों के चोटी स्टाफों का उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के रूप में भलीभाँति एकीकरण नहीं किया गया। लगता है वे 'राष्ट्रीय प्रतिनिधि मण्डलों' के रूप में ही विद्यमान रहे; और सहकारियों की परिषद् वास्तविक अर्थों में "राजदूतों की सभा" बनी रही। स्थिति में सुधार होने के बावजूद भी सैनिक और राजनीतिक अंगों के विकास में बड़ी असमानता बनी रही। १९५१ के अंत तक सर्वोच्च संचालक ने योरोप की सहबद्ध शक्तियों के सर्वोच्च मुख्यालय के स्टाफ का न केवल एकीकरण कर दिया था वरन् उसे पहले से कहीं अधिक अन्तर्राष्ट्रीय भी बना दिया था। वास्तव में पिछले विश्वयुद्ध में आइजनहावर द्वारा संचालित योरोप की सहबद्ध शक्तियों के सर्वोच्च मुख्यालय की अपेक्षा यह स्टाफ कहीं अधिक अन्तर्राष्ट्रीय स्वभाव का हो गया था। वस्तुनिष्ठ अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण के स्थान पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाला कोई भी अधिकारी सर्वोच्च संचालक के अधीन टिक नहीं सकता था। आइजनहावर ने एक योरोपीय सेना के गठन की भी वकालत की थी। इसके विपरीत सहकारियों को ऐसी भूमिका अदा करने के अल्प अवसर प्राप्त हुए। वे तो बैठे बैठे जनरल आइजनहावर को योरोप में उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन का नेतृत्व संभालते देखते रहे। अतः १९५२ में सभी सम्बन्धित पक्षों को यह स्पष्ट हो गया कि सर्वोच्च मुख्यालय के समकक्ष शक्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त एक सुदृढ़ राजनीतिक संगठन उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की केन्द्रीय धुरी होना चाहिए।

अतः यह निश्चय किया गया कि उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन का एक स्थायी संगठन होना चाहिए; और सहकारियों की समिति को 'स्थायी प्रतिनिधियों' के नाम से एक स्थायी निकाय के रूप में रूपान्तरित करके पहला पग उठाया गया। इस निकाय के सदस्यों को राष्ट्रीय सरकारों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करना था और उन्हें 'स्वयं परिषद् का स्थायी सत्र" माना जाता था।[१९]

नियमित स्टाफ के बिना कोई भी संगठन पूर्ण नहीं हो सकता। अतः एक स्थायी महा सचिव के अधीन जो स्थायी प्रतिनिधियों का अध्यक्ष भी होता था एक नियमित सचिवालय स्थापित किया गया। इससे महासचिव के पद का उच्च स्तर स्पष्ट हो जाता है। इसका स्पष्ट उद्देश्य यह था कि उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की नीतियाँ निर्धारित करने में महासचिव भी वही भूमिका अदा करे जो अपने संचालकों से स्वीकृत कार्यवाही सम्बन्धी योजनाएँ प्राप्त करने के लिए जनरल रिजवे किया करता था। इस प्रकार अत्यंत सावधानी से विचार-विमर्श के पश्चात् उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन को लॉर्ड इस्मे और उसके बाद एन० स्पाक के रूप में इस उच्च पद पर कार्य करने के लिए आदर्श व्यक्ति उपलब्ध हो गए। इस प्रकार नाटो

१९ पूर्व उद्धृत अतलान्तिक संधि।

इस्मे को उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन का पहला "राजनीतिक रिजवे" बनने के लिए नियुक्त किया गया। यह संभव है कि समय बीतने पर एक निश्चित क्षेत्र में महासचिव की शक्तियाँ सर्वोच्च संचालक से भी अधिक हो जाएँ। नई व्यवस्था के अधीन सैनिक समिति और स्थायी दल महासचिव के स्थायी संगठन के माध्यम से परिषद् को प्रतिवेदन प्रस्तुत करेंगे। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि ये दो सैनिक निकाय सर्वोच्च संचालक से उच्च स्तर के हैं क्योंकि उनकी स्थिति वैसी ही है जैसी रणक्षेत्र स्थित संचालकों पर सेनाध्यक्षों को प्राप्त होती है। लॉर्ड इस्मे के अधीन स्थायी संगठन की स्थापना के कारण उत्पन्न हुए परिवर्तनों को समझने के लिए संगठन की मई १९५२ की स्थिति को दर्शाने वाला मानचित्र नीचे दिया गया है। इस अध्याय के परिशिष्ट 'आ' में फरवरी १९६० की स्थिति और परिशिष्ट 'इ' में १९५८ के अंत की स्थिति दर्शाई गई है। इसके साथ ही इस अध्याय के परिशिष्ट 'ए' में दिए गए असैनिक सचिवालय के विस्तृत संगठनात्मक मानचित्र से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के सक्रिय पक्ष और सैनिक पक्ष का विकास समान गति से हुआ है।
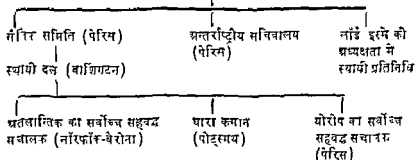
संगठन के राजनीतिक पक्ष को दिए गए स्वरूप के कारण यह देखकर अत्यंत सन्तोष होता है कि रक्षा नियोजन की गति सैनिक अधिकारियों के बदले असैनिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित की जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के शाही संस्थान के एक प्रकाशन में इस बात का उल्लेख किया गया है कि "योरोप में सहबद्ध शक्तियों के सर्वोच्च मुख्यालय के एक सेनाध्यक्ष ने क्लेमेन्सो की यह सूक्ति कि युद्ध एक ऐसा

गम्भीर विषय है कि इसे केवल जनरलों पर नहीं छोड़ा जा सकता सार्वजनिक रूप से उद्धृत की है।'[20] रक्षा की सामूहिक प्रणाली के राजनीतिक और सैनिक अंगों में अब उचित सन्तुलन स्थापित हो चुका है और सच्ची लोकतन्त्रीय परम्पराओं के अनुरूप असैनिक नियन्त्रण नागरिक राजनीतिक तंत्र के हाथ में रहता है। यह भी अनुभव किया जाता है कि योरोप में युद्ध छिड़ जाने की स्थिति में चौदह राष्ट्रों द्वारा स्थापित यह संगठन राजनीतिक और सैनिक दोनों ही क्षेत्रों में ठीक उसी प्रकार कार्य करेगा जिस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध काल में सेनाध्यक्षों सहित एक सर्व-समर्थी संगठन ने जर्मनी, इटली और जापान के विरुद्ध कार्य किया था। इस उत्तर अतलान्तिक संधि द्वारा निर्मित एक सक्रिय और विकासमान संगठन के अधीन शान्तिकाल में सामूहिक रक्षा का कार्य असाधारण गति से आगे बढ़ रहा है। फरवरी १९५२ में सम्पन्न लिस्बन गोष्ठी में इस बात का निश्चय किया गया कि इस वर्ष पश्चिम योरोप की रक्षा के लिए सर्वोच्च मुख्यालय के अधीन कितनी सेनाएँ रहनी चाहिए। इसके साथ ही १९५३ और १९५४ में आवश्यक सेनाओं के अस्थायी आकलन भी तैयार किए गए और इनकी समय-समय पर समीक्षा की जाती रही। पांच सदस्य-राष्ट्रों और पश्चिमी जर्मनी की एक संयुक्त योरोपीय सेना गठित करके सर्वाधिक महत्वपूर्ण पग उठाया गया। फ्रांसीसी योजना के अनुसार योरोपीय सेना की स्थापना के लिए प्रभुसत्ता के पर्याप्त त्याग की आवश्यकता होती है अतः संयुक्त राज्य अमरीका की बात छोड़िए, यूनाइटेड किंगडम ने भी इसे स्वीकार नहीं किया। यद्यपि ये दोनों शक्तियाँ इसमें शामिल होने की इच्छुक नहीं थी पर वे इसके निर्माण के विरुद्ध भी नहीं थी। शीघ्र निर्णयों और तुरन्त कार्य के फलस्वरूप जनरल रिजवे के अधीन संचालित और प्रशिक्षित पचास डिविज़नों पर उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन गर्व कर सकता था। दिसम्बर १९५२ में यह स्थिति थी। पुनः १९५२ में सम्पन्न लिस्बन सम्मेलन में इस बात पर भी सहमति हुई थी कि १९५२ के अंत तक योरोप में सहबद्ध शक्तियों के सर्वोच्च मुख्यालय के पास ४००० विमान हो जाने चाहिए।[21] उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के जन्म के पश्चात् तेजी से विकसित होने वाली एक शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय सेना का अनुमान कराने के लिए ही ये आंकड़े प्रस्तुत किए गए है। उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की वर्तमान सैनिक शक्ति एक दशाब्दी पूर्व की स्थिति से कहीं अधिक बढ़ चुकी है।

इसके साथ ही मध्यपूर्व और प्रशांत क्षेत्रों जैसे अन्य सामरिक क्षेत्रों के लिए उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन में सहायक अथवा सम्बद्ध रक्षा समझौतों की भी

२० पूर्व उद्धृत अतलान्तिक संधि, पृ० ६६।

२१ पूर्व उद्धृत अतलान्तिक संधि, पृ० ६७।

कल्पना की गई है। वास्तव में संयुक्त राज्य अमरीका, न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, जापान और फिलीपीन्स की सदस्यता वाली एक प्रशान्त रक्षा परिषद् के गठन का सुझाव भी आ चुका है। इस दिशा में निकटतम उपलब्धि केन्द्रीय सन्धि और दक्षिण-पूर्व एशिया सन्धि संगठन की स्थापना है जिनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन के लिए एक विश्वव्यापी संगठन के रूप में विकास करना सम्भव नहीं लगता क्योंकि ऐसा करने का अर्थ उसी कठिनाई का सामना करना होगा जिसने संयुक्त राष्ट्र संघ को पंगु बना दिया है। सारभूत तथ्य यही है कि समान विचारधारा और संयुक्त अभिप्राय से समान रूप से खतरा उठाने के लिए तैयार राज्य ही निष्ठा पूर्वक और स्थायी सदस्यों की सर्वसम्मति जैसे किसी अवरोधक नियम के बिना सहयोग कर सकते हैं। स्थायी सदस्यों की सर्वसम्मति का नियम संयुक्त राष्ट्र संघ में ऐसी उलझनें पैदा कर रहा है जिन्हें कभी सुलझाया न जा सकेगा।[२२]

उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन की उपलब्धियों का विवेचन

राजनीतिक और सैनिक क्षेत्रों में स्थापित संगठन तथा उन उपलब्धियों जिन पर उत्तर अतलान्तिक संगठन को गर्व है का ध्यान रखते हुए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि सशस्त्र रक्षा की बहुराष्ट्रीय प्रणाली स्थापित करने की दिशा में उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन राष्ट्र संघ (League of Nations) अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ (U N O) से कहीं अधिक उच्च स्तरीय और सफल प्रयास का प्रतिनिधित्व करता है। वास्तव में जिस दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ ने अभी कदम ही रखा है अथवा जिसमें वह असफल हो चुका है, उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन ने उसी दिशा में पूर्ण न सही आंशिक सफलता तो अवश्य प्राप्त की है। उदाहरणार्थ, संयुक्त राष्ट्र संघ कोरिया, स्वेज़ अथवा कांगो में की गई सामूहिक सैनिक कार्यवाही की उपलब्धियों पर ही गर्व कर सकता है। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है घोषणापत्र में वर्णित सुरक्षा परिषद् की सैनिक स्टाफ समिति को इन कार्यवाहियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त नहीं था। इसके विपरीत उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन ने अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक मुख्यालय (योरोप में सहबद्ध शक्तियों का सर्वोच्च मुख्यालय) के एक नियमित तन्त्र को जन्म दिया है। राजनीतिक क्षेत्र में इस तन्त्र का नियन्त्रण स्थायी प्रतिनिधियों (की सभा) तथा सैनिक क्षेत्र में स्थायी दल और सैनिक समिति के हाथ में है। इन परिस्थितियों में एक सैनिक संगठन के रूप में उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन की उपलब्धियाँ संविदा (Covenant) अथवा घोषणापत्र (Charter) के अधीन संभाव्य उपलब्धियों से कहीं अधिक उच्च स्तरीय हैं। फिर भी समान विचारधारा वाले राष्ट्रों तक सीमित होना उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन के मार्ग

२२ उत्तर अतलान्तिक सन्धि संगठन के पूर्ण विवेचन के लिए पूर्व उद्धृत अतलान्तिक सन्धि देखिए।

में एक प्रत्यक्ष बाधा है और यही इसकी शक्ति और दुर्बलता का कारण है। संसार के बड़े और शक्तिसम्पन्न राष्ट्रों में से संयुक्तराज्य अमरीका और छोटे देशों में से लक्समबर्ग इसके सदस्य हैं और परस्पर सहयोग से कार्य कर रहे हैं; और यह सहयोग ही इस संगठन को सुदृढ़ता और विशिष्टता प्रदान करता है। स्थायी और अस्थायी सदस्यों के बीच अन्तर राष्ट्रसंघ (League of Nations) का एक विशिष्ट लक्षण था। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि बड़ी और छोटी शक्तियों में ऐसा कोई भेदभाव किए बिना उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन ने यह सहकार प्राप्त कर लिया है। वास्तव में अतलान्तिक परिषद् समानता के सिद्धान्त पर आधारित है क्योंकि संधि में शामिल छोटे अथवा बड़े प्रत्येक राज्य को एक ही मत प्राप्त है। फिर भी स्थायी दल में केवल संयुक्त राज्य अमरीका, यूनाइटेड किंगडम और फ्रांस के प्रतिनिधियों को शामिल करके सैनिक नियोजन के क्षेत्र में थोड़ा भेद किया गया है। ऐसा करना आवश्यक भी लगता है क्योंकि उच्चतर सामरिक नियोजन थोड़े से ही व्यक्तियों तक सीमित रखा जाता है; युद्ध छिड़ने की स्थिति में बड़े देशों द्वारा दिए जाने वाले विस्तृत अंशदान के विचार से छोटे राष्ट्रों ने इसे तुरंत स्वीकार कर लिया। सैनिक समिति का स्थान स्थायी दल से ऊपर है और इसमें राज्यों की समानता के सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक सदस्य राज्य का एक-एक प्रतिनिधि होता है। राजनीतिक पक्ष में स्थायी दल जैसी किसी संस्था का अभाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। स्थायी प्रतिनिधियों (की सभा) और अतलान्तिक परिषद् दोनों का ही गठन सदस्य-राज्यों की पूर्ण समानता के आधार पर किया गया है।

संक्षेप में उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की उपलब्धियों को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है: (१) कमान एकीकरण; (२) अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय का गठन और (३) सेनाओं का एकीकरण।

(१) कमान एकीकरण :

कमानों के एकीकरण के विषय में पहले ही पर्याप्त विचार किया जा चुका है। जिस ढंग से विभिन्न राष्ट्रों के उच्च पदाधिकारियों को एक समान उद्देश्य के लिए परस्पर संगठित करके उनके दृष्टिकोण का उचित मात्रा में अराष्ट्रीयकरण कर दिया गया है, उस पर बल देना पर्याप्त है। सर्वोच्च संचालक संयुक्त राज्य अमरीका का और उपसंचालक यूनाइटेड किंगडम का होता है। शान्तिकाल में 'रक्षा के विभिन्न क्षेत्रों' में कमानों का एकीकरण प्राप्त कर लेना इतिहास की एक अनुपम घटना है। सच्चे अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय लक्षणों वाले ऐसे संगठन की राष्ट्रसंघ अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ से अपेक्षा की जाती थी।

(२) एकीकृत सचिवालय :

कमान के एकीकरण के साथ-साथ 'नए महासचिव की सहायता के लिए एक

एकीकृत और सुदृढ़ अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय' गठित किया गया है। इसका कार्य इस बात का ध्यान रखना है कि उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के राष्ट्र सामूहिक सैनिक शक्ति के पथ पर अग्रसर होते हुए उचित आर्थिक सन्तुलन बनाए रखें। इस प्रकार नागरिक स्टाफ का एकीकरण भी एक विशिष्ट उपलब्धि है। इससे राष्ट्रीय दृष्टिकोण वाले स्थायी प्रतिनिधियों (की सभा) एवं स्वतंत्र और सामूहिक दृष्टिकोण वाले उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के सचिवालय के मध्य सहयोग स्थापित करने में पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है।

(३) सेनाओं का एकीकरण और योरोपीय रक्षा समुदाय '

उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन में ऐसे पूर्ण एकीकरण की कल्पना नहीं की गई है जिसमें राष्ट्रीय सेनाओं को बिल्कुल ही समाप्त कर दिया जाय। परन्तु इसमें पश्चिमी योरोप की रक्षा के लिए अन्य सदस्य राज्यों द्वारा प्रदत्त सेनाओं का सचालन करने के लिए किसी एक सदस्य राज्य के जनरल की संभावना की कल्पना की गई है। इस धारणा में सेनाओं के पूर्ण एकीकरण का विचार निहित नहीं है। ऐसे एकीकरण की आवश्यकता अनुभव करते हुए उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के कुछ सदस्यों ने 'योरोपीय रक्षा समुदाय' नामक एक योजना प्रस्तुत की जिसने मई १९५२ में अन्तिम स्वरूप प्राप्त किया और उसके परिणामस्वरूप एक संधि पर हस्ताक्षर हुए।[२३] संधि की पुष्टि न हो सकने के कारण योरोपीय रक्षा समुदाय का कभी जन्म नहीं हो पाया। योरोपीय रक्षा समुदाय की असफलता ने पश्चिमी जर्मनी को उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन और पश्चिमी योरोपीय रक्षा में भागीदार बनाने में मुख्य भूमिका अदा की इस कारण इसके प्रस्तावों का विशेष महत्व है। इस बात का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि योरोपीय रक्षा समुदाय की असफलता के कारण ही १९५४ में ब्रूसेल्स संधि में संशोधन करना तथा पश्चिमी योरोपीय संघ के अधीन रक्षा और उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के अधीन अतलान्तिक क्षेत्र की रक्षा में समन्वय स्थापित करना आवश्यक हो गया था। इसी कारण योरोपीय रक्षा समुदाय और उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन को समन्वित करने के प्रस्तावों की रूपरेखा देना उपयोगी नहीं समझा गया है। योरोपीय रक्षा समुदाय की स्थापना के लिए पेरिस में ५ फरवरी १९५१ को बातचीत प्रारंभ हुई। २६ मई को बातचीत समाप्त होने पर फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली, बेल्जियम, हॉलैण्ड और लक्समबर्ग ने औपचारिक रूप से योरोपीय रक्षा समिति संधि पर हस्ताक्षर कर दिए। इसके अतिरिक्त छः विदेश मंत्रियों और श्री ईडन ने योरोपीय रक्षा समुदाय और यूनाइटेड किंगडम के मध्य प्रतिभूति संधि (Treaty of Guarantee) पर हस्ताक्षर किए। पुनः श्री

---

२३ Cmd ८५७१ (१९५२) देखिए श्वार्जनबुर्गर 'बॉन और पेरिस समझौते,' ६ सामसामयिक कानूनी समस्याएँ, १९५३ पृ० २९७.

ईडन, अमरीका की ओर से श्री अचेसन और श्री शुमन (फ्रांस) ने अपनी-अपनी सरकारों की ओर से एक त्रिपक्षीय घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किए। योरोपीय रक्षा समुदाय संधि में मूल संधि पत्रों और परिशिष्टों के साथ-साथ निम्नलिखित दस्तावेज भी शामिल हैं :

(१) योरोपीय रक्षा सेनाओं के संगठन, संरचना और प्रशिक्षण सम्बन्धी एक मूल संधि पत्र।

(२) एक विशिष्ट सैनिक मूल संधि पत्र जो प्रकाशित नहीं किया गया था और जिसके विषय में कहा जाता है कि इसमें कुछ गुप्त व्यवस्थाओं का उल्लेख है।

(३) योरोपीय रक्षा समुदाय और उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के सदस्य देशों के मध्य परस्पर सहयोग का आश्वासन सम्बन्धी मूल संधि पत्र।

(४) ग्रेट ब्रिटेन और योरोपीय रक्षा समुदाय के मध्य परस्पर सहयोग की संधि; एवं

(५) एक त्रिपक्षीय घोषणापत्र जिसमें ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा योरोपीय रक्षा समुदाय की एकता और सुदृढ़ता पर किसी भी प्रकार के संकट को अपनी सुरक्षा के लिए संकट मानने का और "उत्तर अतलान्तिक क्षेत्र की संयुक्त रक्षा के लिए आवश्यक और उचित मात्रा में सेनाओं का अंशदान देकर" उन्हें योरोप में स्थापित करने का उल्लेख है।

एक संतुलित सेना गठित करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय सेनाओं के पूर्ण विलय और एकीकरण की दिशा में योरोपीय रक्षा समुदाय प्रथम प्रयोग था। यद्यपि संधि पर छह देशों ने हस्ताक्षर कर दिए थे परन्तु फ्रांस द्वारा पुष्टि न किए जाने के कारण यह कभी लागू न हो सकी। ऐसा लगता है कि योरोपीय रक्षा समुदाय में ब्रिटेन के भाग लेने की एक बार संयुक्त राज्य अमरीका ने वकालत की थी, परन्तु महारानी की सरकार ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था।

योरोपीय रक्षा समुदाय को एक ऐसा "राष्ट्रोपरि समुदाय" कह कर पारिभाषित किया गया है जिसका एकमात्र उद्देश्य सदस्य राज्यों की रक्षा करना है। संयुक्त संस्थाएँ, संयुक्त सशस्त्र सेनाएँ, और संयुक्त उद्देश्य इसका आधार हैं। योरोपीय रक्षा समुदाय का एक उद्देश्य जर्मनी को उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन से बाहर रखना था परन्तु किसी एक सदस्य राज्य के विरुद्ध आक्रमण को सभी सदस्यों के विरुद्ध आक्रमण मानकर योरोपीय रक्षा समुदाय ने उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की संरचना के भीतर सदस्यों की आक्रमण से रक्षा का उपाय किया है। यूरोपीय रक्षा समुदाय की सेना में सदस्य राज्यों द्वारा समुदाय को सौंपी गई सेना की इकाइयाँ होती थीं जिनका संधि में दिए गए स्पष्ट निर्देशों के अनुसार पूर्ण विलयन किया जाना था। इन सेनाओं में बलपूर्वक भरती किए गए तथा नियमित सैनिकों की समान वर्दी धारण करनी थी। ये सैनिक उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की सर्वोच्च

कमान के अधीन थे और यही उनके संगठन, साज-सामान और प्रशिक्षण का निरीक्षण करती थी। संधि में आगे चलकर कहा गया कि "कोई भी सदस्य संधि में प्रावधान की गई और समुद्रपार रक्षा अथवा इसे सौंपे गए किसी अन्तर्राष्ट्रीय मिशन यथा संयुक्त राष्ट्र संघ की नीति अग्रसर करने हेतु रखी गई सेनाओं के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय सेनाएँ न भरती करेगा और न रखेगा।"

समुदाय के अंग

मंत्रिपरिषद् का कार्य आयुक्तों की सभा की कार्यवाहियों तथा सदस्य सरकारों की नीतियों में समन्वय स्थापित करना था और इसमें प्रत्येक सदस्य राज्य का एक-एक प्रतिनिधि होता था। प्रत्येक तीन मास में कम से कम एक बार इसका सम्मेलन होना था और इसके निर्णय साधारण बहुमत से लिए जाते थे। योरोपीय रक्षा समुदाय में सदस्यों के अंशदान के अनुपात से परिषद् में उनके मतों का मूल्यांकन किया जाता था। फ्रांस, इटली और पश्चिमी जर्मनी को तीन-तीन, बेल्जियम और नीदरलैण्ड को दो-दो और लक्सम्बर्ग को एक मत मिलना था।

आयुक्तों की सभा योरोपीय रक्षा समुदाय का कार्यकारी अंग था। इसमें नौ सदस्य होते थे जिनका कार्यकाल छह वर्ष होता था। इसका अध्यक्ष मंत्रिपरिषद् द्वारा नियुक्त किया जाता था और विभिन्न सरकारों की अपेक्षा केवल मंत्रिपरिषद् से आदेश ग्रहण करने के कारण इसका स्वरूप भी राष्ट्रोपरि था। आयुक्त सदस्य राज्यों के नागरिक होते थे। इस सभा का कार्य समय-समय पर मंत्रिपरिषद् के लिए प्रतिवेदन जारी करना था और इसके अपने निजी सैनिक और असैनिक स्टाफ होते थे। यह

(अ) पूर्णतया बाध्यकारक निर्णय देने,
(आ) अपने सामान्य उद्देश्य में बाध्यकारक सम्मुतियाँ करने और
(इ) अबाध्यकारक राय देने का भी कार्य करती थी।

इसके अतिरिक्त इस सभा को राष्ट्रीय इकाइयों का सचालन करने वाले अधिकारियों से उच्च पदों पर मंत्रिपरिषद् की सर्वसम्मत स्वीकृति से नियुक्तियाँ करने का भी अधिकार था।

योरोपीय रक्षा समुदाय की सभा शुमन योजना के अधीन गठित योरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय की सभा के समान थी। संधि की पुष्टि हो जाने पर इसे अपना स्थान लेने वाली योरोपीय रक्षा समुदाय की एक स्थायी सभा का प्रस्ताव मंत्रिपरिषद् के सम्मुख प्रस्तुत करना था। ऐसी आशा की गई थी कि ऐसा "यह शक्तियों के अलगाव के सिद्धान्त और अनियमित प्रतिनिधित्व की द्विसदन प्रणाली पर आधारित संघीय अथवा राष्ट्रमण्डलीय संरचना का एक तत्त्व बन जायगी।" इस प्रकार योरोपीय रक्षा समुदाय का चरम उद्देश्य मान्यताप्राप्त संघीय अथवा

राष्ट्रमण्डलीय आधार पर एक नियमित सांविधानिक संरचना की स्थापना करना था। वास्तव में यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है कि इस दिशा में ठोस कदम उठाए गए हैं और इस राजनैतिक निकाय का संविधान तैयार कर लिया गया है। 'योरोपीय समुदाय' का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

न्यायालय योरोपीय रक्षा समुदाय संधि की व्याख्या और व्यवहार के विषय में सामान्य मध्यस्थ का कार्य करना था। इसमें समुदाय और इसके अभिकर्ताओं के निर्णयों अथवा कार्यों की वैधता निश्चित करने का आग्रह किया जा सकता था और अपील किए जाने पर यह संधि की शर्तों के प्रतिकूल उपायों अथवा निर्णयों को रद्द कर सकता था।

सैनिक प्रावधान

योरोपीय रक्षा समुदाय संधि में जिस प्रकार की संयुक्त सेना की कल्पना की गई है उसकी धारणा निम्न प्रकार है.

योरोपीय रक्षा समुदाय की स्थल सेनाओं की आधारभूत इकाई एक ही राष्ट्र के सैनिकों से गठित की जायगी और अपने रखरखाव के लिए यह "राष्ट्रोपरि श्रेणी बंधन" पर निर्भर होगी। इन इकाइयों को सेना कोरों (Corps) में समूहबद्ध किया जाना था जो सामान्यतया विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों की संरचनाएँ होंगी। इन कोरों के कमान और जनरल स्टाफ भी इसी प्रकार विभिन्न राष्ट्रीय कर्मचारियों को सम्मिलित करके गठित किए जाएँगे। योरोपीय रक्षा समुदाय की वायु और नौ सेनाएँ भी इसी प्रकार संगठित की जाएँगी। संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देश इस बात पर सहमत हो गए कि अनिवार्य भरती सभी सदस्य देशों में एक ही समय की जानी चाहिए। सैनिक भरती करने की प्रणाली प्रारंभ में तो प्रत्येक सदस्य राज्य के राष्ट्रीय नियमों के अनुसार होगी परन्तु धीरे-धीरे भरती का विषय संगठन के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए सेवा नियमों द्वारा निर्देशित होगा। आयुक्तों की सभा भी सैनिक अनुशासन के लिए एक संयुक्त सिद्धान्त एवं संहिता तैयार करेगी तथा उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन कमान की सामान्य संरचना के भीतर योरोपीय रक्षा समुदाय की सेनाओं के प्रादेशिक विभाजन के निर्णय और संचालन की योजनाएँ तैयार करने का कार्य भी इसे ही सौंपा जायगा। इस बात की भी कल्पना की गई कि दृष्टिकोणों में किसी प्रकार का संघर्ष उत्पन्न हो जाने पर उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की कमान का दृष्टिकोण ही सर्वमान्य होगा। केवल मंत्रिपरिषद् को ही सर्वसम्मति से इस दृष्टिकोण के विरुद्ध निर्णय लेने का अधिकार था। किसी भी योरोपीय संगठन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषा सम्बन्धी कठिनाई के समाधान के लिए एक बड़ा रोचक उपाय किया गया। सैनिक मामलों में प्रत्येक देश अपनी राष्ट्र भाषा का प्रयोग करता रहेगा परन्तु सैनिक विद्यालय सदस्य राज्यों की अन्य भाषाओं

के ज्ञान को प्रोत्साहित करेंगे। यह भी निश्चय किया गया कि युद्ध क्षेत्रों में एक ही सहायक भाषा स्वीकार की जानी चाहिए और युद्धेत्र उद्देश्यों, विशेषकर संचार के लिए यह भाषा अंग्रेजी होनी चाहिए। साथ ही उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के सहयोग से आयुधों और साज-सामान का भी मानकीकरण किया जाना था।

वित्तीय प्रावधान

ऐसा विचार किया गया था कि इस सामूहिक योजना का एक स्वतन्त्र वित्तीय अस्तित्व होगा। योरोपीय रक्षा समुदाय के विनियोग और व्यय को आयुक्तों की सभा द्वारा तैयार किया जाने वाला एक संयुक्त बजट माना जाता था। मन्त्रिपरिषद् सर्वसम्मति से पूर्ण बजट और प्रत्येक राज्य का अंशदान तय करती थी। बजट की उत्तरोक्त राशि की सूचना विभिन्न राष्ट्रीय संसदों को दे दी जायगी जिससे वे आवश्यक धन की व्यवस्था कर सकें। बजट सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था और वही उसमें परिवर्तन कर सकती थी अथवा दो तिहाई मतों से इसे अस्वीकार कर सकती थी। बजट स्वीकार हो जाने पर आयुक्तों की सभा एक लेखा नियोजक के निरीक्षण में बजट प्रावधानों पर व्यवहार करती थी। संयुक्त रक्षा कोष व्यय करते समय आयुक्तों की सभा यह सुनिश्चित करती थी कि किसी भी राज्य द्वारा दिए गए अंशदान का ८५% भाग उसी राज्य के मुद्रा क्षेत्र में व्यय किया जाय। दूसरे शब्दों में लेखानियंत्रक की शक्ति पर इस प्रतिबंध का यह अर्थ था कि वह, उदाहरणार्थ फ्रांस के अनुदान का १५% से अधिक फ्रांसीसी मुद्रा क्षेत्र से बाहर व्यय नहीं कर सकता था।

यह स्पष्ट है कि योरोपीय रक्षा समुदाय जैसे किसी भी संगठन में सदस्य राज्यों के स्वीकृत संविधानिक अंगों के प्रभाव से मुक्त शक्ति का केन्द्रीय स्थान स्थापित करना आवश्यक होता है। इससे सदस्य राज्यों की प्रभुसत्ता का उल्लंघन तो होता है परन्तु रक्षा की अनिवार्यता का ध्यान रखते हुए योरोपीय शक्तियों को एक ऐसी योजना स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा है जो यद्यपि मूलतः रक्षा उद्देश्यों पर आधारित है परन्तु अन्ततः एक नए राजनीतिक राज्य (Political State) को जन्म दे सकती है। योरोपीय रक्षा समुदाय को उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन में भली-भाँति समाहित कर दिए जाने के कारण एकीकृत सेनाओं का गठन उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की छत्रछाया में ही होगा और इस प्रकार सामूहिक रक्षा के इतिहास में एक नए अध्याय का आरंभ होगा। जैसा कि हम देख चुके हैं भले ही योरोपीय रक्षा समुदाय का जन्म मृत संतान के रूप में हुआ है परन्तु पश्चिमी योरोपीय संघ और उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के मध्य एकीकृत सेनाओं का जन्म वास्तव में हो चुका है। इसके साथ ही योरोपीय रक्षा समुदाय के गठन की कल्पना करने वाले छह राज्यों ने तब से "योरोपीय समुदाय" स्थापित करने की दिशा में पर्याप्त प्रगति करली है।

योरोपीय समुदाय के संविधान का नियोजन

अभी तक पूर्ण अर्थों में एक योरोपीय संविधान का जन्म नहीं हो पाया है परन्तु योरोपीय महाद्वीप के प्रमुख देशों, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली, बेल्जियम, हॉलैण्ड और लक्सम्बर्ग के कुछ विशेषज्ञों का 'योरोप के लिए एक राष्ट्रोपरि राजनीतिक संविधान" का प्रारूप तैयार करने के लिए एक साथ एकत्र होना योरोप के इतिहास में एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण घटना है। छह देशों का प्रतिनिधित्व करने वाली एक छोटी मसौदा समिति ने २६ जनवरी १९५३ तक संविधान का एक प्रारूप तैयार कर लिया था जिसे अन्ततः स्वीकार कर लिए जाने के लिए आगे विचार-विमर्श का आधार बनाया जाना था। इस "राष्ट्रोपरि संविधान" को "योरोपीय समुदाय" कहा गया और योरोपीय रक्षा समुदाय के संगठन को इसका एक भाग बना दिया गया। उपरोक्त कार्य केवल 'रक्षा' के तदर्थ विषय पर विचार करना था परन्तु योरोपीय समुदाय मूलतः एक राजनीतिक निकाय था। रक्षा समुदाय की भांति योरोपीय (राजनीतिक) समुदाय भी कभी वास्तविक रूप धारण न कर सका। इसके स्थान पर छह सम्बन्धित राज्यों ने योरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय, योरोपीय अर्थ समुदाय (साझा बाजार) और योरोपीय अणु शक्ति समुदाय (यूरेटम) की सहायता करने के लिए संयुक्त संस्थाएँ (परिषद्, सभा, न्यायालय) गठित की हैं। ये संयुक्त संस्थाएँ सरलतापूर्वक एक उचित राजनीतिक समुदाय का नाभिक बन सकती थीं। 'संघ शासन' में एक नवीन प्रयोग होने के कारण प्रस्तावित योरोपीय समुदाय राजनीतिक संगठन के विद्यार्थी के लिए अत्यन्त रुचिकर विषय है और इसीलिए ११३ धाराओं वाले संविधान के प्रारूप की मुख्य बातें संक्षेप में नीचे दी गई हैं:

(१) फ्रांस, इटली, पश्चिमी जर्मनी, तीन बेनेलक्स देशों (बेल्जियम, नीदरलैण्ड और लक्जमबर्ग) और सार (Saar) की जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित 'जनता का एक सदन' होगा जिसमें स्थानों का विभाजन इस प्रकार होगा : फ्रांस ७०, जर्मनी ६३, इटली, ६३, बेल्जियम ३०, हॉलैण्ड ३०, और लक्समबर्ग १२। इस सदन का चुनाव ५ वर्ष की अवधि के लिए होना था। सार (Saar) की अन्तिम स्थिति का पूर्व निर्णय किए बिना यह निश्चय किया गया कि सार को भी इस सदन में प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए, परन्तु इसके प्रतिनिधियों की संख्या के विषय में कोई निर्णय नहीं लिया गया।

(२) इसके साथ ही राष्ट्रीय संसदों द्वारा निर्वाचित एक सीनेट का भी प्रावधान किया गया जिसमें स्थानों का विभाजन इस प्रकार था : फ्रांस, इटली, और जर्मनी में से प्रत्येक को २१, बेल्जियम और हॉलैण्ड में से प्रत्येक को १०, लक्समबर्ग को ४ और सार को ३।

(३) योरोपीय समुदाय के प्रशासन का भार एक कार्यकारी योरोपीय परिषद्

पर होगा जिसके अध्यक्ष का चुनाव सीनेट अपने पूर्ण बहुमत से करेगी। उसके द्वारा नियुक्त परिषद् के अन्य सदस्यों को योरोपीय समुदाय का मंत्री कहकर वर्णित किया गया। यदि संसद के दो सदनों में एक सदन परिषद् की भर्त्सना न करे तो इसका कार्यकाल जनता के सदन के समान ही था। सहकारियों की संख्या के ३/५ द्वारा समर्थित होने पर ही जनता के सदन में कोई निंदा प्रस्ताव वैध माना जायगा।

(४) कार्यकारी परिषद् और विभिन्न योरोपीय सरकारों के कार्य में समन्वय स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय मंत्रियों की एक परिषद् गठित की जायगी। योरोपीय समुदाय में शामिल प्रत्येक योरोपीय सरकार को राष्ट्रीय मंत्रियों की परिषद् में भाग लेने के लिए अपना एक मंत्री भेजना पड़ता था।

(५) मुख्य रूप से परामर्शदात्री कार्यों वाली एक आर्थिक और सामाजिक परिषद् और एक न्यायालय स्थापित किए जाएँगे।

(६) कोयला और इस्पात संघ तथा योरोपीय रक्षा समुदाय की सभाओं का कार्यभार योरोपीय समुदाय की संसद संभाल लेगी। राष्ट्रीय मंत्रियों की परिषद् पर भी यही बात लागू होती है क्योंकि यह कोयला और इस्पात संघ तथा योरोपीय रक्षा समुदाय के मंत्रियों की परिषद् का कार्यभार संभालेगी।[२४]

(७) इस बात पर भी सहमति हो गई कि शक्तियों के हस्तांतरण की इस प्रक्रिया में दो वर्ष लगने चाहिए और इस अवधि में कार्यकारी परिषद् और इसके अन्य अंगों को वास्तव में कोई राष्ट्रोपरि शक्तियाँ प्राप्त नहीं होंगी।

(८) योरोपीय समुदाय अपनी क्षमता में आने वाले अन्तर्राष्ट्रीय समझौते और संधियाँ कर सकेगा। सदस्य देशों की विदेश नीतियों में समन्वय स्थापित करने का कार्य भी यही समुदाय करेगा। यदि राष्ट्रीय मंत्रियों की परिषद् किसी प्रश्न पर सर्वसम्मति से सहमत हो जाय तो कार्यकारिणी सभी सम्बन्धित देशों की ओर से कार्य कर सकती थी।

(९) योरोपीय समुदाय को धीरे-धीरे एक साझा बाजार स्थापित करना था जिसमें माल, पूंजी और जनशक्ति का स्वतन्त्र प्रवाह बना रहे।[२५] ऐसे बाजार का विकास करने के लिए समुदाय आवश्यक कदम उठा सकता था। परन्तु प्रारूप में यह भी कहा गया था कि राष्ट्रीय मंत्रियों की परिषद् के सर्वसम्मत निर्णय से ये उपाय समुदाय के जन्म के द्वितीय वर्ष में ही किए जा सकेंगे।

(१०) संधि पर व्यवहार आरम्भ होने के अगले मास सीनेट का गठन किया जाना था और संधि के वैध घोषित हो जाने के छह मास के भीतर-भीतर इसे जनता के सदन के चुनावों की तिथि निश्चित करनी थी।

---

२४ प्रस्तावों का यह पक्ष संयुक्त योरोपीय संस्थाओं के रूप में फलीभूत हो चुका है।
२५ साझा बाजार अस्तित्व में आ चुका है।

उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की संभावनाएँ और इसका भविष्य

उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की स्थापना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास सदस्य राज्यों का आर्थिक और सैनिक क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में परस्परावलम्बन है; सामूहिक रक्षा की प्रणाली में ऐसा परस्परावलम्बन आवश्यक होता है। यदि एकीकरण के सिद्धान्त को इसकी तर्कसम्मत सीमा तक विस्तृत किया जाय तो एक समय वह आयगा जब सदस्य राज्यों की सन्तुलित राष्ट्रीय सेनाओं का स्थान एक सामूहिक संतुलित सेना ले लेगी। अपनी राष्ट्रीय सेनाओं का तुरन्त त्याग करना राष्ट्रों के लिए कठिन हो सकता है, परन्तु वित्तीय विचार और तर्क शक्ति एक दिन उन्हें इस बात का निश्चय करा देगी कि वे जो भी सेनाएँ रखें वे एक सन्तुलित सेना का अंग होनी चाहिए क्योंकि युद्ध काल में एक अलग और विशिष्ट इकाई अधिक लाभप्रद नहीं होगी। यद्यपि यूनाइटेड किंगडम अभी योरोपीय समुदाय से बाहर है, परन्तु एक समय आ सकता है जब उसे भी इसमें शामिल होने को बाध्य होना पड़े।[२६] यह स्थिति आने में समय लग सकता है, परन्तु इतना तो आज भी कहा जा सकता है कि उत्पादन के क्षेत्र में बढ़ती हुई विशिष्टता के कारण उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के किसी एक सदस्य द्वारा किसी अन्य सदस्य के साथ युद्ध छेड़ना असम्भव होगा क्योंकि दोनों में से किसी के पास भी परस्पर युद्ध करने के लिए संतुलित राष्ट्रीय सेनाएँ नहीं होंगी। इस प्रकार राष्ट्रीय सेनाओं के स्थान पर सामूहिक संतुलित सेनाएँ रखने से सदस्य राज्यों के मध्य परस्पर युद्ध की संभावना बिल्कुल समाप्त हो जाती है। मशीनीकरण के इस युग में आधुनिकृत स्थल, नौ और वायु सेनाएँ रखना और उन्हें पूर्णतया शस्त्रसज्जित करना छोटे राष्ट्रों की साधन-शक्ति से बाहर है। इस प्रकार उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के सिद्धान्त में अनेक संभावनाएँ निहित हैं। सदस्य राज्यों में परस्पर युद्ध की संभावना समाप्त करके इसने बाह्य आक्रमण से उन की तुरन्त रक्षा के लिए प्रभावी तन्त्र का प्रावधान किया है। दूसरी संभावना यह है कि यदि उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन का विस्तार करके अनेक क्षेत्रीय समझौते किए जायें[२७] और उन्हें एक सर्वोच्च संगठन के अधीन संयुक्त कर दिया जाय तो इस प्रकार आधे भूमण्डल में अपने रक्षा संगठन को सामूहीकृत करने वाली प्रणाली के साथ इससे बाहर रहने वाले पृथक् राज्यों द्वारा युद्ध करना असंभव हो जायगा।

उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन न तो कोई संघ अथवा राज्यमण्डल है और

---

२६ यूनाइटेड किंगडम और अन्य योरोपीय राज्यों ने समुदाय की सदस्यता के लिए आवेदन कर दिया है।

२७ आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और संयुक्त राज्य अमरीका संधि (ANZUS), केन्द्रीय संधि संगठन (CENTO) और दक्षिण-पूर्व एशिया संधि संगठन (SEATO) का पहले दिया गया वर्णन देखिए।

न ही राष्ट्रमण्डल जैसी कोई संस्था है अत इसे अभी अनेक कठिनाइयों का सामना करना है। निर्णयों पर व्यवहार कराने का माध्यम राज्यमण्डल में शामिल इकाइयों के हाथ में होने के कारण इसे राज्यमण्डल जैसे किसी सगठन के समकक्ष तो कहा जा सकता है परन्तु इसे *राज्यमण्डलों की श्रेणी में रखना अनुचित होगा।* यह अपने प्रकार की एक अलग संस्था है और इस अवस्था में इसे श्रेणीबद्ध नहीं किया जा सकता। थोड़े से और केन्द्रीयकरण द्वारा इसे और भी अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, १९५२ मे सामरिक वायु सेनाओं का नियन्त्रण सर्वोच्च सचालक के हाथ में नहीं था। केवल स्थल सेनाओं की सहायता करने वाली वायु सेनाएँ ही उसके अधीन थी। इनमें हल्की और मध्यम श्रेणी की बमवर्षक सेनाएँ शामिल थी परन्तु दूर तक मार करने वाली वायु सेनाएँ अपनी-अपनी सरकारों के नियन्त्रण में बनी रही। दूसरे शब्दों में सामरिक बमवर्षा का कार्य केवल अमरीकी और ब्रितानी वायु सेनाओं को ही करना पड़ता था। इस प्रकार १९५२-५३ में सम्पूर्ण एकीकरण सम्पन्न नहीं हो पाया था। मारग्रेट बॉल के नवीनतम प्रकाशन 'उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन और योरोपीय सघ आन्दोलन' के अनुसार वर्तमान स्थिति छह वर्ष पूर्व की स्थिति से अधिक भिन्न नहीं है। ५ जून १९५९ को उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन ने एक वक्तव्य मे घोषणा की कि योरोपीय रक्षा की धारणा का समर्थन करने के लिए योरोप के सर्वोच्च सहबद्ध सचालक को उसकी कमान से बाहर के आधारों से सयुक्त राज्य अमरीका की सामरिक वायु कमान और *ब्रितानी बमवर्षक कमान की पूर्ण सहायता तुरन्त उपलब्ध करायी जायगी।*[२८] ऐसा लगता है कि १९५७ के बाद उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन के दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सदस्यों की सामरिक वायु सेनाओं को एकीकृत करके उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन की अपनी सेना के निर्माण के विषय में किसी आधारभूत परिवर्तन की घोषणा नहीं की गई है।

उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन और आणविक आयुध

आणविक आयुधों का नियन्त्रण उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन के हाथ में नहीं है। १९५२ मे ऐसे आयुधों के प्रयोग का अधिकार उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन के केवल एक ही सदस्य के पास था। इस कारण अन्य सदस्यों को यह अनुभव हो सकता था कि उनका प्रयोग करने के निर्णय और इसके परिणाम के विषय में उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं था। यह सत्य है कि १९५७ म रूस द्वारा *अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्र विकसित किए जाने* और उसी वर्ष पतझर के मौसम मे

---

२८ "सोवियत खतरा और योरोप मे सहबद्ध शक्तियों के सर्वोच्च मुख्यालय के सामरिक विचार" उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन पत्र (१ अगस्त १९५९) पृ १० अनुच्छेद २१-२९

दो स्पूतनिक छोड़े जाने के कारण उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की शक्तियों ने सामान्य स्थिति का पुनर्मूल्यांकन किया और इसके फलस्वरूप उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन द्वारा आणविक आयुधों का भण्डार बनाने के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। सदस्य राज्यों की सरकारों के उच्चस्तरीय प्रतिनिधियों की परिषद् का दिसम्बर १९५७ में पेरिस में एक सम्मेलन हुआ और उन्होंने १९ दिसम्बर को एक वक्तव्य[२९] जारी किया जिसका बीसवां और इक्कीसवां अनुच्छेद नीचे उद्धृत किया गया है :

'इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन ने आणविक विस्फोटक आयुधों का भण्डार स्थापित करने का निर्णय किया है जो आवश्यकता पड़ने पर सदस्य-राष्ट्रों की रक्षा के लिए तुरन्त उपलब्ध हो सकेंगे। नए आयुधों के क्षेत्र में वर्तमान सोवियत नीतियों के कारण परिषद् ने मध्यम दूरी तक मार करने वाले प्रक्षेपणास्त्र यूरोप के सर्वोच्च सहबद्ध संचालक के अधिकार में रखने का भी निर्णय किया है।'

'इन भण्डारों और प्रक्षेपणास्त्रों का विन्यास और इनके प्रयोग की व्यवस्था उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की रक्षा योजनाओं के अनुरूप और सीधे सम्बन्धित राज्यों की सहमति से निर्धारित की जायगी। उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के सैनिक अधिकारियों से संयुक्त रक्षा के लिए इन आयुधों के प्रयोग के सम्बन्ध में अपनी संस्तुतियां यथाशीघ्र परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत करने की प्रार्थना की गई है। अनेक निहित प्रश्नों पर परिषद् अपने स्थायी सत्र में विचार करेगी।'

उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन द्वारा आणविक आयुधों का प्रयोग इस बात पर निर्भर करता है कि रक्षा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सदस्य राज्य किस सीमा तक इस संगठन पर आश्रित हैं। ऐसे आयुधों का प्रयोग एक मुख्य राजनीतिक समस्या है अतः एक ऐसे संगठन में जहाँ बहुत से सदस्यों के पास आणविक विस्फोटक आयुध नहीं हैं और न ही वे इनका निर्माण करते हैं यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि इन आयुधों का कब, कहाँ और किसके द्वारा प्रयोग किया जाय। हाइड्रोजन बम के सम्बन्ध में यह विवाद उठा था और इसका अभी तक कोई समाधान नहीं हो पाया है। यद्यपि उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन परिषद् ने दिसम्बर १९५७ में अनेक विषयों पर निर्णय लिए पर वह आणविक आयुधों के प्रयोग सम्बन्धी व्यवस्थाओं के प्रश्न का समाधान नहीं कर सकी। उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की रक्षा योजनाओं के अनुरूप और सीधे सम्बन्धित राज्यों की सहमति से इस विवादास्पद विषय का भविष्य में समाधान किया जाना था। यह अनुमान लगाया जा सकता है

२९ १९ दिसम्बर को जारी किए गए अन्तिम वक्तव्य के अनुच्छेद २० और २१ देखिए जो २० दिसम्बर १९५१ के न्यूयार्क टाइम्स में पुनर्मुद्रित हुए।

कि अपने प्रदेश मे प्रक्षेपणास्त्रो के अड्डे स्थापित करने के अनिच्छुक देश असहमति व्यक्त कर सकते हैं। ऐसा कहा जाता है कि *आणविक विस्फोटक आयुधो के सम्बन्ध* मे हुए समझौते के बावजूद 'अपना सैनिक भविष्य अत्यधिक मात्रा में सयुक्त राज्य अमरीका के हाथ आ जाने के कारण' कुछ सदस्यो मे गहरा असन्तोष व्याप्त था।[30]

फिर भी यह कहना अनुचित नही है कि सामरिक और व्यूहरचना की दृष्टि से उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन अणु शक्ति बने अथवा नही इस विषय मे अभी तक कोई निर्णय नही लिया गया है।[31] अब ऐसा कहा जाता है कि १९५७ के निर्णय के परिणामस्वरूप योरोप मे अणुबमों का बडा सग्रह बन गया है, पर उन पर कठोर अमरीकी नियन्त्रण रखा जाता है। समाचारपत्रो की रिपोर्टों के अनुसार उन पर *नियन्त्रण रखने वाले अधिकारी जनरल नॉरस्टाड से आदेश ग्रहण करते हैं जो उत्तर* अतलान्तिक सधि सगठन के अधिकारी के रूप मे नही वरन् योरोप स्थित सयुक्त राज्य अमरीका की सेना के प्रधान सेनापति के रूप मे आदेश देता है। अत यह स्पष्ट है कि वह उत्तर अतलान्तिक परिषद् से नहीं वरन् रक्षा सचिव के माध्यम से सयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति से आदेश ग्रहण करता है। सक्षेप मे योरोप स्थित संयुक्त राज्य अमरीका के पास जो आणविक आयुध हैं उन पर सीधे अमरीकी सरकार का नियन्त्रण है और राष्ट्रपति के आदेश बिना उनका प्रयोग नही किया जा सकता। कानूनी स्थिति के अनुसार केवल अणुशक्ति अधिनियम के प्रावधानों के अधीन ही संयुक्त राज्य अमरीका के *आणविक आयुध योरोप में रखे जा सकते थे। फिर भी* यह सभव है कि आयुधो को मुक्त करने का अमरीकी सरकार का एक नियमित आदेश इन आयुधो को उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन कमान के नियन्त्रण मे रख सकता है और उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन के उपयुक्त अग से इनके प्रयोग की सहमति प्राप्त कर लिए जाने पर इन आयुधो का उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन की किसी कार्यवाही मे प्रयोग किया जा सकता है। उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन के उपयुक्त अंग की सहमति प्राप्त करना आवश्यक है अन्यथा उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन समान स्तर के राज्यों का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन न रह कर सयुक्त राज्य *अमरीका के अधीन एक निकाय बन कर रह जायगा।*

इन आयुधो का प्रयोग सामरिक के साथ साथ एक राजनीतिक समस्या भी है अत. मुख्य कठिनाई इनके प्रयोग की स्वीकृति देने वाले उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन के उपयुक्त अंग की स्थापना के विषय मे है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित

---

३० *मारग्रेट बॉल—उत्तर अतलान्तिक सधि सगठन और यूरोपीय सघ आन्दोलन,* १९५९ पृ० १०४

३१ यह निष्कर्ष ८ दिसम्बर १९६० के मान्चेस्टर गार्जियन साप्ताहिक मे लेनार्ड *बीटन द्वारा प्रकाशित एक लेख पर आधारित है।*

विकल्पों पर विचार हो सकता है

(१) जिन १५ राष्ट्रों को उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन परिषद् में प्रतिनिधित्व प्राप्त है क्या उन्हें इन आयुधों के प्रयोग के सम्बन्ध में आज्ञा देने का अधिकार होगा, अथवा

(२) उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन परिषद् की कैबिनेट तक ही यह अधिकार सीमित रहेगा, अथवा

(३) आपातकाल में इनका प्रयोग करने की शक्ति स्थायी रूप से उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के जनरलों को दे दी जायगी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है ऐसी कोई प्रकाशित साक्षी उपलब्ध नहीं है जिससे इस बात का संकेत मिल सके कि कार्यविधि सम्बन्धी इस महत्त्वपूर्ण समस्या का अभी तक समाधान हुआ है अथवा नहीं। यदि इन आयुधों के राजनीतिक नियन्त्रण का अधिकार उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के संयुक्त राज्य अमरीका जैसे किसी एक सदस्य के पास रहता है तो यह स्पष्ट है कि अन्य सदस्य राज्य इस मामले में सैनिक स्तर पर कोई निर्णय लिए जाने की स्वीकृति नहीं देंगे। अतः तीसरे विकल्प पर विचार करना व्यर्थ है। मूलतः सैनिक विचारों पर आधारित उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन जैसी संस्था में भी सशस्त्र सेनाओं के तंत्र पर राजनीतिक अथवा नागरिक नियन्त्रण का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है और इसे प्राप्त करने का एकमात्र उपाय उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन परिषद् की स्थाई समिति जैसे राजनीतिक अंग का गठन करना है जिसमें आपातकाल में तुरन्त निर्णय लेने के लिए हर समय उपलब्ध कुछ चुने हुए सदस्य होते हैं। उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन परिषद् की ऐसी अन्तर कैबिनेट आवश्यकतानुसार कभी भी नियुक्त की जा सकती थी। इस विषय में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राजनीतिक प्रतिघात वाले महत्त्वपूर्ण सैनिक मामले पूर्णतया किसी राज्य अथवा उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के सैनिक अंगों के हाथ में नहीं छोड़े जा सकते भले ही तुरन्त निर्णय लिए जाने के उद्देश्य से सैनिक तन्त्र में विश्वास रखना कितना ही आवश्यक क्यों न हो। इसमें सन्देह नहीं है कि उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन को आणुविक आयुधों के प्रयोग के सम्बन्ध में अपने राजनीतिक अंग की सलाह से ही कोई समाधान उपलब्ध हो सकेगा। सैनिक आवश्यकताएँ पूरी करने की दृष्टि से राजनीतिक अंग की सदस्य संख्या अत्यन्त सीमित हो सकती है।

इस दृष्टि से कोरिया में संयुक्त राष्ट्र संघ की सामूहिक रक्षा कार्यवाही बड़ी दोषपूर्ण थी। यह इतनी विशृंखल थी कि अमरीका सदस्य राज्यों की सलाह के विपरीत कार्य करने में समर्थ था। उदाहरणार्थ, फारमोसा (ताईवान) को विवाद-ग्रस्त क्षेत्र से अलग करने का निर्णय नीति सम्बन्धी एकपक्षीय कार्य था और श्री ईडन ने कामन सभा में इसे 'राजनीतिक मूर्खता' की संज्ञा दी। यद्यपि इसका

परिशिष्ट चार
ब्रूसेल्स संधि रक्षा संगठन
पश्चिमी संघ परामर्शदात्री परिषद्
स्थायी आयोग
पश्चिमी संघ की रक्षा समिति
पश्चिमी संघ सैनिक आपूर्ति परिषद्

प्रधान सेनापति
पूर्वी प्रशान्तिक क्षेत्र
प्रधान वायु सेनापति
संचालक
वायु संचालक
बहुरंगी बेड़ा
विशेष कार्य
सेनाएं
संचालक
बहुरंगी बेड़ा
विशेष कार्य
सेनाएं

उप महासचिव
महासचिव का कार्यालय
राजनीतिक मामलों का विभाग
अर्थ एवं वित्त विभाग
वैज्ञानिक सलाहकार का कार्यालय
सूचना
सांख्यिकी
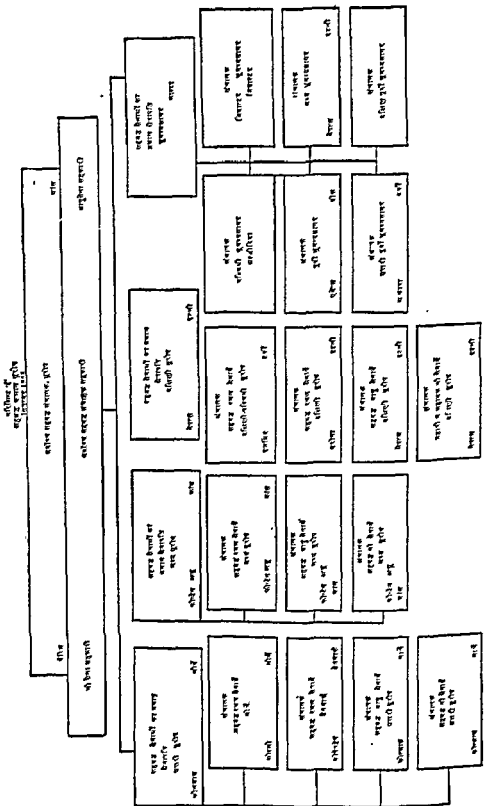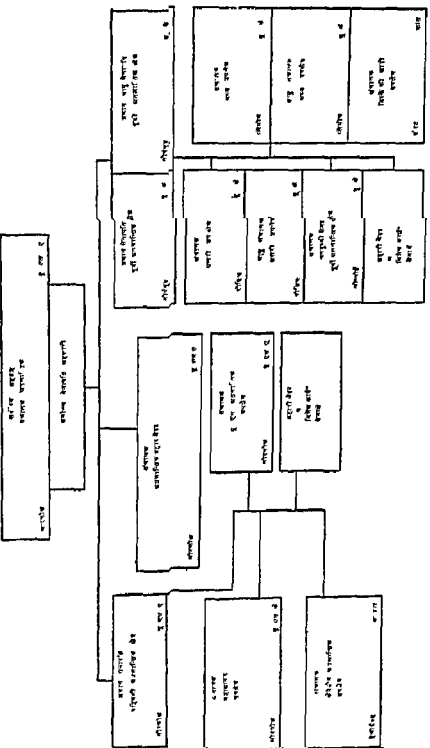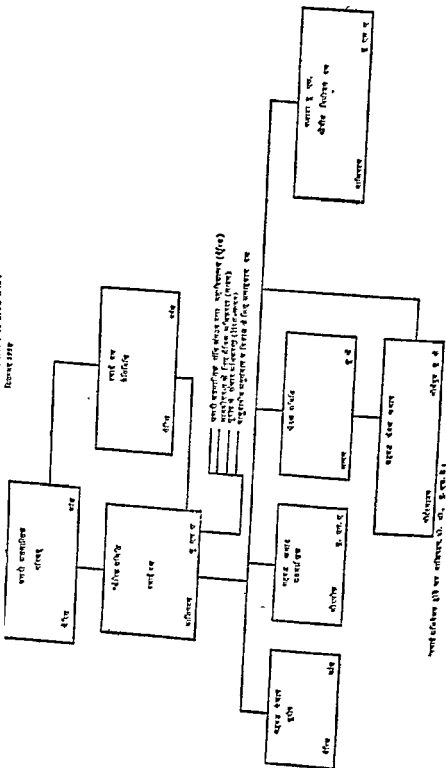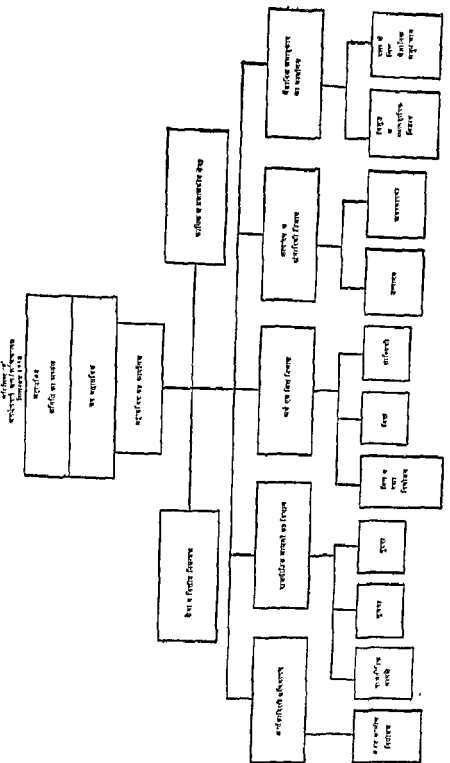
कोरियायी संघर्ष पर सीधा प्रभाव पड़ता था फिर भी इसे बलपूर्वक लागू किया गया। कनाडा के विदेश मन्त्री ने कनाडा की संसद में २४ फरवरी १९५३ को एक वक्तव्य में कहा कि चीनी समुद्र तट की नौ सैनिक नाकेबन्दी करना या च्यांग काई शेक को सहायता देने के प्रश्न ऐसे विषय थे जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ के स्तर पर तय किया जाना चाहिए था। सैनिक उद्देश्यों की पूर्ति की दृष्टि से [illegible] के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ युद्ध क्षेत्र में अपने सदस्य राज्यों की सशस्त्र सेनाओं में समन्वय स्थापित करने में असमर्थ रहा है अतः इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आक्रमणकारी अथवा शान्ति भंग करने वाले देश के साथ सशस्त्र संघर्ष में सफलता प्राप्त करने के दृष्टिकोण से उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की स्थिति संयुक्त राष्ट्र संघ से अधिक उत्तम है। यह स्थिति केवल सैनिक दृष्टिकोण से ही है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद् जैसे उच्चतर राजनीतिक अंगों में एकरूपता और दृढ़ता का अभाव है। उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसके राजनीतिक और सैनिक अंग एक दूसरे से पृथक् हैं तथा प्रत्येक पग पर विचार विमर्श करने और इसका मूल्यांकन करने के लिए उनमें अवसर [illegible] है। सभी पहलुओं से मौन समझौता न होने पर भी पूर्ण विचार विमर्श के पश्चात् ही उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन द्वारा कोई निर्णय लिया जाता है। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र संघ की सैनिक समिति अथवा इसके अन्य अंगों की उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन से तुलना करना उचित नहीं है क्योंकि जहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व समुदाय के विभिन्न मतों का प्रतिनिधित्व करता है वहीं उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन केवल एक-सी विचारधारा वाले राज्यों का संघ है।

१५

सशस्त्र सेनाएँ और राज्य

सशस्त्र सेनाओं का वास्तविक उद्देश्य : राष्ट्रीय सुरक्षा

बोसांके[1] (Bosanquet) ने कहा है कि "शक्ति का स्वामी होने के कारण ही राज्य व्यवहारतः सभी संस्थाओं में सर्वोपरि है।" अपनी उत्पत्ति और विकास तथा अपने सदस्यों पर वर्तमान नियन्त्रण और विशेषकर अन्य राज्यों के साथ अपने सम्बन्ध में शक्ति राज्य का अन्तिम आश्रय नहीं वरन् इसका प्रथम सिद्धान्त है। यह इसका विशिष्ट अस्त्र ही नहीं वरन् इसके अस्तित्व के लिए आवश्यक शर्त भी है। हम राज्य का कोई भी सिद्धान्त क्यों न स्वीकार करें—हॉब्स द्वारा प्रतिपादित राज्य की उत्पत्ति का समझौता सिद्धान्त हो अथवा दाँते (Dante) के ग्रन्थ 'डी मोनार्किया' (De monarchia) में वर्णित दैवी अधिकार की धारणा—इस विषय में कोई विवाद नहीं है कि अव्यवस्था समाप्त कर व्यवस्था स्थापित करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। व्यवस्था जारी रखने के लिए जिस सत्ता का निर्माण किया जाता है उसे आवश्यक समर्थन प्राप्त होना चाहिए। इस प्रकार राज्य के मूल में शक्ति का अस्तित्व होता है और वही इसे स्थायित्व प्रदान करती है। राज्य को जीवित रखने वाला शक्ति रूपी यह आवश्यक तत्त्व उसकी सशस्त्र सेनाओं से उपलब्ध होता है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से राष्ट्रीय सशस्त्र सेनाओं का प्रथम न्यायसंगत कार्य आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखना है। द्वितीय और अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य तो राज्य के निर्माण के साथ ही आरम्भ हो जाता है, क्योंकि जन्म के पश्चात् बाह्य आक्रमण से इसकी रक्षा करना उतना ही आवश्यक होता है, जितना इसके कुशल कार्य-संचालन के लिए आन्तरिक स्थायित्व बनाए रखना। इस प्रकार सशस्त्र सेनाओं का मूल उद्देश्य राष्ट्रीय सुरक्षा बनाए रखना है, इसमें बाह्य आक्रमण से सुरक्षा और भारत के भूतपूर्व रक्षामन्त्री श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर

---

१ राज्य का दार्शनिक सिद्धान्त, अध्याय ६ तथा मैकआइवर का 'रोमन राज्य' पृ० २२१

के शब्दो मे 'देश मे शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ पैदा करना और उन्हें बनाए रखना' भी शामिल है। ११ जून १६५२ को लोकसभा मे रक्षा बजट पर हुई बहस मे सशस्त्र सेनाओ के इस दोहरे कार्य पर बल दिया गया था।

जहाँ तक संवैधानिक कानून का सम्बन्ध है संविधान अधिनियम के उपयुक्त प्रावधानो को उद्धृत करके ही भारत की स्थिति का भली-भाँति वर्णन किया जा सकता है। भारतीय संविधान की धारा ३५५ मे कहा गया है कि, "प्रत्येक राज्य की वाह्य आक्रमण और आन्तरिक अव्यवस्था से रक्षा करना संघ का कार्य है।" केन्द्र राष्ट्रीय सशस्त्र सेनाओ के माध्यम से यह कार्य सम्पन्न करता है। दण्ड विधि संहिता की धारा ६ मे आन्तरिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए सशस्त्र सेनाओ के प्रयोग का प्रावधान किया गया है। किसी अवैध सभा को भग करने के लिए धारा १२६ मे यह प्रावधान किया गया है कि यदि ऐसी सभा किसी अन्य प्रकार भग न की जा सके तो वहाँ उपस्थित "उच्चतम पद का मजिस्ट्रेट इसे सैनिक शक्ति द्वारा भग करा सकता है।" ब्रिटिश शासनकाल मे भारत मे आन्तरिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए केवल स्थल सेना के प्रयोग की ही कल्पना की गई थी, अत संहिता की अगली धाराओ (१३०-१३२) मे वायुसेना और नौसेना के प्रयोग का जिक्र नही किया गया है। इसके भी ऐतिहासिक कारण थे। उस समय ब्रिटिश सरकार केवल देश के भू-भाग की रक्षा के लिए उत्तरदायी थी, भारतीय समुद्रो और भारतीय वायुक्षेत्र की रक्षा का उत्तरदायित्व शाही नौसेना और शाही वायुसेना पर था। स्थल सेना वास्तव मे 'अधिकार करने वाली सेना' होने के कारण आन्तरिक विद्रोहो का दमन करने के लिए ही रखी जाती थी। इस प्रकार १६४७ मे पूर्व की स्थल सेना शान्तिकाल मे एक उपनिवेशीय सुरक्षित सेना या पुलिस दल के रूप मे तथा युद्ध काल मे शाही सेना के एक अग के रूप मे कार्य करती थी। जुलाई १६५२ के एक सशोधन के फलस्वरूप दण्ड विधि संहिता की सम्बन्धित धाराओ को इस प्रकार परिवर्तित कर दिया गया है कि अपने स्वीकृत कार्य के साथ साथ अन्य दो सेवाएँ भी आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने के उद्देश्य के लिए उपलब्ध हो सकें।

परन्तु राज्य के विकास और इसके कार्यों मे वृद्धि होने के कारण दैनन्दिन प्रशासन मे आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का कार्य मुख्यत राज्य के पुलिस दल को सौंप दिया गया है। ऐसा कहा जा सकता है कि इस विशिष्ट कार्य के लिए सशस्त्र सेनाओ का प्रयोग अन्तिम साधन के रूप मे किया जाता है। जब हिंसक और विद्रोही तत्त्व नागरिक शक्ति के लिए खतरा बन जायें और उन्हें अन्य उपायो द्वारा दबाया जाना सम्भव न हो तो उस समय नागरिक शक्ति की सहायता के लिए सशस्त्र सेनाओ को बुलाया जा सकता है। इस प्रकार किसी आधुनिक राज्य मे आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का उत्तरदायित्व पुलिस दल पर होने के कारण सशस्त्र सेनाओ

का प्रमुख कार्य वही रह जाता है, जिसका प्रधानमन्त्री नेहरू ने भारतीय संसद की एक बहस मे उल्लेख किया था। उन्होंने कहा था 'सरकार का कर्तव्य सदैव अपनी सीमाओं की रक्षा करना है।' अलेग्जैण्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) ने कहा है[2] कि सरकार के सम्मुख प्रमुख समस्या कार्यकारिणी को इतना शक्तिसम्पन्न बनाना है कि यह समाज मे शान्ति और व्यवस्था बनाए रख सके, पर साथ ही यह भी ध्यान रखना है कि यह इतनी अधिक शक्तिशाली न हो जाय कि जन-समुदाय की आकांक्षाओं और सुख-सुविधाओं की अवहेलना ही करने लगे। अमरीकी संविधान के इस दूरदर्शी निर्माता ने यह कह कर कि 'कार्यकारिणी का शक्तिसम्पन्न होना अच्छी सरकार की परिभाषा का एक प्रमुख लक्षण है, विदेशी आक्रमण से जनसमुदाय की रक्षा करने के लिए यह आवश्यक भी है' कार्यकारिणी के प्रमुख कार्य की प्रशंसा करने मे भी कोई कसर नही छोडी है। यदि विदेशी आक्रमण से रक्षा करना कार्यकारिणी का कार्य है तो इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि कार्यकारिणी देश की सशस्त्र सेनाओं के माध्यम से ही अपना यह कार्य सम्पादित कर सकती है। रक्षा करने का अधिकार और रक्षा करने की योग्यता दोनों ही राज्य के अस्तित्व से सम्बन्धित हैं और इसकी स्वतंत्रता के लिये आवश्यक हैं। अतः सशस्त्र सेनाओं का मूल उद्देश्य राज्य की सीमाओं की रक्षा करना और इस प्रकार इसके स्वतंत्र अस्तित्व को सुरक्षित रखना है। इस दृष्टि से सशस्त्र सेनाएँ न केवल राज्य का अन्तिम अस्त्र हैं वरन् इसका आवश्यक साधन भी हैं क्योंकि इनके अभाव मे राज्य का अस्तित्व ही खतरे मे पड जाता है। अतः एक लोकतंत्रीय राज्य मे सशस्त्र सेनाओं को राज्य का संचालन करने के कारण नहीं वरन् बाह्य खतरे से इसकी रक्षा करने के कारण गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त होता है; क्योंकि राज्य का संचालन सशस्त्र सेनाओं के हाथ मे सौंप देने से लोकतंत्रीय राज्य में भी सर्वाधिकारवादी राज्यों की भाँति रक्षा का अनावश्यक और असामान्य विस्तार हो जाता है।

आर्थिक स्थिति का सशस्त्र सेनाओं पर प्रभाव

१९१८ के पश्चात् औद्योगिक प्रगति और आर्थिक विकास राष्ट्रीय समृद्धि और महानता के आधार बन गये, इसके फलस्वरूप राज्य के आर्थिक कार्यों का असाधारण विकास हुआ और आर्थिक कार्य सेनाओं को सौंपने के सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये तथा कुछ देशो मे तो सशस्त्र सेनाओं ने वास्तव में यह कार्य सम्भाल भी लिये हैं। निस्सन्देह ये कार्य सशस्त्र सेनाओं के ऊपर वर्णित मूल कार्यों के अतिरिक्त हैं।

भारतीय संसद मे भी उड़ीसा के एक निर्दलीय सदस्य श्री पटनायक ने १० जून १९५२ को स्पष्ट शब्दो मे यह समस्या उठाई। रक्षा सम्बन्धी बहस के समय

२ फेडरलिस्ट संख्या ७०

उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा के अतिरिक्त आर्थिक स्थायित्व बनाये रखने का कार्य भी सशस्त्र सेनाओं को सौंपने की चर्चा की। इस सम्बन्ध में (बंगाल की साम्यवादी सदस्या) श्रीमती रेणु चक्रवर्ती ने उनका समर्थन किया। उन्होंने चीन का उदाहरण पेश किया, जो अपनी सशस्त्र सेनाओं को भूमि जोतने से लेकर फैक्ट्रियों में कार्य करने तक के विभिन्न कार्यों में लगाकर अपनी खाद्य एवं अन्य आर्थिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न कर रहा है। सोवियत संघ में भी सशस्त्र सेनाओं के कार्यों का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है, औद्योगिक उत्पादन सहित वे आर्थिक विकास की अनेक योजनाओं में भाग लेती हैं। सोवियत रूस और साम्यवादी चीन जैसे सर्वाधिकारवादी राज्यों के अतिरिक्त संसार के किसी भी लोकतन्त्रीय देश ने अपनी सशस्त्र सेनाओं को आर्थिक क्षेत्र में कार्य करने को बाध्य नहीं कर रखा है। न तो संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति नीत लोकतन्त्र ने और न ही युनाईटेड किंगडम, फ्रांस अथवा किसी राष्ट्र-मंडलीय देश ने सशस्त्र सेनाओं को विशिष्ट आर्थिक भूमिका अथवा नियमित उत्पादन कार्य सौंपे हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि सैनिक शक्ति द्वारा सत्ता प्राप्त करके तथा इसी के बल पर सत्ता में बने रहने वाले राजनीतिक दल के शासन में ही सशस्त्र सेना द्वारा आर्थिक कार्य आरम्भ किये जाते हैं, क्योंकि इसे सत्ता प्राप्त कराने और अब इसका स्थायित्व सुरक्षित रखने वाली शक्ति को ही यह दल सरकार के दैनन्दिन प्रशासन के प्राथमिक कार्य सौंप देता है। ऐसा होने पर राज्य के राजनीतिक संगठन में सशस्त्र सेनाओं को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो जाता है और धीरे-धीरे सभी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक संस्थाओं का सैन्यीकरण अथवा उन पर सैनिक नियंत्रण स्थापित हो जाता है। पश्चिम के लोकतन्त्रीय मापदण्ड के अनुसार ऐसे राज्यतन्त्र का स्वागत नहीं किया जा सकता। मापदण्ड देश और काल के अनुसार बदलते रहते हैं, अतः राज्य के सामाजिक-आर्थिक कार्य सशस्त्र सेनाओं द्वारा किये जाने की इसके गुण-दोष के आधार पर ही विवेचना की जानी चाहिए।

आधारभूत धारणा

सशस्त्र सेनाओं को यह नया कार्य सौंपे जाने के गुण-दोष का उपयोगितावादी एवं अन्य कोणों से सूक्ष्म परीक्षण करने से पूर्व उन कतिपय धारणाओं को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है जो सशस्त्र सेनाओं को उत्पादन कार्य सौंप दिये जाने पर आवश्यक रूप से राज्य का आधार बन जाती हैं। युद्ध में सशस्त्र सेनाओं की भूमिका सुविदित है। शान्तिकाल में भी उनका नियमित प्रशिक्षण चलता रहता है। संक्षेप में, शान्तिकाल में वे युद्ध की तैयारी करती रहती हैं, अतः शान्तिकाल में उनके केवल बेकार बैठे रहने की बात सोचना स्पष्ट ही मिथ्या धारणा है। इस प्रकार शान्तिकाल में सशस्त्र सेनाओं को पूर्णकालिक कार्य करना पड़ता है और उनकी कार्यक्षमता को गम्भीर क्षति पहुँचाये बिना उन्हें किसी अन्य कार्य पर नहीं लगाया जा सकता है। अतः जब यह कहा जाता है कि किसी राज्य ने अपनी सशस्त्र

सेनाओं को उत्पादन कार्यों में भी लगा दिया है तो उनसे एक विस्तृत सैन्यीकृत तंत्र का आभास होता है, क्योंकि उत्पादन और रक्षा के संयुक्त कार्य करने के लिए एक भिन्न प्रकार की सशस्त्र सेना भरती और गठित करने की आवश्यकता होती है। अतः जब सरकार के नागरिक कार्यों का सैन्यीकरण कर दिया जाता है तो न केवल सशस्त्र सेनाओं के आधार और उनके क्षेत्र का कल्पनातीत विस्तार हो जाता है वरन् राज्य की प्रकृति भी बदल जाती है।

सैन्यीकृत राज्य के लाभ

आइये पहले इस बात पर विचार करें कि सशस्त्र सेनाओं को सामाजिक-आर्थिक कार्य सौंप दिये जाने से राज्य और इसके नागरिकों को क्या लाभ होते हैं।

सशस्त्र सेनाएँ कठोर अनुशासन में प्रशिक्षित होती हैं और उत्तरदायित्व की उच्च भावना से कार्य करती हैं; अतः किसी अन्य नागरिक संस्था की तुलना में उन्हें सौंपे गये किसी भी कार्य के सफल सम्पादन की अधिक सम्भावना रहती है। सोवियत रूस में सशस्त्र सेनाओं के प्रयत्नों से आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र में जो सफलता प्राप्त हुई है, शायद सबकी दृष्टि उसी उदाहरण पर है। भारत में भी सशस्त्र सेनाओं को सौंपे गये तदर्थ सामाजिक-आर्थिक कार्य जिनमें अकाल और बाढ़ सहायता कार्य भी शामिल हैं, इतनी सफलता, कुशलता और शीघ्रता से किये गये हैं कि सर्वोत्तम नागरिक प्रशासन तंत्र भी उन पर गर्व कर सकता है। इस कारण हमारे देश में खाद्य समस्या का समाधान खोजने वाले कुछ राजनीतिक विचारकों ने बहुधा सशस्त्र सेनाओं को कृषि कार्य में लगाने का सुझाव दिया है। निश्चयपूर्वक यह कहना कठिन है कि इस विषय में सशस्त्र सेनाओं के प्रयत्नों को सफलता मिलेगी ही, परन्तु यदि रक्षात्मक भूमिका अदा करने वाली सेना से भिन्न विशेष रूप से उत्पादन कार्यों के लिए ही एक तदर्थ सेना गठित की जाय तो सफलता प्राप्ति की अधिक सम्भावना हो सकती है, परन्तु इस सफलता के लिए नागरिकों को अपने अधिकारों और स्वतंत्रता का कितना त्याग करना पड़ेगा यह जरा ध्यान देने की बात है।

आज के इस युद्धपीड़ित संसार में किसी भी राज्य के लिए अपने सभी अंगों को सैनिक आधार पर संचालित करने से निस्सन्देह अनेक लाभ हैं। उस स्थिति में यह किसी भी आपातकालीन स्थिति का सामना करने को सदैव तैयार रहेगा। यदि हम इस बात का ध्यान रखें की युद्ध बार-बार होते रहते हैं और इन्हें टालना अथवा इनसे बचे रहना बड़ा कठिन है तो यह लाभ कोई कम लाभ नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से मुसोलिनी के इस कथन में कि 'पुरुष के जीवन में युद्ध का वही स्थान है जो स्त्री के जीवन में मातृत्व का' कुछ न कुछ सत्यता अवश्य है। सन् १४५० से १९०० तक की अवधि में योरोप की मुख्य शक्तियाँ कितने वर्षों तक युद्ध करती रहीं इसका एक विस्तृत लेखा-जोखा राइट ने अपने ग्रन्थ "युद्ध का अध्ययन" में प्रस्तुत किया है।

इस अवधि के प्रत्येक ५० वर्ष के खण्ड में स्पेन ओसतन ३३ वर्ष, तुर्की ३०.५ वर्ष, रूस ३० वर्ष, आस्ट्रिया २७.५ वर्ष, नीदरलैंड २७ वर्ष, ग्रेटब्रिटेन २५ वर्ष, पोलैण्ड २४.५ वर्ष, फ्रांस २३ वर्ष और स्वीडन १७ वर्ष तक युद्ध में उलझे रहे। उपर्युक्त सभी देशों को ध्यान में रखते हुये यदि हम प्रत्येक शताब्दी में इन राज्यों द्वारा युद्ध में व्यतीत किये गये वर्षों का ओसत निकालें तो यह पन्द्रहवी शताब्दी के लिए ६४ वर्ष, सोलहवी शताब्दी के लिए ६३.५ वर्ष, सत्रहवी शताब्दी के लिए ६० वर्ष, अठारहवी शताब्दी के लिए ५६ वर्ष, और उन्नीसवी शताब्दी के लिए ४६.५ वर्ष बैठता है। वर्तमान शताब्दी भी इसका अपवाद नही क्योंकि इसके पूर्वार्द्ध में ही विशाल आकार के दो विश्वयुद्ध ससार को आन्दोलित कर चुके हैं। इस प्रकार राष्ट्रसघ, १६२८ के केलॉग-ब्रियण्ड समझौते और सयुक्त राष्ट्र सघ के अस्तित्व के बावजूद युद्ध का मानव जीवन में प्रमुख स्थान रहा है।

परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमरीका और युनाइटेड किंगडम जैसे शान्तिप्रिय लोकतत्रीय देशो ने भी सम्भावित आक्रमण की रोकथाम के लिये शान्तिकाल में कुछ मात्रा में सेनाएँ रखना आवश्यक समझा है। युद्ध का मार्ग अपनाये जाने की सम्भावना की ओर सकेत करने वाले रक्षा समरनीति के कुछ विचारो के कारण आधुनिक अमरीकी अर्थव्यवस्था को युद्धकालीन अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित रखा गया है। यह सत्य है कि आधुनिक काल में आणविक आयुधो के अनुसधान और वायु शक्ति के विकास ने सामरिक विचारों में पर्याप्त सशोधन कर दिया है। प्रमुख सैनिक परिवर्तन तो यन्त्रीकृत युद्ध की अत्यधिक तीव्रता से बढ़ती हुई गति है। इस प्रकार योरोप में होने वाला कोई भी नया युद्ध अनपेक्षित रूप से अत्यल्प समय में समाप्त हो जायगा। इससे लोकतत्रीय देशो को यह महत्वपूर्ण बात स्वीकार करनी पड़ती है कि प्राथमिक सैन्यीकरण का समय अत्यल्प अथवा नगण्य रह जायगा। इसलिए लोकतत्रीय राष्ट्रों को अपनी रक्षा के लिए पहले से कही अधिक बड़े पैमाने पर स्थायी सेनाएँ रखने की आवश्यकता पड़ती है। नवीनतम आविष्कारों के कारण लोकतत्रीय देशो की रक्षा करना और भी कठिन हो गया है और इसने ऐसे सर्वाधिकारवादी सैन्यीकृत राज्य को होने वाले लाभ की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिसे प्राथमिक सैन्यीकरण के लिए व्यवहारत नगण्य समय की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार यदि सरकार के आर्थिक और नागरिक कार्य सशस्त्र सेनाओ को सौंप दिये जायें तो लोकतत्रीय देशो को शान्तिकाल में भी सैन्य सचालन हेतु आवश्यकता से अधिक विस्तृत सैनिक तत्र रखना पड़ेगा। इस प्रकार सशस्त्र सेनाओ को कुछ नागरिक कार्य सौप दिये जाने से यह लाभ होता है कि उनका विस्तार सुनिश्चित हो जाता है और फिर आवश्यकतानुसार बिना किसी पूर्व सूचना के उनका और भी अधिक विस्तार किया जा सकता है।

सशस्त्र सेनाओं को आर्थिक क्षेत्र में लगाने से श्रम और पूँजी के सघर्ष में

उत्पन्न होने वाले झगड़े का सदैव के लिए अन्त हो जायगा। सशस्त्र सेनाओं को उत्पादक कार्यों में लगाने से श्रम-समस्याओं का जिस मात्रा में समाधान होता है उस मात्रा में उद्योगों के पूर्ण राष्ट्रीयकरण से भी नहीं हो सकता। राष्ट्रीयकृत उद्योगों में भी श्रमिक (सेवा की) अच्छी शर्तों और अधिक वेतन की माँग कर सकते हैं और इसके लिए हड़ताल भी कर सकते हैं, परन्तु यदि इस कार्य के लिए सशस्त्र सेनाओं को रखा जाय तो कठोर नियन्त्रण में प्रशिक्षित होने के कारण उनमें ऐसी आशा नहीं की जा सकती।[3] इस प्रकार श्रमिकों द्वारा खड़े किये जाने वाले सारे अवरोध सशस्त्र सेनाओं का प्रयोग करने से स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं और राज्य के उत्पादन कार्यों की सफलता के लिए एक निर्विघ्न पथ बन जाता है।

पुन असैन्यीकृत व्यवस्था में उद्योगों के राष्ट्रीयकरण से राज्य को प्राप्त होने वाले नियन्त्रण की अपेक्षा सशस्त्र सेनाओं को उत्पादन कार्य सौंप दिये जाने से कहीं अधिक उच्च और प्रभावी नियन्त्रण सुनिश्चित हो जाता है। ऐसे नियन्त्रण द्वारा राज्य नागरिक निकाय में व्याप्त बुराइयों पर अधिक सफलतापूर्वक प्रहार कर सकता है और असैन्यीकृत राज्य की धारणा में जितना सम्भव है उससे कहीं अधिक उत्साह और शीघ्रता से उनका उपचार कर सकता है।

यदि कार्यकुशलता, सुस्पष्टता और अल्प सूचना पर युद्ध आरम्भ करने की योग्यता सहित दृढ़ता किसी अच्छी सरकार का मापदण्ड है तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सशस्त्र सेनाओं का एक ऐसा विस्तृत संगठन जिसमें आर्थिक कार्यों का सैन्यीकरण कर दिया गया है बड़ा ही आकर्षक लगेगा।

हानियाँ

आर्थिक कार्य सशस्त्र सेनाओं को सौंपने के लाभों की शुद्ध गुणों के आधार पर समीक्षा करने के पश्चात् इस प्रणाली की हानियों का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि सैन्यीकरण राज्य की धारणा में परिवर्तन करके नागरिकों के जीवन और स्वतन्त्रता को कितनी गम्भीर क्षति पहुँचाता है। मूल प्रश्न यह है कि कौन से मापदण्ड अपनाए जायें क्योंकि राज्य की सर्वाधिकारवादी धारणा के अनुसार एक विस्तृत रक्षातन्त्र उचित माना जाता है परन्तु लोकतंत्रीय परम्पराओं के अनुसार ऐसा तन्त्र नियमविरुद्ध माना जाता है। इस प्रकार यदि अच्छी सरकार का मापदण्ड व्यक्ति के अधिकार और उसकी स्वतन्त्रता है तो सशस्त्र सेनाओं को नागरिक कार्य सौंपना पूर्णतया अस्वीकार्य होगा। इस विषय में कोई विवाद नहीं है कि यदि उत्पादक कार्य सशस्त्र सेनाओं को सौंप दिये जायें तो वे एक ऐसे सैन्यीकृत राज्य को जन्म दे देंगी जिसमें कार्यपालिका पर मतदाता मण्डल

३ फिर भी १९४६ में पूर्व ब्रिटिश और भारतीय सेनाओं में हड़तालों और विद्रोहों का पूर्णतया अभाव नहीं था।

का अल्पतम अथवा नगण्य नियन्त्रण रह जायगा।

उदाहरणार्थ इस बात का अध्ययन किया जा सकता है कि यदि भारत में सशस्त्र सेनाएँ राज्य का उत्पादन कार्य सम्भाल लें तो क्या स्थिति होगी। इस बात के स्पष्ट मूल्यांकन की सहायता करने के लिए पृ० ४०७ पर विभिन्न मन्त्रालयों की १९६१ की स्थिति के दो मानचित्र दिये गये हैं। पहले मानचित्र में वह स्थिति प्रदर्शित की गई है जिसमें सशस्त्र सेनाएँ केवल रक्षा कार्य करती हैं और दूसरे में इन्हें सामाजिक-आर्थिक कार्य भी करते हुये प्रदर्शित किया गया है।

इन मानचित्रों के अध्ययन से पता चलता है कि यदि उत्पादन कार्य सशस्त्र सेनाओं को सौंप दिये जायें तो उन्हें भारत सरकार के ७५% मन्त्रालयों के कार्यों पर नियन्त्रण प्राप्त हो जाता है। इस कारण सशस्त्र सेनाओं पर नियन्त्रण करने के लिए चीन की भाँति एक नई कैबिनेट का गठन करना आवश्यक हो जायगा। चीनी सेना पर केबिनेट (सरकारी प्रशासन परिषद्) का नहीं वरन् इसी के समान सत्ताप्राप्त एक अन्य निकाय जनता की केन्द्रीय समिति परिषद् का नियन्त्रण है। चीन में कैबिनेट और सैनिक परिषद् दोनों ही सिद्धान्त रूप में जन परामर्शदात्री परिषद् की राष्ट्रीय समिति के अधीन हैं और वह एक ऐसा प्रतिनिधि निकाय है जिसे दोनों-अंगों के सदस्य नामांकित करने का अधिकार प्राप्त है। फिर भी छह सदस्यीय अध्यक्ष मण्डल वाली सर्वोच्च सैनिक परिषद् जिसका निर्वाचित अध्यक्ष माओत्सेतुंग है, अधिक शक्तिशाली निकाय है क्योंकि राज्य के नियमों को यही अन्तिम स्वीकृति प्रदान करती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि जहाँ कहीं भी आर्थिक कार्य सशस्त्र सेनाओं को सौंपे जाते हैं वहाँ उनका संगठन आवश्यक रूप से इतना विस्तृत हो जाता है कि उस पर नियन्त्रण करने के लिए एक अन्य निकाय की आवश्यकता होती है और राज्य के असैनिक विभागों से व्यवहार करने वाली वर्तमान कैबिनेट को गौण स्थान ग्रहण करना पड़ता है। ऐसी प्रणाली के प्रति कोई स्वाभाविक आपत्ति तो नहीं हो सकती परन्तु यदि यह जनता के प्रति 'उत्तरदायित्व' और संसद के नियन्त्रण को हानि पहुँचाने लगे तो यह ऐसी स्थितियाँ पैदा कर देती हैं जिनसे लोकतन्त्र समाप्त हो जाता है। आधुनिक लोकतन्त्रीय राज्य में कार्यपालिका के वर्तमान विस्तृत तन्त्र के बावजूद संसद का नियन्त्रण पहले की अपेक्षा केवल नाममात्र का ही रह गया है। युनाईटेड किंगडम के सांविधानिक सिद्धान्तवेत्ता कहते हैं कि 'संसद के उत्तरदायित्व और नियन्त्रण' को कभी भी निरन्तर नहीं माना जा सकता, उन्हें अधिक से अधिक तदर्थ माना जा सकता है और इसीलिये वे वाछित रूप से प्रभावी नहीं हैं। इस प्रकार यदि राज्य के कार्यपालिका तन्त्र के विस्तार के कारण कोई लोकतन्त्रीय संसद मतदाता मण्डल के साधन के रूप में प्रभावहीन हो जाती है तो अब तक सरकार के नागरिक पक्ष द्वारा किये जा रहे कार्य राज्य की सशस्त्र सेनाओं को सौंप दिये जाने से संसद के पूर्णतया पंगु हो जाने की अधिक संभावना रहती है। सशस्त्र

सेनाओं की अत्यधिक विस्तृत संरचना को नियंत्रित करने के लिए यदि सैनिक परिषद् जैसे एक अलग निकाय की आवश्यकता होने लगे तो न केवल नागरिक कैबिनेट वरन् संसद भी अप्रभावी और शक्तिहीन हो जायगी। ऐसा होने पर लोकतंत्र का आधार-सरकार पर संसदीय नियंत्रण और संसद का मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व डगमगा उठता है।

राज्य के सैन्यीकरण से इन दो सिद्धान्तों का किस सीमा तक हनन होता है इस बात का विस्तारपूर्वक परीक्षण किया जाना चाहिए। किसी ऐसे लोकतंत्र का उदाहरण नही मिलता जिसने अपने आर्थिक कार्य सशस्त्र सेनाओं को सौंप दिए हों पर विभिन्न देशो की सरकारो के ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने आवश्यक उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया है। किसी आधुनिक राज्य की व्यस्त संसद किस सीमा तक राष्ट्रीयकृत उद्योगों पर नियंत्रण रख सकती है इस बात के परीक्षण से यह निश्चय किया जा सकता है कि सशस्त्र सेनाओं को आर्थिक कार्य सौंप दिये जाने पर अनेक कर्तव्यपालन करने वाली आधुनिक संसद उन्हें नियंत्रित करने की स्थिति मे होगी अथवा नहीं।

कैबिनेट (रक्षा मंत्रालय को केवल रक्षाकार्य सौंपा गया है)

- रक्षा
- शिक्षा
- विदेश विभाग
- वित्त
- खाद्य और कृषि
- स्वास्थ्य
- गृहमंत्रालय
- सूचना और प्रसारण
- सिंचाई और शक्ति
- श्रम
- कानून
- प्राकृतिक साधन और वैज्ञानिक अनुसंधान
- रेल
- परिवहन और संचार
- भवन निर्माण और आपूर्ति

कैबिनेट (रक्षा मंत्रालय को सामाजिक-आर्थिक कार्य सौंप दिये जाने पर)

- विदेश विभाग
- रक्षा
  - रक्षात्मक भूमिका (शान्ति और युद्धकाल में राष्ट्रीय सुरक्षा बनाये रखना)
  - सामाजिक-आर्थिक कार्यों सहित उत्पादक भूमिका
    - शिक्षा एवं सूचना और प्रसारण
    - प्राकृतिक साधन और वैज्ञानिक अनुसंधान
    - खाद्य और कृषि
    - स्वास्थ्य
    - सिंचाई और शक्ति
    - श्रम
    - रेल पुनर्वास
    - परिवहन और संचार,
    - भवन निर्माण और आपूर्ति
    - व्यापार और उद्योग
- वित्त
- गृह और राज्य
- कानून

मतदाता मण्डल के प्रति ससद का उत्तरदायित्व

उत्तरदायित्व यदि कोरी औपचारिकता नहीं है तो उसके साथ कुछ न कुछ नियंत्रण भी शामिल होना चाहिए। उदाहरणार्थ ब्रिटिश मतदाता मण्डल समय-समय पर जब चाहे ससद सदस्यों को उखाड़ फेंक सकता है। इसी कारण ब्रिटिश संसद मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करती है। साधारणतया हम नियंत्रण को अन्तिम सत्ता से अधिक बड़ा मानते हैं। यह तो रोकने अथवा प्रोत्साहित करने की एक अनवरत प्रक्रिया है और इस रूप मे अधिक प्रभावी होने के लिए इसे सम्बन्धित संस्था के विषय में उत्तरदायित्व के लिए आवश्यक सूचना से अधिक सूचना एवं अधिक घनिष्ठता की आवश्यकता होती है। यदि किसी स्थानीय अधिकरण के विभागों पर उसकी परिषद् नियंत्रण रखना चाहती है तो उसे उनके कार्य के विषय में उन स्थानीय मतदाताओं की अपेक्षा जिनके प्रति यह उत्तरदायी है, अधिक विस्तृत जानकारी होनी चाहिए।

पुनः युनाइटेड किंगडम मे किसी सरकारी विभाग पर मंत्री का, उसके प्रति उत्तरदायी एक स्थायी अधिकारी का और राजकोष का नियंत्रण होता है। मंत्री संसद के प्रति उत्तरदायी होता है और संसद ऐसी स्थिति पैदा करने में समर्थ है कि प्रधानमंत्री को उस मंत्री को पदमुक्त करने के लिए बाध्य होना पड़े, गम्भीर स्थिति में तो यह अविश्वास प्रस्ताव द्वारा सारी कैबिनेट को ही त्यागपत्र देने के लिए बाध्य कर सकती है। संसद मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायी होती है क्योंकि आम चुनाव होने पर मतदाता मण्डल सरकार को बदलने मे समर्थ है। वित्त और तत्सम्बन्धी अन्य विषयों मे सम्बन्धित विभाग राजकोष के प्रति तथा सीधे ससद के प्रति उत्तरदायी होता है। इसके अनुमानों की समीक्षा राजकोष द्वारा की जाती है तथा अनुमानों सम्बन्धी संसद की प्रवर समिति उनका अध्ययन कर सकती है। महालेखा नियंत्रक तथा परीक्षक व्यय का निरीक्षण करता है और उसकी सहायता से संसद की जनलेखा समिति लेखा परीक्षण करती है। इन दोनों संसदीय समितियों का उद्देश्य कैबिनेट द्वारा पूर्वनिर्धारित और संसद द्वारा स्वीकृत नीति की आलोचना करना नहीं वरन् ब्यौरों के विषय में सलाह देना है।

युनाइटेड किंगडम में मार्दिघानिक पंडितों का विचार है कि राष्ट्रीयकृत उद्योगों पर संसद का वास्तव में बिल्कुल नहीं अथवा अत्यल्प नियन्त्रण होता है। एक नवीन प्रकाशन[४] में प्रभावी 'संसदीय उत्तरदायित्व और नियंत्रण' को भली-भाँति स्पष्ट किया गया है :

"इस प्रकार राष्ट्रीयकृत उद्योगों के विषय में जहाँ तक मंत्री का उत्तरदायित्व है वह संसद के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी होता है जिस प्रकार वह अपने विभाग के विषय में होता है। प्रश्नों के उत्तर देकर और बहस में भाग लेकर वह अपना उत्तरदायित्व पूरा करता है। प्रश्नों के उत्तर देने सम्बन्धी उसके उत्तरदायित्व की सीमा

---

४ हर्नेग, एच.: औद्योगिक लोकतंत्र और राष्ट्रीयकरण

स्पष्ट नही है क्योकि निर्देशित करने की अपनी शक्तियो का औपचारिक प्रयोग किये बिना भी वह परिषदों को प्रभावित कर सकता है। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीयकृत उद्योगो के प्रतिवेदनो पर अध्यक्ष विस्तृत बहस की आज्ञा देता है परन्तु यह स्पष्ट हो चुका है कि बार-बार होने वाली बहस द्वारा बहुत कम प्रगति की जा सकती है। अभी तक इन बहसो का उपयोग राष्ट्रीयकरण की नीति पर दलगत मतभेदो को व्यक्त करने के अवसर के रूप मे किया जाता है और विभागीय अनुमानो पर हुई बहसो के उपयोग से यही निष्कर्ष निकलता है कि जो कुछ होना है उसी की अपेक्षा की जा सकती थी।

"इस प्रकार उत्तरदायित्व और नियत्रण की रूपरेखा अतिधूमिल है। मत्री को उद्योगो पर उत्तरदायित्व के लिए आवश्यक शक्ति से कही अधिक शक्ति प्राप्त होती है और वास्तव म ससद के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी हुए बिना भी वह उन पर पर्याप्त नियत्रण रख सकता है।"

इस प्रकार की कठिनाइयो तथा उत्तरदायित्व और नियत्रण से उत्पन्न कमियो के कारण ऐसे प्रस्ताव सामने आये हैं जिनमे कहा गया है कि राष्ट्रीयकृत उद्योगो के लिए दक्ष सहयोगी स्टाफ सहित एक अथवा प्रत्येक उद्योग के लिए एक-एक प्रवर समिति गठित करके ससद को सहयोग प्रदान किया जा सकता है। यहाँ तक सुझाव दिया गया है कि उद्योगो की 'कुशलता की परीक्षा' करने हेतु एक पूर्णतया नए ढग की सस्था गठित की जानी चाहिए जिसके स्टाफ मे सर्वाधिक दक्ष कर्मचारी हो। इसके विकल्प के रूप मे अथवा इसके साथ ही इगलैंड की वर्तमान ससद के समानान्तर या इसके अधीन एक औद्योगिक ससद का भी गठन होना चाहिए जिससे औद्योगिक मामलो पर बहस करने के लिए पर्याप्त समय और योग्य व्यक्ति उपलब्ध हो सकें। आधुनिक राज्य के अत्यधिक आर्थिक विकास तथा आर्थिक एव व्यापारिक कल्याण को राज्य के जीवन और स्वास्थ्य के रूप मे दिये जाने वाले महत्त्व के कारण 'राजनीतिक लोकतत्र' के स्थान पर 'सामाजिक लोकतत्र' की आवश्यकता पूरा करने वाली सस्थाओ की स्थापना की माग की जा रही है। १६२६ मे ही श्री और श्रीमती वेब ने अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'ग्रेटब्रिटेन के समाजवादी राष्ट्रमण्डल का सविधान' मे आर्थिक ससद के रूप मे कार्य करने वाले एक दूसरे सदन की स्थापना की वकालत की थी। आधुनिक विधानसभा के अत्यधिक कार्यभार से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसके कार्य दो भागो मे विभाजित करने का और प्रत्येक भाग के नियत्रण के लिए एक अलग ससद की व्यवस्था करने का सुझाव दिया

"राष्ट्रीय रक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो और न्याय प्रशासन से सम्बन्धित कार्यों को (जिन्हे हम राजनीतिक लोकतत्र कहते हैं) जनता के जीवन के लिए आवश्यक उद्योगो और सेवाओ के राष्ट्रीय प्रशासन (जिसे हम सामाजिक लोकतत्र कहते हैं) से अलग रखे जाने की आवश्यकता है। एक का क्षेत्र प्रशासन, सत्ता,

नियमन और पुलिस शक्ति है और दूसरे का अर्थ व्यवस्था और गृह प्रबन्ध। इस प्रकार भविष्य में निर्मित होने वाले सहकारी राष्ट्रमण्डल में एक राष्ट्रीय विधान सभा नहीं वरन् अलग-अलग क्षेत्रों वाली दो विधानसभाएँ होनी चाहिए पर इसका यह अर्थ नहीं कि दोनों सभाओं में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होगा, ये सम्बन्ध बाद में स्पष्ट होंगे। ये दोनों सभाएँ समान स्तर की और एक दूसरे से स्वतंत्र होंगी और इनमें से किसी को पहला या अन्तिम स्थान नहीं दिया जायेगा। समानान्तर की दो सभाएँ—एक दण्ड विधान और राजनीतिक क्षेत्र से सम्बन्धित और दूसरी आर्थिक और सामाजिक प्रशासन से सम्बन्धित—न केवल वर्तमान संसदीय कार्यभार कम करने का एकमात्र प्रभावी उपाय हैं वरन् पूर्णता की ओर अग्रसर समुदाय में निजी पूंजीपति का स्थान लेने वाली संस्था के लिए भी आवश्यक हैं।"

इनकी योजनानुसार राजनीतिक संसद का निर्वाचन वर्तमान ढंग से ही होगा पर ब्रिटिश कैबिनेट के प्रारूप पर गठित एक कार्यकारिणी इसकी कार्यवाही का निर्देशन करेगी। सामाजिक संसद का चुनाव भी इसी प्रकार होगा, परन्तु इसका कार्यकाल निर्धारित होगा और इसे विशेष स्थिति में ही भंग किया जा सकेगा। यह अपना कार्य मुख्यतया समितियों के माध्यम से करेगी।

इसका मुख्य निहितार्थ यह है कि सरकार के कार्य का इतना अधिक विस्तार हो चुका है कि सामान्य विधानमण्डल इस कार्यभार से पूर्णतया दबा हुआ है। यदि युनाइटेड किंगडम जैसे किसी राज्य की यह स्थिति लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व थी तो इस बात का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सशस्त्र सेनाओं को उत्पादक कार्य सौंप दिये जाने पर आज किसी संसद की क्या स्थिति होगी। इससे यह महत्त्व-पूर्ण निष्कर्ष निकलता है कि यदि कोई आधुनिक संसद नागरिक कार्यकारी ऐजेन्सियों के माध्यम से राष्ट्रीयकृत उद्योगों पर प्रभावी नियंत्रण नहीं रख सकती तो इन उद्योगों का संचालन करने वाली सशस्त्र सेनाओं को नियन्त्रित करने में यह और भी कम समर्थ होगी। स्थिति यह है कि आधुनिक संविधान निर्माता यह अनुभव करने लगे हैं कि आधुनिक राज्य में कार्यपालिका पर विधायिका सभा का नियंत्रण दिन प्रतिदिन शिथिल होता जा रहा है और यदि अब तक के नागरिक क्षेत्र में कार्य-पालिका सशस्त्र सेनाओं के सहयोग से कार्य करने लगे तो संसदीय नियंत्रण और मतदाता मण्डल के प्रति संसद का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाएँगे और इसके फल-स्वरूप लोकतंत्र की मृत्यु हो जायगी।

सैन्यीकरण का स्वाभाविक खतरा

उपरिवर्णित मुख्य अनुविभागों के अतिरिक्त इस प्रणाली में एक और स्वा-भाविक खतरा है। वास्तव में यह एक निर्विवाद ऐतिहासिक अनुभव है कि यदि सशस्त्र सेनाओं पर उचित और प्रभावी नियन्त्रण न हो तो वे नागरिक सत्ता पर हावी होकर राज्य पर छा जाती है। नागरिक शक्ति द्वारा नियन्त्रित न होने के

कारण प्रिटोरियायी रक्षकों ने राज्य सिंहासन को नीलाम करने और रोम सम्राट को अपने हाथ की कठपुतली बनाने का दुस्साहस किया। इसी प्रकार क्रॉमवेल की सेना और बायज़ेन्टियम के जेनासरी सेना द्वारा राजनीतिक प्रणाली को वशीभूत करने के ऐतिहासिक उदाहरण हैं। इस अर्थ में १९५२ में इतिहास की पुनरावृत्ति हुई क्योंकि उस वर्ष तीन देशों—थाइलैंड, सीरिया और मिश्र में सैनिक क्रान्तियों द्वारा वे महत्त्वपूर्ण सांविधानिक परिवर्तन सफलता पूर्वक कर लिए गए जो मतदाता मण्डल अथवा इसके प्रतिनिधियों की स्वीकृति से अत्यंत जटिल प्रक्रिया द्वारा ही सम्भव हो सकते थे। अतः यदि सामाजिक-आर्थिक कार्य करने की दृष्टि से सशस्त्र सेनाओं को अत्यधिक विकसित होने का अवसर दिया जाय तो उन पर प्रभावी नियंत्रण रखने की समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। संसदीय या जन-नियंत्रण की बात छोड़िये किसी नागरिक तानाशाह के लिए भी सशस्त्र सेनाओं को तब तक अपनी कमान के अधीन रखना कठिन होता है जब तक वह स्वयं सर्वोच्च सैनिक पद सम्भाल कर वर्दी धारण न करले। इस प्रकार सैन्यीकरण कुछ विषयों में लोकतंत्र का पूर्ण विरोधी है।

इस प्रकार सशस्त्र सेनाओं के क्या कार्य होने चाहिए—एकमात्र इस बिन्दु पर ही राज्य की राजनीतिक संरचना का स्वभाव और लक्षण निर्भर होते हैं। राज्य की लोकतंत्रीय और सर्वाधिकारवादी धारणाओं में सशस्त्र सेनाओं का एक सुनिश्चित और स्पष्ट स्थान होता है। जिस प्रकार 'रक्षा' को नियंत्रित करने वाले तंत्र के विषय में जानकर हम राज्य की वास्तविक शक्ति का पता लगा सकते हैं उसी प्रकार 'रक्षातंत्र' के परीक्षण द्वारा राजनीतिक संस्थाओं का एक अध्येता सरलतापूर्वक राज्य के गठन के आधारभूत सिद्धान्तों का निर्णय कर सकता है। उदाहरणार्थ कठोर नियंत्रण पर आधारित एक नियमबद्ध सैन्यीकृत राज्य सच्चे लोकतंत्र की शर्त 'प्रतिपक्ष' को कभी सहन नहीं कर सकता।

समाधान

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि विभिन्न जातियाँ विभिन्न प्रकार की सरकारें पसंद करती हैं और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण वे ही सरकारें उन देशों के अनुकूल बन जाती है। इस प्रकार चीन में एक सर्वाधिकारवादी साम्यवादी राज्य उस देश के इतिहास की नवीनतम प्रवृत्ति के अनुकूल है; उस सरकार ने जनता को क्या लाभ पहुँचाये हैं इसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। पर जो चीन के लिए उपयुक्त है वह अन्य देशों के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ, 'निरंतरता' और अतीत से सम्बन्ध ब्रिटिश राजनीतिक संस्थाओं के विशिष्ट लक्षण हैं और इतिहास ने उस राष्ट्र को ऐसा स्वरूप प्रदान किया है कि सर्वाधिकारवादी राज्य की धारणा से आज वहाँ सभी घृणा करते हैं। यही बात कनाडा और आस्ट्रेलिया पर भी पूर्ण रूप से लागू होती है जिन्होंने इंगलैण्ड की लोकतंत्र की भावना को सच्चे

अर्थों में स्वीकार कर लिया है। भारत में भी राजनीतिज्ञ अपने अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति बड़े जागरूक हैं और उनके अतिक्रमण की किसी भी सम्भावना का पूर्ण शक्ति से विरोध करते हैं।

जिस देश ने शताब्दियों से लोकतन्त्र का पालन किया है उसके साथ भारत के ऐतिहासिक सम्बन्धों के कारण इस देश के लिए मूलत अलोकतन्त्रीय राजनीतिक प्रणाली अपनाना कठिन हो गया है। भारत का वर्तमान संविधान इस बात का असंदिग्ध प्रमाण है। इस विशेष मामले में भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्य पुराने सदस्यों कनाडा और आस्ट्रेलिया के समान है जहाँ इस विशिष्ट राजनीतिक संस्था ने स्थानीय धरती में गहरी जड़ें जमा ली हैं। इस प्रकार सशस्त्र सेनाओं को सामाजिक-आर्थिक कार्य सौंपने का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जिसका अध्ययन प्रत्येक देश के वास्तविक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए और जो उस देश के नागरिकों के राष्ट्रीय गुणों और विशेषताओं पर निर्भर होता है।

इन परिस्थितियों में सशस्त्र सेनाओं को आर्थिक कार्यों में लगाने के प्रश्न का सही उत्तर मध्यमार्गी नीति में मिलता है। भारत में मध्यम मार्ग की यह नीति सफलतापूर्वक अपनाई गई है और इसने अकाल और बाढ़ सहायता जैसे सामाजिक कार्य जिनमें देरी करना सम्भव नहीं है पूरा करने में नागरिक सरकार को पूर्ण सहयोग दिया है। यह वही नीति है जिसकी रूपरेखा भारतीय रक्षामंत्री ने १० जून १९५२ को संसद में श्री पटनायक के भाषण जिसमें उत्पादक कार्य सशस्त्र सेनाओं को सौंपने की वकालत की गई थी, के उत्तर में इन शब्दों में प्रस्तुत की थी—"यह विस्तृत सुझाव" यद्यपि बड़ा आकर्षक लगता है फिर भी इसे "तुरन्त लागू किये जाने के लिए एकदम स्वीकार नहीं किया जा सकता।" उनका यह अनुभव करना ठीक ही था कि उत्पादक कार्य सेनाओं को सौंपने के लिए नीति में आधारभूत परिवर्तन करना आवश्यक होगा जिसे स्वीकार करने से पूर्व "इसके सभी पक्षों की जाँच पड़ताल होनी चाहिए।" फिर भी मध्यम मार्ग अपनाते हुये रक्षामंत्री स्वर्गीय श्री एन० गोपालस्वामी आयंगर एक प्रयोगात्मक निष्कर्ष के रूप में इस बात पर भी सहमत हो गये कि "अस्थायी अवधि के लिए उत्पादक कार्यों के ऐसे खण्ड खोजने चाहिए जिन्हें पूरा करने के लिए सशस्त्र सेनाओं के कर्मचारियों को लगाया जा सके, उदाहरणार्थ इधर-उधर टूटी हुई रेल लाइनों को सुधारना, नहरें खोदना या वन्यीकरण के लिए राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्र में वृक्षारोपण करना—ऐसे कार्यों के खण्ड हैं जिन पर सशस्त्र सेनाओं को निश्चित अवधि के लिए लगाया जा सकता है और जिन्हें पूरा करने के उपरान्त वे वापस अपने कार्यवाही मुख्यालयों पर लौट आएँगी।"

रक्षामंत्री ने आगे चलकर कहा कि "उत्पादन कार्यों में इस प्रकार सशस्त्र सेनाओं का प्रयोग हो सकता है अथवा नहीं, यह देखने के उद्देश्य से इन विषयों पर विचार किया जा सकता है। यदि आप इससे आगे जाना चाहते हैं तो हमें अपनी

सेनाएँ भरती करने के तरीकों, उनकी संख्या प्रशिक्षण की मात्रा, और उन्हें सक्रिय सेवा में रखने की अवधि सम्बन्धी प्रबल विचारों में क्रान्ति लानी पड़ेगी।" श्री एन० गोपालस्वामी आयंगर ने यह कहते हुये बहस समाप्त की कि इन मामलों के कारण "बड़ी समस्याएँ पैदा हो जाएँगी और इस प्रकार के विचारों व सुझावों को 'स्वीकृति' प्रदान करने से पूर्व हम उन पर इससे कहीं अधिक ध्यानपूर्वक विचार करना पड़ेगा।"

भारतीय सशस्त्र सेनाओं द्वारा अतीत में राज्य सीमा में अकाल का सामना करने या आसाम के बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में विमान द्वारा भोजन सामग्री गिराने के तदर्थ कार्य किये जा चुके हैं, आवश्यक सेवाओं को ठप्प करके राष्ट्रीय जीवन और राज्य को संकट पैदा करने वाले गम्भीर श्रम आन्दोलनों के समय युनाइटेड किंगडम ने भी अपनी सशस्त्र सेनाओं का प्रयोग किया है।[5] आपात्काल में सशस्त्र सेनाओं

---

५. १९५१ में भारतीय सशस्त्र सेनाओं ने मानवतावादी और सहायता कार्यों के लिए नागरिक अधिकारियों को निम्नलिखित सहायता प्रदान की थी —

(अ) **टिड्डी विरोधी अभियान**—मार्च १९५१ में राजस्थान और पूर्वी पंजाब में स्थित सेना संरचनाओं ने टिड्डी दल के खतरे का सामना करने में नागरिक अधिकारियों की सहायता की।

१९५२-५३ में भी स्थानीय सैनिक अधिकारियों को आवश्यकता होने पर ऐसी ही सहायता देने का आदेश दिया गया था।

(आ) **अकाल सहायता**—बिहार मई १९५१ में बिहार अकाल सहायता कार्य में निम्नलिखित सेनाएँ प्रयुक्त की गई थीं

(i) लगभग ६०० जवानों वाली एक पैदल बटालियन।

(ii) लगभग २०० कर्मचारियों वाली एक परिवहन कम्पनी।

(iii) लगभग १७५ कर्मचारियों वाली (अभियताओं) की एक क्षेत्र कम्पनी।

अन्तर्देशीय जल परिवहन, सन्देश सूचना, चिकित्सा तथा विद्युत और यांत्रिक अभियन्ताओं के दस्तों का भी प्रयोग किया गया।

सैनिकों ने अपने अधिकृत राशन में कटौती करके १०००० मन चावल/आटा भी केन्द्रीय सहायता कोष के लिए दिया।

(इ) **आसाम बाढ़ सहायता**—भारतीय वायु सेना ने बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में तथा निगमघाट के निकट द्वीप पर फंसे लोगों के पास भोजन सामग्री गिराने के लिए दो डकोटा विमानों का एक दस्ता दिया।

५ अधिकारी, ३ अ-कमीशन-प्राप्त अधिकारी, १० वायुयान चालक और स्थल सेना के ६ अन्य अधिकारी इस कार्य पर लगाये गये थे और उन्होंने निम्नलिखित सामग्री विमान द्वारा गिराई थी :—

के हस्तक्षेप के अतिरिक्त उन्हें रक्षामंत्री द्वारा उल्लिखित सेना को प्रशिक्षण देने के सामान्य सिद्धान्तों के अनुकूल 'उत्पादक कार्य के खण्डों' में लगाया जाना तर्कसम्मत ही है। कोई भी ऐसा तदर्थ सामाजिक-आर्थिक कार्य जो सशस्त्र सेनाओं के प्रशिक्षण के अनुरूप हो और उन्हें उनके मूल कार्य से अलग न करे स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ टूटी हुई रेल लाइनों को ठीक करने तथा नहरें खोदने से सैनिक अभियान्त्रिक सेवा के कर्मचारियों को तथा मोर्चे बनाने वाले और खान खोदने वाले सैनिकों को अति उत्तम प्रशिक्षण प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त कुछ देशों ने अपने नागरिक उड्डयन का संचालन अपनी राष्ट्रीय वायु सेना को सौंप रखा है। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमरीका में स्थल सेना सन्देश कोर अन्तर्देशीय उड्डयन अन्तर-संचार प्रणाली का संगठन और संचालन करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थल सेना को विशेष रूप से अतिरिक्त जनशक्ति आवंटित की गई है। इस आवश्यक सेवा को युद्ध और शान्ति दोनों ही कालों में बनाये रखने और चालू रखने की दृष्टि से ऐसा करना उचित भी है।

[पिछले पृष्ठ का शेषांश]

भोजन सामग्री	१,१८,०४० पौंड
रबर के जूते व कम्बल	८०० पौंड
डाक सामग्री	५,५२० पौंड

परिवहन अधिकारियों को बरसीघाट तक लाने ले जाने के लिए भी वायु यात्रा की सुविधा प्रदान की गई थी।

(ई) अकाल सहायता—रायल सीमा—मद्रास अकाल सहायता कार्यक्रम के लिए निम्नलिखित सेनाएँ और साज-सामान उपलब्ध कराया गया था :—

सेनाएँ—लगभग १००० व्यक्ति

४० लारियाँ

तिरपाल के १०० जल संग्रहक

१०० लिफ्ट और शक्ति-चालित पंप

साज-सामान सैनिक अभियंताओं ने बड़े सन्तोषजनक रूप से ८७ कुओं को गहरा करके पूरा किया।

पुन. १९५२ में सड़क संचार व्यवस्था सुधारने तथा बचाव और सहायता कार्य करने के लिए स्थल और वायु सेनाओं ने निम्नलिखित सेवाएँ प्रदान कीं :—

(१) संचार—२३ अगस्त १९५० को सात अधिकारियों, १२ जूनियर कमीशन प्राप्त अधिकारियों, और ३५० अन्य सैनिकों का एक दल डिब्रूगढ़ से शिलांग गया और वहाँ उन्होंने बाढ़ में बह गई २ मील लम्बी क्लिवाग-डिब्रूगढ़ सड़क का निर्माण किया।

ऊपर वर्णित प्रकार के कार्य तथा सेना की सामान्य कार्यप्रणाली के अनुरूप चुने हुये उत्पादक उपयोगी कार्यों के खण्ड निश्चित अवधि के लिए सशस्त्र सेनाओं को सौंपे जा सकते हैं। उनके प्रशिक्षण में बाधक कार्य सौंपने का अर्थ अलग इकाइयाँ गठित करके एक अलग सेना बनाना होगा। स्पष्ट ही ऐसी स्थिति नहीं आने देनी चाहिए।

अतः स्थिति का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं —

सिद्धान्त

किसी राज्य की सशस्त्र सेनाओं को उत्पादक कार्य इसी आधारभूत शर्त पर *सौंपे जा सकते हैं कि ऐसा करने से रक्षा करने की उनकी कार्यकुशलता को किसी* प्रकार की हानि न पहुँचे।

कार्यकुशलता

सशस्त्र सेनाओं की कार्यकुशलता मुख्यतः उनके प्रशिक्षण, साज-सामान और *मनोबल पर निर्भर होती है।*

प्रशिक्षण यह अनुमान लगाया गया है कि किसी भी वर्ष में उपलब्ध

[पिछले पृष्ठ का शेषांश]

सेलोघाट-रोगडाई सड़क के दो मील लम्बे खंड का निर्माण किया, ११ मील लम्बे खंड की मरम्मत की और इस सड़क पर १५ पुल बनाये।

(२) बचाव कार्य —एक अधिकारी, एक जूनियर कमीशन प्राप्त अधिकारी, *तथा १२ अन्य सैनिकों का एक दस्ता सुबनसिरी घाटी में बचाव कार्य के* लिए तैनात किया गया और इसने खतरनाक क्षेत्र में फंसे लगभग ८०० *व्यक्तियों की रक्षा की।*

सशस्त्र सेनाओं ने सादिया के खतरनाक क्षेत्र में फंसे ४०० मनुष्यों को बचाया और लगभग १०,००० व्यक्तियों की सहायता की।

(३) सहायता कार्य :—बाढ़ग्रस्त इलाके के लोगों के लिए भोजन सामग्री गिराने के लिए २४ अगस्त १९५० को वायु द्वारा संदेश भेजने वाला एक दल जिसमें एक जूनियर कमीशन प्राप्त अधिकारी और १८ अन्य सैनिक थे, वायु सेना के ५ डकोटा विमानों सहित गोहाटी में रखा गया, इसने २४ अगस्त १९५० से ३१ अक्टूबर १९५० तक ७,२३,८४३ पौंड भोजन सामग्री गिराई। नवम्बर १९५० में आसाम के बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में ७,००,००० पौंड भोजन सामग्री गिराई गई।

इस कार्य के लिए वायु सेना के ५ डकोटा विमानों ने ४१६ घंटे ५ मिनट उड़ान भरी।

समय का ८०% भाग प्रशिक्षण और छुट्टियों में निकल जाता है, शेष समय साज-सामान की देखभाल तथा अन्य प्रशासनिक कार्य करने में बीतता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रशिक्षण के मूल्य पर कोई भी उत्पादक कार्य हाथ में नहीं लिया जा सकता, क्योंकि ऐसा करने से कार्यवाही सम्बन्धी कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिये आदर्श समाधान यही है कि केवल उसी प्रकार के कार्य हाथ में लिये जाएँ जो सशस्त्र सेना के कुछ भागों द्वारा युद्ध में अपनी सामान्य कार्यवाही के रूप में किये जाने वाले कार्य के अधिक निकट हों। इस प्रकार ऐसे कार्य में व्यतीत किया गया समय सामान्य प्रशिक्षण में व्यतीत किये गये समय के समान ही होगा। उत्पादक कार्य सौंपने की आधारभूत शर्त यह है कि ये ऐसे कार्य होने चाहिए जो युद्ध में अपनी निर्धारित भूमिका की तैयारी के लिए शान्तिकाल में सामान्य प्रशिक्षण के रूप में किये जाते हैं।

साज-सामान : सशस्त्र सेनाओं की कार्यकुशलता को सीधे प्रभावित करने वाला दूसरा आवश्यक कारक साज-सामान है। भारत में अधिकतर साज-सामान विदेशों से आयात करना पड़ता है, इसलिये अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ यह समस्या अधिक गंभीर है। अतः यह एक आवश्यक प्रतिफल है कि साज-सामान की स्थिति में गिरावट अथवा उपलब्ध मात्रा में कमी सशस्त्र सेनाओं की कार्यकुशलता को गम्भीर क्षति पहुँचायेगी। अतः उन्हें उत्पादक कार्य सौंपने की दूसरी शर्त यह है कि ऐसा करने से साज-सामान में गिरावट न आये। या तो सैनिक साज-सामान का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए और यदि इसका प्रयोग किया ही जाय तो इसकी स्थान-पूर्ति का प्रावधान होना चाहिए।

मनोबल : ऐसे उत्पादक कार्य के लिए सैनिकों की छुट्टियाँ कम करके सेनाओं के मनोबल पर कोई बुरा प्रभाव नहीं डालना चाहिए। ऐसे कार्यों के लिए सेनाओं को अधिक समय तक कठिन और असन्तोषजनक परिस्थितियों में रहने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए।

आर्थिक विचार : उत्पादक कार्य सौंपना वित्तीय दृष्टि से लाभदायक है अथवा नहीं इस पर विचार करना भी महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ यदि एक नहर या सड़क बनानी है तो इस बात का पता लगाना चाहिए कि इस कार्य को सार्वजनिक निर्माण विभाग के निरीक्षण में ठेकेदारों को सौंपने से अधिक बचत होगी अथवा सशस्त्र सेनाओं को सौंपने से। साज-सामान की टूट-फूट और स्थानपूर्ति के मूल्य की ऐसे कार्य को सामान्य विधि से कराने के व्यय से तुलना करना भी महत्वपूर्ण कारक है।

समय कारक : उत्पादक कार्य केवल अस्थायी अवधि के लिए ही सौंपा जाना चाहिए। स्थायी अवधि का कार्य प्रशिक्षण में बाधा उत्पन्न करता है, अतः इसकी सिफारिश नहीं की जा सकती।

जनशक्ति यदि कोई परियोजना सशस्त्र सेनाओं को सौंपने से आर्थिक बचत होती है तो कुछ मामलों में अतिरिक्त जनशक्ति का आवटन न्यायसंगत हो सकता है। परन्तु उत्पादक कार्यों के लिए अतिरिक्त जनशक्ति के सामान्य आवटन से सैनिक तंत्र में अवांछित विस्तार होगा और उद्देश्य ही निष्फल हो जायगा।

रक्षित सेना का प्रयोग इसमें एक प्रश्न यह भी पैदा होता है कि यदि रक्षित सैनिक शान्तिकाल में नागरिक जीवन के अधिक उपयोगी कार्यों में नहीं लगे हैं तो उनका उत्पादक कार्यों के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए अथवा नहीं ? रक्षित सैनिकों को सशस्त्र सेनाओं का एक भाग माना जा सकता है, परन्तु क्योंकि उन्हें शान्तिकाल में कार्य पर नहीं रखा जाता और वर्ष में केवल पन्द्रह दिन ही प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है इसलिए वे निश्चय ही जनशक्ति का ऐसा उपयोगी स्रोत हैं जिसे आर्थिक कार्य सौंपे जा सकते हैं। रक्षित सैनिकों को नियमित सेना में आमन्त्रित करके तथा उन्हें उत्पादक कार्यों के लिए निर्धारित साज-सामान देकर ऐसे कार्यों में लगाया जा सकता है, जो या तो अधिक आय देने वाले हों या फिर जिन्हें सार्वजनिक निर्माण विभाग जैसे सामान्य तरीकों से कराया जाना अधिक व्ययशील हो। बेरोज-गार रक्षित सैनिकों को इस प्रकार राज्य की संरचना में परिवर्तन किये बिना अधिक लाभकर उत्पादक कार्य के खण्डों में लगाये जाने की स्वीकृति दी जा सकती है। प्रादेशिक सेना के कर्मचारियों का इस प्रकार उपयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे तो पहले ही नौकरी में लगे होते हैं और उन्हें उनके धंधों से हटाना नागरिक जीवन में रिक्तता पैदा करना होगा।

इसी प्रकार अन्य स्रोतों के रूप में राष्ट्रीय रक्षा कैडेट कोर तथा सहायक वायु सेना आदि पर भी विचार किया जा सकता है।

उपसंहार

सभी वस्तुओं को समय की गति का अनुसरण करना पड़ता है, इस निरन्तर परिवर्तनशील संसार में रहने के कारण राजनीतिक संस्थाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। लोकतंत्रीय राज्य की प्राचीन धारणा में सशस्त्र सेनाओं के कार्य की कठोर सीमायें निर्धारित की गई थी। आज के युग में 'जनकल्याण' की भावना सर्वोपरि होने के कारण इस धारणा में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया है।

आधुनिक युग में आर्थिक पक्ष पर बल दिया जाता है तथा प्रत्येक संस्था के निरन्तर अस्तित्व की कसौटी यही है कि वह सामाजिक अथवा आर्थिक, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी रूप से जनता को लाभान्वित करती है अथवा नहीं। शान्तिकाल में सशस्त्र सेनाओं का कार्य ऋणात्मक होने के कारण उनके लिए सक्रिय भूमिका की वकालत करने वाले व्यक्तियों की भावनाओं की प्रशंसा करनी पड़ती है।

राज्य की नागरिक और सैनिक संस्थाओं के मध्य "उचित सन्तुलन" बनाये

रखना ही अभीष्ट उद्देश्य है। इस सम्बन्ध में सर अर्नेस्ट बार्कर (Sir Earnest Barker) के विचारों को उद्धृत किया जा सकता है जिन्होंने अपनी नवीनतम कृति 'सामाजिक और राजनीतिक उपपत्ति के सिद्धान्त' (Principles of Social and Political Theory) में सतुलन के इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उनका कथन है कि एक दृष्टिकोण से विरोधी हितों और विरोधी सिद्धान्तों के मध्य उचित सतुलन बनाये रखना ही न्याय है। अधिकारों की विभिन्न श्रेणियों यथा स्वतन्त्रता के अधिकारों, समानता के अधिकारों तथा भ्रातृत्व एवं सहकार के अधिकारों में सतुलन होना चाहिए। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तथा राज्य के विभिन्न राजनीतिक दलों में सतुलन होना चाहिए। समाज के विभिन्न वर्गों और समूहों में सतुलन होना चाहिए। एक प्रकार की परिस्थितियों में स्थापित सतुलन इन परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर विकृत हो जाता है और एक नये प्रकार के सतुलन की खोज करनी पड़ती है। इस कारण समाज और राजनीति का स्थिर सिद्धान्त पुराना पड़ जाता है। यह सिद्धान्त सदैव गतिशील होना चाहिए; अतः हमें समय के साथ बदलते रहना चाहिए परन्तु "सतुलन" की आधारभूत समानता को ध्यान में रख कर ही परिवर्तित चित्र का यथोचित विकास करना चाहिए। यदि व्यक्तिवाद और समूहवाद में संतुलन बनाये रखा जाय तो दोनों में कोई जन्मजात विरोध नहीं रहे। क्लेरेण्डन (Clarendon) ने १६६० में इंगलैंड के संविधान के इसी "उचित संतुलन" का उल्लेख किया था जिसे क्रॉमवेल (Cromwell) के "अराजक काल" ने विकृत कर दिया था। इसी प्रकार माण्टेस्क्यू (Montesquieu) ने शक्तियों के पृथक्करण के अपने सिद्धान्त में "संविधान के इसी उचित सतुलन" पर विचार-विमर्श किया है। सरकार के नागरिक और सैनिक कार्यों में समानता बनाये रखने के इस महत्त्व-पूर्ण कार्य में उचित संतुलन बनाये रखना अत्यावश्यक है।

१६

सेनाध्यक्षों की समिति की सांविधानिक स्थिति और मतदातामण्डल के प्रति सरकार का उत्तरदायित्व

सेनाध्यक्षों की समिति और सशस्त्र सेनाओं का राज्य की प्रकृति से सम्बन्ध

पिछले अध्यायों में यह स्पष्ट हो चुका है कि राज्य की प्रकृति और लक्षण उसके राजनीतिक संगठन में रक्षा की स्थिति पर निर्भर होते हैं। सेनाध्यक्षों की समिति की भाँति तीनों सेवाओं के वर्दीधारी सदस्यों को सरकार के असैनिक सदस्यों के साथ बैठने और राज्य की सत्ता का संचालन करने की आज्ञा मिल जाने से मतदाता मण्डल के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त तथा सशस्त्र सेनाओं पर नागरिक नियंत्रण का सिद्धान्त दोनों ही पूर्णतः अव्यवस्थित हो जाते हैं। जैसा कि पहले अध्याय में कहा गया है राज्य की संगठनात्मक संरचना में राजनीतिक और सैनिक दो स्पष्ट क्षेत्र होते हैं। पहले अध्याय में दिये गये मानचित्र (पृ० ५) से लोकतंत्र में सैनिक क्षेत्र के कार्य की सीमाओं का पता लगता है। जब सैनिक क्षेत्र राजनीतिक क्षेत्र का अतिक्रमण करने लगता है तब किस प्रकार तानाशाही का जन्म होता है यह भी उक्त मानचित्र से स्पष्ट हो जाता है।

प्रधानमंत्री, रक्षामंत्री और कैबिनेट की रक्षा समिति का निर्माण करने वाली संरचना लोकतंत्र और तानाशाही दोनों में ही समान रूप से पाई जाती है। उदाहरणार्थ युनाइटेड किंगडम की भाँति सोवियत प्रणाली में भी एक रक्षा समिति, एक मंत्रिपरिषद् और इसका अध्यक्ष तथा सशस्त्र सेनाओं का एक मंत्री होते हैं। लोकतंत्रीय और सर्वाधिकारवादी व्यवस्था में आधारभूत अंतर यही होता है कि उत्तरोक्त में राज्य के उच्चतर राजनीतिक अंगों का नियंत्रण वर्दीधारी व्यक्तियों के हाथ में होता है, परन्तु पूर्वोक्त में कार्यपालिका के अधीन लाभ के पदों पर कार्य करने वाले व्यक्तियों को इन (राजनीतिक) पदों के लिए चुनाव लड़ने के अयोग्य माना जाता है। अतः जब चीन की भाँति कोई वर्दीधारी व्यक्ति राज्य के राजनीतिक अंगों का नियंत्रण करने लगता है तो मतदाता मण्डल के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व का प्रश्न ही नहीं उठता। सशस्त्र सेनाओं का वह सदस्य जो मतदाता मण्डल के बदले सेवाओं द्वारा निर्वाचित होकर उस स्थान पर पहुँचता है मतदाता

मण्डल के प्रति अपने उत्तरदायित्व का खण्डन कर सकता है। उसका उत्तरदायित्व केवल सशस्त्र सेनाओं के प्रति ही होगा, जहाँ उसे एक निश्चित स्थान प्राप्त है और जिसके बल पर वह राज्य के राजनीतिक अंग के नियंत्रक के पद तक पहुँचा है। इस प्रकार राज्य के किसी भी राजनीतिक अंग में वर्दीधारी व्यक्ति को सदस्य नियुक्त करना अथवा इस अंग का नियंत्रण उसके हाथ में सौंपना लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धान्त—मतदाता मण्डल के प्रति सरकार का उत्तरदायित्व—के मूल पर ही कुठाराघात करता है।

यह सिद्ध किया जा सकता है कि सोवियत संविधान की भाँति किसी संविधान द्वारा सशस्त्र सेना के सदस्यों को "निर्वाचित करने और निर्वाचित होने" का अधिकार प्रदान कर दिये जाने से मतदाता मण्डल के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार यदि कोई वर्दीधारी व्यक्ति चुनाव की सामान्य प्रक्रिया के माध्यम से उच्च राजनीतिक पद पर चुना जाता है तो मतदाता मण्डल के प्रति उसके उत्तरदायित्व में कोई परिवर्तन नहीं होता। फिर भी यह व्याख्या ब्रितानी लोकतंत्र की श्रेष्ठ परम्पराओं के अनुकूल नहीं है; क्योंकि वहाँ तो संविधान का मूल नियम ही लाभ के किसी पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति को राज्य की विधायिका सभा के लिए चुनाव लड़ने की आज्ञा नहीं देता। इंगलैंड के सांविधानिक इतिहास की जिन घटनाओं ने क्राउन के अधीन लाभ के किसी भी पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति को संसद का चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित करने के इस सिद्धान्त की स्थापना कराने में सहयोग दिया उन्हें यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है। किसी भी लोकतंत्रीय व्यवस्था में कार्यपालिका के वेतनभोगी राज्य कर्मचारियों और वर्दीधारी व्यक्तियों को राजनीतिक क्षेत्र से अलग रखने का सिद्धान्त वास्तव में बड़ा ही लाभप्रद है। समझौता अधिनियम (Act of Settlement) द्वारा यह निर्धारित करके कि "जिस किसी को भी क्राउन के अधीन लाभ का कोई पद प्राप्त है, वह निर्वाचित होने के अयोग्य है," पहले पहल १७०५ में इसकी स्थापना की गई थी। यही आधारभूत नियम मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व की स्पष्ट रेखा निश्चित करने में बड़ा सहायक है।

१८६७ के ब्रिटिश उत्तर अमरीका अधिनियम द्वारा निर्मित कनाडी संविधान, १९०० के आस्ट्रेलियायी राष्ट्रमण्डल संविधान अधिनियम[1] में वर्णित आस्ट्रेलियायी

---

[1] प्रथम अध्याय के चौथे भाग की धारा ४४ (iv) :
"जिस व्यक्ति को क्राउन के अधीन लाभ का कोई पद प्राप्त है अथवा जिसे राष्ट्रमण्डल के राजस्व खाते से क्राउन की सम्मति से कोई पेंशन प्राप्त होती है उसे चुनाव लड़ने तथा सीनेटर या प्रतिनिधि सदन के सदस्य के रूप में कार्य करने का अधिकार नहीं होगा।"

संविधान, १६०६ के दक्षिण अफ्रीका संविधान[2] तथा संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान[3] और भारत के वर्तमान संविधान[4] एवं मलाया के नवीनतम

२ दक्षिण अफ्रीका अधिनियम धारा ५२ (ई)

"संघ (Union) में क्राउन के अधीन लाभ के पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति को चुनाव लड़ने और सीनेटर *या सभा-सदन के सदस्य के रूप में कार्य करने का* अधिकार नहीं होगा, परन्तु इस उपधारा की उद्देश्यपूर्ति के लिए निम्नलिखित व्यक्तियों को क्राउन के अधीन लाभ के पद पर कार्यरत नहीं माना जायगा

"१ संघ का राज्य मंत्री

"२ *क्राउन से पेंशन पाने वाला व्यक्ति*

"३ हिज़ मैजेस्टी की नौ सेना अथवा स्थल सेना का कोई अवकाश-प्राप्त अथवा आधा वेतन पाने वाला अधिकारी या सदस्य, अथवा संघ की नौ सेना और स्थल सेनाओं का कोई अधिकारी या सदस्य जिसकी सेवाओं का संघ पूर्ण उपयोग नहीं कर रहा है।"

इस आशय के प्रावधान सभी संविधानों में एक समान तो नहीं हैं, परन्तु फिर भी इस आधारभूत सिद्धान्त का सर्वत्र सम्मान किया जाता है। उदाहरणार्थ दक्षिण अफ्रीका के संविधान में सशस्त्र सेना के सदस्यों को तभी स्वीकृति प्रदान की जाती है जब कि वे अपनी सेवाओं में पूर्ण रूप से नहीं लगे हों। *यदि उन्होंने अवकाश प्राप्त कर लिया है अथवा वे आधे वेतन पर कार्य* कर रहे है तो उनकी पूर्ण निष्ठा सशस्त्र सेनाओं के प्रति नहीं मानी जा सकती। इस सिद्धान्त का निश्चयपूर्वक सम्मान किया जाता है कि सशस्त्र सेना का कोई सदस्य न तो चुनाव लड़ सकता है और न ही *सीनेटर अथवा सभा-सदन के सदस्य के रूप में कार्य कर सकता है।*

३ अनुच्छेद १, धारा (VI)

"अपने निर्वाचित काल में कोई सीनेटर या प्रतिनिधि संयुक्त राज्य की सरकार के अधीन किसी ऐसे पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकेगा जिसका इस अवधि में निर्माण *हुआ है अथवा जिसके वेतन में वृद्धि की गई है। संयुक्त राज्य अम*-रीका की सरकार के अधीन किसी भी पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति इस पद पर रहते हुए किसी सदन का सदस्य नहीं हो सकता।"

४ भारतीय संविधान अधिनियम १६५० की धारा १०२, १ (अ) देखिये—

"*यदि किसी व्यक्ति को भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के* अधीन उस पद के अतिरिक्त लाभ का कोई पद प्राप्त है जिस पर कार्य करने वाले को संसद के कानून द्वारा अयोग्य घोषित नहीं किया गया है तो वह व्यक्ति संसद का चुनाव लड़ने और किसी भी सदन का सदस्य होने के अयोग्य घोषित कर दिया जायगा।"

संविधान[५] मे केन्द्रीय सरकार तथा संघ मे शामिल राज्यों की सरकारो के अधीन लाभ के पद पर कार्य करने वाले व्यक्तियों को निर्वाचित क्षेत्र से बाहर रखने का स्पष्ट प्रावधान किया गया है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वर्दीधारी व्यक्तियों को विधान-सभा एवं इसके फलस्वरूप कार्यपालिका की सदस्यता स्वीकार करने की आज्ञा देना स्वतः लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धान्तों के विपरीत है, क्योंकि इससे सेना द्वारा राजनीतिक क्षेत्र के अतिक्रमण और आसन्न नियंत्रण का सुनिश्चित संकेत मिलता है। इस स्थिति में सुधार करने के लिए इंगलैण्ड की भांति परम्परा द्वारा अथवा कनाडा[६] की भांति कानून द्वारा सेनाध्यक्षों की समिति को यह अधिकार दिया जा सकता है कि वे राज्य के उच्चतम राजनीतिक अंगों यथा कैबिनेट और इसकी समितियों के विचार-विमर्श के समय उपस्थिति मे तो रहें पर किसी भी स्थिति मे (अन्य असैनिक सदस्यों के) समान स्तर पर न तो भाग ले सकें और न ही मतदान कर सकें जैसा कि पाकिस्तान और अर्जेन्टाइना मे होता है जहां स्थल सेना का प्रधान सेनापति अथवा नौ सेना-धिकारी रक्षामंत्री के रूप मे कैबिनेट (की गोष्ठियों) में उपस्थित रहता है। सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्यों को इस प्रकार पदोन्नत करने से सभी लोकतंत्रीय परम्पराओं और सिद्धान्तों के मूल पर ही कुठाराघात होता है।

सोवियत संविधान की धारा १३८[७] का उल्लेख करना भी आवश्यक है क्योंकि इसने रूस की सांविधानिक संरचना में रक्षा की स्थिति को इस प्रकार परि-वर्तित कर दिया है कि इसका अध्ययन करना लाभप्रद सिद्ध होगा। यह सिद्ध किया जा सकता है कि धारा १३८ ने सोवियत राज्य के सैन्यीकरण को न केवल स्वीकृति प्रदान की है वरन् इसे विधिसम्मत रूप भी दे दिया है। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान मे इसके ठीक विपरीत प्रावधान करके सशस्त्र सेनाओं के किसी भी सदस्य को राष्ट्रपति की तथाकथित कैबिनेट से बाहर रखा गया है। १९४७ के सैनिक एकीकरण के नियम मे यह प्रावधान किया गया है कि जो व्यक्ति पिछले दस वर्षों में सक्रिय सैनिक सेवा में रह चुका है, वह रक्षा सचिव का पद नहीं प्राप्त कर सकता। परन्तु कोई भी सैनिक अधिकारी जनरल मार्शल की भांति गृहमंत्री और जनरल आइजनहावर की भांति राष्ट्रपति बन सकता है। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि लोकतंत्रीय राज्य मे प्रत्येक व्यक्ति को अपना पेशा चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होती है तथा किसी राज्यकर्मचारी अथवा अन्य नागरिक की

---

५ धारा ४८ (१) (इ)—"लाभ का कोई पद प्राप्त होने पर व्यक्ति संसद के किसी भी सदन का सदस्य होने के अयोग्य घोषित कर दिया जाता है।"

६ राष्ट्रीय रक्षा अधिनियम १९५० की धारा १९ देखिये।

७ "सोवियत संघ की सेना मे सेवारत नागरिकों को राज्य के अन्य नागरिकों के समान मतदान करने और स्वयं चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त है।"

भांति सशस्त्र सेना के सदस्यों को भी राजनीति में प्रवेश करने का पूर्ण अधिकार होता है। यदि वह राजनीतिक पथ चुनता है तो उसे सशस्त्र सेनाओं में या नागरिक संगठन में सरकारी कर्मचारी का वेतनभोगी पद छोड़ना पड़ेगा। अमरीका के राष्ट्रपति के रूप में चुने जाने से पूर्व जनरल आइज़नहावर को सैनिक पद छोड़ना पड़ा था।

चीन गणतन्त्र के १९४९ के उस लिखित संविधान की दो धाराओं का उल्लेख किये बिना यह विचार विमर्श पूर्ण नहीं होगा जिसे १९४९ में माओत्सेतुंग ने समाप्त कर दिया था। "मूल राष्ट्रीय नीतियाँ" से सम्बन्धित संविधान के तेरहवें अध्याय में रक्षा सम्बन्धी चार धाराएँ हैं। इनमें से धारा १३९ और धारा १४० सांविधानिक कानून और राजनीतिक संगठन के विद्यार्थी के लिए बड़ी ही रुचिकर हैं।

"धारा १३९ राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के संघर्ष में कोई दल या व्यक्ति सशस्त्र शक्ति को साधन के रूप में प्रयुक्त नहीं कर सकता।"

"धारा १४० सक्रिय सेवा में लगा कोई भी सैनिक कर्मचारी एक ही समय सैनिक और नागरिक दोनों पदों पर कार्य नहीं कर सकता।"

बर्ट्रेण्ड रसल ने संकेत किया है कि क्रान्ति या गृहयुद्ध ही चीन में सरकार परिवर्तन का सामान्य उपाय प्रतीत होते हैं और इस उद्देश्य-पूर्ति के लिये बार-बार सशस्त्र सेनाओं का प्रयोग किए जाने के कारण ही लिखित संविधान में उपर्युक्त प्रावधान करना आवश्यक समझा गया था। धारा १४० में राज्य के राजनीतिक अंगों को सशस्त्र सेनाओं से दूर रखने का घोर प्रयत्न किया गया है और धारा १३९ में राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए सशस्त्र सेनाओं के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाया गया है। लोकतंत्र के संचालन के लिए ये दोनों ही बातें आवश्यक हैं और इन्हें इतने स्पष्ट रूप से जाना और स्वीकार किया जाता है कि संसार के किसी भी लिखित संविधान में इनका स्पष्ट उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया है। फिर भी यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इन प्रावधानों के बावजूद राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए चीनी सशस्त्र सेनाओं ने संघर्ष में सक्रिय भाग लिया और अब एक ऐसी शासन प्रणाली गठित कर ली है जिसमें उन्हें राज्य के राजनीतिक क्षेत्र में पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त है।

राजनीतिक और सैनिक क्षेत्रों में परस्पर सम्बन्ध

राजनीतिक और सैनिक क्षेत्र न केवल एक दूसरे के पूरक हैं वरन् राज्य के एक स्वतंत्र राजनीतिक इकाई के रूप में अस्तित्व के लिए नितांत आवश्यक भी हैं। राज्य का प्रशासनिक कार्य सम्भालने के लिए ये दोनों ही क्षेत्र अत्यावश्यक हैं। राजनीतिक क्षेत्र का पूर्णतः लुप्त हो जाना उतना ही विनाशकारी है जितना कि सैनिक क्षेत्र का लुप्त होना। सैन्यीकृत राज्य में भी नागरिक संगठन आवश्यक होता है।

इसी प्रकार अहिंसा की भावना पर आधारित स्थायी रूप से तटस्थ अथवा धार्मिक राज्य—यथा स्विटजरलैंड और चीनी "आक्रमण" से पूर्व तिब्बत—में भी किसी न किसी प्रकार का सैनिक तंत्र आवश्यक होता है। यदि ये दोनों क्षेत्र एक दूसरे के पूरक और सहायक हैं तो मूल प्रश्न यह उठता है कि उनमें से कौन किस पर नियंत्रण करता है।

लोकतन्त्रीय राज्य में राजनीतिक क्षेत्र का वास्तविक या वैधानिक अध्यक्ष, चाहे वह राष्ट्रपति, राजा या प्रधानमंत्री, कोई भी हो, सैनिक क्षेत्र पर भी नियंत्रण रखता है और संसार के सभी लिखित लोकतन्त्रीय संविधानों में राष्ट्रपति या राजा राज्य के नागरिक तत्वों का अध्यक्ष होने के साथ-साथ तीनों सेनाओं का सर्वोच्च संचालक भी होता है। इस प्रकार लोकतंत्र में राजनीतिक क्षेत्र का अध्यक्ष सैनिक क्षेत्र का भी अध्यक्ष होता है। इसके विपरीत केन्द्रीकृत सर्वाधिकारवादी राज्य में सैनिक क्षेत्र का अधिष्ठाता राजनीतिक क्षेत्र पर भी नियंत्रण रखता है। इस प्रकार दोनों क्षेत्रों का परस्पर सम्बन्ध सभी प्रकार की सरकारों का एक सामान्य लक्षण है।

सेनाध्यक्षों की समिति और मतदाता मण्डल के प्रति सरकार का उत्तरदायित्व

सर्वाधिकारवादी संरचना में मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व नाम की कोई चीज नहीं होती; परन्तु वहाँ राज्य के सैनिक और राजनीतिक दोनों ही अंगों के लिए अधिकारी प्रदान करने वाले मूल स्रोत राज्य के एकमात्र दल के प्रति सर्वोच्च उत्तरदायित्व होता है। दल के प्रति यह उत्तरदायित्व व्यवहारतः तानाशाह की भूमिका निबाहने वाले दल के एकमात्र अध्यक्ष के प्रति उत्तरदायित्व के रूप में सीमित हो जाता है। अतः सर्वाधिकारवादी राज्यों के सम्बन्ध में मतदाता मण्डल के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की चर्चा करना आवश्यक नहीं है; क्योंकि वहाँ सभी राजनीतिक और सैनिक क्षेत्रों में तानाशाह की अध्यक्षता वाले एक ही दल का शासन इस प्रकार व्याप्त रहता है कि बहुधा उत्तरदायित्वहीनता का जन्म हो जाता है। सभी सर्वाधिकारवादी राज्यों के विषय में तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है; परन्तु हिटलर और मुसोलिनी ने अपने-अपने राज्यों में जो कुछ किया उस पर यह पूरी तरह लागू होता है।

मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व ही किसी लोकतंत्रीय संरचना का मूलतत्व है। यह सुविदित है कि द्वि-दलीय प्रणाली लागू करके मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व विकसित किये बिना कोई भी प्रतिनिधि सरकार पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं हो सकती। राज्य के उच्चतर राजनीतिक अंगों का नियंत्रण स्वतंत्र चुनावों में जनता द्वारा चुने गये व्यक्तियों के हाथों में सौंपकर ही मतदाता मण्डल

के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व के इस सिद्धान्त का पालन किया जाता है। जिन देशों में संसदीय लोकतंत्र की प्रणाली होती है वहाँ जनता द्वारा चुने हुए व्यक्ति संसद के सदस्यों के रूप में साथ-साथ बैठते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में एकमात्र कार्यकारी राष्ट्रपति का चुनाव सीधे जनता द्वारा होता है अतः वह विधायिका के प्रति नहीं वरन् सीधे मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। राष्ट्रपति द्वारा विभाग-सचिवों की अपनी "कैबिनेट" गठित किये जाने पर भी उत्तरदायित्व का विभाजन नहीं होता है, केवल राष्ट्रपति ही सचिवों का नामांकन करता है अतः कार्यकारी कार्यों का पूर्ण उत्तरदायित्व भी उसी का होता है।

संसदीय लोकतंत्र में कैबिनेट संसद और मतदाता मण्डल के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर आधारित एक टीम के रूप में कार्य करती है। एक सामान्य उद्देश्य के लिए अनेक दलों के एकत्र होने के कारण मिली जुली सरकार में भी केवल टीम का आधार विस्तृत हो जाता है। उद्देश्य की एकता विभिन्न दलों को इतना अधिक समन्वित कर देती है कि वे एक टीम के रूप में कार्य करने लगते हैं। निस्सन्देह संसद और उस दल की संयुक्त सहायता, जिसके टिकट पर चुनाव लड़ा और जीता गया है, एक आवश्यक संयोजक कारक है। इस प्रकार यदि किसी लोकतंत्र में किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्रीपद पर नियुक्त कर दिया जाय जो विधानसभा का सदस्य नहीं है तो उसे निर्धारित अवधि में चुनाव जीतना पड़ता है। उदाहरणार्थ, *भारतीय संविधान अधिनियम की धारा ७५ (५) में यह प्रावधान है कि ऐसा व्यक्ति* भी जो संसद का सदस्य नहीं है, मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। परन्तु यदि आगामी छः महीनों में वह संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं चुना जाता है तो उस अवधि की समाप्ति पर वह मंत्री नहीं रह सकता। राष्ट्रपति प्रणाली के विपरीत संसदीय प्रणाली पर आधारित संसार के लगभग सभी लोकतंत्रीय संविधानों में *यह प्रावधान पाया जाता है।*[८] *यदि राज्य के राजनीतिक संगठन का नियंत्रण किसी*

---

८ युनाइटेड किंगडम की स्थिति का स्पष्ट वर्णन रिजिस के 'सांविधानिक कानूनों के पृष्ठ १२८ पर किया गया है।

"संसद में राजा के मंत्रियों की उपस्थिति कैबिनेट प्रणाली का मूल तत्त्व है।' संसद ने १३७६ में और द्वितीय रिचर्ड के समय तथा अपरिपक्व लंकास्टरीय *वैधानिक शासन पद्धति ने १४३७ तक संसद में राजा की परिषद् के नामांकन* को आवश्यक बनाये रखा।

इस प्रकार एक परम्परा बन गई और दीर्घकालीन व्यवहार के कारण अब कैबिनेट के सदस्यों को लार्ड सभा या कामन सभा में से किसी एक का *सदस्य होना पड़ता है।* प्रधानमंत्री महान्यायवादी सर विलियम जाविट की सेवा सुरक्षित रखने के बड़े इच्छुक थे। परन्तु १९३१ के चुनाव में पराजय हुई और

ऐसे व्यक्ति के हाथ में आ जाता है, जिसे अभी तक मतदाता मण्डल ने विधायिका या कार्यकारी सत्ता के किसी स्थान के लिए नहीं चुना है तो इससे संसद और मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व का सिद्धान्त तुरन्त अव्यवस्थित हो जाता है। यदि राज्य के कार्यकारी अंग युनाइटेड किंगडम की भांति राज्य की विधायिका संरचना के प्रति अथवा संयुक्त राज्य अमरीका की भांति मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायी होते हैं, तो सेनाध्यक्षों की समिति के सदस्यों को पदोन्नत करके इन अंगों का सदस्य नहीं नियुक्त किया जा सकता। सरकार का उत्तरदायित्व "कैबिनेट की समरूपता", "कैबिनेट की दृढ़ता" अथवा भारत के लिखित संविधान के अनुसार "संसद के प्रति कैबिनेट के सामूहिक उत्तरदायित्व"[१] के मौलिक सिद्धान्त पर आधारित है। सैनिक क्षेत्र का कोई भी व्यक्ति विधायिका का सदस्य नहीं होता है। अतः उसे कैबिनेट का सदस्य नामांकित करने से विधायिका के प्रति कैबिनेट के सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त नष्ट हो जाता है।

इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं कि कैबिनेट का सीधे संसद के प्रति और अतः मतदाता मण्डल के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त ही राज्य की लोकतन्त्रीय संरचना का आधार है। इस प्रकार यदि कैबिनेट के समरूप

[पिछले पृष्ठ का शेषांश]

अन्य कोई स्थान जहां से उन्हें खड़ा किया जा सके रिक्त न होने के कारण महान्यायवादी को अपने पद से त्यागपत्र देना आवश्यक हो गया। जनरल स्मट्स ब्रिटिश संसद के सदस्य नहीं थे परन्तु फिर भी १९१७-१८ में उन्हें युद्ध कैबिनेट का सदस्य नियुक्त कर दिया गया था। ऐसा युद्धजन्य परिस्थितियों के कारण ही किया गया था और इसे पूर्व घटना नहीं माना जा सकता।

आस्ट्रेलियायी राष्ट्रमण्डल संविधान अधिनियम १९०० की धारा ६४ में कहा गया है कि "प्रथम आम चुनाव के पश्चात् राज्य का कोई भी मंत्री सीनेटर अथवा प्रतिनिधि सदन का सदस्य हुए बिना तीन मास से अधिक अपने पद पर नहीं रहेगा।"

इसी प्रकार दक्षिणी अफ्रीका अधिनियम १९०९ की धारा १४ में यह प्रावधान है कि "संसद के किसी सदन की सदस्यता प्राप्त किये बिना कोई भी मंत्री तीन मास से अधिक अपने पद पर नहीं रहेगा।"

मलाया के संविधान की धारा ४३ में यह प्रावधान है कि "संसद के किसी एक सदन के सदस्यों में से ही मंत्री नियुक्त किये जाएँगे।"

१ देखिये भारतीय संविधान अधिनियम की धारा ७५ (३) : "मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगी।"

स्वभाव पर आधारित इसकी दृढ़ता का मूलोच्छेदन करके *सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त नष्ट कर दिया जाय तो* संसद और मतदाता मण्डल के प्रति इसके उत्तरदायित्व का भी लोप हो जाता है। इस प्रकार जब कैबिनेट एक बार कोई निर्णय कर लेती हैं तो आपसी मतभेद के बावजूद इसके सदस्य उस निर्णय के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। इस विषय में सालजबरी के मार्क्विस के भाषण का अंश उद्धृत किया जा सकता है। उसने १८७८ में कहा था, 'कैबिनेट में जो कुछ भी होता है उसके लिए इसका प्रत्येक सदस्य (जो त्यागपत्र नहीं देता) पूर्णत उत्तरदायी होता है। *कैबिनेट द्वारा कोई निर्णय ले लिये जाने पर उसका पूर्ण उत्तरदायित्व स्वीकार करके ही कोई सदस्य अपनी सदस्यता सुरक्षित रख सकता है।* संसद के प्रति मन्त्रियों के संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का इसी आधार पर समर्थन किया जाता है और इससे संसदीय उत्तरदायित्व का एक सर्वाधिक आवश्यक सिद्धान्त स्थापित हो जाता है।"[१०] इस प्रकार जब १८८३ में कैबिनेट सदस्य सर चार्ल्स डिल्के ने कैबिनेट द्वारा निर्णय ले लिये जाने के बाद सुधार बिल सम्बन्धी एक प्रस्ताव का विरोध किया तो उसे कैबिनेट के सामूहिक उत्तरदायित्व से बच निकलने का अवसर नहीं दिया गया। लार्ड हार्टिंगटन ने डिल्के से कहा, "व्यवहार के अनुसार महारानी के सेवकों का *अल्पमत सामूहिक निर्णय से बाध्य होता है।*"[११]

इस प्रकार यदि किसी *वर्दीधारी व्यक्ति को उचित रीति से विधायिका सभा का सदस्य चुना जाता है और संविधान ऐसा करने की स्वीकृति देता है*, तो उसकी दोहरी निष्ठा—एक तो उस सेवा के प्रति जिसका वह सदस्य है और दूसरी उस सदन के प्रति जिसका वह सदस्य चुना गया है—विधायिका सभा के प्रति उसके उत्तरदायित्व की रेखा को अव्यवस्थित कर देती है। उत्तरदायित्व की भावना आवश्यक रूप से केवल एक इकाई के प्रति होती है। विभाजित उत्तरदायित्व किसी के प्रति भी उत्तरदायित्व नहीं होता। इस प्रकार दोहरी निष्ठा—कुछ मात्रा में सशस्त्र सेनाओं के प्रति और कुछ (*विधायिका सभा के माध्यम से) मतदाता मण्डल के प्रति—वाले एक भी सदस्य की उपस्थिति किसी भी लोकतन्त्र के संवेदनशील तन्त्र को* अव्यवस्थित करने के लिए पर्याप्त है। यह कहना गलत नहीं होगा कि इस प्रकार के एक भी व्यक्ति को शामिल करने से राज्य की प्रकृति ही बदल जाती है। इस प्रकार थाईलैंड में जहाँ नौ सेनाधिकारी और स्थल सेना के जनरल कैबिनेट के सदस्य होते हैं और जहाँ सशस्त्र सेनाओं का मार्शल होने के कारण प्रधानमन्त्री ही *रक्षामन्त्री का पद भी* संभालता है, मतदाता मण्डल के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त यदि पूरी

---

१० सॉल्जबरी के मार्क्विस रॉबर्ट की जीवनी Vol II, पृ० २१९–२०

११ चार्ल्स डिल्के की जीवनी Vol II, पृ० ६ आइवर जेनिंग्स की "कैबिनेट सरकार" (१९३६) पृ० २२२ भी देखिये।

तरह नष्ट नहीं होता तो धूमिल अवश्य पड़ जाता है। इसी प्रकार अर्जेन्टाइना में पेरोन के शासनकाल में यद्यपि एक संसद विद्यमान थी और संविधान की बाह्य रूपरेखा लोकतंत्रीय थी, फिर भी रक्षामंत्री सहित स्थल सेना, नौसेना और वायुसेना के मंत्री अपनी-अपनी सेना में सर्वोच्च पद प्राप्त वर्दीधारी व्यक्ति होते थे, अतः वहाँ कैबिनेट की दृढ़ता और समरूपता के विषय में कोई प्रश्न ही नहीं उठता था और मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व अव्यवस्थित हो गया था। मंत्री के रूप में सेनाध्यक्षों के साथ, जो विधानसभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे, विचार-विमर्श के पश्चात् कैबिनेट द्वारा लिया गया कोई भी निर्णय लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धान्त को ही नष्ट कर देता है। जुलाई १९५२ से पूर्व का मिस्री संविधान पेरोन के अर्जेन्टाइना और थाइलैण्ड से भी अधिक जटिल स्वरूप प्रस्तुत करता था। मिस्री सशस्त्र सेनाओं के प्रधान सेनापति को मंत्री पद प्राप्त था और वह सर्वोच्च परिषद् का सदस्य हो सकता था। ऐसा कहा जाता है कि सेनाध्यक्ष भी कैबिनेट स्तर के नागरिक सदस्यों (मंत्रियों) वाली रक्षा परिषद् का सदस्य होता था। इस प्रकार वर्दीधारी व्यक्तियों को संसद के प्रति उत्तरदायी कैबिनेट सदस्यों के महत्त्वपूर्ण पद तक पदोन्नत करने से न केवल सशस्त्र सेनाओं को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हो गया था वरन् शाह के अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करने पर सैनिक क्रान्ति का पथ भी प्रशस्त हो गया।

"ट्रूमैन-आइक" विवाद

इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति श्री ट्रूमैन और संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति के भूतपूर्व सदस्य श्री आइज़नहावर के मध्य १९५२ का चुनाव विवाद बड़ा महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रपति ने कोरिया से सेनाएँ वापस बुलाने तथा अन्य अनेक मामलों में ऐसी सलाह देने के लिए जिसका परिणाम भयंकर हुआ श्री आइज़नहावर को दोषी ठहराया। श्री ट्रूमैन ने अपने कई चुनाव भाषणों[१२] में कहा कि "संयुक्त सेनाध्यक्षों के संगठन के सदस्य के रूप में श्री आइज़नहावर ने जिन निर्णयों के लेने में प्रमुख भूमिका अदा की थी उन्हीं को अब वह भूलें कहकर निंदा कर रहा है।" ऐसा समाचार है कि श्री ट्रूमैन ने यह भी कहा है कि श्री आइज़नहावर ने "हमारी विदेश नीति (के निर्माण) में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। युद्ध के पूर्व और पश्चात् एक जनरल के रूप में वह उन अनेक निर्णयों से सम्बन्धित रहा है जो अब हमारे शान्तिकालीन कार्यक्रमों का आधार बने हैं।" राष्ट्रपति ने कहा कि "बर्लिन और कोरिया सम्बन्धी हमारे निर्णयों में श्री आइज़नहावर व्यक्तिगत रूप में शामिल था, वह और मैं दोनों ही जानते हैं कि उन मामलों में क्या हुआ था।" राष्ट्रपति ट्रूमैन ने श्री आइज़नहावर पर इसके लिए भी दोषारोपण किया कि

---

१२ राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा न्यूयार्क में ५ अक्टूबर १९५२ को दिया गया भाषण।

जर्मनी के आत्मसमर्पण के पश्चात् संयुक्त राज्य अमरीका ने रूसियों से बर्लिन में प्रवेश करने का स्पष्ट अधिकार नहीं प्राप्त किया था।[13] श्री ट्रूमैन ने कहा, "प्रवेश (करने के इस अधिकार) के अभाव में बर्लिन की नाकाबंदी का संकट उत्पन्न कर दिया।" इसी प्रकार १९४७ में सेनाध्यक्ष के रूप में श्री आइजनहावर संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति का भी सदस्य था और उसने यह विचार प्रकट किया था कि "कोरिया में सेनाएँ रखने से संयुक्त राज्य अमरीका को कोई सामरिक लाभ नहीं होगा" और "इन सेनाओं का अन्यत्र उपयोग किया जा सकता था।" पुनः इन्डियाना[14] में दिये गये एक अन्य भाषण में श्री ट्रूमैन ने कहा कि "उसके (श्री आइजनहावर) द्वारा गृहमन्त्रालय को एक ऐसे कार्य के लिए उत्तरदायी ठहराना जो मूलतः उसके द्वारा किया गया था, बड़ा ही कुटिलतापूर्ण है।"

कोरिया में सेनाएँ वापस बुलाने और बर्लिन में प्रवेश करने का स्पष्ट अधिकार न प्राप्त करने के लिए वास्तव में कौन उत्तरदायी था इस विषय में राष्ट्रपति के इन सब वक्तव्यों ने एक विवाद खड़ा कर दिया है। समकालीन सरकार का मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व तथा इसके साथ संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति के सांविधानिक सम्बन्ध जानना अत्यावश्यक है। संयुक्त सेनाध्यक्षों की समिति का अध्यक्ष राष्ट्रपति की कैबिनेट का सदस्य नहीं होता है अतः संयुक्त सेनाध्यक्षों की सम्मति केवल एक संस्तुति होती है। इस मामले तथा अन्य मामलों में, संयुक्त राज्य अमरीका के रक्षातन्त्र की कार्यप्रणाली यह है कि संयुक्त सेनाध्यक्ष रक्षामंत्री (जो राष्ट्रपति की कैबिनेट का सदस्य होता है) के माध्यम से अपनी संस्तुतियाँ प्रस्तुत करते हैं। कोरिया में सेनाएँ वापस बुलाने के स्मरणपत्र पर भूतपूर्व रक्षा सचिव (जेम्स फॉरेस्टाल) द्वारा हस्ताक्षर किये गये थे और यह स्मरणपत्र गृह सचिव को प्रेषित कर दिया गया था। अमरीकी संविधान की धारा २ के दूसरे अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति "प्रत्येक कार्यकारी विभाग के मुख्य अधिकारी से उसके पद सम्बन्धी किसी भी कार्य के विषय में उसकी लिखित सम्मति माँग सकता है।" अतः एक कार्यकारी विभाग का प्रमुख अधिकारी होने के कारण रक्षामंत्री राष्ट्रपति को अपनी सम्मति लिखित रूप में देने के लिए अपने सांविधानिक कर्तव्य से बाध्य था। परन्तु संयुक्त सेनाध्यक्षों पर ऐसा कोई उत्तरदायित्व नहीं था। इस प्रकार संयुक्त सेनाध्यक्षों की संस्था को कोई सांविधानिक स्तर स्थिति प्राप्त नहीं है। इस सम्बन्ध

---

१३ परन्तु एल० सी० ग्रीन के "बर्लिन और संयुक्त राष्ट्र संघ", ३ (NS) विश्व मामले १९४९, पृ० २३ और पृ० ४१ पर इस विषय में ट्रूमैन-स्टालिन पत्र-व्यवहार का मूल पाठ देखिये।

१४ राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा इन्डियाना में २८ अक्टूबर १९५२ को दिया गया भाषण।

से इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि किसी कार्यकारी विभाग का प्रमुख अधिकारी भी संविधान के अन्तर्गत केवल सम्मति ही देता है, राष्ट्रपति द्वारा लिये गये निर्णयों के लिए उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। राष्ट्रपति की कैबिनेट में कोई भी वर्दीधारी व्यक्ति नहीं होता। अमरीकी कानून के अनुसार सैनिक सेवा का वही व्यक्ति रक्षा सचिव हो सकता है जो पिछले दस वर्ष से सक्रिय सेवा में नहीं रहा हो।[१५] अतः यह समझना कठिन है कि संयुक्त राज्य अमरीका का कोई राष्ट्रपति अपने निर्णयों का उत्तरदायित्व सार्वजनिक रूप से किसी वर्दीधारी व्यक्ति पर किस प्रकार डाल सकता है। राष्ट्रपति की अध्यक्षता वाले लोकतंत्र में राष्ट्रपति की कैबिनेट को संसदीय लोकतंत्र की भाँति कोई सांविधानिक मान्य स्थिति प्राप्त नहीं होती अतः किसी भी निर्णय का उत्तरदायित्व स्पष्टतः और पूर्णतया केवल राष्ट्रपति पर ही होता है। कोरिया से सेनाएँ वापस बुलाने का निर्णय उस सरकार ने लिया था जिसका अध्यक्ष राष्ट्रपति ट्रूमैन था। संयुक्त सेनाध्यक्षों द्वारा दी गई सम्मति से मतदाता मण्डल का कोई सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि इसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का सर्वोच्च उत्तरदायित्व सदैव राष्ट्रपति का रहा है और उसी का रहेगा। निर्णायक अधिकारी (राष्ट्रपति) सिद्धान्त रूप से अपना उत्तरदायित्व परामर्शदाता अधिकारी (संयुक्त सेनाध्यक्षों) पर नहीं डाल सकता।

यदि किसी संसदीय लोकतंत्र में कोई वर्दीधारी व्यक्ति कैबिनेट का सदस्य होता है तो स्थिति बदल जाती है क्योंकि उस समय वह सरकार के सदस्य के रूप में निर्णय लेता है। उदाहरणार्थ, अर्जेन्टाइना और पाकिस्तान में यही स्थिति है, क्योंकि वहाँ रक्षामंत्री और तीनों सेवाओं के मंत्री वर्दीधारी व्यक्ति होने के साथ-साथ कैबिनेट के सदस्य भी होते हैं। वर्दीधारी व्यक्तियों के हाथ में निर्णायक सत्ता आ जाने पर कैबिनेट के सदस्यों के रूप में वे अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से विमुख नहीं हो सकते। कैबिनेट स्तर पर अनिर्वाचित वर्दीधारी व्यक्तियों का प्रवेश हो जाने पर संसद और मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व पूर्णतः अस्पष्ट हो जाता है।

परन्तु पूर्णतः सैन्यीकृत शासन में यदि किसी पर उत्तरदायित्व होता है तो यह स्पष्ट और पूर्णरूप से शक्ति के संचालक सेनाधिकारियों पर होता है। उदाहरणार्थ, थाईलैण्ड में जहाँ वर्दीधारी व्यक्तियों को परामर्शदाता अधिकारियों के स्तर से निर्णायक अधिकारियों के स्तर तक पदोन्नत कर दिया जाता है वहाँ पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हीं के कंधों पर पड़ता है।

संयुक्त राज्य अमरीका में मतदाता मण्डल राष्ट्रपति को निर्वाचित करके उसे सर्वोच्च अधिकार सौंप देता है इसके फलस्वरूप सभी कार्यकारी कार्यों के लिए वही पूर्णरूप से उत्तरदायी होता है। अतः यह कहना कि उसने संयुक्त सेनाध्यक्षों की

१५ देखिये सैनिक एकीकरण नियम १९४७।

अथवा अपने रक्षा सचिव की सलाह पर कार्य किया वह अपने उत्तरदायित्व से विमुख नहीं हो सकता। युनाइटेड किंगडम में भी यही स्थिति है। कामन सभा की ७–८ मई १६४० की बहस में श्री चर्चिल ने इस सम्बन्ध में आधारभूत सिद्धान्त का इन शब्दों में वर्णन किया था—"इस बात से कि मन्त्री अपने विशेषज्ञ (सेनाध्यक्षों) की सलाह स्वीकार करते हैं उनकी स्थिति सुरक्षित नहीं हो जाती, परन्तु यदि वे उनकी (सेनाध्यक्षों की) सलाह न मानें तो उनकी स्थिति और भी असुरक्षित अवश्य हो जाती है।"

तत्वों को सैनिक तत्वों के अधीन नहीं लाना चाहिए। यह समस्या भी सगठनात्मक है और एक सयुक्त उद्देश्य की प्राप्ति हेतु राज्य की नागरिक और सैनिक शक्ति को एकत्र करने के लिए सदैव तैयार रहने वाले तत्र का प्रावधान करके इसका समाधान किया जा सकता है।

तृतीय :—अन्य दो समस्याओं की भाँति तीसरी महत्वपूर्ण समस्या सशस्त्र सेनाओं पर सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता के अन्तिम नियत्रण और प्रभावी निर्देशन की है, जिससे सैनिक तत्व सशस्त्र शक्ति का निर्माण और पोषण करने वाले राज्य का दमन न कर सकें, क्योंकि शान्तिकाल में भी सैनिक तत्व ने बहुधा यह घोषणा की है कि वही राज्य का सर्वेसर्वा है। इस भयाक्रान्त ससार मे जहाँ बड़े और छोटे लगभग सभी राज्यों को आवश्यक रूप से अपनी रक्षा सेनाओं का निर्माण करना और उनके लिए बहुधा अपने साधनों से अधिक धन व्यय करना पड़ता है, वहाँ नागरिक सरकार के सम्बन्ध में सैनिक शक्तियों की समस्या का महत्व बढ़ता जा रहा है। इस कारण असतुलित, स्थूल और अनियत्रित रक्षा सरचनाओं का जन्म हो सकता है, परन्तु जहाँ तक सभव हो इस स्थिति से बचना चाहिए। इस प्रकार प्रथम दो समस्याओं का समाधान खोजते समय इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि कहीं तीसरी समस्या का समाधान असम्भव न हो जाय।

(१) एक ही संयुक्त कार्य के लिए तीन सेवाएँ

जब केवल स्थल सेना ही युद्ध मे भाग लेती थी और युद्ध मे भाग न लेने वाली नागरिक जनता सघर्ष से असम्बद्ध रहती थी उस समय नागरिक शक्ति और सैनिक शक्ति के समन्वयन का प्रश्न इतना जटिल नहीं था, और स्थल सेना की एक ही सेवा होने के कारण सेवाओं के मध्य सहकार की समस्या का भी जन्म नहीं हुआ था। यद्यपि नौ शक्ति को सदैव महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है, फिर भी पन्द्रहवीं शताब्दी की खोज यात्राओं से आरभ होने वाले आधुनिक युग मे ही नौ सैनिक समर तत्र पर ध्यान दिया जाने लगा है। यदि प्रथम विश्वयुद्ध में स्थल और नौ सैनिक समर नीतियों का समन्वयन हुआ तो द्वितीय विश्वयुद्ध मे वायु समरनीति के निर्णायक प्रभाव के महत्व की स्थापना हुई। इस नए कारक के प्रवेश से पूर्ण युद्ध का जन्म हुआ और इसने युद्ध के नियमो के आधार—युद्धकारी और अयुद्धकारी तत्वों के परम्परागत अन्तर—को समाप्त कर दिया। यदि आधुनिक समरनीति विशारद के सम्मुख सयुक्त उद्देश्य के लिए तीनो सेवाओ को एकत्र करने की समस्या है, तो राजनीतिज्ञ के सम्मुख एक ऐसे पूर्ण युद्ध की समस्या है जिसमे राज्य के युद्धकारी तत्र को सुदृढ बनाने के लिए उसके नागरिक साधनों को भी पूर्णत. गतिशील बनाना पड़ता है।

पहली बात तो यह है कि अन्तर-सेवा सहकार प्राप्त करना अत्यन्त कठिन

है, क्योंकि अधीन म तीनों सेवाओं का निर्माण और पोषण पृथक्-पृथक् हुआ है, वे भिन्न-भिन्न जीवनवृत्तियाँ प्रस्तुत करती हैं और विशेषकर प्राचीन इतिहास की दृष्टि से उनकी अपनी नियमित परम्पराएँ हैं, जिन पर उनके सदस्यों को गर्व है, अतः एक दूसरे में पूर्ण विलय द्वारा अपनी अलग सत्ता समाप्त करने की तो बात छोड़िये, कोई भी सेवा किसी दूसरी सेवा के अधीन आने को तैयार नहीं है। युनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमरीका में जहाँ अन्तर-सेवा सहकार की समस्या का विस्तृत अध्ययन किया गया है, वहाँ भी यह स्वीकार किया जाता है कि अन्तर-सेवा स्पर्द्धा घटने के स्थान पर बढ़ी ही है और इसके लिए वे अपने रक्षातंत्र को ही दोषी ठहराते हैं। शान्तिकाल में वहाँ अपने अलग-अलग प्रशासनिक तंत्र वाले तीन मंत्रालय होते हैं। युनाइटेड किंगडम में उनके तीन अलग-अलग राजनीतिक अध्यक्षों के शीर्ष पर स्थित रक्षा मंत्रालय और संयुक्त राज्य अमरीका में रक्षा सचिव की अध्यक्षता वाला रक्षा विभाग उनमें शिथिल समन्वय स्थापित करता है। यह सत्य है कि आजकल ये महान लोकतन्त्र रक्षा मंत्रालय के तंत्र में फेरबदल करके एक सुदृढ़ केन्द्र के निर्माण का प्रयत्न कर रहे हैं। रक्षा के केन्द्रीय संगठन पर ब्रिटिश श्वेत पत्र (जुलाई १९५८) में ऐसा ही प्रयत्न किया गया है।* संयुक्त राज्य अमरीका में भी रक्षा विभाग (पुनर्गठन) अधिनियम १९५८ के द्वारा रक्षा सचिव की शक्तियाँ बढ़ाकर ऐसा ही प्रयत्न किया गया है। इन साधनों से केन्द्र-विमुख प्रवृत्ति पर रोक लगाने में सहायता मिलेगी और ये एक केन्द्रमुखी शक्ति को भी जन्म दे सकते हैं, परन्तु समग्र नागरिक संरचना एकात्मक न होने के कारण युद्धक्षेत्र में जहाँ सफलता प्राप्त करने के लिए तीनों सशस्त्र सेनाओं को मिलकर एक सेवा के रूप में कार्य करना पड़ता है, वहाँ ये प्रयत्न आवश्यकता से कम प्रतीत होंगे। यदि शान्तिकाल में तीनों सेवाओं को अलग अलग रखा जाता है तो आपातकाल में उनका एकीकरण करना असम्भव है; अतः समस्या के समाधान हेतु तीनों सेवाओं के शान्तिकालीन रखरखाव का कोई संगठनात्मक उपाय किया जाना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित विकल्प हैं:—

(i) समानवर्ती और एक ही श्रेणी वाली एक युद्धकारी इकाई के निर्माण की दृष्टि से तीनों सेवाओं का विलय।

(ii) अन्य दो सेवाओं पर एक सेवा की सर्वोच्चता स्थापित करना जैसा कि सोवियत संघ में किया गया है, जहाँ स्थल सेना को प्रमुख स्थान प्राप्त है। वहाँ उच्च राजनीतिक पदों पर कार्य करने वाले व्यक्ति भी स्थल सेना से आते हैं और वे सैनिक व्यक्तियों के साथ मिलकर राज्य की नीति को निर्देशित और नियंत्रित करते हैं।

(iii) वायु उपमार्शल किंग्स्टन मैक्क्लोरी (Kingston Mccueloughry)[1]

---

* पृष्ठ ४५० और आगे भी देखिए।

१ वायु उपमार्शल किंग्स्टन मैक्क्लोरी, 'रक्षा' (१९६०) पृ० ९६।

द्वारा प्रस्तावित भिन्न-भिन्न उपायों मे एक ऐसी राष्ट्रीय सशस्त्र सेना गठित करना जो या तो (अ) एक ही सेवा होगी या (आ) वायुयान युग मे एक ऐसी स्थल सेना होगी जिसमे नौसेना और वायुसेना सम्मिलित होगी, या (इ) निर्देशित आयुधों के युग मे एक ऐसी नौसेना होगी जिसमे स्थल सेना और वायु सेना शामिल होगी।

(iv) युनाइटेड किंगडम की भाँति नागरिक रक्षा मन्त्रालय की स्थापना द्वारा अथवा संयुक्त राज्य अमरीका की भाँति रक्षा सचिव की शक्तियों मे वृद्धि करके तीनो सेवाओ मे समन्वयन करना।

(v) अपने-अपने संगठनो वाले तीन अलग सेवा मुख्यालय बनाये रखने की स्वीकृति देकर नागरिक रक्षा मन्त्रालय के स्तर पर तीनो सेवाओ का व्यावसायिक एकीकरण।

(I) तीनों सेवाओं का एक सेवा में विलय

तीनों सेवाओ के विलय सम्बन्धी प्रस्ताव वास्तव मे एक कठोर उपाय है। उन देशो मे जहाँ शताब्दियो मे अलग-अलग सेवाएँ रही हैं, ऐसा करना असम्भव है क्योकि इतिहास को एक दिन मे नही बदला जा सकता। इसके अतिरिक्त जब तक परिवर्तन से प्रभावित कर्मचारियो को पूर्ण सहानुभूति और समर्थन प्राप्त न हो तब तक सशस्त्र सेनाओ मे कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन करना सम्भव नही है। यह भी सम्भव है कि कर्मचारी सहमत न हो क्योकि एक ही श्रेणी का निर्माण नीचे से लेकर ऊपर तक असतोष उत्पन्न कर देगा और तीनो सेवा श्रेणियो को मिलाकर एक सेवा श्रेणी बनाने के लिए तीनो सेवाओ के अधिकारियो की परस्पर वरिष्ठता के जटिल प्रश्न का निपटारा करना पडेगा। इसके अतिरिक्त कुछ उचित कारणो से युनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमरीका दोनो में ही स्थल, नौ और वायु सेनाओ को अलग-अलग सेवा के रूप मे रखने की नीति है। ऐसा करने के कुछ प्रमुख कारण ये हैं—"*ऐतिहासिक मूल्य, प्रिय परम्पराएँ, वृत्तियाँ और समूह भावना।*" इसके अतिरिक्त प्रत्येक सेवा मे विशिष्ट प्रशिक्षण की सर्वमान्य आवश्यकता होती है, इसलिये अपने-अपने मुख्यालयों सहित तीनो सेवाओ को अलग-अलग इकाइयो के रूप मे रखना स्वीकार किया जा सकता है। युद्ध की आवश्यकताओ की दृष्टि से विचार करने पर युनाइटेड किंगडम के सशस्त्र सेनाओ सम्बन्धी नागरिक तन्त्र की सघीय सरचना मे अभी पर्याप्त अपूर्णता दिखाई पडती है।

अपने-अपने राजनीतिक अध्यक्षो वाले सेवा मन्त्रालयो की स्थापना से रक्षा मंत्री के अधीन केन्द्रीय रक्षा संगठन की स्थिति सदैव कमजोर नही तो कठिन अवश्य हो जाती है। जिन देशो मे तीनो सेवाएँ भलीभाँति स्थापित हो चुकी हैं और जहाँ उनके पृथक्-पृथक् अस्तित्व ने समय बीतने के साथ अपनी परम्पराएँ बनाली हैं, वहाँ तीनों सेवाओ के विलय के प्रस्ताव को लागू करने पर विचार भी नही किया जा सकता। एक ऐसे नवजात राज्य मे जो पहली बार अपनी सशस्त्र सेनाओ का गठन

कर रहा है समान वर्दी और एक ही श्रेणी वाली एक सेना का प्रयोग किया जा सकता है। भारतीय स्थल सेना की दीर्घकालीन परम्परा और महान इतिहास के कारण भारत में भी अब ऐसा प्रयोग करना संभव नहीं रहा है। अतः अन्य दो सेवाओं के साथ विलय करके यह अपना अस्तित्व समाप्त करना नहीं चाहेगी।

(II) दो सेवाओं को एक सेवा की सर्वोच्चता के अधीन रखकर एकीकरण प्राप्त करना

ऐतिहासिक परिस्थितियां अनुकूल होने पर ही अन्य दो सेवाओं को एक सेवा के अधीन रखा जाना सम्भव है। सोवियत संघ में स्थल सेना ने न केवल अन्य दो सेवाओं वरन् नागरिक तन्त्र पर भी अपनी सर्वोच्चता स्थापित करली है। वहाँ नौ-सेना और वायुसेना का विकास स्थल सेना के अधीनस्थ अंगों की भाँति हुआ है, इसके साथ ही राज्य के राजनीतिक प्रशासन के लिए आवश्यक जनशक्ति भी स्थल सेना ही प्रदान करती है। संयुक्त राज्य अमरीका में वायुसेना का जन्म स्थल सेनाओं की वायु भुजा के रूप में हुआ था, पर वहाँ इसे स्थल सेना के समान स्तर प्रदान कर दिया गया है पर रूसियों ने नौसेना और वायुसेना को स्थल सेना के समान स्तर देने की भूल नहीं की है। भारत में अन्य दो सेवाओं पर स्थल सेना की सर्वोच्चता स्थापित करना सम्भव था; क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से कोरी आवश्यकता के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी (East India Company) ने ऐसी सर्वोच्चता को प्रश्रय दिया और १८५७ के पश्चात् शासन ने इसे बनाये रखा। हिन्द महासागर की रक्षा का भार ब्रिटिश नौसेना पर था और द्वितीय विश्वयुद्ध तक नौसेना की जो छोटी टुकड़ी भारत में रहती थी, उस पर भारतीय स्थल सेना के एक जनरल प्रधान सेनापति का नियंत्रण होता था। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध-काल में और वायुसेना के जन्म और उसके अलग सेवा के रूप में अन्य दो सेवाओं के समान स्तर तक विकसित होने के तुरन्त बाद भारत में भी ब्रिटिश आदर्श अपनाया गया और आज यह दृढ़ता-पूर्वक स्थापित हो चुका है। ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया ही एक सेवा को दूसरी सेवा के अधीन ला सकती है। आदेश जारी करके ऐसा नहीं किया जा सकता अतः अधिकतर मामलों में असंभाव्य मानकर हम इस समाधान की उपेक्षा कर सकते हैं।

(III) किंगस्टन मैकक्लोरी के प्रस्ताव के अनुसार एक राष्ट्रीय सशस्त्र सेना का निर्माण

वायुयान युग अथवा निर्देशित आयुध युग में वायु उप-मार्शल किंगस्टन मैकक्लोरी द्वारा प्रस्तावित एक राष्ट्रीय सशस्त्र सेना का निर्माण एक ऐसा आदर्श है जिसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न तो किया जा सकता है, परन्तु प्रत्येक सेवा के कर्मचारियों की संकीर्ण निष्ठा के कारण सभी सेवाओं को एक प्रकार से एक ही श्रेणी में समाहित करना सम्भव न हो पायेगा। युनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य

अमरीका में यही स्थिति दिखाई पड़ती है और वहाँ इस उचित समाधान पर विचार भी नहीं किया जा सकता।

(IV) युनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमरीका की भाँति तीनों सेवाओं का समन्वयन

निस्सन्देह युनाइटेड किंगडम की भाँति एक रक्षा मंत्रालय बना कर भी तीनों सेवाओं में समन्वयन किया जा सकता है। १६५८ के श्वेत पत्र* में इस पक्ष का *विस्तारपूर्वक वर्णन करके* इस पर काफी बल दिया है। इसी प्रकार अमरीकी रक्षा विभाग (पुनर्गठन) अधिनियम १६५८ ने उत्तरदायित्वों को पारिभाषित करने, कमान की स्पष्ट शृंखला स्थापित करने और रक्षा सचिव की शक्ति बढ़ाकर सर्वोच्च स्तर पर सेवाओं के तीनों विभिन्न संगठनों को एकीकृत करने का प्रयत्न किया है। १६५८ में श्री आइजनहावर द्वारा आरम्भ किये गये विधायिका संशोधनों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत था, परन्तु उनका वास्तविक उद्देश्य तीनों सेवाओं के बढ़ते हुए पृथक्-करण को रोकना था।

पहले कार्यवाही और व्यावसायिक कमानों की रचना करके उनमें से प्रत्येक को संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार के समग्र सैनिक उद्देश्यों के पूर्णतः अनुरूप एक मिशन सौंपा गया है। शान्तिकाल में स्थापित एकीकृत कमान रक्षा सचिव के निर्देशन में कार्य करेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शान्तिकाल में ऐसे एकीकृत कमान तीनों सेवाओं में अधिकतम एकीकरण उत्पन्न कर सकेंगे।

दूसरे, रक्षा सचिव के निर्देशन को सरल बनाने के उद्देश्य से कमान धाराओं की रचना की गई है। सचिव के निर्देशन को वास्तव में प्रभावी बनाने के लिए सभी संभव बाधाएँ दूर कर दी गई हैं। स्थल, नौ और वायु सेनाओं के सैनिक विभाग अब एकीकृत कमान के कार्यकारी अभिकर्त्ता नहीं रहे हैं। कमान की नई शृंखला में संयुक्त सेनाध्यक्षों को भी कोई स्थान नहीं दिया गया है।

तीसरे, रक्षा सचिव की शक्ति के साथ-साथ उसके कार्यालय के सैनिक स्टाफ की शक्ति में भी पर्याप्त वृद्धि कर दी गई है और अब वह कम से कम अपने स्तर पर सेवाओं का एकीकरण कर सकता है। तीन पृथक् तत्त्वों के रूप में युद्ध करने के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा एक संयुक्त कार्य सम्पन्न करने की कार्यकुशलता में वृद्धि करने एवं सेवाओं में लगाव और एकीकरण की भावना पैदा करने के लिए रक्षा सचिव के व्यक्तित्व में सत्ता का यह केन्द्रीयकरण अनिवार्य था। फिर भी इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि एकीकृत कमानों की रचना द्वारा यह एकी-करण सेवा स्तर तक ही हुआ है। *पृथक् सेवा मुख्यालयों के अस्तित्व तथा प्रत्येक* सेवा में उठने वाली प्रशासनिक समस्याओं का तीन विभिन्न नागरिक सचिवों और

* पृष्ठ ४५० और आगे भी देखिए

उनके पृथक् विभागों द्वारा समाधान किये जाने पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इन उपायों द्वारा नागरिक विभाग अथवा मंत्रालय स्तर पर व्यावसायिक एकीकरण प्राप्त कर लिया गया है। संयुक्त राज्य अमरीका और युनाइटेड किंगडम दोनों में ही प्रत्येक सेवा के मामले पर अभी तक इसके अपने सेवा विभाग अथवा मंत्रालय द्वारा ही विचार किया जाता है। फिर भी कम से कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि १६५८ में अपनाए गये ये उपाय अत्यावश्यक और समयोचित थे। फिर भी दोनों देशों के इस संशोधित तंत्र को इस विषय में अन्तिम व्यवस्था मान लेना एक भूल होगी; क्योंकि आयुधों के बदलते हुए स्वरूप के कारण रक्षा की संगठनात्मक व्यवस्था पर निरन्तर ध्यान रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नागरिक तंत्र के माध्यम से अन्तर-सेवा स्तर पर जितना समन्वयन किया जा सका है, उसमें अभी और भी विस्तार किया जा सकता है।

(V) रक्षा मंत्रालय द्वारा सेवाओं का व्यावसायिक एकीकरण

नागरिक रक्षा मंत्रालय के स्तर पर तीनों सेवाओं के व्यावसायिक एकीकरण को वास्तव में आवश्यक और संभाव्य माना जा सकता है।

अपने अनेक नियोजन कक्षों के माध्यम से संयुक्त सेनाध्यक्षों की संस्था सेवा स्तर पर नियोजन के लिए पर्याप्त निकट और सुगठित समन्वयन स्थापित कर लेती है; नवजात व्यावसायिक कमान कार्यवाही स्तर पर एकीकरण स्थापित करती हैं। परन्तु जब कभी भी कोई प्रस्ताव स्वीकृति के लिए नागरिक मंत्रालय के पास जाता है तो उपरोक्त व्यावसायिक आधार के बदले सेवा आधार पर संगठित होता है। सेवा आधार का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक सेवा से व्यवहार करने के लिए एक अलग संगठन होता है। युनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमरीका में प्रत्येक सेवा का अपना-अपना मंत्रालय होता है। उनमें अधिकारियों का एक सोपान होता है और प्रत्येक सेवा की समस्याओं पर विचार करने वाला एक स्थायी सचिव उनके शीर्ष पर होता है। दूसरे शब्दों में सेनाध्यक्षों अथवा कार्यवाही कमानों द्वारा प्राप्त समन्वय सशस्त्र सेनाओं से व्यवहार करने वाले नागरिक संगठन के कारण कुछ सीमा तक भंग हो जाता है। फिर भी युनाइटेड किंगडम की भांति तीनों सेवा मंत्रालयों के शीर्ष पर एक रक्षा मंत्रालय गठित करके थोड़ा बहुत समन्वय स्थापित किया जाता है, परन्तु अभी तक नागरिक स्तर पर तीनों सेवाओं की व्यावसायिक समस्याओं पर अधिकारियों के एक ही दल द्वारा विचार नहीं किया जाता। उदाहरणार्थ, तीनों सेवाओं की समस्याओं पर व्यावसायिक आधार पर विचार करने के लिए अधीनस्थ स्टाफ सहित नागरिक अधिकारियों के एक दल की नियुक्ति करने की आवश्यकता है, अर्थात् स्थल, नौ और वायु सेना की व्यूह रचना सम्बन्धी सभी समस्याओं पर, जिन्हें बहुधा 'क्यू मामले' ('Q Matters') कहा जाता है, नागरिक

रक्षा मंत्रालय के अधिकारियों के एक ही दल को विचार करना चाहिए। इसी प्रकार नौ, स्थल और वायु सेना की नीति और कार्यवाहियों सम्बन्धी 'जी समस्याओं' ('G Problems') पर नागरिक अधिकारियों के एक दल का व्यवहार करना चाहिए। तीनों सेवाओं की भरती, पदोन्नति, अनुशासन, पेंशन और कल्याण सम्बन्धी कर्मचारी समस्याओं पर जिन्हें मोटे तौर पर 'ए० जी० मामले' ('A.G Matters') कहा जाता है, रक्षा मंत्रालय के अधिकारियों के एक दल को व्यवहार करना चाहिए। संक्षेप में नागरिक स्तर पर रक्षा संगठन की वर्तमान संरचना सेवा आधार पर है; इसके विपरीत यह संस्तुति की जाती है कि रक्षा मामलों में सम्बन्धित नागरिक तंत्र सेवाओं के साथ व्यावसायिक आधार पर व्यवहार करें। इसके द्वारा रक्षा मंत्रालय अथवा रक्षा विभाग के स्तर पर तीनों सेवाओं की समस्याओं के प्रशासन का व्यावसायिक आधार पर पूर्ण एकीकरण हो जायेगा। इस प्रकार नागरिक तंत्र का, सेवा आधार के स्थान पर व्यावसायिक आधार पर गठन करके स्थल, नौ और वायु सेना के तीन नागरिक मंत्रालयों या विभागों को समाप्त करना पड़ेगा।*

परन्तु ऊपर वर्णित व्यावसायिक प्रारूप के सफल संचालन के लिए तीनों सेवाओं से व्यवहार करने के लिए तीन विभिन्न मंत्रालयों के तीन पृथक् संगठन नहीं वरन् केवल रक्षा मंत्रालय का ही एक नागरिक मंत्रालय या विभाग होना चाहिए, जिसका एक राजनीतिक अध्यक्ष हो और आवश्यकतानुसार तीन संसदीय सचिव उसकी सहायता करें। यह भी सुझाव दिया गया है कि नागरिक रक्षा मंत्रालय की तीन, चार या पाँच अलग-अलग शाखाएँ हों जिनमें से एक नीति (तीनों सेवाओं के 'जी' मामलों) की देखभाल करे, तथा अन्य शाखाएँ व्यूह रचना (व्यू), कर्मचारी (ए० जी०) नागरिक रक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान आदि विषयों की देखभाल करें। संक्षेप में, सेवाओं की प्रशासनिक समस्याओं तथा अन्य सहायक रक्षा मामलों का परीक्षण रक्षा मंत्रालय के स्तर पर व्यावसायिक आधार पर होना चाहिए। प्रत्येक सेवा के लिए अलग-अलग विभागों के स्थान पर तीनों सेवाओं से सम्बन्धित प्रत्येक विषय के लिए अलग-अलग विभाग होने चाहिए। ऐसा हो जाने पर वायु उप-मार्शल किंगस्टन मैक्क्लोरी[१] की इस संस्तुति कि रक्षा मंत्रालय की छत्रछाया में गठित संयुक्त समितियों की बैठकों की अध्यक्षता करने के लिए दो या तीन अधिकारी होने चाहिए, पर व्यवहार करना आवश्यक नहीं रह जाता, क्योंकि यह आवश्यकता रक्षा मंत्रालय में सेवा समस्याओं के व्यावसायिक परीक्षण द्वारा पूरी हो जायगी और मंत्रालय में सम्बन्धित व्यावसायिक विभागों के शाखा

---

* पृष्ठ ४५० और आगे भी देखिए।

१ पूर्व उद्धृत 'रक्षा' पृ० १२६।

प्रधान स्वयं ही इन संयुक्त समितियों की अध्यक्षता करने लगेंगे। इसके अतिरिक्त अन्तर-सेवा कार्यवाही के लिए एक पृथक् संगठन भी आवश्यक नहीं रह जायगा; क्योंकि रक्षा मंत्रालय की एकात्मक संरचना में ही एक ऐसे कोष की रचना की जा सकती है। तीन सेवा मंत्रालयों के प्रतिस्पर्द्धी तंत्रों के अभाव में इस कोष का बिना किसी अवरोध और अव्यवस्था के उचित विकास किया जा सकेगा। इस प्रकार तीन पृथक् संगठनों के एक ऐसे शिथिल समूह के स्थान पर जिसके केन्द्र का अधिकार क्षेत्र पारिभाषित और सीमित करने पर युद्धकाल में सारे तंत्र को पंगु करने वाली विभेदकारी प्रवृत्तियों को प्रश्रय मिले, एकात्मक संविधान पर आधारित रक्षा मंत्रालय एक सुगठित संगठन होना चाहिए। पुन. संघीय संरचना के शीघ्रता से विकासमान केन्द्र का सेवा मंत्रालयों के तीन पृथक् संगठनों के साथ संघर्ष अनिवार्य हो जायगा। इसके अतिरिक्त सेवा मंत्रालयों के संगठन ने समय की मान्यता और अब राज्य की संरचना में इतना सुदृढ़ स्थान प्राप्त कर लिया है कि वायु उप-मार्शल किंगस्टन मैक्क्लोरी ने जिस शक्तिशाली केन्द्र की संस्तुति की है और जो शान्ति और युद्धकाल में समस्त सेनाओं का निर्देशन करने वाली नियंत्रक शक्ति को सुदृढ़ करने तथा अन्तर-सेवा सहकार प्राप्त करने के लिए अत्यावश्यक माना जाता है, उसका विकास अब कठिनाई से ही हो पायेगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि युनाइटेड किंगडम में तीन पृथक् सेवा मंत्रालयों तथा संयुक्त राज्य अमरीका में अपने अलग-अलग सचिवों वाले तीन विभागों का विकास शान्तिकाल में स्वस्थ विकास और युद्ध में सफल कार्यवाही के लिए आवश्यक नियंत्रण और शक्ति उत्पन्न करने के कार्य को पूर्णतः सुप्रवाही नहीं बना सका है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रक्षा मंत्रालय का तीन अलग सेवा मुख्यालयों सहित व्यावसायिक आधार पर गठन करने से सभी मोर्चों पर अन्तर-सेवा सहयोग की धारा को प्रोत्साहन प्राप्त होगा और शायद आधुनिक रक्षा की संगठनात्मक संरचना सम्बन्धी समस्याओं का भी समाधान हो जायगा।

रक्षा मंत्रालय का व्यावसायिक संगठन अन्तर-सेवा स्तर पर प्रभावी समन्वय उत्पन्न करने के अतिरिक्त उक्त नागरिक तंत्र के शेष भाग के साथ पूर्णतम सहकार स्थापित करने में भी पर्याप्त सहायक होगा। आधुनिक युद्ध के संचालन हेतु राष्ट्रीय प्रयत्नों को पूर्ण रूप से संगठित करने के लिए नागरिक तंत्र की निरन्तर सहायता की सदैव आवश्यकता होती है।

(२) प्रयत्न की सम्पूर्णता में राज्य के नागरिक और सैनिक साधनों का योगदान

किसी भी राज्य के प्रयत्नों की परीक्षा जितनी युद्धकाल में होती है उतनी किसी अन्य समय में नहीं होती। अव्यवस्था फैलाने, प्रतिपक्ष को पंगु बनाने और

उसकी शीघ्र पराजय सुनिश्चित कराने के लिए नागरिक जनता को जानबूझ कर आतंकित करने सहित सभी मोर्चों पर लड़ा जाने वाला आधुनिक युद्ध इस दृष्टि से और भी कष्टकर होता है। युद्ध करने का अर्थ है अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना, अतः युद्ध जीतने के एकमात्र उद्देश्य की सिद्धि में लिए राज्य के सभी अंगों और अवयवों को पूर्णतः केन्द्रित करना पड़ता है। इसके लिए नागरिक और सैनिक सभी अंगों का पूर्णतम सहकार आवश्यक होता है। राज्य अनेक पहियों वाला रथ होता है। भारतीय मैक्यावेली कौटिल्य ने यह कह कर कि 'राज्य का रथ कभी भी एक पहिये पर नहीं टिक सकता', *(सहाय साध्य राजत्व चक्रमेक न वर्तते)* इस बात का वर्णन किया है।

परिणामस्वरूप सब अंगों में प्रभावी सहयोग उत्पन्न करने में समर्थ तानाशाही राज्य अल्पकालीन सूचना पर ही युद्ध करने की स्थिति में रहते हैं परन्तु सब कुछ एक ही पहिये पर केन्द्रीभूत, केन्द्रित और स्थापित करने और एक ही व्यक्ति को सत्ता सौंप देने के कारण शान्तिकालीन स्थिति की समग्र श्रेष्ठता के दृष्टिकोण में वे असन्तुलित हो जाते हैं। अतः व्यक्तिगत शक्ति बनाये रखने के प्रयत्न के फलस्वरूप तानाशाही राज्य का आन्तरिक दृश्य सदैव बदलता रहता है। निस्सन्देह अपने शासन काल में तानाशाही राज्य नियमन द्वारा राज्य के सभी तत्वों में उद्देश्य की सर्वाधिक एकता उत्पन्न कर सकते हैं। वास्तव में यह सत्य है कि "जब तक राजनीतिक और सैनिक क्षेत्रों की पृथक् सीमाएँ बनी रहती हैं (और यही लोकतंत्र का एक आवश्यक लक्षण भी है) तब तक पूर्ण रूप से ब्रितानी सरकार जैसे किसी तंत्र की स्थापना असंभव है"।[3] फिर भी किसी लोकतंत्र द्वारा एक आधुनिक युद्ध लड़ने और जीतने के लिए सरकार के विभिन्न विभागों और उनकी नीतियों में घनिष्ठतम अन्तर-सम्बन्ध सुनिश्चित करना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय उपक्रमों सम्बन्धी विदेश और गृह नीतियों में तथा सैनिक शक्ति के आकार-प्रकार और समरनीति में उचित एकीकरण होना चाहिए। सशस्त्र सेना का आकार-प्रकार वित्तीय साधनों पर निर्भर होता है और इसे सुदृढ़ करने के लिए धनराशि निर्धारित करते समय तुरन्त नागरिक आवश्यकताएँ ध्यान में रखनी चाहिए। राज्यतंत्र के नागरिक या सैनिक अंग के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव या पक्षपात किये बिना अनेक कारणों पर विचार करने और प्राथमिकताएँ निर्धारित करने का प्रश्न उठता है।

नागरिक और सैनिक अंगों में सहयोग प्राप्त करने के आधुनिक साधनों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है। संसार के विभिन्न देशों के रक्षातंत्र का वर्णन करते समय इस पक्ष का पहले भी वर्णन किया जा चुका है, परन्तु तुरन्त संदर्भ और विचाराधीन विशेष बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षित करने के लिए उनका पुनः संक्षेप में

---

३ पूर्व उद्धृत 'रक्षा' पृ० १०७।

नीचे वर्णन किया जा रहा है।

(१) किसी लोकतन्त्र में सर्वोच्च समन्वयकारक अंग कैबिनेट और विशेष कर कैबिनेट की रक्षा समिति होती है जिसमें प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री के अतिरिक्त रक्षा से अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित राज्य के अन्य नागरिक विभागों यथा वित्त, परिवहन मकान तथा गृह आदि के मंत्री भी होते हैं। कैबिनेट की रक्षा समिति को दस व्यावसायिक स्तर पर अपनी सम्मति देने के लिए सैनिक तत्त्व सदा उपलब्ध रहता है। विभिन्न नामों से अभिहित यह संस्था (कैबिनेट की रक्षा समिति) संसार के सभी महत्त्वपूर्ण लोकतंत्रीय देशों में पायी जाती है और युनाइटेड किंगडम, भारत, ग्रास्ट्रेलिया तथा कनाडा जैसे देशों के समन्वयकारक अंग का यह केन्द्रस्थल होती है।

(२) संयुक्त राज्य अमरीका विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली लोकतंत्र है और इसका रक्षातंत्र भी अत्यधिक विस्तृत है। वहाँ राष्ट्रपति की अध्यक्षता वाली राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् में अनेक नागरिक अधिकारियों के साथ-साथ रक्षा सचिव, गृह सचिव और राष्ट्रीय सुरक्षा साधन परिषद् का अध्यक्ष भी शामिल होते हैं। फ्रांस में राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् के समकक्ष संस्था को राष्ट्रीय रक्षा समिति (**Comite' de la Defense Nationale**) कहते हैं।

पुनः राष्ट्रीय सुरक्षा साधन परिषद् संयुक्त राज्य अमरीका के तंत्र का एक अन्य महत्त्वपूर्ण अंग है, जो युद्धकाल में सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राष्ट्र के औद्योगिक और प्राकृतिक साधनों के प्रभावी प्रयोग का प्रावधान करती है। युद्ध काल में अर्थव्यवस्था के संचालन और स्थिरीकरण के लिए भी यह संस्था उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान संघीय होने के कारण जब युद्धकाल में केन्द्र और राज्यों के प्रयत्नों में समन्वय स्थापित करने की गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाती है, तब इसी अंग के माध्यम से संघीय एजेन्सियों के सभी युद्ध-प्रयत्न-समर्थक कार्यों का राज्य की ऐसी ही एजेन्सियों से समन्वय स्थापित किया जाता है।

अन्तर-सेवा और नागरिक-सैनिक सहकार प्राप्त करने के लिए १९५८ के श्वेत पत्र के अनुसार युनाइटेड किंगडम में एक रक्षा परिषद् स्थापित की गई है।

(३) युद्धकाल में नागरिक और सैनिक विभागों के अधिकारियों की संयुक्त समितियाँ युद्ध के लिए सभी तत्त्वों में आवश्यक सहकार उत्पन्न करने में बड़ी सहायक होती हैं। उदाहरणार्थ, युद्धकाल में युनाइटेड किंगडम के साधनों का सचालन रक्षा समिति के सामान्य निर्देशन के अधीन कार्यरत उपसमितियों द्वारा किया जाता है। इन उपसमितियों में नागरिक और सैनिक अधिकारी तथा गैर-सरकारी व्यक्ति होते हैं।

सुधार का क्षेत्र

युद्धकालीन समर नीति के सुस्थापित सिद्धान्त के अनुसार शान्तिकाल में सम्पूर्ण रक्षातंत्र को युद्ध के लिये तैयार रहना पड़ता है और सशस्त्र सेनाएं युद्ध के लिए निरन्तर प्रशिक्षण प्राप्त करती रहती हैं। यह बात पहले ही बलपूर्वक कही जा चुकी है कि शान्तिकाल में एक ऐसे संगठन का निर्माण किया जाना चाहिए जो आपात्काल में उचित प्रयत्नों में सहायक सिद्ध हो सके। अतः शान्तिकाल में राज्य के उन अंगों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए जो युद्धकाल में युद्धकारी तंत्र के लिए आवश्यक होते हैं।

(१) वायु सेना और नागरिक उड्डयन आधुनिक युद्ध में वायुसेना की श्रेष्ठता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु नागरिक उड्डयन विभाग और वायु सेना में घनिष्ठ सहकार होना चाहिए। कुछ व्यक्ति यह कह सकते हैं कि नागरिक उड्डयन को रक्षा मंत्रालय के तंत्र के अधीन विकसित करने से लोकतंत्र का अपमान होगा परन्तु युद्धकाल में उचित फल प्राप्त करने के लिए शान्तिकाल में ऐसा करना सर्वोत्तम होता है। वायुसेना और राज्य के नागरिक उड्डयन विभाग को संयुक्त करने वाली एक परिषद् गठित करना एक दूसरा विकल्प हो सकता है। शायद ऐसा करना लोकतंत्र की परम्पराओं के अधिक अनुकूल होगा। फिर भी इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि जब तक रक्षा मंत्रालय का राजनीतिक अध्यक्ष मतदाता मण्डल के प्रति उत्तरदायी रहता है और सशस्त्र सेनाओं पर नागरिक नियंत्रण के सिद्धान्त को प्रभावी ढंग से लागू करने में एक दक्ष तंत्र उसकी सहायता करता है तब तक रक्षा मंत्रालय के अधीन नागरिक उड्डयन विभाग का गठन और विकास न तो गैर-कानूनी है और न ही असंवैधानिक।

(२) व्यापारिक जहाजी बेड़ा और नौ सेना : पुनः उपर्युक्त (१) की भांति व्यापारिक जहाजी बेड़े का प्रशासन भी रक्षा मंत्रालय को सौंपना सर्वोत्तम हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि यह नौ सेना मुख्यालय का ही एक भाग हो। व्यापारिक जहाजी बेड़े से सम्बन्धित एक अलग संगठन रक्षा मंत्रालय के नागरिक पक्ष का न्यायसंगत भाग हो सकता है। इस सम्बन्ध में वे ही आपत्तियाँ उठ सकती है, जिनका नागरिक उड्डयन के सम्बन्ध में जिक्र किया जा चुका है। विश्वव्यापी संघर्ष के 'निर्देशित आयुध युग' में आधुनिक नौ सेना की भूमिका इसकी परम्परागत भूमिका से बिलकुल भिन्न हो सकती है, परन्तु पड़ोसी देश से अपनी रक्षा करने के सीमित क्षेत्र वाले युद्ध के समय नौ सेना समुद्री मार्गों की सुरक्षा का प्रबंध करती है, जिससे व्यापारिक जहाजी बेड़ा युद्ध के लिए आवश्यक साज-सामान ला सके। अतः यह सिद्ध किया जा सकता है कि रक्षा नौ सेना की भांति व्यापारिक जहाजी बेड़े को भी राज्य के एक विभाग का अंग बना देने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

(३) नागरिक रक्षा और सशस्त्र सेनाएँ : घरेलू मोर्चे की रक्षा का भार सशस्त्र सेनाओं पर होता है। राज्य की सरचना मे नागरिक तत्त्वो की प्रधानता के कारण निरन्तर बाह्य आक्रमण का खतरा होने पर कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा राज्य के कुशल सचालन के लिए इन तत्त्वो का राष्ट्र की सशस्त्र सेनाओं के साथ पूर्णतम सहकार अत्यावश्यक है। इस प्रकार नागरिक रक्षा गृह रक्षा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। अत. नागरिक रक्षा, रक्षा सरचना का एक भाग होनी चाहिए, परन्तु अनेक देशों मे नागरिक रक्षा का उत्तरदायित्व गृह मत्रालय पर होना है। सशस्त्र सेनाओ को पूर्णत. नागरिक सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है और उत्तरोक्त पर नागरिक विभागों का नियत्रण होने के कारण युनाइटेड किंगडम और भारत मे नागरिक रक्षा का सगठनात्मक तन्त्र रक्षा विभाग से भिन्न एक अन्य नागरिक विभाग के अधीन होता है।

इंगलैण्ड मे नागरिक रक्षा पर गृहमत्रालय का नियंत्रण होना है और यही अन्य सम्बन्धित सरकारी विभागो से इसका समन्वय स्थापित करता है। जिस प्रकार रक्षा मत्रालय और रक्षा समिति रक्षा नीति पर विचार-विमर्श करते हैं उसी प्रकार गृह मत्रालय और रक्षा समिति नागरिक रक्षा नीति पर विचार-विमर्श करते हैं। सैनिक और नागरिक रक्षा नीतियों मे घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण उनके शान्तिकालीन समन्वय के लिए एक सगठनात्मक तंत्र का निर्माण किया जाना चाहिए। रक्षा सचिव के संगठन के अन्तर्गत नागरिक रक्षा तंत्र स्थापित करके ऐसा किया जा सकता है। स्पष्ट ही ऐसा करने से रक्षा मंत्रालय का अधिकार-क्षेत्र विस्तृत हो जायेगा परन्तु जब तक रक्षा मंत्रालय राजनीतिक अध्यक्ष और नागरिक अधिकारियो वाला मूलतः एक नागरिक मंत्रालय है, तब तक नागरिक रक्षा को रक्षा मंत्रालय के क्षेत्र मे रखने पर कोई मौलिक आपत्ति नही होनी चाहिए। यदि कुछ सेवा अधिकारी भी रक्षा मंत्रालय मे रहें तो भी जब तक रक्षा-मंत्री वर्दीधारी नहीं हो, इस पर भी कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।

(४) स्थल सेना और नागरिक पुलिस : विभिन्न परिस्थितियों मे कार्य करने के कारण नागरिक पुलिस और स्थल सेना मे कभी भी सीधा सम्पर्क नहीं हो सकता; परन्तु फिर भी युद्धकाल में रक्षा सेनाओ ने जिन आयुधों को अत्यन्त उपयोगी पाया है, नागरिक पुलिस को उनके प्रयोग का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करके गृह रक्षा को सुदृढ़ करना सम्भव हो सकता है। अतः नागरिक पुलिस और स्थल सेना के मध्य कुछ न कुछ सम्पर्क बनाए रखना बड़ा लाभप्रद होगा।

फिर भी रक्षा मंत्रालय के इस विस्तृत क्षेत्र का समर्थन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संसदीय उत्तरदायित्व और राज्य की लोकतंत्रीय परम्पराएँ बनाए रखने के संदर्भ में वह संगठन स्थूल और अपेक्षिक बड़ा न हो जाय। किसी भी अंग मे सीमा से अधिक वृद्धि होने के कारण सविधान का उचित सतुलन

भंग हो जाता है अत सशस्त्र सेनाओ और नागरिक पुलिस के मध्य महत्व बढ़ाकर दोनो को उन विभिन्न क्षेत्रो मे निकट लाते समय जिनमे उन्हे शान्तिकाल मे अब तक पृथक् रखा गया है, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सशस्त्र सेनाओ पर नागरिक नियत्रण का सिद्धान्त पूर्णत अक्षुण्ण बना रहे। सयुक्त राज्य अमरीका मे न केवल रक्षा सचिव की शक्तियाँ बढाकर वरन् उसे राष्ट्रपति के सीधे नियत्रण मे सशस्त्र सेनाओ का मार्गदर्शन और निर्देशन करने वाला सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त करके ऐसा किया गया है। अत इस पक्ष पर विशेष बल दिया जाना चाहिए; क्योकि सतर्कतापूर्वक कार्य करने पर ऊपर दिये गए सुझाव किसी नए या पुराने राज्य मे लोकतंत्र के सचालन को अव्यवस्थित नही कर सकेंगे। सैनिक तत्व का इतना अधिक विस्तार नही करना चाहिए कि राज्य का सतुलन भग होकर सैनिक क्रान्ति का भय पैदा हो जाय।

(३) सैनिक क्रान्तियाँ और नागरिक सरकार

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् एक दर्जन से अधिक सैनिक क्रान्तियाँ हो चुकी हैं और इन्होंने किसी न किसी प्रकार की ह्रासोन्मुख नागरिक व्यवस्था को उखाड कर सैनिक शासन स्थापित कर दिया है। एक ऐसे सुसगठित राज्य को जिसकी शक्ति-सम्पन्न ससद ने प्रशासन मे स्थायित्व स्थापित कर दिया है, सैनिक क्रान्ति का भय नही होता। सैनिक क्रान्ति को जन्म देने और इसे सफल बनाने के लिए एक मात्र आवश्यक शर्त है राजनीतिक शक्ति की शून्यता। ऐसी शून्यता से प्रकृति घृणा करती है अत राज्य के भीतर और बाहर के सभी सशक्त और महत्वाकांक्षी तत्व स्वयमेव इस शून्यता को भरने के लिए सक्रिय हो उठते है। इस बात पर आश्चर्य नही होना चाहिए कि राज्य के भीतर या बाहर के शक्तिशाली सैनिक तत्व की सदा विजय होती है। शून्यता को जन्म देने वाली अनेक परिस्थितियो के कारण ही सैनिक क्रान्ति सफल होती है।

वर्तमान युग मे जिन देशो मे सैनिक क्रान्तियाँ हुई हैं उनकी आतरिक स्थिति और सवैधानिक सरचना के विस्तृत अध्ययन से पता चलता है कि सैनिक क्रान्तियो को अवश्यम्भावी बनाने, इनका निर्देशन करने और इनकी सफलता के लिए निम्नलिखित परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं —

(१) किसी ऐसी वस्तु के लिए लोकप्रिय माँग जिसकी तीव्र या/तुरन्त आवश्यकता जनता मे तनावपूर्ण स्थिति पैदा करके उत्तेजना फैला दे।

(२) एक ऐसी स्थिर कार्यकारिणी की उपस्थिति जो जनता पर अपना प्रभाव खो चुकी है और जिसे किसी का समर्थन प्राप्त नही है, परन्तु फिर भी जो लोकेच्छा के सम्मुख न झुकती है न सत्ता का त्याग करती है।

(३) देश की सावैधानिक सरचना मे राज्य के अन्य अगो की तुलना मे सशस्त्र सेनाओ को लाभ की स्थिति प्राप्त होना।

(४) सेवा शर्तों अथवा नीति पर असंतोष के कारण कार्यकारिणी और सशस्त्र सेनाओं में संघर्ष की स्थिति होना (यह स्थिति अपने आप क्रान्ति को जन्म तो नहीं दे सकती, पर उसके लिए सहायक अवश्य हो सकती है।)

(५) एक स्थायी संविधान का अभाव और विशेषकर उस मान्यता का अभाव जो समय के साथ-साथ उसे प्राप्त होती है और लिखित अथवा अलिखित किसी भी संविधान को राज्य के सभी अंगों, कानूनों और संस्थाओं पर परम्परागत सर्वोच्च स्थान प्रदान करती है।

(६) किसी भी सैनिक क्रान्ति के लिए देश का सुगठित[४] और छोटा होना एक सामान्य शर्त (पर अनिवार्य नहीं) है। उपमहाद्वीप के समान विस्तृत भूभाग वाले किसी देश में सैनिक क्रान्ति की कल्पना करना एवं इसका निर्देशन और संचालन करना लगभग असंभव ही है। इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि सैनिक क्रान्तियाँ बड़े देशों की अपेक्षा अधिकतर छोटे देशों में हुई हैं।

इस प्रकार सैनिक क्रान्ति के फलस्वरूप संविधान स्थगित हो जाने पर सशस्त्र सेनाओं को प्रमुखता प्राप्त हो जाती है। स्थिति को कानूनी और सांविधानिक स्वरूप देने के प्रयत्न किये जाने पर भी किसी लोकप्रिय सरकार का गठन एक दूषित चक्र में फँस जाता है और शक्ति का स्रोत सशस्त्र सेनाओं के पास ही रहता है। स्थिति के अनुसार वर्दीधारी व्यक्ति कैबिनेट या सर्वोच्च कार्यकारिणी के सदस्य बन जाते हैं। यद्यपि ऐसा होना न तो आवश्यक है और न ही अनिवार्य, फिर भी ऐसा होने की सम्भावना रहती है।

मिस्र की जुलाई १९५२ की सैनिक क्रान्ति, सीरिया में १९४८ के पश्चात् होने वाली क्रान्तियाँ तथा अक्टूबर और नवम्बर १९५२ और उसके बाद की लेबनानी और ईराकी क्रान्तियाँ भी उसी कथा की पुनरावृत्ति करती हैं; क्योंकि तथाकथित 'असैनिक' कार्यकारिणी को पदच्युत करने के लिए सेना को आगे आना पड़ा। ऐसा करने से सेना को लोक-समर्थन प्राप्त होगया और उसकी स्थिति पहले से सुदृढ़ हो गई।

१९५० के बाद के दशक में अनेक सैनिक क्रान्तियाँ हुई हैं और इस ग्रंथ की रचना के समय भी समाचारपत्रों की सूचना के अनुसार किसी न किसी देश में सैनिक क्रान्ति हो रही है। जन-सामान्य में व्याप्त घोर असन्तोष के कारण ही क्रान्तियों का जन्म होता है। तीव्र होने पर यह असन्तोष राजतन्त्र को पंगु बनाकर अराजकता उत्पन्न कर देता है और क्रान्ति की सफलता निश्चित हो जाती है। यह

---

[४] पाकिस्तान के दोनों भाग एक दूसरे से १००० मील दूर होने पर भी वहाँ सैनिक क्रान्ति हो गई थी। पूर्वी पाकिस्तान के स्थान पर अब स्वतंत्र बंगला देश का उदय हो चुका है।

कथन न केवल १९५८ में पाकिस्तान वरन् बर्मा के विषय में भी सत्य है, अतः ही यह कहना उचित नहीं कि बर्मा में भी नियमित सैनिक क्रान्ति हुई है। तुर्की की नवीनतम घटनाओं (जून १९६०) में भी इसी कथन की पुष्टि होती है। दक्षिणी अमरीका में अर्जेन्टाइना, बोलिविया तथा वेनेजुएला में पिछले १५–२० वर्षों में हुई अनेक सैनिक क्रान्तियों के अध्ययन में भी यही बात प्रकट होती है।

सैनिक क्रान्तियों के इतिहास में, सशस्त्र सेनाओं द्वारा सत्ता हस्तगत करने से पूर्व राज्य के संविधान में उनकी स्थिति एक महत्त्वपूर्ण कारक है। यदि सेना को राज्य के अन्य अंगों की अपेक्षा लाभ की स्थिति प्राप्त है तो सैनिक क्रान्ति की सफलता निश्चित होने के कारण इसके होने की अधिक संभावना रहती है। उदाहरणार्थ, दक्षिणी अमरीका के सभी देशों में जहाँ सैनिक क्रान्तियाँ सफल हुई हैं शान्तिकाल में कोई न कोई वर्दीधारी व्यक्ति कैबिनेट का सदस्य रहा है। एक बार एक सैनिक व्यक्ति को रक्षामंत्री बना लिये जाने पर मतदाता मण्डल के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त खण्ड-खण्ड हो जाता है, और सैनिक तानाशाही के रूप में सैनिक तत्त्व की प्रभुता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। पाकिस्तान में भी एक वर्दीधारी व्यक्ति को रक्षामंत्री नियुक्त करके पहला कदम उठाया गया था और उस स्थिति को स्वीकार कर लिये जाने पर अगला कदम सरल और बोधगम्य बन गया। इन परि-स्थितियों में संसदीय उपायों में विश्वास करने वाले लोकतंत्रीय राज्य सारी व्यवस्था नष्ट करके मूलतः असंसदीय लक्षणों वाले एक नवीन तंत्र की स्थापना किये बिना किसी वर्दीधारी व्यक्ति को कैबिनेट का मंत्री नहीं नियुक्त कर सकते।

न केवल १९४५ के पश्चात् होने वाली सैनिक क्रान्तियों की शृंखला उसी कथा की पुनरावृत्ति करती है, वरन् द्वितीय विश्वयुद्ध-काल से पूर्व भी तीन देशों—तुर्की, इटली और जर्मनी में जहाँ सेना द्वारा सत्ता हस्तगत करली गई थी, ऐसी ही परिस्थितियाँ विद्यमान थीं।

इस प्रकार रक्षा की आधुनिक आवश्यकताओं ने रक्षा संरचना के अत्यधिक विस्तार को अनिवार्य बना दिया है, परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब तक नागरिक सरकार प्रभावी ढंग से कार्य करती है, जन-असन्तोष को भड़कने से रोके रखती है और राज्य के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक अंगों का संचालन किसी वर्दीधारी व्यक्ति को सौंपने की भूल नहीं करती, तब तक सेना के इस विस्तार से लोकतंत्र को कोई खतरा नहीं पैदा होता। लोकतंत्र में राज्य के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक अंगों का नियंत्रण सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों द्वारा नहीं वरन् मतदाता मण्डल के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है।

(आ) सर्वाधिकारवादी राज्य

लोकतंत्र पर विचार करते समय जिन तीन आधारभूत समस्याओं का जिक्र किया गया था, उनमें से कोई भी सर्वाधिकारवादी राज्यों में विद्यमान नहीं होती।

सैनिक तानाशाही या सर्वाधिकारवादी राज्यों मे अन्तर-सेवा सहकार की समस्या का समाधान अन्य सेवाओं पर एक सेवा को प्रभुत्व प्रदान करके कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ पाकिस्तान, मिश्र तथा सोवियत सघ में स्थल सेना सर्वाधिक शक्तिशाली सेवा है और अन्य दो सेवाओ को लगभग इसके अधीन रखकर स्वयंमेव उनका सहकार प्राप्त कर लिया गया है।

पुनः सैनिक और नागरिक तत्वो के सहकार की समस्या जो लोकतंत्रीय राज्य मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है, सर्वाधिकारवादी राज्यों में उत्पन्न ही नहीं हो पाती। वहाँ एक ही सगठन—सैनिक सगठन—होता है और एक ही आदर्श वाली इस एकात्मक सरचना मे ऐसे अलग अलग अंग नही होते जिनके कार्यों में समन्वय स्थापित करना पडे।

इसी प्रकार सैनिक क्रान्तियो की तीसरी समस्या सर्वाधिकारवादी राज्यों में उस रूप मे उपस्थित नही होती, जिस रूप मे यह लोकतंत्रीय देशों को भयभीत करती रहती है। एक तानाशाह का पतन होने पर जब दूसरा तानाशाह उसका स्थान लेता है, तो वहाँ केवल नेताओं अथवा शक्ति-संचालकों मे परिवर्तन हो जाता है।

अत. लोकतंत्र को भयभीत करने वाली किसी भी समस्या का सर्वाधिकारवादी राज्यो मे जन्म ही नही होता। उनकी अपनी समस्याएँ होती हैं पर वे इस ग्रंथ के विषय-क्षेत्र मे बाहर हैं।

(इ) अन्तर्राष्ट्रीय संगठन

किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन विशेषकर संयुक्त राष्ट्र संघ के रक्षातंत्र को जिन समस्याओं का समाधान करना पड़ता है, वे लोकतत्रीय राज्य की समस्याओं से भिन्न होती हैं। सामूहिक रक्षा की धारणा मे जहाँ कई देशों की सशस्त्र सेनाओं को एकत्र करने की बात निहित होती है, वहाँ विभिन्न भाषा-भाषी, युद्ध करने के विभिन्न उपायो तथा विभिन्न आयुधों मे प्रशिक्षित इन देशों की सेनाओ का एक समरूप सेना के रूप में एकीकरण करना पहली और आवश्यक समस्या होता है। एक ही राज्य की सशस्त्र सेनाओं मे अन्तर-सेवा सहकार स्थापित करने की समस्या की अपेक्षा एकीकरण की यह समस्या कही अधिक गहन है और इसका समाधान करना भी कठिन है। इसका एक मात्र समाधान निरन्तर प्रशिक्षण और एक साथ निवास करना है।[५] केवल निरन्तर श्रम द्वारा ही अनेक राज्यो की विभिन्न सैनिक इकाइयों को सामूहिक रक्षा संगठन के निर्देशन मे कार्य करने वाली एक सशस्त्र इकाई के रूप मे समूहबद्ध किया जा सकता है।

सामूहिक रक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को जिस एक और महत्त्वपूर्ण समस्या

---

५ संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना पर हुई बहस देखिये, अन्तर्राष्ट्रीय कानून संघ की हैम्बर्ग कान्फ्रेंस का प्रतिवेदन, १९६०.

का सामना करना पड़ता है वह है कमान की स्पष्ट शृंखला स्थापित करना जिसके द्वारा सामूहिक रक्षा प्रणाली के अन्तर्गत आने वाले राज्यों के समूह के राजनीतिक प्रतिनिधियों वाला सर्वोच्च नीति निर्माता कोष्टक कार्यवाही क्षेत्र-स्थित सशस्त्र सेनाओं को संयुक्त सेनाध्यक्षों के माध्यम से निर्देश जारी कर सके। उचित स्तर पर एक उचित निकाय गठित किया जाना चाहिए जिसके आदेश सामूहिक रक्षा प्रणाली मे सम्मिलित होने के लिए सहमत प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्यों पर बाध्यकारक हो। दूसरे, इस बात की भी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि इस उच्चस्तरीय राजनीतिक संगठन के आदेश इसके अधीन कार्यरत सशस्त्र सेनाओं के संगठन द्वारा प्रभावी रूप से लागू किये जाएँ। उत्तर अटलान्तिक संधि संगठन, दक्षिण-पूर्वी एशिया संधि संगठन आदि संगठनों में ये सभी समस्याएँ उठ चुकी हैं और सम्भव सीमा तक इनका समाधान भी किया जा चुका है।

सैनिक स्टाफ समिति कभी भी प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर पाई है इस कारण संयुक्त राष्ट्र संघ के सर्वोच्च राजनीतिक अंग का मार्गदर्शन करने वाले दक्ष सैनिक कोष्ठ के अभाव ने एक अलघ्य कठिनाई उत्पन्न करदी है। सुरक्षा परिषद् मे सदैव गुटबंदी रहने और इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना का निरन्तर मार्ग-दर्शन और निर्देशन करने वाला अन्य कोई राजनीतिक अंग न होने के कारण यह कठिनाई और भी गुरुतर हो गई है। परिणामस्वरूप इन सेनाओं की कमान १६५० में कोरिया की भाँति किसी एक सदस्य राष्ट्र को सौंपनी पड़ती है। इससे संयुक्त राष्ट्र संघीय सेनाओं के साथ सहकार करने वाले अन्य सदस्य राज्यों की सशस्त्र सेनाओं और जनरलों को बड़ी उलझन का सामना करना पड़ता है। स्वेज स्थित प्रेक्षक सेनाओं या कांगो स्थित सेनाओं की भाँति संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से एक विशिष्ट अधिकारी की सेनाध्यक्ष के रूप मे नियुक्ति करना एक अन्य उपाय है। स्वेज मे १६५६ मे, लेबनान मे १६५६ मे अथवा भूतपूर्व बेल्जियन कांगो मे १६६० मे जब कभी भी संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना गठित की गई है तो इसके लिए विभिन्न देशों की विविध सेनाएँ ही, जो केवल शान्तिकाल मे उपयोगी हो सकती हैं, एकत्र करनी पड़ी हैं। कांगो सम्बन्धी कार्यवाही के विषय मे यह बात विशेष रूप से सत्य है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन अपने सेनाध्यक्षों वाली एक स्थायी निवारक निरोधक सेना का गठन करके इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है परन्तु वर्तमान संगठन के पास ऐसी सशस्त्र सेनाओं की व्यवस्था के लिए आवश्यक तंत्र उपलब्ध नहीं है, साथ ही अधिक शक्तिशाली सदस्य विशेषकर महाशक्तियाँ न तो किसी संयुक्त राष्ट्र संघीय कार्यवाही मे इसका नियंत्रण और मार्गदर्शन करने की स्थिति मे हैं और न ही वे इसके लिए इच्छुक हैं।

यदि सामूहिक रक्षा के लिए नियमित तंत्र स्थापित कर दिया जाय तो यह कहना कठिन है कि आपातकाल मे यह किस प्रकार कार्य करेगा। शायद उत्तर-

अटलान्टिक संधि संगठन जैसे सामूहिक रक्षा समझौतों के अधीन एक ऐसे तंत्र की स्थापना की जा चुकी है जिसके सर्वोच्च राजनीतिक कोष्ठ के तुरन्त नीचे एक दक्ष सैनिक कोष्ठ है। अभी यह देखना शेष है कि युद्ध छिड़ने पर यह कितने प्रभावी ढंग से कार्य करता है और सहकार करने वाले राज्यों की सशस्त्र सेनाएँ किस सीमा तक संगठित मोर्चा प्रस्तुत करती हैं। शान्तिकाल में भी ऐसे सामूहिक रक्षा संगठनों की उपस्थिति और उनकी मिली-जुली सेनाओं का युद्ध के लिये निरन्तर प्रशिक्षण प्राप्त करना बड़ा महत्वपूर्ण तथ्य है, क्योंकि ये प्रणालियाँ इस शताब्दी के दो विश्व युद्धों के समय गठित रक्षा संगठनों की अपेक्षा तकनीकी दृष्टि से कहीं अधिक प्रगतिशील हैं। यह सुविदित है कि द्वितीय विश्वयुद्ध काल में मित्रराष्ट्रों के सहकारी प्रयत्न युद्ध छिड़ने के काफी बाद प्रारम्भ हुए और जब वे वास्तविक रूप में प्रभावी सिद्ध हुए तब तक युद्ध आधे से अधिक समाप्त हो चुका था।

शान्तिकाल में भय की सम्भावना बढ़ाकर सामूहिक रक्षा समझौते तनाव पैदा करते हैं। अतः वे राजनीतिक दृष्टि से अवांछनीय हैं। यदि शान्तिकाल में निरन्तर ऐसे सामूहिक प्रयत्न और अभ्यास न किये जाएँ तो युद्धकाल में संयुक्त प्रयत्न अधिक लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकते। इस कारण सम्बन्धित राष्ट्र इन सामूहिक रक्षा समझौतों को आवश्यक समझते हैं। यह संभव है कि सामूहिक रक्षा समझौते संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की किसी धारा का समर्थन करते हैं पर उनका सबसे बड़ा कानूनी दोष यह है कि वे राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की धारणा का गंभीर अतिक्रमण करते हैं। आधुनिक युद्ध में रक्षा कार्य सामूहिक रूप से ही सम्पादित किया जा सकता है; परन्तु जब कोई प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य अपनी रक्षा व्यवस्था का नियंत्रण—जो इसका प्रमुख लक्षण होता है—अपनी रक्षा के लिये सामूहिक आधार पर गठित किसी बाह्य संस्था को सौंप देता है तो राष्ट्रीयता का स्थान अन्तर्राष्ट्रीयता ले लेती है। यदि किसी राजनीतिक दबाव या भय से मुक्त रहकर क्षेत्रीय समझौते और व्यवस्थाएँ उसी रूप में और उसी भावना से किए जाते जिसमें इनकी घोषणापत्र में कल्पना की गई थी तो यह एक स्वस्थ संकेत होता। पर ऐसा नहीं हो पाया और आज यह संसार सामूहिक रक्षा के अपने-अपने आधार पर गठित प्रतिस्पर्द्धी गुटों में बँटा हुआ है। इस प्रकार रक्षा के सर्वोत्तम राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की खोज करना, प्रभुसत्तासम्पन्न राष्ट्र-राज्य के जीवनकाल की सर्वाधिक कठिन समस्या बन गई है। निर्देशित प्रक्षेपणास्त्रों और ध्वनि की गति से तेज चलने वाले वायुयानों के युग में राज्य की रक्षा परिधि बहुधा उसके अधिकृत भूभाग से बाहर तक विस्तृत होती है अतः सैनिक-समरनीति-विशारद राष्ट्रीय रक्षा का कोई प्रभावी साधन नहीं प्रस्तुत कर सकते। शस्त्रों के लिए राष्ट्रीय होड़ ने अन्तर्राष्ट्रीयकृत रक्षा की धारणा को जन्म दिया है और अपनी सशस्त्र सेनाओं को संगठित करके सामूहिक रक्षा प्रयत्न का निर्माण करने हेतु अनेक राज्यों को अनिवार्यतः एक स्थल पर एकत्र होना पड़ा है।

परन्तु यह सामूहिकीकरण भी पहले से अधिक महान शक्ति वाले आयुधों के आविष्कार की निरन्तर बढ़ती हुई दौड़ को नहीं रोक पाया है। अत यदि मानवता को विश्वयुद्धों द्वारा नष्ट होने से बचाना है तो सयुक्त राष्ट्र सघ जैसे पर इससे कहीं अधिक शक्तिशाली एक विश्वव्यापी अन्तर्राष्ट्रीय सगठन द्वारा ही ऐसा किया जा सकता है। संकीर्ण अथवा क्षेत्रीय आधार पर गठित अन्तर्राष्ट्रीय रक्षा सगठनों के हित में राष्ट्रीय रक्षा व्यवस्था का त्याग करना लाभकर नहीं सिद्ध होगा।

तीसरे और सतरहवें अध्याय का परिशिष्ट

युनाइटेड किंगडम के जुलाई १९६३ के कमान पत्र २०९७ के प्रावधान

(जुलाई १९६३ के कमान पत्र २०९७ में प्रस्तावित परिवर्तनों को इन अध्यायों के पाठ में शामिल नहीं किया जा सका था क्योंकि पुस्तक की पाण्डुलिपि जुलाई १९६२ के पूर्व ही मुद्रकों को दे दी गई थी। इनके अतिरिक्त परिवर्तनों पर पहले संसद को कानून बनाना पड़ता और इसके लिए पतझड़ की ऋतु में विधेयक प्रस्तुत किया जाता और पारित हो जाने पर नया विधेयक पहली अप्रैल १९६४ से लागू होता, अतः निम्नलिखित प्रस्तावों को युनाइटेड किंगडम का वर्तमान कानून नहीं कहा जा सकता। फिर भी वे विचारधारा की प्रवृत्ति का उद्घाटन करते हैं और इस बात की संभावना है कि संसद उन्हें पारित कर देगी और वे १९६४ में लागू हो जाएँगे।)

(अ) जुलाई १९६३ के कमान २०९७ का पाठ जिसे महारानी की आज्ञा से युनाइटेड किंगडम के रक्षामंत्री ने संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया।*

रक्षा का केन्द्रीय संगठन

१. भूमिका

४ मार्च १९६३ को रक्षामंत्री ने कामन सभा में सिद्धान्त रूप में रक्षा के केन्द्रीय संगठन को सुदृढ़ करने के निर्णयों की घोषणा की।

२. रक्षा का एकीकृत मंत्रालय गठित किया जायगा और रक्षा का सारा अधिकार और उत्तरदायित्व एक रक्षामंत्री में ही निहित होगा।

३. वर्तमान रक्षा मंत्रालय, नौ सेना मंत्रालय, युद्ध मंत्रालय और वायु सेना मंत्रालय नए रक्षा मंत्रालय में शामिल कर दिए जाएँगे। रक्षा मंत्रालय और उड्डयन मंत्रालय के मध्य सहयोग स्थापित करने की नई व्यवस्था की जाएगी।

४. इसका उद्देश्य युद्धकारी सेनाओं की कार्यकुशलता और मनोबल को क्षति पहुँचाए बिना रक्षा नीति पर केन्द्रीय नियंत्रण में वृद्धि करना है। सेनाओं की

* राज्य मुद्रणालय के नियंत्रक की आज्ञा से उद्धृत।

अलग-अलग इकाइयो को सुरक्षित रखा जाएगा।

५. १९५८ के श्वेतपत्र मे की गई व्यवस्थाओ (कमान ४७६) द्वारा रक्षा नीति पर व्यवहारत उस सीमा तक केन्द्रीय नियत्रण नही स्थापित किया जा सका है, जितना राष्ट्रीय हित मे आवश्यक है। रक्षा बजट द्वारा वायदो, साधनो और सेवाओ की भूमिका मे उचित सतुलन स्थापित करने के लिए एक एकीकृत रक्षा मत्रालय आवश्यक है।

६. आयुधो की आवश्यकताएँ निर्धारित करने और रक्षा अनुसधान और विकास कार्यक्रमो को नियत्रित करने के लिए अब से कही अधिक उत्तम व्यवस्थाओ की आवश्यकता है।

७. प्रशासन के कुछ क्षेत्रो मे तीनो सेवाओ की भिन्न-भिन्न प्रथाएँ रही हैं। जहाँ कही भी व्यवहार्य हो, कालान्तर मे इन भिन्नताओ को समाप्त करके मित-व्ययिता और कार्यकुशलता मे वृद्धि की जा सकती है। कुछ मामलो मे एक सयुक्त रक्षा दृष्टिकोण व्यक्तिगत सेवाओ की प्रथा का स्थान ले लेगा। अन्य मामलो मे एक सेवा द्वारा तीनो सेवाओ का कार्य सभालने की प्रक्रिया का विस्तार किया जायगा।

२. नया दृष्टिकोण—आधारभूत सिद्धान्त

८. विभिन्न मत्रियो के प्रति उत्तरदायी चार पृथक्-पृथक् रक्षा विभागो द्वारा सदर्भ समस्याओ और सेवाओ मे व्याप्त विचारधाराओ का जितना ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, रक्षा नीति पर नियत्रण रखने के लिए उससे कही अधिक ज्ञान की आवश्यकता होती है।

९. रक्षा नीति और तीनो सेवाओ के प्रशासन तत्र पर रक्षामत्री का पूर्ण नियत्रण होना चाहिए। मत्रालय के सभी सैनिक, वैज्ञानिक और प्रशासनिक कर्म-चारी सीधे रक्षामत्री के अधीन होंगे और वही उनके लिए उत्तरदायी होगा परन्तु व्यवहार मे वह अपनी पर्याप्त सत्ता अन्य अधिकारियो को सौंप देगा।

१०. सेवाओ को अपना पृथक् अस्तित्व सुरक्षित रखना चाहिए। कार्यवाही के क्षेत्र मे तीनो सेवाएँ अन्योन्याश्रित हैं और इस परस्परावलम्बन के विकास की अपेक्षा की जानी चाहिए। व्यावहारिक अनुभव से प्रकट होता है कि अपने युद्धपोत, अपनी इकाई और अपने स्क्वॅड्रन के प्रति निष्ठा ही किसी व्यक्ति की युद्धकारी भावना को प्रेरणा प्रदान करती है। पृथक्-पृथक् सेवाओ की परम्पराएँ और उन्हे युद्ध मे प्राप्त सम्मान, मनोबल और युद्धकारी कार्यकुशलता बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण कारक हैं। इन्हे सुरक्षित रखना चाहिए।

११. यद्यपि तीनो सेवाएँ पृथक्-पृथक् रहेगी फिर भी नए मत्रालय मे जहाँ

कहीं भी संभव होगा कार्य पृथक्-पृथक् सेवा-आधार पर नहीं वरन् रक्षा के आधार पर संगठित किए जाएँगे।

१२. इसके साथ ही नया मंत्रालय सेवारत लगभग चार लाख स्त्री-पुरुषों और लगभग चार लाख नागरिक कर्मचारियों के लिए दो अरब पौंड से अधिक के वार्षिक बजट का प्रयोग करने के लिए उत्तरदायी होगा। सभी बड़े-बड़े संस्थानों की भांति यह मंत्रालय भी नीति और व्यवस्था के अन्तर को स्वीकार करेगा। कुछ सैनिक और नागरिक कर्मचारी प्रमुख रक्षा नीति से सम्बन्धित होंगे। अन्य कर्मचारी शाही नौ सेना, स्थल सेना और शाही वायु सेना की व्यवस्था करेंगे।

१३. फिर भी नीति और व्यवस्था को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। (वर्तमान रक्षा मंत्रालय में) नीति के लिए और (वर्तमान सेवा विभागों में) व्यवस्था के लिए उत्तरदायी कर्मचारियों का पृथक्करण वर्तमान संगठन का प्रमुख दोष है। एक एकीकृत मंत्रालय में नीति और व्यवस्था कर्मचारियों में अधिक घनिष्ठ कार्यकारी सहयोग स्थापित किया जाना चाहिए।

१४. संगठन लचीला भी होना चाहिए जिससे नए मंत्रालय के गठन के उपरान्त इसमें सुप्रवाही और प्रगतिशील विकास किया जा सके। रक्षा विभागों और अन्य विभागों, विशेषकर विदेश, राष्ट्रमण्डल सम्बन्ध और उपनिवेश विभागों के मध्य सभी स्तरों पर वर्तमान घनिष्ठ सम्पर्क बना रहना चाहिए।

३. कैबिनेट संगठन

१५. रक्षामंत्री के नियंत्रण और निर्देशन में नया मंत्रालय संगठित समर नीति के साधन के रूप में युद्धकारी सेवाओं से सम्बन्धित नीति और प्रशासन के सभी मामलों में प्रभावी समन्वय निश्चित करेगा। परन्तु रक्षा नीति सम्बन्धी प्रमुख प्रश्नों पर केवल सैनिक दृष्टि से ही विचार-विमर्श नहीं किया जा सकता; विदेश और आर्थिक नीति के सम्बन्ध में भी उनका परीक्षण किया जाना चाहिए और इस विस्तृत संदर्भ में वे बहुधा पर्याप्त राजनीतिक महत्त्व के अन्य मामलों को जन्म दे देते हैं। इसके विपरीत राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों और विदेशों के साथ हमारे राजनीतिक सम्बन्धों का भी हमारी रक्षा नीति पर प्रभाव पड़ता है; सरकार की वित्त और आर्थिक नीतियों की आवश्यकताएँ भी इसी प्रकार सेवाओं के आकार, विन्यास और साज-सज्जा को प्रभावित करती हैं।

१६. इन विस्तृत मामलों के प्रति मंत्रियों का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है। प्रधानमंत्री और कैबिनेट की सर्वोच्च सत्ता के अधीन रक्षा और समुद्रपार नीति सम्बन्धी समिति उनकी देखभाल करेगी। राज्य का प्रथम सचिव, विदेश सचिव, राजकोषाध्यक्ष और राजकोष का मुख्य सचिव, गृह सचिव, राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्धों

एवं उपनिवेशों का मंत्री और रक्षामंत्री सामान्यतः इस समिति के सदस्य होंगे और प्रधानमंत्री इसकी गोष्ठियों की अध्यक्षता किया करेगा। आवश्यकतानुसार अन्य मंत्रियों को भी इन गोष्ठियों में आमंत्रित किया जायगा। विचारणीय विषय के अनुसार रक्षा स्टाफ का अध्यक्ष और सेनाध्यक्ष भी उपस्थिति में रहेंगे। अन्य अधिकारी यथा राज्य के अवर सचिव, अथवा रक्षामंत्री का प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार आवश्यकतानुसार इन गोष्ठियों में उपस्थित रहा करेंगे। वरिष्ठ अधिकारियों की एक समिति इस समिति की सहायता करेगी।

१७. इसके अतिरिक्त वर्तमान प्रथानुसार उचित अवसरों पर रक्षा स्टाफ के अध्यक्ष और सेनाध्यक्षों को पूर्ण कैबिनेट की गोष्ठियों में उपस्थित रहने के लिए आमंत्रित किया जायगा। इस प्रकार वे सरकार को व्यावसायिक सलाह देने का अपना परम्परागत कर्तव्य पालन करते रहेंगे और उन्हें प्रधानमंत्री से भेंट करने का अधिकार होगा।

४ रक्षामंत्री

१८. साम्राज्य की रक्षा की वे सभी विधिसम्मत शक्तियाँ जो आजकल वर्तमान सेवा मंत्रालयों को प्राप्त हैं, रक्षामंत्री को सौंप दी जाएँगी। अपनी सत्ता का पालन वह निम्नलिखित व्यवस्था के अनुसार करेगा।

५. अन्य मंत्रियों की नियुक्तियाँ

१९. नौ सेना परिषद्, स्थल सेना परिषद् और वायुसेना परिषद् भंग करके नौ सेना के प्रथम लार्ड एवं युद्ध और वायु मंत्रियों के पद समाप्त कर दिए जाएँगे। इन ऐतिहासिक पदों (पर नियुक्त व्यक्तियों) और संस्थाओं ने युद्ध और शान्तिकाल में भलीभाँति एवं निष्ठापूर्वक देश की सेवा की है, परन्तु राष्ट्रीय रक्षा नीति पर उचित नियंत्रण बनाए रखने के लिए नई व्यवस्थाओं की आवश्यकता है।

२०. रक्षा कार्य के लिए तीन राज्यमंत्री होंगे। राज्य के तीन अवर संसदीय सचिव उनकी सहायता करेंगे। रक्षामंत्री समय-समय पर रक्षा क्षेत्र सम्बन्धी जो भी उत्तरदायित्व राज्यमंत्रियों को सौंपेगा, वे उसका पालन करेंगे। राज्य के रक्षा (शाही नौ सेना), (स्थल सेना) और (शाही वायुसेना) मंत्रियों के रूप में उनका प्राथमिक कार्य रक्षामंत्री की ओर से अपनी-अपनी सेवा सम्बन्धी भाँति पर व्यवहार करना होगा। आवश्यकतानुसार वे उसकी ओर से संसद के प्रति भी उत्तरदायी होंगे।

६ रक्षा परिषद्

२१. रक्षामंत्री के अधीन एक रक्षा परिषद् गठित की जायगी। यह कमान और प्रशासनिक नियंत्रण की उन शक्तियों का पालन करेगी जिनका पहले नौ सेना,

स्थल सेना और वायु सेना परिषदें पालन करती थीं। रक्षा परिषद् १९५८ में गठित रक्षा बोर्ड का स्थान ले लेगी।

२२. रक्षा परिषद् में निम्नलिखित सदस्य होंगे :—

रक्षामंत्री
तीनों राज्यमंत्री
रक्षा स्टाफ का अध्यक्ष
नौ सेनाध्यक्ष
जनरल स्टाफ का अध्यक्ष
वायुसेनाध्यक्ष
रक्षामंत्री का प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार
राज्य का स्थायी अवर सचिव

सभी उचित मामलों पर विचार-विमर्श करने के लिए तहुपन मंत्री और सार्वजनिक भवन और निर्माण मंत्री भी उपस्थित रहेंगे।

२३. रक्षा परिषद् मूलतः प्रमुख रक्षा नीति पर विचार करेगी। व्यवस्था कार्य रक्षा परिषद् के नौ सेना, स्थल सेना, और वायुसेना बोर्डों को सौंप दिया जायगा और रक्षामंत्री इनमें से प्रत्येक बोर्ड का अध्यक्ष होगा। अनुशासनात्मक निर्णयों की समीक्षा करने और शिकायतें दूर करने आदि की न्यायिक और अर्द्ध-न्यायिक शक्तियाँ इन बोर्डों के पास होंगी। परन्तु वे सभी नियम और आदेश जो पहले नौ सेना बोर्ड एवं स्थल और वायु सेना परिषदों द्वारा जारी किए जाते थे अब रक्षा परिषद् की सत्ता के अधीन जारी किए जाएँगे।

२४. सामान्यतः रक्षामंत्री, सम्बन्धित राज्यमंत्री से इन बोर्डों की अध्यक्षता करने का आग्रह करेगा। सम्बन्धित संसदीय अवर सचिव, सेनाध्यक्ष, सम्बन्धित सेवा की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी वरिष्ठ सैनिक और नागरिक कर्मचारी और आवश्यकतानुसार प्रमुख व्यावसायिक एवं वैज्ञानिक सलाहकार बोर्ड के अन्य सदस्य होंगे।

२५. सेनाध्यक्ष और मंत्रालय के अन्य वरिष्ठ अधिकारी निम्नलिखित नामों से पुकारे जाएँगे :—

शाही नौ सेना	स्थल सेना	शाही वायु सेना
नौ सेनाध्यक्ष और प्रथम समुद्री लार्ड	जनरल स्टाफ का अध्यक्ष	वायु सेनाध्यक्ष
उप और सहकारी नौ सेनाध्यक्ष	जनरल स्टाफ के उप और सहकारी अध्यक्ष	उप और सहकारी वायु सेनाध्यक्ष

शाही नौ सेना	स्थल सेना	शाही वायु सेना
नौ सैनिक कर्मचारियो का प्रमुख और द्वितीय समुद्री लार्ड	अडजुटाट जनरल	कर्मचारियो का वायु सदस्य
नौ सेना नियंत्रक	क्वार्टर मास्टर जनरल	आपूर्ति और सगठन का वायु सदस्य
उपनियंत्रक एवं नौ सेना आपूर्ति और परिवहन का प्रमुख	युद्ध सामग्री का मास्टर जनरल	

रक्षा के स्थायी अवर सचिव के अधीन प्रत्येक सेवा के द्वितीय स्थायी अवर सचिव वर्तमान नौ सेना सचिव एव युद्ध और वायु मत्रालयो के स्थायी अवर सचिवो का स्थान ले लेंगे। उन्हे (शाही नौ सेना), (स्थल सेना) और (शाही वायु सेना) का द्वितीय स्थायी अवर सचिव कहा जायगा।

७. सामान्य विभागीय सगठन

२६. रक्षा स्टाफ का अध्यक्ष, प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार और राज्य का स्थायी अवर सचिव मत्री के तीन मुख्य सलाहकार होगे। स्थायी अवर सचिव उनके विचारो मे समन्वयन स्थापित करने और ऐसा करने के साधन जुटाने के लिए उत्तरदायी होगा।

२७. मत्रालय के अधीन सगठन मे निम्नलिखित स्टाफ शामिल होगे :—

रक्षा स्टाफ के अध्यक्ष एव सेनाध्यक्षो की समिति के अधीन रक्षा स्टाफ जिसमे नौ सेना स्टाफ, जनरल स्टाफ और वायु सेना स्टाफ सम्मिलित होंगे।

प्रमुख सैनिक सलाहकार के अधीन रक्षा वैज्ञानिक स्टाफ।

स्थायी अवर सचिव के अधीन रक्षा सचिवालय जिसकी सहायता रक्षा सचिवालय का एक चतुर्थ द्वितीय स्थायी अवर सचिव करेगा। किसी विशिष्ट सेवा की व्यवस्था करने से भिन्न सभी सेवाओ की सामान्य व्यवस्था करना इसका उत्तरदायित्व होगा।

शाही नौसेना, स्थल सेना और शाही वायु सेना के प्रमुख कार्य र अधिकारियो का स्टाफ।

रक्षा मंत्रालय संयुक्त सेवा स्टाफ को मिला कर रक्षा स्टाफ गठित किया जायगा। यह स्टाफ सेनाध्यक्षों की समिति के प्रति और इसके प्रमुख के माध्यम से रक्षामंत्री के प्रति उत्तरदायी होंगे। रक्षा स्टाफ को पृथक्-पृथक् सेवाओं के दृष्टिकोण का ध्यान रखते हुए यह सुनिश्चित करना चाहिए कि योजनाएँ उनकी क्षमता के यथार्थ मूल्यांकन पर आधारित हों, पर उनका मुख्य सामूहिक कर्तव्य अपने सामने आने वाली समस्याओं का रक्षा की दृष्टि से सर्वोत्तम समाधान खोजना होगा।

३३ एक ही भवन में रहकर इन स्टाफों के लिए साथ-साथ कार्य करना अधिक सरल होगा। परन्तु नियोजन और कार्यवाही के प्रभावी नियंत्रण के लिए यह पर्याप्त नहीं होगा। अत संयुक्त नियोजन और संयुक्त युद्ध स्टाफों के अतिरिक्त चार नए संगठन स्थापित किए जाएँगे।

३४. नये संगठन निम्नलिखित होंगे —

रक्षा कार्यवाही कार्यकारिणी
रक्षा कार्यवाही आवश्यकताओं सम्बन्धी स्टाफ
रक्षा सिगनल्स स्टाफ
रक्षा गुप्त सूचना स्टाफ

रक्षा कार्यवाही कार्यकारिणी :

३५. एक नया रक्षा कार्यवाही केन्द्र स्थापित किया जाएगा जो पृथक्-पृथक् सेवाओं के कार्यों पर नियंत्रण और समन्वयन रखने की कार्यवाही कक्षों की प्रणाली का केन्द्रीय अन्तर्भाग होगा। सहसा आरम्भ होने वाली संकटपूर्ण स्थिति का शीघ्र और निश्चित रूप से सामना करने के लिए आवश्यक सूचना और सुविधाएँ प्रस्तुत करने की दृष्टि से इस प्रणाली का स्थायी आधार पर गठन किया जाएगा और इसमें स्थायी कर्मचारी होंगे।

३६. रक्षा कार्यवाही कार्यकारिणी के माध्यम से केन्द्रीय नियन्त्रण बनाए रखा जाएगा। रक्षा स्टाफ का उपाध्यक्ष, सहायक नौ सेनाध्यक्ष, सैनिक कार्यवाही का निदेशक और सहायक वायु सेनाध्यक्ष (कार्यवाही) इस कार्यकारिणी में शामिल होंगे।

रक्षा कार्यवाही आवश्यकताओं सम्बन्धी स्टाफ :

३७ पृथक्-पृथक् सेवा आधार की अपेक्षा रक्षा आधार पर आयुधों और साज-सामान की आवश्यकताएँ निर्धारित करने तथा रक्षा अनुसंधान और विकास कार्यक्रम के विषय में सैनिक सलाह प्रस्तुत करने के लिए अब से कहीं अधिक उत्तम व्यवस्थाओं की आवश्यकता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रक्षा स्टाफ के एक सहायक अध्यक्ष (कार्यवाही आवश्यकताएँ) के अधीन एक छोटा केन्द्रीय रक्षा स्टाफ गठित किया जायगा।

३८ यह स्टाफ दीर्घकालीन आवश्यकताओं की समीक्षा करेगा, युद्ध की भविष्यकालीन धारणा के सम्बन्ध में दीर्घकालीन अध्ययनों का आयोजन करेगा और प्रयत्न के दोहरेपन से बचने के लिए नए युद्धनीतों सहित नए आयुधों की सभी मुख्य आवश्यकताओं का परीक्षण और एकीकरण करेगा।

३९ अनुसंधान और विकास कार्यक्रम की सैनिक आवश्यकताओं और उपलब्ध वैज्ञानिक, तकनीकी और वित्तीय साधनों में घनिष्ठ सम्बन्ध सुनिश्चित करने के उद्देश्य से यह स्टाफ प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही आयुध और साज-सामान विकास की उन समस्याओं का पता लगाएगा जिनके लिए केन्द्रीय निर्णयों की आवश्यकता होती है।

रक्षा सिगनल्स स्टाफ :

४०. रक्षा स्टाफ के सहायक अध्यक्ष (सिगनल) के अधीन एक रक्षा सिगनल्स स्टाफ गठित किया जाएगा। तीनों सेवाओं के संयुक्त विषयों पर विचार करने वाले स्टाफों का एकीकरण कर दिया जायगा। यह एकीकृत रक्षा संचार केन्द्र नए रक्षा-मंत्रालय के सभी भवनों को देश और विदेश की नागरिक और सैनिक संरचना से संयुक्त करने वाली सिगनल प्रणाली का केन्द्रबिन्दु होगा। विश्वव्यापी संचार व्यवस्थाओं के एकीकरण की दिशा में यह केन्द्र एक बड़ा कदम होगा। वर्तमान पृथक् सेवा केन्द्रों को समाप्त कर दिया जाएगा।

रक्षा गुप्त सूचना स्टाफ :

४१. सेवा गुप्त सूचना स्टाफों और संयुक्त गुप्त सूचना ब्यूरो को मिलाकर एक रक्षा गुप्त सूचना स्टाफ का निर्माण किया जाएगा। मुख्यरूप से केवल अपनी सेवा सम्बन्धी विषयों पर व्यावसायिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व प्रत्येक सेवा के वरिष्ठ अधिकारियों पर ही होगा; परन्तु समग्र रूप से स्टाफ का एकीकरण कर दिया जाएगा। यह स्टाफ सभी सरकारी विभागों की गुप्त सूचनाएँ समन्वित करने की वर्तमान व्यवस्थाओं के अन्तर्गत रक्षा मंत्रालय की रुचि के सभी विषयों पर रक्षा गुप्त सूचना दृष्टिकोण विकसित करने के लिए भी उत्तरदायी होगा।

१०. मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार और रक्षा विज्ञान सम्बन्धी स्टाफ

४२. रक्षा के वे सभी पक्ष जिन पर वैज्ञानिक प्रगति विशेषकर रक्षा अनुसंधान और आयुध विकास का प्रभाव पड़ता है, मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार के कार्यक्षेत्र में आते हैं। आधुनिक आयुध प्रणालियाँ दिन प्रतिदिन जटिल, परिष्कृत एवं मूल्यवान होती जा रही हैं और वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की द्रुतगति के कारण उनके शीघ्र ही पुराने पड़ जाने की सम्भावना बनी रहती है अतः यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

४३. रक्षा अनुसंधान और विकास कार्यक्रम निर्धारित एवं नियंत्रित करने में मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार अपनी भूमिका पूर्णरूप से निर्वाह कर सके इसके लिए (इस संगठन में) अनेक परिवर्तन करने की आवश्यकता है। रक्षा कार्यवाही आवश्यकताओं सम्बन्धी स्टाफ की स्थापना करके सैनिक आव ---ताओं के निर्धारण की संशोधित व्यवस्थाओं का पहले ही वर्णन किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त सारे रक्षा मंत्रालय में वैज्ञानिक प्रयत्नों को और अधिक समन्वित करने की आवश्यकता है। रक्षा अनुसंधान पर सावधानीपूर्वक निगरानी रखने और आयुधों का विकास करने की व्यवस्था में सुधार किया जाना चाहिए। कार्यवाही सम्बन्धी अनुसंधान में और अधिक घनिष्ठ समन्वय होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार के स्टाफ में भलीभाँति प्रशिक्षित वैज्ञानिकों और अभियन्ताओं को स्थान देकर इसे सुदृढ़ किया जाना चाहिए। इन उपायों का नीचे विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

४४. जहाँ कहीं भी समस्याएँ केवल एक सेवा सम्बन्धी नहीं वरन् सम्पूर्ण रक्षा व्यवस्था सम्बन्धी हैं, वहाँ वर्तमान रक्षा मंत्रालय और सेवा विभाग के वैज्ञानिक स्टाफ मिलकर मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार के अधीन रक्षा वैज्ञानिक स्टाफ के रूप में कार्य करेंगे।

४५. रक्षा अनुसंधान और आयुध विकास के नियंत्रण में सुधार करने के लिए, वर्तमान रक्षा अनुसंधान नीति समिति के स्थान पर दो नई समितियाँ बनाई जायेंगी और मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार इन दोनों समितियों का अध्यक्ष होगा। ये समितियाँ रक्षा कार्यवाही आवश्यकताओं सम्बन्धी स्टाफ और रक्षा सचिवालय के निकट सम्पर्क में कार्य करेंगी।

४६. स्वीकृत आयुध और साज-सामान परियोजनाओं को अप्रत्यक्ष सहयोग देने वाले सैनिक अनुसंधान की निगरानी के लिए पहली समिति एक रक्षा अनुसंधान समिति होगी। यह समिति रक्षा अनुसंधान नीति को प्रभावित करने वाले सभी वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों पर रक्षामंत्री और सेनाध्यक्षों को सलाह देगी। रक्षा अनुसंधान कार्यक्रम रक्षा आवश्यकताओं और उपलब्ध साधनों के अनुरूप हैं अथवा नहीं यह सुनिश्चित करने के लिए समिति समय-समय पर उसकी समीक्षा करेगी।

४७. स्वतंत्र वैज्ञानिकों सहित मुख्यतः वैज्ञानिक ही इस समिति के सदस्य होंगे। रक्षा अनुसंधान की समस्याओं का स्पष्ट विश्लेषण करना और लेखा-जोखा रखना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसमें विवेक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होने के कारण प्रत्येक स्रोत से उपलब्ध सर्वोत्तम सलाह का समन्वयन किया जाना चाहिए।

४८. आयुध विकास की समस्याएँ कुछ भिन्न होने के कारण दूसरी एक

आयुध विकास समिति गठित की जायगी। विकास कार्यक्रम में किन बड़ी परियोजनाओं को शामिल किया जाय, इस विषय में यह समिति रक्षामंत्री और सेनाध्यक्षों को सलाह देगी। उपलब्ध साधनों, वर्तमान रक्षा नीति और तकनीकी संभाव्यता की दृष्टि से स्वीकृत कार्यवाही आवश्यकताओं से कार्यक्रम का उचित तालमेल सुनिश्चित करने के लिए यह समिति कार्यक्रम की समीक्षा करती रहेगी। कार्यक्रम पर व्यवहार करते समय आने वाली किसी भी कठिनाई का तुरन्त पता लगाने के लिए भी यह समिति उत्तरदायी होगी।

४९. पर्याप्त मात्रा में संयुक्त सदस्यता होने के कारण इस समिति का रक्षा अनुसंधान समिति से घनिष्ठ सम्बन्ध होगा। इसके विचाराधीन समस्याओं के विषय विभिन्न मात्रा में सैनिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, वित्तीय और आर्थिक होंगे अतः इसे बड़ी मात्रा में सैनिक और प्रशासनिक स्टाफों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

५०. उड्डयन मंत्रालय को रक्षा अनुसंधान समिति और आयुध विकास समिति दोनों में ही प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।

५१. रक्षा अनुसंधान और विकास कार्यक्रम का रक्षा कार्यक्रम के अन्य तत्वों से समन्वयन एवं बजट सम्बन्धी और स्वीकृत कार्यक्रम को लागू कराने के लिए आवश्यक कार्यकारी आदेश जारी करने का उत्तरदायित्व रक्षा सचिवालय पर होगा।

५२. कार्यवाही अनुसंधान कार्यों का समन्वयन करने वाली एक तीसरी समिति होगी जिसमें तीनों सेवाओं के कार्यवाही अनुसंधान निदेशक शामिल होंगे और मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार के स्टाफ का एक सदस्य इसकी अध्यक्षता करेगा।

५३. मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार के अधीन स्टाफ का विस्तार करने का उद्देश्य मुख्यतः इन समितियों के लिए उपयुक्त सेवा का प्रावधान करना है, जिसमें वे आयुध प्रणालियों के अध्ययन और मूल्यांकन की तकनीक का उत्तरदायित्व संभाल कर उसका विकास कर सकें, जहाँ उपयुक्त हो वहाँ मूल्य के प्रभाव सम्बन्धी अध्ययन हाथ में ले सकें और रक्षा नीति को प्रभावित करने वाली दीर्घकालीन वैज्ञानिक समस्याओं की जाँच-पड़ताल कर सकें। रक्षा वैज्ञानिक स्टाफ, रक्षा स्टाफ और रक्षा सचिवालय में सभी स्तरों पर घनिष्ठ सम्बन्ध विकसित करने के लिए भी यह विस्तार आवश्यक है। मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार के निर्देशन के अधीन कार्य करने का सामान्य ढंग यह होगा कि विशिष्ट समस्याओं पर विचार करने के लिए रक्षा मंत्रालय, उड्डयन मंत्रालय और सेवाओं के सैनिक, वैज्ञानिक और नागरिक प्रशासनिक कर्मचारियों तथा बाह्य सलाहकारों में से उपयुक्त विशेषज्ञों की तदर्थ नामावलियाँ बना दी जायेंगी या उनके कार्यकारी दल गठित कर दिए जाएँगे।

११. स्थायी प्रवर सचिव और रक्षा सचिवालय

५४. मंत्रालय के कार्य को समन्वित करने और इसके लिए आवश्यक तंत्र

स्थापित करने का उत्तरदायित्व स्थायी अवर सचिव पर होगा। उसकी सहायता चार द्वितीय स्थायी अवर सचिव करेंगे जो क्रमशः रक्षा सचिवालय और सेवा प्रबन्धक स्टाफों सहित शाही नौ सेना, स्थल सेना और शाही वायु सेना के प्रबन्धक नागरिक प्रशासनिक स्टाफों के लिए उत्तरदायी होंगे।

५५ वर्तमान रक्षा मंत्रालय और वर्तमान सेवा विभागों में कुछ नागरिक प्रशासनिक कर्मचारी लेकर रक्षा सचिवालय का गठन किया जायगा। मुख्य रक्षा नीति से सम्बन्धित और इस समय सेनाध्यक्षों को सामान्य सलाह और सहायता देने के लिए उत्तरदायी कर्मचारियों को इसके लिए चुना जायगा। रक्षा कार्यक्रम और बजट तथा विदेश, राष्ट्रमण्डल सम्बन्ध और उपनिवेश मंत्रालयों के साथ विचार-विमर्श करके समुद्रपार विषयों सहित मुख्य नीति के अन्य विषयों पर स्थायी अवर सचिव को और उसके माध्यम से रक्षामंत्री को सलाह देना उनका उत्तरदायित्व होगा। समुद्रपार नीति विभाग भी उनके माध्यम से सैनिक सलाह प्राप्त करेंगे। सेनाध्यक्षों को सामान्य सलाह और सहायता देने के लिए भी वे उत्तरदायी होंगे।

५६ द्वितीय स्थायी अवर सचिव (रक्षा सचिवालय) वे क्षेत्र (उदाहरणार्थ भण्डार, तकनीकी अधिष्ठान और प्रशिक्षण) भी निर्धारित करेगा जिनका प्रशासन सेवा आधार के बदले रक्षा आधार पर गठित करना अधिक लाभप्रद हो सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वह विभागीय संगठन में परिवर्तनों की सिफारिश करेगा।

१२ रक्षा कार्यक्रम और बजट

५७ रक्षा कार्यक्रम और बजट निर्धारित करना नए मंत्रालय का एक प्रमुख कार्य होगा। रक्षा कार्यक्रम के लिए दीर्घकालीन वित्तीय *नियोजन और नियंत्रण* करना तथा तीनों सेवाओं को साधन आवंटित करना स्थायी अवर सचिव के मुख्य उत्तरदायित्व होंगे।

५८. ऐसे नियोजन के लिए राजनीतिक, *सैनिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, वित्तीय* और आर्थिक कारकों का भी ध्यान रखना पड़ेगा। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए मोर्चा पंक्ति, जनशक्ति और तीनों सेवाओं की अन्य संयुक्त योजनाएँ रक्षा *आधार पर गठित की जानी चाहिए।* सैनिक-वैज्ञानिक और नागरिक प्रशासनिक कर्मचारियों के मध्य निरन्तर सहयोग बना रहना चाहिए तथा उन्हें एक दूसरे की समस्याओं का गंभीरतापूर्वक मूल्यांकन करके नियोजन और नियंत्रण तकनीक में सुधार करने के लिए संयुक्त प्रयत्न करने चाहिए। अन्ततः सभी आवश्यक तथ्य समुचित एवं पूर्णरूप से प्रस्तुत किए जाने चाहिए।

५९ सैनिक, वैज्ञानिक और नागरिक प्रशासनिक कर्मचारियों के विचारों में समन्वयन करने का उत्तरदायित्व भी स्थायी अवर सचिव पर होगा। इस कार्य में

उनकी सहायता करने के लिए द्वितीय स्थायी सचिव (रक्षा मंत्रालय) के साथ-साथ एक उप अवर सचिव (कार्यक्रम और बजट) की भी नियुक्ति करदी जायगी। उत्तरोक्त रक्षा कार्यक्रम और रक्षा बजट सम्बन्धी सभी विषयों के लिए उत्तरदायी रक्षा सचिवालय के विभाग पर भी नियंत्रण रखेगा।

६०. उप अवर सचिव (कार्यक्रम और बजट) और उसका स्टाफ़ रक्षा नीति, इस नीति की पूर्ति हेतु आवश्यक तत्वों और उपलब्ध साधनों को समन्वित करके स्वीकृत एवं नियमित मूर्त कार्यक्रम और प्रस्ताव प्रस्तुत करेगा। वे कार्यक्रमों, साधनों और दीर्घकालीन मूल्य-निर्धारण के आयोजन और विश्लेषण सम्बन्धी वित्तीय साधनों पर विचार करेंगे। साधनों का आवंटन, वार्षिक अनुमानों को प्रभावित करने वाली धारणाओं का आयोजन और रक्षा कार्यक्रम की सीमा में आने वाली परियोजनाओं का निर्देशन भी वे ही करेंगे।

१३. रक्षा अनुमान

६१. अतीत की भांति रक्षामंत्री सम्पूर्ण रक्षा बजट सम्बन्धी सूचना देने वाला एक वार्षिक श्वेतपत्र संसद के सम्मुख प्रस्तुत करेगा। वर्तमान रक्षा मंत्रालय और तीनों सेवा विभागों के अनुमानों सहित उड्डयन मंत्रालय और सार्वजनिक भवन और निर्माण मंत्रालय का व्यय भी इसमें शामिल होता है।

६२. रक्षामंत्री रक्षा अनुमानों की संयुक्त सूची भी संसद के सम्मुख प्रस्तुत करेगा। इसमें तीनों सेवाओं के प्रस्ताव और एक केन्द्रीय प्रस्ताव तथा उड्डयन मंत्रालय और सार्वजनिक भवन और निर्माण मंत्रालय के रक्षा व्यय के विषय में विस्तृत सूचना शामिल होगी। इस सूचना का स्वरूप बाद में निर्धारित किया जायगा। इसका उद्देश्य रक्षा व्यय को सरल और स्पष्ट रूप में संसद के सम्मुख प्रस्तुत करना है जिससे व्यय पर अधिक प्रभावी नियंत्रण और संसद और जनता को मिलने वाली सूचना में सुधार किया जा सके।

६३. इन तीनों सेवाओं के अनुमानों पर प्रतिवर्ष पूर्ववत् बहस होती रहेगी।

१४. लेखा

६४. नया रक्षा मंत्रालय सभी रक्षा प्रस्तावों का लेखा संसद के सम्मुख प्रस्तुत करेगा। तीनों सेवाओं के प्रस्तावों और मंत्रालय के केन्द्रीय भाग के प्रस्ताव के लिए उत्तरदायी चार द्वितीय स्थायी अवर सचिवों को लेखा अधिकारी का पद-नाम दिया जायगा।

६५. स्थायी अवर सचिव के उत्तरदायित्व के अधीन साधनों के आवंटन और रक्षा कार्यक्रम के नियोजन में आवश्यकतानुसार यह संगठन सुदृढ़ केन्द्रीय वित्तीय नियंत्रण का प्रावधान करेगा। दैनन्दिन वित्तीय प्रबन्ध में कार्यकुशलता और मित-

व्ययता की दृष्टि से यह द्वितीय स्थायी अवर सचिवों की नियुक्ति और उनके विकेन्द्रीकरण का भी प्रावधान करेगा।

१५. प्रबन्ध

६६. सेवाओं का प्रबन्ध तथा उड्डयन मंत्रालय के उत्तरदायित्व से बाहर के आयुधों और सैनिक साज-सामान प्राप्त करने का कार्य प्रमुख कार्मिक एवं प्रशासनिक अधिकारियों, नौ सेना नियंत्रक, युद्ध सामग्री के मास्टर जनरल और (शाही नौ सेना) (स्थल सेना) और (शाही वायुसेना) के द्वितीय स्थायी अवर सचिवों के पास रहेगा। सेवाओं की कार्यकुशलता, सन्तोष और मनोबल इन्हीं के प्रयत्नों पर निर्भर करेगा।

६७. प्रत्येक सेवा के प्रबंध में कार्यकुशलता, नेतृत्व और मनोबल के लिए तथा वृत्ति हितों की सुरक्षा और सभी सैनिक और असैनिक कर्मचारियों के कल्याण के लिए एक केन्द्रबिन्दु की आवश्यकता होती है। रक्षामंत्री और रक्षा परिषद् के अधीन नौ सेना, स्थल सेना और वायु सेना बोर्ड यह आवश्यकता पूरी करेंगे। प्रत्येक सेवा का व्यावसायिक अध्यक्ष होने के कारण नौ सेना, स्थल सेना और वायु सेना-ध्यक्षों को इन बोर्डों में वरिष्ठ सेवा सदस्य का पद-नाम दिया जायगा।

६८. जहाँ कहीं भी व्यवहार्य हो वहाँ प्रत्येक सेवा के समान प्रबन्ध क्षेत्र में कार्य करने वाले कर्मचारियों को यथासंभव एक ही भवन अथवा एक दूसरे के निकट भवनों में रखा जायगा जिससे प्रबन्ध समस्याओं पर रक्षा आधार पर विचार किया जा सके। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्मिक और व्यूह रचना सम्बन्धी समस्याओं के रक्षा पक्ष पर विचार करने के लिए तीन सितारों वाले पद के रक्षा स्टाफ उपाध्यक्ष (कार्मिक और व्यूह रचना) की नियुक्ति करके प्रमुख कार्मिक और प्रशासनिक अधिकारियों की समितियों के संगठन को सुदृढ़ किया जाएगा। द्वितीय स्थायी अवर सचिव (रक्षा सचिवालय) के साथ मिलकर वह नए मंत्रालय के आंतरिक संगठन के आगे विकास और सेवाओं के प्रशासन की प्रबंध नीतियों और कार्यविधियों में निकट समन्वयन स्थापित करने के लिए उत्तरदायी होगा।

६९. वरिष्ठ अधिकारियों की पदोन्नति और नियुक्ति, सम्मान और पुरस्कार के प्रस्ताव निर्णय हेतु रक्षामंत्री के पास भेजने की व्यवस्था की जायगी।

७०. इन बोर्डों में नौ सेना, स्थल सेना और वायु सेना के अध्यक्षों, उप और सहकारी अध्यक्षों की उपस्थिति से इस बात को बल मिलता है कि रक्षा स्टाफ में अपनी भूमिका के अतिरिक्त नौ सेना, जनरल और वायु सेना स्टाफ प्रबन्ध कार्य में भी पर्याप्त योगदान करते रहेंगे।

७१. फिर भी नौ सेना, जनरल और वायु सेना स्टाफों का अधिकतर कार्य

और स्वीकृत रक्षा अनुसंधान, विकास और उत्पादन के कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए उड्डयन मंत्रालय एक अलग विभाग के रूप में कार्य करता रहेगा।

७८. उड्डयन मंत्रालय और नए रक्षा मंत्रालय के मध्य निकट सम्पर्क बनाए रखा जाना आवश्यक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है उड्डयन मंत्री रक्षा परिषद् की उन सभी बैठकों में उपस्थित रहता है जिनमें उसके विभाग को प्रभावित करने वाले विषयों पर विचार-विमर्श होता है। कार्यवाही आवश्यकताएँ निर्धारित करने, रक्षा अनुसंधान और विकास को नियंत्रित करने और आयुध प्रणाली विकसित करने की व्यवस्थाओं और उड्डयन मंत्रालय में घनिष्ठ सम्पर्क बना रहेगा। भविष्य में रक्षा अनुसंधान विकास और उत्पादन कार्यक्रमों की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी उड्डयन मंत्रालय की विभागीय मुख्य समितियों में रक्षा मंत्रालय को भी प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।

७६. रक्षा मंत्रालय और उड्डयन मंत्रालय के मुख्यालयों और अधिष्ठानों के मध्य सभी स्तरों पर पूर्णतः उन्मुक्त संचार व्यवस्था होगी। उड्डयन मंत्री को सूचित करके रक्षामंत्री और उसके वरिष्ठ अधिकारी स्वतन्त्रतापूर्वक उड्डयन मंत्रालय और इसके अधिष्ठानों के अधिकारियों को विचार-विमर्श के लिए आमंत्रित कर सकेंगे। उड्डयन मंत्रालय के वैज्ञानिकों को स्वतन्त्रतापूर्वक रक्षा मंत्रालय की समितियों में सम्मिलित किया जा सकेगा। उद्योग विकास सम्बन्धी सभी सूचनाएँ उड्डयन मंत्रालय द्वारा रक्षा मंत्रालय को दी जायगी और वही रक्षा मंत्रालय और उद्योग के मध्य आवश्यक सम्पर्क स्थापित करने में सहयोग देगा।

८० रक्षा मंत्रालय और उड्डयन मंत्रालय के मध्य घनिष्ठ विचार-विमर्श के महत्व को ध्यान में रखते हुए उड्डयन मंत्री और मुख्यतः अथवा पूर्णतः रक्षा परियोजनाओं में सम्बन्धित वरिष्ठ अधिकारियों को उन्हीं भवनों में स्थान दिया जायगा, जिनमें नीति निर्माण के लिए उत्तरदायी रक्षा मंत्रालय के कर्मचारी बैठते हैं। स्थान उपलब्ध होने पर नागरिक उड्डयन मंत्रालय के अन्य कर्मचारियों को भी पहले की अपेक्षा रक्षा मंत्रालय के अधिक निकट स्थान दिया जायगा।

८१. रक्षा मंत्रालय और उड्डयन मंत्रालय के मध्य कर्मचारियों के विशेषकर वैज्ञानिक कर्मचारियों के नियमित और सरल आदान-प्रदान की व्यवस्था की जायगी। इस उद्देश्य के लिए वर्तमान व्यवस्थाओं को सुदृढ़ किया जायगा।

८२. उड्डयन और रक्षा मंत्रालयों के मध्य सम्पर्क सुदृढ़ करने के इन उपायों और अनुसंधान और विकास कार्यक्रम को नियन्त्रित करने की नई और संशोधित कार्यविधि के फलस्वरूप व्यक्तिगत बड़ी परियोजनाओं को प्रोत्साहन प्राप्त होगा। अप्रत्याशित कठिनाइयों को जन्म देने वाले तकनीकी और मूल्य सम्बन्धी कारणों का शीघ्र और निश्चित सधान हो सकेगा और इन कठिनाइयों के समाधान के लिए

तुरन्त निर्णय लिए जा सकेंगे।

१८. आवासन

८३. रक्षा स्टाफ, रक्षा सचिवालय और रक्षा वैज्ञानिक स्टाफ और इनसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले प्रवध स्टाफों के कर्मचारियों को वाइट हॉल गार्डेन के उन भवनों में स्थान दिया जायगा जिनमें आजकल उड्डयन मंत्रालय और व्यापार बोर्ड के कार्यालय हैं। व्यापार बोर्ड को नए भवन में स्थानान्तरित कर दिया जाएगा।

८४ उड्डयन मंत्रालय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शेष सेवा विभागों को इस समय उपलब्ध अन्य भवनों में पुनर्वितरित कर दिया जाएगा।

१९. असैनिक कर्मचारी

८५ शान्तिकाल में इतना बड़ा विभागीय पुनर्गठन अभूतपूर्व है। इसके लिए रचनात्मक विचार और कल्पना के सक्रिय सहयोग और नए विभाग के सभी सदस्यों की निष्ठा का आधार विस्तृत करने की आवश्यकता होगी। सरकार को इस बात का पूर्ण विश्वास है कि अतीत में पूर्णत. किसी एक ही सेवा विभाग में कार्य करने वाले सभी श्रेणियों और वर्गों के नागरिक अधिकारियों में अपने उत्तरदायित्वों के प्रति यह दृष्टिकोण विकसित हो जायगा।

८६. भविष्य में इस विभाग के प्रशासनिक श्रेणी के सभी स्थायी कर्मचारियों का एक संयुक्त समूह बना दिया जायगा और इन्हें मुक्त रूप से मंत्रालय के किसी भी विभाग में नियत किया जा सकेगा। रक्षा मत्रालय और उड्डयन मंत्रालय में अन्य नागरिक सेवा श्रेणियों के वरिष्ठ कर्मचारियों, विशेषकर रक्षा वैज्ञानिकों का अधिक मुक्त आदान-प्रदान होना चाहिए।

८७. जहां कहीं भी व्यवहार्य होगा संयुक्त सेवाएँ और कार्यविधियाँ आरम्भ की जाएंगी।

२०. सुरक्षा

८८. सुरक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व जो अभी तक तीन सेवा मंत्रियों पर था अब रक्षामंत्री पर होगा। सम्बन्धित सुरक्षा कर्मचारियों के कार्य में समन्वय स्थापित करने और सुरक्षा नीति और व्यवहार के मानकीकरण को प्रोत्साहित करने के लिए एक वरिष्ठ और अनुभवी अधिकारी नियुक्त किया जाएगा।

२१. जनसम्पर्क

८९. एक रक्षा जनसम्पर्क स्टाफ गठित किया जायगा। वर्तमान रक्षा मंत्रालय और सेवा विभागों के सूचना कार्यालयों को समन्वित कर दिया जायगा, परन्तु जनसम्पर्क निदेशक के साथ-साथ प्रत्येक सेवा के मामले में विशिष्टताप्राप्त मुख्य सूचना अधिकारी बने रहेंगे।

२२ ऋतु विज्ञान कार्यालय

६०. ऋतु विज्ञान कार्यालय रक्षा संगठन का एक भाग तो नहीं है परन्तु यह अनेक वर्षों से वायु मन्त्रालय से संयुक्त रहा है। भविष्य में ऋतु विज्ञान कार्यालय का उत्तरदायित्व रक्षामन्त्री पर होगा। सारांश यह है कि ये व्यवस्थाएँ न तो वर्तमान प्रणाली में कोई परिवर्तन करती हैं और न ही नागरिक विज्ञान को प्रोत्साहित करने वाली राजकीय ऐजेन्सियों के संगठन की वर्तमान समीक्षा के फल पर कोई हानिकर प्रभाव डालती हैं।

२३ समय सारिणी

६१. आवश्यक विधेयक आगामी पतझड़ की ऋतु में पेश किया जाएगा।

६२. इसके पारित हो जाने पर नया रक्षा मन्त्रालय पहली अप्रेल १६६४ को स्थापित किया जायगा और उसी दिन से रक्षामन्त्री, राज्यमन्त्री, रक्षा परिषद् और इसके नौ सेना, स्थल सेना और वायु सेना बोर्ड तथा मन्त्रालय के वरिष्ठ अधिकारी नियुक्त किए जाएँगे।

६३. नए संगठन की कुछ अन्य विशेषताएँ यथा (कार्यक्रम और बजट) उपसचिव की नियुक्ति और रक्षा अनुसंधान और विकास कार्यक्रम के नियंत्रण की नई व्यवस्थाएँ अगली पहली अप्रेल से पूर्व ही कर दी जाएंगी। अन्य व्यवस्थाएँ नए मन्त्रालय के वाइट हॉल गार्डेन्स में स्थानान्तरित हो जाने पर ही की जा सकेंगी।

६४. स्थान उपलब्ध होने और नई आवश्यकताओं के अनुकूल पूर्णतः सज्जित हो जाने पर ये व्यवस्थाएँ यथाशीघ्र १६६४ में ही कर ली जाएँगी।
२ जुलाई १६६३.

(आ) जुलाई १६६३ के कमान पत्र २०६७ पर युनाइटेड किंगडम के संसद सदस्यों की टिप्पणियाँ*

कमान पत्र २०६७ की संस्तुतियों पर व्यवहार प्रारंभ करने के कार्यक्रम के अनुसार तत्सम्बन्धी विधेयक पतझड़ की ऋतु में पेश किया जायगा, परन्तु १ अगस्त १६६३ को श्री थोर्नीक्रोफ्ट (रक्षामन्त्री) द्वारा रक्षा के केन्द्रीय संगठन सम्बन्धी श्वेतपत्र पर ध्यानाकर्षण प्रस्ताव रखे जाने पर संसद के इन दोनों सदनों को इन प्रस्तावों पर प्राथमिक विचार-विमर्श का एक अवसर प्राप्त हो चुका है। श्री थोर्नीक्रोफ्ट और अन्य प्रतिष्ठित संसद सदस्यों की टिप्पणियाँ नीचे उद्धृत की गई हैं।

(१) श्वेतपत्र प्रस्तुत करते हुए श्री थोर्नीक्रोफ्ट ने कहा कि एकीकृत रक्षा मन्त्रालय का उद्देश्य केवल तीन पृथक्-पृथक् व्यक्तियों को एक स्थान पर एकत्र करना

---

* बृहस्पतिवार, १ अगस्त १६६३ के द टाइम्स (लन्दन) में लॉर्ड सभा और कॉमन सभा की कार्यवाही की रिपोर्ट देखिए।

ही नहीं है वे तो पूर्णतः एकीकृत मंत्रालय स्थापित करने को कृतसंकल्प थे। शक्ति और उत्तरदायित्व को केन्द्रित करने वाली प्रणाली पर व्यवहार करना सरल होता है परन्तु इसके कारण शीर्षस्थ व्यक्तियों पर अत्यधिक कार्यभार बढ़ जाता है। दैनन्दिन प्रशासनिक कार्य के शान्तिपूर्ण एवं सुगम विकेन्द्रीकरण के लिए एक तंत्र स्थापित करना आवश्यक होता है।

° ° ° °

वायुयान और इलेक्ट्रोनिक्स के क्षेत्रों में उड्डयन के सैनिक और असैनिक पक्षों के साथ उड्डयन मंत्रालय का घनिष्ठ सम्बन्ध था। सर्वोत्तम सलाह सुन लिए जाने पर सतुलन के रूप में उसने यह निष्कर्ष निकाला कि उड्डयन मंत्रालय को एक अलग मंत्रालय के रूप में ही रखा जाना चाहिए परन्तु वह रक्षा मंत्रालय और उड्डयन मंत्रालय में अधिक घनिष्ठ सहकार स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव करता था और सर फ्रैंक ली ने भी इस बात पर विशेष बल दिया था। उनके द्वारा स्थापित प्रत्येक संस्था लचीली होनी चाहिए क्योंकि विकास के साथ-साथ परिवर्तन आवश्यक होता है। इन संस्थाओं में विकास क्षेत्रों का पता लगाने और उन्हें गति प्रदान करने के लिए आवश्यक तंत्र का निर्माण किया जाना चाहिए।

रक्षा के सैनिक, प्रशासनिक और वैज्ञानिक पक्षों में सावधानीपूर्वक उचित संतुलन बनाए रखना चाहिए। वर्तमान युग में वैज्ञानिक पक्ष के बढ़ते हुए महत्व के कारण प्रशासन की ऐसी प्रणाली स्थापित करना अत्यावश्यक है, जिसमें प्रत्येक स्तर पर सैनिक, नौ सैनिक और वायु सैनिक की तथा प्रशासक और वैज्ञानिक की समन्वित सम्मति उन्हें प्राप्त हो सके। ऐसा कहना सरल है पर इस पर व्यवहार करना अत्यन्त कठिन है।

उन्होंने कहा कि सैनिकों की व्यक्तिगत निष्ठाएँ और परम्पराएँ सुरक्षित रखी जानी चाहिए। इस बात के लिए चाहे कुछ भी कहा जाय, युद्धक्षेत्र स्थित सैनिक स्थानीय कर्मचारियों के प्रति कभी उच्च सम्मान की भावना नहीं रखता, युद्ध मंत्रालय, नौ सेना बोर्ड अथवा किसी अन्य वस्तु के विषय में भी बहुत कम लोग सोचते हैं। उनकी निष्ठा अधिकतर उनके युद्धपोत रेजीमेन्ट अथवा स्क्वेड्रन के प्रति होती है और इस निष्ठा के परिणामस्वरूप लोगों ने महान कार्य किए हैं। सारे कमान पत्र में यह सिद्ध करने का पूरा यत्न किया गया है कि इस केन्द्रीय संगठन के माध्यम से हम इन निष्ठाओं और परम्पराओं में किसी प्रकार की काट-छाँट नहीं करना चाहते। उन्हें सुदृढ़ करने के लिए तो हम सदैव प्रयत्नशील रहेंगे।

शीर्षस्थ सेनाध्यक्ष

नई रक्षा और समुद्रपार नीति समिति वास्तव में दो कैबिनेट समितियों को मिलाकर बनाई गई थी। रक्षा स्टाफ का अध्यक्ष और सेनाध्यक्ष सरकार के व्याव-

सायिक सैनिक सलाहकार बने रहे और प्रधानमंत्री से भेंट करने का उनका परम्परागत अधिकार भी सुरक्षित बना रहा। प्रधानमंत्री के विचार से ऐसा करना उचित ही था।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे अपनी-अपनी सेवा के अध्यक्ष भी बने रहे। प्रधानमंत्री के लिए इस बात का बडा महत्त्व था, क्योंकि उसे उन व्यक्तियों की सलाह की आवश्यकता थी जो अपनी-अपनी सेवा की अध्यक्षता के लिए उत्तरदायी होने के साथ-साथ उस सेना के कार्यों का व्यक्तिगत अनुभव भी रखते हो।

रक्षा स्टाफ का अध्यक्ष, स्थायी अवर सचिव और मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार रक्षामंत्री के तीन व्यावसायिक सलाहकार होंगे।

मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार वैज्ञानिक पक्ष का अध्यक्ष होता है और इस पक्ष का महत्त्व प्रति वर्ष बढ़ता ही जा रहा है। और बातो के अतिरिक्त मंत्रालय से बाहर के व्यक्तियों की सलाह तथा तकनीकी, वैज्ञानिक और शास्त्रीय सम्मति प्राप्त करना भी उसका उत्तरदायित्व था। मंत्रालय मे अब बहुतायत से उपलब्ध व्यावसायिक ज्ञान के साथ बाहर के व्यक्तियों के कुछ विचारों को भी समन्वित कर लेना वास्तव मे बडा मूल्यवान होगा।

(२) श्री हीले का कथन था कि रक्षानीति अपने विकास के चरम बिन्दु तक पहुँच गई थी इस कारण सरकार द्वारा इसका पुनर्गठन करना आवश्यक हो गया था। रक्षानीति का विदेश और उपनिवेश नीति से समन्वय स्थापित करने में तथा विदेश मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय और समुद्रपार के अन्य विषयों से सम्बन्धित विभागो मे आवश्यक एकीकरण स्थापित करने मे असफल हो जाने के कारण पुराने संगठन और सशस्त्र सेनाओं पर सरकार का नियंत्रण समाप्त हो गया था। वर्तमान समय मे रक्षा और विदेश नीति मे समन्वय का अभाव विशेषरूप से अमंगलकारी हो सकता है क्योंकि सभी का विश्वास है कि हाल ही मे मास्को म सम्पन्न अणुपरीक्षणों पर प्रतिबंध लगाने का समझौता एक प्रक्रिया के अन्त का नही वरन् एक नई प्रक्रिया के जन्म का सूचक था। जब तक बडी शक्तियों की नीति म आधारभूत परिवर्तन न हो जाय तब तक यह समझौता मूल्यहीन है।

अब यह देखना है कि प्रस्तावित परिवर्तन रक्षा और विदेश नीति मे समन्वय स्थापित करने मे सहायक है अथवा नही? उसने इस बात पर खेद प्रकट किया कि श्वेतपत्र मे रक्षा और समुद्रपार नीति सम्बन्धी कैबिनेट समिति के विचार-विमर्श के लिए उचित कार्यसूची पेश करने हेतु कैबिनेट सचिवालय के स्टाफ को सुदृढ करने का कोई प्रस्ताव नही था। यदि रक्षा और विदेश नीति मे वास्तविक अर्थों मे समन्वय स्थापित करना है तो इस समिति को ऐसे कर्मचारियों की आवश्यकता होगी जो

उतने ही योग्य हों जितने साम्राज्यी रक्षा समिति के लिए लॉर्ड हैन्के ने तैयार किए थे।

यह भी स्पष्ट नहीं था कि प्रस्तावित संगठन का उद्देश्य एक दुर्ग का निर्माण करना है अथवा मात्र एक ओसारे का। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता था कि यह संगठन भविष्य में सेवाओं में और अधिक समन्वय स्थापित करने की दिशा में पहला पग होगा अथवा केवल एक नई संरचना को जन्म देगा, जिसमें प्रगति में बाधक निहित स्वार्थ तुरन्त अपने को इसके अनुकूल ढाल लेंगे।

संयुक्त कर्मचारियों के साथ-साथ पुराने कर्मचारियों का बना रहना अनेक स्थितियों में हानिकर था। संगठन और नियोजन में उन्हें सेवा आधार के बदले व्यावसायिक या मिशन आधार पर गठित किया जाना चाहिए, श्वेतपत्र में इस बात का कोई संकेत नहीं था।

यह भी बड़ा संदेहास्पद था कि मंत्रियों के प्रभावी सहयोग से वंचित होकर रक्षामंत्री नए उत्तरदायित्व के बृहद् भार को किस प्रकार वहन कर पाएगा। तीनों राज्यमंत्रियों की स्थिति तीनों सेवाओं के शेष भाग के जनसम्पर्क और कल्याण अधिकारी से अधिक नहीं रह जाएगी।

उसे विश्वास था कि नए संगठन की प्रस्तावित मंत्री संरचना के कारण रक्षा मंत्री को विचार-विमर्श के लिए समय ही नहीं मिल पाएगा और परिणामस्वरूप रक्षामंत्री के सैनिक और नागरिक सेवा सलाहकारों के मध्य शक्ति की मनमानी खींचतान में ही नीति-निर्धारण करना पड़ेगा। आधारभूत निर्णय स्वयं लेने के लिए मंत्री महोदय के पास न तो समय होगा और न ही शक्ति।

सेवाओं के मध्य होने वाले अपव्यय और दोहरेपन को रोकने और यथासंभव व्यावसायिक आधार पर संयुक्त सेवाएँ विकसित करने के लिए नए रक्षामंत्री के अधीन एक वरिष्ठ मंत्री की नियुक्ति की जानी चाहिए। रक्षामंत्री के अधीन इस नए मंत्री को रक्षा बजट तैयार करने का उत्तरदायित्व सौंप कर यह कार्य सरलता-पूर्वक किया जा सकता है।

(३) श्री शिनवेल ने श्वेत पत्र का स्वागत किया और रक्षा संगठन के आधुनिकीकरण की आवश्यकता से सहमति व्यक्त की। परन्तु उनका विचार था कि इससे राजनीतिक कर्मचारियों पर सैनिक कर्मचारियों का आधिपत्य स्थापित हो जाएगा। इस बात पर उन्होंने घोर आपत्ति प्रकट की। तीन सेवा मंत्रियों का पद अवनत करके उन्हें सैनिक कर्मचारियों के अधीन नहीं रखा जाना चाहिए। उन्हें नौ सेना सचिव, स्थल सेना सचिव और वायुसेना सचिव का पद-नाम दिया जाना चाहिए।

लॉर्ड सभा मे निम्नलिखित टिप्पणियां हुई —

(४) इस विषय के विशेषज्ञ ऐलमेन के वाइकाउन्ट मॉन्टगोमरी न इस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि यह स्वीकार करना पडेगा कि नया सगठन उचित एव उपयुक्त व इस समय सरकारी क्षेत्रो मे स्वीकार्य सगठन के मध्य एक समझौता है।

अन्तत. एक ही सेवा रह जाएगी जिसका कुछ भाग सागर पर, कुछ वायु मे और कुछ धरती पर कार्य करेगा। अभी उस प्रणाली को अपना लेना सभव नही है, क्योकि सरकारी क्षेत्र और राष्ट्र इसे स्वीकार नही करेगा। परन्तु ऐसा होकर रहेगा और उसके अनुमान के अनुसार इस प्रणाली का जन्म अगले विश्वयुद्ध के पश्चात् होगा।

नए सगठन के कारण शीर्षस्थ व्यक्तियो मे पर्याप्त कमी हो जायगी। यदि ऐसा नही हुआ तो इसे असफल माना जाएगा। उसे आशा थी कि नए मत्रालय का जन्म हो जाने पर सेवामंत्रालयो के कर्मचारियो की वडे पैमाने पर छटनी करने की संस्तुति की जायगी।

(उसने कहा) कि रक्षामत्री को अभी से इस छटनी के लिए तैयारियां प्रारंभ कर देनी चाहिए। छटनी के लिए एक विस्तृत और सशक्त योजना की आवश्यकता होगी।

युद्ध का उच्चतर निर्देशन और शान्तिकाल मे सैनिक तत्र का निर्देशन सदैव सुदृढ राजनीतिक हाथो मे रहना चाहिए। नए सगठन के अध्ययन से पता लगता है कि तीनो सेवा मत्रियो का पद घटा कर राजनीतिक नियत्रण कमजोर कर दिया गया है। १६४७ से १६६२ तक दस रक्षामत्री आए और गए। यदि यही क्रम चलता रहा तो नया सगठन कभी सफल नही हो पाएगा।

(उसने कहा) इस श्वेतपत्र से यह भी ज्ञात होता है कि सेवा अध्यक्षो को प्रधानमत्री से सीधे भेंट करने का अधिकार दिया जायगा। उन्हे इस प्रकार प्रधानमंत्री पर दबाव डालने की अनुमति दिए जाने को मैं पूर्णत अनुचित मानता हूँ।

रक्षा परिषद् को परमाणु युद्ध का गभीर अध्ययन करना पडेगा। (उसने कहा) भविष्य मे होने वाले किसी युद्ध मे हमारी व्यूहरचना और प्रशासनिक सगठन हमारी कोई सहायता कर सकेंगे, इस बात की कल्पना करना भी मेरे लिए असभव है। हजारो अणुआयुधो के आदान-प्रदान के पश्चात् भी यह प्रशासनिक प्रणाली चलती रहेगी ऐसा कोई निपट मूर्ख व्यक्ति ही सोच सकता है।

आणविक आयुधो के प्रथम आदान-प्रदान के पश्चात् ही उस क्षेत्र की धरती पर जहां इन आयुधो का विस्फोट हो चुका होगा, किसी भी प्रकार की कोई भी वस्तु नहीं टिक पाएगी। केवल सागर के वक्ष पर ही थोडा-बहुत सैन्यसचालन सभव होगा।

(५) अर्ल ऐटली ने कहा कि इस रवैतपत्र का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें रक्षा मंत्रालय को ऐसा स्थान बना दिया गया है जहां मंत्रियों को मनमाने ढंग से ऊपर-नीचे पटका जा सकता है। समस्याओं का समाधान करने के लिए किसी भी व्यक्ति को वहां अधिक समय तक नहीं टिकने दिया गया। अब रक्षामंत्री का पद ऊँचा और सेवा मंत्रियों का पद नीचा किया जा रहा है। उन्हें यह बात नापसंद थी।

उचित राजनीतिक नियंत्रण बनाए रखना बड़ा आवश्यक है। प्रधानमंत्री को रक्षा सम्बन्धी विषयों में रुचि रखनी चाहिए और स्वयं इनकी देखभाल करते रहना चाहिए। उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस योजना पर पुनर्विचार किया जाएगा और नई सरकार के अधीन ही इस पर व्यवहार आरम्भ किया जाएगा।

राज्य रक्षा मंत्री (शाही वायु सेना)
प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार
सेवा बोर्ड
उप प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार (अध्ययन)
उप प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार (परियोजनाएँ)
सांख्यिकीय समूह
(शाही नौ सेना), (स्थल सेना) और (शाही वायु सेना) के प्रमुख वैज्ञानिक
रक्षा विज्ञान सचिवालय
रक्षा वैज्ञानिक स्टॉफ
रक्षा परिषद् का वायु सेना बोर्ड
अध्यक्ष राज्य मंत्री
सहकारी अध्यक्ष और सदस्य राज्य मंत्री अवर सचिव,
वायु सेनाध्यक्ष, वायु सेना के उप और सहकारी अध्यक्ष कर्मचारियों
का वायु सदस्य, आपूर्ति और संगठन का वायु सदस्य, (शाही वायु सेना)
का द्वितीय स्थायी अवर सचिव, (शाही वायु सेना) का प्रमुख वैज्ञानिक
कर्मचारियों के वायु सदस्य का स्टाफ
आपूर्ति और संगठन के वायु सदस्य का स्टाफ
(शाही वायु सेना) के द्वितीय स्थायी अवर सचिव का स्टॉफ
(शाही वायु सेना) के प्रमुख वैज्ञानिक का स्टाफ

BIBLIOGRAPHY

CHAPTER I

Amos, Maurice : The American Constitution.

Amos, S. : The Science of Politics

Bagehot, W. : The English Constitution.

Barker, E. : Greek Political Theory · Plato and His Predecessors, 1925; The Citizen's Choice, Political Thought from Spencer to the Present Day, 1915

Beni Prasad : Theory of Government in Ancient India.

Bosanquet, B. : Philosophical Theory of the State, 1899.

Bryce, J. : The American Commonwealth, 1888.

Cambridge History of India, Vol I, Edited by E. J. Rapson.

Clemenceau, Georges : Grandeur and Misery of Victory, In the Evening of My Thought, Constable.

Crane, R. T. : The State In Constitutional and International Law.

Creswell, John : Generals and Admirals, Longmans Green.

Dodd, W. F. : Modern Constitutions.

Dunning, W. A. : Political Theories, 3 vols

Earle, E. M. : Makers of Modern Strategy, 1948.

Enock, A. G : This War Business

Finer, H. : The Theory and Practice of Modern Government, Vol I and II.

Follett : New State.

Friedrich, C. J. : Constitutional Government and Politics

Hobbes, Thomas : Leviathan—Introduction by Prof. A D Lindsay (Everyman ed.), 1914

Jowett, B. : The Republic of Plato, translated into English, 3rd ed. 1920; Aristotle's Politics—Introduction by H. W. C. Davis 1885.

Keith, A. B. : Constitutional Laws of the British Dominions.

Kraus, Prof. : Crisis of Democracy.

Laski, H J : A Grammar of Politics, 1925, Introduction to Politics, Parliamentary Government in England.

Locke, John : Two Treatises on Government.

Machiavelli : The Prince—translation by N. A. Thomson.

Maciver, R. M. : The Modern State, 1926.

Marriott, Sir John : The Mechanism of the Modern State, Vols. I and II.

Martet, John : Clemenceau, Longmans Green.

Mcilwain, C. H. : The Growth of Political Thought in the West, 1932.

Middleton, W. L. : The French Political System.

Moore, H. : Commonwealth of Australia.

Muir, Ramsay : How England is Governed.

Ogg, F. A. : Governments of Europe.

Oppenheim : International Law.

Ostrogorski, M. : Democracy and the Organisation of Political Parties.

Radcliffe, Lord : The Problem of Power, Reith Lectures, 1951.

Renn, Dudwing : Warfare—The Relation of War and Society.

Ross, W. D. : Aristotle, 1924.

Salant, E. : Constitutional Laws of the British Empire.

Shamasastry, Dr. R. : Kautilya's Arthasatra; The Federalist.

Shiva Rao, B. : Select Constitutions of the World.

Sidgwick, H. : Elements of Politics.

Sitaramayya, Dr. Pattabhi : History of The Indian National Congress, 2 Vols.

Strong : Modern Political Institutions.

Toynbee, A. J. : War and Civilization.

Welldon, J. E. C. : The Politics of Aristotle, 1892.

Zimmerman, A. E. : Nationality and Government.

CHAPTER II

'Abdullah : Tarikh-i-Daudi—Partly translated by Elliot and Dowson IV, 434-513.

Abu-'l-Fazl : Akbar-nama : Ain-i-Akbari, published by the A S. B in the Bibliotheca Indica Series text, 3 vols

Al-'Utbi Tarikh-i-Yamini

Ali, Syed Ameer : A Short History of the Saracens, London, 1921

Altekar Village Communities in Western India, Bombay, 1927, State and Government in Ancient India Banaras Hindu University, 1949.

Anjaria, J J : The Nature and Grounds of Political Obligation in the Hindu State, Longmans Green 1935

Arnold, Sir Thomas W : The Caliphate, London, 1884

Baihaqi, Abu-'l-Fazl. Tarikh-i-Baihaqi, Bibliotheca Indica series of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1862

Bakhsh, S Khuda. Essays Indian and Islamic, London, 1912; Politics in Islam, Calcutta, 1920, History of the Islamic Peoples, Calcutta, 1914

Bhandarkar, D R : Some Aspects of Ancient Indian Polity, Banaras Hindu University, 1929

Brahaspatya Arthasastra

Budauni, 'Abd-ul-Qadir Muntakhab-ut-Tawarikh, text, Bibliotheca Indica Series of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1865, English translation in the same series. *Vol I by Lt. Col Ranking*, Vol. II by the Rev. W. H Lowe, Vol. III by Lt. Col Haig

Cambridge History of India, Vols I, III, IV

Chand Bardai. *Prithviraj Raso (Hindi)*

Davids, Rhys Dialogues of the Budhha; Buddhist India

Dharma Sastra Sanghraha : Ed. Jivananda Vidyasagara, Calcutta, 1876. *(Contains the texts attributed to Atri,* Vishnu, Harita, Yajnavalkya, Ushanas, Angiras, Yama, Apastamba, Samvarta, Katyayana, Brishapati, Pracara, Vyasa, Sankha, Likhita, Daksha, Satatapa, Vasishatha, Gautama and Vriddha Gautama).

Dikshitar, V. R. R. : Hindu Administrative Institutions, Madras, 1929, Mauryan Polity, Madras, 1932

Elliot, Sir H. M. and Prof. John Dowson : The History of India as Told by Its Own Historians, Trubner, 1867-1877.

Erskine, W. A. : History of India under Baber and Humayun, 1854.

Fairlie, J. A. : British War Administration, New York, 1919.

Fick : Social Conditions in North Eastern India at the Time of the Buddha, translated by S K. Maitra.

Fleet : Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III (Gupta Inscriptions), Calcutta, 1888.

Flournoy, F. R. : Parliament and War, London, 1927.

George, Lloyd : War Memoirs (All the volumes).

Ghoshal, U. : A History of Indian Political Theories, Calcutta, 1923; Hindu Revenue System, Calcutta, 1923; History of Public Life in Ancient India, Vol. I, Calcutta, 1944.

Gulbadan Begam : Humayun-nama, Persian text, edited and translated by A. S. Beveridge, 1902.

Haig, Maj.-Gen. M. R. : The Indus Delta Country, 1894.

Hankey, M. P. A. : The War Effort of the Dominions: The Nineteenth Century and After, 1943; "The Origin and Development of the Committee of Imperial Defence," The Army Quarterly, 1927.

Havell, E. B. : History of Aryan Rule in India.

Hertel, J. : Literarisches aus dem Kautilyasastra, WZKM, 1910.

Hillebrandt, A. : Uber das Kautilyasastra, Breslau, 1908.

Hultzsh: Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. I (Asoka Inscriptions) Oxford, 1925.

Hussain Wa'iz-i-Kashifi : Akhlaq-i-Muhsini, translated into English by H. G. Keene, Hertford, 1850.

Ibn Batuta : Tuhfat-un-Nuzzar fi Ghara'ib-i l-Amsar, Cairo, A. H. 1322.

Imperial Gazeteer of India.

Irvine, W. : Army of the Indian Moghuls, 1903.

Jacobi, H. : Kultur-sprach, und Literar-historisches aus dem Kautiliya. Sitz. KPA, 1911.

James, H. G. : Principles of Prussian Administration.

Jayaswal : Hindu Polity, Calcutta, 1924.

Kalhana : Rajatarangini, translated by M S Stein, Westminster, 1900.

Kane, P. V. · History of Dharmasastra, Vol III, Chapters I—X

Keith, A. B . British Cabinet System 1830-1938 London, 1939

Kruger, F. : Government and Politics of the German Empire.

Lane-Poole, Stanley The Muhammadan Dynasties, Constable, London, 1894, Baber (Rulers of India), 1899

Law, N. N. . Aspects of Ancient Indian Polity, Oxford, 1921, Interstate Relations in Ancient India, Calcutta, 1920.

Macdonell and Keith Vedic Index of Names and Subjects, 1912.

Majumdar, R. C. , Corporate Life in Ancient India, Calcutta, 1922.

Majumdar and Altekar . The Age of the Vakatakas and the Guptas, Lahore, 1946

Manava Dharma Sastra, Ed N. N Mandlik with Commentaries, Bombay, 1886, J Jolly, London, 1887, Earlier editions, Calcutta, 1813, London, 1825, Paris, 1830

M'Crindle . Invasion of India by Alexander the Great, Westminster, 1896, Ancient India as Described by Magasthenes, Arrian, etc. Calcutta, 1906.

Mehra, R N · Pre-Buddhist India, Bombay, 1939

Minhaj ud-Din B Siraj-ud-Din . Tabaqat-i-Nasiri, text, Bibliotheca Indica Series of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1864.

Mookerji, R K Local Self-Government in Ancient India, Oxford, 1920

Moreland, W. H India at the Death of Akbar, 1920, From Akbar to Aurangazeb, 1923.

Muhammad Haider Dughlat · Tarikh-i-Rashidi, translation of the Persian text by N. Elias and E Denision Ross 1895

Muhammad Qasim called Farishta . Tarikh-i-Firishta, Persian text edited by J. Briggs, 1831, Lithographed edition, Lucknow, 1864, translated by J Briggs, London, 1829, reprinted Calcutta, 1908.

Muir, Sir William : Annals of the Early Caliphate, Smith and Elder, 1883, The Caliphate, its Rise, Decline and Fall, Religious Tract Society, 1892.

Nancy Ki Khyat (Hindi)

Narada Smriti, Ed. Jolly, Calcutta, 1881.

Nilakanta Sastri, K. A. : Studies in Chola History and Administration, Madras, 1932.

NILAKANTHA : Nitimayukha.

Niazm-ud-Din Ahmad Ibn Muhammad Muqim : Tabaqat-i-Akbari, Persian manuscript in Bodleian (Elliot 381) edited and translated by B. De, Bibliotheca Indica Series, (A dry chronicle of events, without comment, written by a highly placed and therefore cautious official. The chronology is faulty but the work is specially valuable for a record of events in Gujarat, where the author was much employed.)

Ojha, Rai Bahadur G. H. : History of Rajasthan (Hindi).

Prasad, Beni : History of Jehangir, 1922 with a full bibliography; The Political Theory in Ancient India, Allahabad, 1927.

Qureshi, I. H. : The Administration of the Sultante of Delhi, Sh. Muhammad Sharf, Lahore, 1944.

Rangaswami, Aiyangar, K. V. : Some Aspects of Ancient Indian Polity, Madras, 1935.

Raverty, Major H. G. : "The Mihran of Sind and Its Tributaries," Journal of the Asiatic Society of Bengal, 1892.

Saksena, Banarsi Prasad : History of Shah Jahan of Delhi, Allahabad, 1932.

Saran, P. : Studies in Mediaeval Indian History, Delhi Printing Press, 1952.

Sarda, Har Bilas : Hammira of Rantahambhor, the Last Great Chauhan Monarch, Ajmer, 1921.

Sarkar, Jadunath : History of Aurangzeb (based on original sources) 5 vols.

Schellendorff, General Brosart Von : The Duties of the General Staff, 1905.

Sen, A. K. : Studies in Ancient Indian Political Thought, Calcutta, 1926.

Shams-i-Siraj Afif : Tarikh-i-Firuz Shah, Bibliotheca Indica Series of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1891.

Shams-ul-Ulama Maulana Maulavi Muhammad Husain, Azad . Darbar-i-Akbari (Urdu), Raifah-i-Amm Press, Lahore, 1898. A useful compilation based chiefly on the works of Aba'-l-Fazl

Sharaf-ud-Din Ali of Yazd · Zafaranama, Bibliotheca Indica Series of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1887

Sinha, H N : Sovereignty in Ancient Indian Polity, London, 1938.

Smith, V A · The Early History of India, 3rd edition, Oxford, 1914; Akbar the Great Moghul, 1917 and 1919

Sukraniti.

Tod, Lt. Col James : Annals and Antiquities of Rajasthan, edited by William Crooke, CIB, Oxford, 1920

Tuzuk-i-Jahangir, by Jahangir himself to the 17th year of his regin (1622-23) and continued under his direction to the nineteenth year by Mu'tamid Khan, Lithographed at Aligarh, 1864

Vaidya, C. V. : History of Mediaeval Hindu India, Oudh Book Agency, 1924.

Vandyopadhyaya, N C Development of Hindu Polity and Political Theories, Calcutta 1927.

Visvanathan : International Law in Ancient India, Longmans Green, 1925.

Watters : On Yuan Chwang's Travels in India. London, 1904.

Wilkinson, Spencer : The Brain of an Army.

Willoughby, W. W. . Prussian Political Philosophy

Yajnavalkya Dharma Sastra, Ed. Stenzler, Berlin, 1849, Mitakshara, Bombay, 1909.

Ziya-ud-Din Barani : Tarikh-i-Firuz Shahi, Bibliotheca Indica Series of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1862.

CHAPTER III

Anderson, F. M : Constitutions

Anson, Sir William R. : The Law and Custom of the Constitution

Beaverbrook : Politicians and the War, 2 Vols , Report for the year 1917, Command Paper 9005/1918, Command Paper 9055/1918, Report of the Sub-Committee of the Committee of Imperial Defence on National and Imperial Defence-Command Paper 2029/1924

Bryce, J. . Modern Democracies, New York, 1921.

Chatfield, Lord Admiral of the Fleet, The Navy and Defence, 2 vols., London 1942-47, It Might Happen Again, 1947, First Report of the War Office (Reconstitution) Committee, 1904; First Report of Dardanelles Commission 1916. Statements Relating to Defence, 1935 (Cmd 4827), 1936 (Cmd 5107), 1937 (Cmd 5474), 1938 (Cmd. 5682), 1939 (Cmd 5944), 1946 (Cmd 6923), 1958 (Cmd 476).

Churchill, Winston · The Second World War, all volumes; World Crisis

Daniels. H G. · The Framework of France, London 1937.

Davis, S C. The French War Machine, London, 1937.

Dodd, W. F. Modern Constitutions.

Fuller, Maj Gen, J F C. Empire Unity and Defence, 1934.

Garner J. W. : Political Science and Government; The Presidency of the French Republic.

Government of India Act, 1935.

Hancock, W. K. and M M Gowing . British War Economy, London, 1949.

Hanotaux, G. : Contemporary France, translated by J. C. Tarver and E. Sparvel, Bayly, New York, 1903-9.

Howard, J. E. : Parliament and Foreign Policy in France, London, 1948,

Jennings, Iver W. : Cabinet Government.

Johasava, F. A.: Defence by Committee, British Committee of Imperial Defence, 1859-1959. 1960.

Keith, A. B. : The Constitution of England, 2 vols, The Dominions as Sovereign States, London, 1938; War Government of the British Dominions, Oxford, 1921.

Keyes, R. J. B., Admiral of the Fleet Lord; Amphibious Warfare and Combined Operations, Cambridge, 1943.

Lindsell, Sir W. G. : Military Organisation and Administration, 27th edition by Brig, J. F. Benoy, Aldershot, 1948.

Marquis of Salisbury : Life of Robert, Vol. II.

Mckinley, S. B. : Democracy and Military Power, 1934.

Middleton, W. L . The French Political System London, 1932.

Munro, W. B : Governments of Europe

Ogg, F. A. · European Governments and Politics

Pickles, D. M : France between the Republics, London, 1946

Pickthorn, Kenneth *Some Historical Principles of the Constitution*

Renouvin, P. Forms of War Government in France, New Haven, 1927

Sait E. M Government and Politics of France, Yonkers, 1920

Schumann · War and Diplomacy in France, 1931

Sharp, W. R. : The Government of the French Republic, New York, 1938

South African year Book, 1951

Statesman's year Book, 1951

Weeks, Lt. Gen Sir R. M : Organisation and Equipment for War, Cambridge, 1950, The Central Organisation for Defence, Cmd. 6923 of 1946, The Organisation for Joint Planning, Cmd. 6351 of 1943; Central Organisation for Defence, Treasury, June 1950

CHAPTER IV

Broome, A. . Rise and Progress of the Bengal Army, Calcutta 1850.

Cole, Brig D H. . Imperial Military Geography

Curzon of Kedleston, the Marquis The Government in India, 2 vols., 1925

Fortescue, J. W. : History of the British Army, Vol III

Harrison, More W. . The Commonwealth of Australia, 1910. The Report of the Royal Commission on the Constitution–Published in 1929.

Hon Brooke, Claxton . Canadian Defence Programme, Report of the Department of National Defence for Period ending 31st March, 1951; The Statutes of Canada, 1951 (latest volume)

Jennings, Iver W. : The Laws of the British Commonwealth

Keith, E B *Responsible Government in the Dominions*, Constitutional Law of British Dominions; Great Britain and the Dominions, Government of British Empire.

Kennedy, W. P. N. : The Constitution of Canada; Cambridge History of the British Empire, Vol. VI—Canada.

Latham : Law and the Commonwealth.

Lyall, Sir Alfred : Rise and Expansion of the British Dominion in India, 1910.

Malcolm, Sir John : The Government of India.

Mansireb, N. : Survey of British Commonwealth.

Napier, Sir Charles : Defects-Civil and Military of the Indian Government.

Portus, G. V. : Studies in the Australian Constitution; Cambridge History of the British Empire, Vol. VII, Australia; The Constitution of Constitutional Precedents published by the Constituent Assembly of India, 1947.

Roberts, P. E. : India, 2 vols., Oxford, 1916-20.

Salant, E. : Constitutional Laws of the British Empire.

Thornton, Edward : History of the British Empire in India, 6 Vols.

Tucker, Dr. G. N. : The Naval Service of Canada—Its Official History, published by authority of the Ministry of Natural Defence, 1952.

Wynes, W. A. : Legislature and Executive Powers in Australia, 1936; Yearbook of the Commonwealth of Australia, 1951.

Zimmerman, A. E. : The Third Empire; The Canadian Year Book; The League of Nations Armament Year Book, 1938.

CHAPTER V

Beishline, J. R. : Military Management for National Defence; The National Security Organisation—A Report to the Congress, Feb. 1949 US Govt. Printing Office, Washington; National Military Establishment; First Report of the Secretary of Defence, 1948 US Govt. Printing Office, Washington; Semi Annual Report of the Secretary of Defence and the Semi Annual Reports of the : Secretary of the Army, Secretary of the Navy, Secretary of the Air Force—July 1 to December 31,1950 US Govt. Printing Office, Washington; Financing Defense : An Address by W. Randloph Burgess, US.

Berdahl, C. A. : War Powers of the Executive in the US, the University of Illinois, Studies in Social Sciences IX, Nos 1—2 Urbana, 1921.

Binkley, W. E : Powers of the President, New York, 1937

Black, H. C. : The Relation of the Executive Power to Legislation, Princeton, 1919

Corwen, E. S . The President . Office and Powers, History and Analysis of Practise and Opinion, New York, 1940

Curtis, G. T : Constitutional History of the United States,2 vols. New York, 1889, 1896

Ganol, W. A. : The History of the U S Army, London, 1924

Hockett, H. C : The Constitutional History of the United States, 1776-1826, New York, 1939.

Howard, L. V. and Bone, H A . Current American Government, New York, 1943.

Learned, H. B. : The President's Cobinet, New Havel, 1912

McLaughlin, Constitutional History of the US, New York, 1935

Nelson, O L. : National Security and the General Staff, Washington, 1946.

Ogg, F. A. and Ray, P O . An Introduction to American Government, 8th ed. New York, 1945.

Scott, J. B. : The United States : A Study in International Organisation, New York, 1945.

Tansill, C. C. . "The War Powers of the President of the US" (with special reference to the beginning of hostilities), The Political Science Quarterly, Vol. 45 New York, 1930.

Wheare K. C. : Federal Government

Williams, T. H. : Lincoln and His Generals, Hamish Hamilton; Office of Chief of Military History, Command Decisions, 1960.

CHAPTER VII

Bevan, E. : German Social Democracy During the War

Daniels, H. G. : The Rise of the Germany Republic

Delbruck, H. Government and the Will of the People (trans. by R. S. Mac Elwell)

Gilbert, Relix; Hitler Directs His War (records annotated by)
Grey C. G. : The Luftwaffe.

Hauptmann, H. : The Rise and Fall of the Luftwaffe

Hart, B. H L. : Otherside of the Hill : Germany's General's Their Rise and Fall, with Their Own Account of Military Events.

Headlam-Morey, A. : The New Democratic Constitutions of Europe.

Hinsley, F. H. : Hitler's Strategy

Kraus, H. . The Crisis of German Democracy

Lee, W/C Asher : The German Air Force.

Lowell, A. L. : Governments and Parties in Continental Europe.

Luderderft, E. von : The Nation at War, 1936.

Lutz, R. H. : The German Revolution.

Mattern, J. : Principles of the Constitutional Jurisprudence of the German National Republic.

Necker, Dr. Wilhelm : The German Army of Today, London, 1943; Nazi Germany Can't Win; Germany's Strategic Aims and Weaknesses.

Newmann, F. Behemoth : The Structure and Practice of National Socialism. London, 1942.

Raleigh, J. M. : Behind the Nazi Front.

Rosinsky, Herbort; The German Army.

Rittar, B. : Stuatskurst und Kritesbandwerk, 1955, 1960.

Rosenberg, A. : The Birth of the German Republic (trans. by I. F. D. Morrow).

Scheidemann, P. : The Making of New Germany (trans. by J. E. Michell).

Stenning, J. H. : The German Revolution and After (trans. by)
Westphal, Siegfried : The German Army in the West, 1951.

Zurcher, A. J. : The Experiment with Democracy in Central Europe.

CHAPTER VIII.

Coker, F. W. : Recent Political Thought.

Dickes, E. W. : The Fascist Exposed ; A Year of Fascist Domination (translation).

Goad, H. E · The Making of the Corporate State

Haider, C. : Capital and Labour under Fascism, The Meaning and Significance of Fascism

Langsam, W C The World Since 1914

Mussolini, B. . My Autobiography

Ogg, F A League of Nations Armaments Year Book , European Government and Politics, The Government of Europe

Salvemini, G The Fascist Dictatorship in Italy

Schneider, H. W : Making the Fascist State

Sforza, Count C Makers of Modern Europe

Villari, L : The Fascist Experiment

CHAPTER IX

Benedict, R , The Chrysanthemum and the Sword, 1946

Byas, Hugh Japanese Enemy His Power and His Vulnerability

Canston, E. E. N *Militarism and Foreign Policy in Japan.*

Chambers's Encyclopaedia : "Japanese Law "

Crow, Carl *Japan's Dream of World Empire*

Deva, Jaya : Japan's Kampf

Green, L. C "Law and Administration in Present Day Japan," Current Legal Problems.

Grew, J. C, : Report from Tokyo A Warning to the United Nations.

Howard, H. P . The Military in the Japanese Government

Morrison, Ian : This *War Against Japan*

Quigley, H S . Japanese Government and Politics.

Royal Institute of International Affairs , Japan in Defeat—A Report, 1945.

Tanin, O. and Yohan E , *Militarism and Fascism in Japan.*

Whyte, Frederick : Rise and Fall of Japan

Yukota, K. : "Renunciation of war in the New Japanes *Constitution*," Japanese Annual of International Law, 1960

CHAPTER X

Alexinsky, G. : Russia and the Great War (trans. by B. Miall).

Armaments Year Book of the League of Nations.

Brameld, T. D. : A Philosophic Approach to Communism.

Coker, F. W. : Recent Political Thought.

Cole, M. : The Intelligent Man's Review of Europe Today.

Colton, E. : The XYZ of Communism.

Dean, V. M. : The Political Structure of the Soviet State.

Dodd, W. F. : Modern Constitutions, Vol. 2.

Fedotov-White, D. M. : The Growth of the Red Army, Princeton, 1944.

F-Lonsky, M. T. : Towards an Understanding of the USSR, New York 1939.

Gurevich, S. and Partigul, S. : The New Economic Upswing of the USSR in the Post-war Five Year Plan Period. "Constitutional Precedents," published by the Office of the Constituent Assembly of India.

Harper, S. N. : The Government of the Soviet Union, New York 1935. Civic Training in Soviet Russia.

Hart, B. H. Lidell : The Other Side of the Hill, London, 1948.

Karpinsky, V. : The Social and State Structure of the USSR.

Keesing's Contemporary Archives, 1944, 1950.

Kluchevsky, V. O. : A History of Russia (trans. by C. J. Hogarth).

Kovalevsky, M. : Russian Political Institutions.

Laski, H. J. : Communism.

Lenin, V. I. : The State and Revolution.

Miljonkov, P. : Russia and Its Crisis.

Nearing, S. : Education in Soviet Russia.

Ogg, F. A. : European Governments and Politics, 2nd ed., New York 1939.

Oppenheim, L. : International Law, Vol. I.

Pares, B. : A History of Russia.

Pinkevitch, A. P. : The New Education in the Soviet Republic,
Constitution of the Union of the Soviet Socialist Republics.
Postgate, R. W. : The Bolshevik Theory.
Saik, A. J. : The Birth of Russian Democracy.
Shotwell, J. T. Governments of Continental Europe, New york 1940
Stalin, J. : Leninism (trans. by E. and C. Paul)
Stewart, G. : The White Armies of Russia.
Tomster. J. . Political Power in the USSR 1917 to 1947, New york 1948.
Traimin, I. P. : The Stalin Constitution, London,1943.
Vandervelde, E. : Three Aspects of the Russian Revolution.
Wallenberg, E. : The Red Army, London, 1940.
Welb, S. And B. : Soviet Communism, 2 vols., 3rd Edition, London, 1946.

CHAPTER XI

A Guide to New China, Foreign Languages Press, Peking, 1952.
Bodde, Dark : Peking Diary, A Year of Revolution, 1951.
Edward, Hunter: Brain Washing in Red China.
Forman, H.: Report from Red China.
Green, O M China's Struggle with Dictators.
Howe, D. N. : China Among the Powers
Mc Nair, H. F. China in Revolution.
New China, Forges Ahead, Foreign Languages Press, Peking, 1952.
Pratt, Sir J. T. : War and Politics in China.
Ratten Bury, H B. : Face to Face with China

CHAPTERS XII, XIII AND XIV

Acheson. D. : Power and Diplomacy, 1958.
Arnold-Forster, W. · "The Great Powers Veto-What should be done ?" Political Quarterly, XIV, 1948, pp. 40-49
Atlantic Alliance-NATO's Role in the Free World: A report by a study group of the Royal Institute of International Affairs Annual

Report (s) of the Secretary General on the work of the Organisation. First Report for 1945–46. Third report for 1947–48, Doc. A/565, 30th July 1948, appears as supplement No. I, to Official Records of the Third Session of the General Assembly. Yearbook of the United Nations, 1946–47, Lake Success, Department of Public Information 1947, p. 931. Letter from the Chairman of the Military Staff Committee to the Secretary—General dated 30th April 1947 and Report on General Principles governing the organisation of the Armed Forces made available to the Security Council by Member Nations of the United Nations. Doc. S/336, 30th April 1947, P. 80.

Ball, M. M. : NATO and Plu Europ.en Union Movement, 1959.

Beckett, Sir W. E. : The North Atlantic Pact, the Brussels Treaty and the Charter of the United Nations.

Bentwich, M. and Martin, A. : A Commentary on the Charter of the United Nations, London, 1950.

Boyd, A. and Metson, W. : Atlantic Pact, Commonwealth and United Nations, London 1949.

Boyd, A. and Boyd, F. : Western Union, London, 1948.

Briggs, Herbert W. : "Power Politics and International Organisation", American Journal of International Law, XXXIV, 1945, pp. 664-79.

Brierly. J. L. : The Covenant and the Charter, Cambridge, 1947.

Colombos, C. J. : "The United Nations Charter," International Law Quarterly, Spring 1947.

Craig, G. A. : NATO and the New German Army, 1955.

Dolivet, Louis: The United Nations : A Handbook on the New World Organisation, Farrar, Strauss, New York, 1946, p. 152.

Dulles, John Foster: "A First Balance Sheet of the United Nations". International Conciliation, No. 420, April 1946, pp. 177-82

Eagleton, Clyde; "Covenant of the League of Nations and Charter of the United Nations Points of Difference," Department of State, Bulletin XIII, August 19, 1945, p. 263; "The Jurisdiction of the Security Council over Disputes," American Journal of International Law, Vol. XL, 1946, pp. 513-33.

Freeman, Harrop A. : The United Nations Organisation and International Law, Philadelphia Pacifist Research Bureau, World Organisation Series IV, 1946.

Gassier, M : "Les Pactes de Paris it de Bruxelles et les besoins votaux de l' Europe," 50 Revue Politique et Pacleman Faire, 1948, pp 159-72.

Goodpaster, Col A J. . The Development of SHAPE 1950-1953 and International Organisation, 1955, pp 257-62

Goodrich, L. M. and Hambro, E. I. . The Charter of the United Nations, 2nd Ed , London 1949.

Goodrich, Leland M. : "The Amount of World Organisation Necessary and Possible," Yale Law Journal, LV, 1946, pp. 950-65, "The United Nations Pacific Settlement of Disputes" "American Political Science Review, XXXIV, 1945, p. 956.

Greaves, H. R. G : "International Voting Procedure," Political Quarterly, XVIII, 1947, pp. 331-40.

Hankey, M. P. A : Diplomacy by Conference, London, 1946.

Hamilton, T. J. : "The United Nations at Work," Yale Review, XXXVII, 1947, pp. 88-108.

Hawtrey, R. G. : Western European Union, London, 1949.

International Law Association. Reports of the United Nations Charter Committee, New York, 1958, Hamburg, 1960.

Ismay, Lord; Nato—The First Five Years, 1955

Kelsen, H The Law of the United Nations, Collective Defence under the Brussels and North Atlantic Treaties, Cmd Paper No 7883, 1950, "Limitations on the Functions of the United Nations," Yale Law Journal, LV, 1946, pp 997-1015.

Koo, Wellington Jr Voting Procedures in International Political Organisations, Columbia University Press, New York, 1947, p 349.

Krout, J A ed : "Developing A Working International Order-Political, Economic and Social," Proceedings of the Academy of Political Science, XXII, 1947, pp 109-250

Laves, W. H. C : "The United Nations : Reorganising the World's *Governmental Institutions," Public Administration Review* V, 1945, pp. 183-93

Oppenheim .International Law, 2 vols , edited by H Lauterpacht

Reves, Emery: The Anatomy of Peace Harper, New York. 1945, p 275